॥ दोहा ॥

अस्ति-भाति-प्रिय-सिंधुमैं,
नामरूप जंजाल ॥
लिखि तिहिं आत्मस्वरूप निज,
व्है तत्काल निहाल ॥ १ ॥

(वृ. प्र.)

Printed by K. R. Mitra, at the Manoranjan Press, 3 Sandhurst Rd, Girgaon, & Published
by Vrajwallabh Hariprasad, at Ramwadi, K. Devi, Bombay.

शरीफ सालेमहंमद.

यह आवृत्ति सुज्ञ श्री शरीफ सालेमहम्मदके
प्रसिद्ध किये हुये आवृत्ती उपरसे छपी है.

॥ ॐ गुरुपरमात्मने नमः ॥

॥ श्रीविचारसागर ॥
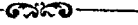
॥ प्रथमावृत्तिकी प्रस्तावना ॥

प्राणिमात्र केवलसुखकूं चाहेहैं औ दुःखकी अत्यंतनिवृत्तिकूं इच्छेहैं, परंतु ऐसी सर्वकी इच्छा पूर्ण नहीं होवैहै । अनेक पुरुष सुखके निमित्त धन-पुत्र-स्त्री आदिक पदार्थनकी प्राप्तिका प्रयत्न करैहैं औ दुःखकी निवृत्तिअर्थ दान-तप-योग-औषध-मंत्र-आदिकका आश्रय लेवैहैं, परंतु दीनके दीनही रहैहैं । काहेतें ? सुखप्राप्ति औ दुःखनिवृत्तिके हेतु उक्तपदार्थ नहीं हैं । तिन पदार्थोंकरिके उलटी दुःखकी प्राप्ति औ सुखकी न्यूनता होवैहै । जैसैं कोई पुरुष अफीममदिरादिकके अधिक अधिक ग्रहणकरि सुख मानैहैं, परंतु तिनकरि दुःखकूंही अनुभवकरिके मरैहैं, तैसैं जे जे पुरुष सुखप्राप्ति औ दुःखनिवृत्तिअर्थ देहआसक्तिकरि जगत्के तुच्छपदार्थरूप मदिरादिक व्यसनका आश्रय करैहैं । वे दुःखकूं अनुभवकरिके जन्मैहैं औ मरैहैं ।

केवलसुखकी प्राप्ति औ दुःखकी अत्यंतनिवृत्तिअर्थ पुरुष, विचित्रपंथ औ तिनके आचार्यनका आश्रय लेवैहैं । तिसकरि वी तिनोंकी इच्छा पूर्ण नहीं होवैहै । किंतु वृथाकष्टकूंही अनुभव करैहैं ॥

केवलसुखकी प्राप्ति औ दुःखकी अत्यंतनिवृत्तिअर्थ केइ न्यायादिक अनेकपांडित्यमतकू आश्रय करैहैं तथापि तिनोंकरि वी पुरुषनकी इच्छा पूर्ण नहीं होवैहै । यातैं—

केवलसुखकी प्राप्ति औ दुःखकी अत्यंतनिवृत्तिअर्थ आत्मज्ञान (आपका ज्ञान) ही उपयोगी है । अन्य नहीं । जैसैं मृग अपनी कस्तूरीकी सुगंधका अनुभवकरिके औरठौर कस्तूरी ढूंढैहै औ दुःखकूं अनुभव करैहै, तैसैं पुरुष वांछितविषयके लाभरूप निमित्ततैं अंतर्मुखवृत्तिमैं स्वरूपआनंदके प्रतिबिंबकूं अनुभवकरिके विषयमैं आनंदकूं ढूंढैहै । तिसकरि दुःखकूंही अनुभव करैहै ।

बडा आश्चर्य है जो पुरुष समुद्रकी गंभीरता, पवनका वेग, अनेक यंत्र, तारोंकी गति, इत्यादिककी शोध करैहै । परंतु आपके ज्ञानकी शोध नहीं करैहैं औ जैसैं और बुद्धिरहित प्राणी आपकूं जानैविना आहार, निद्रा, भय औ मैथुनका अनुभवकरिके मरैहै तैसैं यह बुद्धिसहित मनुष्यप्राणी वी मरैहै ॥

आत्मज्ञान (आपका ज्ञान) अद्वितीयके प्रतिपादक बहुतसंस्कृतग्रंथनसैं गुरुद्वारा पुरुषकूं प्राप्त होवैहै ॥ तैसैं फारसी, अरबि, इंग्रेजी आदिक भाषामैं वी कोई कोई आत्मज्ञानके बोधक ग्रंथ हैं । परंतु संस्कृतमैं जैसैं विस्तीर्णग्रंथ हैं, तैसैं औरभाषाविषै नहीं हैं । हिंदुस्थानीभाषामैं वी आत्मज्ञानके बोधक ग्रंथ हैं, परंतु आत्मज्ञानमैं उपयोगी इस जैसा संपूर्णप्रक्रियाग्रंथ दूसरा नहीं है । श्रीनिश्चलदासजीनैं भाषावालोंपर बडी कृपा करिके स्थूलबुद्धिवालोंको वी उपयोगी होवै, ऐसा यह **श्रीविचारसागर** ग्रंथ रच्याहै ॥

आत्मज्ञानके अर्थ औरपदार्थनका ज्ञान अपेक्षित है । जैसैं भोजनकी सिद्धिअर्थ अग्नि अन्नजल आदिककी अपेक्षा रहैहै, तैसैं

आत्मज्ञानअर्थ जीवईश्वर औ जगत्का ज्ञान अपेक्षित है औ तिनकी सिद्धिअर्थ औरपदार्थन-का ज्ञान अपेक्षित है ॥ सो ज्ञान, ग्रंथ औ गुरुकरि औ अपनै विचारकरि प्राप्त होवैहै। यातैं-

प्रक्रियाके ज्ञानविना आत्मज्ञानकी दृढता होवै नहीं । यद्यपि इस ग्रंथमैं केवलमहा-वाक्यके श्रवणसैंही ज्ञान होवैहै । ऐसा अंक १८ सैं अंक २३ पर्यंत प्रतिपादन कियाहै । तथापि तहां कह्याहैः—असंभावना औ विपरीत-भावनारहित जिसकी बुद्धि होवै तिस उत्तम अधिकारीकूंही केवल महावाक्यके श्रवण-करि ज्ञान होवैहै । सर्वकूं नहीं । ऐसैं उत्तम-अधिकारी जगत्मैं कचित्‌ही होवैहैं । यातैं जिसकूं महावाक्यके श्रवणसैं असंभावना औ विपरीतभावनासहित बोध हुवाहै, तिसकूं तिनकी निवृत्तिअर्थ अनेकयुक्तिसहित पदपदार्थ श्रवणकरिके विचारे चाहिये ॥

आत्मबोधमैं उपयोगी प्रक्रिया इस ग्रंथमैं अनेक हैं । यातैं जिस पुरुषकूं परमानंदकी प्राप्ति औ अनर्थकी निवृत्तिरूप मोक्षकी इच्छा होवै, तिसकूं यह ग्रंथ मानों दुःखरूप संसार-समुद्रसैं लंघावनैकूं शीघ्र चलनैवाला अग्निबोट है किंवा विमानही है, ऐसैं कहैं तौ अनुचित नहीं है ॥

इस ग्रंथमैं द्वेषकरिके कोई पंथकी निंदा नहीं है औ पक्षकरिके कोई पंथकी स्तुति नहीं है ॥ तैसैं न इसमैं कोई पंथ वा धर्मका प्रतिपादन है । किंतु यामैं केवलआत्मज्ञान (आपका ज्ञान) जो सर्वका निजधर्म है, तिसका प्रकारही अनेकयुक्तिकरि दिखायाहै ।

केई पुरुष उपासनामैं, केई सिद्धिमैं, केई वेषमैं औ केई औरकिसीमैं अटकी रहैहैं औ आपमैं अथवा औरमैं तिनकी प्राप्ति नहीं देखिके आत्मज्ञानके तरफ आलसी होइके शंकासहित रहैहैं ॥ ऐसी औरबी अनेकशंका होवैहैं, सो सब इस ग्रंथके विचारनैकरि दूरि होवैहैं ॥

विचार(का) सागर इस ग्रंथका नाम होनैतैं इसके प्रकरणके नाम तरंग (मौजा) रखेहैं । इसमैं सर्वमिलिके सप्ततरंग हैं। तिनमैं—

१ प्रथमतरंगविषै अनुबंध (ग्रंथका अधिकारी संबंध विषय औ प्रयोजन)का वर्णन है । दूसरेतरंगमैं अनुबंधका विशेषकरिके वर्णन है । जैसैं कोई अपनी जमीनपर घर रचै, तहां दूसरा पुरुष आइके घरके धनीसैं जमीनका दावा करै औ रचेहुये घरकूं पायेसैं उखाडी डाले । तब घरका धनी अपनी जमीनका धनीपना सिद्धकरिके फेर घरकूं रचलेवै । तब निःशंक होवैहै ॥ तैसैं इस ग्रंथके प्रथमतरंगमैं अनुबंध दिखायेहैं औ तिसका—

२ दूसरे तरंगमैं पूर्वपक्ष (वादीका पक्ष) करिके खंडन कियाहै । फेर सर्वशंकाका क्रमसैं समाधान करिके अनुबंधका मंडन किया है ॥

३ तीसरे तरंगमैं मुमुक्षुकूं शिक्षाअर्थ गुरुके औ शिष्यके लक्षण औ गुरुकी भक्तिका प्रकार औ फल दिखायाहै ॥

४ चौथे तरंगमैं उत्तमअधिकारीकूं उपदेशका प्रकार दिखायाहै ॥

५ पांचवें तरंगमैं मध्यमअधिकारीकूं उपदेश-का प्रकार दिखायाहै । तिसकूं अहंग्रह-उपासनाकी विधि कहीहै ॥

६ छठे तरंगमैं कनिष्ठ—(कुतर्कबुद्धि) अधिकारकूं उपदेशका प्रकार दिखाया-है ॥

७ सातवें तरंगमें जीवन्मुक्त औ विदेहमुक्तके व्यवहारका प्रकार दिखायाहै ॥

सातों तरंगोंका विशेषभावार्थ "मार्गदर्शक अनुक्रमणिका" करि जान्या जावैगा ॥

औरग्रंथकार जैसें वेदआदिकके प्रमाणकरि ग्रंथकूं पूर्ण करैहैं तैसा इसमें नहीं है। किंतु श्रुतिके अर्थकूं निर्णय करनैवाली युक्तियां इस ग्रंथमें प्रधान हैं। युक्तिकरि सर्वप्रकारके अधिकारीकूं सुखसैं बोध होवैहै। एकदोठौरपर आवश्यकता धारिके श्रुति रखीहै ॥

इस ग्रंथके समान मुमुक्षुकूं उपयोगी भाषाग्रंथ आधुनिक समयमें अद्वैतमतविषै नहीं है। संस्कृतमें बी ऐसें संपूर्ण वेदांतकी प्रक्रियाके ग्रंथ अल्पही हैं। ग्रंथकर्त्ता श्रीनिश्चलदासजीनै दूसरे औ तीसरे अंकमें ग्रंथकी महिमा कहीहै। सो यथास्थितही कहीहै। आत्मबोधविषै उपयोगी कोईबी प्रक्रिया इसमें नहीं ऐसा नहीं है औ सो बी कहुं वेदविरुद्ध नहीं है ॥

बहुतकरिके वेदांतप्रक्रियाके ऊपर भाषा पढनैवालोंकी रुचि इस ग्रंथकी उत्पत्तिसें अनंतरही हुईहै। इस ग्रंथकी उत्पत्तिसें पूर्व भाषा जाननैवाले अनेकगृहस्थ औ साधुआदिक सत्संगी वेदांतप्रक्रियाकूं यथास्थित नहीं जानतेथे। इसके अनंतर अब बहुतपुरुष प्रक्रियाकूं जानिके निःसंदेह ब्रह्मनिष्ठ हुवेहैं ॥ "वृत्तिप्रभाकर" जो इस ग्रंथके कर्त्तानै कियाहै, तिसका जिस जिस पुरुषने सम्यक् अभ्यास कियाहै, सो मानों पंडितही भयेहैं औ तैसें पुरुषनके साथि संस्कृतके वेत्ते जब शास्त्रार्थ करतेहैं, तब आश्चर्यकूं पावतेहैं औ कहतेहैं:—अहो! क्या इन भाषा जाननैवालोंकी बुद्धि है!

इस ग्रंथमैं अनुबंधनिरूपण है। ऐसा अनुबंधका सुंदरनिरूपण संस्कृतग्रंथनविषै बी मिलना कठिन है ॥ जैसें जेवरीविषै सर्प अध्यासरूपकरि प्रतीत होवैहै, तैसें परमात्माविषै सर्वस्थूलसूक्ष्मप्रपंच अध्यासरूप जीवकूं प्रतित होवैहै। ऐसा वेदांतका सिद्धांत है। जेवरीविषै सर्पभ्रममें अध्यासकी सामग्री कहीहै। परंतु जगत्अध्यासमें तौ कोईबी सामग्री नहीं है। सामग्रीविनाही प्रतीत होवैहै। ऐसा इस ग्रंथमें प्रौढिवादकरि सिद्ध कियाहै ॥ इसप्रकारका अध्यासनिरूपण कोई संस्कृतग्रंथविषै बी बहुतकरि नहीं देखियेहैं। और बी अनेक उपयोगी सिद्धांतअविरुद्ध स्वतंत्र अद्भुतविचार ग्रंथकर्त्तानै इसमें रखेहैं ॥

ग्रंथके कर्त्तानै इसकी भाषा बहुतसरल करीहै औ जैसें औरग्रंथकार अर्धसंस्कृतमिश्र भाषासैं ग्रंथकूं रचिके कठिन करि देवैहैं। ऐसा इसमैं नहीं कियाहै। बहुत ठिकानैं कठिन प्रसंगनकूं वारंवार लिखेहैं। जिसकरि स्थूलबुद्धिमान् बी समजीसके। जहां जहां कठिन संस्कृतशब्द रखेहैं, तहां तहां तिन शब्दोंके अर्थ खोलेहैं। ऐसा या ग्रंथकूं सरल कियाहै। तथापि इस ग्रंथका श्रवण औ अभ्यास अनेकपुरुषनकूं कठिन प्रतीत होवैहै। सो कठिनता इस ग्रंथकूं प्रक्रियाकरि पूर्ण होनैतें औ विचाररूप होनैतें है औ इसका विषय बी दुर्बोध है। परंतु इस नवीनरूढिसैं अंकितग्रंथकूं विचारनैसें इसका श्रवण औ अभ्यास अत्यंतसुगम होवैगा ॥

एकही यह ग्रंथ ऐसा उत्तम है जो इसकूं मुमुक्षु भलिप्रकार विचारै तौ शीघ्र अपनै स्वरूपकूं जानै औ आत्मज्ञानके निमित्त औरकोईबी दूसरे ग्रंथके देखनैकी अपेक्षा रहै नहीं; परंतु इतना है जो इस ग्रंथकूं गुरुद्वाराही देखनाचाहिये। काहेतें? आत्मज्ञान वरकरि अथवा बहुत पढनैकरि अथवा औरकिसी स्वतंत्रउपाय-

करि प्राप्त नहीं होवैहै । ऐसा वेदांतका सिद्धांत है ॥ इसके अंक ९४ मैं कह्याहैः—

॥ दोहा ॥

"पेख चारिअनुबंध युत,
पढै सुनै यह ग्रंथ ॥
ज्ञानसहित गुरुसैं जु नर,
लहै मोछको पंथ ॥ १ ॥"

औ इसके अंक ९७ मैं बी कह्याहैः—

"बिन गुरुभक्ति प्रवीनहु,
लहै न आतमज्ञान ॥"

यातैं जिज्ञासुनकूं ऐसी बिनति है, जो इस ग्रंथकूं गुरुद्वारा विचारना ॥

इस ग्रंथके कर्त्ता श्रीनिश्चलदासजीका संपूर्ण-जन्मचरित्र इसके साथि लिखनैका मेरा विचार था, परंतु ऐसैं साधनकी अप्राप्ति होनैतैं जो कछुक मेरे श्रवणमैं आयाहै, सो इहां लिखूंहूं ॥

श्रीनिश्चलदासजीका जन्म कहां औ कब हुवाहै, सो ज्ञात नहीं है ॥ विद्याअभ्यासमैं इनोंका बडा स्नेह था । १४ सैं ७० वर्षपर्यंत विद्याअभ्यासमैंही काल व्यतीत किया ॥ इस ग्रंथके ५२६ वें अंकमैं तिनके अभ्यासका यह कछुक वर्णन हैः—

॥ दोहा ॥

"सांख्य न्यायमैं श्रम कियो,
पढि व्याकरण असेप ॥
पढै ग्रंथ अद्वैतके,
रह्यो न एकहु सेप ॥ १११ ॥
कठिन जु और निबंध हैं,
जिनमैं मतके भेद ॥
श्रमतैं अवगाहन किये,
निश्चलदास सवेद ॥ ११२ ॥"

ऐसैं अभ्यासवान् पुरुष आधुनिक समयमैं क्वचित्‌ही देखनैमैं आवैहैं ॥

इस ग्रंथकरि श्रीनिश्चलदाजीकी अद्भुत-निष्ठाका अनुमान होवैहै । काहेतैं ? जो इसमैं सिद्धांतकी वार्त्ता कोईठौरमैं कछु बी छुपाइके नहीं कहीहै औ मुमुक्षुकूं निष्ठा करावनैके प्रकार सम्यक्‌रीतिसैं इसमैं रखेहैं । औ तिन्होंका व्यवहार बी अतिउत्तम औ निःशंक था । जैसैं कोई ज्ञानीपनैका अभिमान धारिके देहाभिमान आदिकविषै गिडेरहतेहैं, तैसैं यह महात्मापुरुष नहीं थे । महाविरक्तदशावाले औ बडे ब्रह्मनिष्ठ थे । ब्रह्माकारवृत्तिकी स्थितिमैंही सदा मग्न रहतेथे ॥

न्यायव्याकरणआदिक बुद्धिकूं तीव्र करैहैं औ तीव्रबुद्धिका वेदांतमैं बी उपयोग है । तथापि तिनका बहुतअभ्ययन अनात्मा (द्वैत)की तरफ बुद्धिकूं जोडैहै औ मतिकूं मलिन करिडारैहै । ऐसा कहैहैं जो न्यायसैं एकशत-गुन वेदांत विचारै, तब न्यायकरि दूषित हुई बुद्धि शांतिकूं पावैहै ॥ श्रीनिश्चलदासजी व्याकरणन्यायआदिकमैं अतिकुशल थे तौ बी तिनोंकी वेदांतपरही प्रबलनिष्ठा थी ॥

आप कोईकोईकूं न्यायादिशास्त्र पढावतेथे । तहां कोई प्रभातमैं न्यायादि पढनैआवै, तिसकूं नहीं पढावतेथे औ कहतेथे जो प्रभातमैं अनात्मा (द्वैत) के प्रतिपादकग्रंथनकूं हम नहीं पढावैंगे ॥

इस दृष्टांतोंकरि श्रीनिश्चलदासजी अद्भुत-निष्ठावान् थे । ऐसा सिद्ध होवैहै ॥

श्रीनिश्चलदासजीका पांडित्य तिनके अभ्यासकरिही बडाअद्भुत था ऐसा सिद्ध होवैहै ।

तिनका "वृत्तिप्रभाकर" ग्रंथ देखिके बडेबडे विद्वान् वी श्रीनिश्चलदासजीके पांडित्यकूं सराहतेहैं। अधिक क्या कहैं? तिनोंके समयमैं औ अब वी साधुपुरुषनविषै श्रीनिश्चलदासजीके समान कोईवी परिपक्वविद्यावाला पंडित नहीं है ॥

श्रीनिश्चलदासजी पृथ्वीवर जहां विचरतेथे तहां वेदांतशास्त्रकी प्रतिदिन कथा करतेथे ॥ इसग्रंथकी औ वृत्तिप्रभाकरकी वी आपनै बहुतबेर कथा करीहै। जहां जहां आप श्रवण करावतेथे, तहां तहां अनेकसाधुनकी सभा श्रवणवास्ते मिलतीथी औ अतिरसिकभाषण सुनिके आनंदवान् होतीथी ॥

बहुतकरि श्रीनिश्चलदासजी श्रीकाशीजी-विषैही रहतेथे ॥ तहां आप वी कहूं श्रवणमैं जातेथे। एकसमय श्रीकाशीजीमैं भाषारामा-यणके कर्त्तासैं विलक्षण महात्मा श्रीतुलसी-दासजी कथा करतेथे। तहां आप गयेथे। प्रसंगसैं श्रीतुलसीदासजीनै कहा, जो:—"ईश्वर-विषै आवरणशक्ति नहीं है। विक्षेपशक्ति है।" यह सुनिके श्रीनिश्चलदासजीनै कहा कि, "ईश्वरविषै दोनूं नहीं हैं"। इस बातपर थोडाशास्त्रार्थ हुवा। इस पीछे आप तिस महात्माकी कथामैं गये नहीं। कारण जो अपनै वचनोंकरि कहुं किसीकूं खेद होवै तौ भला नहीं। ऐसा विचारिके गये नहीं ॥ परंतु आप तिन महात्माकी निष्ठाकी बहुत श्लाघा करतेथे। तैसैं श्रीतुलसीदासजी वी श्रीनिश्चलदासजीके पांडित्य औ अद्भुतनिष्ठाकी वारंवार स्तुति करतेथे। "ईश्वरमैं आवरण औ विक्षेपशक्ति दोनों नहीं हैं" ऐसा इसके अंक २०६ औ २०७ मैं भलिप्रकार प्रतिपादन कियाहै ॥

इस ग्रंथकूं रचनैमैं श्रीनिश्चलदाजीनै कोई वी ग्रंथकी सहायता नहीं लइहै। जैसैं कोई सहज पत्र लिखैहै तैसैं इसकूं रचि गयेहैं। "श्रीवृत्तिप्रभाकर" रच्या तब औरग्रंथोंकूं देखतेथे, परंतु सो अपनै ग्रंथकूं निर्दोष करनैकूं देखतेथे। औ "श्रीवृत्तिप्रभाकर"मैं अनेक प्रामाणिक ग्रंथनके प्रमाण दिखायेहैं औ तिसमैं अनेकग्रंथनके दोष वी स्पष्ट दिखायेहैं॥ अब केई केई संस्कृतके वेत्ते पंडित "श्रीवृत्तिप्रभाकर"कूं छुपाइके वांचेहैं। काहेतैं? जो संस्कृतके वेत्ते होइके भाषाग्रंथकी सहायता लेनैकूं तिनकूं लज्जा होवैहै। परंतु अतिउत्कृष्ट होनैतैं तिसकी सहायता लेतेहैं॥ "श्रीवृत्तिप्रभाकर"मैं न्याय-आदिक अनेकपांडित्यमत भलिप्रकार दिखाये-हैं। यातैं तिसका पढना कठिन भयाहै ॥ अंतके प्रकरणमैं सर्वमतका खंडनकरिके वेदांत-मतका प्रतिपादन कियाहै ॥

हिंदुस्थानमैं बुंदीविषै रामसिंहराजानै श्रीनिश्चलदासजीकूं बडे आदरसहित अपनै पास रखेथे औ राजारानी दोनूं तिनोंमैं गुरुभाव रखतेथे। श्रीनिश्चलदासजीकी संगतिसैं सो राजा पंडितकी पदवीकूं प्राप्तभया ॥ राजानै एकसमय बडेबडे पंडितनकी सभा करीथी, तिसमैं शास्त्रार्थ हुवाथा। तिसकी राजानै यथास्थित परीक्षा करी। तिस दिनसैं सर्व-पंडितजनोंनै तिस राजाका नाम "विद्वान्" करिके रखा। इस राजानै श्रीनिश्चलदासजीकूं विनति करी। जो हिंदुस्थानी भाषामैं पंडितनकूं उपयोगी होवै ऐसा वेदांतग्रंथ कोई नहीं है, सो आप करोगे तो सहजही उनपर उपकार होवैगा। इस प्रेरणाकरि औ भाषाके जाननैवालों-पर दयादृष्टिकरि आपनैं "श्रीवृत्तिप्रभाकर" बनायाहै ॥

श्रीकाशीजीमैं रहिके श्रीनिश्चलदासजीनै विद्याके २७ लक्ष संस्कृतश्लोकनका संग्रह

कियाथा। आप संस्कृतके बडे धुरंधर वेत्ते थे। तथापि भाषा पढनैवालोंपर बडी दयाकरि दो उत्तमग्रंथनकूं प्रगट किये। इस ग्रंथके अंक ५२६ मैं कह्याहैः—

॥ दोहा ॥

"तिन यह भाषा ग्रंथ किय,
रंच न उपजी लाज ॥
तामैं यह इक हेतु है,
दया धर्म सिरताज ॥११२॥"

श्रीनिश्चलदासजीनै श्रीकठवल्लीउपनिषद्पर संस्कृतमैं व्याख्यान कियाहै औ वैद्यकशास्त्रका बी एकग्रंथ रच्याहै, ऐसा सुन्या जावैहै॥ काव्यशास्त्रमैं बी आप कुशल थे। ऐसा इस ग्रंथकी कविता निर्दोष है। तिसकरि जान्या-जावैहै॥

श्रीसुंदरदास जिनका "श्रीसुंदरविलास" प्रसिद्ध है, तिनोंनै औ श्रीनिश्चलदासजीनै मिलिके श्रीदादूजीके पंथकूं अतिशय प्रकाशित कियाहै॥

श्रीनिश्चलदासजीकूं पंथका अभिमान नहीं था। बडे निरभिमान थे। बाल्यावस्थासैं आप साधुदशामैंही रहेथे औ तिसमैं बडा विद्या-अभ्यास किया औ पीछे बहुतकरिके ब्रह्म-चिंतनविषैही मग्न रहतेथे। संवत् १९२० की सालमैं श्रीदिल्लीशहरमैं इनोंका देह पड्याहै। तिनोंका श्रीकिहडोलीमैं जहां यह ग्रंथ समाप्त भयाहै, तहां गुरुद्वारा बी है औ अद्यापि तहां तिनोंके शिष्य बी हैं॥

श्रीनिश्चलदासजीका जो ऊपर वृत्तांत लिख्याहै, सो बहुतअपूर्ण हैं। कोई कृपा-करिके इस महात्मापुरुषका सविस्तरवृत्तांत मेरेकूं लिख भेजैंगे तौ तिसका और कोई दूसरे-समयपर उपयोग करनैकी मेरी बडी इच्छा है॥

जिस समयमैं यह ग्रंथ संपूर्ण भया, तिस समयमैं अनेक पुरुष इसकूं लिखाइके रखतेथे। औ तिसका अभ्यास करतेथे॥ तिस पीछे यह ग्रंथ कलकत्ता, लाहोर, मुंबई आदिक-स्थानोंमैं छपाहै औ मराठी भाषामैं इसका भाषांतर भयाहै॥ बंगालिभाषामैं बी इसका भाषांतर हुवा है ऐसा सुन्याहै॥

जहां जहां यह ग्रंथ हिंदुस्थानीभाषामैं छपा-है, तहां तहां विभक्त्यंतपदच्छेदरहित औ विचारनैमैं कठिनरूढिके छपेहैं औ कहुं कहुं तौ निकृष्टकागद औ छापेकरि ग्रंथकूं अरुचि-कर करीदियाहै॥

मेरेकूं इसका अभ्यास कठिन प्रतीत भया। तब मैंनै कष्टसैं स्वअभ्यासके अर्थ अनुक्रमणिका रची॥ पीछे बहुतसत्संगीनै मेरेकूं सूचना करी। जो इस ग्रंथकूं अनुक्रमणिका सहित छपाना-चाहिये औ तिसकरि सर्वमुमुक्षुनकूं इसका अभ्यास बहुत सुगम होवैगा। तब मैंनै—

इसमैं ५२७ अंक कियेहैं। जिसकरि अनेकप्रक्रिया औ अंतर्गतप्रक्रियारूपी रत्न विचार (रूपी) सागरमैं भिन्न भिन्न दृष्ट आवैहैं।

या ग्रंथकी कविता बडे अक्षरमैं औ टीका लघुअक्षरमैं रखीहै। काहेतैं? इस रूढिके ग्रंथमैं सर्वअक्षर बडे लिखैं तौ इसका पूर तीन वा चारगिना होइजावै। इसके पद्य औ गद्यके सर्वशब्द विभक्त्यंत पदच्छेदकरिके रखेहैं॥ औ कविताके चरन बी भिन्न भिन्न रखेहैं॥ इसकरि इसका पढना अतिशयसुगम होवैगा॥

इस ग्रंथके आरंभमैं मंगलाचरणके अत्युत्कृष्ट पांचदोहे हैं, तिनका अर्थ बहुतगंभीर है॥ इनकी टीका कहुं नहीं है परंतु श्रीनिश्चल-

दासजीनै बहुतसाधु पुरुषनके पास इन दोहेका युक्तिपूर्वक व्याख्यान कियाथा । सो व्याख्यान स्वामी श्रीत्रिलोकरामजीसैं एक-महात्मापुरुषनै श्रवण कियाथा औ तिनसैं मैंनै श्रवण कियाहै । इन मंगलाचरणके दोहेकी टीका अतिउपयोगी जानिके नवीन रीतिके अनुसार इस ग्रंथके आरंभमैं छापीके रखी है ॥

जिस महात्मा ब्रह्मनिष्ठ पुरुषसैं मैंनै मंगलाचरणकी टीका औ इस ग्रंथका श्रवण किया है, तिस महात्मा पुरुषका मेरे ऊपर अतिवड़ा उपकार भयाहै । औ ग्रंथके आरंभमैं अर्पणपत्र रख्याहै । सो इसीही महात्मापुरुषके वास्ते रख्याहै ॥

॥ विक्रमसंवत् १९७४ ॥

—प्रसिद्धकर्ता.

१ महात्मा श्रीमद्रामगुरु अखंडानंदसरस्वतीके प्रशिष्य औ पूज्यपाद श्रीमद्वापुसरस्वतीके शिष्य, ब्रह्मनिष्ठ-पंडित श्रीपीतांबरजी महाराज । इस महात्मानै श्रीपंचदशी-की विस्तृत औ अतिउत्कृष्ट तत्त्वप्रकाशिकानामक हिंदुस्थानीमैं टीका करीहै औ वेदके ईशआदिनामक अष्ट उपनिषद्नकी संपूर्ण सटीक शंकरभाष्यके अनुसार हिंदुस्थानीमैं टीका करीहै औ श्रीसुंदरविलासके विपर्यय अंगकी टीका, श्रीविचारचंद्रोदय अरु वृत्तिरत्नावलिआदिक अनेक वेदांतके ग्रंथ रचेहैं, सो भाषावालोंपर परमअनुग्रह कियाहै । ऐसे उत्तमविद्वान् दयालु उपदेशकुशल औ ज्ञानवैराग्यआदिक अनेक-उत्तमगुणगणमणिमंडित ये महात्मा थे ॥

॥ श्रीब्रह्मवित्सद्गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ पंचमावृत्तिकी प्रस्तावना ॥

॥ उपोद्घात ॥

संस्कृतभाषाविषै वेदांतार्थविषयक अनेक-उत्तमग्रंथ विद्यमान हैं । परंतु स्वतंत्रभाषाग्रंथोंमैं साधु श्रीनिश्चलदासजीकृत श्रीविचारसागर ग्रंथ उत्तमोत्तम औ अद्वितीय है । 'अखिलभाषाग्रंथोंके समूहमैं इसग्रंथसमान अन्य ग्रंथ नहीं है' ऐसैं कहनैमैं किंचित् वी अतिशयोक्ति नहीं है । वेदांतके सर्वप्रकारके अधिकारिओंकूं इस ग्रंथसैं सम्यक्बोधकी प्राप्ति होवैहै । काहेतैं ? इसविषै अद्वैतसिद्धांतकी सर्वप्रक्रियां समाविष्ट हुईहैं । इतनाही नहीं, किन्तु वे सर्वप्रक्रियां वेदके महत्सिद्धांतसैं अविरुद्ध हैं । यह ग्रंथ मुमुक्षुजनोंकूं कैसा प्रिय औ उपयोगी है, सो वार्त्ता याकी यह पञ्चमावृत्ति भईहै इसकरिकेही सिद्ध होवैहै ॥ प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ औ यह पञ्चम ऐसैं इस ग्रंथकी पांच आवृत्तियोंकूं उत्तरोत्तर देखनैसैं ज्ञात होवैगा, कि, अभ्यासकी सुगमताअर्थ प्रत्येक-आवृत्तिमैं हमनै नवीनता करीहै तथापि कहूं वी ग्रंथकर्त्ताके शब्दोंविषै अधिकता वा न्यूनता नहीं करीहै । जैसी इस ग्रंथके अर्थकी उत्तमता है, तैसीही उत्तमता मुद्रणशैलीकी रचना औ शृंगारविषै करनैनिमित्त इस पञ्चमावृत्तिविषै जे नवीनता करीहै, वे नीचे दर्शावतेहैं:—

श्रीवृत्तिरत्नावली ।

श्रीवृत्तिप्रभाकरनामकग्रंथ वी साधु श्रीनिश्चलदासजीनै कियाहै औ सो गहन होनैतैं पंडित-गम्य तथा अनेकप्रकारके तर्कवितर्कोंसैं भरपूर है । इस ग्रंथका वेदांतोपयोगी सारांश ब्रह्मनिष्ठ पंडित श्रीपीतांबरजी महाराजनै निष्कर्षकरिके तिसका नाम "श्रीवृत्तिरत्नावलि" रख्याहै ॥ यह वृत्तिरत्नावलिग्रंथ इस श्रीविचारसागरकी तृतीयावृत्तिविषै छाप्याथा सोईही महाराजश्रीनै दयाकरिके पुनः संशोधन करिदिया । सो इस आवृत्तिविषै छाप्याहै ॥

श्रीपंचदशीसटीकासभाषा द्वितीयावृत्तिगत श्रीनाटकदीप ।

जैसैं भाषाग्रंथोंमैं श्रीविचारसागर रत्नरूप है, तैसैं संस्कृतग्रंथोंमैं श्रीमद्विद्यारण्यस्वामिकृत श्रीपंचदशी रत्नरूप है । श्रीविचारसागर औ श्रीपंचदशीका लक्ष्यपूर्वक अवलोकन करनैंसैं श्रीविचारसागरविषै श्रीपंचदशीकी अनेकप्रक्रिया दृष्ट होती हैं । यातैं ऐसा अनुमान होवैहै, कि, साधु श्रीनिश्चलदासजीनैं श्रीपंचदशीग्रंथका दृढ-अभ्यास औ रटनकरिके तिसके सारार्थकूं अपनैं चित्तरूपी जठरमैं अत्यंतपाचन कियाहोवैगा । उक्त श्रीपंचदशीकी अलौकिकरूढियुक्त द्वितीयावृत्ति हमनैं छापीहै औ तिसका विस्तार इस ग्रंथके पृष्ठके परिणाम जैसैं १००० सैं अधिकपृष्ठका है । तिसविषै ५६७८ अंक करीके संपूर्णसंस्कृत मूल तथा अन्वययुक्त टीका औ तितनैंही अंकयुक्त तिनकी संपूर्णभाषा औ ८३५ टिप्पण समाविष्ट कियेहैं ॥ संस्कृतटीकाकी रचनामैं जैसी गंभीरता है वैसी अन्य कोईबी भाषाके टीकाकारोंकी टीकाविषै देखनैंमैं आवती नहीं । सो गंभीरता उक्त नवीनरूढिसैं ग्रंथके छापनैंतैं स्पष्ट भईहै । इतनाही नहीं, परंतु ऐसी रूढिके लिये अभ्यासकी अत्यंतसुगमता भईहै । इस ग्रंथके अंतमैं श्रीपंचदशीसटीकासभाषाका श्रीनाटकदीप नामक दशमप्रकरण धर्याहै । तिसकरि सारे-पंचदशीग्रंथकी मुद्रणशैली ज्ञात होवैगी ॥ इस ग्रंथमैं नाटकके रूपकसैं वेदांतसिद्धांतकी उत्तमप्रक्रिया रखीहै, सो बी मुमुक्षुजनोंकूं अतिउपयोगी होवैगी ॥ इसके मुखपृष्ठउपरि अनुक्रमणिका धरीहै । सो तहां देखनैंसैं तद्गत विषय ज्ञात होवैंगे ॥

॥ षट्दर्शनसारदर्शकपत्रकम् ॥

उक्त श्रीनाटकदीपके आरंभमैं ब्रह्मनिष्ठपंडित श्रीपीतांबरजीकृत अत्युपयोगी षट्दर्शनसारदर्शक पत्रक दियाहै । जिसविषै पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा (ब्रह्मसूत्ररूप वेदांत) न्याय, वैशेषिक, सांख्य औ योग, इन षट्दर्शनोंके मतानुयायीओंनैं जीव, जगत्, बंध, मोक्ष आदिक १७ मुख्यविषयोंके कैसै भिन्नभिन्न लक्षण कियेहैं, सो संक्षेपसैं स्फुट दर्शायेहैं । प्रत्येकदर्शनसंबंधी अनेकग्रंथोंके श्रमपूर्वक अवलोकनसैं जे उपयोगीपदार्थ जाने जावैहैं, वे इस लघुपत्रकके अवलोकनसैं प्राप्त होवैहैं, इस पत्रककी स्पष्टताके लिये श्रीषट्दर्शनसारावलिनामक ग्रंथ महाराजश्रीनें तैयार किया है ॥

॥ स्वप्नबोध औ महावाक्यविवेक ॥

साधु श्रीसुंदरदासजीकृत अत्यंत रुचिकर श्रीसुंदरविलासादिविषै स्वप्नबोधनामक अतिरसिक औ कंठ करनैंमैं सुगम ग्रंथ है । सो इस ग्रंथविषै अवकाशकूं देखिके श्रीवृत्तिरत्नावलिके अंतमैं धर्याहै ॥ तैसैंही श्रीपंचदशीगत श्रीमहावाक्यविवेक, जिसविषै चारिवेदके महावाक्यनका सम्यक्‌बोध कियाहै, सो बी अर्थयुक्त इस प्रस्तावनाके अंतमैं धर्याहै ॥

॥ अनुक्रमणिका ॥

जैसैं मंदप्रकाशयुक्त गृहगत अनेकपदार्थनमैंसैं कौनसा पदार्थ कहांहै, सो जाननैंनिमित्त दीपककी आवश्यकता है । तैसैं ग्रंथविषै रहे भिन्नभिन्न पदार्थनकी प्राप्तिमैं अनुक्रमणिका मानौं एक दीपकके समान है । इसग्रंथमैं प्रसंगदर्शक औ विषयदर्शक ऐसैं दोप्रकारकी विस्तारयुक्त अनुक्रमणिका छापीहै ॥

१ प्रसंगदर्शकानुक्रमणिका ग्रंथारंभमैं धरीहै । तिसतैं कोई बी वांछितप्रसंगका अंक औ कितनैं अंकपर्यंत तिस प्रसंगका विस्तार है । सो निमेषमात्रसैं ज्ञात होवैगा ॥

२ ताके पीछे विषयदर्शकानुक्रमणिका धरीहै सो अत्यंतउपयोगी है । काहेतैं ? तिसविषै ग्रंथभागगत, टिप्पणभागगत औ वृत्तिरत्नावलिगत सर्व ज्ञातव्य विषयोंकूं श्रमपूर्वक प्रवेश कियेहैं । इतनाही नहीं । परंतु ये सर्व अकारादिअनुक्रमसैं ग्रथित किये होनैंतैं कोई

वी वांछितविषयका अंक शीघ्र प्राप्त होवैहै ॥

(१) उक्तअंकनमैं जे चिन्हरहित हैं, वे श्रीविचारसागरके अंक हैं ॥

(२) जिन अंकनके अंतमैं "टि" धर्याहै, वे टिप्पणांकनकूं सूचन करैहैं । औ—

(३) वृत्तिरत्नावलिगत अंकनकूं तिसके अंतमैं "वृ" छापिके भिन्नता करीहै ॥

सुगमताकी अधिकता औ श्रमकी न्यूनता करनैनिमित्त इस अनुक्रमणिकागत बहुतशब्दनकूं जहां जहां अवकाश मिला तहां तहां भिन्न भिन्न अक्षरोंके अनुक्रममैं एकसैं अधिकवार दियेहैं । जैसैं किः—"पंचक्लेश" का विषय कौनसे अंकमैं है, यह जानना होवै तौ—

(१) "पं" के अनुक्रममैं "पंचक्लेश" शब्द देखनैतैं तत्संबंधी सर्वअंक प्राप्त होवैंगे ॥

(२) तैसैंही "क्ले" के अनुक्रममैं "क्लेशपंच" यह शब्द देखनैतैं वी तिसके सर्वअंक ज्ञात होवैंगे ॥

इसरीतिसैं "पंचक्लेश" औ "क्लेशपंच" ऐसैं दो स्थलमैंसैं एकही विषयके अंक मिल सकेंगे ॥ कहूं तौ एकही पदार्थ अवकाशानुसार तीनस्थलविषै वी धराहै ॥

छापनैकी रूढि ॥

इस आवृत्तिमैं अंकयुक्त पेरेग्राफकी (विभागनकी) नवीनमुद्रणशैली प्रविष्ट करीहै । तिसतैं इसग्रंथके अभ्यासी जनोंकूं श्रवणमननरूप अभ्यासमैं अत्यंतसुलभता होवैगी ऐसैं स्वानुभवसैं निश्चय होवैहै ॥ एकही पेरेग्राफमैं एकही विषयका अनेकप्रकारसैं विवेचन कियाहोवै अथवा एकही पेरेग्राफमैं उत्तरोत्तरसंबंधवान् अनेकविषय संलग्नतासैं आवते होवैं, तब उक्तविषयका कितनैप्रकारसैं विवेचन हुवाहै । किंवा तिसपेरेग्राफमैं कितनैं विषयका समावेश हुवाहै औ तिनोंका परस्परसंबंध किसप्रकारका है, सो संपूर्ण पेरेग्राफ चिंतापूर्वक आरंभसैं अंतपर्यंत पठन कियेबिना ज्ञात होता नहीं ॥ अंकयुक्त पेरेग्राफनकी जो नवीनरूढी इसआवृत्तिविषै प्रवेश करीहै तिसके योगतैं उक्तसर्वविषय दृष्टिपातमात्रसैं ज्ञात होवैहैं ॥

जैसैं किः—२१ वे पृष्ठोपरि दुःखका विवेचन कियाहै । वे दुःख कितनैं प्रकारके हैं सो अंक १—२—३ वाले तीन पेरेग्राफऊपर दृष्टि करनैसैंही ज्ञात होवैहै कि दुःख तीनप्रकारका है । तदुपरि प्रत्येकप्रकारके दुःखका वर्णन भिन्नभिन्न पेरेग्राफमैं करिके तद्गत अध्यात्मदुःख, अधिभूतदुःख औ अधिदैवदुःखआदिक प्रधान शब्दोंकूं स्थूलकरिके स्पष्टता करीहै ।

तैसैंही पृष्ठ २३२ ऊपर "ईश्वर व्यापक औ नित्य है" ऐसा विषय चलताहै, तिसमैं ईश्वरकूं व्यापक औ नित्य नहीं माननैमैं भिन्न भिन्न प्रकारके षट्दोष किसरीतिसैं प्राप्त होवैहैं । तद्गत चक्रिकानामक तृतीयदोष किसप्रकार चक्राकार भ्रमण होवैहै । चतुर्थ अन्योन्याश्रयदोष किस अनुक्रमसैं प्राप्त होवैहै, इस आदिक समग्रवार्त्ता भिन्नभिन्न पेरेग्राफ आंतरपेरेग्राफ औ तिसके आरंभमैं दियेहुवे अंकनपर दृष्टिका पतन होतेही तत्काल ज्ञात होवैहै ॥

इस रीतिसैं उक्त नवीनरूढिके लिये ग्रंथगत भिन्नभिन्नविषय, तिनोंका संबंध, समानासमानपना, उत्तरोत्तरक्रम, शंका, समाधान, तिनोंका आरंभ तथा अंत, दृष्टांत, सिद्धांत औ विकल्पआदिक श्रमसैं विना बुद्धिमैं प्रवेश करैंगे ॥

॥ टिप्पण ॥

इसआवृत्तिमैं टिप्पणोंकी मुद्रणशैली वी ग्रंथविभागकी रूढिकूं अनुसरिके रखीहै । इतनाही नहीं, परन्तु तद्गत सारभूत शब्दकूं स्थूलतायुक्त धरिके स्फुटता करीहै ॥ तदुपरि इस आवृत्तिके लिये ब्रह्मनिष्ठपंडित श्रीपीतांबरजीमहाराजनै कृपाकरिके श्रमपूर्वक उक्तटिप्पणोंका पुनः संशोधन कियाहै औ तिसमैं कितनैक स्थलमैं तौ प्रसंगवशात् न्यूनाधिकता करिके वी अर्थकूं विशेष स्पष्ट कियाहै ॥

ब्रह्मनिष्ठपंडित श्रीपीतांबरजी पुरुषोत्तमजीकी यथार्थचित्रितमूर्ति ।

परब्रह्मनिष्ठ औ पूज्यपाद इन महात्माका जन्म संवत् १९०२ मैं कच्छदेशगत श्रीमज्जलग्रामविषै हुवा । परमपूज्यपाद श्रीमद्रामगुरुके प्रशिष्य औ श्रीमद्बापूमहाराजके वे शिष्य होवैंहैं । इनोंका स्वभाव अत्यंतशांत दयालु औ परमोपकारी था । इनोंका जीवनचरित्र ४६ पृष्ठके विस्तारसैं श्रीविचारचंद्रोदयकी पंचमावृत्तिके आरंभविषै हमनै छाप्याहै । इन महात्मानै जे ग्रंथ स्वतंत्र रचेहैं तथा जिन ग्रंथकूं टिप्पण कियेहैं औ संस्कृतभाषाविषै अज्ञजनोंके लिये जिन ग्रंथनकी भाषा करीहै, वे नीचे दिखावैंहैं:—

१ जे स्वतंत्रग्रंथादिक रचेहैं औ जे छापेगयेहैं, वे ये हैं:—

(१) श्रीविचारचन्द्रोदय। इसकी पंचमआवृत्ति अंकयुक्त पेरेग्राफनकी रूढिसहित है॥

(२) श्रीबालबोधसटीक सटिप्पण द्वितीयावृत्ति ॥

(३) श्रीसुंदरविलासके विपर्ययनामक २० वें अंगकी रहस्यार्थदीपिका नामक टीका ॥

(४) श्रीवृत्तिप्रभाकरका सारभूत वृत्तिरत्नावलिग्रंथ। सो इस ग्रंथके साथिही छाप्याहै॥

(५) श्रुतिषड्लिंगसंग्रह संस्कृत तथा भाषायुक्त । श्रीईशाद्यष्टोपनिषत् औ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्के आरंभमें छाप्याहै ॥

(६) श्रीसर्वात्मभावप्रदीप । स्वामी श्रीत्रिलोकरामजीकृत श्रीमनोहरमालाके साथि छाप्याहै ॥

(७) श्रीवेदस्तुतिकी टीका ॥

(८) श्रीविचारसागरके मंगलाचरणके पंचदोहाकी टीका ॥ [यह इसी ग्रंथमैं छाप्या है.]

(९) श्रीषड्दर्शनसारदर्शकपत्रकम् ॥ [यहवी इस ग्रंथके अन्तमैं छाप्या है.]

२ जिन ग्रंथनके उपरि स्वतंत्र टिप्पण रचेहैं, वे ये हैं:—

(१) श्रीविचारसागरपर टिप्पण ५५३×४५ ॥

(२) श्रीपंचदशीसटीकासभाषापर टिप्पण ८३५×१५ ॥

(३) श्रीसुंदरविलासपर टिप्पण १०५ ॥

(४) श्रीविचारचंद्रोदयपर टिप्पण १८१ ॥

(५) श्रीबालबोधसटीकपर टिप्पण २१० ॥

(६) श्रीमनोहर मालापर टिप्पण ४५२ ॥

(७) श्रीसर्वात्मभावप्रदीपपर टिप्पण १०५ ॥

३ जिन ग्रंथनके भाषांतरआदिक कियेहैं औ जे छापेगयेहैं । वे ये हैं:—

(१) श्रीपंचदशी मूल औ टीकाकी भाषा ॥

(२) श्रीअष्टावक्रगीताके मूलकी भाषा ॥

(३) श्री ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंड, मांडूक्य, तैत्तिरीय औ ऐतरेय । ये ८ उपनिषद् औ तत्संबंधी श्रीशंकरभाष्य तथा आनंदगिरिकृत टीकाका भाषांतर "ईशाद्यष्टोपनिषद्" नामसैं प्रसिद्ध है । याकी द्वितीयआवृत्ति भईहै॥

(४) श्रीछांदोग्यउपनिषद् औ तत्संबंधी श्रीशंकरभाष्य तथा आनंदगिरिकृत टीकाका भाषांतररूप टिप्पण ।

(५) श्रीबृहदारण्यकउपनिषद् औ तत्संबंधी श्रीशंकरभाष्य तथा आनंदगिरिकृत टीकाका भाषांतररूप टिप्पण ॥

(६) श्रीवेदस्तुतिका भाषांतर ।

(७) श्रीपदार्थमंजूषा श्रीमूलचंद्रज्ञानीकृत शोधन करीके छपवायाहै ॥

३ और भी इन्होंने श्रीवेदान्तकोशादि तेरह ग्रंथ रचे हैं ।

इसरीतिसैं इस महात्मानै अनेकग्रंथकी रचना करिके सकल मुमुक्षुजनोंके उपरि महान्-अनुग्रह औ दया करीहै। तिनोंकी दर्शनमात्रसैं कृतार्थ करनेहारी यथास्थितचित्रितमूर्ति बहुत द्रव्यव्ययसैं विलायतसैं मंगवाई हुई चतुर्थावृत्तिके ग्रंथारंभमैं स्थापित करी थी। अभी पंचमावृत्तिमैं भी वैसीकी वैसीही ग्रंथारंभमैं रखी है।

इस चित्रितमूर्तिके नीचे जे अक्षर हैं, वे पूज्यपादमहाराजश्रीके हस्ताक्षर हैं ॥

॥ निर्गुणउपासनाचक्र ॥

॥ ११११३ ॥

*अनुभूतेरभावेऽपि ब्रह्मास्मीत्येव चिंत्यताम्।
अप्यसत्प्राप्यते ध्यानान्नित्याप्तं ब्रह्म किं पुनः१५५

जैसैं उक्त महाराजश्रीकी मूर्ति दर्शनद्वारा हितकारी है, तैसैं इस निर्गुणउपासनाचक्रका दर्शनमात्र स्मृतिद्वारा स्वरूपस्थितिके हेतु अभ्यासमैं हितकारी है॥ यह निर्गुणउपासनाचक्र वस्तुनिर्देशरूप मंगलकी टीकाके अन्तमें उपरोक्त श्लोकसहित लिखदिया है। "प्रधानरूपशक्ति ब्रह्मचेतनसैं भिन्न नहीं" ऐसैं श्रीविचारसागरके २७९ के अंकमें लयचिंतनप्रसंगमैं कह्याहै। तैसैं अज्ञानादिक उपाधि औ अन्य जितने नाम उपासनाचक्रविषै देखियेहैं, तिनोंका अभेदचिंतनरूप लयचिंतन बी इस चक्रकरिके होइ सकेहै। लयचिंतनका विस्तृतवर्णन श्रीविचारसागरके २७७–२८० अंकनविषै है।

निर्गुणउपासनाकी रीति जैसैं उपनिषदादिकविषै है, तैसैं विस्तारसैं श्रीविचारसागरके अंक २८१–३०२ पर्यंत देखनैमैं आवेगी औ उपासनाचक्रविषै ईश्वरादिकका प्राज्ञादिक तथा मकारादिकके साथि अभेद, आकृतिनकी समीपताकरि दिखायाहै। सो श्रीविचारसागरमैं उक्तअंकनविषै अतिस्पष्टही है॥ यद्यपि उक्तचक्रविषै ॐआदि अक्षर हैं तिनका कोरेकागजसैं भेद नहीं। तथापि स्याहीरूप उपाधिसैंही भेद भासता है। यह वार्ता टिप्पणकारनै श्रीविचारसागरके द्वितीयतरंगके ४८ वें टिप्पणविषै जनाईहै। तिस दृष्टांतकी बी इस चक्रके दर्शनतैं स्मृति होवैहै। यातैं मुमुक्षुजनोंकूं यह चक्र बी कल्याणकारीही होवैगा॥

* उक्तश्लोककी संस्कृत तथा भाषाटीका श्रीपंचदशीसटीकासभाषामैंसैं नीचे रखीहै ॥

३९३३ ज्ञानेऽसमर्थस्य ध्यानेऽधिकार इत्यत्र वाक्यांतरं पठति—

३४] अनुभूतेः अभावे अपि "ब्रह्म आस्मि" इति एव चिंत्यताम्।

३५ ध्यानाद्धि ब्रह्मप्राप्तौ कैमुतिकन्यायमाह (अपीति)—

३६] असत् अपि ध्यानात् प्राप्यते। पुनः नित्याप्तं ब्रह्म किम्॥

३७) उपासकस्य पूर्वमविद्यमानमपि देवत्वादिकं ध्यानात् प्राप्यते किल। स्वरूपत्वेन नित्यप्राप्तं सर्वात्मकं ब्रह्म ध्यानात् प्राप्यते इति किमु वक्तव्यमित्यर्थः॥ १५५॥

३९३३ ज्ञानविषै असमर्थपुरुषकूं ध्यानविषै अधिकार है। इस अन्यवाक्यकूं पठन करैहैं:—

३४] अनुभूतिके अभाव हुये बी "मैं ब्रह्म हूं" ऐसैंही चिंतन करना॥

३५ ध्यानतैंही ब्रह्मकी प्राप्तिविषै कैमुतिकन्याय कहैहैं:—

३६) असत् कहिये अविद्यमानवस्तु बी ध्यानतैं प्राप्त होवैहै। तब फेर नित्यप्राप्त जो ब्रह्म सो ध्यानतैं प्राप्त होवै यामैं क्या कहना है?

३७) कीटकूं भ्रमरभावकी न्यांई उपासककूं पूर्व अविद्यमान बी देवभावआदिक ध्यानतैं प्राप्त होवैहै। तब स्वरूप होनैकरि नित्यप्राप्त जो सर्वात्मकब्रह्म है, सो ध्यानतैं प्राप्त होवैहै यामैं क्या कहना है? यह अर्थ है॥ १५५॥

॥ ग्रंथकी जिल्द ॥

इस ग्रंथकी चतुर्थावृत्तिकी जिल्द देखनेतैंही निश्चय होताथा कि श्रीपंचदशीसटीकासभाषा द्वितीयावृत्तिकी जिल्दकी न्यांई यह जिल्द बी महासुंदर चित्ताकर्षक औ उत्तमअर्थवान् करनैमैं अत्यंतद्रव्यखर्च औ परिश्रम कियाथा ॥

परंतु खेद है कि अबकी बार हम इस ग्रन्थकी पञ्चमावृत्तिकी जिल्द बहुतही परिश्रम और बड़ा भारी द्रव्य खर्च करनेपर भी वैसी न बना सके, जैसी कि चतुर्थावृत्तिमें बनाई थी; क्योंकि कागज, स्याही, रंग, कपडा, कारीगर आदि जिल्दको महासुंदर और नयनमनोहर बनानेके साधन जैसे चाहिये वैसे इसवक्त नहीं मिलसके. इसलिये हम आशा करेते हैं कि पाठकगण सिर्फ जिल्दकी थोडीसी त्रुटिको देखकर नाराज न होंगे किन्तु क्षमाही करके पहिले जैसाही उदार मनसे आश्रय देंगे.

'पदार्थगत सुंदरता तिस पदार्थविषै प्रीतिकूं उत्पन्न करैहै औ जहां प्रीति होवै तहां प्रवृत्ति बी अवश्य होवैहै' यह सामान्य नियम है। सुंदरता चित्ताकर्षणकी हेतु है औ 'जहां प्रीतिसहित चित्ताकर्षण होवैहै तहां प्रवृत्तिकी पुनरावृत्ति होवैहै' यह बी नियम है। जहां वारंवार प्रवृत्ति होवै तहां अधिकदृढता बी होवैहै। इसरीतिसैं सुंदरताका उपयोग है। रूपकी सुंदरताके साथि कोई उत्तमअर्थकूं जोडनैमैं आवै तौ सुंदरतानिमित्त चित्तकी प्रवृत्ति होतेही तिसके साथि अनुस्यूत कियेहुवे उत्तमअर्थकूं मनुष्यकी बुद्धि अनायाससैं ग्रहण करिलेवै यह स्वाभाविक है। इस हेतुकूं लक्ष्यमैं राखिके हमारे ग्रंथोंकी जिल्द ऊपर छापेहुवे चित्र मात्रसुंदरतासंपादनार्थ नहीं। परंतु सुंदरताके साथि अतिगंभीर औ उत्तमअर्थके स्मारक होवैं इस हेतुसै दियेजातेहैं ॥

इस ग्रंथकी जिल्द ऊपर जे चित्र हैं तिनविषै जो अर्थकी कल्पना करीहै, सो नीचे दर्शावतेहैं:—

॥ गजेन्द्रमोक्षका चित्र ॥

यह चित्र देखनैसैं जान्याजावैगा कि सरोवरविषै गजराजकूं एक ग्राहनै बहुतबलपूर्वक ग्रहण कियाहै औ सो गजराज ग्रसनसैं मुक्त होनैअर्थ अत्यंतबल करताहै, इतनाही नहीं। परंतु गजराजका कुटुंबपरिवार आपआपकी शुंडादंडसैं तिस गजराजकूं बाहिर खींच लेनैमैं अत्यंतपरिश्रम करताभया ॥ ऐसैं दीर्घप्रयत्नसैं बी अपना मुक्त होना अशक्य देखिके सो गजराज सरोवरविषै उत्पन्न हुये अंबुजोंमैंसैं एककूं तोडिके शुंडसैं मस्तकउपरि धरिके, जब भक्तिभावपूर्वक श्रीविष्णुकी प्रार्थना करताभया, तब स्तुतिसैं प्रसन्न हुवाहै अंतःकरण जिसका औ परमदयालु है स्वभाव जिसका, ऐसै श्रीविष्णुभगवान् आपके चक्रसैं तत्काल गजेंद्रका ग्राहतैं उद्धार करतेभये ॥

इस कथाभूतरूपकविषै जो उत्तमसारार्थ गूढ रह्याहै। सो यह है:—

गजराजकूं तौ अज्ञानी जीव, ग्राहकूं तौ महामोहरूप माया औ सरोवरकूं तौ अपार दुस्तर संसार समजना ॥ जैसैं सरोवरविषै रमण करताहुया गजेंद्र ग्राहसैं ग्रस्त भयाहै, तैसैं संसारविषै रमण करताहुया यह अज्ञानीजीव प्रबलप्रधानमहामोहरूप मायासैं ग्रस्त होवैहै ॥ जैसैं गजराज आपके औ अन्यहस्तिनके बलसैं बी छूटनैकूं असमर्थ भयाहै। तैसैं यह अज्ञानी जीव बी केवल अपनी बुद्धिके बलसैं वा मंत्रकर्महठयोगादिक बाह्योपचारसैं मुक्त होनैकूं असमर्थ होवैहै। परंतु जैसैं गजराज हरिस्तुतिसैं श्रीहरिकूं प्रसन्न करिके तिनोंके फेंकेहुये चक्रकी सहायतासैं मुक्त हुवा। तैसैं यह अज्ञानीजीव

वी परब्रह्मनिष्ठगुरु जो गोविंद (हरि) सैं अभिन्न है, तिसकूं श्रद्धापूर्वक तनमनधन अर्पणरूप सेवापूर्वक स्तुतिसैं प्रसन्न करै तौ तिसके दियेहुये ज्ञानोपदेशरूप चक्रकी सहायतासैं तत्काल मुक्त होवै । यह निःसंशय है ॥

इसरीतिसैं यह उत्तमचित्र दर्शनमात्रसैंही उक्तश्रेष्ठसिद्धांतकूं स्मरण करावनैद्वारा मुमुक्षुनकूं महाकल्याणका साधन होवैगा।

सागरका चित्र।

[चतुर्थावृत्तिमें इस ग्रंथकी जिल्द पर गजेंद्रमोक्षके ऊपर सागरका चित्र दिया था जिसका तात्पर्यअर्थ भवसागरके रूपकसे नीचे दर्शाया है वह इस वक्त इस ग्रंथकी पञ्चमावृत्तिमें उसकी बनावटकी सामग्रीके न होनेसे न देसके इस लिये भी पाठकोंको क्षमाही करनी चाहिये]

न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया।
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिध्यति नान्यथा॥

यह मोक्षप्राप्तिका उपायदर्शक श्रीमच्छंकराचार्यकृत विवेकचूडामणिका ५८ वां श्लोक चतुष्कोण आकृतिविषैं दियाहै ॥ अब भवसागरके सिद्धांतरूप सारार्थकूं प्रकट करैहैं:—

यह संसार एक विकट औ दुस्तरसागरकी उपमाकूं सर्वप्रकारसैं योग्य है ॥ तिसविषै डूबावनैमैं अत्यंतशक्तिमान् ऐसैं रागद्वेष सुखदुःख आदिक द्वंद्वनके अनेक महान्तरंग उछल रहैहैं ॥ जे जन गुरुकृपासैं उक्ततरंगनका उल्लंघन करिके समुद्रके पारकूं पावैहैं । केवल वेइही मात्र मुक्त होवैहैं । अन्य सर्व तिन तरंगनविषय होइके "पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्"रूप महादुःखकरघटमालमैं चक्रकी न्यांई भ्रमण करैहैं ॥ सागरकूं तरनैवास्ते सर्वथा नौकाकी आवश्यकता है ॥ अब इस दुस्तरभवसागरके उल्लघनअर्थ भिन्नभिन्नमतवालोंनै भिन्नभिन्न नौकाकी कल्पना करीहै । तिसमैं "कर्म" "उपासना" औ "ज्ञान" रूप तीन नौका प्रधान हैं ॥

इस जगत्विषै कर्म, उपासना औ ज्ञान इन तीनोंमैं ज्ञानके अधिकारिनकी संख्या अतिअल्प देखियेहै । काहेतैं ? ज्ञानमार्गमैं प्रवेशकरनैअर्थ अनेकसद्गुण औ विचक्षण तथा निर्मल बुद्धिकी आवश्यकता है औ तैसी बुद्धि सर्वदा सर्वथा सर्वकूं प्राप्त नहीं होती, किंतु अल्पजनोंकूंही प्राप्त होवैहै । यह अर्थ विवादरहित है ॥ उक्तचित्रकूं देखनैसैं वी ज्ञात होवैगा कि कर्म औ उपासनारूप नौका मनुष्यजनोंसैं भरपूर भरीहै । तब ज्ञानरूप अग्निनौकाके प्रति जानैका प्रयास मात्र थोडेजन करतेहुवै तिनमैंसैं कोई वीरपुरुष अग्निनौकामैं स्थिति करैहै ॥

१ मनुष्यसमुदायमैं अधिकसंख्यायुक्त वर्ग तौ ऐसा है कि जो इस असार मिथ्या औ अनित्य भवसागरकूं नित्य मानिके भ्रांतिग्रस्त होयके तिसविषै प्राप्त होते सुखदुःखनमैंही कृतार्थता जानताहै औ उत्तमपुरुषार्थका परित्याग करिके केवलविषयप्राप्तिका प्रयत्न करैहै ॥ ऐसैं पुरुषनकूं इस ग्रंथविषै पामर कहैहैं ॥

२ उक्तपामरजनोंसैं न्यूनसंख्या ऐसैं मनुष्योंकी है कि जो यद्यपि स्वर्गादिक उत्तमलोकके भोग इस संसारके भोगनके तुल्यही हैं तदपि अधिक होनैतैं तिनकी प्राप्तिकूंही मोक्ष मानैहैं ॥ ऐसैं पुरुष कर्म औ उपासनामैं प्रवृत्त हुये "कर्मसैं उत्पादित हुया फल क्वचित् वी नित्य बनै नहीं" ऐसैं सामान्यन्यायकूं विचारनैमैं वी असमर्थ हैं ॥ इनकूं शास्त्रनविषै विषयी कहैहैं ॥

३ इनतैं न्यूनसंख्यावाले जन ऐसैं हैं कि जो कर्म औ उपासनासैं प्राप्त होनैहारे इसलोक औ परलोकके सर्वभोगनकूं अनित्य मानिके

नित्यनिरतिशय जो मोक्षसुख तिसकी प्राप्तिकाही सर्वदा विचार करैहैं । औ गुरुकूं गोविन्दरूप जानिके तिसके उपदेशरूप मार्गद्वारा नित्यनिरतिशयसुखरूप पारकूं पहुंचावनैहारी ज्ञानरूप अग्निबोटमैं स्थिति करैहैं । ऐसैं मनुष्यनकूं इस ग्रंथविषै मुमुक्षु कहेहैं ॥

४ मुमुक्षुनतैं न्यूनसंख्या । गुरुआदिककी कृपातैं "तत्त्वमसि" आदिक जीवब्रह्मकी एकताके प्रतिपादक महावाक्यनके अर्थमैं परम आस्तिक हुये ज्ञानरूप "अग्निबोट"मैं स्थिति करिके ॐरूप (मोक्षरूप) पारकूं प्राप्त भये ज्ञानिनकी है ॥ तिनोंकूं इसलोक वा परलोक वा मोक्षसंपादनार्थ कुछ बी कर्त्तव्य अवशेष रहा नहीं, यातैं वे कृतकृत्य औ प्राप्तप्राप्य हैं ॥ ऐसैं ज्ञानी पुरुष अज्ञानिनकी दृष्टिमैं भवसागर औ विचारसागर इन उभयविषै यथेच्छ वर्त्ततेहुवे दृश्यमान होवैहैं । परंतु जैसैं घूकपक्षी प्रकाशकूं नहीं जानेहैं तैसैं अज्ञानी पुरुष ज्ञानिनकी अंबुजवत् निर्लेपस्थितिकूं नहीं जानैहैं ॥

इसजगत्विषै पामरनतैं विषयिनकी विषयिनतैं मुमुक्षुनकी औ मुमुक्षुनतैं मुक्तनकी संख्या उत्तरोत्तर न्यून होवैहै ऐसैं ऊपर कहा सो श्रीमद्भगवद्गीतागत भगवान् श्रीकृष्णके नीचे लिखेहुये वचनसैं स्पष्ट होवैहै ॥

॥ श्लोक ॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ७३

अर्थः—अनेकसहस्र मनुष्यनविषै कोईएकही मुमुक्षु ज्ञानकी उत्पत्तिअर्थ प्रयत्न करैहै । औ तिन प्रयत्नकरनैहारे अनेक सहस्र मुमुक्षुनविषै बी कोईएकही मुज परमात्माकूं तत्त्वतैं कहिये वास्तवरूपसैं जानैहै ॥ ७३ ॥

जे पुरुष कर्म वा उपासनारूप नौकाका आश्रय लेवैहैं वे मोक्षरूप पारकूं नहीं पावैहैं किंतु स्वर्गादिलोककूं पावैहैं, कर्म औ उपासनाके मतानुयायी केवलकर्म औ केवलउपासनाद्वाराही मोक्षकी सिद्धिका वाद करैहैं । परंतु वेदांतशास्त्रके महान्सिद्धांतसैं वे वाद केवलविपरीत हैं ॥ वेदांतमतमैं कर्म औ उपासनाकूं मलविक्षेपवान् चित्तोंकी शुद्धि औ स्वस्थता करनैहारे गिनिके मात्र तितनै अंशमैं ज्ञानप्राप्तिविषै सहायकारी मानैहैं । परंतु तिनसैंविना मोक्ष न होवै अथवा वे मोक्षके साक्षात् साधन हैं ऐसैं मान्या नहीं है ॥ मोक्षका साक्षात्साधन तौ मात्र एकही संभवैहै औ सो ब्रह्मज्ञान है ॥ सर्वत्र ऐसा नियम है कि विरोधीपदार्थके नाश करनैकूं तिसका साक्षात्विरोधी पदार्थही समर्थ होवैहै । जैसैं शीतलता केवल उष्णतासैं दूरी होवैहै । अन्यथा होवै नहीं । तैसैं अंधकार केवल प्रकाशके सद्भावसैं दूरि होवैहै । परंतु यज्ञ तप बलिदान किंवा अस्त्रशस्त्रके प्रहार तिसकूं दूरि करनैमैं समर्थ होवैं नहीं । काहेतैं ? अंधकारका साक्षात्विरोधी मात्र एक प्रकाश है ॥ बंधकी प्राप्ति अज्ञानसैं है । यातैं तिस अज्ञानका विरोधी जो ज्ञान है । केवल तिसतैंही बंध नष्ट होनैकूं योग्य है, परंतु कर्म वा उपासनासैं बंधनिवृत्ति कदाचित् बी होवै नहीं औ संभवै नहीं ॥ श्रुतिमैं बी कह्या है:—

"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति
नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय" ॥

अर्थः—तिस प्रत्यक् अभिन्नपरमात्माकूं जानिके संसाररूप मृत्युकूं उल्लंघन करिके जाताहै, मोक्षके प्रति गमन अर्थ अन्यमार्ग नहीं है ॥

इसी अर्थकूं वेदांतशास्त्रोंविषै अनेकस्थलोंमैं विस्तारसैं कथन कियाहै यातैं इस अर्थकी अत्र समाप्तिअर्थ जगद्गुरु श्रीमच्छंकराचार्यकृत श्रीविवेकचूडामणिगत ५८ वां श्लोक अर्थसहित नीचे देतेहैं ॥

॥ श्लोकः ॥

न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया ।
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिद्ध्यति नान्यथा ५८

अर्थः—योग, सांख्य, कर्म, औ विद्याकरि मोक्ष नहीं होवैहै । किंतु मोक्ष तौ केवल ब्रह्मात्माकी एकताके ज्ञानकरिही सिद्ध होवैहै ॥ ५८ ॥

इस प्रमाणरूप श्लोकसैं बी उक्तसिद्धांत स्थापित है ॥

इसरीतिसैं मुमुक्षुजनोंकूं यह चित्र दर्शनमात्रसैं वेदांतके महान्‌सिद्धांतकूं सदा स्मरण करावैगा ॥

॥ भ्रांतिचित्र ॥

ग्रंथकी पींठगत एक चित्र औ जिल्दके पृष्ठभागगत सात चित्र, ऐसैं सर्वमिलिके आठचित्र हैं ये साररूप भासनैहारे जगत्‌की असार रूपताके दृष्टांतनिमित्त धरेहैं । तिनका विस्तृतविवेचन अब करैहैं:—

१ प्रथम चित्रः—ग्रंथकी पींठऊपरि द्वित्रिकोणाकारके नीचे प्रथम औ द्वितीयआकृतिके समान दोचित्र रखेहैं ॥

प्रथम आकृति. द्वितीय आकृति.

उभयचित्रोंकी दोनूं सीधी मध्यरेषा यद्यपि समानपरिमाणकी हैं, तथापि तिनके अग्र भागविषै धरीहुई तिर्यक्‌रेषारूप उपाधिके बलसैं भ्रांतिद्वारा वामचित्रकी मध्यरेषा दक्षिणचित्र मध्यरेषासैं बडी प्रतीत होवैहै ॥

(जिल्दके पृष्ठभागगत सातचित्रः—)

२ द्वितीय चित्रः—ऊपरके भागमैं दो स्थूल हरितवर्णरेषाओंके मध्यमैं जो चित्र है, तिसकी दो दीर्घरेषा नीचेकी तृतीयआकृतिसदृश

क ख क

तृतीय आकृति.

प्रतीयमान होवैहै । कहिये आदि अंतमैं दोनूं दीर्घ रेपाका 'क' 'क' भाग संकोचित तथा मध्यका 'ख' भाग विकासित दृष्ट आवताहै । यातैं वे रेपा बाह्यवक्राकार प्रतीत होवैहैं । परंतु तैसी हैं नहीं । किंतु सीधीही हैं । इस वार्त्ताकी चक्षुरूप प्रत्यक्षप्रमाणसैं सिद्धि करैहैं:—

जैसैं कोई बाणकूं छोडनैके समयपर बाणकूं लक्ष्यके साथि सांधताहै । तैसैं उक्त ऊपरनीचेकी दो रेषाओंके आदिके साथि अंतकूं लक्ष्यकरिके देखनैसैं वे दोनूं रेपा नीचेकी चतुर्थआकृतिसमान सीधीही दृष्ट आवैंगी ॥

चतुर्थ आकृति

यातैं 'क' 'क' भाग संकोचित औ 'ख' भाग विकासित दृष्ट आवताहै । सो मात्रभ्रांतिकरिकेही दृष्ट आवताहै । प्रत्येक दीर्घरेषाके उपरि तथा नीचे जे अनुमानसैं २८ छोटी टेढी-रेपा हैं वे उपाधिही इस भ्रांतिका कारण है ॥

३ तृतीय चित्रः—'क' औ 'ख' अक्षरयुक्त नीचेकी पंचमआकृतिसमान दो चित्र एक दूसरेके

पंचम आकृति

ऊपरि धरेहैं । ये उभयचित्र यद्यपि सर्वप्रकारसैं परिमाणमैं समान हैं । तथापि 'ख' चित्र 'क' चित्रसैं बडा भासताहै ॥

इस असत्यप्रतीतिका इतनाही कारण है कि 'ख' चित्रकूं यत्किंचित् बहिर निकसता दिखायाहै ॥

४ चतुर्थ चित्रः–उक्तचित्रकी दक्षिणदिशाविषै 'ख' अक्षरयुक्त स्थूलरेपाके उपरि 'क' अक्षरयुक्त सूक्ष्मरेपा खडी करीहै । तिसमैं सूक्ष्मरेपा 'क', स्थूलरेपा 'ख' सैं किंचित्लघु है तौ बी दीर्घ भासतीहै ॥

यह भ्रांति स्थूलसूक्ष्मताके संयोगसैं औ सूक्ष्मरेपाकूं खडी करी होनैतैं उत्पन्न होवैहै ॥

५ पंचम चित्रः–बराबर मध्यमैं पद्चक्रयुक्त एकआकृति है तिसका उपयोग ऐसा है किः– ग्रंथकूं सन्मुख दक्षिणहस्तविषै धरिके वामसैं दक्षिणकी तरफ त्वरासैं लघुचक्राकार फेरनैकरि वे पद्चक्र दक्षिणकी तरफ फिरते दृष्ट पडैंगे औ तिसी आकृतिके मध्यमैं १२ दंतयुक्त जो रक्तचक्र है, सो पद्चक्रनसैं विपरीत कहिये वामकी तरफ फिरता देखनैमैं आवैगा ॥

प्रज्वलितअग्निवाले काष्ठकूं भ्रमण करनैतैं अलातका चक्र प्रतीत होवैहै । तिसमैं तीव्रवेग कारणभूत है । तैसें यामैं बी वेगही प्रधानकारण है ॥

६ षष्ठ चित्रः–'क' 'ख' औ 'ग' रेपावाली नीचेकी षष्ठआकृतिसमान चित्रमैं प्रथमदृष्टिसैं
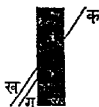
षष्ठ आकृति.

'क' रेपा 'ख' रेपाके साथि नीचेकी सप्तमआकृतिकी न्यांई संधिके योग्य दिखतीहै ।
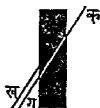
सप्तम आकृति.

परंतु वास्तविक तौ नीचेकी अष्टमआकृतिकी

अष्टम आकृति.

न्यांई 'ग' रेपाके साथिही संधिकूं प्राप्त है ॥

इस भ्रांतिके उत्पन्न होनैमैं मध्यका श्यामविभाग दृष्टिकूं रोकनैद्वारा कारणभूत है ॥

७ सप्तम चित्रः–उक्तचित्रके दक्षिणविषै नीचेकी नवमआकृतिसदृश सप्तरेपावाला एक

नवम आकृति.

चतुष्कोणचित्र है । ये सातही रेपा औ तिनोंके अंतरालमैं प्रतीत रक्तवस्त्ररूप सर्वरक्तरेपा यद्यपि नीचेकी दशमआकृतिसमान सीधीही हैं ।

दशम आकृति.

तथापि वे सर्वरेपा नीचेकी एकादशमआकृतिकी न्यांई क्रमानुसार ऊपर नीचे संकोचित-

एकादशम आकृति.

विकासित हुई भासतीहै ॥

यह विपरीतदर्शन छोटी टेढीरेपारूप उपाधिके अनुसंधानसैं होवैहै ॥

८ अष्टमचित्रः—सर्वसैं नीचे दो स्थूल हरितवर्णरेषाके मध्यमैं द्वितीयचित्रके सदृश आकृति रखीहै । तिसकी दोनूं दीर्घरेषा यद्यपि सीधीही हैं, तथापि नीचेकी द्वादशमआकृति-

क ख क

द्वादशम आकृति.

सदृश द्वितीयचित्रसैं विपरीतवक्राकार कहिये आंतरवक्राकार प्रतीत होवैहैं ॥

या भ्रांतिका कारण द्वितीयचित्रकी भ्रांतिके कारण समानही होनैतैं इहां लिख्या नहीं ॥

उक्तसर्वभ्रांतिनविषै मुख्यकारण तौ यह है कि उपाधिके प्रतापसैं प्रकाशके किरणोंका चक्षुकरि यथास्थित ग्रहण नहीं होवैहै ॥ प्रकाश औ दृष्टिकी आधुनिकविद्या (Optics) के अनेकग्रंथ इंग्रेजीभाषामैं हैं । तिसतैं तौ ऐसा सिद्ध होवैहै कि चक्षु बाह्यपदार्थोंकूं बाह्यस्थित देखती नहीं है, परंतु पदार्थके मात्र प्रतिबिंबकूं ग्रहण करतीहै । अर्थात् पदार्थोंका बहिरस्थितपना मात्र भ्रांतिकरिही भासताहै ॥ इसवार्त्ताकूं स्पष्ट करनैनिमित्त एक पाश्चात्यविद्वान्की उक्तिमैंसैं कछुक नीचे धरैहैं:—

"पुष्पका रंग, पक्षीका शब्द औ अन्नका स्वाद, ऐसे जे गुण पदार्थमैं नहीं हैं वे गुण पदार्थमैं मानिके जनसमूह कथन करैहै । परंतु वे गुण मनोमात्र हैं ॥ * * * * अवकाशविषै पदार्थोंकी स्थिति जैसैं प्रतीत होतीहै, तैसैं अपनै देखतैं नहीं हैं । इस वार्त्ताकूं मानना यद्यपि दुष्कर है तथापि इतना तौ निर्विवाद सिद्ध हुवाहै, कि परिमाण अवकाश औ अंतर (दूरपना) इन तीनोंकी कल्पना बाल्यावस्थामैं कियेहुवे मानसिकप्रयत्न औ शारीरक प्रयोगका परिणाम है ॥ जब किसी जन्मांधपुरुषकूं शस्त्रक्रियासैं दृष्टि प्राप्त होतीहै, तब तिसकूं सो दृष्टिमात्रसैं पदार्थोंका परस्परअंतर ज्ञात होता नहीं । किंतु समीप औ दूर स्थिरसर्वपदार्थ तिसकी चक्षुकूं समानसमीपतावाले भासतैहैं ॥"

(लेनसेट ता० २१ डिसेम्बर १८९९ पृष्ठ १५५८)

इन सर्वभ्रांतिचित्रोंका सारार्थः—

सर्वमतशिरोमणि वेदांतसिद्धांतमैं सत्यकी न्यांई भासनैवाले इस जगत्कूं स्वप्नके नगरकी, रज्जुके सर्पकी औ ऊपरभूमिविषै दृश्यमान मिथ्याजलकी उपमा देवैहैं ॥

स्वप्नविषै देखे नगरका औ रज्जुविषै माने सर्पका तौ अनेक मुमुक्षुनकूं अनुभव होवैहै; परंतु मिथ्याजलका अनुभव बहुतजनोंकूं नहीं है । काहेतैं? तिस भ्रांतिके कारणरूप ऊपरभूमिआदिक सर्वदेशविषै प्राप्त नहीं हैं ॥

वेदांतशास्त्रविषै यह मिथ्याजलका दृष्टांत अत्यंतप्रबल असरकारक औ समानअंशवाला है । कारण कि जैसैं ऊपरभूमिविषै वास्तविक जलका लेश नहीं है तौ बी जल प्रतीत होवैहै । औ "सो मिथ्याजल है" ऐसा निश्चयज्ञान हुवे पीछे बी सो जलकी प्रतीति दूर होती नहीं । तैसैं ब्रह्मरूप अधिष्ठानविषै वास्तविक जगत्का लेश नहीं है तौ बी जगत् प्रतीत होवै है । औ "यह मिथ्याजगत् है" ऐसा दृढनिश्चय हुवे पीछे बी सो जगत्प्रतीति दूर होती नहीं; परंतु जैसैं ऊपरभूमिके जलका मिथ्यात्वनिश्चय हुवे पीछे सो जल पान करनैकी इच्छा उत्पन्न होती नहीं, तैसैं यह ब्रह्मरूप अधिष्ठानमैं जो जगत् प्रतीत होताहै, सो "मिथ्या है" ऐसा शास्त्र औ गुरुकृपासैं दृढनिश्चयरूप बाध होयजावै । तौ इस मिथ्याजगत्विषै अहंताममतादिक दुःखकी कारणभूत दृढआसक्तियां क्वचित् बी उत्पन्न होवैं नहीं ॥

ये भ्रांतिचित्र बी लघुरेषाकूं दीर्घ, सीधीरेषाकूं वक्र औ स्थिरतावाले चक्रोंकूं गतिमान्, ऐसैं विपरीत दिखावैहैं । इतनाही नहीं, परंतु यथार्थवार्त्ताके ज्ञान हुवे पीछे बी सो पूर्वकी न्यांईही विपरीतदर्शन देवैहैं । यातैं मरुस्थलके जलके यथोचित चित्रितदृष्टांतमय हैं । औ तिसद्वारा इस जगदाडंबरकी असारताके स्मारक हैं ॥

ऊपरिप्रदर्शित किये वर्णनसैं वाचकवृंदकूं निश्चय होवैगा कि श्रीविचारसागरकी यह पंचमावृत्ति उत्तमोत्तम भईहै औ सो उत्तमता संपादन करनैवास्ते केवळ मुमुक्षुजनोंका हितही लक्ष्यमैं राखिके द्रव्य औ श्रमकी किंचित् बी गणना नहीं करीहै ॥

—प्रकाशक.

॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ पंचमावृत्ति ॥

॥ प्रसंगदर्शकानुक्रमणिका ॥

॥ ९३ ॥ संबंधमंडन ॥

॥ तृतीयस्तरंगः ॥ ३ ॥

श्रीगुरुशिष्यलक्षण गुरुभक्तिफल-प्रकारनिरूपण ।

॥ ९४-९६ ॥ गुरुशिष्यलक्षण ॥
९४ ग्रंथारंभकी प्रतिज्ञा–९५ गुरुलक्षण–९६ शिष्य-लक्षण ॥

॥ ९७-१०८ ॥ गुरुभक्तिफलप्रकार ॥

९७ गुरुभक्तिफल– ९८ ज्ञानीगुरुसैं वेदअर्थपठन-श्रवणकी योग्यता– ९९ भाषाग्रंथसैं बी ज्ञान होवै है– १०० जिज्ञासुकूं सेवाकी कर्त्तव्यता– १०१–१०५ आचार्यसेवाप्रकार (१०२ तनअर्पण– १०३ मन-अर्पण– १०४ धनअर्पण– १०५ वाणीअर्पण)– १०६–१०८ शिष्यका गुरुसंबंधमैं व्यवहार ॥

॥ चतुर्थस्तरंगः ॥ ४ ॥

॥ उत्तमाधिकारीउपदेशनिरूपण ॥

॥ १०९-१११ ॥ शुभसंततिराजा औ ताके तीनि पुत्रोंकी गाथा ॥

॥ ११२ ॥ तीनि पुत्रोंका गृहसैं निकसना औ गुरुसैं भेटना ॥

॥ ११३ ॥ तत्त्वदृष्टिकरि प्रश्न करनेकूं आज्ञाका मांगना औ गुरुकरि आज्ञाका देना ॥

॥ ११४ ॥ तत्त्वदृष्टिकी मोक्षइच्छासूचक विनति ॥

॥ ११५ गुरुका उत्तरः— (मोक्षइच्छाकी भ्रांतिजन्यतापूर्वक महावाक्यका उपदेश) ॥

॥ ११६ ॥ प्रश्नः– "मेरा आत्मा आनंदरूप होवै तौ विषयसंबंधसैं आनंदका आत्मा-विषै भान नहीं हुवाचाहिये" ॥

॥ ११७ ॥ उत्तरः– आत्मविमुखकूं अंतर्मुख-वृत्तिमैं आनंदका भान । विषयमैं आनंद नहीं ॥

॥ ११८ ॥ प्रश्नः– "ज्ञानीकूं विषयकी इच्छा औ ताके संबंधसैं पूर्वरीतिसैं सुखका भान होवैहै अथवा नहीं ?"

॥ ११९ ॥ उत्तरः– द्विविध आत्मविमुख हैं । विषयानंद स्वरूपानंदसैं न्यारा नहीं ॥

॥ १२० ॥ प्रश्नः– "जन्मादिक दुःख कौनविषै है ?"

॥ १२१ ॥ उत्तरः– जन्मादिक दुःख कहूं नहीं ॥

॥ १२२ ॥ प्रश्नः– "दुःख कहूं नहीं तौ प्रत्यक्ष प्रतीत क्यूं होवैहै ?"

॥ १२३ ॥ उत्तरः– आत्माके अज्ञानसैं प्रतीति ॥ रज्जुसर्पका दृष्टांत ॥

॥ १२४-१३० ॥ प्रश्नः– "रज्जुमैं सर्प कैसैं भासैहै ?"

१२५–१३० प्रश्नअभिप्राय (१२६ असत्ख्याति– १२७ आत्मख्याति– १२८–१२९ अन्यथाख्याति– १३० अख्याति । उक्त तीनि ख्यातिनका खंडन) ॥

॥ १३१-१४६ ॥ उत्तरः– १३१—१३२ अख्यातिखंडन ॥ १३३-१४६ अनिर्वचनीय ख्याति ॥

१३४ भ्रमस्थलमैं सर्पादिक विषय औ तिनका ज्ञान एकही समय उत्पन्नलीन होवैहैं । सो साक्षीभास्य है– १३५ रज्जुमैं सर्प औ ताका ज्ञान अविद्याका परिणाम औ चेतनका विवर्त है– १३६ रज्जु औ अंतःकरणउपहितचेतन अधिष्ठान है । रज्जु नहीं ॥ सर्प औ ताके ज्ञानकी रज्जुज्ञानसैं निवृत्ति– १३७ **शंकाः**– रज्जुज्ञानसैं सर्पनिवृत्ति बनै नहीं– १३८ **समाधानः**– रज्जुज्ञानही सर्पअधिष्ठानका ज्ञान है– १३९ रज्जुज्ञानतैं सर्पज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं– १४०–१४२ **समाधानः**– सर्पअभावतैं सर्पज्ञानकी निवृत्ति होवैहै– १४३ रज्जुज्ञानसमय साक्षीका भान होवैहै– १४४ सर्वत्रिपुटीज्ञानमैं साक्षीका ज्ञान होवैहै– १४५–१४६ सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान साक्षी है ॥

॥ १४७ ॥ प्रश्नः– "अपारमिथ्याजगत्का आधार औ अधिष्ठान कौन है ?"

॥ १४८-१४९ ॥ उत्तरः– १४८ मिथ्याजगत्का आधार औ अधिष्ठान तूं है ॥

१४९ आत्माका सामान्यरूप आधार औ विशेषरूप अधिष्ठान है ॥

॥ २११-२१२ ॥ उत्तरः- (अंक २०६-२१० गतप्रश्नका)- २११ "इंद्रियसंबंधविना प्रत्यक्ष-ज्ञान होवै नहीं" यह नियम नहीं ॥

२११ सुखदुःखकी साक्षीभास्यता- २१२ ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष संभवैहै ॥ तत्त्वदृष्टिकूं भेदभ्रमका अंत ॥

पंचमस्तरंगः ॥ ५ ॥

॥ श्रीगुरुवेदादिव्यावहारिकप्रतिपादन ॥ २१३—२७६ ॥

॥ मध्यमाधिकारी साधननिरूपण ॥ २७७—३०३ ॥

॥ २१३ ॥ अदृष्टिका प्रश्नः- "वेदगुरु सत्य होवैं वा मिथ्या होवैं दोनूं रीतिसैं वेदगुरुतैं अद्वैतज्ञान बनै नहीं" ॥

॥ २१४-२३६ ॥ उत्तरः-

२१४ शंकरमतकी प्रमाणता— २१५ भेदवादकी अप्रमाणता-२१६ भेदवादका-तिरस्कार- २१७— २२८ राजाके मंत्री भर्छुकी कथा (२१७ भर्छुका तपस्वी होना- २१८ नारीनिंदा- २१९ भर्छुके वैराग्यका कथन-२२० राजासैं लेके ब्रह्मापर्यंत सर्वसुख एकांतमैं होवैहै-२२१ युवतिसंगसैं दुःख २२२ युवतिसंगसैं धनविगार-२२३ युवतिसंगसैं धर्मविगार- २२४ युवतिसंगसैं बिंदुनाश-२२५ पुत्रसंगसैं दुःख-२२६ धनसंगसैं दुःख- २२७ राजा-कूं भर्छुमैं प्रेतबुद्धि होनी औ राजाका भागना- २२८ अंक २२७ उक्त दृष्टांतकूं सिद्धांतमैं जोडना ॥ भेदवादकी धिक्कारपूर्वक त्याज्यता)-२२९ मिथ्या-दुःखका मिथ्यासैं नाश। एकभूपकूं स्वप्नकी प्राप्ति। तिसकूं गादरीकरि दुःखका होना औ मिथ्यावैद्यसैं मिटना-२३० अंक २२९ उक्त प्रसंगकी टीका-२३१ मरुस्थलके जल औ प्यासमैं सत्ताका भेद- २३२ समसत्ताकी आपसमैं साधकबाधकता- २३३-२३५ तीनिसत्ता (२३४ व्यावहारिकसत्ता- २३५ पार-मार्थिकसत्ता)-२३६ वेदगुरु औ संसारदुःखकी व्यावहारिकसत्ता है।- यातैं तिनके भवदुःखका नाश बनैहै ॥

॥ २३७ ॥ शंकाः— "शुक्तिरूपाआदिकका ब्रह्म-ज्ञानविनाहि बाध औ संसारदुःखका ब्रह्म-ज्ञानसैं अनंतर बाध। यह भेद कौन हेतुसैं राखौहो ?"

॥ २३८ ॥ समाधानः-जाके ज्ञानसैं जो उपजै तिसका ताके ज्ञानसैं बाध होवैहै।

॥ २३९ ॥ प्रश्नः—ब्रह्मके अज्ञानसैं संसार कौन क्रमतैं उपजैहै ?"

॥ २४०-२७१ ॥ उत्तरः—

२४० स्वप्नसमान विनाक्रमतैं जगत्का भासना- २४१ सूत्रकारभाष्यकारका श्रुतिवचनसैं जगत्-उत्पत्ति कथनका अभिप्राय-२४२ प्रसंगसैं मायास्व-रूपप्रतिपादन- २४३ अज्ञानकी स्वाश्रयता औ स्व-विषयता-२४४ उक्तअर्थमैं वाचस्पतिका मत-२४५ वाचस्पतिके मतकी असमीचीनता औ अज्ञानकी एकता- २४६ स्वाश्रयस्वविषयपक्षका अंगीकार- २४७ एकअज्ञानपक्षमैं बंधमोक्षकी व्यवस्था ॥ सर्वप्रक्रियाकी श्रेष्ठतापूर्वक मायाका नामभेदसैं स्वरूप- २४८ प्रसंगसैं ईश्वरका स्वरूप ॥ द्विविध-कारणका लक्षण- २४९ जगत्का उपादान औ निमित्तकारण ईश्वर है- २५० जीवका स्वरूप- २५१ ईश्वरमैं विषमदृष्टि और क्रूरता नहीं-२५२ जीवनके भोगनिमित्त ईश्वरकूं जगत्के उपजावनैकी इच्छा- २५३-२५७ सूक्ष्मसृष्टिनिरूपण (२५३ पंचभूत औ तिनके गुणनकी उत्पत्ति- २५४ अंतःकरणकी चारिभेदसहित उत्पत्ति- २५५ प्राणकी पंचभेद-सहित उत्पत्ति- २५६ ज्ञानेंद्रिय औ कर्मेंद्रिय-की उत्पत्ति)- २५८-२५९ पंचीकरण (२५८ पंची-करणप्रकार- २५९ स्थूलब्रह्मांडादिककी उत्पत्ति)- २६०-२७१ आत्मविवेक अथवा पंचकोशविवेक (२६० पंचकोश औ तिनकरि आत्माका आच्छादन करना-२६१ विरोचनका सिद्धांत- २६२ इंद्रिय-आत्मवादीका मत [इंद्रियआत्मा]-२६३ हिरण्य-गर्भके उपासकका मत [प्राणआत्मा]- २६४ मन-आत्मवादीका मत [मनआत्मा]- २६५ विज्ञान-वादीबौद्धका मत [बुद्धिआत्मा]- २६६ भट्टका मत [आनंदमयकोशआत्मा]- २६७ माध्यमिक-बौधका मत [आनंदमयकोशआत्मा]- २६८ प्रभाकर औ नैयायिकका मत [आनंदमयकोश-आत्मा]- २६९ जीवका पंचकोशकी न्यांई ईश्वरके पंचकोशनसैं ताके स्वरूपका आच्छादन-२७० पंच-कोशविवेकका प्रकार- २७१ महावाक्यके अर्थका उपदेश) ॥

॥ २७२ ॥ प्रश्नः— आत्मा पुण्यपाप करैहै । सुखदुःख भोगैहै। यातैं ताकी ब्रह्मसैं एकता बनै नहीं ॥

॥ २७३-३०३ ॥ उत्तरः—

२७३ अकर्त्ताअभोक्ता औ नित्यमुक्तआत्माका सदा ब्रह्मसैं अभेद. २७४ जीवन्मुक्तका निश्चय। वेदांतश्रवणका फल. २७५ ज्ञानी औ अज्ञानीका भिन्न (अकर्तव्य औ कर्तव्य.) २७६ गोप्यतत्त्वका उपदेश. २७७-२८० लयचिंतन (२७७ सर्वप्रपंचकी ईश्वररूपता. २७८ सारीसूक्ष्मसृष्टिकी अपंचीकृतभूतरूपता. २७९ सर्वअनात्मपदार्थनका क्रमसैं ब्रह्मविषै लयचिंतन. २८० ध्यान औ ज्ञानका भेद ॥ अहंग्रहध्यान.) २८१-३०३ प्रणवकी उपासना (२८१ प्रणवका अहंग्रहध्यान. २८२ निर्गुण औ सगुणप्रणवकी उपासनाका फलसहित कथन. २८३ निर्गुणरूप प्रणवउपासनाके प्रकारका प्रारंभ. २८४ ओंकार औ ब्रह्मका अभेद. २८५ चारिपादनके कथनपूर्वक आत्माका ब्रह्मसैं औ विश्वका विराट्‌सैं अभेद ॥ विराट्‌विश्वके सप्तअंग औ उनीसमुख. २८६ चतुर्दशत्रिपुटी. २८७ विश्व विराट् औ अकारका अभेदचिंतन. २८८ विश्व औ तैजसकी विलक्षणता. २८९ तैजस हिरण्यगर्भ औ उकारका अभेदचिंतन. २९० प्राज्ञ ईश्वर औ मकारका अभेद ॥ प्राज्ञके विशेषण. २९१ वास्तवविश्वआदिक तीनूंकी एकता ॥ तुरीयका ईश्वरसाक्षीसैं अभेद. २९२ दोसरूपवाले ओंकार औ आत्माका मात्रा औ पादरूपसैं अभेदचिंतन. २९३ लयचिंतनका अनुवाद (एकएकमात्रारूप विश्वआदिककी अन्यमात्रारूपता.) २९४ ओंकारचिंतनमैं परमहंसका अधिकार. २९५-२९६ ओंकारके ध्यानवालेकूं फल. २९७ ब्रह्मलोकके मार्गका क्रम. २९८ सायुज्यमोक्षका वर्णन. २९९ ओंकारके अहंग्रहध्यानतैं ब्रह्मलोककी प्राप्तिका नियम. ३०० उत्तरायणमार्गसैं ब्रह्मलोकसैं गयेकूं फेरी संसारकी अप्राप्ति औ ज्ञानद्वारा मोक्षकी प्राप्ति. ३०१ हिरण्यगर्भवासीकूं असंगनिर्विकारब्रह्मरूप आत्माका भान होवैहै। तामैं कारण. ३०२ ॐ औ महावाक्यके अर्थकी एकता. ३०३ निर्गुणउपासनाके अनधिकारीकूं कर्त्तव्य) ॥

॥ षष्ठस्तरंगः ॥ ६ ॥

॥ श्रीगुरुवेदादिसाधनमिथ्यावर्णनम् ॥

॥ ३०४ ॥ उपोद्घात ॥

॥ ३०५-३०६ ॥ तर्कदृष्टिके प्रश्नः— ३०५ स्वप्नदृष्टांतसैं जाग्रतपदार्थ मिथ्या संभवै नहीं. ३०६ स्वप्न मिथ्या नहीं ॥

॥ ३०७-३२८ ॥ उत्तरः—

३०७ जागृतके पदार्थनकी स्वप्नमैं स्मृति नहीं. ३०८ स्वप्नमैं लिंगशरीर बाहिर जायके जागृतके पदार्थनकूं देखता नहीं. ३०९-३२८ सिद्धांतः— जाग्रतस्वप्नकी तुल्यता ॥ (३०९ सारात्रिपुटी समाज स्वप्नमैं उपजैहै. ३१० शंकाः—जाग्रतकी न्यांई उत्पत्तिवाले होनैतैं स्वप्नके पदार्थ सत्य हुये चाहिये. ३११ समाधानः—स्वप्नपदार्थ सामग्रीविना उपजैहै तातैं मिथ्या हैं. ३१२-३१८ त्रिविधसत्तापक्षतैं विलक्षण जाग्रतस्वप्नकी दोसत्ताके माननैतैं अविलक्षणता [उक्तअर्थमैं शंकासमाधान ॥ दोप्रकारकी निवृत्ति ॥ तीनप्रकारकी सत्ता.] ३१९-३२१ ब्रह्मकी कारणता देशकालमैं प्रतीत होवैहै। इत्यादिस्थलमैं अन्यथाख्यातिका अंगीकार [उक्तअर्थमैं शंकासमाधान.] ३२२ जाग्रतप्रपंच सामग्रीविना होवैहै। यातैं स्वप्नसमान मिथ्या है. ३२३-३२४ जागृतके पदार्थ ज्ञानके साथिही उत्पन्न होवैहै। यातैं दूसरीजाग्रतमैं रहै नहीं [वेदका गूढ सिद्धांत.] ३२५-३२७ जागृतके पदार्थनका परस्परकार्यकारणभाव नहीं [सृष्टिप्रतिपादनमैं श्रुतिका अभिप्राय नहीं.] ३२८ दृष्टिसृष्टिवादका अंगीकार) ॥

॥ ३२९ ॥ प्रश्नः—स्वप्नकी न्यांई स्वल्पकालस्थायी संसार होवै तौ अनादिकालका बंध नहीं होवैहै ॥ बंधनिवृत्तिरूप मोक्षके निमित्त श्रवणादिक साधन निष्फल होवैंगे ॥

॥ अगृधदेवका स्वप्न ॥ ३३०—४५२ ॥

॥ ३३०—३३८ उत्तरः—

३३०-३३१ अगृधदेवकूं स्वप्नकी प्रतीति. ३३२ अगृधदेवका स्वप्नमैं गुरुसैं मिलाप. ३३३-३३८ मिथ्याआचार्यका मिथ्याशिष्यकूं मिथ्यासंस्कृतग्रंथसैं उपदेशादि (३३५ निर्गुणवस्तुनिर्देशरूपादिमंगल. ३३६-३३८ वेदांतशास्त्रकर्त्ताआचार्यनमस्कार [प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप वेदवाक्यमैं सूत्रजाल पुष्प औ वृक्षनसैं रूपक)] ॥

॥ सप्तमस्तरंगः ॥ ७ ॥

॥ जीवन्मुक्तिविदेहमुक्तिवर्णनम् ॥

॥ इति श्रीविचारसागरकी प्रसंगदर्शक अनुक्रमणिका ॥

मंगलाचरणम् ।

[अनुष्टुप् छंदः]

चैतन्यं शाश्वतं शांतं व्योमातीतं निरंजनम् ।
नादबिंदुकलातीतं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १

सर्वश्रुतिशिरोरत्नविराजितपदांबुजम् ।
वेदांतांबुजमार्तण्डस्तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २

अज्ञानतिमिरांधस्य ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥ ५

अखंडमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ६

न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं परम् ।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात् संपूज्यते गुरुः ॥ ७

अखंडानंदबोधाय शिष्यसंतापहारिणे ।
सच्चिदानंदरूपाय रामाय गुरवे नमः ॥ ८

अज्ञानमूलहरणं जन्मकर्मनिवारणम् ।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं गुरुपादोदकं पिबेत् ॥ ९

[मंदाक्रांता छंदः]

ब्रह्मानंदं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वंद्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥ १०

॥ इति गुरुस्तुतिः ॥

॥ श्रीवृत्तिरत्नावली ॥

अर्थात्

श्रीवृत्तिप्रभाकरसार ।

॥ प्रसंगदर्शकानुक्रमणिका ॥

॥ प्रथमरत्न ॥ १ ॥

॥ द्वितीयरत्न ॥ २ ॥

॥ तृतीयरत्न ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थरत्न ॥ ४ ॥

॥ पंचमरत्न ॥ ५ ॥

॥ षष्ठरत्न ॥ ६ ॥

॥ सप्तमरत्न ॥ ७ ॥

॥ अष्टमरत्न ॥ ८ ॥

॥ नवमरत्न ॥ ९ ॥

॥ दशमरत्न ॥ १० ॥

॥ एकादशरत्न ॥ ११ ॥

॥ द्वादशरत्न ॥ १२ ॥

॥ त्रयोदशरत्न ॥ १३ ॥

॥ चतुर्दशरत्न ॥ १४ ॥

॥ इति श्रीवृत्तिरत्नावलिकी प्रसंगदर्शकअनुक्रमणिका ॥

॥ विचारसागर सटिप्पण ॥

तथा

॥ वृत्तिरत्नावलि ॥

॥ पंचमावृत्तिकी अकारादिअनुक्रमणिका ॥

वृः—श्रीवृत्तिरत्नावलिके अंकनकूं सूचन करैहैं ।
टिः—श्रीविचारसागरके टिप्पणांकनकूं सूचन करैहैं ।
अन्यसर्वअंक श्रीविचारसागरके अंकनकूं सूचन करैहैं ।

आ

॥ इति श्रीविचारसागर सटिप्पण तथा वृत्तिरत्नावलिकी अकारादिअनुक्रमणिका ॥

श्रीपंचदशीसटीकासभाषा द्वितीयावृत्तिमैंसैं

श्रीमहावाक्यविवेकके मूल औ अर्थमात्र ।

येनेक्षते शृणोतीदं जिघ्रति व्याकरोति च ।
स्वाद्वस्वादु विजानाति तत्प्रज्ञानमुदीरितम् ॥ १ ॥

अर्थः—जिस चैतन्यकरि पुरुष इस रूपादिक-कूं देखताहै औ शब्दकूं सुनताहै औ गंधकूं सूंघताहै औ शब्दकूं बोलताहै औ स्वादूअस्वादू-रसकूं जानताहै । सो वृत्तिउपलक्षितचैतन्य प्रज्ञान कह्याहै ॥ १ ॥

चतुर्मुखेंद्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु ।
चैतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्म मय्यपि ॥ २

अर्थः—ब्रह्मा इंद्रआदिदेवनविषै औ मनुष्य-अश्व गौ आदिकनविषै जो एक चैतन्य है सो ब्रह्म है ॥ यातैं मेरेविषै बी स्थित प्रज्ञान ब्रह्म है ॥ २ ॥

परिपूर्णः परात्माऽस्मिन्देहे विद्याऽधिकारिणि ।
बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा स्फुरन्नहमितीर्यते ॥ ३ ॥

अर्थः—परिपूर्णपरमात्मा । विद्या जो ज्ञान ताके अधिकारी इस देहविषै बुद्धिका साक्षी होनैकरि स्थित होयके जो स्फुरताहै, सो "अहं" इस पदकरि कहियेहै ॥ ३ ॥

स्वतः पूर्णः परात्माऽत्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः ।
अस्मीत्यैक्यपरामर्शस्तेन ब्रह्म भवाम्यहम् ॥ ४ ॥

अर्थः—स्वतः पूर्णपरमात्मा जो है सो इहां "ब्रह्म" शब्दकरि वर्णन कियाहै ॥ "अस्मि" यह पद एकताका स्मरण करावनैहारा है ॥ तिस हेतुकरि "मैं ब्रह्मही हूं" ॥ ४ ॥

एकमेवाद्वितीयं सन्नामरूपविवर्जितम् ।
सृष्टेः पुराऽधुनाप्यस्य तादृक्त्वं तदितीर्यते ॥ ५ ॥

अर्थः—सृष्टितैं पूर्व एकही अद्वितीय नाम-रूपरहित जो सत् था । इस सत्का अब सृष्टिके पीछे बी तैसैपना "तत्" कहिये सो । ऐसैं कहियेहै ॥ ५ ॥

श्रोतुर्देहेंद्रियातीतं वस्त्वत्र त्वम्पदेरितम् ।
एकता ग्राह्यतेऽसीति तदैक्यमनुभूयताम् ॥ ६ ॥

अर्थः—श्रोताके देहइंद्रियतैं अतीत जो वस्तु कहिये सत्रूप आत्मा है, सो इहां "त्वं" पदकरि कहियेहै । "असि" इस पदकरि एकता ग्रहण कराइयेहै, यातैं तिनकी एकता अनुभव करना ॥ ६ ॥

स्वप्रकाशापरोक्षत्वमयमित्युक्तितो मतम् ।
अहंकारादिदेहांतात्प्रत्यगात्मेति गीयते ॥ ७ ॥

अर्थः—"अयं" इस उक्तिकरि आत्माका स्वप्रकाशपनैकरि युक्त अपरोक्षपना मान्या है ॥ अहंकारसैं आदिलेके देहपर्यंत जो संघात है । तिसतैं जो आंतर है, सो "आत्मा" ऐसैं कहियेहै ॥ ७ ॥

दृश्यमानस्य सर्वस्य जगतस्तत्त्वमीर्यते ।
ब्रह्मशब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम् ॥ ८ ॥

अर्थः—दृश्यमान सर्वजगत्का जो तत्त्व है, सो "ब्रह्म" शब्दकरि कहियेहै । सो ब्रह्म स्वप्रकाश-आत्मस्वरूप है ॥ ८ ॥

इति श्रीमहावाक्यविवेकः ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ वस्तुनिर्देशरूप मंगलकी टीका ॥

॥ दोहा ॥

जो सुख नित्य प्रकास विभु,
नाम रूप आधार ।
मति न लखै जिहिं मति लखै,
सो मैं शुद्ध अपार ॥ १ ॥

टीकाः—"सो मैं हूं" यह अन्वय है ॥ इस कहनैकरि महावाक्यका अर्थरूप प्रत्यक्-अभिन्नपरमात्मा अपना स्वरूप कह्या ॥

अब तिसके भिन्नभिन्न विशेषण कहैहैंः—

सो (ब्रह्म) कैसा है ?

१ जो "सुख" है ।
२ जो नित्य है ।
३ जो प्रकाश है ।
४ जो "विभु" है ।
५ जो "नामरूपका आधार" है ॥

फेर सो (ब्रह्म) कैसा है ?

६ "मति न लखै जिहिं मति लखै" ॥

(१) इसका यह अर्थ हैः— बुद्धि जिस (ब्रह्म)कूं प्रकाशै नहीं औ जो (ब्रह्म) बुद्धिकूं प्रकाशै ॥ (२) दूसरा यह बी अर्थ हैः— शब्दकी शक्तिवृत्तिसैं मति जिस (ब्रह्म) कूं जानै नहीं । शब्दकी लक्षणावृत्तिसैं मति जिस (ब्रह्म)कूं जानै॥ (३) और यह बी अर्थ हैः— मलिनमति जिस (ब्रह्म)कूं जानै नहीं । शुद्धमति जिस (ब्रह्म)कूं जानै ॥ इस अर्थसैं यह जाननाः—जो शुद्धमति बी फलव्याप्तिसैं जिस (ब्रह्म)कूं नहीं जानैहै । किंतु

॥ १ ॥ निर्गुणवस्तु ॥
॥ २ ॥ विघ्नध्वंसके अनुकूल व्यापार ॥
॥ ३ ॥ संबंध ॥
॥ ४ ॥ देखो अंक ॥ ४४३ ॥
॥ ५ ॥ अंतर (आत्मा) ॥
॥ ६ ॥ आनंद । देखो अंक ॥ ३६४ ॥
॥ ७ ॥ सत्य । देखो अंक २४२। २५५ ॥
॥ ८ ॥ चित् । चैतन्य । ज्ञानस्वरूप ॥
॥ ९ ॥ व्यापक । देशकालवस्तुकरि अंततैं रहित । देखो अंक ॥ ३६४ ॥
॥ १० ॥ अधिष्ठान । विवर्तउपादानकारण । देखो अंक १४९ ॥
॥ ११ ॥ देखो अंक ४०९ ॥
॥ १२ ॥ भागत्यागलक्षणासैं । देखो अंक ४०९। ४३२।४३८ ॥
॥ १३ ॥ मलविक्षेपदोषसहित बुद्धि ॥
॥ १४ ॥ मलविक्षेपदोषरहित बुद्धि । चारिसाधन-सहित ॥
॥ १५ ॥ चिदाभासकी विषयताकरि । देखो अंक २०५ ॥

वृत्तिव्याप्तिसैं[16] जानैहै, सो वृत्ति बी जैसैं दीपक अन्यपदार्थोंकूं प्रकाशताहै, तैसैं ब्रह्मकूं प्रकाशनैमैं समर्थ नहीं है। परंतु जैसैं पात्रसैं ढांपी हुई मणि अंधेरेमैं स्थित होवै औ तिस पात्रकूं डंडसैं फोडिके मणिका प्रकाश होवैहै, तैसै "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी वृत्तिसैं ब्रह्मके आवरणरूप अज्ञानकी निवृत्ति करनाही ब्रह्मका प्रकाश करना कहियेहै॥ जातैं ब्रह्म अपनै प्रकाशमैं बुद्धिआदिक औरप्रकाशकी अपेक्षा-रहित हुवा सर्वका प्रकाशक है। यातैं "मति न लखै जिहिं मति लखै।" इस वाक्यके अर्थकरि ब्रह्म स्वयंप्रकाश है। ऐसा सिद्ध होवैहै॥

फेर सो (ब्रह्म) कैसा है?

७ जो "शुद्ध"[18] है।

८ जो "अपार"[19] है॥

उक्त ब्रह्मके लक्षणकी पदकृतिकूं[20] दिखावैहैं:—

१ जो केवलब्रह्म "सुख" है, ऐसैं कहैं तौ विषयसुख वा न्यायमतमैं[21] आत्माका आनंदगुण मानैहैं। तिनमैं ब्रह्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति[22] होवै, तिसके निवारणअर्थ ब्रह्मके लक्षणमैं "सुख"के साथि "नित्य" कह्याहै॥

(१) विषयानंद अनित्य है। औ—

(२) नैयायिक आत्माका आनंद[23] गुण मानैहैं। सो बी अनित्य मानैहैं॥

इहां ब्रह्म "सुख" औ "नित्य" कह्याहै। यातैं तिनोंमैं अतिव्याप्ति नहीं॥

२ जो केवलब्रह्म "नित्य" है, ऐसैं कहैं तौ न्यायमतमैं[24] आकाशकालआदिक नित्य मानैहैं, तिनमैं अतिव्याप्ति होवै, तिसके निवारण-अर्थ ब्रह्मके लक्षणमैं "नित्य"के साथि "प्रकाश" कह्याहै॥ नैयायिक आकाशा-दिककूं नित्य मानैहैं। परंतु प्रकाशरूप नहीं मानैहैं. किंतु जड मानैहैं॥ इहां ब्रह्म "नित्य" औ "प्रकाश" कह्याहै। यातैं तिसके मतमैं अतिव्याप्ति नहीं।

३ जो केवलब्रह्म "प्रकाश" है, ऐसैं कहैं तौ

(१) सूर्यादिक प्रकाशनमैं अतिव्याप्ति होवै,

(२) वा न्यायमतमैं[25] आत्माका ज्ञान गुण मानैहैं तिसमैं अतिव्याप्ति होवै॥

(३) वा क्षणिकविज्ञानवादिके[26] मतमैं आत्मा क्षणिकविज्ञानरूप मानैहैं। तिसमैं अतिव्याप्ति होवै॥

तिसके निवारणअर्थ ब्रह्मके लक्षणमैं "प्रकाशके" साथि "विभु" कह्याहै।

(१) सूर्यादिकप्रकाश व्यापक नहीं हैं। किंतु परिच्छिन्न हैं। औ—

(२) नैयायिक आत्माके ज्ञानगुणकूं व्यापक नहीं मानैहैं। किंतु परिच्छिन्न मानैहैं।

॥१६॥ केवलवृत्तिकी विषयताकरि देखो अंक २०५

॥१७॥ देखो अंक १७९॥

॥१८॥ माया औ ताके कार्यरूप मलसैं रहित॥

॥१९॥ देशकालवस्तुकरि अंतते रहित॥

॥२०॥ परीक्षाकूं॥

॥२१॥ देखो अंक ३४३। ३६३॥

॥२२॥ जिसका, लक्षण करीये तिसमैं वर्तिके तिसतैं औरपदार्थमैं बी लक्षणका वर्त्तना॥

॥२३॥ गुण होवै सो अनित्यही होवैहै। ऐसा नियम है॥

॥२४॥ देखो अंक ३४३॥

॥२५॥ देखो अंक ३४३। ३५७।

॥२६॥ देखो अंक १२७॥

(३) तैसैं क्षणिकविज्ञानवादी क्षणिकविज्ञानकूं व्यापक नहीं मानैहैं । किंतु परिच्छिन्न मानैहैं ॥

इहां ब्रह्म "प्रकाश" औ "विभु" कह्याहै । यातैं तिनोंमैं अतिव्याप्ति नहीं ॥

४ जो केवलब्रह्म "विभु" है । ऐसैं कहैं तौ

(१) आकाशादिक बी व्यापक हैं । तिनमैं अतिव्याप्ति होवै । औ—

(२) नैयायिकप्रभाकर आत्माकूं विभु मानैहैं तिसमैं अतिव्याप्ति होवै । वा—

(३) सांख्यमतमैं प्रकृतिकूं व्यापक मानैहैं । तिनमैं अतिव्याप्ति होवै ॥

तिसके निवारणअर्थ ब्रह्मके लक्षणमैं "विभु" के साथि "नामरूपका आधार" कह्याहै ॥

(१) आकाशादिक विभु तौ हैं । परंतु नामरूपके आधार नहीं है ॥

(२) तैसैं नैयायिक औ प्रभाकर आत्माकूं विभु मानैहैं । परंतु नामरूपका आधार नहीं मानैहैं । औ—

(३) सांख्यमतमैं प्रकृतिकूं व्यापक मानैहैं । परंतु नामरूपका आधार नहीं मानैहैं ।

इहां ब्रह्म "विभु" औ "नामरूपका आधार" कह्याहै । यातैं तिनोंमैं अतिव्याप्ति नहीं ॥

५ जो केवलब्रह्म "नामरूपका आधार" है, ऐसैं कहै तौ प्रांतिभासिक सर्पादिकनके नाम औ रूपके आधार रज्जुआदिक हैं । तिनमैं अतिव्याप्ति होवै, तिसके निवारणअर्थ ब्रह्मके लक्षणमैं "नामरूपका आधार"के साथि "मति न लखै जिहिं मति लखै" (स्वयंप्रकाश) कह्याहै ॥

यद्यपि "नामरूपका आधार" इस एकविशेषणसैंही किसीमतके कोईपदार्थमैं ब्रह्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति नहीं होवैहै औ वेदांतमतमैं रज्जुआदिक स्थलमैं कल्पितसर्पादिकनके नामरूपका आधार रज्जुउपहितचेतनही अंगीकार कियाहै । रज्जुआदिक नहीं । तथापि इहां जो रज्जुआदिककूं नामरूपकी आधारता कहिके अतिव्याप्ति निवारण करीहै सो स्थूलदृष्टिसैं करीहै ॥

६ जो केवलब्रह्म "स्वयंप्रकाश" है, ऐसैं कहैं तौ—

(१) कोई उपासकोंके मतमैं आत्मा स्वयंप्रकाश मानैहैं । तिसमैं अतिव्याप्ति होवै ॥ तिसके निवारणअर्थ ब्रह्मके लक्षणमैं "स्वयंप्रकाश"के साथि "शुद्ध" कह्याहै ॥

(२) उपासकोंके मतमैं आत्मा स्वयंप्रकाश औ अविद्यादिमलसहित मान्याहै ॥ इहां ब्रह्म "स्वयंप्रकाश" औ "शुद्ध" कह्याहै ।

यातैं तिनमैं अतिव्याप्ति नहीं ॥

७ जो केवलब्रह्म "शुद्ध" है ऐसैं कहैं तौ सांख्यमतमैं आत्मा शुद्ध मानैहैं, तिसमैं अतिव्याप्ति होवै ॥ तिसके निवारणअर्थ ब्रह्मके लक्षणमैं "शुद्ध"के साथि "अपार"

॥२७॥ देखो अंक ३४५ ॥

॥२८॥ आकाशादिककी व्यापकता आपेक्षिक है । देखो अंक १७२ ॥

॥२९॥ प्रतीतिमात्र । कल्पित । देखो अंक ३१५ ॥

॥३०॥ प्रथमपृष्ठपर, स्वयंप्रकाश अर्थ सिद्ध कियाहै ॥

॥३१॥ देखो अंक १३६ ॥

॥३२॥ देखो अंक ३४२ ॥

कह्याहै ॥ सांख्यमतमैं आत्मा शुद्ध तौ मानैहैं, परंतु अपार नहीं मानैहैं ॥

यद्यपि सांख्यमतमैं आत्मा देशकालकरि अंतवाला नहीं, तथापि वस्तुकरि अंतवाला है। यातैं सर्वथा अपार नहीं औ इहां ब्रह्म "शुद्ध" औ "अपार" (देशकालवस्तुकरि अंततैं रहित) कह्याहै। यातैं तिसमैं अतिव्याप्ति नहीं ॥

यद्यपि "सुख नित्य" वा "नित्य प्रकाश" इसरीतिसैं दोदोविशेषण जो ऊपर दिखाये-हैं, तिन दोदोविशेषणकरिही अतिव्याप्ति तौ दूरी होवैहै, तथापि अधिक विशेषण जो कहे-हैं, सो जिज्ञासुनको तिन विशेषणोंका बोध होवै। इस निमित्त कहेहैं ॥ किंवा अनेक-रीतिसैं ब्रह्मके लक्षणका ज्ञान होवै। इस निमित्त कहेहैं ॥

उक्तविशेषणोंकरि युक्त जो ब्रह्म "सो मैं हूं" ऐसा यह दोहेका भावार्थ है ॥ १ ॥

शंकाः—विष्णुशिवआदिक देवनका स्मरण-रूप मंगल कियाचाहिये। तिन देवनकूं छोडिके अपना स्मरणरूप मंगल करना उचित नहीं है। याके समाधानका—

॥ दोहा ॥

अब्धि अपार स्वरूप मम,
लहरी विष्णु महेस।
विधि रवि चंदा वरुन यम,
सक्ति धनेस गनेस ॥ २ ॥

टीकाः—मेरा (प्रत्यक्आत्माका) स्वरूप समुद्रकी[33] न्याईं अपार है। तिस मेरे स्वरूपभूत समुद्रकी विष्णु, महेश[34], विधि[35], रवि, चंद्र, वरुण[36], यम[37], शक्ति[38], धनेश[39], गणेश[40], इसकरि उपलक्षित[41] सर्वदेव लहरी हैं ॥ स्वस्व-रूपभूत समुद्रमैं सर्वदेवता लहरी होनैतैं। अपनै-ही मंगलसैं सर्वदेवताओंके मंगलकी सिद्धि होवैहै। यातैं अपनाही मंगल करनैमैं कछु बी अनुचित नहीं ॥ २ ॥

शंकाः—विष्णुशिवादिक देव ईश्वरकी[42] लहरी संभवैहैं। तुमारे स्वरूप (प्रत्यक्आत्मा) की लहरी संभवै नहीं। यातैं ईश्वरका मंगल करना चाहिये ॥ जैसैं वृक्षके मूलमैं जलसेचन-सैं स्कंधादिककी औ प्राणके अहारतैं इंद्रियन-की तृप्ति होवै है। तैसैं ईश्वरका मंगल कियेसैं सर्वदेवताके मंगलकी सिद्धि होवै है। हमारे (प्रत्यक्आत्माके) मंगलसैं सर्वदेवताके मंगलकी सिद्धि नहीं होवैहै। याके समाधानका—

॥ दोहा ॥

जा कृपालु सर्वज्ञको,
हिय धारत मुनि ध्यान।

॥ ३३ ॥ यद्यपि समुद्रका तौ नौकाकरि पार आवैहै। यातैं समुद्रकी उपमा उपमेय (स्वस्वरूप)के समान नहीं है औ उपमा समानवस्तुकीही होवैहै। तथापि हस्तपादादिअंगकी क्रियाकरि समुद्रका पार आवै नहीं। तातैं समुद्रके समान स्वरूप कह्याहै ॥ इहां समुद्रकी **पूर्णउपमा** नहीं है। किंतु **लुप्तउपमा** है॥

॥ ३४ ॥ शिव ॥

॥३५॥ ब्रह्मा ॥ वेदमतसैं विष्णु, शिव ईश्वरकोटीमैं होनैतैं तिनका प्रथम ग्रहण है औ ब्रह्मा जीवकोटीमैं होनैतैं तिसका पीछे ग्रहण है ॥

॥३६॥ जलका अभिमानी देवता ॥

॥३७॥ धर्मराजा ॥ ॥३८॥ देवी ॥

॥३९॥ कुबेर ॥ ॥४०॥ गणपति ॥

॥४१॥ देखो अंक ५१६ ॥

॥४२॥ मायाविशिष्टचेतनकी ॥

ताको होत उपाधितैं,
मोमैं मिथ्या भान ॥ ३ ॥

टीकाः—जिस कृपालु सर्वज्ञ (ईश्वर)का मुनि हृदयमैं ध्यान धरैहैं, तिस ईश्वरका मायाउपाधिसैं जैसैं रज्जुमैं सर्पादि औ स्वप्नमैं नगरादि भान होवैहैं, तैसैं मेरे स्वरूप (प्रत्यक्-तत्त्व) विषै (ईश्वर) मिथ्याही भान होवैहै ॥ यातैं मेरे मंगलसैं ईश्वरादिसर्वके मंगलकी सिद्धि होवैहै । काहेतैं ? जो वस्तु जिसकेविषै कल्पित होवै सो तिसका रूपही होवैहै । ऐसा नियम है यातैं मेराही मंगल उचित है ॥ ३ ॥

शंकाः—ईश्वर तौ शुद्धब्रह्ममैं अध्यस्त है । तुमारे स्वरूप (प्रत्यक्आत्मा)मैं नहीं । यातैं निर्गुणब्रह्मका मंगल करना चाहिये । तिसके मंगलसैं सर्वके मंगलकी सिद्धि होवैगी । तुमारे मंगलकरि नहीं । याके समाधानका—

॥ दोहा ॥

व्है जिहिं जानै बिन जगत,
मनहु जेवरी साप।
नसै भुजग जग जिहिं लहै,
सोऽहं आपे आप ॥ ४ ॥

टीकाः—जैसैं जेवरीकूं जानै विना सर्प प्रतीत होवैहै । तैसैं जिस (ब्रह्म)कूं जानै बिना यह जगत् प्रतीत होवैहै ॥ औ जेवरीके जाननैसैं जैसैं सर्प नाश होवैहै । तैसैं तिस (ब्रह्म)कूं जाननैसैं यह जगत् निवृत्त होवैहै ॥ सो अधिष्ठानरूप शुद्धब्रह्म मैं आपे आप हूं ॥ "आपे आप" कहनैकरि, अंशअंशीभाव, वा विकारविकारीभाव, वा उपासकउपास्यभाव-आदिक कोई बी रीतिसैं मेरा औ ब्रह्मका किंचित् भेद नहीं। यह सूचन किया, औ भेदके अभावतैं कार्यतारूप, प्रकाश्यतारूप, औ आधेयतारूप जे तीनँप्रकारकी परतंत्रता हैं, तिनतैं मैं रहित हूं । यह बी सूचन किया ॥ यातैं मेरा (प्रत्यक्आत्माका) मंगलही शुद्ध-ब्रह्मका मंगल है ॥ ४ ॥

शंकाः—तुमारे परंपरागुरु दादूजीके संप्रदायके इष्टदेव श्रीरामजीका तौ नमस्काररूप मंगल करना चाहिये । याके समाधानका—

॥ दोहा ॥

बोध चाहि जाको सुकृति,
भजत राम निष्काम ।
सो मेरो है आतमा,
काकूं करूं प्रनाम ॥ ५ ॥

टीकाः—जिस रामजीको बोधकी चाहना करिके सुकृति निष्काम भजैहैं । सो रामजी मेरो आत्मा (स्वरूप) है (दादूदयालजीके संप्रदायमैं रामजीकूं निर्गुणब्रह्मरूप होनैतैं) यातैं मैं किसकूं प्रणाम करूं ? मेरेतैं भिन्न और-वस्तुके अभावतैं किसीकूं बी प्रणाम नहीं करूं । यह भाव है ।

अथवा जिस (परब्रह्म)के बोधकी चाहना-करि सुकृतिपुरुष रामजीकूं निष्काम भजै-हैं, सो परब्रह्म मेरो आत्मा (स्वरूप) है । (सोई रामजी है) यातैं सर्वको अधिष्ठान मैं किसकूं प्रणाम करूं ? मेरेतैं भिन्न औरकोई वस्तु हैही नहीं । जाको मैं प्रणाम करूं । यह भाव है ॥

॥ इति श्रीविचारसागरके मंगलके पंचदोहेकी टीका संपूर्ण ॥

॥४३॥ कल्पित ॥

॥४४॥ कारणकी अधीनता, प्रकाशककी अधीनता औ आधारकी अधीनता, ये तीन परतंत्रता ॥

॥४५॥ दादूपंथी । रामके नामकी धून लगातेहैं ॥
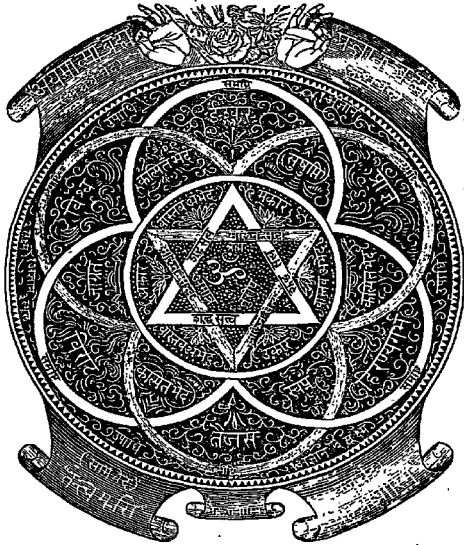
॥ सवैयाछंद ॥

ध्यान अहंग्रह प्रनवरूपको ।
कह्यो सुरेश्वर श्रुतिअनुसार ॥
अछर प्रनव ब्रह्म ममरूप सु ।
यूं अनुलव निजमति गति धार ॥

ध्यानसमान आन नहिं थाके ।
पंचीकरनप्रकार विचार ॥
जो यह करत उपासन् सो मुनि ।
तुरित नसै संसार अपार ॥ १६८ ॥

(श्रीविचारसागर अंक ॥ २८१ ॥)

॥ सवैयाछंद ॥

जो यह निर्गुनध्यान न व्है तौ ।
सगुनईस करि मनको धाम ॥
सगुनउपासनहूं नहिं व्है तौ ।
करि निष्कामकर्म भजि राम ॥

जो निष्कामकर्महू नहीं व्है ।
तौ करिये सुमकर्म सकाम ॥
जो सकामकर्महूं नहीं होवै ।
तौ सठ वारवार मरि जाम ॥ १६९ ॥

(श्रीविचारसागर अंक ॥ ३०३ ॥)

॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ प्रथमस्तरंगः ॥ १ ॥

॥ अथ अनुबंधसामान्यनिरूपणम् ॥

॥ १ ॥ अथ वस्तुनिर्देशरूप मंगल ॥

॥ दोहा ॥

जो सुख नित्य प्रकास विभु,
नाम रूप आधार ॥
मति न लखै जिहिं मति लखै,
सो मैं सुद्ध अपार ॥ १ ॥
अब्धि अपार स्वरूप मम,
लहरी विष्णुमहेस ॥
विधि रवि चंदा वरुन यम,
सक्ति धनेस गनेस ॥ २ ॥
जा कृपालु सर्वज्ञको,
हिय धारत मुनि ध्यान ॥
ताको होत उपाधितैं,
मोमैं मिथ्या भान ॥ ३ ॥
है जिहिं जाने विन जगत,
मनहु जेवरी साप ॥
नसै भुजग जग जिहिं लहै ।
सोऽहं आपे आप ॥ ४ ॥
वोध चाहि जाकों सुकृति,
भजत राम निष्काम ॥
सो मेरो है आतमा,
काकूं करूं प्रनाम ॥ ५ ॥

॥ २ ॥ ग्रंथमहिमा ॥ २—३ ॥

भऱ्यो वेद सिद्धांतजल,
जामैं अतिगंभीर ॥
अस विचारसागर कहूं,

॥ १ ॥ प्रतिवादी औ सिद्धांतीकरिके वा गुरु-शिष्यकरिके किया जो जडचेतनआदिक पदार्थनका विवेचन कहिये निर्णय, सो विचार कहियेहै ॥ इहां विचारशब्दसैं अजहत्लक्षणाकरिके प्रतिवादीआदिक-करि निर्णित अर्थरूप विचारके विषयका बी ग्रहण है ॥ सो विचारका विषयरूप निर्णितअर्थही सिद्धांत है ॥ यातैं

१ प्रतिवादी वा शिष्यरूप पवनकरिके प्रेरित जो सिद्धांती वा गुरुरूप मेघ ।

२ तिसकरि भई जो विचाररूप जलकी वर्षा है ।

३ तासहित ताका विषयरूप वेदका सिद्धांत जल है ।

४ ताका सागरकी न्यांई विस्तीर्ण होनैकरि सागररूप यह ग्रंथ है ।

यातैं सो विचारसागर कहियेहै ॥

१ वाकी आदितैं लेके अंतपर्यंतके वर्णोंकी समष्टि-रूप भूमिका है ।

२ तामैं उक्त वेदका सिद्धांतरूप जल भऱ्या है ।

[2]पेखि [3]मुदित [4]व्है धीरें ॥ ६ ॥
[5]सूत्र [6]भाष्य [7]वार्तिक प्रभृति,
ग्रंथ बहुत सुरबानि ॥
तथापि मैं भाषा करूं,
[8]लखि मतिमंद अजानि ॥ ७ ॥

टीका:–यद्यपि सूत्रभाष्यवार्तिकसैं प्रभृति कहिये आदिलेके, सुरबानि कहिये संस्कृतग्रंथ बहुत हैं। तथापि संस्कृतग्रंथनसैं मंदबुद्धिपुरुषनकूं बोध होवै नहीं औ भाषाग्रंथनसैं मंदबुद्धिपुरुषनकूं बी बोध होवैहै। यातैं भाषाग्रंथका आरंभ निष्फल नहीं। किंतु संस्कृतग्रंथनके विचारनैविषै जिनकी बुद्धि समर्थ नहीं है, तिनके निमित्त ग्रंथका आरंभ सफल है ॥ ७ ॥

---

३ याके सप्तप्रकरणरूप **तरंग** कहिये लहरियां हैं।
४ यामैं अनेकछंदरूप स्वल्प **जलजंतु** हैं औ
५ कठिनप्रसंगरूप **मकर** हैं औ
६ उत्तमछंदरूप **सीपियां** हैं।
७ तिनमैं वर्णमैत्रेयीआदिक **मौक्तिक** हैं। औ
८ यामैं शुद्धस्वरूपके निर्णयरूप **मणिमाणिक्यआदिक** हैं। औ
९ विवेकादिसाधनरूप **चतुर्दश रत्न** हैं।
१० याके उल्लंघन करनेकूं जिज्ञासुकी बुद्धिरूप **नौका** है। औ
११ अभ्यासरूप **शुभपवन** है। औ
१२ ब्रह्मनिष्ठगुरुरूप **कर्णधार** नाम केवट है।
१३ याका संसाररूप कुदेशसैं संबंधी अज्ञानरूप **अवारतीर** है। औ
१४ मोक्षरूप सुदेशसैं संबंधी ज्ञानरूप **पारतीर** है।
१५ याके श्रद्धापूर्वक पढनेरूप उल्लंघन करनका मोक्षरूप सुदेशकी प्राप्ति **फल** है।

ऐसा यह विचारसागरनामा ग्रंथ है ॥

॥ २ ॥ **पेखि** कहिये गुरुमुखद्वारा श्रद्धाभक्तिपूर्वक याका श्रवणमननरूप विचारकरिके ॥

॥ ३ ॥ **मुदित** कहिये स्वरूपके साक्षात्काररूप अपरोक्षज्ञानद्वारा अविद्यातत्कार्यरूप अनर्थकी निवृत्तिपूर्वक परमानंदकूं प्राप्त होवैहै ॥

॥ ४ ॥ "धी" जो बुद्धि तांकू "र" कहिये विषयनतैं रक्षा करै। ऐसा जो ब्रह्मचर्यआदिक साधनकरि संपन्न अधिकारी, सो इहां "**धीर**" कहियेहै ॥

॥ ५ ॥ स्वल्पअक्षरोंवाला, असंदिग्ध कहिये निःसंदेहसारवाला, सर्वओर प्रवृत्त होनैवाला, किसीकरि बी रोकनैकूं अशक्य औ निर्दोष जो वाक्य सो **सूत्र** कहियेहै ॥ ऐसैं सूत्रनके समुदायरूप षट्शास्त्रआदिक अनेकग्रंथ हैं। तिनमैं इहां वेदव्यासरचित ५९५ ब्रह्मसूत्ररूप उत्तरमीमांसाशास्त्रका "**सूत्र**" शब्दकरिके ग्रहण है। और उपनिषद् औ गीताआदिकअन्यग्रंथनका "प्रभृति" शब्दकरिके ग्रहण है ॥

॥ ६ ॥ सूत्रादिरूप मूलग्रंथगत पदकूं लेके ताके पर्यायरूप स्वपदोंकूं कहिके फेर मूलगत पदनके अनुसारि पदोंकरिके जो स्वपदोंका विवरण कहिये विशेषकरिके वर्णन सो "**भाष्य**" कहिये है। ऐसे भाष्य अनेक हैं। तिनमैंसैं इहां श्रीशंकराचार्यकृत भाष्यका ग्रहण है ॥

॥ ७ ॥ मूलग्रंथकारकरि उक्त अनुक्त औ विरुद्ध उक्तअर्थका चिंतन जो विचार सो जिसविषै होवै, ऐसा जो श्लोकबद्धव्याख्यान, सो "**वार्त्तिक**" कहियेहै। तैसे वार्तिक बी अनेक हैं। तिनमैंसैं इहां श्रीशंकराचार्यके शिष्य श्रीसुरेश्वराचार्य (मंडनमिश्र) कृत वार्त्तिकका ग्रहण है ॥

॥ ८ ॥ मतिमंद कहिये संस्कृतग्रंथनके विचारनेविषै जिनकी अल्पबुद्धि है औ अजानि कहिये स्वरूपके अज्ञानी हैं, ऐसे पुरुषनकूं लखि कहिये जानिके मैं भाषाग्रंथकूं करताहूं ॥ इस कथनकरि "संस्कृतविषै अल्पमतिवाला औ स्वरूपका अज्ञानी या **भाषाग्रंथका अधिकारी**" कह्या ॥

या लक्षणकी यह परीक्षा है:—

१ भाषा औ संस्कृत दोनूंविषै अल्पमतिवाले अरु अज्ञानी तौ अनेक पामर औ विषयी जीव हैं। वे

॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥

कविजनकृत भाषा बहुत,
ग्रंथ जगत विख्यात ॥
विन विचारसागर लखे,
नहिं संदेह नसात ॥ ८ ॥

टीकाः—यद्यपि भाषाग्रंथ बहुत हैं, तथापि विचारसागर विना औरभाषाग्रंथनसैं आत्मवस्तुविषै संदेह दूरि होवै नहीं। याकेविषै यह हेतु हैः—

१ कितने तौ श्रवणकरिके भाषाग्रंथ रचैहैं। जैसैं पंचभाषा हैं ॥ तिनकी प्रक्रिया काहू अंशमैं तौ शास्त्रके अनुसार है औ जो श्रवण किया अर्थ यथार्थ ग्रहण नहीं हुवा तिस अंशमैं शास्त्रसैं विरुद्ध है। यातैं श्रोताकृतग्रंथसैं संदेहरहित बोध होवै नहीं ॥

२ और कोई भाषाग्रंथ किंचित्शास्त्र पढिके रचैहैं। जैसैं आत्मबोध है। तिनसैं बी संदेहरहित बोध होवै नहीं। काहेतैं तिनमैं वेदांतकी प्रक्रिया संपूर्ण नहीं है। औ

विचारसागरग्रंथमैं संपूर्ण प्रक्रिया है औ वेदांतशास्त्रके अनुसार है। काहूस्थानमैं बी विरुद्ध नहीं है औ आत्मज्ञानमैं उपयोगी जो पदार्थ हैं, तिनका निरूपण विस्तारसैं कियाहै। यातैं औरभाषाग्रंथनके समान यह ग्रंथ नहीं है। किंतु सर्वभाषाग्रंथनसैं यह ग्रंथ उत्तम है ॥ ८ ॥

॥ ४ ॥ ॥ अनुबंधनाम ॥

॥ चौपाई ॥

नहीं अनुबंध पिछानै जौलौं,
व्है न प्रवृत्त सुघरनर तौलौं ॥
जानि जिनै यह सुनै प्रबंधा,
कहूं व यातैं ते अनुबंधा ॥ ९ ॥

टीकाः—अधिकारी, संबंध, विषय औ प्रयोजनका नाम अनुबंध है। अधिकारीआदिक ग्रंथके अनुबंध जानै विना सुघर कहिये विवेकीपुरुषकी ग्रंथनमैं प्रवृत्ति होवै नहीं। यातैं जिन अनुबंधनकूं जानिके प्रबंध कहिये ग्रंथकूं सुनै तिन अनुबंधनकूं व कहिये अब कहूंहूं ॥ ९ ॥

॥ सोरठा ॥

अधिकारी संबंध,
विषय प्रयोजन मेलि चव ॥
कहत सुकवि अनुबंध,
तिनमैं अधिकारी सुनहु ॥ १० ॥

मूर्ख होनेतैं आपकूं अज्ञानी मानते नहीं किंतु ज्ञानी मानतेहैं। यातैं जिज्ञासाके अभावतैं विवाहविषै अनधिकारी पंढपुरुषकी न्यांई वे ग्रंथविषै अधिकारी नहीं। औ

२ संस्कृतविषै अल्पमतिवाले तो केइक भाषाके वेत्ता ज्ञानी बी हैं। वे भाषाग्रंथविषै अल्पमतिवाले नहीं। यातैं जिज्ञासाके अभावतैं ग्रंथविषै अधिकारी नहीं किंतु मुक्त हैं। औ

३ अज्ञानी तो केइक (पामर वा विषयी वा जिज्ञासुरूप) संस्कृतके वेत्ता बी हैं। वे अल्पमतिवाले नहीं। यातैं भाषाग्रंथविषै अधिकारी नहीं ॥

यातैं उपरि कहा जो लक्षण सो निर्दोष है ॥

॥ ९ ॥ षट्प्रश्नी। शतप्रश्नी। ज्ञानमंजरी। ज्ञानचूर्ण। वेदांतसार। पंचीकरण। ये मनोहरदासकृत षट्भाषा ग्रन्थ हैं तिनमैं पंचीकरण स्वल्प है, ताकूं छोडिके पंचभाषा कहिये हैं ॥

॥ १० ॥ इंद्रियकी वा चित्तकी चंचलतासैं श्रवण किया अर्थ भूतके अग्निकी न्यांईं ज्यूंका त्यूं धारण नहीं हुवा ॥

॥ ११ ॥ साधु श्रीमाणकदासजीकृत माणकबोध है। याहीकूं आत्मविचार बी कहतेहैं। जिसके ऊपर मूलचंद्रज्ञानीनैं सारोद्धारनामक व्याख्यान किया है ॥

॥ ५ ॥ अधिकारीवर्णन ॥ ५–२३ ॥

॥ दोहा ॥

मलविछेप जाके नहीं,
किंतु एक अज्ञान ॥
व्है चव साधनसहित नर,
सो अधिकृत मतिमान ॥ ११ ॥

टीकाः–अंतःकरणविषै तीन दोष होवैहैंः— १ एक तौ मल होवैहै। २ दूसरा विक्षेप होवैहै औ ३ तीसरा आवरण होवैहै। (१)निष्कामकर्मसैं अंतःकरणका मलदोष दूरि होवैहै। (२) उपासनासैं विक्षेपदोष दूरि होवैहै । (३) ज्ञानसैं आवरणदोष दूरि होवैहै ॥

जा पुरुषनै निष्कामकर्म औ उपासनाकरिके मल औ विक्षेपदोष दूरि कियेहैं औ एकअज्ञान कहिये स्वरूपका आवरण जाके चित्तविषै होवै औ च्यारिसाधनसंयुक्त होवै, सो पुरुष अधिकृत कहिये अधिकारी है ॥ ११ ॥

॥६॥ अथ च्यारिसाधन वर्णन ॥६–१४॥

॥ दोहा ॥

प्रथम विवेक विराग पुनि,
शमादि षट्संपत्ति ॥
कही चतुर्थ मुमुच्छुता,
ये चव साधन सत्ति ॥ १२ ॥

॥ ७ ॥ ॥ (१) अथ विवेकलक्षण ॥

॥ दोहा ॥

अविनासी आतम अचल,
जग तातैं प्रतिकूल ॥
ऐसो ज्ञान विवेक है।
सब साधनको मूल ॥ १३ ॥

टीकाः–

१ आत्मा अविनाशी कहिये नाशरहित है औ अचल कहिये क्रियारहित है। औ
२ जगत् आत्मातैं प्रतिकूल कहिये विपरीत-स्वभाववाला है, विनाशी है औ चल है।

या ज्ञानका नाम विवेक है ॥

यह विवेकही सर्वसाधनका मूल है। काहेतैं? प्रथम विवेक होवै तौ वैरागसैं आदिलेकै उत्तर-साधन होवैहैं औ विवेक नहीं होवै तौ उत्तर-साधन होवै नहीं । यातैं वैराग्य शमादिषट्-संपत्ति औ मुमुक्षुता इनका हेतु विवेकै है ॥१३॥

॥ १२ ॥ इहां यह शंका हैः–विजिगीषु (अन्योंकूं जीतनेकी इच्छावाले) जे पंडित हैं, तिनकूं बी "आत्मा नित्य है औ आत्मासैं भिन्न देहादिप्रपंचरूप अनात्मा अनित्य है" इस आकारवाला भेदज्ञानरूप विवेक होवैहै । सो विवेक वैराग्यसैं आदिलेके उत्तरसाधनोंका हेतुही कैसैं होता नहीं? याका

यह समाधान हैः–उक्तविजिगीषु पंडितनकूं यद्यपि शास्त्रके अभ्याससैं विवेकज्ञान होवैहै । तथापि सो निष्कामकर्मउपासनासैं शुद्धिरहित मलिन अंतःकरण-देशविषै उदय होवैहैं । यातैं

१ अन्यदेशसैं उखाड़िके जलसंबंधरहित ऊंषर-भूमिविषै गाडे हुए कदलीवृक्षकी न्यांई वैराग्यादि-उत्तरसाधनरूप अन्यवृक्षोंकी परंपराका हेतु नहीं होवै-है। किंतु वह विवेक चित्रांगदकी न्यांई और चित्रामृत की न्यांई औ चित्राग्निकी न्यांई वाणीमात्रका किया-होनैतैं अविवेकहीं है। औ—

२ शुद्धियुक्त अंतःकरणदेशविषै उदय भया जो विवेक सो सजलसरसभूमिविषै गाडेहुये कदलीवृक्षकी न्यांई वैराग्यादिउत्तरसाधनरूप अन्यवृक्षनकी परंपरा-का हेतु होवैहै । यातैं शुद्धचित्तरूप भूमिविषै उदयभया जो विवेक। सो **वैराग्यका असाधारणकारण** है औ **वैराग्य षट्संपत्तिका असाधारणकारण** है। इसरीतिसैं उत्तरउत्तरसाधनका पूर्वपूर्वसाधन निमित्तकारण है औ शुद्धअंतःकरणरूप भूमिका सर्वका उपादानकारण है।

तातैं मुमुक्षुपुरुषकूं चित्तशुद्धिपूर्वक विवेक संपादन करना योग्य है ॥

॥ ८ ॥ ॥(२) अथ वैराग्यलक्षण ॥

॥ दोहा ॥

ब्रह्मलोक लौं भोग जो,
चहै सवनको त्याग ॥
वेदअर्थ ज्ञाता मुनी,
कहत ताहि वैराग ॥ १४ ॥

॥९॥ ॥(३) अथ शमादिषट्नाम ॥९-१३॥

॥ दोहा ॥

सम दम श्रद्धा तीसरी,
समाधान उपराम ॥
छठी तितिच्छा जानिये,
भिन्न भिन्न यह नाम ॥ १५ ॥

॥ १० ॥ ॥ [१-२] अथ शमदमलक्षण ॥

॥ दोहा ॥

मन विषयनतैं रोकनों,
सम तिहीं कहत सुधीर ॥
इंद्रियगनको रोकनों,
दम भाखत बुधवीर ॥ १६ ॥

॥११॥ ॥[३-४]अथ श्रद्धासमाधानलक्षण॥

॥ दोहा ॥

सत्य वेद गुरु वाक्य हैं,
श्रद्धा अस विस्वास ॥
समाधान ताकूं कहत,
मन विछेपको नास ॥ १७ ॥

॥ १२ ॥ ॥ [५] अथ उपरामलक्षण ॥

॥ चौपाई ॥

साधनसहित कर्म सब त्यागै ।
लखि विख सम विषयनतैं भागै ॥
दृग नारी लखि व्है जिय ग्लाना ।
यह लच्छन उपराम वखाना ॥ १८ ॥

॥ १३ ॥ जैसैं रंग (कल्ही) रहित काचविषै मुखके देखेहुए नेत्रकी वृत्ति बाहिर निकस जातीहै । तैसैं इंद्रियरूप द्वारके विषयनतैं निरोधरूप दमविना मनका निरोधरूप शम सिद्ध होवै नहीं औ लगामके पकडेविना अश्वकी न्यांई मनके निरोधरूप शमविना इंद्रियनका निरोधरूप दम सिद्ध होवै नहीं, यातैं इन शमदमकी परस्पर अपेक्षा है ॥

तैसैं सारी षट्संपत्तिकी परस्परअपेक्षा है । सो आगें २० वें दोहाके टिप्पणमैं कहैंगे ॥

॥ १४ ॥ (१) सर्वसाधनोंकी संपत्तिरूप दधिमथनकी सामग्रीविषै श्रद्धारूप मथनपात्र है । ताके भंग हुए सर्वसाधनोंकी व्यर्थता होवैहै ॥

(२) किंवा सर्वसाधनोंकी संपत्तिरूप वृक्षनका श्रद्धारूप फल है । ताके नाश भये सर्वसाधनोंकी व्यर्थता होवैहै ॥

श्रद्धाके होते अन्य सर्वसाधनोंकी सफलता होवै है । यातैं ज्ञानके सर्वसाधनोंविषै श्रद्धा जो है सो मुख्यसाधन है । ताका कुसंगआदिक नाशके निमित्ततैं रक्षण करना योग्य है ॥

साधनसंपत्तिरूप दधिमथनकी सामग्रीका रूपक हमनैं श्रीबोधरत्नाकरके प्रथमरत्नविषै लिख्या है औ इसीही साधनसामग्रीरूप वृक्षका रूपक हमने श्रीबालबोधिनीटीकासहित बालबोधके प्रथम उपदेशविषै विस्तारसैं लिख्याहै ॥

॥ १५ ॥ त्याग किये पीछे प्राप्त भये विषयकी इच्छाका अभाव उपराम कहियेहै । याहीकूं उपरति बी कहैहैं ॥ यहही फेर भोगनमैं अदीनतारूप वैराग्यका फल है ॥

॥ १६ ॥ स्त्री धन जाति अभिमान आदिक कर्मकी सामग्रीसहित ॥

॥ १७ ॥ यद्यपि इहां " विषयनतैं भागै " इस कथनकरि स्त्री आदिक सर्वविषयनमैं ग्लानि दिखाई । फेर बी नारीरूप विषयमैं ग्लानिके कथनतैं पुनरुक्ति-

॥ १३ ॥ ॥ [६] अथ तितिक्षालक्षण ॥

॥ दोहा ॥

आतप सीत छुधा तृषा,
इनको सहन स्वभाव ॥
ताहि तितिच्छा कहतहैं,
कोविद मुनिवर राव ॥ १९ ॥
समादिषट्‌संपत्तिको,
भाखत साधन एक ॥
इम नव नहिं साधन भनै,
किंतु च्यारि सविवेक ॥ २० ॥

टीकाः—शमादिषट्की जो संपत्ति कहिये प्राप्ति, सो एकसाधनकरिके गिनियेहै । यातैं नवसाधन नहीं किंतु सविवेक कहिये विवेकीजन च्यारिसाधन कहेहैं ॥ २० ॥

रूप दोष होवैहै । तथापि अनंतजन्मविषै किये नारीसंगके संस्कारकी तीव्रतातैं औ नारीविषै शब्द स्पर्श रूप मुखचुंबनआदिक रस अतर फुलेल आदिक गंध औ मैथुन, इन षट्विषयनके बहुतकरि लाभतैं नारीरूप विषय अन्यसर्वविषयनतैं प्रबल है । यातैं ताकेविषै अतिशयग्लानि करनी चाहिये । इस अभिप्रायसैं ताका फेर कथन कियाहै । तातैं इहां पुनरुक्ति जो है सो दूषणरूप नहीं किंतु भूषणरूप है ॥

॥ १८ ॥ कोविद कहिये पंडित, ऐसै मुनि जो संन्यासी, तिनमैं वर कहिये श्रेष्ठ जो विद्वत्संन्यासी, तिनके राव कहिये आचार्य ॥

॥ १९ ॥ जैसैं सुवर्णरचित अनेक मणकोंकी माला एक भूषणकरिके गिनियेहै । तैसैं परस्परसहकारी शमदमादिक षट्साधनोंकी प्राप्तिरूप षट्संपत्ति बी एक साधनकरिके गिनियेहै ॥ शमादिषट्साधनोंकी परस्पर सहकारिता इसरीतिसैं है:—

१ (१) मननिरोधरूप शमविना इंद्रियनका निरोध होता नहीं। यातैं दमकूं शमकी अपेक्षा है। औ

(२) मनके निरोधविना बहिर्मुख (स्त्रीपुत्रादिविषयविषै आसक्त) भये मनकी वेदांतशास्त्र औ सद्गुरुविषै पूर्णश्रद्धा रहती नहीं। यातैं श्रद्धाकूं बी शमकी अपेक्षा है । औ

(३) मनके निरोधविना ब्रह्मविषै चित्तकी एकाग्रता होवै नहीं । यातैं समाधानकूं बी शमकी अपेक्षा है। औ

(४) जैसैं दुग्धादि उत्तम आहारसैं पालन किया अबद्धबिल्ला मूषाकूं देखिके ठहरता नहीं । किंतु मूषाके ऊपर दौडता है । तैसैं विषयनतैं उपरामकूं पाया जो मन, सो निरोधरूप रस्सीसैं मुक्त हुया ठहरता नहीं किंतु प्राप्तविषयनके ऊपर दौडताहै । यातैं उपरामकूं बी शमकी अपेक्षा है। औ

(५) अंतर्मुख भये मनसैं शीतउष्णादिद्वंद्वका सहन होवैहै । बहिर्मुख मनसैं नहीं । यातैं तितिक्षाकूं बी शमकी अपेक्षा है ॥

इसरीतिसैं **शमकूं दमादिकनकी सहकारिता** है कहिये सहायकता है ॥

२ (१) तैसैं कलिविना काचविषै नेत्रवृत्तिकी न्यांई इंद्रियनरूप द्वारके निरोधविना मनका निरोध होता नहीं । यातैं शमकूं दमकी अपेक्षा है । औ

(२) रूपादि विषयविषै तत्पर भये पुरुषकूं सत्शास्त्र औ सद्गुरुविषै श्रद्धा रहती नहीं । यातैं श्रद्धाकूं बी दमकी अपेक्षा है । औ

(३) इंद्रियनके निरोधविना चंचल भये मनविषै एकाग्रता ठहरती नहीं । यातैं समाधानकूं बी दमकी अपेक्षा है । औ

(४) इंद्रियनके रोकेविना प्रत्यक्षअनुभव किये अनुकूलविषयनविषै रागके उद्बुद्धसंस्कारद्वारा इच्छा होवैहै । यातैं उपरामकूं बी दमकी अपेक्षा है । औ

(५) इंद्रियके निरोधविना विषयनके दर्शनकरि विक्षिप्त भये मनसैं द्वंद्वधर्मका सहन होता नहीं यातैं तितिक्षाकूं बी दमकी अपेक्षा है ॥

इसरीतिसैं **दमकूं शमआदिकनकी सहकारिता है ।**

३. तैसैं सद्गुरु औ सत्शास्त्रके वचनविषै विश्वास-

॥ १४ ॥ (४) अथ मुमुक्षुतालक्षण ॥

॥ दोहा ॥

ब्रह्मप्राप्ति अरु बंधकी,
हानि मोछको रूप ॥
ताकी चाह मुमुच्छुता,
भाखत मुंनिवरभूप ॥ २१ ॥

टीकाः—ब्रह्मकी प्राप्ति औ अनर्थकी निवृत्ति मोक्षका स्वरूप है । ताकी इच्छाका नाम मुमुक्षुता है ॥ मुमुक्षुता औ मुमुक्षुत्व पर्याय-शब्द हैं ॥ २१ ॥

॥ दोहा ॥

ये चव साधन ज्ञानके,
श्रवनादिकत्रय मेलि ॥
तत्पद त्वंपद अर्थको,
सोधन अष्टम भेलि ॥ २२ ॥

टीकाः—विवेकादि च्यारी, श्रवण मनन निदिध्यासन ये तीनि, तत्पदके अर्थका औ त्वंपदके अर्थका शोधन, ये अष्ट ज्ञानके साधन हैं ॥ २२ ॥

॥१५ अंतरंग औ बहिरंगसाधन१५–१६॥

॥ दोहा ॥

अंतरंग ये आठ हैं,
यज्ञादिक बहिरंग ॥
अंतरंग धारै तजै,
बहिरंगनको संग ॥ २३ ॥

रूप श्रद्धाविना श्रवणमें प्रवृत्तिकी इच्छाके अभावतें पतिके पास जानेविषे उपयोगी शृंगारकूं विधवाकी न्याई श्रवणविषे उपयोगी शमआदिक कोई बी साधनकूं पुरुष धारण करै नहीं औ श्रद्धाविना धारण किये सर्वसाधनोंकी विधवा करि किये शृंगारकी न्याई व्यर्थता है । यातें शमआदिक सर्वसाधनकूं श्रद्धाकी अपेक्षा है । इसरीतिसैं श्रद्धाकूं शमादिक सर्वसाधनकी सहकारिता स्पष्ट है ॥

४ तैसैं चित्तकी एकाग्रताविना बी शमादिक साधन सिद्ध होते नहीं । यातें शमआदिकनकूं समाधानकी अपेक्षा है ॥ इसरीतिसैं समाधानकूं शमआदिकनकी सहकारिता है ॥

५ तैसैं विषयनतें चित्तके उपराम हुयेविना शमआदिक कोई बी साधन सिद्ध होता नहीं । यातें शमआदिकनकूं उपरामकी अपेक्षा है ॥ इसरीतिसैं उपरामकूं शमआदिकनकी सहकारिता है ॥

६ तैसैं शीतउष्ण क्षुधातृषा हानि लाभ आदिक अनेक व्यावहारिक उपद्रवके सहनविना मननिरोध इंद्रियनिरोध गुरुशास्त्रवचनविषे आस्तिकता चित्तएकाग्रता औ प्राप्त धनआदिक विषयनतें उपरामता सिद्ध होवै नहीं । यातें शमादिकनकूं तितिक्षारूप तपकी अपेक्षाके होनेतें तितिक्षाकूं शमआदिकनकी सहकारिता है ॥

इसप्रकारसैं शमआदिकनकूं परस्परकी सहकारिता है । यातें इन षट्कूं एकसाधनरूपता है ॥

॥ २० ॥ मुनि जो संन्यासी तिनविषे वर कहिये श्रेष्ठ ऐसे जो विद्वत्संन्यासी, तिनके भूप कहिये आचार्य ॥

॥ २१ ॥ एकअर्थवाले दोशब्द परस्पर पर्याय कहियेहैं ॥

॥ २२ ॥ चेतनका औ जडका क्रमतैं कार्यकारणपना औ अधिष्ठानअध्यस्तपना औ दृष्टादृश्यपना औ साक्षीसाक्ष्यपना जो है, तिसका शास्त्रोक्त अनेक प्रक्रियाकरिके जो विचार करना कहिये हंसपक्षीकरि क्षीरनीरके विभागकी न्याई किंवा घृत औ तक्र (मठा) के विभागकी न्याई किंवा मृत्तिका-कूपाकाशके विभागकी न्याई विभाग करना । सो पदार्थशोधन कहिये है । वेदांतशास्त्र उक्त सर्वप्रक्रियाका इसी अर्थके लखावनेविषे तात्पर्य है औ यहही अर्थ महावाक्यके अर्थके ज्ञानविषे उपयोगी है । यातें उक्तपदार्थशोधन मुमुक्षुकूं सम्यक् कर्तव्य है ॥

टीकाः-१ पूर्वदोहेमैं कहे विवेकादिक आठ अंतरंग[23]साधन कहियेहैं औ २ यज्ञादिकर्म बहिरंग[24]-साधन कहियेहै । तिनमैं बहिरंगनकूं जिज्ञासु त्यागै औ अंतरंगकूं धारै ॥

१ जिनका श्रवणमैं अथवा ज्ञानमैं प्रत्यक्षफल होवै सो अंतरंगसाधन कहियेहै ॥ विवेकादिक च्यारिका श्रवणमैं उपयोग है । काहेतैं ? (१) विवेकादिकविना बहिर्मुखकूं श्रवण बनै नहीं ॥ (२) तैसैं श्रवणमननिदिध्यासनका ज्ञानमैं उपयोग है । श्रवणादिकविना ज्ञान होवै नहीं ॥ (३) तैसैं तत्पदका अर्थ औ त्वंपदका अर्थ जानै विना बी अभेदज्ञान होवै नहीं ॥

इसरीतिसैं विवेकादिक च्यारि साधनोंका श्रवणमैं उपयोग है औ श्रवणादिक च्यारि साधनोंका ज्ञानमैं उपयोग है ॥ यातैं आठ अंतरंगसाधन हैं ॥

॥ १६ ॥ २ जाका ज्ञानमैं अथवा श्रवणमैं प्रत्यक्षफल होवै नहीं किंतु अंतःकरणकी शुद्धि जाका फल होवै सो ज्ञानका बहिरंग-साधन कहियेहै ॥ ऐसैं यज्ञादिक कर्म हैं ॥

यद्यपि यज्ञादिक कर्म संसारके साधन हैं । तिनतैं अंतःकरणकी शुद्धि बी कहना संभवै नहीं । तथापि[26] सकामपुरुषकूं संसारके

॥ २३ ॥ जैसैं धनुषसैं छूट्या जो बाण सो लक्ष्य (अमाज) के वेधनेका समीपवर्ती हुया साधन है । यातैं सो ताका अंतरंगसाधन है ॥

तैसैं विवेकादिक आठ ज्ञानके समीपवर्ती हुये साधन हैं । यातैं वे ज्ञानके अंतरंगसाधन कहिये हैं ॥

॥ २४ ॥ जैसैं धनुष जो है सो लक्ष्यके वेधनेका दूरवर्ति हुया बाणके छूटनेद्वारा साधन है । यातैं सो ताका बहिरंगसाधन है ॥

तैसैं यज्ञ औ सगुणउपासना आदिक कर्म बी ज्ञान-का दूरवर्ति हुया । पाप औ विक्षेपरूप मलकी यथायोग्य निवृत्तिरूप चित्तशुद्धिपूर्वक जिज्ञासाद्वारा साधन है । यातैं सो ज्ञानका बहिरंगसाधन कहिये है ॥

॥ २५ ॥ जैसैं कूपमैं गिन्या पुरुष प्रथम वृक्षकी जडआदिक आश्रयकूं पकडताहै । पीछे जब कोई दयालुपुरुष रस्सी गेरे तब उक्तआश्रयका त्याग करिके रस्सीकूं पकडताहै । परंतु रस्सीकी प्राप्तिविना जो उक्तआश्रयका त्याग करे तौ उभयभ्रष्ट होयके कूपमैंही डूबताहै ॥

तैसैं जन्ममरणरूप जलकरि युक्त संसाररूप कूपविषे गिन्या जो जीव सो सत्संगादिकनिमित्त-करि प्राप्त भई शुभवासनासैं कर्मउपासनाविषे प्रवृत्त होवैहै । जब ईश्वररूप दयालुपुरुषकी कृपाकरि चित्त-शुद्धिपूर्वक जिज्ञासाआदिक साधनकी प्राप्ति होवै । तब सो पुरुष जिज्ञासु हुया कर्मरूप बहिरंगसाधनका त्यागकरिके विवेकादिक अंतरंगसाधनकूं चित्तविषै धारै । परंतु अंतरंगसाधनकी प्राप्तिविना जो बहिरंग-साधनका त्याग करै तौ यह जीव उभयभ्रष्ट होयके संसाररूप कूपविषै डूबता है ॥

॥ २६ ॥ जैसैं कोई रसायनका वेत्ता स्थानधान-धारिसाधु था । सो अपने शिष्यकूं पास बिठायके प्रगलित ताम्रविषै वल्लीके रसकू निचोडिके रसायन बनायक दिखाया । फेर आप अनेकवर्षपर्यंत तीर्थ-यात्राविषै अटन कर्ताभया । पिछाडी तिस शिष्यके हाथसैं रसायन भया नहीं औ परमार्थका मार्ग बंद भया ॥ फेर जब गुरु आया तब कहा कि "ताम्रविषै इसीही वल्लीका रस सूधेहाथसैं डालनेकारि वा इसीही मिलौनीसैं रसायन होता नहीं औ उलटेहाथमैं वल्लीके रसके निचोडनेकारि वा भिन्नमिलौनीसैं रसायन होताहै औ दरिद्रता निवृत्त होतीहै" तब तिसनैं तिसीप्रकार किया ॥

हेतु हैं औ निष्कामकूं अंतःकरणकी शुद्धिके हेतु हैं। इसरीतिसैं निष्कामपुरुषके अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानके हेतु हैं। यातैं बहिरंगसाधन कहियेहैं। औ—

विवेकादिक अंतरंगसाधन कहियेहैं॥ बहिरंग नाम दूरिका है औ अंतरंग नाम समीपका है। यज्ञादिककर्म औ तिनके साधन स्त्रीधनपुत्रादिकनकूं त्यागै सो ज्ञानका अधिकारी है। ज्ञानके अधिकारीमैं यज्ञादिक संभवै नहीं यातैं दूरि हैं॥

॥१७॥ विवेकादिककी अंतरंगसाधनता॥

विवेकादिक ज्ञानके अधिकारीमैं संभवैहैं यातैं समीप हैं। तिनमैं बी इतना भेद है:—विवेकादिकनका श्रवणमैं उपयोग है औ श्रवणादिकनका ज्ञानमैं उपयोग है। यातैं विवेकादिकनकी अपेक्षातैं श्रवणादिक अंतरंग हैं। तिनकी अपेक्षातैं विवेकादिक बहिरंग हैं॥ यद्यपि विवेकादिक बी ज्ञानके अंतरंगसाधनही सर्वग्रंथनमैं कहेहैं। बहिरंग नहीं कहे। तथापि विवेकादिकनका ज्ञानके साधन श्रवणमैं प्रत्यक्षफल है औ श्रवणादिकनकी न्यांई विवेकादिक जिज्ञासुकूं उपादेय हैं। यज्ञादिकनकी न्यांई जिज्ञासुकूं हेय नहीं। यातैं अंतरंग कहेहैं। औ यज्ञादिकनकी अपेक्षातैं बी अंतरंग हैं। यातैं बी अंतरंगसाधनोंमैं कहेहैं॥

॥ १८ ॥ ज्ञानके मुख्य अंतरंगसाधन। (महावाक्य) ॥ श्रवण मनन औ निदिध्यासनके लक्षण ॥

औ विचारसैं देखिये तौ ज्ञानके मुख्य अंतरंगसाधन "तत्त्वमसि" आदिकमहावाक्य हैं, श्रवणादिक बी नहीं। काहेतैं? १ युक्तिसैं वेदांतवाक्यनका तात्पर्यनिश्चय श्रवण कहियेहैं॥

तैसैं शास्त्ररूप गुरुनै जीवकूं चित्तशुद्धिरूप रसायनकी सिद्धिअर्थ बोधन किया जो कर्म, सो कामनाकरि कियाहुया चित्तशुद्धिरूप रसायनका हेतु नहीं होवैहै। किंतु संसाररूप दरिद्रताका हेतु होवैहै औ यहही कर्म निष्कामताकरि कियाहुया चित्तशुद्धिरूप रसायनका हेतु होवैहै औ संसाररूप दरिद्रताकूं निवृत्त करैहै॥ इहां अनुपानभेदसैं औषधके गुणभेदका बी दृष्टांत है॥

॥ २७ ॥ विवेकादिक चारि साधनविना बहिर्मुखपुरुषकूं वेदांतशास्त्रका दीर्घकाल निरंतर आदरसहित होनेकरि निश्छिद्र श्रवण होता नहीं औ श्रवणविना मनन औ निदिध्यासन होता नहीं। यातैं मनन औ निदिध्यासनका हेतु जो श्रवण, तिसमैं विवेकादिक चारि साधनका उपयोग कहिये फल है॥

॥ २८ ॥ श्रवणआदिक विना दृढज्ञान होवै नहीं। यातैं श्रवणआदिक चारिका ज्ञानमैं उपयोग है॥

॥ २९ ॥ इहां "युक्ति" शब्दकरिके अग्निके निर्णायक धूमरूप लिंगकी न्यांई वेदांत जो उपनिषद् तिनका अद्वैततत्त्वरूप जो तात्पर्यार्थ है। ताके निर्णायक नाम निश्चायक जे षड्लिंग हैं, तिनका ग्रहण है॥ वे षड्लिंग ये हैं:—

१ उपक्रम कहिये प्रकरणका आरंभ औ उपसंहार कहिये प्रकरणकी समाप्ति, तिनकी एकरूपता प्रथमलिंग है॥
२ अभ्यास जो अद्वैतरूप अर्थका वारंवार पठन सो द्वितीयलिंग है॥
३ अपूर्वता नाम श्रुतिसैं भिन्न प्रमाणकी अविषयता किंवा स्वप्रकाशतारूप अलौकिकता; यह तृतीयलिंग है॥
४ अद्वैततत्त्वके ज्ञानके फलका प्रतिपादन चतुर्थलिंग है॥
५ भेदज्ञानकी निंदा औ अभेदज्ञानकी स्तुतिरूप अर्थवाद पंचमलिंग है॥
६ कार्यकारणके अभेदकी बोधकताकरि अद्वैतज्ञानके अनुकूलदृष्टांतरूप उपपत्ति षष्ठलिंग है॥

२ जीवब्रह्मके अभेदकी साधक औ भेदकी बाधक युक्तियोंसैं अद्वितीयब्रह्मका चिंतन मनन कहियेहै ॥ ३ अनात्माकारवृत्तिका व्यवधानरहित ब्रह्माकारवृत्तिकी स्थिति । निदि-

—इन षट्लिंगनकरि वेदांतवाक्यनका अद्वैतब्रह्मविषै तात्पर्यका निश्चय होवैहै । सोई **श्रवण** कहियेहै औ वेदांतशास्त्रका अभ्यास तिसका साधन है । यातैं सो बी **श्रवण** कहियेहै ॥ इन लिंगनका स्पष्टीकरण श्रुतिषड्लिंगसंग्रहविषै हमनैं कियाहै ॥

॥ ३० ॥ **जीवब्रह्मके अभेदकी साधक युक्तियां ये हैं:—**

१ जीव है सो ब्रह्मसैं अभिन्न है, सच्चिदानंदरूप होनेतैं; ईश्वरचेतनकी न्यांई जो सच्चिदानंदरूप नहीं सो ब्रह्मसैं अभिन्न बी नहीं । जैसैं घट है ॥ जातैं यह जीव ऐसा नहीं यातैं ब्रह्मसैं भिन्न बी नहीं । किंतु अभिन्न है ॥ इहां इस अनुमानमैं

(१) जीव **पक्ष** है ।
(२) ताका ब्रह्मसैं अभेद **साध्य** है ।
(३) सच्चिदानंदरूपता **हेतु** है । औ—
(४) ईश्वरचेतन अरु घट उदाहरण कहिये **दृष्टांत** हैं ।

इत्यादि **अनुमानप्रमाणरूप युक्तियां** हैं । औ—

२ (१) जैसैं घटमठउपाधिकूं दूरीकरीके घटाकाशमठाकाशका अभेद है । तैसैं बुद्धि औ मायाउपाधिकूं दूरिकरिके जीवब्रह्मका अभेद है। औ—

(२) जैसैं घटाकाश जलाकाश महाकाश औ मेघाकाश ये च्यारि आकाश हैं । तिनमैं जलाकाश औ मेघाकाशका अभेद नहीं बी है । तथापि घटाकाश औ महाकाशका नाममात्रसैं भेद है, परमार्थसैं नहीं ॥ तैसैं कूटस्थ जीव ब्रह्म औ ईश्वर, ये च्यारि चेतन हैं । तिनमैं जीव औ ईश्वरका अभेद नहीं बी है । तथापि तिनके अधिष्ठान लक्ष्यार्थरूप कूटस्थ औ ब्रह्मका नाममात्रसैं भेद है । परमार्थसैं नहीं । इत्यादि **उपमानप्रमाणरूप युक्तियां** हैं । औ—

३ **"नेह नानास्ति किंचन"** इत्यादिश्रुतिनमैं भेदका निषेध कियाहै, सो निषेध वास्तवअभेद होवै तौ संभवै । तिसविना संभवै नहीं । यातैं भेदके निषेधकी अनुपपत्तिके ज्ञानरूप अर्थापत्तिप्रमाणसैं जीवब्रह्मके अभेदका ज्ञानरूप अर्थापत्तिप्रमा होवैहै । इत्यादिक **अर्थापत्तिप्रमाणरूप युक्तियां** हैं ॥

इसरीतिसैं प्रत्यक्षप्रमाण औ शब्दप्रमाणतैं भिन्न युक्तिशब्दके वाच्य अनुमान उपमान अर्थापत्तिरूप तीनि प्रमाण अभदकी साधक युक्तियां हैं ॥

॥ ३१ ॥ **भेदकी बाधक युक्तियां ये हैं:—**

१ जीवब्रह्मका भेद मिथ्या है, औपाधिक होनैतैं; घटाकाशमहाकाशके भेदकी न्यांई । जो मिथ्या नहीं सो औपाधिक बी नहीं । जैसैं घटपटका व्यवहारदशाविषै भेद है । सो औपाधिक नहीं यातैं मिथ्या बी नहीं, जातैं यह भेद ऐसा नहीं यातैं मिथ्या बी नहीं ऐसैं नहीं । किंतु मिथ्याही है ॥ इहां—

(१) भेद **पक्ष** है ।
(२) मिथ्यात्व **साध्य** है ।
(३) औपाधिकता **हेतु** है । औ—
(४) दो आकाशनका भेद औ घटपटका भेद **उदाहरण** हैं ।

इत्यादि **अनुमानप्रमाणरूप युक्तियां** हैं ॥

इहां आदिशब्दकरि "मुमुक्षुसर्वस्वसारसंग्रह" उक्त औ "वेदांतपदार्थमंजूषा" उक्त औ तृतीयतरंगगत तृतीयचौपाईके टिप्पणविषै उक्त पंचभेदके निवर्तक पांचअनुमानमैंसैं चारिअनुमानोंका ग्रहण है ॥

२ (१) जैसैं बिंबप्रतिबिंबका भेद मिथ्या है । तैसैं जीवब्रह्मका भेद मिथ्या है ॥
(२) जैसैं अनेक घटाकाशका परस्परभेद मिथ्या है, तैसैं जीवनका परस्परभेद मिथ्या है ॥
(३) जैसैं स्वप्नके जीवनका औ स्वप्नके घटादिकका भेद मिथ्या है, तैसैं जीवजडका भेद मिथ्या है ॥
(४) जैसैं रज्जु औ कल्पितसर्पका भेद । किंवा साक्षीचेतनका औ स्वप्नप्रपंचका भेद मिथ्या है । तैसैं जडजगत् औ ईश्वरका भेद मिथ्या है ॥

ध्यासन कहियेहै॥ निदिध्यासनकी परिपाकअव-स्थाकूंही समाधि कहैहैं, यातें समाधिका बी निदिध्यासनमैं अंतर्भाव है। पृथक्साधन नहीं ॥

(५) जैसें रज्जुविषै कल्पित सर्पदंडादिकनका किंवा स्वप्नपदार्थनका परस्परभेद मिथ्या है। तैसें जडपदार्थनका परस्परभेद मिथ्या है ॥

इत्यादिक उपमानप्रमाणरूप युक्तियां हैं। औ

३ महावाक्यनमैं कह्या जो जीवब्रह्मका अभेद, सो प्रतीयमानभेदके मिथ्यात्वविना न बनताहुया जीवब्रह्मके भेदके मिथ्यात्वकूं कल्पताहै। इत्यादि अर्थापत्तिप्रमाणरूप युक्तियां हैं। औ—

४ जैसें जाग्रत्स्वप्नविषै उपाधिके होने जीव-ब्रह्मका भेद भासताहै। तैसें सुषुप्तिविषै उपाधिके अभाव हुये भेद भासता नहीं। यातें जीवब्रह्मके परमार्थिकभेदका अभाव है यह निश्चय होवैहै। इत्यादि अनुपलब्धिप्रमाणरूप युक्तियां हैं ॥

ये सर्व भेदकी बाधक युक्तियां हैं ॥

॥ ३२ ॥ साक्षात्कारविषै अनात्माकारवृत्तिके अंतरायसें रहित ब्रह्माकारवृत्तिकी स्थिति जो है सो नम्रशाखाकी न्याईं अप्रयत्नसें होवैहै औ निदिध्यासनविषै उक्तप्रकारकी स्थिति जो है, सो हस्तसें पकडिके नम्र करीहुई उच्चशाखाकी न्याईं प्रयत्नसें होवैहै औ हस्तसें पकडनेरूप प्रयत्नके त्याग किये जैसें उच्चशाखाकी नम्रता रहती नहीं। तैसें निदिध्यासनविषै प्रयत्नके त्याग किये उक्त-प्रकारकी स्थिति रहती नहीं ॥

किंवाः—साक्षात्कारवानकूं व्यवहारकालविषै कदा-चित् उक्तवृत्तिकी स्थितिके अभाव हुये कर्तव्यबुद्धि-करि पश्चात्ताप नहीं होवैहै औ निदिध्यासनवानकूं व्यवहारकालविषै कदाचित् उक्तवृत्तिकी स्थितिके अभाव हुये कर्तव्यबुद्धिकरि पश्चात्ताप होवैहै ॥

इतना साक्षात्कारसें निदिध्यासनका भेद है ॥

॥ ३३ ॥ त्रिपुटीके भावसहित जो सविकल्प-समाधि सोई निदिध्यासन है ॥ ताकी परिपाक-

ये श्रवण मनन निदिध्यासन ज्ञानके साक्षात् साधन नहीं। किंतु बुद्धिके दोष जो असंभावना औ विपरीतभावना, ताके नाशक हैं ॥

अवस्था "निर्विकल्पसमाधि" कहियेहै। यातें इहां "समाधि"शब्दकरिके त्रिपुटीके भानसें रहित निर्विकल्पसमाधिका ग्रहण है, सो निर्विकल्पसमाधि १ बाह्य २ आंतरभेदतें द्विविध है:—

१ मूर्तिआदिक बाह्य आलंबनके चिंतनतें जो होवै, सो बाह्यनिर्विकल्पसमाधि है। औ—

२ सर्वांतरअद्वैतब्रह्मके चिंतनतें जो होवै, सो आंतरनिर्विकल्पसमाधि है ॥

तिनमैं आंतरनिर्विकल्पसमाधि बी (१) साक्षात्कार-रूप औ (२) असाक्षात्काररूप भेदतें द्विविध है:—

(१) गुरुमुखद्वारा अर्थसहित महावाक्यके श्रवण-मननआदिरूप विचारपूर्वक अद्वैतब्रह्मके चिन्तनकरिके ब्रह्मआत्माके एकताके अपरोक्षभानसहित होवै, सो साक्षात्कार-रूप आंतरनिर्विकल्पसमाधि है। औ—

(२) विचारपूर्वक अद्वैतब्रह्मके चिन्तनकरिके बी एकताके परोक्षभानसहित जो होवै, सो असाक्षात्काररूप आंतरनिर्विकल्प-समाधि है ॥

(१) तिनमैं असाक्षात्काररूप जो है, सो साक्षा-त्काररूप समाधिका साधन है। यातें ताका निदिध्यासनमैं अंतर्भाव है, पृथक् साधन नहीं ॥ औ

(२) साक्षात्काररूप जो समाधि है, सो एकक्षणविषै उदय होवैहै औ द्वितीयक्षणविषै स्थित होयके आवरणके नाशका प्रारंभ करैहै औ तृतीयक्षणविषै आवरणका नाश होवैहै। तातें जीवन्मुक्ति होवैहै ॥ प्रथम यह क्षणस्थायी हुवा बी आवरणका भंग करैहै। यातें विद्वान्‌विषै ऋतंभराबुद्धिआदिक सिद्धिके उद्भवकी शंका नहीं है ॥ जैसें घटके साक्षात्कार हुये तत्काल घटका आवरण भंग होवैहै। ताके अर्थ पीछे बुद्धिके निरोध-का प्रयोजन नहीं। तैसें ब्रह्मके आवरणके भंग

१ संशयकूं असंभावना कहैहैं ।
२ विपर्ययकूं विपरीतभावना कहैहैं ॥

॥ १९ ॥ श्रवणादिककूं परंपरासैं ज्ञानकी हेतुता ॥

श्रवणसैं प्रमाणका संदेह दूरि होवैहै औ मननसैं प्रमेयका संदेह दूरि होवैहै ॥

१ वेदांतवाक्य[36] अद्वितीयब्रह्मके प्रतिपादक हैं अथवा अन्यअर्थके प्रतिपादक हैं? ऐसा प्रमाण[37]मैं संदेह होवै, सो श्रवणसैं दूरि होवैं हैं ॥ औ

२ जीवब्रह्मका अभेद सत्य है अथवा भेद सत्य है? ऐसा[38] प्रमेयमैं संदेह होवै । सो मननसैं दूरि होवैहै ॥

३ देहादिक सत्य हैं औ जीवब्रह्मका भेद सत्य है । ऐसैं ज्ञानकूं विपरीतभावना कहैहैं, ताहीकूं विप्रजै[40] कहैहैं । ताकूं निदिध्यासन दूरि करैहै ॥

इसरीतिसैं श्रवणादिक तीनू, असंभावना-विपरीतभावनाके नाशक हैं औ असंभावना औ विपरीतभावना ज्ञानके प्रतिबंधक हैं। यातैं ज्ञानका जो प्रतिबंधक ताके नाशद्वारा श्रवणादिक ज्ञानके हेतु कहियेहैं । साक्षात् हेतु नहीं ॥

॥ २० ॥ अवांतरवाक्यकूं परोक्षज्ञानकी औ महावाक्यकूं अपरोक्षज्ञानकी हेतुता ॥

ज्ञानके साक्षात्[41]साधन श्रोत्रसंबंधी वेदांत-

भये पीछे हठकरिके वृत्तिके निरोधका प्रयोजन नहीं। ऐसैं हुये बी पीछे सप्तमभूमिकापर्यंत जो वृत्तिका निरोध करियेहै, सो निरोध वासनाक्षय औ मनोनाशद्वारा कहिये मनके स्थूलभावकी निवृत्तिद्वारा जीवन्मुक्तिके विलक्षणआनंदका हेतु है; आवरणभंगका हेतु नहीं ॥

इसरीतिसैं समाधिका निदिध्यासनमैं अंतर्भाव है ॥

॥ ३४ ॥ "यह रज्जु है वा सर्प है?" इस रीतिसैं दोकोटी नाम दोपक्षकूं विषय करनेवाला ज्ञान **संशय** कहियेहै ॥

॥ ३५ ॥ "यह सर्प है" इस रीतिकी जो अविद्याकी वृत्ति, सो **भ्रांतिज्ञान** है । सोई **विपर्यय** औ **विपरीतभावना** कहियेहै । ताहीकूं **ज्ञानाध्यास** औ **विपरीतज्ञान** बी कहतेहैं ॥ ऐसा इहां मिथ्या-अनात्मारूप देहादिककी सत्यरूपता औ आत्मरूपताकरि जो ज्ञान है सो **विपर्यय** है ॥

॥ ३६ ॥ वेदका अंतभागरूप जे उपनिषद् किंवा वेदका अंत कहिये निर्णय जिसविषै है, ऐसा सूत्रभाष्यरूप उत्तरमीमांसाशास्त्र, सो **वेदांत** कहियेहै ॥ इनके वाक्य कहिये पदसमुदाय ॥

॥ ३७ ॥ प्रमाज्ञानका जो करण सो **प्रमाण** कहियेहै ॥ इहां वेदप्रतिपादित मोक्षआदिक पदार्थनका यथार्थअनुभवरूप जो शाब्दीप्रमा, ताका करणरूप जो उपनिषद्रूप शब्द सो **प्रमाण**शब्दका अर्थ है ॥ ताके स्वरूपमैं जो उक्तप्रकारका संशय होवैहै, सो **प्रमाणगत संशय** है ॥ विचारकरिके देखिये तौ जितने प्रमेयगत संशयके भेद शास्त्रविषै कहेहैं, उतनेही प्रमाणगत संशयके भेद सिद्ध होवैहैं ॥

॥ ३८ ॥ 'ऐसा' कहिये इससैं आदिलेकैं अनेकआकारवाला प्रमेयगत संशय है ॥ प्रमेयगत संशयके अनेकभेद हमने पंचदशीकी *भाषाटीका*विषै तथा बालबोधकी बालबोधनीटीकाविषै लिखेहैं ॥

॥ ३९ ॥ प्रमाज्ञानकरि वा ताके साधन प्रमाणकरि जानने योग्य जो मोक्षआदिक पदार्थ, सो इहां **प्रमेय** कहियेहै ॥

॥ ४० ॥ इहां "विपर्यय" शब्दका अपभ्रंशरूप "विप्रजै" शब्द लिख्याहै ॥

॥ ४१ ॥ जैसैं नेत्रविषै डार्‍या जो अंजन, सो नेत्ररोगकी निवृत्तिद्वारा सूर्यके दर्शनका साधन है । साक्षात् नहीं । सूर्यके दर्शनका साक्षात्साधन नेत्र हैं । तैसैं श्रवणआदिक ज्ञानके प्रतिबंधरूप रोगकी निवृत्तिद्वारा ज्ञानके साधन हैं । ज्ञानका साक्षात्साधन तौ श्रोत्रसंबंधि वेदांतवाक्य है ॥

वाक्य हैं ॥ सो वेदांतवाक्य दोप्रकारके हैं:—
१ एक अवांतरवाक्य है। २ एक महावाक्य है॥

१ परमात्माके अथवा जीवके स्वरूपका बोधक जो वाक्य, सो अवांतरवाक्य कहियेहै ॥

२ जीवपरमात्माकी एकताबोधक वाक्य महावाक्य कहियेहै ॥

१ अवांतरवाक्यसैं परोक्षज्ञान होवैहै ॥

२ महावाक्यसैं अपरोक्षज्ञान होवैहै ॥

१ "ब्रह्म है" इस ज्ञानकूं परोक्षज्ञान कहैहैं ॥

२ "ब्रह्म मैं हूं" इस ज्ञानकूं अपरोक्षज्ञान कहैहैं ॥

"त्वं ब्रह्म" ऐसा आचार्यनैं उच्चारण किया जो वाक्य, ताका श्रोताके कर्णसैं संबंध होतेही "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा अपरोक्षज्ञान श्रोताकूं होवैहै औ श्रोताके कर्णसैं वाक्यका संबंध हुएविना ज्ञान होवै नहीं; यातैं श्रोत्रसंबंधीवाक्यही ज्ञानका हेतु है ॥

१ श्रोत्रसंबंधिअवांतरवाक्य परोक्षज्ञानका हेतु है। औ—

२ श्रोत्रसंबंधि महावाक्य अपरोक्षज्ञानका हेतु है। महावाक्यसैं सर्वकूं अपरोक्षही ज्ञान होवैहै, परोक्ष नहीं होता ॥

॥ २१ ॥ वेदांतके एकदेशीका मत ॥
(केवलवाक्यसैं परोक्षज्ञान)

एकदेशीका यह मत है:—

१ श्रवणमननिदिध्यासनसहित वाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवैहै ॥

२ केवलवाक्यतैं परोक्षज्ञान होवैहै। अपरोक्ष नहीं ॥

जो केवलवाक्यतैंही अपरोक्षज्ञान होवै तौ श्रवणमननिदिध्यासन व्यर्थ होवैंगे। यद्यपि सिद्धांतमतमैं केवलवाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवैहै औ श्रवणादिकनतैं असंभावना-विपरीतभावनाका नाश होवैहै। यातैं श्रवणादिक व्यर्थ नहीं। तथापि जा वस्तुका अपरोक्षज्ञान होवै ताके विषै असंभावनाविपरीतभावना काहूकूं बी होवै नहीं यातैं केवलवाक्यतैं अपरोक्षज्ञानवादीके सिद्धांतमैं "तत्त्वमसि" आदिकवाक्यनतैं ब्रह्मक अपरोक्षज्ञान हुवेतैं पीछे असंभावनाविपरीत-भावना संभवै नहीं। यातैं श्रवणादिकसाधन व्यर्थ होवैंगे औ "केवलवाक्यतैं परोक्षज्ञान होवैहै। श्रवण मनन निदिध्यासन कियेतैं अपरोक्ष-ज्ञान होवैहै" या मतमैं श्रवणादिक व्यर्थ नहीं। यह बहुतग्रंथकारोंका मत है। तथापि यह मत समीचीन नहीं। काहेतैं:—

॥ ४२ ॥ सिद्धांतके एकदेशकूं आश्रयकरिके स्वतंत्र अधिक अर्थका निरूपण जिनमैं कियाहै, ऐसे जे पंचदशीआदिक वेदांतके प्रकरणग्रंथ हैं, तिनके कर्ता जे आचार्य, वे इहां एकदेशी कहियेहैं। भर्तृप्रपंचके अनुसारी नहीं

॥ ४३ ॥ केवलवाक्यतैं अपरोक्षज्ञानका वादी कहिये कहनेवाला जो सिद्धांती ताके मतमैं ॥

॥ ४४ ॥ मंदबोधवालेकूं श्रवणआदिक साधनविषै आलस्य मति होवै इस अभिप्रायसैं यह उक्त-प्रकारका संक्षेप शारीरकसैं भिन्न बहुत प्रकरणग्रंथनके कर्ताओंका मत है ॥

॥ ४५ ॥ दृढबोधवानकूं बी श्रवणआदिकविषै कर्त्तव्यबुद्धिका उद्भव मति होवै इस अभिप्रायसैं केवलवाक्यसैं अपरोक्षज्ञानके कहनेवाले सिद्धांतीके अनुसार यह समाधान कहियेहैं ॥

॥ २२ ॥ उक्त एकदेशीके मतकी असमीचीनता ॥ २२-२३ ॥

शब्दका यह स्वभाव है:—

१ जो वस्तु व्यवहित[४६] होवै ताका शब्दसैं परोक्षही ज्ञान होवैहै । किसीप्रकारतैं व्यवहितवस्तुका शब्दसैं अपरोक्षज्ञान होवै नहीं ॥ जैसैं व्यवहितस्वर्गका औ इंद्रादिक देवनका शास्त्ररूपी शब्दतैं परोक्षही ज्ञान होवैहै । औ—

२ जो वस्तु अव्यवहित होवै ताका शब्दसैं (१) अपरोक्षज्ञान औ (२) परोक्षज्ञान दोनूं होवैहैं ॥

(१) जहां अव्यवहितवस्तुकूं शब्द "अस्ति" रूपतैं बोधन करै तहां अव्यवहितका बी परोक्षज्ञान होवैहै ॥ जैसैं "दशमपुरुष[४७] है" इसरीतिसैं "अस्ति" रूपतैं बोधन किया जो अव्यवहितदशम ताका शब्दसैं परोक्षही ज्ञान हुवाहै ॥ औ

॥ ४६ ॥ देशकृत किंवा कालकृत अंतरायकूं व्यवधान कहैहैं ॥ व्यवधानवाले वस्तुकूं **व्यवहित** कहैहैं ॥

१ जो वस्तु दूरदेशविषै होवै सो **देशसैं व्यवहित** है औ जो वस्तु भूत किंवा भविष्यत्कालविषै होवै सो **कालकरि व्यवहित** है । औ—

२ व्यवहिततैं भिन्न जो अंतरायसैं रहित वस्तु सो **अव्यवहित** कहियेहैं ।

॥ ४७ ॥ इहां यह प्रसंग है:—जैसैं कोई दश बालक थे । वे इकट्ठे होयके देशांतरविषै विनोदअर्थ जाते थे । तहां मार्गमैं मृगजलकी नदी प्राप्त भई । ताकूं उल्लंघन करते भये । पीछे एक प्रमुखबालकनैं अन्य नव बालकनकी गणना करी औ आपकी गणना करी नहीं । तब कहने लग्या कि:—मेरे प्रियतम !

१ "दशमपुरुषकूं मैं जानता नहीं" यह **अज्ञान अवस्था** भई ।

२—३ तातैं "दशम है नहीं" औ "भासता नहीं" यह **द्विविध आवरण** भया ॥

४ तातैं रोदनादिरूप **विक्षेप** भया ॥

५ पीछे कोई आप्त नाम यथार्थवक्ता पुरुष आया । तिसनैं "दशम है" ऐसा अवांतरवाक्य कहा, ताकूं सुनिके तिस दशमपुरुषकूं स्वस्वरूपभूत दशमका "दशम है" ऐसा **परोक्षही ज्ञान** भयाहै ॥

६ पीछे "दशम कहां है ?" ऐसैं पूछेहुये तिस आप्तपुरुषनैं "दशम तूं है" ऐसा वचन कहा । तब "दशम मैं हूं" ऐसा **अपरोक्षज्ञान** भया ।

७ तातैं अज्ञानकृत आवरणसहित रोदनादि विक्षेपका नाश भया । तातैं हर्षरूप तृप्ति भई ॥

तैसैं यह पुरुष जो जीव सो स्थूलशरीरसहित अष्टपुरीरूप नवपुरुषनके साथि मिलिके संसाररूप मृगजलकी नदीविषै प्रवेशकूं पायके ताके मनुष्यदेहरूप तीरपर आयके कदाचित् जिज्ञासाकालविषै विचार करताहै, तब—

१ आपसैं भिन्न उक्त नव पुरुषनकूं जानताहै । परंतु तिनके ज्ञाता आपके निजरूप ब्रह्मकूं जानता नहीं । यह **अज्ञानअवस्था** भई ।

२—३ तातैं "ब्रह्म है नहीं" औ "भासता नहीं"-यह **द्विविध आवरण** भया ।

४ तातैं अर्थाध्यास औ ज्ञानाध्यासरूप **विक्षेप** कहिये शोक भया ॥

५ पीछे "ब्रह्म है" ऐसैं गुरुनैं अवांतरवाक्य कहा, ताकूं सुनिके "ब्रह्म है" ऐसा **परोक्षज्ञान** होवैहै ॥

६ पीछे "ब्रह्म कौन है ?" ऐसैं प्रश्नके किये गुरुनैं "तूं ब्रह्म है" ऐसा महावाक्य कहा । ताकूं सुनिके शिष्यकूं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा **अपरोक्ष ज्ञान** होवैहै ।

७ तातैं अज्ञानकृत आवरणसहित द्विविधअध्यासरूप विक्षेपका नाश होवैहै । तातैं अत्यंतहर्षरूप **निरंकुशातृप्ति** होवैहै ॥

इस **चिदाभासकी सातअवस्थाका** वर्णन आचार्यकृत उपदेशसहस्री तथा पंचदशी तथा विचारसागरके चतुर्थतरंगविषै सविस्तर लिख्याहै । इहां यह संक्षेपतैं रीतिमात्र जताईहै ॥

(२) जहां अव्यवहित वस्तुकूं "यह है" इसरीतिसैं शब्द बोधन करै तहां अव्यवहितका शब्दसैं अपरोक्षज्ञानही होवैहै, परोक्ष नहीं। जैसैं "दशमा तू है" इसरीतिसैं शब्दनैं बोधन किया जो दशमा, ताका अपरोक्षज्ञानहीं हुवाहै ॥

(१) तैसैं ब्रह्म सर्वका आत्मा होनैतैं अत्यंतअव्यवहित है, ताकूं अवांतरवाक्य "अस्ति" रूपतैं बोधन करैहैं। यातैं अव्यवहितब्रह्मका बी अवांतरवाक्यतैं परोक्षज्ञान होवैहै ॥ औ

(२) "दशमा तूं है" इस वाक्यकी न्यांई श्रोताका आत्मरूपकरिके ब्रह्मकूं महावाक्य बोधन करैहै। यातैं महावाक्यतैं अव्यवहितब्रह्मका परोक्षज्ञान संभवे नहीं। किंतु अपरोक्षज्ञानही होवैहै ॥

॥ २३ ॥ और जो कह्याः— "जा वस्तुका अपरोक्षज्ञान होवैं ताकेविषै असंभावना-विपरीतभावना होवैं नहीं। यातैं श्रवणादिक विफल होवैंगे" ॥

सो शंका बनै नहीं। काहेतैं जैसैं राजाकूं भर्तृका नेत्रसैं अपरोक्षज्ञान हुवेतैं बी विपरीतभावना दूरि हुई नहीं। तैसैं महावाक्यतैं ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान होवैहै। परंतु जाकी बुद्धिमैं असंभावना विपरीतभावनादोष होवैं ताका दोषरूप कलंकसहित ज्ञान फलका हेतु नहीं। सो दोषकी निवृत्तिवास्ते श्रवणादिक करै। जाकी बुद्धिमैं दोष नहीं सो न करै ॥

इस रीतिसैं ज्ञानके साधन महावाक्य हैं। श्रवणादिक नहीं। परंतु ज्ञानका प्रतिबंधक जो दोष है ताके नाशक हैं। यातैं श्रवणादिक ज्ञानके हेतु कहियेहैं। श्रवणादिकनके हेतु विवेकादिक हैं। यातैं विवेकादिक ज्ञानके साधन कहियेहैं॥ विवेकादिकच्यारिसाधनसंयुक्त जो पुरुष है सो अधिकारी है ॥ २३ ॥

॥ ४८ ॥ इहां यह रहस्य हैः—जैसैं दशमपुरुषकूं मन औ नेत्रकरिके प्रत्यक्ष करने योग्य संघातका मन औ नेत्ररूप सामग्रीके होते बी अपरोक्षबोध हुया नहीं। किंतु "दशमा तूं है" इस वाक्यतैंहीं अपरोक्षबोध हुयाहै। यातैं दशमके अपरोक्षबोधरूप प्रमाका शब्द करण है, तातैं सो प्रमाण है। ताका मन औ नेत्र सहकारी है ॥ तैसैं ब्रह्मके अपरोक्षबोधरूप प्रमाका करण महावाक्यरूप शब्द है। यातैं सो **प्रमाण** है। ताका साधनकरि संस्कृत मन सहकारी है ॥

॥ ४९ ॥ "अरे मैत्रेयि! आत्मा देखने योग्य है। श्रवण करने योग्य है। मनन करने योग्य है औ निदिध्यासन करनेकूं योग्य है" इत्यादिक श्रुतिकरि प्रतिपादित आत्मदर्शनके साधन श्रवणादिक विफल कहिये निष्फल होनेकूं योग्य नहीं। किंतु सफल होनेकूं योग्य हैं ॥ केवल महावाक्यकरि अपरोक्षज्ञानके मानेहुये श्रुतिउक्त श्रवणादिकसाधन निवर्त्तनीयदोषके अभावतैं रोगके अभाव हुये औषधसेवनकी न्यांई विफल कहिये निष्फल होवैंगे। यह अभिप्राय है ॥

॥ ५० ॥ भर्तृनामक मंत्रीका सविस्तर वृत्तांत आगे पंचमतरंगविषै कहियेगा। यातैं इहां ताका नाममात्र कहाहै ॥

॥ ५१ ॥ ज्ञानतैं पूर्व सगुणब्रह्मके साक्षात्कारपर्यंत जाकी उपासना होवै ताकूं **कृतोपासन** कहतेहैं, तातैं भिन्नकूं **अकृतोपासन** कहतेहैं, तिनमैं कृतोपासनके वैराग्यादिक साधन तीव्र हैं। यातैं प्रसिद्ध दीखतेहैं औ अकृतोपासनके साधन मंद हैं, यातैं प्रसिद्ध दीखते नहीं किंतु गुप्त रहतेहैं। परंतु जैसैं वस्त्रके एकपल्लेके पकडेहुये सारा वस्त्र पकड्या जाता है। तैसैं च्यारिसाधनमैंसैं एकसाधनके निश्चयके भये सर्वसाधन गुप्त हैं। ऐसा निश्चय होवैहैं। काहेतैं विवेकादिक च्यारि साधनकूं परस्परसहकारी होनेतैं। परंतु जिसकिसप्रकार श्रद्धालु औ व्यसनी तीव्रबुद्धिमान् पुरुषकूं बोध होवैहै। यह विवेक है ॥

॥ २४ ॥ ॥ अथ संबंधवर्णन ॥

दोहा--

प्रतिपादक प्रतिपाद्यता,
ग्रंथ ब्रह्म संबंध ॥
प्राप्य प्रापकता कहत,
फल अधिकृतको फंद ॥ २४ ॥

टीकाः—

१ ग्रंथका औ विषयका **प्रतिपाद्य–प्रतिपादकभाव संबंध** है । ग्रंथ प्रतिपादक है औ विषय प्रतिपाद्य है । जो प्रतिपादन करनैवाला होवै सो प्रतिपादक कहियेहै ॥ जो प्रतिपादन करनैकूं योग्य होवै सो प्रतिपाद्य कहियेहै ॥

२ अधिकारीका औ फलका **प्राप्यप्रापकभाव संबंध** है । फल प्राप्य है औ अधिकारी प्रापक है । जो वस्तु प्राप्त होवै सो प्राप्य कहियेहै । जाकूं प्राप्त होवै सो प्रापक कहियेहै ॥

३ अधिकारीका औ विचारका **कर्तृकर्त्तव्यभाव संबंध** है । अधिकारी कर्त्ता है औ विचार कर्त्तव्य है । जो करनैवाला होवै सो कर्त्ता कहियेहै औ करनेयोग्य होवै सो कर्त्तव्य कहियेहै ॥

४ ग्रंथका औ ज्ञानका **जन्यजनकभावसंबंध** है । विचारद्वारा ग्रंथ ज्ञानका जनक है ज्ञान जन्य है । जो उत्पत्ति करनेवाला होवै सो जनक कहियेहै । जाकी उत्पत्ति होवै सो जन्य कहियेहै ॥

इससैं आदि लेके और बी संबंध जानिलेनै ॥ २४ ॥

॥ २५ ॥ ॥ अथ विषयवर्णन ॥

दोहा--

जीवब्रह्मकी एकता,
कहत विषय जन बुद्धि ॥
तिनको जे अंतर लहे,
ते मतिमंद अबुद्धि ॥ २५ ॥

टीकाः—जीवब्रह्मकी एकता या ग्रंथका विषय है । जो प्रतिपादन करिये सो विषय कहियेहै । या ग्रंथविषे जीवब्रह्मकी एकता प्रतिपादन करियेहै । यातैं सो एकता ग्रंथका विषय है । सो एकता सर्ववेदके वचन प्रतिपादन करैहै । यातैं जीवब्रह्मका भेद कहैहैं ते पुरुष शठ हैं औ वेदके विरोधी हैं ॥ २५ ॥

॥ २६ ॥ अथ प्रयोजनवर्णन ॥ २६-३२ ॥

दोहा--

परमानंद स्वरूपकी,
प्राप्ति प्रयोजन जानि ॥
जगत समूल अनर्थ पुनि,
व्है ताकी अतिहानि ॥ २६ ॥

॥ ५२ ॥ इहां "आदि" शब्दकरिके श्रवणादिकसाधनोंका औ ज्ञानका तथा विज्ञानका औ मोक्षका साध्यसाधनभाव आदिक संबंध जानिलेने ॥

॥ ५३ ॥ जल औ सिंचनकी न्यांई होनेकरि योग्यतावाले परस्परउपयोगी दो पदार्थनका संबंध सिद्ध होवैहै । निरुपयोगी पदार्थनका नहीं ॥ यातैं योग्यताविना संबंधके असंभवके ज्ञानरूप अर्थापत्तिप्रमाणकरि तिनतिन पदार्थनकी योग्यताकी कल्पनारूप अर्थापत्तिप्रमा होवैहै । इस हेतुतैं शास्त्रविषे संबंधका व्यवहार लिख्याहै । अन्यप्रयोजनअर्थ नहीं ॥

॥ ५४ ॥ जे पुरुष परपुरुषके मुखके आगे प्रियवचन बोलतेहैं औ अन्यठिकाने ताका बहुत अप्रिय कर डालतेहैं, वे शठ कहियेहैं ॥

टीकाः—प्रपंचका कारण जो अज्ञान औ प्रपंच वह जन्ममरणरूपी दुःखका हेतु है। यातें अनर्थ कहियेहै। ता अनर्थकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्ति मोक्ष कहियेहै। सो १ ग्रंथका परमप्रयोजन है औ २ अवांतर-प्रयोजन ज्ञान है॥

१ जाविषै पुरुषकी अभिलाषा होवै, सो परमप्रयोजन कहियेहै औ ताकूं पुरुषार्थ बी कहियेहै। सो अभिलाषा दुःखकी निवृत्ति-विषै औ सुखकी प्राप्तिविषै सर्वपुरुषनकी होवैहै। सोई मोक्षका स्वरूप है॥

यातें परमप्रयोजन मोक्ष है औ ज्ञान नहीं है। काहेतें? सुखकी प्राप्ति औ दुःखकी निवृत्तिका साधन तो ज्ञान है औ सुखकी प्राप्ति वा दुःखकी निवृत्तिरूप ज्ञान नहीं। यातें अवांतर-प्रयोजन ज्ञान है॥

२ जा वस्तुद्वारा परमप्रयोजनकी प्राप्ति होवै सो अवांतरप्रयोजन कहियेहै। ऐसा ज्ञान है। काहेतें? ग्रंथकरिके ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप परम-प्रयोजनकी प्राप्ति होवैहै। यातें ज्ञान अवांतर-प्रयोजन है॥ २६॥

॥ २७॥ ग्रंथके प्रयोजनमैं शंका औ ताका समाधान॥ २७–३२॥

॥ शंकापूर्वक उत्तरका कवित्त॥

जीवको स्वरूप अति
  आनंद कहत वेद।
ताकूं सुखप्राप्तिको
  असंभव बखानिये॥
आगे जो अप्राप्तवस्तु
  ताकी प्राप्ति संभवत।
नित्यप्राप्त वस्तुकी तौ
  प्राप्ति किम मानिये?॥
ऐसी संका लेस आनि
  कीजै न विस्वास हानि।
गुरुके प्रसादतैं
  कुतर्क भले भानिये॥
करको कंकन खोयो
  ऐसो भ्रम भयो जिहिं।
ज्ञानतैं मिलत इम
  प्राप्त प्राप्ति जानिये॥

॥ २८॥ टीकाः—पूर्व कहा था "अनर्थकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है" सो बनै नहीं। काहेतें? सर्ववेद जीवकूं परमानंदस्वरूप वर्णन करैहैं औ तुम अंगीकार बी करोहो औ जो वस्तु अप्राप्त होवै ताकी प्राप्ति संभवैहै। सदा प्राप्तवस्तुकी प्राप्ति सर्वथा बनै नहीं। यातें "सदापरमानंदस्वरूप आत्माकूं परमानंदकी प्राप्ति कहना सर्वप्रकार-करिके असंभव है।" ऐसी कोऊ शंका करैहै॥

॥ २९॥ ता शंकाकूं सुनिके ग्रंथके प्रयोजन-मैं विश्वास दूरि नहीं करना। किंतु आत्म-विद्याके उपदेश करनेवाला जो गुरु है तिनकी कृपातैं शंकारूपी जो कुतर्क है सो दृष्टांतसैं दूरि करीदेना॥

सो दृष्टांत कहियेहैः—जैसैं काहूके हाथमैं

॥ ५५॥ "प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म" कहिये प्रज्ञान जो जीव सो आनंदरूप ब्रह्म है। इससैं आदिलेके चारि वेदनके वाक्य जीवकूं स्वभावसैं सिद्ध आनंदरूप कहेहैं॥

॥ ५६॥ वादीप्रतिवादी दोनूकूं संमत जो अर्थ सो दृष्टांत है। सोई उदाहरण है। दृष्टांतकरि सिद्धअर्थकूं दार्ष्टांत कहतेहैं। ताहीकूं सिद्धांत बी कहतेहैं॥

कंकन होवै । ताकूं ऐसा भ्रम होइ जावै जो "मेरा हाथका कंकन खोया गया" । तब वाकूं किसीके कहेसैं कंकनका ऐसा ज्ञान होजावै जो "मेरा कंकन हाथमैं है" । तब वह ऐसैं कहैहैः—"मेरा कंकन मिलगयाहै" ॥ इसरीतिसैं प्राप्त जो कंकन है ताकी बी प्राप्ति कहियेहै ॥

तैसैं परमानंदस्वरूप आत्माविषै अविद्याके बलसैं ऐसी भ्रांति होवैहैः—"आत्मा परमानंदस्वरूप नहीं है किंतु परमानंदस्वरूप ब्रह्म है ॥ ता ब्रह्मका औ मेरा वियोग होयगयाहै । उपासनाकरिके ता ब्रह्मकूं मैं प्राप्त होऊंगा" ॥

इस रीतिकी भ्रांति बहुतमूर्खप्राणियोंको होई रहीहै ॥ यद्यपि बहुतपंडित बी ऐसैं कहैहैं तथापि वे मूर्खही हैं । काहेतैं ? जो जीवब्रह्मका वियोग अंगीकार करैहैं ते मूर्ख कहियेहैं ॥ तिन पुरुषनकूं उत्तमसंस्कारसैं जो कदाचित् ब्रह्मज्ञानी आचार्यसैं वेदांतग्रंथके श्रवणकी प्राप्ति होयजावै । तब सुने अर्थकूं निश्चयकरिके कहैहैंः—"परमानंद हमारेकूं ग्रंथ औ आचार्यकी कृपासैं प्राप्त भयाहै" । यह उनका कहनैका अभिप्राय है । आत्मा तौ परमआनंदस्वरूप आगे बी था । परंतु "मेरा आत्मा परमआनंदरूप है" । इसरीतिसैं भान नहीं होवैथा । यातैं अप्राप्तकी न्याई था ॥ आचार्यद्वारा ग्रंथश्रवणसैं परमानंदका बुद्धिविषै भान होवैहै । यातैं परमानंदकी प्राप्ति कहैहैं ॥

इसरीतिसैं प्राप्तकी बी प्राप्ति बननैतैं परमानंदकी प्राप्तिरूप ग्रंथका प्रयोजन संभवैहै ॥

॥ ३० ॥ जैसैं प्राप्तकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है । तैसैं नित्यनिवृत्तिकी निवृत्ति बी प्रयोजन संभवैहै ॥

दृष्टांतः—जेवरीविषै सर्प नित्यनिवृत्त है औ जेवरीके ज्ञानसैं निवृत्त होवैहै । तैसैं आत्माविषै संसार नित्यनिवृत्त है । ताकी निवृत्ति आत्माके ज्ञानसैं होवैहै । यातैं नित्यनिवृत्तकी निवृत्ति औ नित्यप्राप्तकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है ॥ २७ ॥

॥ ३१ ॥ शंकाः—एक पदार्थ (मोक्ष) विषै भाव अभाव दोनूं बनै नहीं ॥

"कारणसहित जगत्की निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है" यह पूर्व कह्या सो संभवै नहीं । काहेतैं ? निवृत्ति नाम ध्वंसका है । ध्वंस औ नाश दोनों पर्यायशब्द हैं । "सो नाश अभावरूप है । यातैं मोक्षविषै भावरूपता औ अभावरूपता दोनों प्रतीत होवैहैं ॥

१ अनर्थकी निवृत्ति कहनैसैं अभावरूपता प्रतीत होवैहै । औ—

॥ ५७ ॥ व्यावहारिक किंवा प्रातिभासिक प्रपंचके वर्त्तमानकालविषै भावके होते बी पारमार्थिक सत्ताकरि प्रपंचका तीनिकालविषै निषेधमुखश्रुति औ विद्वानोंके अनुभवकरि सिद्ध अत्यंताभाव है सोई ताकी नित्यनिवृत्ति है । याहीकूं विषयरूप निवृत्ति बी कहतेहैं । उक्त नित्यनिवृत्तिवाला जो प्रपंच सो नित्यनिवृत्त नाम तुच्छ कहियेहै ॥ ता नित्यनिवृत्तप्रपंचकी निवृत्ति कहिये विद्यमानपरमार्थसत्ताकरि त्रयकालिकअभावका श्रुति युक्ति औ तत्त्वज्ञानकरिके निश्चय जो विषयिरूप निवृत्ति सो नित्यनिवृत्तकी निवृत्ति है ।

॥ ५८ ॥ जैसैं स्वगृहविषै गाड्याहुया निधि अज्ञानतैं अप्राप्तकी न्याई होवैहै । ताका जो अंजनादिक साधनसैं निश्चयरूप ज्ञान सो नित्यप्राप्तकी प्राप्ति है ॥ तैसैं परमानंदरूप जो ब्रह्म सो सर्वका अपना-आप होनैतैं नित्यप्राप्त है । तौ बी सो अज्ञानतैं अप्राप्तकी न्याई होवैहै । ताका तत्त्वज्ञानतैं "मैंही परमानंदरूप ब्रह्म हूं" ऐसा निश्चयरूप जो ज्ञान सो नित्यप्राप्तकी प्राप्ति है ।

२ परमानंदकी प्राप्ति कहनेतें भावरूपता प्रतीत होवैहै ॥

सो दोनूं एकपदार्थविषै बनै नहीं । काहेतें ? भावरूपता औ अभावरूपता दोनूं आपसमें विरोधी हैं जो विरोधीधर्म होवै सो एककालमें एकवस्तुविषै रहै नहीं । यातें ग्रंथका प्रयोजन संभवै नहीं" ऐसी कोऊ शंका करै है ॥

॥ ३२ ॥ ता शंकाके उत्तरका दोहा ॥

अधिष्ठानतैं भिन्न नहिं,
जगत निवृत्ति बखान ॥
सर्पनिवृत्ती रज्जु जिम,
भये रज्जुको ज्ञान ॥ २८ ॥

टीकाः—कारणसहित जगत्की निवृत्ति अधिष्ठानब्रह्मरूप है । यातें पृथक् नहीं ॥ जैसें सर्पकी निवृत्ति अधिष्ठानजेवरीरूप है ॥ "सारे-कल्पितवस्तुकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवैहै ॥ यातें पृथक् नहीं" । यह भाष्यकारका सिद्धांत है । यातें इसस्थानविषै अनर्थकी निवृत्ति ब्रह्म-रूप है । काहेतें ? जो सर्पअनर्थका अधिष्ठान ब्रह्म है सो ब्रह्म भावरूप है । यातें अनर्थकी निवृत्ति भावरूप होनेतें ग्रंथका प्रयोजन बनैहै । यह वार्त्ता सिद्ध भई ॥ २८ ॥

दोहा—

जो जन प्रथमतरंग यह,
पढ़ै ताहि तत्काल ॥
करहु मुक्त गुरुमूर्ति व्है,
दादू दीनदयाल ॥ २९ ॥

इति श्रीविचारसागरे अनुबंधसामान्य-निरूपणं नाम प्रथमस्तरंगः समाप्तः ॥ १ ॥

॥ ५९ ॥ कल्पित अनर्थकी निवृत्तिविषै दोपक्ष हैं:—

१ "ज्ञातत्वधर्मकरि उपलक्षित अधिष्ठानरूप कल्पितकी निवृत्ति है" । यह प्रथमपक्ष है । औ—

२ "कल्पितकी निवृत्ति कहिये अभाव, सो अधिष्ठान कहिये अधिकरणतें भिन्न अनिर्वचनीय है"। यह द्वितीयपक्ष है ॥

तिनमैं प्रथमपक्ष भाष्यकारका है औ द्वितीयपक्ष न्यायवाचस्पत्यकार जो वाचस्पतिमिश्र ताका है ॥

३ जैसैं प्रथमपक्षविषै "पुरुष स्थाणु है" इस वाक्यका "पुरुषका अभावरूप स्थाणु है" ऐसा बाध-सामानाधिकरण्यकरिके अर्थ होवैहै । तैसैं "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" कहिये यह सर्वजगत् निश्चयकरिके ब्रह्म है । इस विधिमुखताकरिके सर्वजगत्की ब्रह्मरूपता-के प्रतिपादक श्रुतिवाक्यका बी "इस प्रतीयमान सर्व-जगत्का अभावरूप ब्रह्म है" ऐसा "सर्व" औ "ब्रह्म" इन समानविभक्तिवाले नाम प्रथमाविभक्तिवाले दो-पदनके बाधसामानाधिकारण्यरूप संबंधकरिके अर्थ होवैहै । यातें कल्पित अनर्थकी निवृत्ति कहिये परमार्थ-सत्तासैं अत्यंताभाव, ताकूं ब्रह्मरूप होनेकरि मोक्ष-विषै भावरूपता औ अभावरूपताके अभावतैं द्वैतापत्तिकी शंका नहीं है । औ—

२ द्वितीयपक्षविषै "पुरुष स्थाणु है" इस वाक्यका "पुरुषके अभाववाला स्थाणु है" ऐसा अर्थ होवैहै औ "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इस श्रुतिवाक्यका बी "इस प्रतीयमान सर्वजगत्के अभाववाला ब्रह्म है" । ऐसा अर्थ होवैहै ।

उक्त अभावरूप निवृत्ति बी अनिर्वचनीय नाम मिथ्या है । जो वस्तु अनिर्वचनीय होवै सो वास्तव-अधिष्ठानतैं भिन्न नहीं होवैहै किंतु अधिष्ठानरूप होवैहै । यातैं मोक्षविषै द्वैतापत्तिकी शंका नहीं है ॥

ये कहे जे दोपक्ष, तिनमैं प्रथम पक्षविषै लाघव है औ द्वितीयपक्षविषै गौरव है । यातैं प्रथमपक्ष श्रेष्ठ है । दोनूंरीतिसैं मोक्षविषै द्वैतापत्तिकी शंका नहीं है ॥

श्रीविचारसागर।

द्वितीयस्तरंगः ॥ २ ॥

॥ अथ अनुबंधविशेषनिरूपणम् ॥

॥ दोहा ॥

याके प्रथमतरंगमैं,
किय अनुबंध विचार ॥
कहुं व द्वितीयतरंगमैं,
तिनहीको विस्तार ॥ १ ॥

॥ ३ ॥ कारणसहित जगत्‌निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथमअंशकी इच्छा बनै नहीं ॥ ३३—३६ ॥

टीकाः—च्यारिसाधनयुक्त अधिकारि कह्या। तिन च्यारिसाधनमें मुमुक्षुता गिनी है। मोक्षकी इच्छाका नाम मुमुक्षुता है। कारणसहित जगत्‌की निवृत्ति औ ब्रह्मकी प्राप्ति मोक्ष कहियेहै। ताकेविषै कारणसहित जगत्‌की निवृत्तिरूप मोक्षका अंश, ताकूं कोऊ चाहै नहीं। यह वार्त्ता—

॥ ३४ ॥ पूर्वपक्षी प्रतिपादन करैहै ॥

॥अथ अधिकारीखंडन(१)॥३४—३८॥

॥ दोहा ॥

मूलसहित जगध्वंसकी।
कोउ करत नहिं आस ॥
किंतु विवेकी चहत हैं।
त्रिविधिदुखनको नास ॥ २ ॥

टीकाः—मूलअविद्यासहित जो जगत्‌का ध्वंस कहिये निवृत्ति, ताकी आस कहिये इच्छा कोउ पुरुष करै नहीं है। किंतु कहिये कहा करैहै? तीनिप्रकारके जे दुःख हैं, तिनका नाश विवेकीपुरुष चाहैहै॥ याका यह अभिप्राय हैः—दुःख तीनिप्रकारके हैंः— १ एक

॥ ६० ॥ जैसैं काहू पुरुषनैं गृहके रचनैका आरंभ कियां होवै ताकूं दूसरा प्रतिपक्षीपुरुष रोकदेवै, तब वह फिरियादकरिके फेर निःशंक होयके गृहकूं रचताहै॥ तैसैं ग्रंथकारनैं याके प्रथमतरंगविषै च्यारीअनुबंधनका सामान्यसैं निरूपण किया। सो मानों इस ग्रंथरूप गृहके रचनेका आरंभ कियाहै॥ ताकूं द्वितीयतरंगके पूर्वार्धसैं पूर्वपक्षीनैं रोक दिया। तब सिद्धांती जो ग्रंथकार तिसनैं श्रुतिरूप राजाके अनुसारी युक्तिरूप मंत्रीके पास फिरियादकरिके ताके बलसैं फेर निःशंक होयके च्यारिअनुबंधनका निरूपणरूप इस ग्रंथके रचनैका आरंभ कियाहै। इसरीतिसैं या द्वितीयतरंगविषै च्यारीअनुबंधनका विशेषकरिके निरूपण कियाहै॥

॥ ६१ ॥ जैसैं पुरुष भिक्षुकोंके भयसैं अन्नके त्यागकूं इच्छता नहीं औ यूकाके भयसैं वस्त्रके त्यागकूं इच्छता नहीं औ पशुपक्षीनके भयसैं क्षेत्रके

तौ अध्यात्मदुःख है । २ दूसरा अधिभूतदुःख है औ ३ तीसरा अधिदैवदुःख है ॥

१ रोगक्षुधादिकनतैं जो दुःख होवै सो [62]अध्यात्मदुःख कहियेहै ।

२ चोरव्याघ्रसर्पादिकनतैं जो दुःख होवै सो [63]अधिभूतदुःख कहियेहै ।

३ यक्षराक्षसप्रेतग्रहादिक औ शीतवातआतपतैं जो दुःख होवै सो [64]अधिदैवदुःख कहियेहै ॥

इसरीतिसैं तीनभांतिके जे दुःख हैं, तिनके नाशकी सर्वपुरुषनकूं इच्छा है । दुःखसे भिन्न जो पदार्थ हैं, तिनके नाशकी विवेकीपुरुष इच्छा करै नहीं, यातैं अज्ञानसहित सकलजगत्की निवृत्तिकी काहूकूं इच्छा बनै नहीं । औ-

॥३५॥ जो सिद्धांती ऐसैं कहैः-"यद्यपि सकलपुरुष दुःखनिवृत्तिकी इच्छा करैहैं । तथापि अज्ञानसहितसर्वजगत्की निवृत्तिविना दुःखनकी निवृत्ति होवै नहीं । यातैं दुःखनिवृत्तिके निमित्त अज्ञानसहित जगत्की निवृत्तिकूं बी चाहैहैं" ॥

॥३६॥ सो बनैं नहीं । काहैतैं ? जे आयुर्वेदमैं औषध कहैहैं तिनतैं रोगजन्य दुःखकी निवृत्ति होवैहै औ भोजनसैं क्षुधाजन्यदुःखकी निवृत्ति होवैहै ॥ इसरीतिसैं अपनै अपनै उपायनतैं सर्वदुःखनकी निवृत्ति होवैहै, यातैं अज्ञानसहित जगत्की निवृत्तिविना बी दुःखनकी निवृत्ति बनैहै ॥ दुःखनकी निवृत्तिके निमित्त अज्ञानसहितजगत्की निवृत्तिकी चाहना [65]बनै नहीं ॥ "कारणसहित जगत्की निवृत्ति औ ब्रह्मकी प्राप्ति मोक्ष कहियेहै" ताकेविषै कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके अंशकी बी इच्छा काहूकूं बनै नहीं, यह वार्ता प्रथमदोहाविषै कही ॥

॥ ३७ ॥ ब्रह्मप्राप्तिरूप मोक्षके द्वितीयअंशकी बी इच्छा काहूकूं बनै नहीं । यह वार्ता

पूर्वपक्षी कहैहै—

दोहा—

किय अनुभव जा वस्तुको,
ताकी इच्छा होइ ॥
ब्रह्म नहीं अनुभूत इम,
चहै न ताकूं कोइ ॥ ३ ॥

टीकाः-जा वस्तुका अनुभव कहिये ज्ञान होय, ता वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा होवैहै । जा वस्तुका ज्ञान होवै नहीं, ताकी प्राप्तिकी इच्छा बी

त्यागकूं इच्छता नहीं । तैसे विवेकीपुरुष बी त्रिविधदुःखके भयसैं कारणसहित जगत्के नाशकूं इच्छता नहीं । किंतु त्रिविधदुःखके नाशकूं इच्छताहै । यह सांख्यमतके अनुसारिनकी शंका है ॥

॥ ६२ ॥ आत्माकूं आश्रयकरिके वर्त्तनैवाला जो स्थूलसूक्ष्मशरीर, सो अध्यात्म कहियेहै । तिससैं जन्य जो दुःख सो अध्यात्मदुःख कहियेहै । ताहीकूं अध्यात्मताप बी कहतेहैं ॥

॥ ६३ ॥ स्वसंघाततैं भिन्न होवै औ चक्षुइंद्रियका विषय होवै सो अधिभूत कहियेहै । तिसतैं जन्य जो दुःख सो अधिभूतदुःख कहियेहै ॥

॥ ६४ ॥ स्वसंघाततैं भिन्न होवै औ चक्षुइंद्रियका अविषय होवै सो अधिदैव कहियेहै । तिसकी प्रेरणासैं जन्य जो दुःख सो अधिदैवदुःख कहियेहै ॥

॥ ६५ ॥ पूर्व अनुभव किये वस्तुकी इच्छा होवैहै । ब्रह्मरूप अधिष्ठानके ज्ञानसैं कारणसहित जगत्की निवृत्तिका अनुभव पूर्व कबी किया नहीं । यातैं कारणसहित जगत्की निवृत्तिकी इच्छा काहूकूं बनै नहीं । यह पूर्वपक्षीकी शंकाका उत्तेजन है ॥ याका समाधान आगे ९१ वें टिप्पणविषै कहियेगा ॥

बी होवै नहीं । जैसैं अन्यदेशके अनंतपदार्थ अज्ञात हैं, तिनकी प्राप्तिकी इच्छा काहूपुरुपकूं होवै नहीं औ अधिकारीपुरुपकूं ब्रह्मका ज्ञान है नहीं औ जाकूं ब्रह्मका ज्ञान है सो अधिकारी नहीं किंतु मुक्त है । ताकूं ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं, यातैं वेदांतश्रवणतैं पूर्व अज्ञात जो ब्रह्म, ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं । इसरीतिसैं अज्ञानसहित जगत्की निवृत्ति औ ब्रह्मकी प्राप्तिरूप जो मोक्ष, ताकी इच्छा काहूकूं बनै नहीं यातैं मुमुक्षु कोउ है नहीं ॥३॥

॥ ३८ ॥ मुमुक्षुता बनै नहीं, यातैं वैराग्यादिक बी बनै नहीं ॥

अन्यरीतिसैं अधिकारीका अभाव

पूर्वपक्षी प्रतिपादन करैहै ।

दोहा—

चहत विषयसुख सकल जन,
नहीं मोच्छको पंथ ॥
अधिकारी यातैं नहीं,
पढै सुनै जो ग्रंथ ॥ ४ ॥

टीकाः—सर्वपुरुप विपयसुखकूं चाहैहैं । और जो कोई सकलविपयनका त्यागकरिके तपविषै आरूढ है, सो बी परलोकके उत्तमभोगनकी इच्छाकरिके नानाक्लेश संहारै है । यातैं इसलोकका अथवा परलोकका विपयसुख सर्व चाहैहैं । सो विपयसुख मोक्षविषै है नहीं, यातैं मोक्षका पंथ कहिये साधन, ताकूं कोई पुरुप चाहै नहीं । इसरीतिसैं मोक्षकी इच्छारूप मुमुक्षुता बनै नहीं औ सकलपुरुपनकूं विपयसुखकी इच्छा होवैहै, यातैं वैराग्यशमदमउपरति बी काहूविषै बनै नहीं । यातैं चतुष्टयसाधनसहित अधिकारीका अभाव होनैतैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है ॥ ४ ॥

॥ अथ विषयखंडन (२) ॥ ३९-४४ ॥

॥ पूर्वपक्ष ॥

॥ ३९ ॥ जीवब्रह्मकी एकता बनै नहीं

दोहा—

जीवब्रह्मकी एकता,
कह्यो विषय सो कूर ॥
क्लेसरहित विभु ब्रह्म इक,
जीव क्लेसको मूर ॥ ५ ॥

टीकाः—पूर्व कह्या जो "जीवब्रह्मकी एकता या ग्रंथका विषय है" सो संभवै नहीं । काहेतैं ? १ ब्रह्म तौ (१) [१] अविद्यां[६६] ।

॥ ६६ ॥ जो विचारके कियेहुए होवै नहीं, सो अविद्या कहियेहै । सो अविद्या १ मूला, २ तूला, भेदतैं दोभांतिकी है ॥

१ जो शुद्धचैतन्यकूं ढांपै सो मूलाअविद्या है ॥

२ जो घटादिउपाधिवाले चैतन्यकूं ढांपै सो तूलाअविद्या है ।

तिनमैं मूलाअविद्या बी (१) कार्य (२) कारणभेदतैं दोभांतिकी है ॥

(१) अन्यविषै अन्यकी बुद्धिरूप प्रतिति जो है सो कार्यरूप अविद्या है । औ—

(२) आवरणविक्षेपशक्तिवाली अनादिभावरूप जो है सो कारणरूप अविद्या है ।

तिनमैं कार्यरूप अविद्या बी—

[१] अनात्मादेहादिकविषै आत्मबुद्धि औ—

[२] अनित्यआकाशादिकविषै नित्यबुद्धि औ—

[३] दुःखरूप धनादिकविषै सुखबुद्धि औ—

[४] अशुचि जो स्त्रीपुत्रके मुखचुंबनआदिक तिसविषै शुचिबुद्धि ।

—इसभेदतैं च्यारिभांतिकी है ॥ इहां पंचक्लेशके प्रसंगमैं उक्तच्यारिप्रकारकी कार्यअविद्याकाही ग्रहण है ॥

[२] अस्मिता । [३] राग । [४] द्वेष । [५] अभिनिवेश । इन पंचक्लेशनतें रहित है । औ (२) विभु कहिये व्यापक है । (३) एक है। सजातीयभेदरहित है। काहेतें ? ब्रह्मके सजातीय और ब्रह्म है नहीं । औ—

२ जीवविषै (१) सर्वक्लेश हैं । औ (२) परिच्छिन्न है । औ (३) जीव नाना हैं । काहेतें ? जितनें शरीर हैं उतनें जीव हैं । जो सर्वशरीरविषै जीव एक होवै तौ एकशरीरमें सुख अथवा दुःख होनैतें सर्वशरीरविषै सुख औ दुःख हुवाचाहिये ॥ औ—

॥ ४० ॥ जो वेदांती कहैहैं:—"सुखसें आदिलेके अंतःकरणके धर्म हैं, सो अंतःकरण नाना हैं, यातें एकके सुखीदुःखी होनैतें सर्व सुखीदुःखी नहीं होवैहैं औ साक्षी सुखदुःखतें रहित है, एक है औ सर्वक्लेशनतें रहित है औ ताकी ब्रह्मके साथ एकता बनैहै" ॥

॥ ४१ ॥ साक्षीका नानापना ॥४१—४४ ॥

सो वार्त्ता बनै नहीं । काहेतें?—जो कर्त्ताभोक्ता जीव है तिसतें भिन्न साक्षी वंध्यापुत्रके समान है । औ जो साक्षी अंगीकार बी करो सो बी एक बनै नहीं । नानासाक्षी माननें होवैंगे । काहेतें ? यह वेदांतका सिद्धांत है:—"अंतःकरण औ सुखदुःखसें आदिलेके अंतःकरणके धर्म, ये इंद्रिय औ अंतःकरणके विषय नहीं किंतु साक्षीके विषय हैं । काहेतें ? इंद्रिय तौ पंचीकृतभूतनकूं विषय करैहैं । यामैं इतना भेद है:—औ तिनके कार्य—

१ नेत्रइंद्रिय तौ रूपवान् जो वस्तु है ताके रूपकूं औ रूपके आश्रयकूं दोनूंवाकूं विषय करैहै । जैसें नीलपीतादिक घटका रूप औ तिस रूपके आश्रय घटकूं नेत्रइंद्रिय विषय करैहै औ—

२ त्वचाइंद्रिय बी स्पर्शकूं औ ताके आश्रयकूं दोनूंवाकूं विषय करैहै । औ—

३-४-५ रसना, घ्राण, श्रवण, ये तीनि तौ रस गंध शब्दमात्रकूं विषय करैहैं । तिनके आश्रयकूं विषय करै नहीं । यातें इन तीनूंवासैं तौ अंतःकरणका ज्ञान बनै नहीं । औ—

नेत्रसैं तथा त्वचासैं अंतःकरणका ज्ञान बनै

॥ ६७ ॥ बुद्धि औ आत्माकी एकताकी जो प्रतीति सो अस्मिता है । याहीकूं सामान्यअहंकार बी कहतेहैं ॥

॥ ६८ ॥ अनुकूलताके ज्ञानसैं जन्य जो बुद्धिवृत्ति सो राग है ॥

॥ ६९ ॥ प्रतिकूलवस्तुके ज्ञानसैं जन्य जो बुद्धिवृत्ति सो द्वेष है ॥

॥ ७० ॥ मरणके भयसैं शरीरकी रक्षाविषै जो आग्रह सो अभिनिवेश है ॥

॥ ७१ ॥ इहां "रूप" शब्दकरिके रूपत्वजातिका औ रूपत्वके व्याप्य नाम अंतर्गत शुक्लत्व नीलत्व आदिक सप्तजातिनका बी ग्रहण है ॥

॥ ७२ ॥ इहां "स्पर्श" शब्दकरिके स्पर्शके आश्रय स्पर्शत्वजातिका औ स्पर्शत्वके व्याप्य कठिनत्व कोमलत्व आदिक च्यारीजातिनका बी ग्रहण है ॥

॥ ७३ ॥ इहां रस गंध औ शब्दगुण, इन तीनों करिके क्रमतें रसत्व गंधत्व अरु शब्दत्व, इन तीनजातिनका औ रसत्वके व्याप्य मधुरत्वआदिक षट्जातिनका औ गंधत्वके व्याप्य सुगंधत्व अरु दुर्गंधत्वरूप दो जातिनका औ शब्दत्वरूप व्यापक नाम अधिकदेशवर्त्ती जातिके व्याप्य कहिये न्यूनदेशवर्त्ती तारतम्य (अधिकत्व अरु मंदत्व) रूप दोजातिका ग्रहण है । सो यथायोग्य जानिलेना ॥

नहीं । काहेतैं ? पंचीकृतभूत अथवा पंचीकृतभूतनका कार्य जो रूपवान् अथवा स्पर्शवान् होवै सो नेत्र औ त्वचाका विषय होवैहै । अंतःकरण अपंचीकृतभूतनका कार्य है । यातैं नेत्र औ त्वचाका वी विषय नहीं । इसीकारणतैं अपंचीकृतभूतनका कार्य नेत्रइंद्रिय वी नेत्रका विषय नहीं है । औ बाह्यवस्तु इंद्रियका विषय होवैहै । औ अंतःकरण इंद्रियकी अपेक्षातैं अंतर है यातैं वी इंद्रियनका विषय नहीं औ—

॥ ४२ ॥ **अंतःकरणकी वृत्तिका वी अंतःकरण विषय नहीं** । काहेतैं ? अंतःकरण वृत्तिका आश्रय है । यातैं अंतःकरण अपनी वृत्तिका विषय बनै नहीं ॥ जैसैं अग्नि दाहका आश्रय है सो दाहका विषय नहीं होवैहै, किंतु अग्निसैं भिन्न जो काष्ठसैं आदिलेके वस्तु है, सो दाहका विषय होवैहै । तैसैं अंतःकरणसैं भिन्न जो वस्तु हैं सो अंतःकरणजन्य वृत्तिके विषय हैं औ अंतःकरण नहीं ॥

॥ ४३ ॥ **तैसैं अंतःकरणके धर्म वी अंतःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं** । काहेतैं ? अंतःकरणकूं विषय करनै वास्तै जो अंतःकरणकी वृत्ति होवै तौ अंतःकरणके धर्म जो सुखादिक हैं तिनकूं वी विषय करै ॥ सो अंतःकरणकूं विषय करनैवाली वृत्ति तौ अंतःकरणके सन्मुख होवै नहीं, यातैं अंतःकरणके धर्म वी अंतःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं । औ—

यह नियम है:—जो वृत्तिके आश्रयसैं किंचित् दूरिवस्तु होवै सो वृत्तिका विषय होवैहै । जो वस्तु वृत्तिके आश्रयसैं अत्यंतसमीप होवै सो वृत्तिका विषय होवै नहीं ॥ जैसैं नेत्रकी वृत्तिका आश्रय जो नेत्र ताके अत्यंतसमीप अंजन नेत्रकी वृत्तिका विषय नहीं । तैसैं अंतःकरणकी वृत्तिका आश्रय जो अंतःकरण ताके अत्यंतसमीप जो सुखसैं आदिलेके धर्म सो अंतःकरणकी वृत्तिके विषय बनै नहीं ॥ इसरीतिसैं धर्मसहित अंतःकरणका इंद्रियतैं अथवा अपनैतैं भान बनै नहीं किंतु साक्षीके विषय हैं ॥

॥ ४४ ॥ **सो साक्षी एक अंगीकार करैं**

॥ ७४ ॥ यद्यपि गृहका मध्य जैसैं अंधकारका आश्रय है औ विषय वी है । चेतन अज्ञानका आश्रय है औ विषय वी है । तैसैं अंतःकरण वृत्तिका आश्रय है तौ वी वृत्तिका विषय होवैगा । तथापि यामैं यह रहस्य है:—गृहके मध्य औ अंधकारआदिककी न्यांई जहां आश्रय अरु आश्रितका भेद है तहां तो एकही वस्तु आश्रय औ विषय होवैहै । औ जहां अग्नि औ दाहकी न्यांई आश्रय अरु आश्रितका भेद नहीं तहां आश्रय औ विषय एक होवै नहीं । जातैं अंतःकरणतैं वृत्तिका भेद नहीं तातैं अंतःकरण वृत्तिका उपादानरूप आश्रय है । परंतु विषय बनै नहीं ॥

॥ ७५ ॥ जैसैं नेत्रइंद्रिय अपनैतैं दूरस्थितअन्यसर्वरूपवान् वस्तुकूं प्रकाशताहै, परंतु अपनै अंधत्वमंदत्वपटुत्वरूप धर्मसहित आपकूं प्रकाशता नहीं । औ नेत्रदेशमैं स्थित जो अंतःकरण सो उक्तधर्मसहित नेत्रकूं प्रकाशताहै ।

तैसैं अंतःकरण वी अपनैतैं भिन्न सर्व जडवस्तुनकूं प्रकाशताहै । परंतु सुखादिधर्मसहित आपकूं आप प्रकाशता नहीं । किंतु साभासअंतःकरणविषै आरूढ जो साक्षी सो धर्मसहित अंतःकरणकूं प्रकाशताहै । यातैं साभासअंतःकरण **आपेक्षिकस्वयंप्रकाश** है । निरपेक्षस्वयंप्रकाश नहीं । औ—

साक्षी अपनै प्रकाशविषै अन्यप्रकाशकी अपेक्षा करता नहीं औ सर्वका प्रकाशक है । यातैं **निरपेक्षस्वयंप्रकाश** है ।

या मूलग्रंथउक्त शंकाका समाधान इसी अभिप्रायसैं आगे विषयमंडनके प्रसंगमैं कहियेगा । तातैं ग्रंथके विषयमैं भ्रम करना योग्य नहीं ॥

तौ जैसें एक अंतःकरणके सुखदुःखका साक्षीसें भान होवैहै, तैसें सर्वके सुखदुःखका भान हुवा चाहिये । यातैं साक्षी नाना हैं, जब नानासाक्षी अंगीकार करिये तब दोष नहीं। काहेतें? जा साक्षीकी उपाधि अंतःकरण है ता साक्षीसें अपनी उपाधिके धर्मका भान होवैहै। यातैं सर्वके सुखदुःखका भान होवै नहीं ॥

इसरीतिसें नाना जो साक्षी तिनूंकी एक ब्रह्मके साथ एकता बनै नहीं ॥ ५ ॥

॥ अथ प्रयोजनखंडन (३) ४५-५९-॥

॥ पूर्वपक्ष ॥

॥ ४५ ॥ मिथ्याबंधकी सामग्री नहीं है। यातैं ताकी निवृत्ति बनै नहीं ॥

॥ दोहा ॥

बंधनिवृत्ति ज्ञानतैं,
बनै न विन अध्यास ॥
सामग्री ताकी नहीं,
तजो ज्ञानकी आस ॥ ६ ॥

टीकाः—अहंकारसैं आदिलेके जो अनात्मवस्तु हैं, सो बंध कहियेहै ॥ सो बंध जो अध्यासरूप होवै तौ ज्ञानतैं निवृत्त होवै औ अध्यासरूप नहीं होवै तौ ज्ञानतैं निवृत्त होवै नहीं। काहेतें? ज्ञानका यह स्वभाव है:— जा वस्तुका ज्ञान होवै ताकेविषै अध्यास औ अज्ञान तिनकूं दूरि करैहै ॥ जैसैं जेवरीका ज्ञान जेवरीविषै सर्पअध्यासकूं औ जेवरीके अज्ञानकूं दूरि करैहै ॥

भ्रांतिज्ञानका विषय जो मिथ्यावस्तु औ भ्रांतिज्ञान ताका नाम अध्यास है ॥

जाकेविषै जो वस्तु मिथ्या नहीं है किंतु सत्य है, ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै नहीं ॥

तैसैं आत्माविषै अहंकारसैं आदिलेके बंध जो अध्यास कहिये मिथ्या होवै तौ ज्ञानसैं निवृत्ति होवै । आत्माविषै मिथ्याबंधकी सामग्री है नहीं औ बंध प्रतीति होवैहै। यातैं बंध सत्य है। ता सत्यबंधकी ज्ञानसैं निवृत्तिकी आशा निष्फल है ॥ ६ ॥

॥४६॥ अथ अध्याससामग्री निरूपणम् ॥

॥ दोहा ॥

सत्यवस्तुके ज्ञानतैं,
संसकार इक जान ॥

॥ ७६ ॥ स्वअभावके अधिकरणमैं जो अवभास नाम विषय औ ज्ञान, सो अध्यास कहियेहै ॥ जैसैं कल्पितसर्पके व्यावहारिक औ पारमार्थिक अभावके अधिकरण कहिये आश्रय रज्जुविषै प्रातिभासिक सर्पका अवभास कहिये सर्प औ ताका ज्ञान है, सो अध्यास है ॥

अथवा अधिष्ठानतैं विषमसत्तावाला जो अवभास सो अध्यास कहियेहै ॥ जैसैं व्यावहारिक सत्तावाले रज्जुरूप अधिष्ठानतैं विषम कहिये प्रातिभासिकरूप विपरीतसत्तावाला जो अवभास कहिये सर्प औ ताका ज्ञान है सो अध्यास है ॥

सो अध्यास १ अर्थाध्यास औ २ ज्ञानाध्यास-भेदतैं दोभांतिका है।

१ भ्रांतिज्ञानका विषय जो सर्पादिकमिथ्यावस्तु सो अर्थाध्यास है ॥ औ—

२ भ्रांतिज्ञान जो मिथ्यावस्तुका मिथ्याज्ञान सो ज्ञानाध्यास है ॥

तिनमैं ज्ञानाध्यास परोक्ष अपरोक्षभेदतैं दो-भांतिका है ॥ औ—

अर्थाध्यास १ केवलसंबंधाध्यास । २ संबंधसहित-संबंधीका अध्यास । ३ केवलधर्माध्यास । ४ धर्मसहित-

त्रिविधदोष अज्ञान पुनि, साँमग्री पहिचान ॥ ७ ॥

टीकाः—१ सत्यवस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार । औ तीनप्रकारके दोष । २ प्रमेयका दोष । ३ प्रमाताका दोष । ४ प्रमाणका दोष । औ ५ अधिष्ठानके विशेषरूपका अज्ञान । इतनी अध्यासकी सामग्री है । या विना अध्यास होवै नहीं ॥

१ जैसैं सीपीमैं रूपेका औ जेवरीमैं सर्पका अध्यास होवैहै, सो जा पुरुषनैं सत्य-रूपा औ सर्प देख्याहै, ताकूं होवैहै औ जाकूं सत्यरूपेका औ सर्पका ज्ञान नहीं ताकूं होवै नहीं । यातैं सत्यवस्तुके ज्ञानके संस्कार अध्यासके हेतु हैं ॥ औ—

२ सीपीमैं सर्पका औ जेवरीमैं रूपेका अध्यास होवै नहीं । यातैं प्रमेयविषै सादृश्यदोष अध्यासका हेतु है ॥

३ इसरीतिसैं प्रमाताविषै लोभ भयसैं आदिलेके । औ—

४ नेत्रादिकप्रमाणविषै पित्तकामलसैं आदि-लेके जो दोष सो अध्यासके हेतु हैं ॥ औ—

५ सीपीका "इदं" रूपकरिके सामान्यज्ञान होवै औ "यह सीपी है" ऐसा विशेषज्ञान नहीं होवै । जब अध्यास होवैहै "सीपी है" ऐसा विशेषरूपकरिके ज्ञान होवै तब अध्यास होवै नहीं ॥ औ सामान्यरूपकरिके ज्ञान नहीं होवै तौ बी अध्यास होवै नहीं । यातैं अधिष्ठानका विशेषरूपकरिके अज्ञान औ सामान्य-रूपकरिके ज्ञान अध्यासका हेतु है ॥

इतनी अध्यासकी सामग्री है इनमैं कोईएक नहीं होवै तौ बी अध्यास होवै नहीं ॥ जैसैं कुलाल चक्र दंड मृत्तिका घटकी सामग्री है । कोईएक नहीं होवै तौ घट होवै नहीं । तैसैं अध्यास बी सारी सामग्रीसैं होवैहै ॥ ७ ॥

धर्मीका अध्यास । ५ अन्योन्याध्यास औ ६ अन्यतरा-ध्यासभेदतैं षट्प्रकारका है ॥

अथवा संसर्गाध्यास औ स्वरूपाध्यासभेदतैं अर्थाध्यास दोभांतिका है ॥

इहां निष्कर्ष यह है:— केवलसंबंधाध्यासही **संसर्गाध्यास** है औ संबंधसहित संबंधीका अध्यासही **संसर्गसहित स्वरूपाध्यास** है । सोई **अन्यो-न्याध्यास** है । सर्वत्र संसर्ग औ स्वरूप दोनूंका मिश्रभाव होवैहै औ दोनूंमैंसैं एकका जो अध्यास सो **अन्यतराध्यास** कहियेहै सो **मिथ्यावस्तुका स्वरूपाध्यासरूप** कहियेहै । अरु **सत्यवस्तुका संबंधाध्यासरूप** कहियेहै ॥ यह अन्यतराध्यासका किंवा केवलसंबंधाध्यासका पृथक्भावकरि कथन जो है सो आत्मा अरु अनात्माके अध्यासके भेदज्ञानअर्थ है, परंतु सर्वअर्थाध्यास अन्योन्याध्यासरूपही हैं । तातैं पृथक् नहीं ॥ सो अन्योन्याध्यास कहूं केवल-धर्मका होवैहै औ कहूं धर्मसहितधर्मीका होवैहै । यातैं उक्तभेदतैं अन्योन्याध्यास दोप्रकारकाही है ॥

इनके संक्षेपतैं उदाहरण हमनें विचारचंद्रोदयकी षष्ठकलाविषै लिखेहैं औ विस्तारसैं उदाहरण श्रीवृत्ति-प्रभाकरविषै लिखेहैं ॥

॥ ७७ ॥ कारणके समुदायकूं **सामग्री** कहैहैं ॥ जैसैं लकरी चुल्ही आदिक कारण मिलिक पाक जो रसोई ताकी सामग्री कहियेहै । तैसैं अध्यासके कारणोंका समुदायरूप जो **सामग्री** है १ सो इहां कहियेगा ॥

॥ ७८ ॥ प्रमाज्ञानका जो विषय सो **प्रमेय** कहियेहै ॥ कल्पित सर्परजतआदिकका अधिष्ठान रज्जुशुक्तिआदिक प्रमाज्ञानका विषय है । यातैं सो **प्रमेय** है । ताकविषै जो सर्पादिकनकी तुल्यता है सो **सादृश्यदोष** है । याहीकूं **प्रमेयदोष** बी कहते हैं ॥ रज्जुविषै भूमिस्पृशित्वदीर्घत्वत्रिवलयाकारतारूप सर्पका सादृश्य है औ शुक्तिविषै चाकचिक्यतारूप रजत-का सादृश्य है ॥ इसरीतिसैं अन्यठिकान बी अधिष्ठानविषै अध्यस्तका सादृश्य जानि लेना ॥

॥ ४७ ॥ १ बंधके अध्यासमैं सत्यवस्तुके ज्ञानसैं जन्य संस्कारकी असिद्धि ॥

तैसैं बंधके अध्यासमैं एक बी कारण है नहीं। बंध कहूं सत्य होवै तौ ताके ज्ञानजन्य-संस्कारतैं आत्माविषै मिथ्याबंध प्रतीत होवै। सो सिद्धांतमैं आत्मासैं भिन्न कोई सत्यवस्तु है नहीं यातैं सत्यबंधके ज्ञानजन्यसंस्कारका अभाव होनैतैं आत्माविषै बंधका अध्यास बनै नहीं ॥

॥ ४८ ॥ २ बंधके अध्यासमैं प्रमेयके दोषकी असिद्धि ॥

तैसैं आत्माका औ बंधका सादृश्य बी है नहीं। उलटा तमप्रकाशकी न्यांई विपरीत-स्वभाव है ॥

१ आत्मा प्रत्यक् है औ बंध पराक् है। प्रत्यक् नाम अंतरका है औ पराक् नाम बाह्यका है ॥

२ आत्मा विषयी है औ बंध विषय है। जो प्रकाश करनैवाला होवै सो 'विषयी कहियेहै ॥ जाका प्रकाश करिये सो विषय कहियेहै ॥

१ प्रत्यक्विषै पराक्का तथा पराक्विषै प्रत्यक्का अध्यास होवै नहीं। जैसैं पुत्रादिक-नकी अपेक्षातैं देह प्रत्यक् है। ताकेविषै पुत्रादिकनका औ पुत्रादिकविषै देहका अध्यास होवै नहीं ॥ औ—

२ विषयमैं विषयीका तथा विषयीमैं विषयका अध्यास होवै नहीं। जैसैं विषय जो घटादिक तिनविषै विषयी दीपकका औ दीपकविषै घटादिकनका अध्यास होवै नहीं ॥

तैसैं सादृश्यके अभाव होनैतैं प्रत्यक्-विषयी जो आत्मा ताविषै पराक्विषयरूप बंधका अध्यास बनै नहीं ॥

प्रत्यक्का औ पराक्का विरोध है। विषय-का औ विषयीका विरोध है। सादृश्य नहीं। यातैं बंधका अध्यास आत्माविषै बनै नहीं ॥

॥ ४९ ॥ ३–४बंधके अध्यासमैं प्रमाता-दिक दोषकी असिद्धि ॥

तैसैं प्रमाताके दोषका औ प्रमाणके दोषका बी अभाव है। काहेतैं? "प्रमातासैं आदिलेके सर्वप्रपंच अध्यासरूप है सोई बंध है।" यह वेदांतका सिद्धांत है ॥ इसरीतिसैं बंधके अध्याससैं पूर्व प्रमाताप्रमाणका स्वरूप असिद्ध है औ ताका दोष बी असिद्ध है। यातैं बंधका अध्यास बनै नहीं ॥

॥ ५० ॥ ५ बंधके अधिष्ठान ब्रह्मका विशेषरूपसैं अज्ञान बनै नहीं ॥

औ अधिष्ठानका विशेषरूपकरिके अज्ञान बी बनै नहीं। काहेतैं? जो बंधका अधिष्ठान ब्रह्म है सो स्वयंप्रकाश ज्ञानरूप है। ता स्वयं-प्रकाशज्ञानरूप ब्रह्मविषै सूर्यविषै तमकी न्यांई अज्ञान बनै नहीं ॥ जैसैं प्रकाशमान सूर्यसैं तमका विरोध है तैसैं चेतनप्रकाश औ तमरूप अज्ञानका परस्परविरोध है ॥ औ—

अधिष्ठानका अज्ञान अंगीकार करै तौ बी बंधका अध्यास बनै नहीं। काहेतैं? अत्यंत-अज्ञातविषै तथा अत्यंतज्ञातविषै अध्यास होवै नहीं, किंतु विशेषरूपसैं अज्ञात औ सामान्य-रूपसैं ज्ञातविषै होवैहै ॥ औ ब्रह्म सामान्य-विशेषभावसैं रहित है। निर्विशेष है। यह

॥ ७९ ॥ ब्रह्मचैतन्यसैं भिन्न अज्ञान औ ताका कार्य स्थूलसूक्ष्मप्रपंच यह सर्व चेतनविषै अध्यस्त हैं। याहीके अंतर्गत अंतःकरणरूप प्रमाता औ इंद्रियरूप प्रमाण हैं। यातैं वे बी अध्यस्त हैं ॥ तातैं प्रपंचके अध्यासतैं पूर्व सिद्ध नहीं। यह उपनिषदनका निर्णीत अर्थरूप सिद्धांत है ॥

सिद्धांत है । यातैं विशेषरूपसैं अज्ञात औ सामान्यरूपसैं ज्ञात ब्रह्म बनै नहीं ॥ औ—

अध्यासके लोभसैं ब्रह्मविषै सामान्यविशेष-भाव अंगीकार करौगे तौ सिद्धांतका त्याग होवैगा ॥

इसरीतिसैं निर्विशेष जो प्रकाशरूप ब्रह्म ताका विशेषरूपसैं अज्ञान औ सामान्यरूपसैं ज्ञानका अभाव होनैतैं ताके विषै अध्यास बनै नहीं । यातैं ब्रह्मविषै बंध अध्यासरूप है । यह कहना बनै नहीं । किंतु बंध सत्य है ॥ ता सत्यबंधकी ज्ञानसैं निवृत्तिका असंभव है । यातैं ज्ञानद्वारा मोक्षरूप ग्रंथका प्रयोजन बनै नहीं । औ ज्ञानसैं मोक्षका प्रतिपादक जो सिद्धांत सो समीचीन नहीं, किंतु कर्मसैं मोक्ष होवैहै । यह वार्त्ता एकभविकवादकी रीतिसैं प्रतिपादन करैहैं:—

॥ ५१ ॥ केवलकर्मसैं मोक्षकी सिद्धि (एकभविकवाद) ॥ ५१–५८ ॥

॥ दोहा ॥

सत्यबंधकी ज्ञानतैं,
नहीं निवृत्ति सयुक्त ॥
नित्यकर्म संतत करै,
भयो चहै जो मुक्त ॥ ८ ॥

टीका:—सत्यबंधकी ज्ञानसैं निवृत्ति माननी सयुक्त कहिये युक्तिसहित नहीं । किंतु अयुक्त है । यातैं जो पुरुष मुक्त हुवा चाहै सो संतत कहिये निरंतर नित्यकर्म करै । याका यह अभिप्राय है:—

॥ ५२ ॥ कर्म दोप्रकारका है, १ एक विहित है औ २ एक निषिद्ध है ॥

१ पुरुषकी प्रवृत्तिके निमित्त जाका स्वरूप वेदनैं बोधन कियाहै सो विहितकर्म कहियेहै ॥ औ—

२ पुरुषकी निवृत्ति जासौं बोधन करीहै सो निषिद्धकर्म कहियेहै । औ—

स्वभावसिद्ध जो क्रिया है सो कर्म नहीं । काहेतैं ? जो वेदनैं प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिके निमित्त बोधन कियाहै सो कर्म कहियेहै ॥ उदासीनक्रिया कर्म नहीं । यातैं दोप्रकारका कर्म है । तीनप्रकारका नहीं ॥

॥ ५३ ॥ विहितकर्म चारिप्रकारका है । १ एक प्रायश्चित्त है । २ काम्य है । ३ नैमित्तिक है औ ४ नित्य है ॥

१ पापनाशके निमित्त विधान किया जो कर्म सो प्रायश्चित्त कहियेहै ॥ जैसैं प्रमादसैं द्रव्यके ग्रहणजन्य जो यतिकूं पाप ताके नाशके निमित्त द्रव्यका त्याग औ तीनि उपवास हैं ॥

२ फलके निमित्त विधान किया जो कर्म सो काम्य कहियेहै ॥ जैसैं वृष्टिकामकूं कारीरी-

॥ ८० ॥ जाका वेदविषै विधान औ निषेध किया नहीं, ऐसी जो रागद्वेषसैं रहित स्वाभाविक गमनशौचादिरूप क्रिया सो **उदासीनक्रिया** है ॥

॥ ८१ ॥ अवश्य करनै योग्य कार्यका विस्मरण **प्रमाद** कहियेहै । वा शास्त्रसैं करनैकूं योग्य होवै औ जाके करनैकी इच्छा बी होवै तिस कार्यका जो न करना, सो **प्रमाद** कहियेहै ॥ जैसैं यति जो संन्यासी ताकूं द्रव्यका अग्रहण शास्त्रनें विधान कियाहै औ आपकूं अग्रहणके करनैकी इच्छा बी है । फेर ताका न करना (द्रव्यका ग्रहण करना) सो **प्रमाद** है ॥

॥ ८२ ॥ स्वदेशविषै वृष्टिकी कामनावाला राजा अपनी प्रजासैं धनका विभागरूप कर लेके जो याग करताहै सो, किंवा वंशवृक्षके अंकुर करीर हैं, तिनके होमकरि जो याग होवै सो **कारीरीयाग** कहियेहै ॥

याग है और स्वर्गकामकूं अग्निहोत्रसोमयागसैं आदिलैके हैं ॥

३ जा कर्मके नहीं कियेसैं पाप होवै औ कियेसैं पुन्यपापरूप फल होवै नहीं औ सदा जाका विधान नहीं, किंतु किसी निमित्तकूं लेके विधान किया होवै, सो कर्म नैमित्तिक कहियेहै ॥ जैसैं ग्रहणश्राद्ध है औ अवस्थावृद्ध, जातिवृद्ध, आश्रमवृद्ध, विद्यावृद्ध, धर्मवृद्ध ज्ञानवृद्ध पुरुषनके आगमनतैं उत्थानरूप कर्म हैं। विद्याशब्दसैं शास्त्रज्ञानका ग्रहण है। औ ज्ञान शब्दसैं अपरोक्षविद्याका ग्रहण है। पूर्वपूर्वसैं उत्तरउत्तर उत्तम हैं ॥

४ जाके नहीं कियेसैं पाप होवै, कियेसैं फल होवै नहीं औ सदा जाका विधान होवै, सो नित्यकर्म कहियेहै। जैसैं स्नानसंध्यादिक हैं ॥

इसरीतिसैं च्यारिप्रकारका विहित औ निषिद्ध मिलिके पांचप्रकारका कर्म है ॥

॥ ५४ ॥ मोक्षकी इच्छावान् काम्य तौ निषिद्धकर्म करै नहीं। काहेतैं? काम्यकर्मसैं उत्तमलोककूं जावैहै औ निषिद्धसैं नीचलोककूं जावैहै। यातैं दोनूंको त्याग करै औ नित्यकर्म सदा करै औ नैमित्तिकका जब निमित्त होवै तब नैमित्तिक बी करै। काहेतैं? नित्यनैमित्तिक कर्म नहीं करै तौ पाप होवैगा, ता पापसैं नीचयोनिकूं प्राप्त होवैगा, यातैं पापके रोकनैवास्तै नित्यनैमित्तिककर्म करै। नित्यनैमित्तिककर्मका औरफल नहीं। यही फल हैः– जो तिनके नहीं करनैसैं पाप होवैहै सो तिनके

॥ ८३ ॥ याका यह अर्थ हैः–

१ अवस्थावृद्धतैं जातिवृद्ध कहिये वर्णवृद्ध उत्तम है ॥ औ

२ केवल वर्णवृद्धतैं अवस्थावृद्ध औ वर्णवृद्ध उत्तम है ॥ औ

३ अवस्थावृद्ध वर्णवृद्ध दोनूंतैं आश्रमवृद्ध उत्तम है ॥ औ

४ केवल आश्रमवृद्धतैं अवस्थावृद्धआश्रमवृद्ध उत्तम है ॥ औ

५ अवस्थावृद्ध आश्रमवृद्ध वर्णवृद्ध इन तीनोंतैं विद्यावृद्ध उत्तम है ॥ औ

६ केवलविद्यावृद्धतैं अवस्थावृद्धविद्यावृद्ध उत्तम है ॥ औ

७ अवस्थावृद्धविद्यावृद्धतैं वर्णवृद्धविद्यावृद्ध उत्तम है ॥ औ

८ वर्णवृद्धविद्यावृद्धतैं आश्रमवृद्धविद्यावृद्ध उत्तम है ॥ औ

९ अवस्थावृद्ध वर्णवृद्ध आश्रमवृद्ध अरु विद्यावृद्धतैं धर्मवृद्ध उत्तम है ॥ औ

१० अवस्थावृद्धधर्मवृद्धतैं वर्णवृद्धधर्मवृद्ध उत्तम है ॥ औ

११ वर्णवृद्धधर्मवृद्धतैं आश्रमवृद्धधर्मवृद्ध उत्तम है ॥ औ

१२ आश्रमवृद्धधर्मवृद्धतैं विद्यावृद्धधर्मवृद्ध उत्तम है ॥ औ

१३ अवस्थावृद्धतैं लेकै धर्मवृद्ध पर्यंत। इन सर्वतैं ज्ञानवृद्ध उत्तम है ॥ तिनमैं बी

१४ केवलज्ञानवृद्धतैं अवस्थावृद्धज्ञानवृद्ध उत्तम है औ

१५ अवस्थावृद्धज्ञानवृद्धतैं वर्णवृद्धज्ञानवृद्ध उत्तम है ॥ औ

१६ वर्णवृद्धज्ञानवृद्धतैं आश्रमवृद्धज्ञानवृद्ध उत्तम है ॥ औ

१७ आश्रमवृद्धज्ञानवृद्धतैं विद्यावृद्धज्ञानवृद्ध उत्तम है ॥ औ

१८ विद्यावृद्धज्ञानवृद्धतैं धर्मवृद्धज्ञानवृद्ध उत्तम है ॥

इहां धर्मशब्दसैं शास्त्रोक्तअर्थके अनुष्ठानका ग्रहण है औ विद्यावृद्धशब्दसैं अधिकशास्त्राभ्यासवान्का ग्रहण है औ ज्ञानवृद्धशब्दसैं ज्ञाननिष्ठाविषै अधिक आरूढका ग्रहण है ॥

करनैसैं होवै नहीं । यातैं मुमुक्षु नित्यनैमित्तिक कर्म अवश्य करै ॥

॥ ५५ ॥ और जो कदाचित् प्रमादसैं निषिद्धकर्म होय जावै तौ ताका दोष दूरि करनैकूं प्रायश्चित्त करै ॥ जो निषिद्धकर्म नहीं कियाहोवै तौ बी जन्मांतरके जो पाप हैं तिनके दूरि करनैवास्तै प्रायश्चित्तकर्म करै । परंतु इतना भेद हैः—प्रायश्चित्त दोप्रकारका है ॥१ एक तौ असाधारण है औ २ एक साधारण है ॥

१ जो किसी पापविशेषके दूरि करनैवास्तै शास्त्रनै विधान कियाहोवै सो **असाधारण प्रायश्चित्त** कहियेहै । जैसैं पूर्वकह्या उपवास है ॥ औ—

२ सर्वपापके दूरि करनैवास्तै शास्त्रनै जो विधान किया कर्म सो **साधारणप्रायश्चित्त** कहियेहै । जैसैं गंगास्नान औ ईश्वरके नामका उच्चारण है ॥ इसतैं आदिलेके और बी जानि लेनैं ॥

इसरीतिसैं दोप्रकारके प्रायश्चित्त हैं ॥

१ जो ज्ञातपाप होवै तौ तिस पापका नाशक जो असाधारणप्रायश्चित्त शास्त्रनै बोधन किया है ताकूं करै ॥ औ—

२ जो जन्मांतरके अज्ञातपाप हैं तिनके दूरि करनैवास्तै साधारणप्रायश्चित्त करै । काहेतैं ?

१ **असाधारणप्रायश्चित्तका** यह स्वभाव हैः— जा पापका नाश करनैवास्तै शास्त्रनै जो प्रायश्चित्त विधान किया है सो पाप प्रायश्चित्तसैं दूरि होवैहै । और नहीं ॥ औ—

२ जन्मांतरके पापका ऐसा ज्ञान है नहीं, जो कौनसा पाप है, किस प्रायश्चित्तसैं दूरि होवैगा । यातैं साधारणप्रायश्चित्त करै ॥

॥ ५६ ॥ साधारणप्रायश्चित्तसैं सर्वपाप दूरि होवैहैं ॥ यद्यपि गंगास्नानसैं आदिलेके जो साधारणप्रायश्चित्त कहे सो केवलप्रायश्चित्तरूप नहीं । किंतु १ काम्यरूप औ २ प्रायश्चित्तरूप हैं । काहेतैं ? (१) "गंगास्नानसैं उत्तमलोककी प्राप्ति" शास्त्रमैं कहीहै ॥ तैसैं "ईश्वरके नाम-उच्चारणसैं बी उत्तमलोककी प्राप्ति" कहीहै । यातैं काम्यरूप हैं ॥ औ (२) पापके नाशक हैं । यातैं प्रायश्चित्तरूप हैं

जैसैं अश्वमेध ब्रह्महत्यादिक पापका नाशक है औ स्वर्गकी प्राप्तिरूप फलका हेतु है । तैसैं गंगास्नानादिक हैं । केवलप्रायश्चित्त नहीं, यातैं गंगास्नानादिकनतैं उत्तमलोककी प्राप्ति होवैहै । सो मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं । तथापि जाकूं उत्तमलोककी वांछा है ताकूं तौ गंगास्नानादिक पापनाशकरिके उत्तमलोककूं प्राप्त करेहै ॥ जाकूं लोककी कामना नहीं है, ताके केवलपापहीके नाशक हैं । यातैं कामनासहित अनुष्ठान किये काम्यरूप प्रायश्चित्त हैं ॥ लोककामनासैं विना अनुष्ठान किये केवल प्रायश्चित्तरूप हैं ॥

जैसैं वेदांतमतमैं संपूर्णकर्म सकामपुरुषकूं संसारके हेतु हैं औ निष्कामकूं अंतःकरणकी शुद्धिकरिके मोक्षके हेतु हैं । तैसैं एकही गंगास्नान तथा ईश्वरका नामउच्चारण सकामकूं तौ काम्यरूप प्रायश्चित्त है औ निष्कामकूं केवलप्रायश्चित्तरूप है । यातैं मुमुक्षु साधारण-प्रायश्चित्त करै ॥

इसरीतिसैं जन्मांतरके संपूर्णपापका ज्ञानसैं विनाही नाश होवैहै ॥

॥ ५७ ॥ तैसैं मुमुक्षुके जन्मांतरके काम्यकर्म बी वंध्याके समान हैं । फलके हेतु नहीं । काहेतैं ? जैसैं कर्मके अनुष्ठानकालविषै पुरुषकी इच्छा फलका हेतु वेदांतमतमैं अंगीकार करीहै ॥ इच्छासहित अनुष्ठान किये कर्म

स्वर्गादिफलके हेतु हैं औ निष्काम अनुष्ठान किये स्वर्गादिफलके हेतु नहीं । यह वेदांतका सिद्धांत है ॥

तैसैं कर्मकी सिद्धिसैं अनंतर बी पुरुषकी इच्छा फलका हेतु है । सो पुरुषकी इच्छा जिस कालमैं पुरुष मुमुक्षु हुवा तब दूरि होई-गई । यातैं जन्मांतरके काम्यकर्म बी फलके हेतु नहीं ॥ जैसैं किसी पुरुषनैं धनकी प्राप्तिकी इच्छातैं धनीपुरुषका आराधन कियाहोवै, ता धनीके आराधनसैं अनंतर बी जो धनकी इच्छा दूरि होयजावै तौ धनकी प्राप्तिरूप फल होवै नहीं ॥ तैसैं जन्मांतरके काम्यकर्मका बी मुमुक्षुकूं इच्छाके अभावतैं फल होवै नहीं ॥

इसरीतिसैं केवलकर्मसैं मोक्ष होवैहै ॥

॥ ५८ ॥ १ वर्त्तमानजन्मविषै काम्य औ निषिद्ध किये नहीं । जातैं ऊर्ध्वलोकअधो-लोककूं जावै ॥ जन्मांतरके प्रारब्ध जो निषिद्ध औ काम्य तिनका भोगसैं नाश होवैहै ॥ नित्य औ नैमित्तिकके नहीं करनैतैं जो पाप होवै सो तिनके करनैतैं मुमुक्षुकूं होवै नहीं ॥ औ जन्मांतरके संचित जो निषिद्ध हैं तिनका साधारणप्रायश्चित्तसैं नाश होवैहै ॥ जन्मांतरका संचितकाम्यकर्म मुमुक्षुकूं इच्छाके अभावतैं फल देवै नहीं । यातैं मुमुक्षु नित्य-नैमित्तिक औ साधारणप्रायश्चित्तरूप कर्म करै औ वर्तमानजन्मका ज्ञातनिषिद्धकर्म होवै तौ असाधारणप्रायश्चित्त करै ॥

२ अथवा नित्य औ नैमित्तिकही करै । प्रायश्चित्त नहीं करै । काहेतैं ? जो संचितनिषिद्ध-कर्म औ काम्यकर्म सो मुमुक्षुके नाश होय जावैहै ॥ जैसैं ज्ञानवानके संचितकर्मका नाश वेदांतमतमैं अंगीकार कियाहै तैसैं निषिद्ध-काम्यका त्यागकरिके नित्यनैमित्तिक कर्मविषै वर्त्तमान जो मुमुक्षु ताके संचितकर्मका नाश होवैहै ॥

३ अथवा संचित जो काम्य औ निषिद्ध सो सारे मिलिके एकजन्मका आरंभ करैहै । यातैं मुमुक्षुकूं एकजन्म और होवैहै ॥

४ अथवा योगीके कायव्यूहकी न्याई एकही कालविषै सारे संचित अनंतशरीरनका आरंभ करैहै । तिनतैं मुमुक्षु उत्तरजन्मविषै सर्वका फल भोग लेवैहै ।

५ अथवा नित्य औ नैमित्तिककर्मके अनु-ष्ठानतैं जो क्लेश होवैहै सो जन्मांतरके संचित-निषिद्धकर्मका फल है यातैं जन्मांतरका संचित-निषिद्ध औरजन्मका आरंभ करै नहीं ॥ काम्य

॥ ८४ ॥ "तैसैं" कहिये हमारे एकभविकवादीके सिद्धांतमैं ॥

॥ ८५ साधारणप्रायश्चित्त औ असाधारणप्राय-श्चित्तके करनैविषै बहुतश्रम देखिके मुमुक्षुकूं स्वमतमैं अरुचि होवैगी । या अभिप्रायसैं एकभविकवादी अन्य सुगमप्रकार कहैहै ॥

॥ ८६ ॥ "नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतै-रपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥" ॥ अर्थः—सौकोटिकल्पोंकरिके बी अभुक्तोंका कर्म भोगबिना नाश होता नहीं । किंतु किया जो शुभअशुभकर्म सो अवश्य भोगनेकूं योग्य है ॥ जो भोगबिना कर्मका नाश मानै तौ उक्तशास्त्रवचनका विरोध होवैगा ताके निवारणअर्थ अन्यपक्ष कहैहै ॥

॥ ८७ ॥ अनंतविलक्षणजन्मोंके कारण अनंत-कर्मनका फल एकजन्मविषै संभवै नहीं । या शंकाके लिए अन्यपक्ष कहैहै ॥

॥ ८८ ॥ योगीके काय कहिये शरीरनका व्यूह कहिये समूह ताकी न्याई एककालमैं बी अनंतप्रकारके जन्मकरि अनंतप्रकारके सुखकी न्याई अनंतप्रकारके दुःख बी उत्तरजन्मविषै भोगने पडैंगे । इस भयसैं मुमुक्षुकी या मतमैं अप्रवृत्ति होवैगी । या अभिप्रायसैं एकभविकवादी उत्तरजन्मविषै मुमुक्षु-कूं केवलसुखका भोग दिखायके स्वमतमैं रुचि उपजावताहै ॥

जो संचित है, सो एकजन्म अथवा एककालमैं अनंतशरीरनका आरंभ करैहै । यातैं मुमुक्षुकूं उत्तरजन्मविषै दुःखका लेश बी होवै नहीं। केवल-सुखका भोग होवैहै । काहेतैं? जन्मांतरके संचित जो विहितकर्म हैं तिनतैं शरीर हुवाहै औ संचित जो निषिद्ध हैं सो नित्यनैमित्तिकके अनुष्ठानके क्लेशतैं पूर्वजन्मविषै भोगि लिये ॥

इसरीतिसैं प्रायश्चित्तसैं विना केवल नित्य औ नैमित्तिककर्मके अनुष्ठानतैं मोक्ष होवैहै। यातैं नैमित्तिककर्मके समय नैमित्तिक अनुष्ठान करै । औ नित्यकर्म संतत अनुष्ठान करै ॥ या मतकूं शास्त्रमैं ऐकभविकवाद कहैहैं ॥

॥ ५९ ॥ बंधनिवृत्ति ज्ञानद्वारा ग्रंथका प्रयोजन नहीं ॥

यातैं बी बंधकी निवृत्ति ज्ञानद्वारा ग्रंथका प्रजोजन नहीं । काहेतैं ? जो वस्तु औरसैं होवै नहीं सो मुख्यप्रयोजन होवैहै ॥ जैसैं रूपका ज्ञान नेत्रविना औरसैं होवै नहीं सो रूपज्ञान नेत्रका प्रयोजन है । औ बंधकी निवृत्ति ग्रंथसैं विना कर्मतैं होवैहै । यातैं बंधकी निवृत्ति ग्रंथका प्रयोजन नहीं ॥

इसरीतिसैं ग्रंथके अधिकारी विषय प्रयोजन बनैं नहीं ॥

॥ ६० ॥ ॥ संबंधखंडन (४) ॥

॥ पूर्वपक्ष ॥

अधिकारी आदिकोंके अभावतैं संबंध बी बनै नहीं । काहेतैं ?

१ विषयके अभावतैं ग्रंथका औ विषयका प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसंबंध बनै नहीं ॥
२ अधिकारी औ फलके अभावतैं तिनका प्राप्यप्रापकभावसंबंध बनै नहीं ॥
३ अधिकारीके अभावतैं ताका औ विचारका कर्तृकर्तव्यभावसंबंध बनै नहीं ॥
४ ज्ञानकूं निष्फलता होनैतैं ग्रंथका औ ज्ञानका जन्यजनकभावसंबंध बनै नहीं ॥ सफलवस्तु जन्य होवैहै । पूर्व कही रीतिसैं ज्ञान सफल है नहीं ॥ औ—

५ ज्ञानके स्वरूपका बी अभाव है । यातैं बी ज्ञानका औ ग्रंथका संबंध बनै नहीं । काहेतैं? जीवब्रह्मके अभेद निश्चयका नाम सिद्धांतमैं ज्ञान है ॥ सो अभेदनिश्चय बनै नहीं । काहेतैं? जीवब्रह्मका अभेद है नहीं । यह वार्त्ता विषयके निराकरणमैं पूर्व प्रतिपादन करीहै । यातैं अभेद-निश्चयरूप ज्ञान बनै नहीं ॥

इसरीतिसैं अधिकारीआदिक अनुबंधनके अभावतैं ग्रंथका आरंभ बनै नहीं ॥

॥ अथ पूर्वपक्षीक्रमतैं उत्तर ॥६१-९३॥

॥६१॥ अधिकारीमंडन(१) ॥६१-७१॥

॥ अंक ३४-३६ गत पूर्वपक्षका उत्तर ॥ ६१-६३ ॥

(मोक्षकी प्रथमअंशकी इच्छा बनैहै)

पूर्वपक्षीनैं प्रथम कह्या "जो मोक्षकी इच्छा काहूकूं बनै नहीं । काहेतैं मोक्षविषै दोअंश हैं:— १ एक तौ कारणसहित जगत्की निवृत्ति मोक्षका अंश है । औ २ दूसरा अंश ब्रह्मकी प्राप्तिरूप है ॥ तिनविषै कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथमअंशकी इच्छा काहूकूं है नहीं । किंतु तीनप्रकारके दुःखकी निवृत्तिकी इच्छा सर्वपुरुषनकूं है ॥ सो दुःखकी निवृत्ति अपनै-अपनै उपायनतैं होय जावैहै । यातैं मूलसहित-

॥ ८९ ॥ एकभविक कहिये एकजन्मका अथवा मोक्षके साधन एकही कर्मका, वाद कहिये कथन, सो एकभविकवाद शब्दका अर्थ है ॥

जगत्की निवृत्तिकी इच्छावाला मुमुक्षु अधिकारी बनै नहीं" । ताका—

॥ ६२ ॥ समाधान प्रथम कहैहैं ॥

॥ दोहा ॥

मूलसहित जगहानि बिन,
व्है न त्रिविधदुःख ध्वंस ॥
यातैं जन चाहत सकल,
प्रथम मोछको अंस ॥ ९ ॥

टीकाः—मूल कहिये जगत्का कारण जो अज्ञान औ जगत्के नाशविना तीनप्रकारके दुःखका और उपायनतैं ध्वंस कहिये नाश होवै नहीं, औ मूलअविद्याके नाशतैं सर्वदुःख औ दुःखके कारण रोगादिक औ रोगादिकनके आश्रय शरीरादिकनका नाश होवैहै । यातैं त्रिविधदुःखके नाशके निमित्त कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथमअंशकूं सकल पुरुष चाहैहैं ।

तात्पर्य यह हैः—जो सर्व औषधआदिक उपाय करनैविषै समर्थ हैं, तिनके वी दुःख नियमकरि दूरि होवैं नहीं ॥ काहूपुरुषका रोगादिजन्यदुःख औषधादिक उपायनतैं नाश होवैहै औ काहूके दुःखका औषधादिक उपायनतैं नाश होवैं नहीं । यातैं औषधआदिक उपायनतैं रोगादिजन्य दुःखकी नियमकरिके निवृत्ति होवै नहीं । औ जाके औषधादिक उपायनतैं दुःखकी निवृत्ति होवैहै । ताके वी दुःखकी उत्पत्ति फेरि होवैहै । यातैं औषधआदिक उपायनतैं दुःखकी अत्यंतनिवृत्ति होवै नहीं । जाकी निवृत्ति हुईहै ताकी फेरि उत्पत्ति नहीं होवै । सो अत्यंतनिवृत्ति कहियेहै । औषधआदिक उपायनतैं दुःखकी निवृत्ति नियमकरिके होवै नहीं औ निवृत्त जो दुःख ताकी फेरि वी उत्पत्ति होवैहै । यातैं अत्यंतनिवृत्ति वी तिन उपायनतैं होवै नहीं ॥ औ—

दुःखके सकलसाधनका नाश होवै तौ सकलदुःखकी नियमकरिके निवृत्ति होवै औ दुःखके साधनका नाश हुयेतैं फेरि दुःख होवै नहीं, यातैं दुःखकी निवृत्तिके निमित्त दुःखके साधनकी निवृत्तिकी इच्छा सर्वकूं होवैहै ॥

॥ ६३ ॥ **सो दुःखका साधन** अज्ञान औ ताका कार्य प्रपंच है । यह वार्ता छांदोग्यउपनिषद्मैं भूमविद्याविषै प्रसिद्ध है ॥ तहां यह प्रसंग हैः—एकसमय सनत्कुमारके पास नारद प्राप्त हुए ॥ औ

नारदनै कह्याः—"हे भगवन् ! जो आत्मज्ञानी पुरुष है ताकूं शोक नहीं होवैहै औ मैं शोकसहित हूं, यातैं मैं अज्ञानी हूं । मेरेकूं ऐसा उपदेश करो जासैं मेरा अज्ञान दूरि होवै" ॥

तब **सनत्कुमारनैं** नारदकूं कह्याः—"हे नारद ! भूमा शोकरहित है । सुखरूप है औ भूमासैं भिन्न सकल तुच्छ है औ दुःखका साधन है" ॥

· भूमा नाम ब्रह्मका है ॥

इसरीतिसैं ब्रह्मसैं भिन्न जो वस्तु, सो सकलदुःखका साधन कहैहैं । अज्ञान औ ताका कार्य ब्रह्मसैं भिन्न है । यातैं **दुःखका साधन है** ॥ ताकी निवृत्ति हुयेसैं सर्वदुःखकी नियमकरिके अत्यंत-

---

॥ ९० ॥ जैसैं कफकारक पदार्थके त्यागविना कफरोगकी निवृत्ति होवै नहीं, यातैं कफनिवृत्तिका इच्छु "मैं वैद्यसैं जानिके कफकारकपदार्थका त्याग करूंगा" ऐसैं कफके साधनकी निवृत्तिकूं इच्छताहै । तैसैं दुःखके साधनकी निवृत्तिविना दुःखकी निवृत्ति होवै नहीं । यातैं दुःखकी निवृत्तिका इच्छु पुरुष "मैं शास्त्रगुरुसैं जानिके दुःखके साधनका त्याग करूंगा" ऐसैं दुःखके साधनकी निवृत्तिकूं बी इच्छताहै ॥

निवृत्ति बनैहै । यातैं सकलदुःखकी निवृत्तिके निमित्त अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथमअंशकी चाह बनैहै ॥ ९ ॥

॥ ६४ ॥ अंक ३७–३८ गत पूर्वपक्षका उत्तर ॥ ६४–६५ ॥

(मोक्षके द्वितीयअंशकी इच्छा बनैहै)

और जो पूर्वपक्षीनैं (अंक ३७ मैं) कह्याः– "जा वस्तुका अनुभव किया होवै, ताकी प्राप्तिकी इच्छा होवैहै । ब्रह्मका अनुभव काहूनै किया है नहीं । यातैं ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्षके द्वितीयअंशकी इच्छा काहूकूं होवै नहीं" । ताका—

[९१] समाधान कहैहैं ।

॥ दोहा ॥

किय अनुभव सुखको सबही,
ब्रह्म सुन्यो सुखरूप ॥
ब्रह्मप्राप्ति या हेतुतैं,
चहत विवेकीभूप ॥ १० ॥

टीकाः—सर्वपुरुषनैं सुखका अनुभव कियाहै । यातैं सुखकी इच्छा सर्वकूं है औ "ब्रह्म नित्यसुखरूप है" ऐसा सत्शास्त्रमैं सुन्याहै । यातैं विवेकीभूप कहिये उत्तमविवेकी सुखस्वरूप ब्रह्मकी प्राप्तिकूं चाहैहै ॥ १० ॥

॥ ६५ ॥ ॥ दोहा ॥

केवलसुख सब जन चहैं,
नहीं विषयकी चाह ॥
अधिकारी यातैं बनै,
है जु विवेकी नाह ॥ ११ ॥

टीकाः—पूर्व (अंक ३८ मैं) कह्या जो "सर्व पुरुष विषयजन्यसुख चाहैहैं, सो 'विषयजन्य-सुख मोक्षविषै प्राप्त होवै नहीं । किंतु जगत्मैं प्राप्त

॥ ९१ ॥ इहां यह शंका हैः—जा वस्तुका पूर्व अनुभव किया होवै ताकी इच्छा होवैहै । यह नियम है—ब्रह्मरूप अधिष्ठानके ज्ञानसैं अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्तिका अनुभव मुमुक्षुकूं पूर्व किसी कालविषै भया नहीं । यातैं ताकूं अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्तिकी इच्छा बनै नहीं । यह ६५ वें टिप्पणउक्त शंकाका यह समाधान हैः—अनुभव किये वस्तुकी इच्छा होवैहै ऐसा नियम नहीं । किंतु अनुभव किये वस्तुके सजातीयकी इच्छा होवैहै । यह नियम है ॥ जो अनुभव किये वस्तुकी इच्छा होवै तौ भुक्त भोजनविषै फेरी इच्छा हुईचाहिये औ होती नहीं । किंतु तिसके सजातीय ताके तुल्य वा तिसतैं विलक्षण अन्यभोजनकी इच्छा होवैहै ॥ जैसैं अज्ञानसहित प्रपंचका अधिष्ठान ब्रह्म है तैसैं कल्पित सर्पादिकनके अधिष्ठान रज्जुआदिक हैं । यातैं वे अधिष्ठानताकारिके परस्पर सजातीय हैं । अरु सर्पादिकनकी निवृत्ति औ अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्ति बी परस्पर सजातीय हैं ॥ जातैं रज्जुआदिकके ज्ञानसैं सर्पादिकनकी निवृत्ति मुमुक्षुकूं अनुभूत है, तातैं तिनके सजातीय ब्रह्मके ज्ञानसैं अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्तिकी इच्छा बनैहै ॥

॥ ९२ ॥ इहां यह रहस्य हैः—जो अनुभव किये वस्तुमात्रकी इच्छा होती होवै । तौ अनुभव किये रोगादिनिमित्तसैं जन्य दुःख औ ताके साधन रोगादि-रूप प्रतिकूलवस्तुकी बी इच्छा सर्वकूं हुईचाहिये औ होती नहीं । यातैं अनुभव किये सुख औ सुखके साधनरूप अनुकूलवस्तुकी इच्छा होवैहै; तिनमैं बी अनुभव किये अनुकूलवस्तुके सजातीयकी इच्छा होवैहै । यह नियम है ॥ जातैं बुद्धिविषै ब्रह्मानंदके प्रतिबिंबरूप विषयसुखका अनुभव सर्वनैं कियाहै, ताका सजातीय बिंबभूत सुखरूप ब्रह्म शास्त्रमैं सुन्याहै यातैं ब्रह्मके प्राप्तिकी इच्छा बनैहै ॥

होवैहै। यातैं मोक्षकी इच्छावान् अधिकारीके अभावतैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है" ॥

ताकूं यह पूछैहैं:– १ जो कोई मुमुक्षु नहीं है? २ अथवा मुमुक्षु तौ है परंतु तिनकी ग्रंथविषै प्रवृत्ति होवै नहीं?

१ जो ऐसै कहै:–"मुमुक्षु नहीं है"। सो बनै नहीं। काहेतैं? सर्वपुरुप सर्वदुःखका नाश औ नित्यसुखकी प्राप्ति चाहैहैं ॥ सो सर्वदुःखका नाश औ सुखकी प्राप्तिरूप मोक्ष है, यातैं सर्वपुरुष मुमुक्षु हैं ॥

और कह्या जो "विषयजन्यसुख चाहैहै"। सो नहीं। किंतु सुखमात्र चाहैहैं। सो सुख विषयसैं होवै अथवा विषयविना होवै ॥ जो विषयजन्य सुखकूंही चाहै तौ सुषुप्तिके सुखकी इच्छा नहीं हुई चाहिये। सुषुप्तिका सुख विषयजन्य है नहीं; यातैं सुखमात्रकूं चाहैहैं। केवल विषयजन्यकूंहीं नहीं। उलटा आत्मसुखकूं चाहैहैं। विषयजन्यकूं नहीं चाहैहैं। काहेतैं? सर्वपुरुषनकूं न्यून अथवा अधिकविषयसुख प्राप्त बी है। परंतु ऐसी इच्छा सदा रहैहै:— "हमारेकूं ऐसा सुख प्राप्त होवै, जा सुखका नाश कदे होवै नहीं" ॥ ऐसा सुख आत्मस्वरूप मोक्ष है। यातैं सर्वपुरुष मुमुक्षु हैं। "कोउ मुमुक्षु नहीं" ऐसा कहना बनै नहीं ॥

॥ ६६ ॥ मुमुक्षुकी सिद्धिसैं ग्रंथके आरंभकी सफलता ॥ ६६–६८ ॥

२ और जो ऐसै कहै:–"मुमुक्षु तौ हैं, परंतु ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं। यातैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है" ॥ ताकूं यह पूछैहैं:–(१) ग्रंथ मोक्षका साधन नहीं है यातैं ग्रंथविषै प्रवृत्ति नहीं होवै? (२) अथवा ग्रंथसैं और बी कोई साधन है। जाकेविषै प्रवृत्ति होनैतैं ग्रंथविषै प्रवृत्ति होवै नहीं? (३) अथवा जिन शमादिकनतैं ग्रंथमैं अधिकार कह्या, सो शमादिमान् ज्ञानके योग्य कोई अधिकारी नहीं है। यातैं ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं?

(१) जो ऐसै कहै:–"ग्रंथ मोक्षका साधन नहीं" ॥ सो वार्त्ता बनै नहीं। काहेतैं? मोक्ष ज्ञानतैं नियमकरिके होवैहै। यह वेदका सिद्धांत है ॥

सो ज्ञान श्रवणसैं होवैहै। श्रवण दोप्रकारका है— (१) एक तौ वेदांतवाक्यका औ श्रोत्रका संयोगरूप है औ (२) दूसरा वेदांतवाक्यका विचाररूप है। ज्ञानका हेतु प्रथम श्रवण है। दूसरा नहीं। काहेतैं? शब्दजन्यज्ञानविषै इंद्रियके साथ शब्दका संयोगही सर्वत्र हेतु है। यातैं वेदांतवाक्यका औ श्रोत्रका संयोगरूप श्रवण ब्रह्मज्ञानका हेतु है। अवांतरवाक्यका श्रवण परोक्षज्ञानका हेतु है औ महावाक्यका श्रवण अपरोक्षज्ञानका हेतु है। यह वार्त्ता पूर्व प्रतिपादन करीहै ॥

जाकूं ज्ञान हुवेतैं बी असंभावना औ विपरीतभावना होवै। सो १ दूसरा श्रवण, २ मनन औ३ निदिध्यासन करै ॥

१ वेदांतवाक्यका विचाररूप जो श्रवण, तासूं वेदांतवाक्यविषै असंभावना दूरि होवैहै ॥ "वेदांतवाक्य ब्रह्मके प्रतिपादक हैं अथवा और अर्थके प्रतिपादक हैं?" ऐसा संशय वेदांतवाक्यकी असंभावना है। सो तिनके विचारसैं दूरि होवैहै ॥ औ—

॥ ९३ ॥ अंगअंगीभेदतैं श्रवण दोप्रकारका है ॥ तिनमैं द्वितीयश्रवण प्रथमश्रवणका उपकारक है। यातैं सो अंग (साधन) श्रवण कहियेहै औ प्रथमश्रवण उपकार्य है। यातैं अंगी (फल) श्रवण कहियेहै ॥

२ मननसैं प्रमेयकी असंभावना दूरि होवैहै। जीवब्रह्मकी एकता वेदांतका प्रमेय कहियेहै। "सो एकता सत्य है अथवा जीव-ब्रह्मका भेद सत्य है ?" ऐसा जो संशय, सो प्रमेयकी असंभावना कहियेहै। सो मननसैं दूरि होवैहै ॥

३ विपरीतभावना निदिध्यासनतैं दूरि होवैहै ॥

इसरीतिसैं प्रथमश्रवण तौ ज्ञानद्वारा मोक्षका हेतु है औ विचाररूप श्रवण औ मनन औ निदिध्यासन, ये असंभावना औ विपरीत-भावनाकी निवृत्तिद्वारा मोक्षके हेतु हैं ॥

वेदांत नाम उपनिषद्का है, सो यद्यपि या ग्रंथतैं भिन्न है तथापि तिनके समान अर्थवाले भाषावाक्य या ग्रंथमैं हैं, तिनके श्रवणतैं बी ज्ञान होवैहै। यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे ॥

इसरीतिसैं ज्ञानद्वारा ग्रंथ मोक्षका हेतु है औ विचाररूप औ मननरूप यह ग्रंथ है। यातैं असंभावनादोषकी निवृत्तिद्वारा मोक्षका हेतु है। यातैं "ग्रंथसैं मोक्ष होवै नहीं"। यह केवल हठमात्र है ॥

॥ ६७ ॥ २ और जो ऐसै कहै:-"ग्रंथसैं मोक्ष तौ होवैहै, परंतु और साधनसैं बी मोक्ष होवैहै, यातैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है"। ताकूं यह पूछैहैं सो औरसाधन कौन हैं जातैं मोक्ष होवैहै ?

जो ऐसै कहै:-"उपनिषद् सूत्रभाष्यसैं आदिलेके संस्कृतग्रंथ जीवब्रह्मकी एकताके प्रतिपादक बहुत हैं, तिनसैं बी ज्ञानद्वारा मोक्ष होवैहै। याका भिन्न अधिकारी नहीं। यातैं यह ग्रंथ निष्फल है" ॥

सो वार्ता यद्यपि सत्य है, तथापि तिनका अर्थ ग्रहण करनैविषै जाकी बुद्धि समर्थ नहीं है, ऐसा जो मुमुक्षु ताकूं तिनसैं ज्ञान होवै नहीं। यातैं मंदबुद्धिमुमुक्षुकी तिनविषै प्रवृत्ति होवै नहीं। या ग्रंथविषैही प्रवृत्ति होवैगी ॥

॥ ६८ ॥ ३ और जो ऐसै कहै:-"ग्रंथसैं मोक्ष बी होवैहै औ संस्कृतग्रंथनसैं मंदबुद्धिकूं बोध बी होवै नहीं औ मुमुक्षु बी है। तौ बी ग्रंथविषै प्रवृत्ति होवै नहीं। काहेतैं ? जो विवेक-वैराग्यशमादिमान अधिकारी कह्या। सो दुर्लभ है। यातैं अपनैविषै साधनका अभाव देखिके ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं" ॥ ताकूं यह पूछैहैं:- (१) बहुत अधिकारी नहीं ? (२) अथवा कोई बी नहीं ?

(१) जो ऐसै कहै.- "बहुतअधिकारी नहीं ॥" सो तौ हम बी अंगीकार करैहैं॥ औ-

(२) जो ऐसै कहै:- "कोई बी ज्ञानके योग्य अधिकारी नहीं" ॥ सो वार्ता बनै नहीं। काहेतैं ? अंतःकरणविषै तीन दोष हैं:—(क) एक मल है। औ (ख) विक्षेप है औ (ग) स्वरूपका आवरण है ॥

॥ ९४ ॥ भाषाग्रंथके श्रवणतैं बी ज्ञान होवैहै, यह वार्ता आगे तृतीयतरंगके दशमदोहाविषै प्रतिपादन करैंगे ॥

॥ ९५ ॥ वेदका अंतभागरूप जो वेदांत सो उपनिषद् कहियेहै ॥ वे उपनिषद् अनेक (१०८) हैं ॥ तिनमैं ईश। केन। कठ। प्रश्न। मुंडक। मांडूक्य। तैत्तिरीय। ऐतरेय। छांदोग्य। बृहदारण्यक। ये दश-उपनिषद् मुख्य हैं तिनके ऊपर श्रीशंकराचार्यस्वामीकृत भाष्य हैं ॥ इन १० उपनिषद्नका हिंदुस्थानी भाषांतर हमने प्रकट कियाहै ॥ सूत्र औ भाष्यका लक्षण तौ पंचम औ षष्ठ टिप्पणविषै लिख्याहै ॥

(क) मल नाम पापका है। (ख) विक्षेप नाम चंचलताका है। औ (ग) आवरण नाम अज्ञानका है॥

(क) शुभकर्मतैं मलदोष दूरि होवैहै औ (ख) उपासनातैं विक्षेपदोष दूरि होवैहै। (ग) ज्ञानतैं आवरणदोष दूरि होवैहै॥

जिनके अंतःकरणविषै मल औ विक्षेपदोष हैं सो अधिकारी नहीं बी हैं। परंतु इसजन्मविषै अथवा पूर्वजन्मविषै शुभकर्म औ उपासनाके अनुष्ठानतैं जिनके मल औ विक्षेपदोष नाश हुवेहैं। तैसै ज्ञानयोग्य अधिकारी हैं, तिनकी ग्रंथमैं प्रवृत्ति बनैहै॥

॥ ६९ ॥ पामर औ विषयी पुरुषनका लक्षण ॥

औ जो ऐसै पूर्व कह्या:—(अंक ३८ का भाव) "सर्वकूं विषयसुखमैं अलंबुद्धि है। नित्य सुखकूं कोई चाहै नहीं." ॥

सो बनै नहीं । काहेतैं? चारिप्रकारके पुरुष हैं:— १ पामर। २ विषयी। ३ जिज्ञासु। ४ मुक्त॥

१ इसलोकके निषिद्ध औ विहितभोगनविषै आसक्त जो शास्त्रसंस्काररहित पुरुष, सो पामर कहिये है।

२ शास्त्रके अनुसार विषयनकूं भोगताहुवा परलोकके अथवा इसलोकके भोगनके निमित्त जो कर्म करै सो विषयी कहियेहै। औ—

॥ ७० ॥ जिज्ञासुका लक्षण ॥

३ ऐसा पुरुष जिज्ञासु कहियेहै:—जा पुरुषकूं उत्तमसंस्कारतैं सत्शास्त्रका श्रवण होवै ता उत्तमकूं ऐसा विवेक होवैहै:—

(१) विषयसुख अनित्य है। जितना काल विषयसुख होवैहै तब बी कोई दुःख अवश्य रहैहै औ परिणाममैं विनाशीसुख दुःखका हेतु है औ वर्त्तमानकालमैं बी नाशके भयतैं दुःखका हेतु है। इसरीतिसैं विषयसुख दुःखतैं ग्रस्या हुवाहै, यातैं दुःखरूप है॥ औ—

॥ ९६ ॥ १ कृतोपासन औ २ अकृतोपासनभेदतैं अधिकार दोप्रकारका है॥ तिनमैं

१ सगुणब्रह्मकी संपूर्ण (चित्तकी एकाग्रतापर्यंत) उपासना जिस पुरुषनैं करीहै सो **कृतोपासन** है॥ ताकेविषै तौ शास्त्रोक्तसाधन सर्वप्रसिद्ध देखियेहैं॥

२ जाके ज्ञानतैं पूर्व सगुणब्रह्मकी उपासना अपूर्ण है सो पुरुष **अकृतोपासन** है। ताकेविषै सर्वसाधन प्रसिद्ध दीखते नहीं। किंतु कोई कोई साधन प्रसिद्ध दीखताहै। और गौण रहतेहैं, यातैं ताकूं चित्तकी एकाग्रताके अभावतैं ज्ञानके उत्पन्न भये पीछे विपरीतभावना रहतीहै। ताके निवारणअर्थ निदिध्यासन कर्तव्य है॥

॥ ९७ ॥ १ उत्तम २ मध्यम औ ३ कनिष्ठभेदतैं **पामर तीनप्रकारका है** ॥

१ जो शास्त्रवेत्ता हुवा बी इसलोककेही भोगनविषै आसक्त है। सो **उत्तमपामर** है॥ औ—

२ जो अशास्त्रवेत्ता हुआ अन्यके मुखसैं श्रवण किये शास्त्रके अर्थविषै अविश्वासकरिके इसलोककेही भोगनविषै आसक्त है सो **मध्यमपामर** है॥ औ

३ जो सर्वथा शास्त्रसंस्काररहित होनेकरि इसलोककेही भोगविषै आसक्त है, सो **कनिष्ठपामर** (अल्पपामर) है॥

॥ ९८ ॥ १ उत्तम २ मध्यम औ ३ कनिष्ठभेदतैं **विषयी तीनप्रकारका है** ॥

१ जो वैकुंठ किंवा ब्रह्मलोकादिककी इच्छा करिके सकाम उपासनाविषै प्रवृत्त भयाहै, सो **उत्तमविषयी** है॥ औ—

२ जो स्वर्गलोककी इच्छाकरिके सकामकर्मविषै प्रवृत्त भयाहै। सो **मध्यमविषयी** है॥ औ—

३ जो इसलोकगत राज्यादिभोगकी इच्छाकरिके पुण्यकर्मविषै प्रवृत्त भयाहै, सो **कनिष्ठविषयी** है॥

(२) दुःखकी निवृत्ति लौकिकउपायतैं होवै नहीं। काहेतैं? जो उपाय करैहैं तिनके बी सारे दुःख निवृत्त होवैं नहीं औ निवृत्त हुवे बी फेरि होवैहैं ॥ औ—

(३) जितनै काल शरीर है तवपर्यंत दुःखकी निवृत्ति संभवै बी नहीं । काहेतैं? जो शरीर हैं सो सारे पुन्य औ पापसैं होवैहैं ॥

(१) मनुष्यशरीर तौ मिश्रितकर्मका फल प्रसिद्ध है । औ—

(२) देवशरीर बी मिश्रितकर्मकाही फल है ॥ जो केवलपुन्यका फल देवशरीर होवै तौ अपनैसैं अधिक अन्यदेवकी विभूति देखिके जो देवनकूं ताप होवैहै सो नहीं हुवाचाहिये ॥ सर्वदेवनमैं प्रधान जो इंद्र ताकूं बी अनेक दैत्यदानवके भयजन्यदुःख शास्त्रमैं कह्याहै॥ जो देवशरीर केवलपुन्यकाही फल होवै तौ देवनकूं दुःख नहीं हुवाचाहिये। यातैं देवशरीर बी पुन्यपाप दोनोंका फल है औ जो श्रुतिमैं कह्याहैः— "देवता पापरहित हैं"। ताका यह अभिप्राय हैः— कर्मका अधिकार केवल मनुष्यशरीरमैं है औरमैं नहीं । यातैं देवशरीरमैं किया जो शुभ अथवा अशुभ तिनका फल देवनकूं होवै नहीं औ देवशरीरसैं पूर्वशरीरमैं किया जो शुभ औ अशुभ तिनका फल तौ देवशरीरमैं बी होवैहै ॥ इसरीतिसैं देवशरीर मिश्रितकर्मका फल है ॥ औ

(३) तिर्यक्पशुपक्षीका शरीर बी मिश्रितकर्मका फल है। काहेतैं? जो तिनकूं प्रसिद्ध दुःख है सो तौ पापका फल है औ मैथुनादिकनका सुख है सो पुन्यका फल है ॥ (क) उदरसैं जो गमन करै सो तिर्यक् कहिये है ॥ (ख) पक्षसैं गमन करै सो पक्षी कहिये है ॥ (ग) च्यारिपादसैं गमन करै सो पशु कहिये है ॥ (घ) कहूं पशुपक्षी बी तिर्यक्ही कहियेहैं॥

इसरीतिसैं सर्वशरीर पुन्य और पापसैं रचित हैं ॥

(१) कोई शरीर तौ न्यूनपाप औ अधिकपुन्यतैं रचित हैं। जैसैं देवशरीर हैं ॥ अपनैअपनै जो पुन्य हैं, तिनहीतैं सर्वदेवनविषै पाप न्यून है । यातैं न्यूनपापअधिकपुन्यतैं रचित देवशरीर कहियेहैं। या अभिप्रायतैंही शास्त्रमैं केवलपुन्यका फल देवशरीर कह्याहै। यातैं विरोध नहीं । जैसैं बहुतब्राह्मणतैं ब्राह्मणग्राम कहिये है तैसैं अधिकपुन्यका फल होनैतैं देवशरीर केवलपुन्यका फल कहिये हैं। परंतु केवलपुन्यका फल नहीं ॥

(२) तिर्यक्पशुपक्षीका शरीर अधिकपापन्यूनपुन्यसैं रचित है ॥

(३) जो उत्तममनुष्य हैं तिनकी देवनके समान रीति है और नीचनकी सर्पादिनके समान है ॥

इसरीतिसैं सर्वशरीर पुन्यपापरचित हैं॥ औ पापका फल दुःख है। यातैं शरीर रहै तवपर्यंत दुःखकी निवृत्ति होवै नहीं ॥

(१) सो शरीर धर्म औ अधर्मका फल है। तिनकी निवृत्तिविना शरीरकी निवृत्ति होवै नहीं। काहेतैं? वर्त्तमानशरीर दूरि हुयेसैं बी पुन्यपापतैं औरशरीर होवैगा । यातैं पुन्यपापकी निवृत्तिविना शरीरकी निवृत्ति होवै नहीं ॥

॥ ९९ ॥ यामैं इतना भेद है:— परमेश्वरकी भक्ति दया सत्य औ ज्ञानआदिक् शुभगुणनका तौ मनुष्यमात्रकूं अधिकार है। औ वर्णाश्रमके कर्मका तौ वर्णआश्रमवाले मनुष्यनकूंही यथायोग्य अधिकार है। यातैं देव औ तिर्यक् पशु पक्षीकूं क्रमतैं सर्वज्ञता औ अज्ञतारूप हेतुतैं ज्ञानी औ बालककी न्याईं वर्त्तमानशरीरविषै किये शुभअशुभकर्मका फल अन्यजन्मविषै होता नहीं। यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥

(२) सो पुन्यपाप रागद्वेपके नाशविना दूरि होवै नहीं। काहेतें? वर्त्तमानपुन्यपापकी भोगसें निवृत्ति हुवेसें वी रागद्वेपतें औरपुण्यपाप होवैंगे यातें रागद्वेपकी निवृत्तिविना पुन्यपाप दूरि होवैं नहीं ॥

(३) सो रागद्वेप अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूल-ज्ञानसें होवैहै ॥ (क) जाविषै अनुकूलज्ञान होवै ताविषै राग होवैहै। औ (ख) जाविषै प्रतिकूल-ज्ञान होवै ताविषै द्वेप होवैहै।

यातें अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञानकी निवृ-त्तिविना रागद्वेपकी निवृत्ति होवै नहीं ॥

(४) सो अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञान भेद-ज्ञानसें होवैहै। काहेतें? जा वस्तुकूं अपनै स्वरूपतें भिन्न जानै ताकेविषै अनुकूलज्ञान अथवा प्रति-कूलज्ञान होवैहै। अपनै स्वरूपमैं अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञान होवै नहीं ॥ (क) सुखके साध-नका नाम अनुकूल है औ (ख) दुःखके साधनका नाम प्रतिकूल है ॥

अपना स्वरूप सुखका अथवा दुःखका साधन नहीं। यद्यपि सुखरूप है। तथापि सुखका साधन नहीं। यातें स्वरूपसें भिन्न जो वस्तु जान्याहै ताविषै अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञान होवैहै ॥ इसरीतिसें पदार्थन-विषै अपनेसें जो भेदज्ञान सो अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञानका हेतु है। ता भेदज्ञानकी निवृत्तिविना अनुकूलज्ञानप्रतिकूलज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं ॥

(५) सो भेदज्ञान अविद्याजन्य है। काहेतें? "संपूर्णप्रपंच औ ताका ज्ञान स्वरूपके अज्ञान-कालमैं है"। यह संपूर्णवेद अरु शास्त्रका ढंढोरा है। इसरीतिसें संपूर्णदुःखका हेतु स्वरूपका अज्ञान है ॥ सो स्वरूपका अज्ञान स्वरूपज्ञानविना दूरि होवै नहीं। काहेतें? जा वस्तुका अज्ञान होवै सो ताके ज्ञानसें दूरि होवैहै। जैसें रज्जुका अज्ञान रज्जुके ज्ञानसें दूरि होवैहै। औरसें नहीं। यातें स्वरूपका ज्ञानही अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा दुःखकी निवृत्तिका हेतु है ॥ औ—

स्वरूपज्ञानसें ब्रह्मकी प्राप्ति होवैहै सो ब्रह्म नित्य है औ आनन्दस्वरूप है। दुःखसंबंधसें रहित है। यातें स्वरूपज्ञानसें नित्य औ दुःखके संबंधसें रहित जो ब्रह्मस्वरूप आनंद ताकी प्राप्ति वी होवैहै ॥

इसरीतिसें दुःखकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिका हेतु स्वरूपज्ञान है। यातैं स्वरूप जाननेकूं योग्य है ॥

ऐसा जाके विवेक होवै सो जिज्ञासु कहियेहै ॥

४ स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरतें भिन्न जो अपना स्वरूप ताका ब्रह्मरूपकरिके अपरोक्षज्ञान जाकूं होवै सो मुक्त कहियेहै ॥

इसरीतिसें चारिप्रकारके पुरुष हैं ॥ तिनविषै

॥ १०० ॥ अज्ञानरूप मूलके निवृत्त भये ज्ञानीकूं जीवईश्वरका भेद औ ताके अंतर्गतजीवजी-वका भेद, जीवजडका भेद, औ जडजडका भेद औ जडईश्वरका भेद। ये पांचभेद वास्तव प्रतीत होते नहीं। किंतु कल्पित उपाधिकृत होनेतें कल्पित प्रतीत होवैहैं। तातें बाधितानुवृत्तिकारि दग्धधान्यकी न्यांई अनुकूलप्रतिकूलज्ञान रागद्वेप (पंचक्लेश) औ शुभा-शुभक्रिया प्रतीत होवैहै। परंतु ताका फल भाविजन्म औ सुखदुःख होवै नहीं ॥

॥ १०१ ॥ १ उत्तम २ मध्यम ३ कनिष्ठभेदतें जिज्ञासु तीनप्रकारका है:—

१ तीव्रजिज्ञासावान् हुया चारिसाधन अथवा मंदबोधकरि संपन्न उत्तमजिज्ञासु है ॥ औ

२ मंदजिज्ञासाकरिके वेदांतश्रवणविषै प्रवृत्त होवै सो मध्यमजिज्ञासु है ॥

३ मंदजिज्ञासाकरिके निष्कामकर्मउपासनाविषै प्रवृत्त होवै सो कनिष्ठजिज्ञासु है ॥

॥ ७१ ॥ ग्रंथमैं जिज्ञासुकी प्रवृत्ति होवैहै । मुक्तादिक तीनकी नहीं ॥

१–२ पामर औ विषयीकूं तौ यद्यपि विषयसुखमैंही अलंबुद्धि है औ किसी विषयीकूं परमसुखकी इच्छा बी होवै तब बी ताके जो उपाय नहीं हैं । तिनमैं उपायबुद्धिकरिके प्रवृत्त होवैहै । काहेतैं ? उपायका ज्ञान सत्संग औ सत्‌शास्त्रके श्रवणतैं होवैहै सो ताके है नहीं । यातैं पामर औ विषयीकी सुखप्राप्तिके निमित्त ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं ॥ दुःखकी निवृत्तिके निमित्त बी दोनों अन्यउपायनमैं प्रवृत्त होवैहैं । ताके निमित्त बी ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं । यातैं विषयी औ पामरकी ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं ॥

३ तथापि जिज्ञासु जो पुरुष है ताकूं विषयसुखसैं अलंबुद्धि होवै नहीं । किंतु परमसुखकी ताकूं इच्छा है औ दुःखकी अत्यंतकरिके निवृत्तिकी इच्छा है । सो "परमसुखकी प्राप्ति औ दुःखकी अत्यंतनिवृत्ति ज्ञानसैं विना होवै नहीं" ऐसा जाकूं सत्संगसैं विवेक है ताकी ग्रंथमैं प्रवृत्ति बनैहै ॥ औ–

४ मुक्तकी प्रवृत्ति बी होवै नहीं । काहेतैं ? ज्ञानवान् मुक्त कहियेहैं । सो ज्ञानी कृतकृत्य है । ताकूं कछु कर्तव्य नहीं । यह वार्ता आंगे प्रतिपादन करैंगे ॥ औ लीलाकरिके मुक्त प्रवृत्त होवै तौ बी मुक्तकूं ग्रंथमैं प्रवृत्तिसैं कोई प्रयोजन सिद्ध होवै नहीं । यातैं मुक्तके निमित्त बी ग्रंथ नहीं ॥

इसरीतिसैं मोक्षकी इच्छावान् अधिकारी बनैहै ॥ ११ ॥

॥ ७२ ॥ ॥ विषयमंडन (२) ॥ ७२–७६ ॥

अंक ३९–४४ गत पूर्वपक्षका उत्तर ॥

दोहा–

साक्षी ब्रह्मस्वरूप इक,
नहीं भेदको गंध ॥
रागद्वेष मतिके धरम,
तामैं मानत अंध ॥ १२ ॥

टीकाः–पूर्व कह्या जो "जीव रागादिकक्लेशसहित है औ ब्रह्म क्लेशरहित है । यातैं जीवब्रह्मकी एकता ग्रंथका विषय बनै नहीं" ॥

यह वार्ता यद्यपि सत्य है तथापि रागद्वेषरहित जो साक्षी है ताकी ब्रह्मसैं एकता बनैहै ॥ और–

जो पूर्व कह्या "कर्त्ताभोक्तासैं भिन्न साक्षी वंध्यापुत्रके समान असत् है" ॥

सो बनै नहीं । काहेतैं ? कर्त्ताभोक्ता जो संसारी ताके विशेषभागका नाम साक्षी है ॥ जो साक्षीका निषेध करैं तो संसारीके विशेषभागका निषेध होनैतैं कर्त्ताभोक्ता जो संसारी ताकाही निषेध होवैगा ॥

एकैंही चैतन्यकेविषै साक्षीभावकी अंतः–

॥ १०२ ॥ यह वार्ता आगे पंचमतरंगमैं २७५ के अंकविषै कहियेगी ॥ याके उपरि जो पामर औ विषयीकूं विषयसुखमैं अलंबुद्धि कही है ताका अर्थ संतोष नहीं । काहेतैं ? विषयसुखके भोगकूं अग्निविषै डारे घृतकी न्याईं अधिक भोगकी इच्छारूप तृष्णाका वर्द्धक होनैतैं ताका अर्थ संतोष नहीं । किंतु "विषयसुखसैं विलक्षण नित्यनिरतिशयआत्मसुख बी है" इस ज्ञानके अभावतैं सेखसल्लिके मनोरथकी न्याईं मनोरथमात्र भाविविषयसुखविषै कृतार्थताकी बुद्धि उक्त अलंबुद्धिशब्दका अर्थ है ॥

॥ १०३ ॥ एकही अंतःकरण विवेकीकी दृष्टिसैं चेतनका उपाधि है औ अविवेकीकी दृष्टिसैं विशेषण है । यातैं एकही चेतन विवेकीकूं साक्षीरूप भासताहै औ अविवेकीकूं जीवरूप भासताहै । यह वार्ता बालबोधविषै हमनैं स्पष्ट लिखीहै ॥

करण उपाधि है औ कर्त्ताभोक्तापनैका विशेषण है ॥

विशेषणसहित विशिष्ट कहियेहै ॥

उपाधिवाला उपहित कहिये है ॥

जो वस्तु जितनै देशमैं आप होवै, उस देशमैं स्थितवस्तुकूं जनावै औ आप पृथक् रहै। सो उपाधि कहियेहै। जैसैं नैयायिकमतमैं कर्णगोलकवृत्ति आकाश श्रोत्र कहियेहै। सो कर्णगोलक श्रोत्रकी उपाधि है। काहेतैं? सो कर्णगोलक जितनै देशमैं आप है। उतनें देशमैं स्थित आकाशकूं श्रोत्ररूपकरिके जनावैहै औ आप पृथक् रहैहै। यातैं कर्णगोलक श्रोत्रकी उपाधि है ॥

तैसैं अंतःकरण बी जितनै देशमैं आप है उतनै देशमैं स्थित चेतनकूं साक्षीसंज्ञाकरिके जनावैहै। आप पृथक् रहैहै। यातैं अंतःकरण साक्षीकी उपाधि है।

यातैं यह अर्थ सिद्ध हुवाः—अंतःकरणविषै वृत्ति जो चेतनमात्र सो साक्षी कहियेहै।

॥ ७३ ॥ अपनैसहित वस्तुकूं जो जनावै सो विशेषण कहियेहै।

जैसैं "कुंडलवाला पुरुष आयाहै"। या स्थानमैं पुरुषका कुंडल विशेषण है। काहेतैं? अपनैसहित पुरुषका आगमन कुंडल जनावैहै। यातैं विशेषण है ॥ "नीलरूपवान् घटकूं मैं देखूंहूं" या स्थानमैं बी नीलरूप घटका विशेषण है ॥

तैसैं अंतःकरण बी कर्त्ताभोक्ता जो जीवचेतन ताका विशेषण है। काहेतैं अंतःकरणसहित चेतनकूं कर्त्ताभोक्तारूपकरिके अंतःकरण जनावैहै। यातैं संसारीका अंतःकरण विशेषण है ॥

यातैं यह सिद्ध हुवाः—अंतःकरणविषै वृत्ति चेतन औ अंतःकरण संसारी कहियेहै। या अर्थकूं विस्तारसैं आगे कहैंगे ॥

॥ ७४ ॥ रागद्वेषादिक क्लेश संसारीविषै हैं, औ साक्षीविषै नहीं। संसारीका बी जो विशेषण अंतःकरण है ताकेविषै हैं औ विशेष्य जो चैतन्य ताकेविषै नहीं। काहेतैं? संसारीविषै विशेष्य जो चैतन्यभाग ताका साक्षीसैं भेद नहीं। काहेतैं?

१ एकही चैतन्य अंतःकरणसहित संसारी है। औ—

२ अंतःकरणभाव त्यागिके साक्षी कहियेहै। यातैं साक्षीका औ संसारीके विशेष्यभागका भेद नहीं। जो विशेष्यभागमैं क्लेश अंगीकार करैं तब साक्षीमैं बी अंगीकार करनै होवैंगे ॥ औ "साक्षी सर्वक्लेशरहित है"। यह वेदका सिद्धांत है। यातैं संसारीके विशेष्यभागमैं क्लेश नहीं। किंतु विशेषणमात्र अंतःकरणमैं हैं। इस अभिप्रायतैं दोहेके तृतीयपादमैं रागद्वेष बुद्धिके धर्म कहे औ जीवके नहीं कहे ॥

इसरीतिसैं अंतःकरणविशिष्टकी ब्रह्मसैं एकता नहीं बी बनै। परंतु अंतःकरणउपहित

॥ १०४ ॥ इहां इस साक्षीके लक्षणकी पद्कृति (परीक्षा) हैः—

१ अंतःकरण तौ आप बी है। परंतु सो ताकेविषै वृत्ति कहिये वर्त्तनेवाला नहीं ॥

२ चेतन तौ चिदाभास बी है। सो चेतनमात्र नहीं ॥

३ चेतनमात्र तौ ब्रह्म बी है। सो अंतःकरणविषै वृत्ति नहीं ॥

यातैं ऊपर लिख्या साक्षीका लक्षण निर्दोष है ॥

॥ १०५ ॥ यह अर्थ चतुर्थतरंगगत २०१-२०२ के अंकविषै तथा षष्ठतरंगविषै बी कहियेगा ॥

॥ १०६ ॥ जाके आश्रित होयके विशेषण रहै सो विशेष्यभाग कहियेहै ॥

जो साक्षी ताकी ब्रह्मसैं एकता बनैहै ॥ और

॥ ७५ ॥ जो पूर्व कह्याः—" साक्षी नाना हैं औ ब्रह्म एक है, यातैं नानासाक्षीकी एकब्रह्मसैं एकता बनै नहीं । औ जो व्यापक एकब्रह्मतैं साक्षीका अभेद अंगीकार करोगे तौ साक्षी बी सर्वशरीरमैं व्यापक एकही होवैगा । यातैं सर्वशरीरके सुखदुःख भान हुवेचाहिये " ॥

सो शंका बनै नहीं । काहेतैं? यद्यपि ईश्वरसाक्षी एक है औ जीवसाक्षी नाना हैं औ परिच्छिन्न हैं । तौ बी व्यापकब्रह्मसैं भिन्न नहीं ॥ जैसैं घटाकाश नाना हैं औ परिच्छिन्न हैं तौ बी महाकाशसैं भिन्न नहीं । किंतु महाकाशरूपही घटाकाश हैं ॥ तैसैं नाना जो परिच्छिन्नसाक्षी सो बी ब्रह्मरूपही है ॥ और—

॥ ७६ ॥ जो पूर्व कह्याः—" सुखदुःख अंतःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं " ॥

सो असंगत है । काहेतैं? यद्यपि सुखदुःख साक्षीभास्य है सो साक्षी नाना हैं । तथापि जब अंतःकरणका परिणाम सुखरूप वा दुःखरूप होवै ताही समय अंतःकरणकी ज्ञानरूप वृत्ति सुखदुःखकूं विषय करनैवाली होवैहै ॥ ता वृत्तिमैं आरूढ साक्षी तिनकूं प्रकाशैहैं ॥

इसरीतिसैं ग्रंथकारोंनै सुखदुःख साक्षीके विषय कहेहैं । वृत्तिविना केवलसाक्षीके विषय नहीं ॥ या स्थानमैं—

यह रहस्य हैः—जैसैं आकाशमैं घटाकाश नाम औ जलका आनयनरूप जो कार्य प्रतीत होवैहै सो घटरूप उपाधिकी दृष्टिसैं प्रतीत होवैहै । घटरूप उपाधिकी दृष्टिविना घटाकाश नाम औ जलका आनयनरूप कार्य प्रतीत होवै नहीं । किंतु आकाशमात्रही प्रतीत होवै । यातैं घटाकाश महाकाशरूप है ॥

तैसैं चेतनविषै साक्षी नाम औ धर्मसहित अंतःकरणका प्रकाशरूप कार्य अंतःकरणरूप उपाधिकी दृष्टिसैं प्रतीत होवैहै । औ अंतःकरणरूप उपाधिकी दृष्टिविना साक्षी नाम औ धर्मसहित अंतःकरणका प्रकाशरूप कार्य प्रतीत होवै नहीं । किंतु चैतन्यमात्र ब्रह्मही प्रतीत होवै । यातैं साक्षी ब्रह्मरूप है ॥

या अभिप्रायतैं दोहेके प्रथमपादमैं साक्षी एक कह्या । काहेतैं? उपाधिकी दृष्टिविना साक्षीमैं नानापना औ परिच्छिन्नभाव प्रतीत होवै नहीं ।

सो साक्षी जीवपदका लक्ष्य है । यह वार्त्ता आगे कहैंगे ॥

इसरीतिसैं जीवब्रह्मकी एकता ग्रंथका विषय बनैहै ॥ १२ ॥

॥७७॥ प्रयोजनमंडन (३)॥७७—९२॥

॥ अंक ४५ गत पूर्वपक्षका उत्तर ॥

॥अथ कार्यअध्यासनिरूपणं ७७—८४

॥ कवित्व ॥

सजातीयज्ञान संसकार-
तैं अध्यास होत ।

॥ १०७ ॥ जैसैं कोरे कागजपर स्याही लगायके ताके मध्य श्वेतअक्षर धर्‍या होवै तिस अक्षरका औ कोरेकागजका जैसा कथनमात्र भेद है । तैसा साक्षीका औ शुद्धचैतन्यका भेद है । जैसैं स्याहीरूप उपाधिकी दृष्टिविना अक्षरनाम नहीं । किंतु वह कोरा कागजही है । तैसैं अंतःकरणरूप उपाधिकी दृष्टिविना साक्षीनाम नहीं । किंतु वह शुद्धचैतन्यही है ॥

॥ १०८ ॥ यह वार्त्ता आगे चतुर्थतरंगगत २०१—२०२ के अंकविषै तथा षष्ठतरंगगत३४१ के अंकविषै कहियेगी ॥

॥ १०९ ॥ अज्ञानकृतस्थूलसूक्ष्मप्रपंचरूप जो भ्रम सो कार्यअध्यास है ॥

सत्यज्ञानजन्य संसकार-
को न नेम है ॥
दोषको न हेतुता
अध्यासविषै देखियत ।
पटविषै हेतु जैसे
तुरी तंतु वेम है ॥
आतमा द्विजाति संख
पीत सिता कटु भासै ।
सीपमैं विरागी रूप
देखै बिन प्रेम है ॥
नभ नील रूपवान
भासत कटाह तंबू ।
जिनके न कोउ पित्त
प्रभृति अछेम हैं ॥ १३ ॥

टीकाः—पूर्व कह्या जो "बंध सत्य है ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै नहीं औ मिथ्या-वस्तुकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवैहै ॥ आत्मामैं मिथ्याबंधकी सामग्री है नहीं । यातैं बंध सत्य है, ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै नहीं" ॥

सो वार्त्ता बनै नहीं । काहेतैं ? बंध मिथ्या है, ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति बनैहै औ—

॥ ७८ ॥ अंक ४७—४८ गत पूर्वपक्षका उत्तर ॥ ७८—८२ ॥

पूर्व कह्या जो "सत्यवस्तुका ज्ञान संस्कारद्वारा अध्यासका हेतु है । जैसैं सत्य-सर्पका ज्ञान संस्कारद्वारा सर्पअध्यासका हेतु है। तैसैं सत्यबंध होवै तौ सत्यबंधका ज्ञान होवै । सो सिद्धांतमैं अनात्मवस्तु कोई सत्य है नहीं । यातैं सत्यवस्तुका ज्ञान जो संस्कारद्वारा अध्यास-की सामग्री ताका अभाव होनैतैं बंध अध्यास नहीं । किंतु सत्य है" ॥

(१ सत्यवस्तुजन्य ज्ञानके संस्कारका खंडन)

सो शंका बनै नहीं । काहेतैं ? अध्यास-विषै संस्कारद्वारा सत्यवस्तुका ज्ञान हेतु नहीं । किंतु वस्तुका ज्ञान हेतु है । सो वस्तु सत्य होवै अथवा मिथ्या होवै । जो सत्यवस्तुका ज्ञानही अध्यासविषै हेतु होवै तौ जा पुरुषनैं सत्यछुहारेका वृक्ष नहीं देख्याहोवै औ बाजीगरका बनाया मिथ्या-छुहारेका वृक्ष बहुतवार देख्याहोवै औ बाजीगरसैं ऐसा सुन्याहोवै जो "यह छुहारेका वृक्ष है" औ खजूरका वृक्ष कदै देख्या सुन्या होवै नहीं । ताकूं खजूरका वृक्ष देखिके छुहारेका अध्यास होवैहै सो नहीं हुवाचाहिये । काहेतैं ? सत्यछुहारेका ताकूं ज्ञान है नहीं ॥ औ हमारी रीतिसैं तौ बाजीगरका देख्या जो मिथ्याछुहारा ताका ज्ञान है । यातैं अध्यास बनैहै । यातैं सजातीय वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कारही अध्यासके हेतु हैं ॥

सो संस्कारका जनक ज्ञान औ ताका विषय मिथ्या होवै अथवा सत्य होवै । संस्कार-द्वारा ज्ञान हेतु है ॥ औ—

"ज्ञानजन्य संस्कार हेतु है" । या कहनैमैं अर्थका भेद नहीं । एकही अर्थ है। काहेतैं ? "सं-स्कारद्वारा ज्ञान हेतु है" याका अर्थ यह हैः—ज्ञान संस्कारका हेतु है औ संस्कार अध्यासका हेतु है । यातैं संस्कारद्वारा ज्ञानकूं हेतुता कहनैतैं बी ज्ञानजन्य संस्कारकूंही अध्यासविषै हेतुता सिद्ध होवैहै ॥ औ—

॥७९॥ (सिद्धांतीः—) केवलवस्तुके ज्ञानकूंही अध्यासविषै हेतु कहै तौ बनै नहीं । काहेतैं ?

यह नियम है:- "जो हेतु होवै सो कार्यसैं अव्यवहितपूर्वकालमैं होवैहै" । जैसैं घटका हेतु दंड है सो घटसैं अव्यवहितपूर्वकालमैं होवैहै तैसैं जो अध्यासका हेतु ज्ञान अंगीकार करैं सो बी अध्यासतैं अव्यवहितपूर्वकालमैं चाहिये॥

१ (पूर्वपक्षी:-) सो बनै नहीं। काहेतैं? जा पुरुषकूं सर्पका ज्ञान होवै ताकूं ज्ञानसैं महिने पीछे बी रज्जुविषै सर्पका अध्यास होवैहै । सो नहीं हुवाचाहिये । काहेतैं? जो रज्जुमैं सर्पअध्यास-का हेतु सर्पका ज्ञान है ताका नाश होय गया । यातैं अव्यवहितपूर्वकालमैं है नहीं । यद्यपि पूर्वकालमैं तौ है तथापि अव्यव-हितपूर्वकालमैं है नहीं ॥

(१)अंतरायरहितका नाम अव्यवहित है औ-

(२)अंतरायसहितका नाम व्यवहित है ॥ औ

२ जो ऐसे कहै:-कार्यतैं पूर्वकालमैं हेतु चाहिये । व्यवहितपूर्वकालमैं होवै अथवा अव्यवहितपूर्वकालमैं होवै ॥ औ "कार्यतैं अव्यवहितपूर्वकालमैंही हेतु होवैहै" । ऐसा नियम अंगीकार करैं तौ "विहितकर्म स्वर्गप्राप्तिका हेतु है औ निषिद्धकर्म नरकप्राप्तिका हेतु है" । यह शास्त्रकी वार्त्ता अप्रमाण होय जावैगी । काहेतैं? कायिकवाचिकमानसक्रियाका नाम कर्म है । सो क्रिया अनुष्ठानकालसैं अनंतरही नाश होय जावैहै औ स्वर्गनरक कालांतरमैं होवैहैं । यातैं स्वर्गनरकप्राप्तिके अव्यवहितपूर्वकालमैं विहितकर्म औ निषिद्धकर्म है नहीं ॥ जैसैं व्यवहितपूर्वकालके शुभकर्म औ अशुभकर्म स्वर्ग-प्राप्ति औ नरकप्राप्तिके हेतु हैं । तैसैं "व्यवहित-पूर्वकालमैं जो सर्पका ज्ञान सो बी रज्जुमैं सर्पअध्यासका हेतु है" ॥

१-२ (सिद्धांती:-) सो वार्त्ता बनै नहीं । काहेतैं? जैसैं नष्टज्ञान औ नष्टकर्मतैं अध्यास औ स्वर्गनरककी प्राप्ति अंगीकार करी । तैसैं मृत-कुलाल औ नष्टदंडसैं बी घट हुवाचाहिये । काहेतैं? जैसैं रज्जुमैं सर्पअध्यासतैं व्यवहितपूर्व-कालमैं सर्पका ज्ञान है औ स्वर्गनरककी प्राप्तितैं व्यवहितपूर्वकालमैं शुभअशुभकर्म हैं । तैसैं घटतैं व्यवहितपूर्वकालमैं नष्टदंड औ मृतकुलाल बी हैं । तिनतैं बी घट हुवाचाहिये सो होवै नहीं । यातैं व्यवहितपूर्वकालमैं जो वस्तु होवै सो हेतु नहीं । किंतु अव्यवहितपूर्वकालमैं जो वस्तु होवै सोई हेतु होवैहै ॥ औ-

शुभअशुभकर्म बी कालांतरभावी जो स्वर्ग-नरककी प्राप्ति ताके हेतु नहीं किंतु शुभकर्म तौ अपनैतैं अव्यवहित उत्तरकालमैं धर्मकी उत्पत्ति करैहै । अशुभकर्म अधर्मकी उत्पत्ति करैहै सो धर्मअधर्म अंतःकरणविषै रहैहैं । तिनतैं कालांतरमैं स्वर्ग औ नरककी प्राप्ति होवै-है । तासैं अनंतर धर्मअधर्मका नाश होवैहै । इस अभिप्रायसैंही शास्त्रमैं शुभकर्म औ अशुभकर्म अपूर्वद्वारा फलके हेतु कहेहैं । साक्षात् नहीं ॥

अपूर्व नाम धर्मअधर्मका है औ अदृष्ट बी तिनकूं कहैहैं औ पुन्यपाप बी तिनकूंही कहैहैं औ कहूं धर्मअधर्मकी जनक जो शुभअशुभ-क्रिया है । ताकूं बी धर्मअधर्म कहैहैं ॥ जैसैं कोई शुभक्रिया करता होवै ताकूं लोक ऐसा कहैहैं:-"यह धर्म करैहै" औ अशुभक्रिया करनैवालेकूं ऐसा कहैहैं:-"यह अधर्म करैहै" ॥ सो शुभअशुभक्रियाका नाम धर्मअधर्म नहीं । किंतु शुभअशुभक्रिया धर्मअधर्मकी जनक है । यातैं क्रियाकूं धर्मअधर्म कहैहैं ॥ जैसैं आयुका वर्धक जो घृत है ताकूं शास्त्रमैं आयु कहैहैं ॥

इसरीतिसैं अव्यवहितपूर्वकालमैं हेतु होवै-है ॥ औ—

॥ ८० ॥ रज्जुमैं सर्पअध्यासतैं अव्यवहित पूर्वकालमैं सर्पका ज्ञान है नहीं यातैं सर्पका ज्ञान रज्जुमैं सर्पअध्यासका हेतु नहीं । किंतु सर्पज्ञानजन्य संस्कारही रज्जुमैं सर्पअध्यासका हेतु है ॥ तैसैं सीपीमैं रूपअध्यासका हेतु रूप-ज्ञानजन्यसंस्कार है ॥ इसरीतिसैं सारे संस्कारही अध्यासके हेतु हैं ॥ औ—

वस्तुका ज्ञान संस्कारका हेतु है ॥ जैसैं शुभअशुभकर्मजन्य धर्मअधर्म अंतःकरणमैं रहै-हैं तैसैं वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार बी अंतः-करणमैं रहैहैं ॥

जा पुरुषकूं पूर्व सर्पका ज्ञान नहीं हुवा ताके बी औरवस्तुके ज्ञानजन्यसंस्कार तौ हैं । परंतु रज्जुमैं सर्पका अध्यास होवै नहीं ॥ जा वस्तुका अध्यास होवै । ताके सजातीयवस्तुके ज्ञानका संस्कार अध्यासका हेतु है । विजातीयके ज्ञानके संस्कार हेतु नहीं ॥ सर्पके सजातीय सर्प होवैहै । और नहीं । सर्पका जाकूं पूर्वज्ञान नहीं । अन्यवस्तुका ज्ञान है । ताकूं सजातीयवस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार नहीं । यातैं रज्जुमैं सर्पका अध्यास होवै नहीं ॥

सूक्ष्मअवस्थाका नाम **संस्कार** है ॥

इस रीतिसैं अध्यासतैं पूर्व जो सजातीय-वस्तुका ज्ञान ताके संस्कार अध्यासके हेतु हैं ॥ औ—

"सत्यवस्तुके ज्ञानके संस्कारही अध्यासके हेतु हैं । मिथ्यावस्तुके ज्ञानके नहीं" **यह नियम नहीं** ॥ यह वार्त्ता छुहारेके दृष्टांतसैं प्रतिपादन करीहै । यातैं मिथ्यावस्तुके ज्ञानजन्यसंस्कार-बी अध्यासके हेतु हैं ॥

॥ ८१ ॥ **सो बंधके अध्यासविषै बी** बनैहै । काहेतैं? जो अहंकारसैं आदिलेके अनात्मवस्तु औ ताका ज्ञान बंध कहियेहैं ॥

"सो अनात्मवस्तु रज्जुके सर्पकी न्याई जब प्रतीत होवै तबही है औ प्रतीत नहीं होवै तब नहीं" । यह हमारा **वेदसंमतसिद्धांत** है ॥ इस कारणतैंही सुषुप्तिविषै सर्वप्रपंचका अभाव प्रतिपादन किया है । सुषुप्तिमैं कोई पदार्थ प्रतीत होवै नहीं । यातैं सर्वप्रपंचका सुषुप्तिमैं लय होवैहै इसका नाम शास्त्रमैं **दृष्टिसृष्टिवाद**[११०] कहैहैं ॥ या अर्थकूं[१११] आगे प्रतिपादन करैंगे ॥

इसरीतिसैं अनंतअहंकारादिक औ तिनके ज्ञान उत्पन्न होवैहै औ लय होवैहै । अहंकारा-दिक औ तिनके ज्ञानकी साथही उत्पत्तिलय होवैहै । जब अहंकारादिकनकी प्रतीतिकी उत्पत्ति होवै तब अहंकारादिकनकी उत्पत्ति होवैहै औ प्रतीतिका लय होवै तब अहंकारादिकनका लय होवैहै । अहंकारादिक औ तिनके ज्ञानका नाम अध्यास है । यह वार्त्ता अनिर्वचनीय ख्यातिके प्रतिपादनमैं कहैंगे ॥ यद्यपि अहंकार साक्षीभास्य है । यह वार्त्ता विषयप्रति-पादनमैं कहीहै । यातैं अहंकारकी प्रतीति साक्षी-रूप है । ताकी उत्पत्ति औ लय बनै नहीं । तथापि अहंकारका बी वृत्तिसैंही साक्षी प्रकाश करैहै । साक्षात् नहीं । ता वृत्तिकी उत्पत्तिलय होवैहैं । यातैं अहंकारकी प्रतीतिकी उत्पत्तिलय कहियेहै ॥

इसरीतिसैं उत्तर उत्तर अहंकारादिक औ तिन के ज्ञानकी जो उत्पत्ति ताके हेतु पूर्वपूर्व मिथ्या अहंकारादिकनके ज्ञानजन्यसंस्कार बनैहैं ॥ और

॥ ८२ ॥ जो ऐसैं कहैः—"उत्तर उत्तर-अहंकारादिकनके अध्यासविषै तौ यद्यपि

॥ ११० ॥ दृष्टि कहिये अविद्याकी वृत्तिरूप ज्ञान ताके समसमयमैं सृष्टि कहिये पदार्थ (विषय) की उत्पत्ति ताका वाद कहिये कथन जा पक्षमैं कियाहै तापेक्षकूं शास्त्रमैं **दृष्टिसृष्टिवाद** कहतेहैं ॥

॥ १११ ॥ या अर्थकूं आगे षष्ठतरंगगत ३१७—३२९ के अंकविषै प्रतिपादन करैंगे ॥

पूर्वपूर्वअध्यासके संस्कार हेतु बनैहैं । तथापि प्रथम उत्पन्न जो अहंकार औ ताका ज्ञान ताके हेतु संस्कार बनै नहीं । काहेतैं? जो ताके पूर्व औरअहंकार उत्पन्न हुवा होवै तौ ताके ज्ञानके संस्कारबी होवैं । सो प्रथमअहंकारसैं पूर्व और अहंकार हुवा नहीं ॥ तैसैं "सर्ववस्तुके प्रथमअध्यासके हेतु संस्कार बनै नहीं" ॥

यह शंका बी सिद्धांतके अज्ञानसैं होवैहै । काहेतैं? यह वेदांतका सिद्धांत है:-एक ब्रह्म औ ईश्वर । जीव । अविद्या औ अविद्याका चैतन्यसैं संबंध औ अनादि वस्तुका भेद । यह षट्वस्तु स्वरूपसैं अनादि हैं ॥ जा वस्तुकी [११२] उत्पत्ति होवै नहीं सो वस्तु स्वरूपसैं अनादि कहियेहैं ॥ इन षट्की उत्पत्ति होवै नहीं । यातैं स्वरूपसैं अनादि हैं ॥ औ—

अहंकारादिकनकी तौ श्रुतिमैं उत्पत्ति कही-है । यातैं स्वरूपसैं अनादि यद्यपि अहंकारादिक नहीं तथापि प्रवाहरूपतैं सर्ववस्तु अनादि हैं ॥ सर्ववस्तुका प्रवाह दूरि होवै नहीं॥ अनादिकालमैं ऐसा समय कोई पूर्व हुवा नहीं। जा समय कोई घट होवै नहीं । यातैं घटका प्रवाह अनादि है । इसरीतिसैं सर्ववस्तुका प्रवाह अनादि है । प्रलयकालमैं बी सुषुप्तिकी न्यांई सर्ववस्तु संस्काररूप होयके रहैहैं ॥

यातैं प्रपंचका प्रवाह अनादि होनैतैं प्रपंच [११३] अनादि कहियेहै । ऐसा जाकूं ज्ञान नहीं है ।

॥ ११२ ॥ १ ब्रह्म अविद्याका अधिष्ठान है। यातैं ताकी अविद्या (मूलप्रकृति) तैं उत्पत्ति संभवै नहीं । औ ईश्वरजीवआदिककी सिद्धि तौ ब्रह्मविना होवै नहीं । यातैं तिन चारीतैं ब्रह्मकी उत्पत्ति संभवै नहीं । यातैं ब्रह्म अनादि है ॥

२ ब्रह्म निर्विकार है यातैं तिसतैं अविद्याकी उत्पत्ति नहीं औ ईश्वरआदिक चारीकी सिद्धि तौ अविद्याकी सिद्धिके आधीन है । यातैं तिनतैं अविद्याकी उत्पत्ति संभवै नहीं तातैं अविद्या अनादि है ॥

३-४ केवलब्रह्मतैं वा केवलमायातैं वा परस्परतैं वा स्वसिद्धिके आधीनभेदतैं जीवईश्वरकी उत्पत्ति संभवै नहीं औ अविद्याचेतनके संबंधकी सिद्धिसैं ईश्वरजीवकी सिद्धि है । सो संबंध आप बी अनादि है । तिसतैं तिनकी उत्पत्ति नहीं । तातैं ईश्वरजीव बी अनादि हैं ॥

५ ब्रह्म औ अविद्या अनादि है । यातैं तिनका तादात्म्यसंबंध बी अनादि है तिनतैं तिसकी उत्पत्ति नहीं । औ ईश्वरआदिक तीनकी सिद्धि तौ संबंधकी सिद्धिके आधीन है । यातैं तिनतैं तिसकी उत्पत्ति नहीं । अविद्या औ चेतनका संबंध अनादि है ॥

६ इन पांचों वस्तुकी आपही आपतैं उत्पत्ति मानै तौ आत्माश्रयदोष होवैगा । यातैं इन पांच वस्तुनकी आपआपतैं बी उत्पत्ति नहीं ॥ जातैं इन पांच वस्तुनकी उत्पत्ति नहीं । यातैं तिन पांचवस्तुनका परस्परभेद है । ताकी बी उत्पत्ति बनै नहीं ॥

इसरीतिसैं इन षट्वस्तुनकी उत्पत्ति नहीं । यातैं ये स्वरूपसैं अनादि हैं ॥ तिनमैं—

(१) ब्रह्म त्रिकालअबाध्य है । यातैं अनादि-अनंत है ॥ औ—

(२) अविद्याआदिक पांच ज्ञानसैं बाधकूं पावते-हैं । यातैं अनादिसांत है ॥

॥ ११३ ॥ प्रपंच अनादि है । यातैं बहुकाल-स्थायि होनैतैं सत्य होवैगा? । या शंकाका—

यह समाधान है:-जैसैं रज्जुमैं सर्पका भ्रम होवैहै औ स्वप्न होवैहै । सो घटी प्रहर दोप्रहर चारिप्रहरपर्यंत पूर्वसिद्ध औ अनादिसिद्ध प्रतीत होवै-है । किंवा सर्पादिभ्रम वर्षपर्यंत बी रहैहै । तौ बी रज्जुके औ जाग्रतके ज्ञान हुये ताका त्रिकालअभाव-निश्चयरूप बाध होवैहै । यातैं मिथ्या है ॥ तैसैं प्रपंच बी आरोपदशाविषै अनादिसिद्ध भासताहै । तौ बी अधिष्ठानके ज्ञान हुये याका त्रिकाल-अभावनिश्चयरूप बाध होवैहै । यातैं प्रपंच मिथ्या है । याहीतैं प्रवाहरूपसैं अनादिसांत कहियेहै ॥

ताकूं यह शंका होवैहैः—"जो प्रथमअध्यासके हेतु संस्कार बनै नहीं" ॥ औ सिद्धांतमैं किसी अहंकारादिक वस्तुका अध्यास सर्वसैं प्रथम है नहीं किंतु अपनेसैं पूर्वपूर्वअध्यासतैं संपूर्ण उत्तर हैं, यातैं शंका बनै नहीं ॥

इसरीतिसैं सजातीयके पूर्व ज्ञानजन्य संस्कारसैं अहंकारादिक बंधका अध्यास बनैहै। यह प्रथमपादका अर्थ है ॥ और—

॥ ८३ अंक ४९ गत पूर्वपक्षका उत्तर ॥ ८३—८४ ॥

(२ प्रमेयदोषका खंडन)

जो पूर्व कह्याः—"तीनप्रकारका दोष अध्यासका हेतु है औ बंधके अध्यासमें कोई बी दोष बनै नहीं, यातैं बंध सत्य है"

सो शंका बनै नहीं । काहेतें? जो दोषतैं विना अध्यास होवै नहीं तौ अध्यासका हेतु दोष होवै। जैसैं तुरी तंतु वेम पटके हेतु हैं। तुरी तंतु वेम होवैं तौ पट होवै औ नहीं होवैं तौ पट होवै नहीं, तैसैं दोष अध्यासके हेतु नहीं । काहेतें? सादृश्यदोषविना आत्मामैं जातिका अध्यास होवैहै ॥

ब्राह्मणत्वसैं आदिलेके जो जाति हैं सो स्थूलशरीरका धर्म है । आत्माका औ सूक्ष्मशरीरका धर्म नहीं। काहेतें? औरशरीरकूं प्राप्त होवै तब आत्मा औ सूक्ष्मशरीर तौ जो पूर्वशरीरमें है सोई रहैहै औ जाति और बी होवैहै । यह नियम नहींः—"जो पूर्व शरीरमैं जाति है सोई उत्तर शरीरमैं होवैहै" ॥ आत्माका अथवा सूक्ष्मशरीरका धर्म जाति होवै तौ उत्तर शरीरविषै औरजाति नहीं हुईचाहिये। यातैं आत्माका औ सूक्ष्मशरीरका धर्म जाति नहीं। किंतु स्थूलशरीरका धर्म है ॥ औ "मैं द्विजाति हूं"। इसरीतिसैं ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व वैश्यत्वजातिका आत्मामैं भान होवैहै। यातैं आत्मामैं जातिका अध्यास है ॥ जैसैं रज्जुमैं सर्प परमार्थसैं नहीं है औ भान होवैहै, यातैं रज्जुमैं सर्पका अध्यास है । तैसैं आत्मामैं जाति नहीं है औ भान होवैहै। यातैं आत्मामैं जातिका अध्यास है ॥ औ—

आत्माके साथ जातिका सादृश्य नहीं है । काहेतें?

१ आत्मा व्यापक है औ जाति परिच्छिन्न है ॥
२ आत्मा प्रत्यक् है औ जाति पराक् है ॥
३ आत्मा विषयी है औ जाति विषय है ॥

इसरीतिसैं आत्मामैं विरोधीजातिका बी अध्यास होवैहै ।

द्विजाति नाम त्रिवर्णका है ॥

जैसैं आत्माविषै सादृश्यतैं विना जातिका अध्यास होवैहै तैसैं सादृश्यविना अहंकारादिक बंधका अध्यास बी आत्मामैं बनैहै ॥

सादृश्य दोष अध्यासका हेतु नहीं ॥ जो सादृश्यदोष अध्यासका हेतु होवै तौ

१ आत्मामैं जातिका अध्यास नहीं हुवाचाहिये। औ—
२ शंखमैं पीतताका अध्यास नहीं हुवाचाहिये ॥ औ—

॥ ११४ ॥ न्यायमतमैं "नित्य एक औ अनेकधर्मी (व्यक्ति) नविषै अनुगतधर्म जाति कहियेहै" ताका औ आत्माका सादृश्यरूप प्रमेयदोष बनताहै। यातैं आत्मविषै जातिका अध्यास होवैहै। तातैं प्रमेयदोष अध्यासका हेतु है यह आशंका मनमैं ल्यायके दूसरा शंखमैं पीतताके अध्यासका दृष्टांत दियाहै ॥

३ मिसरीमैं कटुताका अध्यास नहीं हुवाचाहिये ।

काहेतैं?

श्वेतता औ पीतताका विरोध है । सादृश्य नहीं ॥ तैसैं मधुरता औ कटुताका विरोध है । सादृश्य नहीं । यातैं अधिष्ठानमैं मिथ्यावस्तुका सादृश्य दोष अध्यासका हेतु नहीं ॥

॥८४॥ (३ प्रमातादोषका खंडन)

तैसैं प्रमाताका लोभभयादिक दोष वी अध्यासका हेतु नहीं । काहेतैं? जो लोभरहित वैराग्यवान् पुरुष है ताकूं वी सीपीमैं रूपेका अध्यास होवैहै सो नहीं हुवाचाहिये । यातैं प्रमाताका दोष वी अध्यासका हेतु नहीं ॥ औ—

(४ प्रमाणदोषका खंडन)

प्रमाणका दोष वी अध्यासका हेतु नहीं । काहेतैं? सर्वपुरुषनकूं रूपरहित जो आकाश है सो नीलरूपवाला प्रतीत होवैहै औ कटाहके तथा तंबूके आकार प्रतीत होवैहै । यातैं सर्वकूं आकाशमैं नीलरूपका कटाहका तथा तंबूका अध्यास है ॥ औ सर्वके नेत्ररूप प्रमाणमैं दोष कहना बनै नहीं । यातैं प्रमाणका दोष अध्यासका हेतु नहीं ॥

आकाशमैं नीलादिकनका जो अध्यास है ताकेविषै एक प्रमाणदोषकाही अभाव नहीं है । किंतु [116]सर्वदोषनका अभाव है । सादृश्य वी नहीं औ प्रमाताका दोष वी नहीं । जैसैं सर्वदोषके अभावतैं वी आकाशमैं नीलादिकनका अध्यास होवैहै । तैसैं आत्माविषै वी बंधका अध्यास दोषविनाही बनैहै । यातैं "दोषके अभावतैं बंध अध्यासरूप नहीं । यह शंका बनै नहीं । काहेतैं? सर्वदोषका अभाव वी है तौ वी आकाशमैं नीलादिकनका अध्यास सर्वपुरुषनकूं होवैहै । यातैं दोष अध्यासका हेतु नहीं ॥

कवित्वके चतुर्थपादका यह अर्थ है:—जिनके कोई पित्त प्रभृति कहिये पित्तसैं आदिलेके अक्षेम कहिये दोष नहीं है । तिनकूं वी आकाश

॥ ११५ ॥ ननु शंखमैं पीतताका अध्यास नहीं । किंतु कामलदोषयुक्त नेत्रमैं स्थित पीतरंग शंखमैं चिपटताहै । तातैं शंख पीत भासताहै । यह शंका भई ।

तहां कहैहैं:—जैसैं घटविषै मढ्या जो स्वर्ण सो स्वर्णकारकूं औ अन्यपुरुषनकूं दीखताहै । तैसैं शंखका पीतरंग आपहीकूं दीखताहै अन्योंकूं नहीं । यातैं सो रंग नेत्रसैं निकसिके शंखमैं चिपट्या नहीं किंतु भ्रमरूप है ॥

ननु । जैसैं आकाशमैं उड्या जो पक्षी सो जाके नेत्रके समीप होयके गयाहै ताकूं तो दूरिदेशपर्यंत दीखताहै अन्योंकूं नहीं । तैसैं यह पीतरंग वी जाके नेत्रसैं निकसिके शंखमैं गयाहै ताहीकू दिखताहै । अन्योंकूं नहीं । यातैं सो पीतरंग सत्य है । यह शंका भई ।

तहां कहैहैं:—आकाशमैं उड्या जो पक्षी सो जाकी दृष्टिके समीपसैं गयाहै । सो पुरुष अंगुलिनिर्देशकरिके दिखलावै तौ अन्यपुरुषकूं वी दीखताहै । तैसैं शंखका पीतरंग अंगुलिके निर्देश किये वी अन्यपुरुषकूं दीखता नहीं । यातैं सो सत्य नहीं किंतु भ्रमरूप है ॥

इसरीतिसैं शंखमैं पीतताका अध्यास सादृश्यदोषविना होवैहै । तथापि यह दृष्टांत उक्तशंकासमाधानरूप विवादसैं सिद्ध है । प्रत्यक्ष सिद्धवस्तुविषै विवाद होवै नहीं । यह आशंका मनमैं ल्यायके यह तीसरा मिसरीमैं कटुताके अध्यासका दृष्टांत कहाहै ।

॥ ११६ ॥ १ आकाशमैं नीलादिकनका जो अध्यास है, तामैं सर्वपुरुषनके नेत्रमैं तिमिरादिक दोषके अभावतैं प्रमाणदोषका अभाव है । औ—

२ नीलादिकनका अरु आकाशका सादृश्य नहीं । यातैं प्रमेयदोषका वी अभाव है औ—

३ किसीकूं आकाशके नीलरंगका औ आकाश जैसैं कटाहका औ आकाश जैसैं तंबूका लोभ वी नहीं, यातैं प्रमातादोषका वी अभाव है ॥

नीलरूपवान् औ कटाहाकार औ तंबूके आकार भासैहै, यातैं प्रमाणदोष अध्यासका हेतु नहीं ॥

क्षेम नाम कुशलका है, ताका विरोधी जो प्रमाणदोष, सो अक्षेम कहियेहै ।

ज्ञानका साधन जो इंद्रिय सो प्रमाण कहियेहै ॥

इसरीतिसैं दोष[117] अध्यासके हेतु नहीं, यातैं बंधके अध्यासमैं दोषकी अपेक्षा नहीं । औ—

संक्षेपशारीरकमैं बंधके अध्यासमय [11] दोष बी प्रतिपादन किये हैं । विस्तारके भयसैं हमनैं नहीं लिखे औ अध्यासके हेतु जो दोष होवैं तौ दोष निरूपण करते, सो दोष अध्यासके हेतु नहीं हैं, यातैं बी दोषका निरूपण नहीं किया ॥ १२ ॥

॥ ११७ ॥ याका यह अभिप्राय है:—सर्वदोष होवैं तौ अध्यास होवै, यह नियम नहीं किंतु कोई दोष होवै तौ अध्यास होवैहै ॥ **यद्यपि** इहां आकाशविषै नीलादिकनके अध्यासमैं सर्वदोषनका अभाव प्रतिपादन कियाहै, यातैं कोई बी दोष अध्यासका हेतु नहीं, **तथापि** जहां कोई दोष नहीं तहां अविद्याही दोष है । सर्वथादोषका अभाव होवै तौ अध्यास होवै नहीं । याहीतैं श्रीमधुसूदनस्वामीनै अद्वैतसिद्धिमैं दोषजन्यता भ्रमका लक्षण कह्याहै । इहां सर्वदोषनके अभावतैं जो अध्यासका निरूपण किया है सो प्रौढीवाद है । प्रौढि कहिये अपनी उत्कृष्टताके लिये जो वाद कहिये कथन है सो **प्रौढिवाद** है ॥ यामैं

कोई द्वैतवादी शंका करैहै कि:— विवादका विषय जो जगत् सो मिथ्या नहीं । काहेतैं ? अधिष्ठानके समानसत्तावाले दोषकरि अजन्य होनैतैं । जो जो अधिष्ठानके समानसत्तावाले दोषकरि अजन्य हैं सो सो मिथ्या नहीं । जो अधिष्ठानके समानसत्तावाले दोषकरि अजन्य नहीं किंतु तैसैं दोषकरि जन्य है, सो वस्तु मिथ्या नहीं ऐसैं नहीं । किंतु मिथ्या है जैसैं रज्जुसर्पादिक हैं ॥ इस व्यतिरेकिअनुमानकरि जगत्के अध्यासका अभाव है ॥

सो शंका बनै नहीं । काहेतैं ? जो व्यावहारिक रज्जुआदिक कल्पित सर्पादिकनके अधिष्ठान होवैं तो तिस दृष्टांतकरिके उक्त अनुमानकी सिद्धि होवै ॥ विचारकरि देखिये तौ सर्पादिकनका अधिष्ठान रज्जुआदि उपहितचेतन है वा वृत्तिउपहितचेतन है । यह वार्ता चतुर्थतरंगविषै अनिर्वचनीयख्यातिके निरूपणमैं कहियेगी । यातैं तिस चेतनकी परमार्थ सत्ताके होनैतैं ताके समानसत्तावाले दोषके दृष्टांतमैं बी अभाव है ॥

किंवा मुख्यसिद्धांत (दृष्टिसृष्टिवाद) मैं तौ सर्वकार्यकी प्रातिभासिकसत्ता होनैकरि दृष्टांत रज्जुसर्पादि औ दार्ष्टांत जगत्की विलक्षणताके अभावतैं एकही चेतन रज्जुसर्पादिकका औ घटादिकनका अधिष्ठान है। यातैं बी अधिष्ठानकी समसत्तावाले दोषका अभाव है । यातैं सर्वअध्यासनकूं अधिष्ठानतैं विषमसत्तावाले दोषकरि जन्यता है

इसरीतिसैं हेतुदृष्टांतके अभावतैं उक्तव्यतिरेकि अनुमानकी असिद्धि है, तातैं प्रपंच सत्य नहीं । किंतु मिथ्याही है ॥

॥ ११८ ॥ यहां यह अध्यासके हेतु दोषका कथन है:—

१ अंतःकरणदेशगत अज्ञानकी विक्षेपहेतुशक्तिमैं स्थित जो शुभाशुभकर्मके संस्काररूप अदृष्ट, सो **प्रमातादोष** है ॥ औ—

२ चेतनविषै अन्यप्रमाणके अभावतैं अपना स्वरूपही प्रमाण है । तामैं स्थित जो अविद्या, सो **प्रमाणदोष** है ॥ औ—

३ चेतनमैं निरपेक्षआंतरता है औ प्रपंचमैं सापेक्ष आंतरता है अरु चेतनमैं पारमार्थिकवस्तुता है औ प्रपंचमैं अनिर्वचनीयवस्तुता है । यातैं आंतरताकरि औ वस्तुताकरि चेतनमैं प्रपंचका सादृश्य है । सो **प्रमेयदोष** है ॥

इसरीतिसैं संक्षेपशारीरकादिग्रंथनमैं अध्यासके कारणरूप दोष प्रतिपादन कियेहैं ॥

॥ अथ कारण अध्यासनिरूपणं ॥

॥ ८५-९२ ॥

॥ ८५ ॥ अंक ५० गत पूर्वपक्षका उत्तर ॥ ८५-८६ ॥

(५ अधिष्ठानके विशेषरूपसैं अज्ञानका खंडन)

॥ दोहा ॥

चित् सामान्य प्रकाशतैं,
नहीं नसै अज्ञान ।
लहै प्रकाश सुषुप्तिमैं,
चेतनतैं अज्ञान ॥ १४ ॥

टीकाः—पूर्व कह्या जो "विशेषरूपसैं अज्ञानवस्तुसैं अध्यास होवैहै औ आत्मा स्वयंप्रकाश है, ताकेविषै अज्ञान बनै नहीं। काहेतैं? तमका औ प्रकाशका परस्पर विरोध है। यातैं जैसैं अत्यंतप्रकाशमैं स्थित रज्जुमैं सर्पका अध्यास होवै नहीं। तैसैं स्वयंप्रकाशआत्मामैं अंधका अध्यास बनै नहीं"

सो शंका बी बनै नहीं। काहेतैं? यद्यपि आत्मा प्रकाशरूप है तथापि आत्माका स्वरूपप्रकाश अज्ञातका विरोधी नहीं। जो आत्मस्वरूपप्रकाश अज्ञानका विरोधी होवै तौ सुषुप्तिमैं प्रकाशरूप आत्माविषै अज्ञान प्रतीत होवैहै सो नहीं हुवाचाहिये ॥

घोरनिद्रासैं जाग्या जो पुरुष है ताकूं ऐसा ज्ञान होवैहैः—"मैं सुखसैं सोया औ कछु बी नहीं जानताहुवा" या ज्ञानका सुख औ अज्ञान विषय है, सो सुख औ अज्ञानका जो जागृतमैं ज्ञान है सो प्रत्यक्षरूप नहीं। काहेतैं? जा ज्ञानका विषय सन्मुख होवै सो ज्ञान प्रत्यक्षरूप होवैहै औ जागृतकालमैं सुख औ अज्ञान है नहीं। यातैं जागृतमैं सुख औ अज्ञानका ज्ञान प्रत्यक्षरूप नहीं किंतु स्मृतिरूप है। सो स्मृति अज्ञातवस्तुकी होवै नहीं किंतु ज्ञातवस्तुकी होवैहै, यातैं सुषुप्तिमैं सुख औ अज्ञानका ज्ञान है ॥ सो सुषुप्तिका ज्ञान अंतःकरण औ इंद्रियजन्य तौ है नहीं। काहेतैं? सुषुप्तिमैं अंतःकरण औ इंद्रियका अभाव है। यातैं सुषुप्तिमैं आत्मस्वरूपही ज्ञान है ॥ ज्ञान औ प्रकाशका एकही अर्थ है ॥

इसरीतिसैं सुषुप्तिमैं आत्मा प्रकाशरूप है, ता प्रकाशरूप आत्मासैं स्वरूपसुख औ अज्ञानकी प्रतीति होवैहै, जो आत्मस्वरूपप्रकाश अज्ञानका विरोधी होवै तौ सुषुप्तिमैं अज्ञानकी प्रतीति नहीं हुईचाहिये। यातैं आत्मा प्रकाशरूप तौ है परंतु आत्माका स्वरूप प्रकाश

॥ ११९ ॥ प्रपंचका कारण जो अधिष्ठानके विशेषरूपका अज्ञान है, ताका जो अध्यास सो **कारणअध्यास** कहियेहै ॥ **यद्यपि** प्रपंचके अध्यासका कारण अज्ञान है औ अज्ञानके अध्यासका कारण अन्य कोई नहीं है, यातैं अज्ञानका अध्यास बनै नहीं। **तथापि** दीपककी न्यांई औ सांख्याभिमत स्वप्रकाशआत्माकी न्यांई औ नैयायिकअभिमतभेदकी न्यांई अज्ञान स्वपरका निर्वाहक है। यातैं ताका अध्यास बनैहै ॥

॥ १२० ॥ जैसैं अंधकार आकाशआदिकचारिभूतनके गुण शब्द स्पर्श रस औ गंधकूं आवरण करता नहीं। किंतु तेजके गुणरूपकूंही आवरण करताहै, यातैं अंधकार तेजके सामान्यस्वरूपके आश्रित होयके रहता है औ ताहीकूं विषय करैहै (ढांपै है)। यातैं सामान्य तेज अंधकारका विरोधी नहीं। तैसैं अज्ञान बी चेतनके सामान्यप्रकाशके आश्रित होयके रहता है औ ताहीकूं विषय करैहै। यातैं सामान्य चेतन अज्ञानका विरोधि नहीं॥

अज्ञानका विरोधी नहीं । उलटा आत्माका स्वरूपप्रकाश अज्ञानका साधक है ॥

इस अभिप्रायतैंही वेदांतशास्त्रमैं कह्याहैः— "सामान्यचैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं" किंतु विशेषचैतन्यही अज्ञानका विरोधी है । व्यापक जो चैतन्य है सो सामान्यचैतन्य कहियेहै औ वृत्तिमैं स्थित जो चैतन्य सो विशेषचैतन्य कहियेहै ॥ जैसैं काष्ठमैं स्थित जो सामान्यअग्नि है, सो अंधकारका विरोधी नहीं औ मथनसैं प्रगट किया जो अग्नि है, सो वत्तीमैं स्थित होयके अंधकारका विरोधी है । तैसैं व्यापक चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं बी है । परंतु वेदांतके विचारसैं अंतःकरणकी जो ब्रह्माकारवृत्ति हुईहै, ताकेविषै स्थित चैतन्य अज्ञानका विरोधी है ॥

इसरीतिसैं केवलचैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं । किंतु—

१ वृत्तिसहित चैतन्य अज्ञानका विरोधी है ?
२ अथवा चैतन्यसहित वृत्ति अज्ञानकी विरोधी है ?

१ प्रथम पक्षमैं तौ अज्ञानके नाशका हेतु चैतन्य है औ वृत्ति सहायक है ॥
२ दूसरे पक्षमैं अज्ञानके नाशका हेतु वृत्ति है औ चैतन्य सहायक है ॥

यह अवच्छेदवादकी रीति है ॥ औ आभासवादमैं तौ सामान्यचैतन्यकी न्यांई विशेषचैतन्य बी अज्ञानका विरोधी नहीं । किंतु वृत्तिसहित आभास अथवा आभाससहित वृत्ति अज्ञानका विरोधी है ॥

इसरीतिसैं प्रकाशरूप चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं, यातैं चैतन्यके आश्रित अज्ञान है, ता अज्ञानसैं आवृत जो आत्मा ताकेविषै बंधका अध्यास बनैहै ॥ और—

॥ ८ ॥ पूर्व कह्या जो "सामान्यरूपतैं ज्ञात औ विशेषरूपतैं अज्ञातवस्तुमैं अध्यास होवैहै औ आत्मामैं सामान्यविशेषभाव है नहीं । यातैं निर्विशेषआत्मा ज्ञात औ अज्ञात बने नहीं । ताकेविषै अध्यासका असंभव है" ॥

सो वार्ता बी बनै नहीं । काहेतैं ? "आत्मा है" यह सर्वकूं प्रतीति होवैहै ॥ आत्मा नाम अपनै स्वरूपका है ॥ "मैं नहीं हूं" यह किसीकूं प्रतीति होवै नहीं, किंतु "मैं हूं" यह प्रतीति सर्वकूं होवैहै । यातैं सत्‌रूपकरिके आत्मा सर्वकूं भान होवैहै औ "चैतन्य आनंद व्यापक नित्यशुद्ध नित्यमुक्तरूप आत्मा है" यह सर्वकूं प्रतीति होवै नहीं । यातैं चैतन्य आनंद व्यापक नित्यशुद्ध नित्यमुक्तरूपतैं आत्मा अज्ञात है औ सत्‌रूपकरिके ज्ञात है । यह वार्ता अनुभवसिद्ध है । सो अनुभवसिद्धवार्ता युक्तिसैं दूरि होवै नहीं ॥

१ सर्वकूं प्रतीत जो होवैहै आत्माका सत्‌रूप सो तौ सामान्यरूप है । औ—
२ केवलज्ञानीकूं जो प्रतीत होवै चेतनआनंदादिक सो विशेषरूप है ॥

॥ १२१ ॥ अवच्छेदवादमैं वृत्तिसहित चैतन्य वा चैतन्यसहितवृत्ति विशेषचैतन्य (कल्पितविशेषचैतन्य) कहियेहै, सो अज्ञानका विरोधी है ॥ दोनूंमैं उत्तरपक्ष श्रेष्ठ है । काहेतैं ? वृत्तिकूंही आवरणभंगकी हेतु होनैतैं ॥

॥ १२२ ॥ पूर्व कह्याथा कि-सूर्यविषै अंधकारकी न्यांई स्वप्रकाशरूप आत्माविषै अज्ञान संभवै नहीं । सो शंका बनै नहीं । काहेतैं ? सूर्यादिक ज्योति महातेजका विशेषरूप है सामान्य नहीं औ आत्माका स्वरूप तौ सामान्यप्रकाश है, यातैं सो अज्ञानका विरोधी नहीं । तातैं दृष्टांत (सूर्य) औ सिद्धांत (चेतन) की विषमताकरि उक्तशंकाका अवकाश नहीं ॥

१ जो अधिककालमैं अधिकदेशमैं होवै सो सामान्यरूप कहियेहै ॥ औ—

२ न्यूनदेशमैं न्यूनकालमैं होवै सो विशेषरूप कहियेहै ॥

यद्यपि आत्माका स्वरूपही चेतनआनंदादिक है, यातैं सतकी न्याई चेतनआनंदादिक सर्वत्रव्यापक है ॥ सत्की अपेक्षातैं चेतनआनंदादिकनकूं न्यूनदेशमैं औ चेतनआनंदादिकनकी अपेक्षातैं सत्रूपकूं अधिकदेशमैं कहना बनै नहीं । यातैं सत्रूप आत्माका सामान्यअंश है औ चेतनआनंदादिक विशेषअंश हैं । यह कहना बी बनै नहीं ॥ तथापि सत्की प्रतीति सर्वकूं अविद्याकालमैं बी होवैहै औ "चेतनआनंदरूप आत्मा है" यह प्रतीति सर्वकूं अविद्याकालमैं होवै नहीं । केवलज्ञानीकूंही होवैहै ॥ अविद्याकालमैं चेतन आनंद मुक्तता शुद्धता बी है । परंतु प्रतीति होवै नहीं । यातैं अनहुयेके समान है इस अभिप्रायतैं:—

१ चैतन्य आनंदादिक न्यूनकालवृत्ति कहियेहै । औ—

२ सत्रूप अधिककालवृत्ति कहियेहै ॥

इसरीतिसैं सत्रूपका औ चेतनआनंदादिकनका सामान्यविशेषभाव नहीं बी है । परंतु अल्पकाल औ अधिककालमैं प्रतीति होनैतैं सामान्यविशेषभावकी न्याई है । या कारणतैं—

१ आत्माका सत्रूप सामान्यअंश कहियेहै । औ—

२ चेतनआनंदादिक विशेषअंश कहियेहै । औ—

आत्मा निर्विशेष है या सिद्धांतकी बी हानि नहीं ॥ जो आत्मामैं सामान्यविशेषभाव अंगीकार करैं तौ "निर्विशेषआत्मा है" या सिद्धांतकी हानि होवै ॥ सो सामान्यविशेषभाव अंगीकार किया नहीं । किंतु अविद्यासैं सामान्यविशेषकी न्याई प्रतीति होवैहै, यातैं सामान्यविशेषभाव कहेहैं ॥

इसरीतिसैं सत्यरूपकरिके ज्ञात औ चेतन आनंद नित्यशुद्ध नित्यमुक्त ब्रह्मरूपकरिके अज्ञातआत्माविषै बंधका अध्यास बनैहै । अध्यासरूप बंधकी ज्ञानसैं निवृत्ति बी बनैहै । यातैं ग्रंथका प्रयोजन संभवैहै ॥ और—

॥८७॥अंक ५१-५८ गत पूर्वपक्षका उत्तर ॥ ८७-९२ ॥

(पूर्वपक्षीः—)पूर्व कह्या जो "निषिद्धकाम्यकर्मका त्यागकरिके नित्यनैमित्तिक प्रायश्चित्त कर्म करै। यातैं निषिद्धकर्मके अभावतैं नीचलोककूं प्राप्त होवै नहीं औ काम्यकर्मके अभावतैं उत्तमलोककूं प्राप्त होवै नहीं औ नित्यनैमित्तिक कर्मके नहीं करनैतैं जो पाप होवै, सो तिनके करनैतैं होवै नहीं औ इस जन्मविषै अथवा अन्यजन्मविषै पूर्व करे जो पाप हैं, तिनका साधारण औ असाधारणप्रायश्चित्तसैं नाश होवैहै ॥ औ पूर्व करे जो काम्यकर्म हैं तिनके फलकी इच्छाके अभावतैं मुमुक्षुकूं तिनका फल होवै नहीं । यातैं मुमुक्षुकूं ज्ञानसैं विनाही जन्मका अभावरूप मोक्ष होवैहै" ॥

(सिद्धांतीः—)सो बनै नहीं । काहेतैं? नित्यनैमित्तिककर्मका बी स्वर्गरूप फल है । यह वार्त्ता भाष्यकारने युक्ति औ प्रमाणसैं प्रतिपादन करीहै, यातैं नित्यनैमित्तिककर्मसैं उत्तमलोककूं प्राप्त होवैगा । जन्मका अभाव बनै नहीं ॥ औ नित्यनैमित्तिककर्मका जो फल अंगीकार नहीं करै तौ नित्यनैमित्तिककर्मका बोधक जो वेद है सो निष्फल होवैगा । काहेतैं? जो नित्यनैमित्तिक कर्मके नहीं करनैतैं पाप होवै तौ ता पापकी

अनुत्पत्ति तिनका फल बनै, सो नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेतें पाप होवै नहीं। काहेतें ? जो नित्यनैमित्तिक कर्मका नहीं करना सो अभावरूप है औ पाप भावरूप है। अभावसैं भावकी उत्पत्ति होवै नहीं। यातें "नित्यनैमित्तिक कर्मके नहीं करनेतें पाप होवैहै" यह कहना बनै नहीं ॥ जो नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेतें पापकी उत्पत्ति अंगीकार करैं तौ "अभावतें भावकी उत्पत्ति होवै नहीं" यह दूसरे अध्यायमैं भगवान्नें कह्याहै तासैं विरोध होवेगा। यातें नित्यनैमित्तिककर्मके अभावतें भावरूप पापकी उत्पत्ति बनै नहीं ॥ इसरीतिसैं नित्यनैमित्तिककर्मका पापकी अनुत्पत्ति फल नहीं। किंतु नित्यनैमित्तिक कर्मसैं विना बी पापकी अनुत्पत्ति सिद्ध है। यातें नित्यनैमित्तिककर्मका जो स्वर्गरूप फल अंगीकार नहीं करैं तौ कर्म निष्फल होवैंगे औ निष्फल जो नित्यनैमित्तिक कर्म हैं, तिनका बोधक वेद बी निष्फल होवैगा। यातें नित्यनैमित्तिककर्मसैं बी स्वर्गफल होवैहै ॥ औ—

॥ ८८ ॥ पूर्व कह्या जो "जन्मांतरके जो काम्यकर्म हैं तिनका इच्छाके अभावतें फल होवै नहीं ॥"

सो वार्त्ता बी बनै नहीं। काहेतें ? कर्मरूपी बीजसैं दो अंकुर उत्पन्न होवैहैं ॥ एक तौ वासना औ दूसरा अदृष्ट ॥ धर्मअधर्मका नाम अदृष्ट है ॥ शुभकर्मसैं तौ शुभवासना औ धर्मरूप अंकुर होवैहै औ अशुभकर्मसैं अशुभवासना औ अधर्मरूप अंकुर होवैहै ॥ शुभवासनासैं तौ आगे शुभकर्ममैं प्रवृत्ति होवैहै औ धर्मसैं सुखका भोग होवैहै इसरीतिसैं अशुभवासनासैं अशुभकर्ममैं प्रवृत्ति होवैहै औ अधर्मसैं दुःखका भोग होवैहै ॥ इसरीतिसैं वासनारूप औ अदृष्टरूप अंकुर कर्मरूपी बीजसैं होवैहै तिनविषै—

१ "वासनारूप अंकुरका तौ उपायसैं नाश होवैहै " औ—

२ "अदृष्टरूप अंकुरका फलकी उत्पत्तिसैं विना किसीप्रकारसैं बी नाश होवै नहीं"।

यह शास्त्रका निर्णय है ॥

१ अशुभकर्मसैं उत्पन्न हुवा जो अशुभवासनारूप अंकुर है, ताका तौ सत्संगआदिक उपायतें नाश होवैहै ॥ औ—

२ शुभकर्मसैं उत्पन्न जो हुई शुभवासना ताका कुसंग आदिकनतें नाश होवैहै ॥

शास्त्रमैं जितना पुरुषार्थ कह्याहै तासैं प्रवृत्तिकी हेतु जो वासना ताकाही नाश होवैहै। यातें पुरुषार्थ बी सफल है औ भोगका हेतु जो अदृष्ट ताका नाश होवै नहीं। यातें "फल दिये विना कर्मकी निवृत्ति होवै नहीं" यह वार्त्ता जो शास्त्रमैं कहीहै तासैं बी विरोध नहीं ॥ इसरीतिसैं अज्ञानीकूं फलभोगविना कर्मकी निवृत्ति बनै नहीं ॥ औ—

ज्ञानीकूं तौ भोगसैं विना बी कर्मकी निवृत्ति बनैहै। काहेतें ? कर्म औ कर्त्ता तथा फल परमार्थसैं तौ हैं नहीं। किंतु अविद्यासैं कल्पित हैं ॥ ता अविद्याका ज्ञान विरोधी है। यातें अविद्याकल्पित जो कर्मादिक हैं तिनका बी ज्ञानसैं नाश होवैहै ॥ जैसैं स्वप्नविषै निद्रासैं जो पदार्थ प्रतीत होवैहै। तिनका जाग्रत्‌विषै निद्राकी निवृत्तिसैं अभाव होवैहै। तैसैं अविद्यारूप निद्रासैं प्रतीत जो होवैहैं कर्म कर्त्ता फल तिनका बी ज्ञानदशारूप जागृतविषै अविद्याकी निवृत्तितैं अभाव होवैहै। औ ज्ञान विना अभाव होवै नहीं ॥ औ—

१ इच्छाके अभावतें जो कर्मका फलभोग होवै नहीं तौ ईश्वरका संकल्प मिथ्या होवैगा ॥

काहेतैं ? "फलभोगविना अज्ञानीके कर्मकी निवृत्ति होवै नहीं" यह ईश्वरका संकल्प है। जो इच्छाके अभावतैं करे कर्मका फल होवै नहीं तौ ईश्वरका संकल्प मिथ्याही होवैगा औ "सत्यसंकल्प ईश्वर है" यह वार्त्ता शास्त्रमें प्रसिद्ध है। यातैं "इच्छाके अभावतैं पूर्व करे काम्यकर्मका फल होवै नहीं" यह वार्त्ता विरुद्ध है।

२ जो इच्छाके अभावतैंही काम्यकर्मफल नहीं होवै तौ अशुभकर्मका फल किसीकूं बी नहीं हुवाचाहिये। काहेतैं ? अशुभकर्मका फल दुःख है ताकी किसीकूं बी इच्छा है नहीं। यातैं ज्ञानविना कर्मके फलका अभाव होवै नहीं ॥ और—

॥ ८९ ॥ जो पूर्व कह्या "जैसैं कर्मके अनुष्ठानकालमैं जो इच्छारहित पुरुष है ताकूं कर्मका फल वेदांतमतमैं अंगीकार नहीं कर्‍या। तैसैं कर्मके अनुष्ठानसैं अनंतर बी जो पुरुषकी इच्छा दूरि होयजावैं तौ कर्मका फल होवै नहीं" ॥

सो वार्त्ता बी वेदांतमतकूं नहीं जानिके कहीहै। काहेतैं ? फलकी इच्छासहित जो कर्म करै अथवा फलकी इच्छारहित जो कर्म करैहैं तिनकूं कर्मका फलभोग तौ निश्चय होवैहै। परंतु इच्छारहित कर्मसैं अंतःकरण शुद्ध होवैहै औ इच्छासहित जो कर्म करैहै ताकूं केवल भोग तौ होवैहै। परंतु अंतःकरण शुद्ध होवै नहीं ॥

१ "जो इच्छारहित कर्म करनैतैं शुद्ध अंतःकरण होयके श्रवणतैं ज्ञान होय जावै। ताकूं तौ कर्मका फल होवै नहीं" औ—

२ "जानै कर्म तौ फलकी इच्छारहित किये हैं। परंतु श्रवणके अभावतैं अथवा किसी अन्यनिमित्ततैं ज्ञान होवै नहीं। ताकूं तौ इच्छारहित कर्मके फलका भोग दूरि होवै नहीं" यह वेदांतका सिद्धांत है यातैं ज्ञानसैं विना कर्मका फलभोग दूरि होवै [१२३] नहीं ॥ और—

॥ ९० ॥ पूर्व कह्या जो "प्रायश्चित्तसैं संपूर्ण अशुभकर्मका नाश होवैहै"। सो वार्त्ता बी बनै नहीं। काहेतैं ? अनंतकल्पके जो अशुभकर्म हैं तिनका एक जन्मविषै प्रायश्चित्त बनै नहीं औ गंगास्नान औ ईश्वरका नामउचारणसैं आदि लेके सर्वपापके नाशक जो साधारणप्रायश्चित्त कहैहैं सो बी ज्ञानकेही साधन हैं। यातैं सर्वपापके नाशक कहैहैं। यातैं ज्ञानसैंही सर्वपापका नाश होवैहै ॥ और—

॥ ९१ ॥ पूर्व कह्या जो नित्यनैमित्तिककर्मके करनैतैं जो क्लेश होवैहै सो पूर्वसंचित निषिद्धकर्मका फल है। यातैं संचितनिषिद्धकर्मका फल और होवै नहीं ॥

सो वार्त्ता बी बनै नहीं। काहेतैं ? अनंतप्रकारके संचितनिषिद्ध जो कर्म हैं तिनका फल बी अनंतप्रकारका दुःख है। केवलकर्मके अनुष्ठानका क्लेशही तिनका फल बनै नहीं ॥ और

॥ ९२ ॥ पूर्व कह्या जो "संपूर्ण संचित काम्यकर्मतैं एकही शरीर होवैहै"

॥ १२३ ॥ भोग प्रायश्चित्त औ ज्ञान इन तीनसैं कर्मकी निवृत्ति होवैहै। याका चतुर्थकारण नहीं ॥

१ तिनमैं प्रारब्धकर्मकी भोगसैं निवृत्ति होवैहै ॥ औ—

२ क्रियमाणकर्मकी प्रायश्चित्तसैं औ ज्ञानसैं बी निवृत्ति होवैहै। औ—

३ संचितकर्मकी किंचित्‌निवृत्ति साधारणप्रायश्चित्तसैं होवैहै। संपूर्णनिवृत्ति ज्ञानसैं होवैहै ॥

सो वार्ता बी बनै नहीं । काहेतें? संचित-काम्यकर्म अनंत हैं, तिनका एकजन्मविषै भोग बनै नहीं ॥ औ—

एकपुरुषकूं एककालमैं नानाशरीरसैं जो भोग कह्या सो बी सिद्धयोगीविना औरकूं बनै नहीं औ "सिद्धयोगीकूं बी और तौ संपूर्ण सामर्थ्य होवैहै । परंतु ज्ञानविना मोक्ष तौ होवै नहीं" यह वेदका सिद्धांत है ॥

इसरीतिसैं काम्यकर्म औ निषिद्धकर्मकूं त्यागिके जो केवलनित्यनैमित्तिककर्म अज्ञानी करै ताकूं नित्यनैमित्तिककर्मका फल भोगनैके वास्ते। औ पूर्व जो शुभअशुभकर्म करेहैं तिनका फल भोगनैके वास्ते अनंतशरीर होवैंगे । मोक्ष होवै नहीं । यातैं ज्ञानद्वारा बंधकी निवृत्ति ग्रंथका प्रयोजन बनैहै ॥ जैसैं स्वप्नविषै जो मिथ्यापदार्थ प्रतीत होवैहैं तिनकी जाग्रतविना निवृत्ति होवै नहीं तैसैं बंध बी मिथ्या प्रतीत होवैहै ताकी बी ज्ञानरूप जाग्रतविना निवृत्ति होवै नहीं ॥

॥ ९३ ॥ संबंधमंडन (४) ॥

॥ ग्रंथका आरंभ बनैहै ॥

इसरीतिसैं ग्रंथके अधिकारी विषय प्रयोजन संभवैहैं औ अधिकारी आदिकनके संभवतैं संबंध बी संभवैहै, यातैं ग्रंथका आरंभ बनैहै ॥

॥ दोहा ॥

दादू दीनदयाल जू,
सत सुख परमप्रकाश ॥
जामैं मतिकी गति नहीं,
सोई निश्चलदास ॥ १५ ॥

इति श्रीविचारसागरे अनुबंधविशेषनिरूपणं नाम द्वितीयस्तरंगः समाप्तः ॥ २ ॥

॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ तृतीयस्तरंगः ॥ ३ ॥

॥ अथ श्रीगुरुशिष्यलक्षण ॥ ९४-९६ ॥

औ

॥ गुरुभक्तिफलप्रकारनिरूपणं ॥ ९७-१०८ ॥

॥ ९४ ॥ ग्रंथारंभकी प्रतिज्ञा ॥

॥ दोहा ॥

पेख च्यारि अनुबंधयुत,
पढै सुनै यह ग्रंथ ॥
ज्ञानसहित गुरुसैं जु नर,
लहै मोछको पंथ ॥ १ ॥

टीकाः—चारिअनुबंधसहित ग्रंथकूं जानिके ज्ञानसहित गुरुसैं जो पुरुष पढ़ै अथवा एकाग्रचित्तकरिके सुनै सो पुरुष मोक्षका पंथ जो ज्ञान है ताकूं प्राप्त होवै ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥

अनयासहि मति भूमिमैं,
ज्ञानै चिमन आबाद ॥
व्है इहि कारन कहतहूं,
गुरू—सिष्य—संवाद ॥ २ ॥

टीकाः—गुरुशिष्यके संवादसैं अर्थ निरूपण करनैतैं श्रोताकूं बोध सुखसैं होवैहै इस कारणतैं गुरुशिष्यके संवादसैं ग्रंथका आरंभ करियेहै ॥ २ ॥

॥ ९५ ॥ अथ श्रीगुरुलक्षण ॥

॥ चौपाई ॥

वेदअर्थकूं भलै पिछानै ।
आतम ब्रह्मरूप इक जानै ॥
भेद पंचकी बुद्धि नसावै ।
अद्वय अमल ब्रह्म दरसावै ॥ ३ ॥
भव मिथ्या मृगतृषा समाना ।
अनुलव इम भाखत नहीं आना ॥
सो गुरु दे अद्भुतउपदेसा ।
छेदक सिखा न लुंचित केसा ॥ ४ ॥

टीकाः—“ वेदके अर्थकूं भलिप्रकारसैं पिछानै ” यह कहनैसैं अधीतवेद आचार्य होवैहै यह कह्या ॥ औ जीवब्रह्मकी एकता निश्चयकरिके जानै, यातैं आत्मज्ञानविषै जाकी

॥ १२४ ॥ ज्ञानरूप चिमन कहिये बगीचा । आबाद व्है कहिये प्रफुल्लित होवै ॥

स्थिति होवै सो आचार्य होवैहै । यह कया । जो वेद पढ्या होवै औ ज्ञानविषै जाकी निष्ठा न होवै सो आचार्य नहीं है औ ज्ञानविषै जाकी निष्ठा होवै औ वेद नहीं पढ्या सो बी आप तौ मुक्त है परंतु उपदेश करनै योग्य आचार्य नहीं है । काहेतें ? वाकूं जिज्ञासुकी शंका मेटनेकी युक्ति नहीं आवैहै ॥ जाके चित्तविषै शंका उठै नहीं ऐसा जो उत्तमसंस्कारवाला जिज्ञासु है ताकै तौ उपदेश करनैविषै समर्थ है बी । परंतु सर्वके उपदेश करनै योग्य नहीं, यातें आचार्य नहीं । किंतु—

१ अधीतवेद होवै । औ—

२ ज्ञानविषै जाकी निष्ठा होवै ।

सो आचार्य कहियेहै ॥ औ—

३ शिष्यकी बुद्धिमें भान जो होवै पंचप्रकारका भेद ताकूं नानायुक्तिसें दूरि करनैविषै समर्थ होवै ॥ जीवईशका भेद, जीवनका परस्परभेद, जीवजडका भेद, ईशजडका भेद, जडजडका भेद, यह पंचप्रकारका भेद है । ताकूं खंडन करै । काहेतें ? भेद भयका हेतु है । यातें भेदका निराकरण अवश्य कर्तव्य है ॥

४ भेदका निराकरणकरिके अद्वय औ अमल कहिये अविद्यादिमलरहित जो ब्रह्म ताकूं दरसावै कहिये आत्मरूपकरिके साक्षात्कार करावै ॥ औ—

५ सर्वसंसारकूं मिथ्यारूपकरिके उपदेश करै ॥

सो अद्भुतउपदेश देनैवाला आचार्य कहियेहै ॥ औ केवल आप मुंडन कराइके शिष्यकी शिखा छेदनमात्र करनैवाला अथवा और कोऊसंप्रदायके चिन्हमात्रसें अंकित करनैवाला आचार्य नहीं कहियेहै ॥ ४ ॥

॥ दोहा ॥

करत मोछ भवग्राहतें,
दे असि निज उपदेस ॥
सो दैसिक बुधजन कहत,
नहीं कृत गैरिकवेस ॥ ५ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ ५ ॥

॥ ९६ ॥ शिष्यके लक्षण ॥

॥ दोहा ॥

दैसिकके लच्छन कहे,
श्रुतिमुनि वच अनुसार ॥
सो लच्छन हैं सिष्यके,
व्है जिनतें अधिकार ॥ ६ ॥

॥ १२५ ॥ पंचभेदके खंडनकी युक्तियां यह हैं:—

१ जीवईशका भेद कल्पित है, अविद्यामायारूप उपाधिकृत होनैतें; घटाकाशमठाकाशके भेदकी न्यांई ॥

२ जीवनका परस्पर भेद कल्पित है, साभास अंतःकरणरूप उपाधिकृत होनैतें; नाना घटाकाशनके भेदकी न्यांई ॥

३ जीवजडका भेद कल्पित है । साभासअंतःकरण औ निराभास नामरूपमय उपाधिकृत होनैतें; स्वप्नगत चरअचरकी न्यांई ॥

४ ईशजडका भेद कल्पित है, साभासमाया औ नामरूपमय उपाधिकृत होनैतें; साक्षी औ स्वप्नप्रपंचके भेदकी न्यांई ॥

५ जडजडका भेद कल्पित है, नामरूपमय उपाधिकृत होनैतें; रज्जुविषै कल्पित सर्पदंडादिकके भेदकी न्यांई ॥

ये पांचप्रकारके अनुमान पंचभदके खडनमैं युक्तियां हैं ॥

टीकाः–शास्त्रके अनुसार देशिक कहिये गुरु ताके लक्षण कहे औ जिन साधनसैं ग्रंथमैं अधिकार होवै सो साधन शिष्यके लक्षण हैं ॥ याका यह अभिप्राय हैः– जो अधिकारीके लक्षण[१२६] पूर्व कहे सोई लक्षण शिष्यके जानि लेनै ॥ ६ ॥

॥ ९७ ॥ ॥ अथ गुरुभक्तिका फलवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

ईश्वरतैं गुरुमैं अधिक,
धारै भक्ति सुजान ।
बिन गुरुभक्ति प्रवीनहू,
लहै न आतमज्ञान ॥ ७ ॥

टीकाः—सुजानपुरुष गुरुमैं ईश्वरसैं अधिक भक्ति करै । काहेतैं? जो सर्वशास्त्रमैं प्रवीण बी पुरुष होवै सो बी गुरुके उपदेशविना ज्ञानकूं प्राप्त होवै नहीं ॥ ७ ॥

जो पूर्वदोहेमैं बात कही सोई दृष्टांतसैं प्रतिपादन करैहैंः–

॥ दोहा ॥

वेद उदधि बिनगुरु लखै,
लागै लौन समान ।
बादर गुरुमुख द्वार व्है,
अमृतसैं अधिकान ॥ ८ ॥

टीकाः—वेदरूपी उदधि कहिये जो समुद्र है, सो गुरुविना लौनके समान क्षार है ॥ जैसैं क्षारसमुद्रमैं पैठिके वाके जलकूं जो पान करै सो केवल क्षारताकूं अनुभव करैहै औ तासूं क्लेशकूं प्राप्त होवैहै । तैसैं गुरुविना जो वेदके अर्थकूं विचारैहै, सो भेदरूपी क्षारकूं अनुभवकरिके जन्ममरणरूपी खेदकूं प्राप्त होवैहै ॥ इसीकारणसैं रामानुज औ मध्वसैं आदिलेके जो नानापुरुष हुएहैं तिनोंनै वेदके अर्थका विचार बी कियाहै परंतु गुरुद्वारा नहीं किया । यातैं भेदविषै निश्चयकरिके जन्ममरणरूपी खेदकूंही प्राप्त भये । मुक्तिरूप आनंद उनकूं प्राप्त नहीं भया ॥

यद्यपि रामानुज आदि जो भयेहैं, तिनोंनैं बी वेद अपनै अपनै गुरुसैंही पढिके विचार्याहै औ विचारिके व्याख्यान कियाहै । तथापि जिनके पास उनूनैं वेद पढ्या सो गुरु नहीं । काहेतैं "जो जीवब्रह्मकी एकताका उपदेश करै सो गुरु होवैहै" यह पूर्व गुरुलक्षणके प्रसंगमैं कहिआये औ उनके जो पाठक हुवेहैं सो जीवब्रह्मका भेद उपदेश देनैवाले हुवेहैं, यातैं उनकेविषै जो गुरुशब्दका प्रयोग करैहै, सो अर्हतके समान करैहै ॥ जैसैं अर्हतके शिष्य अर्हतकूं गुरु कहैहैं । परंतु अर्हत गुरुपदका विषय[१२७] नहीं है । तैसैं भेदवादीपुरुषनके जो शिष्य हैं सो अपनै पाठकोंकूं गुरु कहैहैं परंतु सो गुरु नहीं हैं । यातैं रामानुजसैं आदिलेके जो भेदवादी हुवेहैं, तिनोंनैं गुरुद्वारा विचार नहीं किया । इसकारणतैं भेदमैं अभिनिवेशकरिके जन्ममरणरूपी क्लेशकूंही प्राप्त भये ॥

तैसैं और बी जो कोऊ पूर्वलक्षणयुक्त गुरुसैं विना आपही वेदके अर्थका विचार करै अथवा भेदवादीपुरुषसैं पढिके विचारै, सो बी भेदरूपी क्षारकूं अनुभवकरिके जन्ममरणरूपी क्लेशकूंही अनुभव करैहै । यह दोहेके पूर्वार्धका अर्थ है ॥ औ–

॥ १२६ ॥ विवेकादिसाधनरूप अधिकारीके लक्षण हैं, सोई पूर्व प्रथमतरंगविषै कहे ॥

॥ १२७ ॥ विषय कहिये अर्थ नहीं है ॥

वादरूपी ब्रह्मविद्गुरुके मुखद्वारा जो सुनिके विचारै ताकूं अमृतसैं बी अधिक-आनंदका हेतु वेद होवैहै ॥ जैसैं समुद्रका जल स्वरूपसैं क्षार है औ बादरद्वारा मधुर होवैहै । तैसैं वेदका अर्थ ब्रह्मज्ञानी गुरुद्वारा आनंदका हेतु है ॥ ८ ॥

॥ ९८ ॥ ज्ञानी गुरुसैं वेदअर्थके पठन औ श्रवणकी योग्यता ॥

पूर्वदोहेमें यह बात कही जो "गुरुसैं पढ्या जो वेदका अर्थ है ताके विचारसैं मुक्तिरूपी फल प्राप्त होवैहै । तासों गुरु ज्ञानी होवै अथवा अज्ञानी होवै ऐसा विशेष नहीं कह्या, सो अब कहैहैं:—"यद्यपि ज्ञानहीन गुरु नहीं" यह पूर्व कही आये । तथापि पूर्व कही वार्त्ताकूं दृष्टांतसैं प्रतिपादन करैहैं:—

॥ दोहा ॥

दृति पुट घट सम अज्ञजन,
मेघसमान सुजान ॥
पढै वेद इति हेतुतें,
ज्ञानीपैं तजि आन ॥ ९ ॥

टीकाः—

१ अज्ञ कहिये अज्ञानी जो जन है सो दृतिपुट कहिये मसक औ चरसआदि जो चर्म-पात्र अथवा घटद्वारा ग्रहण किया जो समुद्रका जल सो विलक्षणस्वादका हेतु नहीं है तैसैं अज्ञानी पुरुषद्वारा ग्रहण जो किया वेदरूपी समुद्रका अर्थरूपी जल सो विलक्षण आनंदका हेतु नहीं । यातें अज्ञानीपाठक चर्मपात्र औ घटके समान है ॥ औ—

२ सुजान कहिये ज्ञानी मेघके समान है । यह वार्त्ता पूर्व प्रतिपादन करीहै ॥

यातें चर्मपात्र औ घटके समान जो अज्ञानी-पाठक है ताकूं त्यागिके मेघसमान जो ज्ञानी ताहीसूं वेदका अर्थ पढै अथवा सुनै ॥ ९ ॥

॥ ९९ ॥ भाषाग्रंथसैं बी ज्ञान होवैहै ॥

"ज्ञानवान्के पास वेद पढै" या कहनेतें यह शंका होवैहै:—जो वेदकी श्रुति है तिनहीद्वारा जीवब्रह्मका स्वरूप विचारनेतें ज्ञान होवैहै । अन्य संस्कृतग्रंथनसैं औ भाषाग्रंथनसैं ज्ञान होवै नहीं, यातें भाषाग्रंथका आरंभ निष्फल होवैगा । ताके—

समाधानका दोहा ॥

ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित,
ताकी बानी वेद ॥
भाषा अथवा संसकृत,
करत भेदभ्रम छेद ॥ १० ॥

टीकाः—"ब्रह्मवेत्ता जो पुरुष है सो ब्रह्मरूप है" यह वार्त्ता श्रुतिविषै प्रसिद्ध है । यातें ताकी वाणी वेदरूप है । सो भाषारूप होवै अथवा संस्कृतरूप होवै । सर्वथा भेद-भ्रमका छेद करैहै ॥ और—

जो कहैहैं:—"वेदके वचनविना ज्ञान होवै नहीं" सो नियम नहीं॥ जैसैं आयुर्वेदमैं कहे जो रोग औ तिनके निदान औ औषध तिन संपूर्णका अन्य संस्कृतग्रंथनसैं औ भाषाफारसी-ग्रंथनसैं ज्ञान होय जावैहै । तैसैं सर्वका आत्मा जो ब्रह्म ताका ज्ञान बी भाषादिकग्रंथनसैं होवैहै ॥

इसवास्तै सर्वज्ञ जो ऋषि औ मुनि हुवैहैं तिनोंनैं स्मृति औ पुराण औ इतिहासग्रंथनमैं ब्रह्मविद्याके प्रकरण कहेहैं ॥ जो वेदसैं विना ज्ञान न होवै तौ वे संपूर्णप्रकरण निष्फल होय जावैंगे । यातें आत्माके स्वरूपका प्रतिपादक

जो वाक्य है तासूं ज्ञान होवैहै । सो वेदका होवै अथवा अन्य होवै । यातैं भाषाग्रंथसैं बी ज्ञान होवैहै यह वार्त्ता सिद्ध हुई ॥ १० ॥

॥ १०० ॥ जिज्ञासुकूं ब्रह्मवेत्ता आचार्यके सेवाकी कर्तव्यता ॥

॥ दोहा ॥

बानी जाकी वेद सम,
कीजे ताकी सेव ॥
ह्वै प्रसन्न जब सेवतैं,
तब जानै निज भेव ॥ ११ ॥

टीकाः—जा ब्रह्मवेत्ताकी वाणी कहिये वचन वेदके समान है, ता ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी जिज्ञासु सेवा करै। काहेतैं ? सेवातैं जब आचार्य प्रसन्न होवै तब निजभेव कहिये अपना स्वरूप जानै ॥ यह कहनैतैं यह वार्ता जनाईः—जो आचार्यकी सेवा है सो ईश्वरकी सेवासैं बी अधिक है । काहेतैं ?

॥ १२८ ॥ "भाषाग्रंथसैं ज्ञान होवै नहीं" ऐसा आग्रह करै ताकूं पूछैहैं:—१ भाषाग्रंथ वेदके अनुसारी नहीं यातैं तिनसैं ज्ञान होवै नहीं. २ अथवा वे भाषारूप हैं यातैं तिनसैं ज्ञान होवै नहीं. ३ वा अवतारशरीर रचित नहीं यातैं तिनसैं ज्ञान होवै नहीं. ४ वा अशुद्ध हैं यातैं तिनसैं ज्ञान होवै नहीं ? चारीविकल्प हैं । तिनमैं—

१ "वेदके अनुसारी नहीं" यह प्रथमपक्ष कहै तौ (१) वेदके पाठके अनुसारी नहीं । (२) वा वेदके अर्थके अनुसारी नहीं ?

(१) जो "पाठके अनुसारी नहीं" ऐसैं कहो तौ अन्यसंस्कृतग्रंथ बी वेदपाठके अनुसारी नहीं । यातैं तिनसैं बी ज्ञान न हुवाचाहिये ॥ औ—

(२) "जो वेदके अर्थके अनुसारी भाषाग्रंथ नहीं ।" ऐसैं कहोगे तौ सो बनै नहीं । काहेतैं ? जैसैं केईक संस्कृतग्रंथ वेदअर्थके अनुसारी हैं । तैसैं केईकप्राकृतग्रंथ बी वेदअर्थके अनुसारी हैं । यातैं जैसैं आयुर्वेदके अनुसारी अन्यसंस्कृत औ प्राकृतग्रंथनसैं औषधआदिकका ज्ञान होवैहै । तैसैं वेदअर्थके अनुसारी संस्कृत औ प्राकृतग्रंथनसैं ज्ञान होवैहै ॥

२ "जो भाषाग्रंथ भाषारूप हैं यातैं तिनसैं ज्ञान होवै नहीं" ऐसैं कहोगे तौ जैसैं संस्कृतग्रंथ देवभाषारूप हैं । तैसैं प्राकृतग्रंथ नरभाषारूप हैं भाषापना दोनूंमैं तुल्य है ॥

३ जो "भाषाग्रंथ अवतारशरीररचित नहीं, यातैं तिनसैं ज्ञान होवै नहीं" ऐसैं कहोगे तौ केइक संस्कृतग्रंथ बी अवताररचित नहीं । तिनतैं बी ज्ञान न हुवाचाहिये ॥

४ जो कहो "भाषाग्रंथ अशुद्ध हैं" तो जैसैं याके ४०१ के अंकउक्तरीतिसैं प्राकृतके नियमसैं संस्कृतग्रंथ अशुद्ध हैं । तैसैं संस्कृतके नियमसैं प्राकृतग्रंथ अशुद्ध हैं । अशुद्धता दोनूंमैं तुल्य है ॥

इसरीतिसैं भाषाग्रंथसैं ज्ञान होवै नहीं यह मानना हठमात्र है ॥ इसी अभिप्रायतैं नानक दादूजी रामदासस्वामी एकनाथस्वामी ज्ञानुवाआदिकअनेकमहात्मा पुरुषोंनैं प्राकृतवाणी रचीहै, सो जैसैं कल्याणकारक है । तैसैं आधुनिक ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनैं जे प्राकृतग्रंथ कियेहैं, करीतेहैं औ करियेंगे, वे सर्व संस्कृतके अभ्याससैं रहित अधिकारी पुरुषनके ज्ञानद्वारा कल्याणके हेतु हैं ॥ औ—

अप्पयदीक्षितपंडितनै सिद्धांतलेशनामक ग्रंथविषै अपभ्रंशितशब्दके उच्चारणकी निषेधक श्रुतिका प्रमाण देके जो भाषाग्रंथनका निषेध कियाहै सो अपने पांडित्यकी प्रबलताके लिये कियाहै । काहेतैं ? श्रीव्यासरचित सूतसंहिताविषै "संस्कृतप्राकृतकरि औ गद्यपद्य अक्षरोंकरि अरु देशभाषाके अक्षरोंकरि जो बोध करै सो गुरु कहाहै" इस अर्थवाले वाक्यकरि प्राकृतभाषासैं बी बोध होवैहै । यह सूचन किया औ सर्वथा प्राकृतभाषा अनुच्चरणीय होवै तौ सर्व लौकिकव्यवहार औ शास्त्रव्याख्यान आदिक वैदिक व्यवहारका लोप होवैगा औ अनादिकालीन भाषाव्यवहारका सर्वथा निषेध बनै नहीं । यातैं परिशेषतैं उक्त

१ जो ईश्वरकी सेवा है सो अदृष्टफलका हेतु है । औ—
२ आचार्यकी सेवा है सो अदृष्टफल औ दृष्टफल दोनूंका हेतु है ॥
(१) जो वस्तु धर्मअधर्मकी उत्पत्तिद्वारा फलका हेतु होवै, सो अदृष्टफलका हेतु कहियेहै ॥ औ—
(२) जो वस्तु धर्मअधर्मकी उत्पत्तिसैं विना साक्षात्फलका हेतु होवै सो दृष्टफलका हेतु कहियेहै ॥

१ ईश्वरकी जो सेवा है सो धर्मकी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरणकी शुद्धिरूप फलका हेतु है, यातैं ईश्वरकी सेवा अदृष्टफलका हेतु है ॥ औ—

२ आचार्यकी सेवा धर्मकी अपेक्षाविना आचार्यकी प्रसन्नताकरिके उपदेशरूप फलका हेतु है । यातैं दृष्टफलका हेतु है औ धर्मकी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरणकी शुद्धिरूप फलका हेतु है । यातैं अदृष्टफलका बी हेतु है ॥

इसरीतिसैं आचार्यकी सेवा ईश्वरकी सेवासैं बी उत्तम है । यातैं जिज्ञासु सर्वप्रकारसैं ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी सेवा करै ॥ ११ ॥

॥ १०१ ॥ ॥ अथ आचार्यसेवाप्रकार ॥

॥ सोरठा ॥

व्है जवही गुरुसंग,
करै दंड जिम दंडवत ॥
धारै उत्तमअंग,
पावन पादसरोज रज ॥ १२ ॥

टीकाः—जब गुरु प्राप्त होवै तब दंडकी न्यांई सांष्टांगप्रणाम करै औ पावन कहिये पवित्र जो हैं पादरूपी सरोजकमल, तिनकी रज जो धूरि, ताकूं उत्तमअंग कहिये मस्तक ऊपर धारै ॥ १२ ॥

॥ चौपाई ॥

गुरु समीप पुनि करिये वासा ।
जो अति उत्कट व्है जिज्ञासा ॥
तन मन धन वच अर्पी देवै ।
जो चाहै हिय बंधन छेवै ॥ १३ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ १३ ॥

॥ १०२ ॥ ॥ अथ तनअर्पणप्रकार ॥ (२)

तनकरि वहु सेवा विस्तारै ।
आज्ञा गुरुकी कवहू न टारै ॥

॥ १०३ ॥ ॥ अथ मनअर्पणप्रकार ॥ (२)

मनमैं प्रेम[130] रामसम राखै ।
व्है प्रसन्न गुरु इम अभिलाखै ॥ १४ ॥

श्रुतिका यज्ञसंबंधी व्यवहारविषै अपभ्रंशितशब्दके उच्चारणका निषेध तात्पर्यार्थ है । यह शिष्टपुरुषनका अभिप्राय है ॥

॥ १२९ ॥ दोपाद, दोजानु, दोहस्त, हृदय औ शिर, इन अष्टअंगनकूं भूमिविषै लगायके जो दंडकी न्यांई दीर्घनमस्कार करियेहै, सो साष्टांगप्रणाम है ॥

॥ १३० ॥ प्रेम जो भक्ति सो राम कहिये परमेश्वर ताके सम कहिये तुल्य राखै ॥ अर्थ यह जो गुरुकूं परमेश्वररूप जानिके ताकी भक्ति करै । यामैं यह श्रुतिप्रमाण है:—जिसकूं देवविषै परमभक्ति है औ जैसी देवविषै है तैसी गुरुविषै बी परमभक्ति है । तिस महात्माकूं ये कहे जो ब्रह्मआत्माकी एकतारूप वेदके अर्थ, वे आपही प्रकाशतेहैं ॥

दोषदृष्टि स्वपनै नहिं आनै ।
हरि[131] हर ब्रह्म गंग रवि जानै ॥
गुरु मूरतिको हियमैं ध्याना ।
धारै जो चाहै कल्याना ॥ १५ ॥

॥ १०४ ॥ ॥ अथ धनअर्पणप्रकार ॥ (३)

पत्नी पुत्र भूमि पसु दासी ।
दास द्रव्य अरु व्रीहि विनासी ॥
धनपद इन सबहिनकूं भाखै ।
व्है गुरुसरन दूरि तिहि नाखै ॥ १६ ॥

॥ सोरठा ॥

धनअर्पनको भेव,
एक कह्यो सुन दूसरो ॥
व्है गृहस्थ गुरुदेव,
याज्ञवल्क्य सम देह तिहिं ॥ १७ ॥

टीकाः—

१ पत्नीसैं आदिलेके व्रीहि कहिये धान्यपर्यंत सारे धन कहियेहैं, तिन सर्वकूं त्यागिके त्यागी जो गुरु है ताके सरणै होवै । यह धनअर्पण कहियेहै । काहेतैं? गुरु त्यागी है सो आप तौ अंगीकार करै नहीं परंतु तिन गुरुकी प्राप्ति वास्ते धनका त्याग कियाहै, यातैं ऐसा जो त्याग है सो बी गुरुकूंही अर्पण कहियेहै ॥ औ—

२ गृहस्थ जो गुरु होवैं तिनकूं समग्र चढाई देवै । यह दूसरे प्रकारका धनअर्पण कहियेहै । यामैं—

कोउ शंका करैहैः—जो ब्रह्मविद्याके आचार्य गृहस्थ नहीं होवैहैं ।

सो शंका बनै नहीं । काहेतैं? याज्ञवल्क्य औ उद्दालकसैं आदि लेके ब्रह्मविद्याके आचार्य गृहस्थही वेदविषै बहुत सुनै जावैहैं । यातैं गृहस्थ बी आचार्य संभवैहै ॥ १७ ॥

॥ १०५ ॥ अथ वाणीअर्पणविषै छंद ॥ (४)

भाखत गुनगन गुरुके बानी सुद्ध ।
दोष न कबहु अर्पन करि इम बुद्ध ॥

॥ १०६ ॥ शिष्यका गुरुके संबंधमैं व्यवहार ॥ १०६–१०८ ॥

॥ सोरठा ॥

जो चाहै कल्यान,
तन मन धन वच अरपि इम ॥
बसै बहुत गुरुस्थान,
भिच्छातैं जीवन करै ॥ १९ ॥

टीकाः—जो पुरुष अपना कल्याण चाहै । सो पूर्वरीतिसैं तनआदि अर्पणकरिके आप बहुतकाल गुरु जहां होवै ता स्थानविषै वा समीपमैं वास करै औ आप भिक्षा[132]तैं जीवन कहिये प्राण धारण करै ॥ १९ ॥

॥ १३१ ॥ इहां यह रहस्य हैः—

१ गुरु जब शिष्यके ऊपर वत्सलता करै, तब ताकूं हरिरूप कहिये विष्णुरूप जानै ॥

२ गुरु जब क्रोध करै तब ताकूं हररूप कहिये शिवरूप जानै ॥

३ गुरु जब राजसीव्यवहारविषै तत्पर होवै तब ताकूं ब्रह्मरूप कहिये ब्रह्मारूप जानै ॥

४ गुरु जब शांतिविषै स्थित होवै तब ताकूं गंगरूप कहिये गंगादेवीरूप जानै ॥

५ गुरु जब वचनरूप किरणोंकरि भ्रमसंदेहसहित अज्ञानकूं दूरी करै तब ताकूं रविरूप कहिये सूर्यरूप जानै ॥

इसरीतिसैं ब्रह्मवेत्ता गुरुविषै शिष्य सर्वदा ईश्वरभाव राखै । स्वप्नविषै बी दोषदृष्टि ल्यावै नहीं ॥

॥ १३२ ॥ यह जो रीति कही सो ब्रह्मचारी वा त्यागी शिष्यकी है । गृहस्थकी नहीं ॥

॥ १०७ ॥ ॥ चौपाई ॥

सो भिच्छा धरि दैसिक आगै,
निज भोजनकूं नहिं पुनि मागै ॥
जो गुरु देइ तु जाठर डारै,
नहिं दूजेदिन वृत्ति संभारै ॥ २० ॥

टीकाः—जो भिक्षाका अन्न शिष्य ल्यावै सो आपही भोजन नहीं करि लेवै । किंतु देशिक जो गुरु हैं तिनके आगे धरि देवै औ भिक्षा गुरुके आगे धरिके अपनै भोजनकूं गुरुसैं मागै नहीं औ एकदिनमैं दूसरीवार भिक्षा ग्राममैं बी मागै नहीं । किंतु गुरु जो कृपा-करिके देवै तौ भोजन करै औ गुरु जो शिष्यकी श्रद्धाकी परीक्षाके निमित्त नहीं देवै तौ दूसरे-दिन वृत्ति जो भिक्षा ताकूं संभारै ॥ २० ॥

॥ दोहा ॥

पुनि गुरुके आगे धरै,
भिच्छा सिष्य सुजान ॥
निर्वेद न जियमैं करै,
जो निज चहै कल्यान ॥ २१ ॥

टीकाः—निर्वेद नाम ग्लानिका है । अन्य-अर्थ स्पष्ट ॥ २१ ॥

॥ १०८ ॥ ॥ चौपाई ॥

इम व्यवहृत अवसर जब पेखै ।
मुख प्रसन्न गुरु सन्मुख लेखै ॥
विनती करै दोउ कर जोरी ।
गुरुआज्ञातें प्रश्न बहोरी ॥ २२ ॥

टीकाः—इसरीतिका व्यवहार करते जब गुरुका अवकाश देखै औ प्रसन्नमुखसैं गुरु जब अपनै सन्मुख देखै तब हाथ जोरिके गुरुकी स्तुति करै औ विनती करैः-हे भगवन् “मैं पूछ्या चाहूंहूं” । तब गुरु आज्ञा करै तौ प्रश्न करै ॥ औ—

कदाचित् जन्मांतरके उत्तमकर्मतैं गुरु कृपा-करिके शिष्यकूं तनअर्पणआदि सेवासैं विनाही उपदेश करी देवै तौ विशुद्ध अधिकारीका कल्याण होय जावैहै । काहेतैं? गुरुसेवाके दो-फल हैंः-एक तौ गुरुकी प्रसन्नता औ दूसरा अंतःकरणकी शुद्धि । सो दोनूं वाके सिद्ध हैं २२

॥ दोहा ॥

तन मन धन बानी अरपि,
जिहिं सेवत चित लाय ॥
सकलरूप सो आप है,
दादू सदा सहाय ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीविचारसागरे गुरुशिष्यलक्षण गुरुभक्तिफलप्रकारनिरूपणं नाम तृतीयस्तरंगः समाप्तः ॥ ३ ॥

॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ चतुर्थस्तरंगः ॥ ४ ॥

॥ अथ उत्तमाधिकारीउपदेशनिरूपणं ॥

॥ दोहा ॥

गुरुसिषके संवादकी,
कहूं व गाथ नवीन[133] ॥
पेखि जाहि जिज्ञासु जन,
होत विचारप्रवीन ॥ १ ॥

॥१०९॥ सुभसंतति राजा औ ताके तत्त्वदृष्टि अदृष्टि औ तर्कदृष्टिं नाम तीनिपुत्रोंकी गाथा ॥ १०९—१११ ॥

तीनि सहोदर बाल सुभ,
चक्रवती संतान ॥
सुभसंततिपितु तिहिं नमै,
स्वर्ग पताल जहान[134] ॥ २ ॥

॥ तीनौ बालनाम ॥

तत्त्वदृष्टि इक नाम अहि,
दूजो कहत अदृष्ट[135] ॥
तर्कदृष्टि पुनि तीसरो,
उत्तम मध्य कनिष्ठ ॥ ३ ॥

॥ चौपाई ॥

बालपनो सब खेलत खोयो ।
तरुन पाय पुनि मदन बिगोयो ।
धारि नारि गृह मार[136] प्रकासी ।
भोग लहै तिहुं सब सुखरासी ॥ ४ ॥

॥ ११० ॥ ॥ दोहा ॥

स्वर्ग भूमि पातालके,
भोगहि सर्व समाज[137] ॥
सुभसंतति निज तेजबल,
करत राजके काज ॥ ५ ॥
लहि अवसर इक तिहिं पिता,
निजहिय रच्यो[138] विचार ॥

॥ १३३ ॥ नवीन कहिये अनादि वेदउक्त जनकयाज्ञवल्क्यकी गाथाकी नाम कथाकी न्यांई यह गुरुशिष्यके संवादकी गाथ कहिये गाथा स्वबुद्धिकरि कल्पित है । पुराणादिप्राचीनग्रंथउक्त नहीं । ताकूं व कहिये अब कहूंहूं ॥

॥ १३४ ॥ जहान कहिये मृत्युलोक ॥

॥ १३५ ॥ छंदके वास्ते अदृष्टिके स्थानमैं अदृष्ट पड्याहै ॥

॥ १३६ ॥ मार कहिये कामदेव ॥

॥ १३७ ॥ समाज कहिये भोगकी सामग्री ॥

॥ १३८ ॥ "निज हिय रच्यो विचार" यह पाठ पलटायके "उपज्यो हिये विचार" ऐसा पाठ पीछे

सुखस्वरूप अज आतमा,
तासूं भिन्न असार ॥ ६ ॥
इहिं कारन तजि राज यह,
जानूं आतमरूप ॥
स्वर्ग भूमि पातालके,
तिहुं पुत्रह करि भूप ॥ ७ ॥

॥ चौपाई ॥

अस विचार सुभसंतति कीना ।
मंत्रि[१३९] पेखि तिहुँ पुत्र प्रवीना ॥
देसइकंत समीप बुलाये ।
निज विरागके वचन सुनाये ॥ ८ ॥
भाख्यो पुनि यह राज संभारहु ।
इक पताल इक स्वर्ग सिधारहु ॥
अपर बसहु कासीभुवि स्वामी ।
रहत जहां सिव अंतरजामी ॥ ९ ॥
जिहि मरतहि सुनि सिव उपदेसा ।
अनयासहि तिहिं[१४०] लोक प्रवेसा ॥
गंग अंग मनु कीर्त्ति प्रकासै ।
उत्तरवाहनि अधिक उजासै ॥ १० ॥

॥ दोहा ॥

करहु राज इम भिन्न तिहुं,
पालहु निज निज देस ॥
बिन विभाग भ्रातानको ।
भूमि काज व्है क्लेस ॥ ११ ॥

॥ इंदव छंद ॥

राजसमाज तजौं सब मैं अब
जानि हिये दुख ताहि असारा ॥
और तु लोक दुखी अपनै दुख
मैं भुगत्यो जग क्लेस अपारा ॥
जे भगवान्[१४१] प्रधान अजान
समान दरिद्रन ते जन सारा ॥
हेतु विचार हिये जगके भग[१४२]
त्यागि लखूं निजरूप सुखारा १२
॥१११॥वाक्य अनंत कहे इम तात
सुनै तिहुँभ्रात सुबुद्धिनिधाना ॥
बैठि इकंत विचार अपार
भनै पुनि आपसमांहि सुजाना ॥
दे दुखमूल समाज हमैं यह
आप भयो चह ब्रह्म समाना ॥

ग्रंथकारनैंही धर्‍याहै ॥ याका यह अर्थ हैः—विचार कहिये विवेक, हिये कहिये अपने अंतःकरणमैं, उपज्यो कहिये पूर्वकृतपुण्यपुंजके बलसैं अकस्मात् उत्पन्न भयो ॥

॥ १३९॥ मंत्रि पेखि कहिये मंत्रीकूं नेत्रकी सैन-करिके ॥

॥ १४० ॥ तिहि लोक प्रवेसा कहिये तिस शिवके लोक कैलासविषै प्रवेश करताहै । यह "काशी-मरणान्मुक्तिः" कहिये काशीविषै मरणतैं मुक्ति होवैहै । इस श्रुतिका अभिप्राय है ॥

॥ १४१ ॥ इस छंदके तृतीयपादका यह अन्वय-सहित अर्थ हैः—जे पुरुष भगवान्प्रधान कहिये ऐश्वर्यवानोंके मध्य मुख्य हैं औ अजान कहिये अज्ञानी हैं ते साराजन दरिद्रनसमान कहिये वे सर्वजन दरिद्रीजनोंके तुल्य अंतरसैं दुःखी हैं ॥

॥ १४२ ॥ भग नाम ऐश्वर्यका है ॥

सो जन नागर बुद्धिकसागर ।
आगर दुःख तजे जु जहाना॥१३॥

॥ ११३ ॥ तीनि पुत्रोंका ग्रहसैं निकसना औ गुरुसैं भेटना ॥

॥ दोहा ॥

यातैं तजि दुखमूल यह,
राज करौ निज काज ॥
करि विचार इम गेहतैं,
निकस्यो भ्रातसमाज ॥ १४ ॥
तिहुं खोजत सद्गुरु चले,
धारि मोछ हिय काम ॥
अर्थसहित किय तातको,
सुभसंतति यह नाम ॥ १५ ॥
खोजत खोजत देस बहु,
सुरसरि तीर इकंत ॥
तरु पल्लव साखा सघन,
[१४३]बँनै तामैं इक संत ॥ १६ ॥
बैठ्यो बट विटपहिं तरे,
[१४४]भद्रामुद्रा धारि ॥
जीवब्रह्मकी एकता,
उपदेशत गुन टारि ॥ १७ ॥
[१४५]दोषरहित एकाग्रचित,
सिष्यसंघ परिवार ॥
लखि दैसिक उपदेस हिय,
चहुधा करत विचार ॥ १८ ॥
[१४६]मैंनहुँ संभु कैलासमैं,
उपदेसत सनकादि ॥
पेखि ताहि तिहिं लहि सरन,
करी दंडवत आदि ॥ १९ ॥
कियो वास षट्मास पुनि,
सिष्यरीति अनुसार ॥
करी अधिक गुरुसेव तिहुं,
मोछकाम हिय धार ॥ २० ॥
व्है प्रसन्न श्रीगुरु तबै,
ते पूछे मृदुवानि ॥

॥ १४३ ॥ १ तरुकी सघनता वनकी शोभा है ।
२ शाखाकी सघनता तरुकी शोभा है औ—
३ पल्लवकी संघनता शाखाकी शोभा है ।
यह वन तीनप्रकारकी सघनताकरि युक्त है यातैं अतिशयसुशोभित है ॥

॥ १४४ ॥ हस्तगत्त अंगुष्ठतर्जनीके संयोगतैं भद्रामुद्रा होवैहै । याहीकूं लोपामुद्रा तर्कमुद्रा औ ज्ञानमुद्रा बी कहतेहैं ॥

॥ १४५ ॥ १ चोरी यारी औ हिंसा ये तीन शरीरके दोष हैं ॥
२ निंदा जूठ कठोरता औ वाक्चालता ये चारी वाणीके दोष हैं ॥
३ तृष्णा चिंता औ बुद्धिमंदता ये तीन मनके दोष हैं ॥
ये नृसिंहतापनीयउपनिषद्उक्त दश दोष हैं । तिनतैं रहित ॥

॥ १४६ ॥ मानों कैलासमैं दक्षिणामूर्तिस्वरूपधारी शिवजी चारि सनकादिकनकूं उपदेश करतेहैं । यह अर्थ है ॥

[१४७] किहिं कारन तुम तात तिहु,
वसहु कौन कह आनि ॥ २१ ॥
तत्त्वदृष्टि तव लखि हिये,
निज अनुजनकी सैन ॥
कहै उभयकर जोरि निज,
अभिप्रायके वैन ॥ २२ ॥

॥ ११३ ॥ तत्त्वदृष्टिकरि प्रश्न करनैकूं गुरुकी आज्ञाका मागना औ गुरुकरि आज्ञाका देना ॥

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

भो भगवन हम भ्रात तिहुं,
सुभसंतति संतान ॥
लख्यो चहैं वहु भेव हिय,
दीन नवीन अजान ॥ २३ ॥
जो आज्ञा व्है रावरी,
तौ व्है पूछि प्रवीन ॥
आप दयानिधि कल्पतरु,
हम अतिदुखित अधीन ॥ २४ ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ ॥ सोरठा ॥

सुनहु सिष्य मम वात,
जो पूछहु तुम सो कहुं ॥
लहो हिये कुसलात,
संसय कोउ ना रहे ॥ २५ ॥

॥ ११४ ॥ तत्त्वदृष्टिकी मोक्षइच्छासूचक विनति ॥

॥ दोहा ॥

गुरुकी लखी दयालुता,
सिष्य हिये भौ चैन ॥
काज सिद्ध निज मानि हिय,
भाखे सविनय वैन ॥ २६ ॥

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥

भो भगवन तुम कृपानिधाना ।
हो सर्वज्ञ महेस समाना ॥
हम अजानमति कछू न जानैं ।
जन्मादिक संसृति भय मानैं ॥ २७ ॥
[१४८] कर्म उपासना कीने भारी ।
और अधिक जगपासी डारी ॥
आप उपाय कहौ गुरुदेवा ।
व्है जातैं भवदुखको छेवा ॥ २८ ॥
पुनि चाहत हम परमानंदा ।
ताको कहो उपाय सुछंदा ॥
जव कृपा करि कहि हौ ताता ॥
तव व्है है हमरे कुसलाता ॥ २९ ॥

टीकाः—हे भगवन्! आप कृपानिधान हो औ सदाशिवके समान आप सर्वज्ञ हो ॥ औ

॥ १४७ ॥ हे तात !
१ तुम तिहुं किहिं कारन वसहु? यह प्रथमप्रश्न है
२ कौन कहिये तुम आपसमैं क्या लगते हौ? यह द्वितीयप्रश्न है ॥ औ—
३ कह आनि कहिये किसके पुत्र हो? यह तृतीयप्रश्न है ॥

तत्त्वदृष्टिनैं तेवीसवें दोहाविषै इन तीन प्रश्नोंमैंसैं द्वितीय औ तृतीय प्रश्नका उत्तर पहिले दियाहै औ ताके अनंतर प्रथमप्रश्नका उत्तर दियाहै ॥

॥ १४८ ॥ पूर्व हमनै सकामकर्म औ उपासना बहुत किये। तिनतैं मोक्षरूप वांछितफल प्राप्त भया नहीं। उलटा संसार बढ्या। यह अभिप्राय है ॥

हे भगवन् ! हम जन्ममरणसैं आदिलेके जो दुःखरूप संसार है तासैं डरैहैं । ताकी निवृत्तिका आप उपाय कहौ औ परमानंदकी प्राप्तिका उपाय कहौ ॥ औ—

हे गुरो ! उपासना औ कर्मके अनंत अनुष्ठान करे बी, परंतु उनसैं हमारेकूं वांछितफल प्राप्त भया नहीं औ उलटा संसार उनसैं बढता गया, यातैं आप औरउपाय बतावौ, जाकरिके हम कृतार्थ होवैं ॥ २९ ॥

॥ ११५ ॥ **गुरुका उत्तर** (मोक्षइच्छाकी भ्रांतिजन्यतापूर्वक महावाक्यका उपदेश)

॥ दोहा ॥

मोछकाम गुरु सिष्य लखि,
ताको साधन ज्ञान ॥
वेदउक्त भाषण लगे,
जीवब्रह्म भिद भान ॥ ३० ॥

टीकाः—दुःखकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिकूं मोक्ष कहैहैं । ताकी कामना शिष्यके हृदयमैं देखिके ताका साधन जो वेदउक्त ज्ञान है सो कहतेभये ॥

यद्यपि ज्ञानका स्वरूप अनेकशास्त्रनविषै भिन्नभिन्न वर्णन किया है । तथापि जीवब्रह्मकी भिद कहिये भेद, ताकूं दूरि करनैवाला जो ज्ञान है सोई वेदमैं मोक्षका साधन कह्याहै । यातैं ताहीकूं कहैहैं ॥ ३० ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

परमानंद मिलाप तूं,
जो सिष चहै सुजान ॥
जन्मादिकदुख नास पुनि,
भ्रांतिजन्य तिहिं मान ॥ ३१ ॥
परमानंद स्वरूप तूं,
नहिं तोमैं दुख लेस ॥
अज अविनासी ब्रह्मचित्,
जिन आनै हिय क्लेस ॥ ३२ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! परमानंदकी प्राप्तिविषै औ जन्ममरणसैं आदिलेके जो दुःखरूप संसार है, ताकी निवृत्तिविषै जो तेरेकूं इच्छा भईहै, ता इच्छाकी भ्रांतिसैं उत्पत्ति हुईहै। तूं ऐसैं जान । काहेतैं ?

१ तूं आप परमआनंदस्वरूप है । यातैं ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं ॥ जो वस्तु अप्राप्त होवै ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनैहै औ अपना जो स्वरूप है सो सदाप्राप्त है । ताकी प्राप्तिविषै जो इच्छा सो भ्रांतिविना बनै नहीं ॥ औ—

२ जन्मसैं आदिलेके जो संसार है, सो जो कदाचित् होवै तौ वाकी निवृत्तिविषै इच्छा बनै । सो जन्मादिकसंसारका लेश बी तेरेविषै नहीं है । यातैं अनहुये दुःखकी निवृत्तिविषै बी इच्छा भ्रांतिविना बनै नहीं ॥ औ—

हे शिष्य ! जन्म औ नाशकरिके रहित जो चेतनरूप ब्रह्म है सो तूं है। यातैं अपनै हृदयविषै जन्मादिकखेद मति मान ॥ ३२ ॥

॥ ११६ ॥ **प्रश्नः—मेरा आत्मा आनंदरूप होवै तौ विषयसंबंधसैं आनंदका आत्माविषै भान नहीं हुवाचाहिये ॥**

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

विषयसंग क्यूं भान व्है,
जो मैं आनंदरूप ॥

अब उत्तर याको कहौ,
श्रीगुरु मुनिवरभूप ॥ ३३ ॥

टीकाः—हे भगवन् ! जो मेरा आत्मा आनंदरूप होवै तौ विषयके संबंधसें आनंदका आत्माविषै भान नहीं हुवाचाहिये । यातैं आत्मा आनंदरूप नहीं किंतु विषयके संबंधसें आत्माविषै आनंद होवैहै ॥ ३३ ॥

॥ ११७॥ उत्तरः—आत्मविमुखकूं अंतर्मुखवृत्तिमैं आनंदका भान । विषयमैं आनंद नहीं ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥
॥ चोपाई ॥

आतमविमुख बुद्धि जन जोई ।
इच्छा ताहि विषयकी होई ॥
तासूं चंचल बुद्धि वखानी ।
सुख आभास होइ तहँ हानी ॥ ३४ ॥

जब अभिलषित पदारथ पावै ।
तब मति छन विच्छेप नसावै ॥
तामैं व्है अनंदप्रतिविंबा ।
पुनि छनमैं बहु चाह विडंबा ॥३५॥

तातैं व्है थिरताकी हानी ।
सो अनंदप्रतिविंब नसानी ॥
विषयसंग इम आनंद होई ।
बिन सतगुरु यह लखै न कोई ॥३६॥

॥ १४९ ॥ विडवा कहिये आनंदके प्रतिविंबकूं ठगनैवाली, आत्मस्वरूप आनंदके प्रतिविंबकूं अनुभवकरिके पुरुषकूं विषयमैं आनंदकी भ्रांति कहीहै ।

टीकाः—हे शिष्य ! आत्मासें विमुख है बुद्धि जाकी ऐसा जो पुरुष ताकूं विषयकी इच्छा होवैहै ॥ या स्थानविषै जो भोगका साधन होवै सो विषय कहियेहै । यातैं धनपुत्रादिकनका बी ग्रहण करि लेना ॥

१ ता विषयकी इच्छातैं बुद्धि चंचल रहै । ता चंचलबुद्धिमैं आत्मस्वरूपआनंदका आभास कहिये प्रतिबिंब नहीं होवैहै ॥ औ—

२ जिस विषयकी इच्छा हुईहोवै सो विषय याकूं प्राप्त होइ जावै । तब या पुरुषकी बुद्धि क्षणमात्र स्थित होयके अंतर्मुख बुद्धिकी वृत्ति होवैहै ॥ ता अंतर्मुखवृत्तिविषै आत्माका स्वरूप जो आनंद, ताका प्रतिबिंब होवैहै ॥

तिस आत्मस्वरूप आनंदके प्रतिबिंबकूं अनुभवकरिके पुरुषकूं भ्रांति होवैहै जो "मेरेकूं विषयसें आनंदका लाभ हुवाहै । परंतु विषयमैं आनंद है नहीं ॥

१ जो कदाचित् विषयमैं आनंद होवै तौ एकविषयसें तृप्त जो पुरुष ताकूं जब दूसरेविषयकी इच्छा होवै । तब बी प्रथमविषयसें आनंद हुवाचाहिये । सो होवै तौ नहीं है औ हमारी रीतिसें स्वरूपआनंदका तो भान बनै नहीं । काहेतें? जो दूसरेविषयकी इच्छाकरिके बुद्धि चंचल है । ताकेविषै प्रतिबिंब बनै नहीं ॥

२ किंवा । जो विषयमैंही आनंद होवै तौ जा पुरुषका प्रियपुत्र अथवा औरकोई अत्यंतप्यारा जो अकस्मात् बहुतकाल पीछे मिलि जावै तब वाकूं देखतेही प्रथम जो आनंद होवै सो आनंद फेरि सदा नहीं होता । सो सदाही हुवाचाहिये । काहेतें? आनंदका हेतु जो पुरुष

सो शुष्कहड्डीकूं चाबिके अपनै मसोडेके रुधिरके आस्वादनकरि श्वानकूं हड्डीमैं रुधिरकी भ्रांति होवैहै ताकी न्यांई है ॥

है सो वाके समीप है औ हमारी रीतिसैं तौ प्रथमही आनंद बनैहै। सदा बनै नहीं। काहेतैं ? एकवेरि प्यारेकूं देखिके वृत्ति स्थित होवैहै। फेरि वृत्ति औरपदार्थमैं लगि जावैहै यातैं चंचल है। यातैं पदार्थमैं आनंद नहीं ॥

३ किंवा। जो विषयमैं आनंद होवै तौ समाधिकालविषै जो योगानंदका भान होवैहै सो न हुवाचाहिये ? काहेतैं ? समाधिमैं किसी विषयका संबंध नहीं है ॥

४ किंवा। जो विषयमैंही आनंद होवै तौ सुषुप्तिमैं आनंदका भान नहीं हुवाचाहिये। काहेतैं ? सुषुप्तिविषै बी किसी विषयका संबंध है नहीं।

यातैं विषयमैं आनंद नहीं किंतु आत्मस्वरूप आनंद सारे भान होवैहैं ॥ इसीवास्ते वेदमैं लिख्याहैः–"आत्मस्वरूप आनंदकूं लेके सारे आनंदवाले होवैहैं" ॥ ३६ ॥

॥ दोहा ॥

विषय संगतैं व्है प्रगट,
आतम आनंदरूप ॥
सिष्य सुनायो तोहि मैं,
यह सिद्धांत अनूप ॥ ३७ ॥

॥ सोरठा ॥

सो तूं मोहि व भाख,
जो यामैं संका रही ॥
निज मतिमैं मति राख,
मैं ताको उत्तर कहूं ॥ ३८ ॥

॥ १५० ॥ समाधिका दृष्टांत सर्वलोकनके अनुभवका विषय नहीं। इसं अरुचितैं अन्यदृष्टांत कहतेहैं ॥

॥११८॥ प्रश्नः–ज्ञानीकूं विषयकी इच्छा औ ताके संबंधसैं पूर्वरीतिसैं सुखका भान होवैहै अथवा नहीं ?

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

॥ चौपाई ॥

भो भगवन तुम दीनदयाला।
मेट्यो मम संसय ततकाला ॥
यामैं कछुक रही आसंका।
सो भाखूं अब व्है निर्बंका ॥ ३९ ॥
आतमविमुख बुद्धि अज्ञानी।
ताकी यह सब रीति बखानी ॥
ज्ञानीजनको कहौ विचारा।
कोउ न तुम सम और उदारा॥४०॥

टीकाः—हे भगवन् ! आपनै पूर्वविषयके संबंधसैं आत्मानंदके भानकी जो रीति कही सो अज्ञानी पुरुषकी कही औ ज्ञानीकी नहीं कही। काहेतैं ? आत्मासैं विमुख है बुद्धि जाकी ताका आपनै नाम लियाहै। सो आत्मासैं विमुखबुद्धि अज्ञानीकी होवैहै। ज्ञानीकी नहीं। यातैं आप अब ज्ञानीका विचार कहो। जो ज्ञानवानूकूं विषयकी इच्छा औ ताके संबंधसैं पूर्वरीतिंकरिके सुखका भान होवैहै। अथवा नहीं ? यह वार्त्ता आप कहो ॥ ४० ॥

॥११९॥उत्तरः--द्विविध आत्मविमुख है ॥ विषयानंद स्वरूपानंदसैं न्यारा नहीं ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

सुनहु सिष्य इक बात मम,

सावधान मन कान ॥
हैं द्वैविध आतमविमुख ।
अज्ञानी रु सुजान ॥ ४१ ॥
व्है विस्मृत व्यवहारमैं,
कबहुक ज्ञानीसंत ॥
अज्ञानी विमुखहि रहे,
यह तूं जान सिद्धंत ॥ ४२ ॥

टीकाः—हे शिष्य! तूं चित्त औ श्रवणकूं सावधान करके सुन ॥

पूर्व जो हमनैं आत्मविमुख कह्याहै सो आत्म विमुख अज्ञानीही नहीं होवै। किंतु ज्ञानवान्की वी बुद्धि जब व्यवहारमें आई जावै तब वह तत्त्वकूं भूलि जावैहै ॥ तिसकालविषै ज्ञानवान् वी आत्मविमुखही होवैहै ॥ औ ज्ञानीकी बुद्धि जो सदा आत्माकारही रहै तौ भोजनादिक व्यवहार न होवै। यातैं आत्मविमुखबुद्धि दोनूंवांकी बनैहै ॥

अज्ञानीकी तौ बुद्धि सदा आत्मविमुख है औ ज्ञानीकी बुद्धि आत्मविमुख होवै तिसकालमैं ज्ञानीकूं वी इच्छा औ विषयके संबंधसैं आत्मस्वरूप आनंदका भान अज्ञानीके समान है। परंतु इतना भेद हैः—

१ विषयके संबंधसैं जो आनंदका भान होवैहै ताकूं ज्ञानी तौ जानैहै 'जो यह आनंद है सो मेरे स्वरूपसैं न्यारा नहीं है। किंतु ताकाही आभास है'। यातैं ज्ञानीकूं विषयभोगमैं वी समाधिही है ॥ औ

॥ १५१ ॥ जैसैं जब जाग्रदाकारवृत्ति होवै तब स्वप्नाकारवृत्ति होवै नहीं जब स्वप्नाकारवृत्ति होवै तब जाग्रदाकारवृत्ति होवै नहीं, तैसैं ज्ञानवान्की बुद्धि वी जब आत्माकार होवै तब अनात्माकार होवै नहीं औ जब अनात्माकार होवै तब आत्माकार होवै नहीं ॥

यद्यपि एक अंतःकरणविषै एककालमैं भिन्नविषयाकार सामान्यविशेषरूप दो वृत्तियां होवैहैं, तथापि दोनूं विशेषवृत्तियां होवैं नहीं, यातैं अन्यव्यवहारमैं संलग्नपुरुषकूं जैसैं संदूक नाम पेटीमैं जानबूजके रखे धनकी विस्मृति होवैहै, फेर व्यवहारकी समाप्तिके हुवे ता धनका स्मरण होवैहै, तैसैं ज्ञानवान्की वी बुद्धि व्यवहारमैं विशेषसंलग्न होवै तब याकूं तत्त्वका विस्मरण होवैहै, फेर जब व्यवहारसैं उपराम होवै तब ताका ज्यूंकात्यूं स्मरण होवैहै ॥

याहीतैं भगवान् भाष्यकारनैं शारीरकभाष्यके प्रथम अध्यायगतप्रथमपादमैं कहाहैः—"व्यवहारविषै ज्ञानवान् वी पशु नाम अविवेकीजनकी न्यांई व्यवहार करतेहैं" यातैं ऊपर लिख्या जो अर्थ सो घटित है॥

॥ १५२ ॥ यह जो समाधि कहा सो जानिके संग लिये चोरकी न्यांई विषयविषै दोषदृष्टिरूप विवेकके जागरणकरि औ मिथ्यात्वबुद्धिरूप दृढवैराग्यके विद्यमान होनैंकरि औ बद्धमुक्त महिपालकी न्यांई स्वल्पभोगसैं संतोषकरि औ वध करनैयोग्य पुरुषके भोगकी न्यांई परिणाममैं भोगकी दुःखहेतुताके ज्ञानके होनैंकरि दृढरागके अभावतैं औ विषयानंदकी स्वरूपानंदसैं अभिन्नताके भानतैं कहिये आत्मानंदके प्रतिबिंबसैं अतिरिक्त विषयविषै सर्वथा आनंदके अभावके ज्ञानतैं स्वरूपके अनुसंधानरूप समाधिके गुणकी समताकरि "यह पुरुष सिंह है" याकी न्यांई गौण (उपचारमात्र) है ॥

किंवाः— जैसैं बालक स्वपादके अंगुष्ठकूं धावताहै औ दंतरहित वृद्धपुरुष अपनें ओष्ठमात्रका चर्वण करताहै, सो अन्यविषयभोगका भागी नहीं, तैसैं ज्ञानी वी शास्त्रअविरुद्धविषयभोगकूं करताहुवा स्वरूपके अनुसंधानतैं रागके अभावतैं ताकूं विषयभोगविषै समाधि कहियेहै, सो विक्षेपयुक्त होनैतैं अतिअधम विषयसमाधि है, यातैं श्वानकी खलडीमैं

२ अज्ञानी नहीं जानैहै जो मेराही स्वरूप आनंद है ॥ औ—

३ दोनूंका स्वरूप आनंद है, विषयसैं केवल अज्ञानीकूं भ्रांति होवैहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

॥ १२० ॥ प्रश्नः—जन्मादिकदुःख कौनविषै है ?

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ चौपाई ॥

हे प्रभु परमानंद बखान्यो ।
मेरो रूप सु मैं पहिचान्यो ॥
नहिं तोमैं भवबंधन लेसा ।
कह्यो आप पुनि यह उपदेसा ॥ ४३ ॥
यामैं संका मुहिं यह आवै ।
जातैं तव वच हिय न सुहावै ॥
नहिं मोमैं यह बंध पसारो ।
कहो कौन तौ आश्रय न्यारो ? ॥ ४४ ॥

टीकाः—हे भगवन् ! आपनै कह्या "तूं [१५३] परमआनंदस्वरूप है" सो मैं भलीप्रकारसैं जान्या ॥ और—

आपनै कह्या जो "जन्ममरणसैं आदिलेके संसाररूप दुःख तेरेविषै है नहीं । यातैं ताकी निवृत्ति बनै नहीं"। याकेविषै मेरेकूं शंका हैः— जो जन्मादिक दुःख मेरेविषै नहीं हैं तौ जाविषै यह संसार है । सो मेरेसैं न्यारा. कहिये भिन्न आश्रय आप कृपाकरिके बतावो, जाकेविषै संसारदुःख जानिके अपनैविषै नहीं मानूं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

॥ १२१ ॥ उत्तरः—जन्मादिकदुःख कहूं नहीं ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ सोरठा ॥

सुनहु सिष्य मम बानि,
जातैं तव संका मिटै ॥
है जगकी [१५४] अति हानि,
तो मोमैं नहिं औरमैं ॥ ४५ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ ४५ ॥

॥ १२२ ॥ प्रश्नः—दुःख कहुं नहीं तौ प्रत्यक्ष प्रतीत क्यूं होवैहै ?

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

जो भगवन कहुं है नहीं,
जन्ममरन जगखेद ॥
है प्रत्यच्छ प्रतीति क्यूं,
कहो आप यह भेद ॥ ४६ ॥

टीकाः—हे भगवन् ! जो जन्ममरणसैं

डारे दुग्धकी न्यांई याका विषय आदर करनै योग्य नहीं है, किंतु ज्ञानीकूं उपेक्ष्य है, क्षणिकविषयानंद होनैतैं औ देहाभिमानरूप आवरणके अभावतैं शुद्ध-चिन्मात्रवासनाके सद्भावतैं ज्ञानीका मन जहां जावै तहां पादत्राणयुक्त पुरुषकूं चर्मवेष्टितपृथिवीकी न्यांई समाधि है, यह अर्थ बालबोधके नवमउपदेश-विषै हमनै प्रमाणसहित लिख्याहै, जिसकूं इच्छा होवै सो तहां देखै ॥

॥ १५३ ॥ आत्मा आनंदरूप है, यह अर्थ आगे षष्ठतरंगगत २६०-२६३ के अंकमैं कहियेगा ॥

॥ १५४ ॥ जैसैं रज्जुमैं कल्पितसर्पका व्यावहारिक सत्ताकरिके अत्यंतअभाव है, तैसैं ब्रह्ममैं कल्पित जगत्का परमार्थसत्ताकरिके अत्यंतअभाव है, सोई जगत्की अतिहानि कहिये नित्यनिवृत्ति है ॥

आदिलेके संसारदुःख मेरेविषै तथा औरविषै कहूं बी नहीं है तौ प्रत्यक्ष प्रतीत क्यूं होवै है? जो वस्तु नहीं होवै सो प्रतीत होवै नहीं। जैसैं वंध्याका पुत्र औ आकाशविषै पुष्प नहीं है सो प्रतीत होवै नहीं, तैसैं संसार बी नहीं होवै तौ प्रतीत नहीं हुवाचाहिये औ जन्मसैं आदिलेके संसार प्रतीत होवैहै, यातैं "जन्मादिकसंसाररूपी दुःख नहीं है" यह कहना बनै नहीं ॥ ४६ ॥

॥ १२३ ॥ उत्तरः—आत्माके अज्ञानसैं प्रतीति। रज्जुसर्पका दृष्टांत ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

आत्मरूप अज्ञानतैं,
व्है मिथ्या परतीति ॥
जगत स्वप्न नभ नीलता,
रज्जुभुजगकी रीति ॥ ४७ ॥

टीकाः—जन्मादिक जगत् परमार्थसैं नहीं है तौ बी आत्माका ब्रह्मस्वरूपकरिके अज्ञानतैं मिथ्या प्रतीत होवैहै। जैसैं स्वप्नके पदार्थ, आकाशमैं नीलता औ रज्जुमैं सर्प परमार्थसैं नहीं हैं औ मिथ्या प्रतीत होवैहैं। तैसैं जन्मादिकजगत् परमार्थसैं नहीं है। मिथ्या प्रतीत होवैहै ॥ ४७ ॥

॥१२४॥ प्रश्नः—रज्जुमैं सर्प कैसैं भासैहै ?

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

॥ चौपाई ॥

मिथ्यासर्प रज्जुमैं जैसैं।
भाख्यो भव आतममैं तैसैं ॥
कैसै सर्प रज्जुमैं भासै।
यह संशय मन बुद्धि विनासै ॥४८॥

टीकाः—जैसैं रज्जुमैं सर्प मिथ्या है तैसैं आत्मामैं भवदुःख मिथ्या कह्या। तहां दृष्टांतके ज्ञानविना दार्ष्टान्तका ज्ञान होवै नहीं। यातैं "रज्जुमैं सर्प कैसै भासै ?" यह दृष्टांतमैं प्रश्न है ॥ ४८ ॥

॥ १२५॥अथ प्रश्नअभिप्राय ॥१२५-१३०॥

॥ चौपाई ॥

असतख्याति पुनि आतमख्याती।
ख्यातिअन्यथा अरु अख्याती।
सुने चारिमत भ्रमकी ठौरा।
मानूं कौन कहौ यह [156]व्यौरा ॥ ४९ ॥

टीकाः—जहां रज्जुमैं सर्प औ सीपीमैं रूपा इत्यादिक भ्रम हैं तहां चारिमत सुनैहैंः—

१ शून्यवादी असत्यख्याति कहैहैं ॥

२ क्षणिकविज्ञानवादी आत्मख्याति कहैहैं ॥

३ न्याय औ वैशेषिकमतमैं अन्यथाख्याति कहैहैं ॥

४ सांख्य औ प्रभाकर अख्याति कहैहैं ॥

॥ १२६ ॥ १ असतख्याति ॥

तहां शून्यवादीका यह अभिप्राय हैः—जेवरीदेशमैं सर्प अत्यंत असत् है। तैसैं अन्यदेशमैं बी अत्यंत असत् है। ऐसैं अत्यंत असत्सर्पकी जेवरीदेशमैं प्रतीति होवैहै, याकूं असत्यख्याति कहैहैं ॥ अत्यंत असत्यसर्पकी ख्याति कहिये भान औ कथन है ॥

॥ १५५ ॥ दार्ष्टांतका कहिये सिद्धांतका ॥

॥ १५६ व्यौरा कहिये श्रेष्ठ । याहीकूं नीका बी कहैहैं ॥

॥ १५७ ॥ असतख्यातिका विशेषकथन औ खंडन वृत्तिरत्नावलिके दशमरत्नमैं कियाहै औ वृत्तिप्रभाकरके सप्तमप्रकाशमैं कियाहै।

॥ १२७ ॥ २ ॥ आत्मख्याति ॥

विज्ञानवादीका यह अभिप्राय हैः—जेवरी-देशमैं तथा अन्यदेशमैं बुद्धिके बाहिर कहूं सर्प है नहीं। सारे पदार्थ बुद्धिसैं भिन्न नहीं किंतु सर्वपदार्थनके आकारकूं बुद्धिही धारैहै। सो बुद्धि क्षणिकविज्ञानरूप है। क्षणक्षणमैं नाश औ उत्पत्तिकूं प्राप्त होवैहै जो विज्ञान, सोई सर्वरूप प्रतीत होवैहै। याकूं आत्मख्याति कहैहैं ॥ आत्मा कहिये क्षणिकविज्ञानरूप बुद्धि, ताका सर्परूपसैं ख्याति कहिये भान औ कथन है ॥[१५८]

॥ १२८ ॥ ३ ॥ अन्यथाख्याति ॥१२८-१२९

नैयायिकका औ वैशेषिकका यह अभिप्राय हैः—[१५९]वंबीआदिक स्थानमैं साचा सर्प है ताकूं नेत्रसैं देखैहैं औ नेत्रमैं दोष है ताके बलतैं सन्मुख समीप प्रतीत होवैहै ॥ यद्यपि साचा सर्प औ नेत्रके मध्य भीतिआदिक अंतराय हैं तथापि दोषसहित नेत्रतैं अंतरायसहित बी सर्प दिखैहै ॥ औ यामैं—

कोउ ऐसी शंका करैः—दोषतैं सामर्थ्य घटैहै। वधै नहीं। जैसैं जठराग्निमैं पाचन-सामर्थ्य वातपित्तकफदोषतैं घटैहै तैसैं नेत्रमैं बी तिमिरादिदोषतैं सामर्थ्य घटीचाहिये औ वंबीआदिक स्थानमैं स्थित सर्पका दोष-सहित नेत्रतैं ज्ञान कह्या। तहां शुद्धनेत्रसैं तौ परदेशमैं स्थितका प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं औ दोषसहितसैं होवैहै। यातैं "दोषतैं नेत्रका सामर्थ्य अधिक होवैहै" यह माननैमैं कोई दृष्टांत नहीं ॥

सो शंका बनै नहीं। काहेतैं? किसकूं पित्तदोषतैं ऐसा रोग होवैहै जो चतुर्गुण-भोजन कियेतैं बी तृप्ति होवै नहीं। जैसैं पित्त-दोषतैं जठराग्निमैं पाचनसामर्थ्य वधैहै तैसैं नेत्रमैं बी तिमिरादिदोषतैं परदेशमैं स्थित सर्पके प्रत्यक्ष करनेका सामर्थ्य वधैहै ॥

इसरीतिसैं वंबीआदिक देशमैं स्थित सर्पका अन्यथा कहिये औरप्रकारतैं सन्मुख जेवरी-देशमैं जो ख्याति कहिये भान औ कथन सो [१६०]अन्यथाख्याति कहियेहै। औ—

॥ १२९ ॥ [१६१]चिंतामणिकारका यह मत हैः— जो दोषसहित नेत्रतैं वंबीमैं स्थित सर्पका ज्ञान होवै तौ बीचके औरपदार्थनका ज्ञान बी [१६२]हुवाचाहिये। यातैं परदेशमैं स्थित वस्तुका नेत्रसैं ज्ञान होवै नहीं। किंतु दोषसहित नेत्रतैं जेवरीका निजरूपतैं भान होवैं नहीं, सर्परूपतैं भान होवैहै। यातैं जेवरीकाही अन्यथा कहिये औरप्रकारतैं सर्परूपतैं जो ख्याति कहिये भान औ कथन सो अन्यथाख्याति कहियेहै ॥

॥ १५८ ॥ आत्मख्यातिका विशेषकथनपूर्वक खंडन वृत्तिरत्नावलिके एकादशरत्नमैं तथा वृत्ति-प्रभाकरके सप्तमप्रकाशमैं कियाहै ॥

॥ १५९ ॥ 'वल्मीक' याकू कोई देशमैं राफडा बी कहतेहैं ॥

॥ १६० ॥ यह प्राचीनमत है। या मतमैं अन्य-देशविषै स्थित वस्तुकी अन्यदेशमैं प्रतीतिही भ्रांति कहियेहै। अर्थाध्यास किंवा ज्ञानाध्यासरूप भ्रांति नहीं है ॥

॥ १६१ ॥ यह चिंतामणिनामक ग्रंथके कर्ता नवीन नैयायिकका मत है यामैं अन्यवस्तुकी अन्यरूपसैं प्रतीतिरूप ज्ञानाध्यासकूंही भ्रांति कहते-हैं या अन्यथाख्यातिका विशेषकथन औ खंडन वृत्तिरत्नावलिके द्वादशरत्नविषै औ वृत्तिप्रभाकरके सप्तमप्रकाशविषै कियाहै।

॥ १६२ ॥ जहां सोनीके हट्टमैं स्थित रजतका शुक्तिदेशमैं भान होवै तहां हट्ट औ तामैं स्थित सर्वसामग्रीसहित सोनीकी बी दोषके बलसैं प्रतीति हुईचाहिये औ होती नहीं ॥

॥ १३० ॥ ४ अख्याति ॥ औ उक्ततीनि-ख्यातिका खंडन ॥

औ अख्यातिवादीका यह अभिप्राय है:–

१ जो असत्की प्रतीति होवै तौ वंध्यापुत्र औ शशशृंगकी प्रतीति हुईचाहिये, यातैं असत्ख्याति असंगत है ॥

२ क्षणिकविज्ञानकाही आकार सर्पादिक होवै तौ क्षणमात्रसैं अधिककालस्थिर प्रतीति नहीं हुईचाहिये, यातैं आत्मख्याति असंगत है ॥ औ–

३ अन्यथाख्यातिकी प्रथमरीति तौ चिंतामणिके मतसैं दूषितही है । तैसैं चिंतामणिकी रीतिसैं बी अन्यथाख्यातिमत असंगत है। काहेतैं? ज्ञेयके अनुसार ज्ञान होवैहै ॥ "ज्ञेयरज्जु औ सर्पका ज्ञान" यह कहना अत्यंतविरुद्ध है। यातैं यह रीति माननी योग्य है:– जहां रज्जुमैं सर्पभ्रम है तहां रज्जुसैं नेत्रका अपनी वृत्तिद्वारा संबंध होयके रज्जुका इदंरूपतैं सामान्यज्ञान होवैहै औ सर्पकी स्मृति होवैहै । "यह सर्प है" यामैं दोज्ञान हैं:–

१ "यह" अंश तौ रज्जुका सामान्य-प्रत्यक्षज्ञान है। औ–

२ "सर्प है" ऐसें सर्पका स्मृतिरूप ज्ञान है ॥

इसरीतिसैं "यह सर्प है" इहां दोज्ञान हैं। परंतु भयदोषप्रमातामैं औ तिमिरदोषप्रमाणमैं ताके बलतैं पुरुषकूं ऐसा विवेक नहीं होता जो "मेरेकूं दो ज्ञान हुवैहैं" ॥ यद्यपि "यह" अंश रज्जुका सामान्यज्ञान यथार्थ है औ पूर्व देखे सर्पका स्मृतिज्ञान बी यथार्थही है । तौ बी "मेरेकूं दोज्ञान हुवैहैं, तिनमैं रज्जुका सामान्यप्रत्यक्षज्ञान है औ सर्पका स्मृति-ज्ञान है" यह विवेक नहीं होवैहै । तिस दोज्ञानके अविवेककूंही सांख्यप्रभाकरमतमैं भ्रम कहैहैं । यही रीति सारेभ्रमस्थलमैं जाननी ॥

"या रीतिसैं रज्जुआदिकनमैं सर्पादिक भ्रम जहां होवै तहां चारिमत सुनेहैं । तिनमैं नीका मत होई सो कहो । ताहीकूं मैं मानूं" यह शिष्यका प्रश्न है ॥ ४९ ॥

अंक १२४–१३० गत प्रश्नका उत्तर ॥ १३१–१४६ ॥

॥ १३१ ॥ अख्यातिमतखंडन ॥ १३१-१३२ ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

ख्यातिअनिर्वचनीय लखि,
पंचम तिनतैं और ॥
युक्तिहीन मतचारि ये,
मानहु भ्रमकी ठौर ॥ ५० ॥

टीकाः–हे शिष्य! तिन चारि ख्यातिनतैं औरही भ्रमकी ठौर अनिर्वचनीय ख्याति पंचम लख ॥ औ असत्ख्याति, आत्मख्याति, अन्यथाख्याति, औ अख्याति, ये चारिमत युक्तिहीन हैं ॥

जैसैं उत्तरउत्तरमतनिरूपणमैं तीनिमत असंगत कहे तैसैं अख्यातिमत बी असंगत है । काहेतैं? "यह सर्प है" या ज्ञानमैं

१ प्रथम "यह" अंश तौ रज्जुका सामान्य ज्ञान प्रत्यक्ष है । औ–

२ "सर्प है" इतना अंश पूर्वदृष्टसर्पका स्मरणज्ञान है ।

यह अख्यातिवादीका मत है । तहां पूर्वदृष्ट सर्पका स्मरणही मानै औ सन्मुखरज्जु देशमैं सर्पका ज्ञान नहीं मानै तौ सन्मुखरज्जुतैं पुरुषकूं भय होयके उलटा भागैहै । सो भय

औ भागना नहीं हुवाचाहिये । यातैं सन्मुख-रज्जुदेशमैंही सर्पकी प्रतीति होवैहै । पूर्वदृष्ट-सर्पकी स्मृति नहीं ॥

॥ १३२ ॥ किंवा ।

१ रज्जुका विशेषरूपतैं यथार्थज्ञान हुयेतैं अनंतर ऐसा बाध होवैहैः—" मेरेकूं रज्जुमैं सर्पकी प्रतीति मिथ्या होतीभई" या बाधतैं बी रज्जुमैंही सर्पकी प्रतीति होवैहै । पूर्वदृष्टसर्पकी स्मृति नहीं ॥ औ—

२ " यह सर्प है " इहां ज्ञान एकही प्रतीत होवैहै । दो नहीं ॥ औ—

३ एककालमैं अंतःकरणतैं स्मृतिरूप औ प्रत्यक्षरूप दो ज्ञान होवैं बी नहीं ।

यातैं अख्यातिमत[163] बी अत्यंतसंगत है ॥

इन चारूमतनका प्रतिपादन औ खंडन, विवरण औ स्वाराज्यसिद्धिआदिकग्रंथनमैं विस्तारसैं लिख्याहै ॥ प्रतिपादन औ खंडनकी युक्ति कठिन है । यातैं संक्षेपतैं जिज्ञासुकूं रीति जनाईहै । विस्तार हमनैं लिख्या नहीं ॥

॥१३३॥५ सिद्धांतमैं अनिर्वचनीयख्याति है । ताकी रीति ॥

सिद्धांतमैं अनिर्वचनीयख्याति है ताकी यह रीति हैः— अंतःकरणकी वृत्ति नेत्रादिद्वारा निकसिके विषयके समान आकारकूं प्राप्त होवैहै तातैं विषयका आवरण भंग होयके ताकी प्रतीति होवैहै । तहां प्रकाश[164] बी सहायक होवैहै है, प्रकाशविना पदार्थकी प्रतीति होवै नहीं ॥

जहां रज्जुमैं सर्पभ्रम होवैहै तहां अंतःकरणकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकसि बी औ रज्जुसैं ताका संबंध बी होवै । परंतु तिमिरादिकदोष[165] प्रतिबंधक हैं । यातैं रज्जुके समानाकारवृत्तिका स्वरूप होवै नहीं, यातैं रज्जुका आवरण नाशै नहीं ॥

इसरीतिसैं आवरणभंगका निमित्त वृत्तिका संबंध हुयेतैं बी जब रज्जुका आवरण भंग होवै नहीं तब रज्जुचेतनमैं स्थित अविद्यामैं क्षोभ होयके सो अविद्या सर्पाकारपरिणामकूं प्राप्त होवैहै ॥

१ सो अविद्याका कार्य सर्प सत् होवै तौ रज्जुके ज्ञानसैं ताका बाध होवै नहीं औ बाध होवैहै । यातैं सत् नहीं ॥ औ

२ असत् होवै तौ वंध्यापुत्रकी न्यांई प्रतीति नहीं होवै औ प्रतीति होवैहै, यातैं असत् बी नहीं ॥

किंतु सत्असत्सैं विलक्षण अनिर्वचनीय[166] है ॥ शुक्तिआदिकनमैं रूपादिक बी याहि

॥ १६३ ॥ याका विशेषकथन औ खंडन वृत्तिरत्नावलिके त्रयोदशरत्नमैं औ वृत्तिप्रभाकरके सप्तमप्रकाशमैं कियाहै ।

॥ १६४ ॥ सूर्यादिकज्योति ॥

॥ १६५ ॥ तिमिरशब्दसैं मंदअंधकारका बी ग्रहण है । काहेतैं? निर्दोष नेत्रवालेकूं स्पष्टप्रकाशविषै रज्जुआदिकअधिष्ठानके विशेषरूपका अज्ञान होवै नहीं औ गाढअंधकारविषै अधिष्ठानके सामान्यरूप "इदंता"का ज्ञान होवै नहीं औ अधिष्ठानके विशेषरूपके अज्ञानविना औ सामान्यरूपके ज्ञानविना अध्यास होवै नहीं । यह वार्ता पूर्व द्वितीयतरंगविषै अध्यासके प्रसंगमैं कहीहै । औ मंदअंधकारमैं विशेषरूपका अज्ञान औ सामान्यरूपका ज्ञान । ये दोनूं बनतेहैं । यातैं नेत्रके विषयगत अध्यासविषै मंदअंधकारकी अपेक्षाके होनैतैं ताका बी ग्रहण है औ नेत्रकी मंदतारूप तिमिरदोषका बी ग्रहण है । दोनूंमैंसैं एक होवै जब भ्रम होवैहै ॥ औ आदिशब्दकरि कामलआदिक नेत्ररोगका ग्रहण है ॥

॥ १६६ ॥ इहां यह शंका हैः—सत्सैं विलक्षण असत् है, ताकूं असत्सैं विलक्षण कहना विरुद्ध है औ असत्सैं विलक्षण सत् है ताकूं सत्सैं विलक्षण कहना विरुद्ध है ॥ औ सत्असत्सैं भिन्न

रीतिसैं अनिर्वचनीय उत्पन्न होवैहै ॥ ता अनिर्वचनीयकी जो ख्याति कहिये प्रतीति औ कथन सो अनिर्वचनीयख्याति कहियेहै ॥

॥ १३४ ॥ भ्रमस्थलमैं अंतःकरणसैं भिन्न अविद्याका परिणाम सर्पादिक विषय औ तिनका ज्ञान एकही समय उत्पन्न होवैहै औ लीन होवैहै। सो साक्षीभास्य हैं ॥

जैसैं सर्प अविद्याका परिणाम है तैसैं ताका ज्ञानरूप वृत्ति बी अविद्याकाही परिणाम है। अंतःकरणका नहीं । काहेतें? जैसैं रज्जुज्ञानतें सर्पका बाध होवैहै तैसैं ताके ज्ञानका बी बाध होवैहै ॥ अंतःकरणका ज्ञान होवै तौ बाध नहीं हुवाचाहिये। यातें ज्ञान बी सर्पकी न्यांई अविद्याका कार्य सत्असत्सैं विलक्षण अनिर्वचनीय है। परंतु—

१ रज्जुउपहितचेतनमैं स्थित तमोगुणप्रधान-अविद्याअंशका परिणाम सर्प है।औ—
२ साक्षीचेतनमैं स्थित अविद्याके सत्वगुणका परिणाम वृत्तिज्ञान है।

रज्जुचेतनकी अविद्याका जा समय सर्पाकार-परिणाम होवैहै ताही समय साक्षीआश्रितअविद्याका ज्ञानाकारपरिणाम होवैहै । काहेतें? रज्जुचेतन आश्रित अविद्यामैं क्षोभका जो निमित्त है ता निमित्तसैंही साक्षी आश्रित-अविद्याअंशमैं क्षोभ होवैहै। यातें भ्रमस्थलमैं सर्पादिक विषय औ तिनका ज्ञान एकही समय उत्पन्न होवैहैं ॥ औ रज्जुआदिक अधिष्ठानके ज्ञानतें एकही समय लीन होवैहै ॥ या रीतिसैं

१ सर्पादिक भ्रमविषै
  (१) बाह्यअविद्याअंश सर्पादिक विषयका उपादानकारण है। औ—
  (२) साक्षीचेतनआश्रितअंतरअविद्याअंश तिनके ज्ञानरूप वृत्तिका उपादान-कारण है ॥ औ—
२ स्वप्नमैं तौ
  (१) साक्षीआश्रित अविद्याकाही तमोगुण-अंश विषयरूप परिणामकूं प्राप्त होवैहै॥
  (२) ता अविद्यामैं सत्वगुणअंश ज्ञानरूप परिणामकूं प्राप्त होवैहै।

यातें स्वप्नमैं अंतरअविद्याही विषय औ ज्ञान दोनूंका उपादानकारण है ॥

याहीतें बाह्यरज्जुसर्पादिक औ अंतरस्वप्न-पदार्थ । साक्षीभास्य कहियेहै ॥

अविद्याकी वृत्तिद्वारा जाकूं साक्षी भासै कहिये प्रकाशै । सो साक्षीभास्य कहियेहै ॥

॥ १३५ ॥ रज्जुमैं सर्प औ ताका ज्ञान अविद्याका परिणाम औ चेतन-का विवर्त है ॥

रज्जुआदिकनमैं अनिर्वचनीय सर्पादिक औ तिनका ज्ञान भ्रम कहियेहै औ अध्यास कहियेहै। सो भ्रम अविद्याका परिणाम है औ चेतनका विवर्त है ॥

१ उपादानकारणके समानस्वभाववाला अन्यथास्वरूप परिणाम कहियेहै॥औ—
२ अधिष्ठानतें विपरीतस्वभाववाला अन्यथा-स्वरूप विवर्त कहियेहै ॥

तृतीयपदार्थका अभाव है यातें अनिर्वचनीय शब्दके अर्थकी उपलब्धिही नहीं है। या शंकाका—

यह समाधान हैः—

१ त्रिकालअबाध्य सत् कहियेहै। तासैं विलक्षण कहनेकरि बाधयोग्यका ग्रहण है औ—

२ स्वरूपहीन वंध्यापुत्रादिक असत् कहियेहै। तासैं विलक्षण कहनेकरि स्वरूपवान्का ग्रहण है। यातें बाधयोग्य स्वरूपवान् अनिर्वचनीयपदार्थ है। तैसा प्रपंच औ रज्जुसर्पादिक है ताकी उपलब्धि नाम प्रतीति वेदांतनिपुण पंडितनकूं होवैहै ॥

१ उपादानकारण अविद्या सो अनिर्वचनीय है। तैसैं रज्जुमैं सर्प औ ताका ज्ञान बी अनिर्वचनीय है, यातैं रज्जुसर्प औ ताका ज्ञान अविद्याके समानस्वभाववाला अन्यथास्वरूप कहिये अविद्यातैं औरप्रकारका आकार है सो अविद्याका परिणाम है ॥

२ तैसैं रज्जुअवच्छिन्नअधिष्ठानचेतन सत्‌रूप है। सर्प औ ताका ज्ञान सत्‌सैं विलक्षण है। यातैं रज्जुसर्प औ ताका ज्ञान अधिष्ठानचेतनतैं विपरीतस्वभाववाला अन्यथास्वरूप कहिये चेतनसैं औरप्रकारका आकार है ॥

॥ १३६ ॥ रज्जु औ अंतःकरणउपहितचेतन अधिष्ठान है। रज्जु नहीं ॥ सर्प औ ताके ज्ञानकी रज्जुज्ञानसैं निवृत्ति ॥

१ मिथ्यासर्पका अधिष्ठान रज्जुउपहितचेतन है। रज्जु नहीं। काहेतैं? सर्पकी न्यांई रज्जु बी कल्पित है ॥ कल्पितवस्तु अन्यकल्पितका अधिष्ठान बनै नहीं यातैं रज्जुउपहितचेतनही अधिष्ठान है। रज्जु नहीं। औ रज्जुविशिष्टकूं अधिष्ठान कहैं तौ बी रज्जु औ चेतन दोनूं अधिष्ठान होवैंगे। तहां रज्जुभागमैं अधिष्ठानपना बाधित है। यातैं रज्जुउपहितचेतनही अधिष्ठान है। रज्जुविशिष्टचेतन नहीं ॥

२ तैसैं सर्पके ज्ञानका साक्षीचेतन अधिष्ठान है ॥

या रीतिसैं भ्रमस्थानमैं विषयका औ ताके ज्ञानका उपाधिभेदसैं अधिष्ठान भिन्न है। एक नहीं ॥ औ—

१ विशेषरूपतैं रज्जुकी अप्रतीति। अविद्यामैं क्षोभद्वारा दोनूंकी उत्पत्तिमैं निमित्त है ॥

२ तैसैं रज्जुका ज्ञान दोनूंकी निवृत्तिमैं बी निमित्त कहीहै। याकेविषै—

॥ १३७ ॥ शंकाः— रज्जुके ज्ञानतैं सर्पकी निवृत्ति बनै नहीं।

ऐसी शंका होवैहैः— रज्जुके ज्ञानतैं सर्पकी निवृत्ति बनै नहीं। काहेतैं? "मिथ्यावस्तुका जो अधिष्ठान होवै ता, अधिष्ठानके ज्ञानतैं मिथ्याकी निवृत्ति होवैहै। यह अद्वैतवादका सिद्धांत है" ॥ औ मिथ्यासर्पका अधिष्ठान रज्जुउपहित चेतन है। रज्जु नहीं। यातैं रज्जुके ज्ञानतैं सर्पकी निवृत्ति बनै नहीं। या शंकाका—

॥ १३८ ॥ समाधानः— रज्जुका ज्ञानही सर्पके अधिष्ठानका ज्ञान है ॥

यह समाधान हैः— "रज्जुआदिक जडपदार्थका ज्ञान अंतःकरणकी वृत्तिरूप होवै। तहां आवरणभंग वृत्तिका प्रयोजन है। सो आवरण अज्ञानकी शक्ति है। यातैं आवरण जडके आश्रित है नहीं। किंतु जडका अधिष्ठान जो चेतन ताके आश्रित है। यातैं—

१ रज्जुसमानाकार अंतःकरणकी वृत्तितैं रज्जुअवच्छिन्न चेतनकाही आवरणभंग होवैहै ॥

२ वृत्तिमैं जो चिदाभास है तातैं रज्जुका प्रकाश होवैहै ॥

३ चेतन स्वयंप्रकाश है तामैं आभासका उपयोग नहीं"

यह प्रक्रिया संपूर्ण आगे प्रतिपादन करैंगे॥ इसरीतिसैं—

॥ १६७ ॥ यह प्रक्रिया आगे इसी ही चतुर्थतरंगगत १८७ के अंक विषै आरंभकरिके निरूपण करैंगे ॥

१ चिदाभाससहित अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानमैं जो वृत्तिभाग, ताका आवरण-भंगरूप फल चेतनमैं होवैहै । औ—

२ चिदाभासभागका प्रकाशरूप फल रज्जुमैं होवैहै ।

यातैं वृत्तिज्ञानका केवलजडरज्जु विषय नहीं । किंतु अधिष्ठानचेतनसहित रज्जु साभासवृत्तिका विषय है । इसीकारणतैं सिद्धांतग्रंथमैं यह लिख्याहै:—"अंतःकरणजन्य वृत्तिज्ञान सारे ब्रह्मकूं विषय करैहै" ॥

या प्रकारसैं रज्जुज्ञानसैं निरावरण होयके सर्पका अधिष्ठान रज्जुअवच्छिन्नचेतनका वी निजप्रकाशतैं भान होवैहै । यातैं रज्जुका ज्ञानही सर्पके अधिष्ठानका ज्ञान है, तातैं सर्पकी निवृत्ति संभवैहै ॥

॥ १३९ ॥ शंकाः—रज्जुज्ञानतैं सर्प-ज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं ॥

अन्यशंकाः—यद्यपि या रीतिसैं सर्पकी निवृत्ति रज्जुके ज्ञानतैं संभवैहै तथापि सर्पके ज्ञानकी निवृत्ति संभवै नहीं । काहेतैं? सर्पका अधिष्ठान रज्जुअवच्छिन्नचेतन हैं औ सर्पके ज्ञानका अधिष्ठान साक्षीचेतन है। पूर्वउक्तप्रकार-तैं रज्जुज्ञानसैं रज्जुअवच्छिन्नचेतनकाही भान होवैहै । साक्षीचेतनका नहीं । यातैं रज्जुका ज्ञान हुयेतैं वी सर्पज्ञानका अधिष्ठान साक्षीचेतन अज्ञात है औ अज्ञातअधिष्ठानमैं कल्पितकी निवृत्ति होवै नहीं । किंतु ज्ञातअधिष्ठानमैंही कल्पितकी निवृत्ति होवैहै । यातैं रज्जुज्ञानतैं सर्पज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं । ताका—

॥ १४० ॥ समाधानः—सर्पके अभावतैं सर्पज्ञानकी निवृत्ति होवैहै ॥ १४० ॥—१४२ ॥

समाधान यह है:—विषयके आधीन ज्ञान होवैहै । विषय जो सर्प ताकी निवृत्ति होतेही सर्पके ज्ञानकी विषयके अभावतैं आपही निवृत्ति होवैहै ॥ और—

॥ १४१ ॥ जो ऐसैं कहै:—कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञानविना होवै नहीं औ सर्पका ज्ञान वी कल्पित है, ताका अधिष्ठान साक्षीचेतन है । ताके ज्ञानविना कल्पितसर्पके ज्ञातकी निवृत्ति बनै नहीं । ताका—

॥ १४२ ॥ समाधान यह है:—निवृत्ति दोप्रकारकी होवैहै ॥

१ एक तौ अत्यंतनिवृत्ति होवैहै । औ—

२ दूसरी कारणमैं जो लय सो वी निवृत्ति कहियेहै ॥

कारणसहित कार्यकी निवृत्ति अत्यंत-निवृत्ति कहियेहै ॥

सारे कल्पितवस्तुका कारण अधिष्ठानके आश्रित अज्ञान है ॥

१ ता अज्ञानसहित कल्पितकार्यकी निवृत्ति तौ अधिष्ठानज्ञानतैंही होवैहै ।

२ परंतु कारणमैं लयरूप जो निवृत्ति सो अधिष्ठानज्ञानविना वी होवैहै ॥

जैसैं सुषुप्ति औ प्रलयमैं सर्वपदार्थनका अज्ञानमैं लय अधिष्ठानज्ञानसैं विना होवैहै । तहां सर्वपदार्थनके लयमैं निमित्त भोगके सन्मुख कर्मका अभाव है । तैसैं अधिष्ठानसाक्षीके ज्ञान-विनाही सर्पज्ञानका लय होवैहै । तहां सर्प-ज्ञानका विषय जो सर्प ताका अभाव सर्पज्ञानके लयमैं निमित्त है ॥

या प्रकारसैं सर्पकी निवृत्ति रज्जुज्ञानतैं होवैहै औ सर्पज्ञानका विषय जो सर्प ताके अभावतैं सर्पज्ञानका लय होवैहै ॥

॥ १४३ ॥ रज्जुज्ञानसमय साक्षीका भान होवैहै ॥

अथवा सर्प औ ताका ज्ञान । दोनूंकी

निवृत्ति रज्जुज्ञानतैंही होवैहै । काहेतैं ? जब रज्जुका प्रत्यक्षज्ञान होवै तब अंतःकरणकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकसिके रज्जुदेशमैं प्राप्त होवैहै औ रज्जुके समान वृत्तिका आकार होवैहै, यातैं रज्जुके प्रत्यक्षसमय वृत्तिउपहितचेतन औ रज्जुउपहितचेतन दोनूं एक होवैहैं तिनका भेद रहै नहीं । यामैं यह हेतु है:—चेतनका स्वरूपसैं तौ भेद कहूं बी नहीं । किंतु उपाधिके भेदसैं चेतनका भेद होवैहै ॥

वृत्तिउपहितचेतन औ रज्जुउपहितचेतनका भेदकउपाधि । वृत्ति औ रज्जु है ।

१ सो वृत्ति औ रज्जु भिन्नभिन्नदेशमैं स्थित होवैं जब तौ उपाधिवाले चेतनका भेद होवैहै औ—

२ दोनूंउपाधि एकदेशमैं स्थित होवैं तब उपहितचेतनका भेद बनै नहीं ॥

यह वार्ता वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमैं लिखीहै ॥

१ भिन्नदेशमैं स्थित उपाधितैंही उपहित-चेतनका भेद होवैहै ॥

२ एकदेशमैं जब दोनूंउपाधि स्थित बी होवैं तब दोनूंउपाधिसैं उपाधित बी चेतन एकही होवैहै ॥

या प्रकारतैं रज्जुके प्रत्यक्षज्ञानसमय रज्जु-उपहितचेतन औ वृत्तिउपहितचेतन एक हैं । तहां साक्षीचेतनही वृत्तिउपहितचेतन है । काहेतैं ? अंतःकरण औ ताकी वृत्तिमैं स्थित जो तिनका प्रकाशक चेतनमात्र सो साक्षी कहियेहै ॥ इसरीतिसैं रज्जुज्ञानसमय साक्षीचेतन औ रज्जुउपहितचेतनका अभेद होवैहै ॥ औ—

१ रज्जुउपहितचेतनका रज्जुज्ञानसैं भान होवैहै औ—

२ रज्जुउपहितचेतनसैं अभिन्न साक्षीका बी रज्जुज्ञानसैं भान होवैहै ॥

या प्रकारतैं रज्जुज्ञानसमय अधिष्ठानसाक्षी-का भान होनैतैं कल्पित सर्पज्ञानकी निवृत्ति संभवैहै ॥

॥ १४४ ॥ सर्वत्रिपुटियोंके ज्ञानमैं साक्षीका ज्ञान होवैहै ॥

किंवा कूटस्थदीपमैं विद्यारण्यस्वामीनैं यह प्रक्रिया कहीहै:—

१ "आभाससहित अंतःकरणकी वृत्ति इंद्रियद्वारा निकसिके घटादिक विषयकूं प्रकाशैहै ॥"

२ घटादिकविषय औ तैसैं आभाससहित वृत्तिरूप तिनका ज्ञान तथा आभास-सहित अंतःकरणरूप ज्ञाता इन तीनिवोंकूं साक्षी प्रकाशैहै ॥"

१ "यह घट है" इसरीतिसैं आभाससहित वृत्तिसैं घटमात्रका प्रकाश होवैहै ॥

२ "मैं घटकूं जानूंहूं" या रीतिसैं

(१) 'मैं' शब्दका अर्थ ज्ञाता औ—

(२) ज्ञेय घट औ—

(३) ताका ज्ञान ।

या त्रिपुटीका साक्षीसैं प्रकाश होवैहै ॥

या प्रकारतैं सर्वत्रिपुटियोंका प्रकाशक साक्षी है ॥

साक्षी आप अज्ञात होवै तौ त्रिपुटीका ज्ञान साक्षीसैं बनै नहीं । यातैं सर्वत्रिपुटियोंके ज्ञानमैं साक्षीका ज्ञान अवश्य होवैहै ॥

ता साक्षीज्ञानतैं सर्पज्ञानकी निवृत्ति संभवैहै । या पूर्वरीतिसैं सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान भिन्नभिन्न कह्या । तामैं इतनैं शंकासमाधान हैं ॥ या पक्षमैं शंकासमाधानरूप विवाद और-बी बहुत हैं । यातैं—

॥ १४५ ॥ सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान साक्षी है ॥ १४५--१४६ ॥

'सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान एकही है' यह पक्ष कहैहैं:—

तहां बाह्य जो रज्जुचेतन है ताकूं सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान कहै तौ बनै नहीं। काहेतें ?--

१ जितने ज्ञान होवैहैं सो प्रमाता अथवा साक्षीके आश्रित होवैहैं । बाह्य जो रज्जुचेतन ताके आश्रित ज्ञान बनै नहीं ।

२ जैसें सर्प औ सर्पके ज्ञानका अधिष्ठान अंतःकरणउपहित साक्षी चेतनकूं मानै तौ शरीरके अंतर अंतःकरणदेशमें सर्पकी प्रतीति चाहिये। रज्जुदेशमें सर्पकी प्रतीति नहीं चाहिये ॥ अंतर उपजे सर्पकी बाहिर प्रतीति मायाके बलतें मानै तौ आत्मख्यातिमतकी सिद्धि होवैगी ॥

इसरीतिसें--

१ रज्जुउपहितचेतन ज्ञानका अधिष्ठान बनै नहीं । औ--

२ अंतःकरणउपहित चेतन सर्पका अधिष्ठान बनै नहीं ।

यातें सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान एक नहीं बनै ।

तथापि रज्जुके समीप प्राप्त जो अंतःकरणकी इदमाकारवृत्ति, तामें स्थित चेतनके आश्रित अविद्या सर्पाकार औ ज्ञानाकारपरिणामकूं प्राप्त होवैहै ।

१ वृत्तिउपहित चेतनमें स्थित अविद्याका तमोगुणअंश सर्पका उपादानकारण है ।

२ ताहीमें स्थित सत्त्वगुणअंश सर्पके ज्ञानका उपादानकारण है ॥

सर्प औ ताके ज्ञानका वृत्तिउपहित चेतन अधिष्ठान है।

१ वृत्ति रज्जुदेशमें बाहिर गई यातें वृत्तिउपहित चेतन बी बाहिर है, यातें सर्पका आश्रय बनैहै ॥

२ जितना अंतःकरणका स्वरूप होवै, उतना ही साक्षीका स्वरूप होवैहै । शरीरके अंतर स्थित जो अंतःकरण सोई वृत्तिस्वरूप परिणामकूं प्राप्त होवैहै, यातें वृत्तिउपहित चेतन साक्षी है, यातें ज्ञानका आश्रय बनैहै।

रज्जुका जब साक्षात्कार होवै तब रज्जुचेतन औ वृत्तिचेतन दोनूं एक होवैहैं, यातें रज्जुके ज्ञानसें सर्प औ ताके ज्ञानकी निवृत्ति बी बनैहै ॥

॥ १४६ ॥ जहां एकरज्जुमें दशपुरुषनकूं किसीकूं सर्प, किसीकूं दंड, किसीकूं माला, किसीकूं पृथिवीकी दरार औ किसीकूं जलधारा, इसरीतिसें भिन्न भिन्न प्रतीति होवै अथवा सर्वकूं सर्पही प्रतीत होवै तहां जा पुरुषकूं रज्जुका साक्षात्कार होवैहै, ताकी वृत्तिचेतनमें कल्पितअध्यासकी निवृत्ति होवैहै । जा रज्जुज्ञान नहीं होवै ताके अध्यासकी निवृत्ति होवै नहीं, यातें वृत्तिचेतनही कल्पितका अधिष्ठान है । रज्जुआदिकविषयउपहितचेतन नहीं ॥

जो रज्जुउपहित चेतनकूं सर्पदंडादिकनका अधिष्ठान मानै तौ दशपुरुषनकूं प्रतीत जो होवैं दशपदार्थ, सो एकएककूं सारे प्रतीत हुयेचाहिये औ हमारी रीतिसें तौ जाकी वृत्तिचेतनमें जो पदार्थ कल्पित है सो ताहीकूं प्रतीत होवै । अन्यकूं नहीं ।

इसरीतिसें बाह्यसर्पादिक औ तिनके ज्ञानका वृत्तिउपहितसाक्षी अधिष्ठान है । स्वप्नके पदार्थ औ तिनके ज्ञानका बी अंतःकरणउपहित साक्षीही अधिष्ठान है ॥

या प्रकारतें सत्‌असत्‌सें विलक्षण जो

अनिर्वचनीय अविद्याका परिणाम अनिर्वचनीय सर्पादिक, तिनकी ख्याति कहिये प्रतीति औ कथन, सो अनिर्वचनीयख्याति[१६८] कहियेहै ॥ ५० ॥

॥ १४७ ॥ प्रश्नः—अपारमिथ्याजगत्का आधार औ अधिष्ठान कौन है ?

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

यह मिथ्या परतीत व्है,
जामैं जगत अपार ॥
सो भगवन मोकूं कहौ,
को याको आधार ॥ ५१ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ ५१ ॥

॥ गतप्रश्नका उत्तर ॥ १४८—१४९ ॥

॥ १४८ ॥ मिथ्याजगत्का आधार औ अधिष्ठान तूं है ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

तव निजरूप अज्ञानतैं,
व्है मिथ्याजग भान ॥
अधिष्ठान आधार तूं,
रज्जुभुजंग समान ॥ ५२ ॥

टीकाः— हे शिष्य ! तेरा जो निजरूप कहिये ब्रह्मरूपकरिके अज्ञान, तिसतैं मिथ्याजगत् प्रतीत होवैहै, यातैं जगत्का आधार औ अधिष्ठान तूं है । जैसैं रज्जुके अज्ञानतैं मिथ्याभुजंग प्रतीत होवैहै । तहां मिथ्याभुजंगका आधार औ अधिष्ठान रज्जु है ।

यद्यपि मिथ्यासर्पका अधिष्ठान मुख्य द्वितीयपक्षमैं वृत्तिउपहित चेतन है औ प्रथमपक्षमैं रज्जुउपहितचेतन है । किसी पक्षमैं रज्जुअधिष्ठान नहीं ।

तथापि प्रथमपक्षमैं चेतनमैं अधिष्ठानपनैकी उपाधि रज्जु है, यातैं स्थूलदृष्टिसैं रज्जु अधिष्ठान कहियेहै । जैसैं मिथ्याभुजंगका अधिष्ठान तथा आधार रज्जु है; तैसैं मिथ्याजगत्का अधिष्ठान औ आधार तूं है ।

॥ १४९ ॥ आत्माका सामान्यरूप आधार औ विशेषरूप अधिष्ठान है ।

या स्थानमैं यह रहस्य हैः—जैसैं जेवरीके दो स्वरूप हैं । १ एक तौ सामान्यरूप है औ २ एक विशेपरूप है ॥

१ सामान्यरूप "इदं" है ।
२ विशेषरूप "रज्जु" है ।

१ "यह सर्प है" या रीतिसैं मिथ्यासर्पसैं अभिन्न होयके भ्रांतिकालमैं बी प्रतीत होवै जो "इदंरूप" सो सामान्यरूप है ॥ औ—

२ जो सर्पकी भ्रांतिकालमैं प्रतीत न होवै; किंतु जाकी प्रतीति हुवेतैं सर्प भ्रांति दूरि होवै सो रज्जुका विशेषरूप है ॥

तैसैं आत्माके बी दोस्वरूप हैं । १ एक सामान्यरूप । २ दूसरा विशेषरूप ।

१ सत्‌रूप सामान्यरूप है । औ—
२ असंगता कूटस्थता नित्यमुक्तादिक विशेषरूप हैं ।

काहेतैं ?

१ "स्थूलसूक्ष्मसंघात हैं" इसरीतिसैं स्थूलसूक्ष्म

॥ १६८ ॥ अनिर्वचनीयख्यातिका कछुक कथन वृत्तिरत्नावलिके अष्टमरत्नमैं कियाहै औ याहीका विस्तारसैं निरूपण वृत्तिप्रभाकरके सप्तमप्रकाशमैं कियाहै ।

संघातकी भ्रांतिसमय वी मिथ्यासंघाततैं अभिन्न होयके सत्‌रूप प्रतीत होवैहै; यातैं आत्माका सत्‌स्वरूप सामान्यरूप है। औ—

२ स्थूलसूक्ष्मसंघातकी भ्रांतिसमय आत्माका असंग कूटस्थ नित्यमुक्तस्वरूप प्रतीत होवै नहीं। किंतु असंगादिस्वरूप आत्माकी प्रतीति हुवेतैं संघातभ्रांति दूरि होवैहै। यातैं असंगता, कूटस्थता, नित्यमुक्तता औ व्यापकतादिक विशेषरूप हैं।

१ सर्वभ्रांतिमैं सामान्यरूप आधार कहियेहै। औ—

२ विशेषरूप अधिष्ठान कहियेहै ॥

१ जैसैं सर्पका आश्रय जो जेवरी ताका सामान्य "इदं" स्वरूप सर्पका आधार है। औ—

२ विशेषरज्जुस्वरूप अधिष्ठान है।

१ तैसैं मिथ्याप्रपंचका आश्रय जो आत्मा, ताका सामान्य सत्‌रूप प्रपंचका आधार है। औ—

२ असंगतादिक विशेषरूप अधिष्ठान है।

इसरीतिसैं आधार औ अधिष्ठानका सर्वज्ञात्मनाम[१६९] मुनिनैं किंचित्‌भेद प्रतिपादन कियाहै ॥ ५२ ॥

॥ १५० ॥ प्रश्नः--जगतद्रष्टा आत्मासैं भिन्न कह्या चाहिये ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

भगवन मिथ्याजगतको,
द्रष्टा कहिये कौन ॥
अधिष्ठान आधार जो,
द्रष्टा होय न तौन ॥ ५३ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ भाव यह है:—जगत्‌का आधार औ अधिष्ठान आत्मा है; यातैं जगत्‌का द्रष्टा आत्मासैं भिन्न कह्या चाहिये। जैसैं सर्पका आधार औ अधिष्ठान जो रज्जु तासैं भिन्न पुरुष सर्पका द्रष्टा है ॥ ५३ ॥

॥ गतप्रश्नका उत्तर ॥ १५१–१५२ ॥

॥ १५१ ॥ सारे कल्पितका अधिष्ठानहि द्रष्टा है ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ चौपाई ॥

मिथ्यावस्तु जगतमैं जे हैं,
अधिष्ठानमैं कल्पित ते हैं ॥
अधिष्ठान सो द्विविध पिछानहु,
इक चेतन दूजो जड जानहु ॥ ५४ ॥
अधिष्ठान जडवस्तु जहां है,
द्रष्टा तातैं भिन्न तहां है ॥
जहां होय चेतन आधारा,
तहां न द्रष्टा होवै न्यारा ॥ ५५ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ भाव यह है:—

१ जहां जड अधिष्ठान होवै, तहां अधिष्ठानसैं भिन्न द्रष्टा होवैहै ॥

२ जहां चेतन अधिष्ठान होवै, तहां अधिष्ठानही द्रष्टा होवैहै। भिन्न नहीं ॥ ५५ ॥

॥ १६९ ॥ संक्षेपशारीरकनामक ग्रंथके कर्त्ता श्रीशंकराचार्यके पौत्रशिष्य ॥

॥ दोहा ॥

चेतन मिथ्यास्वप्नको,
अधिष्ठान निर्धार ॥
सोई द्रष्टा भिन्न नहिं,
तैसें जगत विचार ॥ ५६ ॥

टीकाः–जैसें स्वप्नका अधिष्ठान साक्षीचेतन है सोई स्वप्नका द्रष्टा है; तैसें जगत्का आत्माही अधिष्ठान है सोई द्रष्टा है । यह शंका औ समाधान स्थूलदृष्टिसें जेवरीकूं सर्पका अधिष्ठान मानिके कहेहैं औ सिद्धांतमतमैं तौ सर्पका अधिष्ठान साक्षीचेतन है सोई द्रष्टा है; यातैं सारे कल्पितका अधिष्ठानही द्रष्टा है । शंकासमाधान बनै नहीं ॥ ५६ ॥

॥ १५२ ॥ मिथ्यासंसारके निवृत्तिकी चाह बनै नहीं ॥

॥ दोहा ॥

इम मिथ्या संसारदुख,
व्है तोमैं भ्रम भान ॥
ताकी कहा निवृत्ति तूं,
चाहै सिष्य सुजान ॥ ५७ ॥

टीकाः–हे शिष्य ! इसरीतिसें तेरेविषै संसाररूपी दुःख मिथ्याही भ्रांतिसें प्रतीत होवैहै, ता मिथ्याकी निवृत्तिकी चाह बनै नहीं ॥

दृष्टांतः–जैसें बाजीगरनै किसी पुरुषकूं मिथ्याशत्रु मंत्रके बलसैं दिखाया होवै, ताके मारनैविषै वह पुरुष उद्योग नहीं करता । तैसें मिथ्यासंसारकी निवृत्तिकी चाह बनै नहीं ॥ ५७ ॥

॥ १५३॥ प्रश्नः–जन्मादिकसंसार दुःखका हेतु है । यातैं ताकी निवृत्तिका उपाय बतावौ ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ चौपाई ॥

जग यद्यपि मिथ्या गुरुदेवा ।
तथापि मैं चाहूं तिहि छेवा ।
स्वप्न भयानक जाकूं भासै ।
करि साधन जन जिम तिहि नासै॥५८॥
यातैं व्है जातैं जग हाना ।
सो उपाव भाखो भगवाना ॥
तुम समान सतगुरु नहिं आना ।
श्रवन फूक दे वंचकं[१७०] नाना ॥ ५९ ॥

टीकाः—हे भगवन् ! आपनै कह्या जो "जगत् तेरेविषै मिथ्यारूपकरिके है औ सत्यरूपकरिके नहीं" सो यद्यपि सत्य है, तथापि हे भगवन् ! सो मिथ्यारूपकरिके वा जा उपायकरिके मरणादिकसंसार मेरेविषै भान न होवै, सो उपाय आप कहो ॥ और—

आपनै कह्या था जो "मिथ्याकी निवृत्तिवास्ते साधन चाहिये नहीं" सो वार्त्ता बी सत्य है । परंतु हे भगवन् ! जाकूं मिथ्यापदार्थ बी दुःखका हेतु होवै ताकूं वह मिथ्या बी साधनसैं दूरि करना योग्य है । जैसैं किसी पुरुषकूं प्रतिपादन भयानकस्वप्न आवते होवैं, सो मिथ्या बी हैं परंतु तिनके बी दूरि करनैकूं जप औ पादप्रक्षालनादिक नानासाधन अनुष्ठान करैहै; तैसैं यह संसार मिथ्या बी है परंतु जन्मादिक दुःखका हेतु मेरेकूं प्रतीत होवैहै; यातैं

॥ १७० ॥ ठगनैवाला ।

संसारकी निवृत्ति चाहूंहूं । आप कृपाकरिके उपाय बतावो ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

॥ गतप्रश्नका उत्तर ॥ १५४-१५५ ॥

॥ १५४ ॥ आत्माके अज्ञानतैं जगत्की प्रतीति होवैहै, ताकी निवृत्तिके उपाय ज्ञानका स्वरूप ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ सोरठा ॥

सो मैं कह्यो वखानि,
जो साधन तैं पूछियो ॥
निज हिय निश्चय आनि,
रहै न रंचक खेद जग ॥ ६० ॥

टीकाः—हे शिष्य! जो तैं जगत्‌रूपी दुःखकी निवृत्तिका साधन पूछ्या सो हम तेरेकूं ग्रंथमही कहीदिया; तिसविषै तूं दृढ निश्चय कर; तातैं जगत्‌रूपी खेद रहै नहीं ॥ ६० ॥

॥ दोहा ॥

निज आतम अज्ञानतैं,
व्है प्रतीत जगखेद ॥
नसै सु ताके बोधतैं,
यह भाखत मुनि वेद ॥ ६१ ॥
जग मोमैं नहिं 'ब्रह्म मैं',
'अहं ब्रह्म' यह ज्ञान ॥
सो तोकूं सिप मैं कह्यो,
नहिं उपाय को आन ॥ ६२ ॥

टीकाः—हे शिष्य! अपनै आत्मस्वरूपके अज्ञानतैं जगत्‌रूपी खेद प्रतीत होवैहै सो आत्मज्ञानतैं मिटैहै । जो वस्तु जाके अज्ञानतैं प्रतीत होवै सो ताके ज्ञानतैं मिटैहै । यह नियम है । जैसैं रज्जुके अज्ञानतैं सर्प प्रतीत होवैहै सो रज्जुके बोधतैं मिटैहै, तैसैं आत्मज्ञानतैं जगत् मिटैहै । सो आत्मज्ञान हम कहिदिया ।

जगत् तौ मेरेविषै तीनकालमैं है नहीं । काहेतैं? मिथ्या है । जो मिथ्या वस्तु होवैहै सो अधिष्ठानकी हानि नहीं करैहै । जैसैं मरीचिकाका जो जल है सो पृथ्वीकूं गीली नहीं करैहै, तैसैं जगत् प्रतीत बी होवैहै परंतु मिथ्या है । कछु मेरी हानि करनैविषै समर्थ है नहीं ॥ औ—

"मैं सत्‌चित्‌आनंदरूप ब्रह्मस्वरूप हूं" ऐसा जो निश्चय ताका नाम ज्ञान है । सोई मोक्षका साधन है । और कोई नहीं । सो ज्ञान हम प्रथम उपदेश करीदिया ॥ ६१॥६२॥

॥१५५॥ अज्ञानका नाश केवल ज्ञानसैं है, कर्मउपासनासैं नहीं ।

॥ दोहा ॥

कर्म उपासनतैं नहिं,
जगनिदान तम नास ॥
अंधकार जिम गेहमैं,
नसै न विन परकास ॥ ६३ ॥

टीकाः—हे शिष्य! जगत्‌का निदान कहिये उपादानकारण, तम कहिये अज्ञान है । ता अज्ञानके नाशतैं जगत्‌का आपही नाश होय जावैहै । काहेतैं? उपादानके नाश हुये पीछे कारज रहै नहीं है ।

ता अज्ञानका नाश केवल ज्ञानकरिके है । कर्म औ उपासनाकरिके नाश होवै नहीं । दो दोहा करिके कहतेहैं ॥

॥ १७१ ॥ पूर्व इसीही तरंगगत ११५ औ १२३ के अंकविषै कहिदिया । फेर सोई उपाय

काहेतैं ? अज्ञानका विरोधी ज्ञान है। कर्मउपासना विरोधी नहीं ॥

दृष्टांतः–जैसैं गृहके विषै जो अंधकार है सो काहू क्रियासूं दूरि होवै नहीं । केवल प्रकाशसैं दूरि होवैहै । तैसैं अज्ञानरूपी जो अंधकार है सो ज्ञानरूपी प्रकाशसैं दूरि होवैहै । औरकाहू साधनसैं नहीं ॥ ६३ ॥

॥ दोहा ॥

भाख्यो सिष उपदेसमैं,
जगभंजक हिय धारि ॥
जो यामैं संसय रह्यो,
सो तूं पूछ विचारि ॥ ६४ ॥

॥ प्रश्न ॥ १५६-१५८ ॥

॥ १५६ ॥ उक्तअर्थके अनुवादपूर्वक वक्ष्यमाण शंकाका सूचन ॥

॥ शिष्य उवाच ॥
॥ चौपाई ॥

भो भगवन जो कछु तुम भाख्यो ।
सो सब सत्य जानि हिय राख्यो ॥
जगनिदान अज्ञान बखान्यो ।
ताको भंजक ज्ञान पिछान्यो ॥ ६५ ॥
ज्ञानरूप बर्नन पुनि कीना ।
जगमिथ्या सो मैं भल चीना ॥
सुखस्वरूप आतम परकास्यो ।
दया तिहारी सो मुहिं भास्यो ॥६६॥
पुनि भाख्यो 'तूं ब्रह्म स्वरूपं' ।
यह मैं लख्यो न भेद अनूपं ॥
यामैं मुहिं संका इक आवै ।
जीव ब्रह्मको भेद जनावै ॥ ६७ ॥

टीकाः—हे भगवन् ! आपनै जो कह्या सो मैं आपके वचन सत्य जानूहूं । आपनै कह्या जो "जगत्का कारण अज्ञान है, ता अज्ञानके नाशकरिके जगत्की निवृत्ति ज्ञानकरिके होवैहै" सो वार्ता मैं जानी ।

सो ज्ञानका स्वरूप आपनै कह्याः– "जगत् मिथ्या है औ जीव आनंदस्वरूप है, सो ब्रह्मसैं भिन्न नहीं किंतु ब्रह्मरूप है । ऐसै निश्चयका नाम ज्ञान है । ताकेविषै जगत् मिथ्या है औ जीव आनंदस्वरूप है" यह वार्ता मैं जानी ।

परंतु "जीव ब्रह्म दोनूं एक हैं" यह वार्ता नहीं जानी । काहेतैं ? जीवब्रह्मके भेदकूं जनावनैवाली शंका मेरे हृदयमैं फुरैहै ॥६५॥६६॥६७॥

॥ १५७ ॥ ब्रह्म औ मेरा स्वरूप परस्पर विरुद्ध है, यातैं तिनसैं मेरी एकता बनै नहीं ॥

॥ अथ शंकाकी चौपाई ॥

पुन्यपापका हूं मैं कर्त्ता ।
जन्ममरन औ सुखदुख धर्त्ता ॥
और अनेकभांति जग भासै ।
चहूं ज्ञान अज्ञान जु नासै ॥ ६८ ॥
जो यातैं विपरीतस्वरूपा ।
ताकूं ब्रह्म कहत मुनि भूपा ॥
कहो एकता कैसे जानूं ? ।
रूप विरुद्ध हिये पहिचानूं ॥ ६९ ॥

टीकाः—हे भगवन् !
१ मैं पुन्यपाप कर्त्ता हूं । औ—

२ तिनका जो फल जन्ममरण औ सुख-दुःख तिनकूं धारण करूंहूं । औ—
३ नानाप्रकारका जगत् मेरेविषै प्रतीत होवैहै ॥ औ—
४ जगत्का कारण जो अज्ञान है ताके दूरि-करनैकूं मैं ज्ञान चाहूंहूं ॥ औ—
१ ब्रह्मविषै न पुन्य है, न पाप है ।
२ न जन्म है, न मरण है, न सुख है न दुःख है । और—
३ कोई क्लेश ब्रह्मविषै नहीं । औ—
४ ज्ञानकी इच्छा नहीं है ॥

यातैं ब्रह्मका औ मेरा स्वरूप परस्पर विरुद्ध है; यातैं दोनूंवांकी एकता बनै नहीं ॥

यद्यपि मेरे विषै बी जन्मादिक संसार परमार्थकरिके है नहीं, तथापि मिथ्या जो जन्मादिक हैं सो मेरेकूं भ्रांतिसैं प्रतीत होवैहैं औ ब्रह्ममैं नहीं, यातैं इतना भेद है । एकता बनै नहीं ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

॥ १५८ ॥ पक्षीरूपतासैं विलक्षण जीव-ब्रह्मकी एकतासैं कर्मउपासनका प्रति-पादक वेद निष्फल होवैगा ।

अन्यसंशयकी चौपाई ॥

सुनहु गुरू दूजो पुनि संसै ।
जीवब्रह्म एकत्व भ्रनंसै ॥
एक वृच्छमें सम द्वै पच्छी ।
फल भोगै इक दूजो स्वच्छी ॥ ७० ॥
भोगरहित परकास असंगा ।
वेदवचन यह कहत प्रसंगा ॥
कर्मउपासन पुनि बहु भाखै ।
जीव ब्रह्म यातैं द्वय राखै ॥ ७१ ॥

॥ १७२ ॥ यह प्रमेयगत संशयका स्वरूप है ॥

टीकाः—हे गुरो ! मेरे एक और संशय है सो आप सुनौ । कैसा वह संशय है ?—जासूं जीवब्रह्मकी एकताका निश्चय भ्रनंसै कहिये दूरि होयजावै, सो संशय मैं आपकूं कहूंहूं । आप सुनिके तिस संशयकूं दूरि करौ । वेदविषै मैंनै ऐसैं देख्याहै:—एक बुद्धिरूपी वृक्षमैं दोपक्षी हैं । सो दोनूं समान हैं ॥ तिनविषै—

१ एक तौ कर्मके फलकूं भोगैहै ।
२ एक स्वच्छ कहिये शुद्ध है, भोगरहित है, असंग है औ ता भोगनैवालेकूं प्रकाशैहै ॥

याकेविषै—

१ भोगनैवाला जीव प्रतीत होवै है औ—
२ दूसरा परमात्मा प्रतीत होवैहै ।

यातैं उनकी एकता बनै नहीं ॥ औ—

वेदकेविषै कर्म औ उपासना बहुतप्रकारके कहेहैं, सो जीवब्रह्मकी एकताविषै निष्फल होय जावैंगे । काहेतैं ? जो आप जीवब्रह्मकी एकता कहोहौ । १ सो ब्रह्मविषै जीवके स्वरूपकूं अंतरभाव कहोहो ? २ अथवा जीवविषै ब्रह्मके स्वरूपकूं अंतरभाव कहोहो ?

१ जो कदाचित् ब्रह्मविषै जीवके स्वरूपकूं अंतरभाव कहोगे तौ जीवकूं ब्रह्मरूप होनैतैं अधिकारीका अभाव होवैगा; यातैं कर्म औ उपासना निष्फल होवैंगे ॥ औ—
२ जो जीवविषै ब्रह्मके स्वरूपका अंतरभाव कहोगे तौ—
१ ब्रह्मकूं जीवरूप होनैतैं जाकी उपासना करियेहै ता उपास्यका अभाव होवैगा; यातैं उपासना निष्फल होवैगी । औ—
२ कर्मका फल देनैवाला जो परमात्मा ताका अभाव होवैगा; यातैं कर्म निष्फल होवैंगे ॥ औ—

मीमांसक जो कहैहैं "कर्महीईश्वर है। तिनसैंही फल होवैहै" सो वार्त्ता समीचीन नहीं। काहेतैं? जो कर्म हैं सो जड हैं। तिनकूं फल देनैका सामर्थ्य बनै नहीं; यातैं कर्मका फल ईश्वरही देवैहै ॥

या रीतिसैं परमात्मा औ जीवकी एकता बनै नहीं ॥ ७० ॥ ७१ ॥

॥ अंक १५७ गतप्रश्नका उत्तर ॥
॥ १५९-१७२ ॥

॥ १५९॥ चारि आकाश औ चारि चेतन ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥
चौपाई।

सुनहु सिष्य इक कहूं विचारा।
व्है जातैं संका निस्तारा ॥
घटाकास इक जलआकासा।
मेघाकास महाआकासा ॥ ७२ ॥
चारिभेद ये नभके जानहु।
पुनि चेतनके तथा पिछानहु ॥
इक कूटस्थ जीव पुनि कहिये।
ईस ब्रह्म हिय जानैं रहिये ॥ ७३ ॥
जब इनको तूं रूप पिछानै।
निज संका तबही सब भानै ॥
यातैं सुन इनको अब भेदा।
नसै सुनत जन्मादिक खेदा ॥ ७४ ॥

टीकाः— जो तेरेकूं शंका हुईहैं तिनका निस्तार कहिये निराकरण जातैं होवै सो विचार मैं कहूंहूं। तूं सुनः—

जैसैं एक आकाशमैं चारिभेद हैं–
१ एक घटाकाश है। औ–
२ एक जलाकाश है। औ–
३ मेघाकाश है। औ–
४ महाकाश है।

तैसैं एकचेतनके चारिभेद हैं:–
१ कूटस्थ है। औ–
२ जीव है। औ–
३ ईश्वर है औ–
ब्रह्म है ॥

ये चारिभेद आकाशकी न्याईं चेतनविषै हैं

हे शिष्य! जब इनके स्वरूपकूं तूं भली प्रकारसैं पिछानैगा तब अपनी शंकाका तूं आपही समाधान जानि लेवैगा। यातैं मैं इनका स्वरूप वर्णन करूंहूं। तूं सुन। जाकूं सुनिके संशयरहितज्ञान होइके जन्मादिकदुःखका नाश होवैगा ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

॥ १६० ॥ १ अथ घटाकाशवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

जलपूरित घटकूं जु दे,
जितनो नभ अवकास ॥
युक्तिनिपुन पंडित कहे,
ताकूं घट आकास ॥ ७५ ॥

टीकाः–हे शिष्य! जलसैं भरे घटकूं जितना आकाश अवकाश देवैहै। तितनैं आकाशकूं पंडितजन घटाकाश कहैहै ॥ ७५ ॥

॥ १७३ ॥ यह प्रमाणगत संशयका स्वरूप है॥

॥ १७४ ॥ इहां यह शंका है:–घटसैं बाहिर जो आकाश है सो महाकाश है, तिसतैं भिन्न घटके भीतरका जो आकाश है सो घटाकाश है। यह घटाकाशका लक्षण सुगम है; ताकूं छोडिके "जलपूरितघटकूं महाकाश जितना अवकाश देवै तितना अवकाश कहिये आकाश घटाकाश है"। इसरीतिसैं लक्षण करनैका क्या प्रयोजन है? याका–

॥ १६१ ॥ २ अथ जलाकाशवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

जलपूरित घटमैं जु पुनि,
है नभको आभास ॥
घटाकासयुत विज्ञजन,
भाखत जलआकास ॥ ७६ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! जलसैं भऱ्या जो घट है ताकेविषै नक्षत्रादिसहित आकाशका प्रतिबिंब होवैहै । सो आकाशका प्रतिबिंब औ घटाकाश, दोनूं मिलेहुये जलाकाश कहियेहै ॥ ७६ ॥ याकेविषै—

कोई शंका करैहैः—

आकाशका प्रतिबिंब नहीं होवैहै किंतु केवल नक्षत्रादिकनकाही प्रतिबिंब होवैहै । काहेतें ? आकाश रूपकरिके रहित है औ रूपवाले पदार्थका प्रतिबिंब होवैहै, यातें आकाशका प्रतिबिंब बनै नहीं । ऐसी शंका करैहै ताके—

समाधानका दोहा ॥

जो जलमैं आकासको,
नहिं प्रतिबिंब लखाइ ॥
थोरैमैं गंभीरता,
व्है प्रतीत किहि भाइ ॥ ७७ ॥

यातैं जलमैं व्योमको,
लखि आभास सुजान ॥
रूपरहित जिम सब्दतैं,
व्है प्रतिध्वनिको भान ॥ ७८ ॥

टीकाः—जो जलकेविषै आकाशका प्रतिबिंब नहीं होवै तौ गोडेपरिमाण जलविषै मनुष्यपरिमाण गंभीरताकी जो प्रतीति होवैहै सो नहीं हुईचाहिये, यातें आकाशका प्रतिबिंब अंगीकार करना योग्य है । और—

जो कहैहै—“ रूपरहितपदार्थका प्रतिबिंब नहीं होवैहै ” सो बी नियम नहीं है । काहेतें ? रूपरहित जो शब्द है, ताकी प्रतिध्वनि होवैहै सो शब्दका प्रतिबिंब है; यातें रूपरहित जो आकाश है ताका बी प्रतिबिंब बनैहै ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

॥ १६२ ॥ ३ अथ मेघाकाशवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

जो मेघहि अवकास दे,
पुनि तामैं आभास ॥
तिन दोनूंकूं कहत हैं,
बुधजन मेघाकास ॥ ७९ ॥

टीकाः—मेघ जो बादल, तिनकूं जो आकाश अवकाश देवैहै औ मेघके जलमैं जो

यह समाधान हैः— घटाकाशका पूर्वउक्त लक्षण करैं तौ घटकी जामैं स्थिति है, सो आकाश पांचवां कपालाकाश (ठींकराकाश) कहना होवैगा । सो शास्त्रसैं विरुद्ध है, यातैं यह द्वितीयलक्षण करना उचित है ॥

॥ १७५ ॥ जलविना प्रतिबिंब होवै नहीं, यातैं यहां आकाशका प्रतिबिंब कहनैकरि घटमैं स्थित जो जल, तासहित आकाशके प्रतिबिंबका ग्रहण है ।

॥ १७६ ॥ गुणके आश्रित गुण रहता नहीं किंतु आकाशादिक द्रव्यके आश्रित गुण रहता है । इस नियमतैं नीलपीतादिरंगमय जो रूप है, सो रूपगुणका अनाश्रित होनैतैं रूपरहित है । ता रूपरहित नीलपीतादिरंगका दर्पणआदिक स्वच्छ उपाधिविषै प्रतिबिंब होवैहै । ताकी न्यांई रूपरहित आकाशका औ रूपरहित चेतनका प्रतिबिंब बनैहै ॥

आकाशका प्रतिबिंब है, तिन दोनूंकूं मेघाकाश कहैहैं ॥ ७९ ॥ याकेविषै—,

कोई शंका करैहै:—

जो मेघ तौ आकाशविषै हैं, तिनमैं जल औ आकाशका प्रतिबिंब दीखै बिना कैसैं जानै जावैहै ? ताके—

समाधानका दोहा ॥

बर्षत मेघ अनंतजल,
उदकसहित इति हेत ॥
दक नहिं नभ आभास बिन,
इम प्रतिबिंब समेत ॥ ८० ॥

टीकाः—यद्यपि मेघविषै जल औ आकाशका प्रतिबिंब प्रत्यक्ष नहीं है, तथापि अनुमानकरिके जानैजावैहैं:—

१ मेघ जो जलकी वृष्टि करैहै, यातैं ऐसा अनुमान होवैहै जो मेघांविषै जल है। जो मेघांविषै जल न होवै तौ जलकी वृष्टि मेघांसैं नहीं होवै। औ—

२ मेघांविषै जल है सो आकाशके प्रतिबिंबसहित है। काहेतैं ? जो जल होवैहै सो आकाशके प्रतिबिंबविना नहीं होवैहै, यातैं मेघांविषै जो जल है सो बी आकाशके प्रतिबिंबवाला है ॥

इसरीतिसैं मेघविषै जल औ आकाशके प्रतिबिंबका अनुमान होवैहै। उदक औ दक ये दोनूं जलके नाम हैं ॥ ८० ॥

॥ १६३ ॥ ४ अथ महाकाशवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

बाहिर भीतर एकरस,
व्यापक जो नभरूप ॥
महाकास ताकूं कहैं,
कोविद बुद्धि अनूप ॥ ८१ ॥

टीकाः—बाहिर औ भीतर सारे एकरस व्यापक जो नभ कहिये आकाशका स्वरूप है ताकूं अनूप कहिये अद्भुतबुद्धिवाले पंडित महाकाश कहैहैं ॥ ८१ ॥

॥ १६४ ॥ चारिचेतनके वर्णनका उपोद्घात ॥

॥ दोहा ॥

चतुर्भांति नभके कहे,
लच्छन श्रुतिअनुसार ॥
अब चेतनके सिष्य सुन,
जासूं लहै विचार ॥ ८२ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! चारिप्रकारके आकाशके लक्षण कहे। अब चारिभांतिके चेतनके लक्षण सुन। जाके सुनैतैं विचार कहिये विचारका फल ज्ञान प्राप्त होवै ॥ ८२ ॥

॥ १६५ ॥ १ अथ कूटस्थवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

मति वा व्यष्टिअज्ञानको,
अधिष्ठान चैतन्य ॥
घटाकास सम मानिये,
सो कूटस्थ अजन्य ॥ ८३ ॥

टीकाः—बुद्धि अथवा व्यष्टि अज्ञानका जो अधिष्ठान चेतन है सो कूटस्थ कहियेहै।

१ जा पक्षमैं बुद्धिसहितचेतन जीव है, ता पक्षमैं बुद्धिका अधिष्ठान कूटस्थ कहियेहै ॥ औ—

॥ १७७ ॥ ब्रह्मांडके बाहिर औ भीतर ॥

२ जा पक्षमैं व्यष्टिअज्ञानसहित चेतन जीव कहियेहै, ता पक्षमैं व्यष्टिअज्ञानका जो अधिष्ठान है सो कूटस्थ कहियेहै ।

या स्थानविषै यह सिद्धांत हैः- जीवपनैका जो विशेषण है ताके अधिष्ठानका नाम कूटस्थ कहियेहै । सो कूटस्थ अजन्य है । उत्पत्तिसैं रहित है । याका अभिप्राय यह हैः-ब्रह्मसैं न्यारा जैसैं चिदाभास उत्पन्न होवैहै तैसैं यह उत्पन्न नहीं हुवा किंतु ब्रह्मरूपही है । जैसैं घटाकाश महाकाशसैं न्यारा नहीं होयगया किंतु महाकाशरूप है ॥

यह जो कूटस्थ है सोई आत्मपदका लक्ष्यअर्थ है औ याहीकूं प्रत्यक् कहैहैं औ याहीकूं निजरूप कहैहैं औ यही जीवसाक्षी है ॥ ८३ ॥

॥ १६६ ॥ २ अथ जीववर्णन ॥

॥ १६६—१७० ॥

॥ दोहा ॥

काम कर्मयुत बुद्धिमैं,
जो चेतनप्रतिबिंब ॥
जीव कहै विद्वान तिहिं,
जलनभ तुल्य सबिंब ॥ ८४ ॥

टीकाः—नानाकाम औ कर्मसहित जो बुद्धि है, तामैं जो चेतनका प्रतिबिंब है, ताकूं विद्वान् कहिये ज्ञानी जीव कहैहैं । सो केवल प्रतिबिंबमात्रकूं जीव नहीं कहैहैं किंतु जैसैं घटाकाशसहित आकाशके प्रतिबिंबकूं जलाकाश कहैहैं, तैसैं सबिंब कहिये बिंब जो कूटस्थ तासहित चिदाभासकूं जीव कहैहैं । यातैं यह सिद्धांत हुवाः- बुद्धिमैं जो चिदाभास औ बुद्धिका अधिष्ठानचेतन दोनूंवांका नाम जीव है ॥ ८४ ॥

॥ १६७ ॥ ॥ दोहा ॥

अधिष्ठान कूटस्थसैं,
व्है आभास बहाल ॥
रक्त पुष्प ऊपर धर्यो,
स्फटिक होइ जिम लाल ॥ ८५ ॥

टीकाः—पूर्वदोहेविषै बिंब जो कूटस्थ ता सहित आभासकूं जीव कह्या । यातैं—कूटस्थ दोनूंवांका नाम जीव है । यह रीति सुगम है ॥

॥ १७८ ॥ इहां "चिदाभास" शब्दकरिके बुद्धिसहित चिदाभासका ग्रहण है । यह वार्त्ता आगे इसीही तरंगके. ११६ वें दोहाकी टीकाके आरंभमैं ग्रंथकारनै लिखीहै औ पंचदशीमैं श्रीविद्यारण्यस्वामीनै बी "बुद्धि औ तिसमैं स्थित चिदाभास औ तिन दोनूंका अधिष्ठान कूटस्थचैतन्य, इन तीनका समूह जीव कहियेहैं" ऐसैं लिखाहै; यातैं बुद्धि वा अविद्या औ तामैं स्थित जो चिदाभास औ तिनका अधिष्ठान कूटस्थ ये तीन मिलिके जीव कहियेहै ॥

॥ १७९ ॥ कामना औ कर्मरूप जलसहित बुद्धिरूप घटमैं चेतनका प्रतिबिंब है. यह रीति दुर्गम है । यातैं स्थूलदेहरूप घटमैं नखशिखपर्यंत भर्या बुद्धिरूप जल है । तामैं चेतनका प्रतिबिंब औ

१ इहां केवल बुद्धिसहित चिदाभासकूं त्वंपदका अर्थ जीव कहैं तौ तामैं भागत्यागलक्षणा संभवै नहीं किंतु सारे वाच्यभागका त्यागरूप जहत्लक्षणा संभव । तैसैं मानना आचार्यनकी युक्तिसैं विरुद्ध है ॥ औ—

२ अधिष्ठानसैं अभिन्न होयके अधिष्ठानकूं ढापै सो आरोप्य कहियेहै । अधिष्ठानतैं भिन्न होयके कहूं बी आरोप्यकी प्रतीति होवै नहीं । या अनुभवसैं विरुद्ध है ॥

यातैं चिदाभाससहित बुद्धिविशिष्ट कूटस्थचेतन जीव है, ऐसैं मानना योग्य है ॥

१ यह प्रतीति होवैहैः—जो बुद्धिमैं प्रतिबिंब है सो कूटस्थका है औ बाहिरके ब्रह्मचेतनका नहीं । काहेतैं ? जाका प्रतिबिंब होवै सो बिंब कहियेहै । सो कूटस्थकूं बिंब कह्या यातैं ताका प्रतिबिंब है यह प्रतीति होवैहै । सो या दोहेसैं प्रतिपादन करैहैं ।

जैसैं बडे लालपुष्पके ऊपरि जो धर्‌या सुफेद स्फटिक है ताकेविषै फूलकी लालीकी दमक होवैहै, सो लालफूलका प्रतिबिंब है । तैसैं कूटस्थके आश्रित जो बुद्धि ताकेविषै कूटस्थके प्रकाशकी दमक होवैहै । जैसैं स्फटिक अत्यंत उज्ज्वल है तैसैं बुद्धि बी अत्यंतशुद्ध है । काहेतैं ? बुद्धि सत्त्वगुणका कार्य है । यातैं कूटस्थकी दमकका नाम प्रतिबिंब है ॥

२ अथवा ब्रह्मचेतनका प्रतिबिंब है । जैसैं महाकाशका घटके जलमैं प्रतिबिंब होवैहै औ भीतरके आकाशका नहीं । काहेतैं ? जितनी गंभीरता जलविषै प्रतीत होवैहै उतनी गंभीरता भीतरके आकाशमैं है नहीं । सो गंभीरता आकाशका प्रतिबिंब है, यातैं बाहिरके आकाशका प्रतिबिंब है ।

१ यह जो कहैहैंः— "व्यापकचेतनका प्रतिबिंब बनै नहीं" सो आकाशके दृष्टांतसैं शंका दूरि होवैहै । काहेतैं ? जो आकाश बी व्यापक है औ ताका प्रतिबिंब होवैहै । तैसैं व्यापकचेतनका बी प्रतिबिंब बनैहै ॥ और—

२ जो कहैहैंः—"रूपवाले पदार्थका रूपवाले पदार्थमैं प्रतिबिंब होवैहै" सो बी नियम नहीं है । काहेतैं ? "रूपरहितशब्दका रूपरहित आकाशमैं प्रतिबिंब होवैहै" यह पूर्व कहि आए । यातैं चेतनका प्रतिबिंब बनैहै ॥

इसरीतिसैं बुद्धिमैं आभास औ बुद्धिका अधिष्ठान चेतन दोनूंवांका नाम जीव है । यह कह्या ।

१ सो जीव त्वंपदका वाच्य कहियेहै ॥ औ—
२ ताकेविषै चिदाभासका त्यागकरिके केवल जो कूटस्थ है सो त्वंपदका लक्ष्य कहियेहै ॥ औ—

अहंशब्दका वाच्य बी जीव है ।

२ केवलकूटस्थ अहंशब्दका लक्ष्य है ॥

॥ १६८ ॥ ॥ दोहा ॥

बुद्धिमाहि आभास जो,
पुन्यपाप फलभोग ॥
गमन आगमन सो करै,
नहीं चेतनमैं जो ॥ ८६ ॥
मिथ्या नभ घट संग ज्युं,
लहै क्रिया बहु भांति ॥
घटाकास अक्रिय सदा,
रहै एकरस सांति ॥ ८७ ॥

टीकाः—यद्यपि चिदाभास औ कूटस्थ दोनूंवांका नाम जीव है तथापि जीवपनेके जो धर्म हैं सो सारे आभासविषै हैं । पुण्य औ पाप पुण्यपापके फल सुखदुःख औ लोकांतरविषै गमन औ यालोकविषै आगमन इसतैं आदिलेके सारे आभाससहित बुद्धि करैहै औ कूटस्थ नहीं करैहै ॥ कूटस्थविषै केवलभ्रांतिसैं प्रतीति होवैहै ॥

सो भ्रांतिसैं प्रतिती बी बुद्धिसहित आभासकूं होवैहै । कूटस्थकूं नहीं । कहैतैं ?

१ कूट जो लुहारका अहरन ताकी न्यांई निर्विकाररूपसैं स्थित होवैं सो कूटस्थ कहियेहै ॥

२ अथवा कूट कहिये मिथ्या जो बुद्धि औ चिदाभास ताकेविषै असंगरूपसैं स्थित होवै सो कूटस्थ कहियेहै ।

यातैं कूटस्थविषै भ्रांतिआदिक बनैं नहीं किंतु चिदाभासमैं बनैंहैं । औ—

१६९ ॥ अत्यंतविचारसैं देखिये तौ पुण्य-पाप, सुखदुःख, लोकांतरमैं गमन औ आगमन, केवल बुद्धिमैं हैं । आभासमैं बी नहीं । बुद्धिके संयोगसैं आभासमैं हैं ।

जैसैं जलसहित जो घट है सो टेढा होवैहै औ सीधा होवैहै औ जावै आवैहै औ ताके संबंधसैं व्योमका आभास संपूर्णक्रिया करैहै औ स्वतंत्र कछु बी नहीं करैहै, तैसैं काम-कर्मरूपी जलसैं भऱ्या जो बुद्धिरूपी घट है सो पुण्यसैं आदिलेके संपूर्णविकार धारैहै औ ताके संबंधसैं चिदाभास धारैहै औ कूटस्थ सर्व-विकारसैं रहित है ॥

जैसैं जलपूरितघटके विकारसैं रहित घटा-काश है, ताकी न्यांई कूटस्थकूं जान । यातैं जीवपनैके धर्म चिदाभासमैं हैं तथापि कूटस्थमैं अज्ञानसैं प्रतीत होवैहैं । यातैं बुद्धिकेविषै कूटस्थ-सहित जो चिदाभास सो जीव कहियेहै ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

॥ १७० ॥ यह जो जीवका स्वरूप वर्णन किया याकेविषै प्राज्ञकी हानि होवैहै । काहेतैं ? जो सुषुप्तिके अभिमानी जीवका नाम प्राज्ञ है ता सुषुप्तिविषै बुद्धिका अभाव होवैहै यातैं बुद्धिमैं आभास बी बनैं नहीं, यातैं प्राज्ञके स्वरूपका प्रतिपादक जो शास्त्र है ताका विरोध होवैगा । इसकारणतैं जीवका स्वरूप और प्रतिपादन करैहैः—

॥ दोहा ॥

अथवा व्यष्टि अज्ञानमैं,
जो चेतन आभास ॥
अधिष्ठान कूटस्थयुत,
कहै जीवपद तास ॥ ८८ ॥

टीकाः—

१ अज्ञानके अंशका नाम व्यष्टिअज्ञान कहियेहै । औ—

२ संपूर्णअज्ञानका नाम समष्टिअज्ञान है।

ता अज्ञानके अंशविषै जो चेतनका आभास औ अज्ञानके अंशका अधिष्ठान जो कूटस्थ है तिन दोनूंवांकूं जीवपद कहैहैं । यातैं प्राज्ञका अभाव नहीं होवैहै । काहेतैं ? सुषुप्तिविषै अज्ञान रहैहै । जो सुषुप्तिविषै चेतनके प्रतिबिंब-सहित अज्ञानका अंश है, सोई बुद्धिरूपकूं प्राप्त होवैहै । औ चेतनका प्रतिबिंब साथही होवैहै ॥

ता चिदाभाससहित बुद्धिमैं पुण्यादिक संसार प्रतीत होवैहै । इस अभिप्रायसैं बुद्धिही कहूं शास्त्रनविषै जीवपनैकी उपाधि वर्णन करीहै औ विचारदृष्टिसैं जीवपनैकी उपाधि अज्ञान है ॥ ८८ ॥

॥ १८० ॥ जैसैं लोहकी कडाईमैं तपाया जो तैल तामैं आकाशका प्रतिबिंब होवैहै वह अग्निका ताप तैलकूंही है । तद्गत आकाशके प्रति-बिंबकूं नहीं । तब तैलपूरित कडाईके अधिष्ठानरूप आकाशकूं कहांसैं होवैगा ? तैसैं पुण्यपापादिरूप जो संसार है सो केवल बुद्धिमैं है । आभासमैं बी भ्रांति विना नहीं । तब तिनके अधिष्ठान कूटस्थमैं कहांसैं होवैगा ? परंतु तिसकी कूटस्थमैं प्रतीतिही अज्ञानकृत भ्रांति है ॥

॥ १८१ ॥ इहां बुद्धि किंवा बुद्धिका संस्कार-रूप घट है तामैं व्यष्टिअज्ञानरूप जल भऱ्याहै । तामैं चेतनका प्रतिबिंब है ॥

अथवा व्यष्टिअज्ञानरूप घट है । तामैं मलिनसत्व-गुणरूप जल भऱ्याहै। तिसमैं चेतनका प्रतिबिंब है, सो अधिष्ठान कूटस्थसहित जीव कहियेहै ॥

॥ १७१ ॥ ॥ ३ अथ ईशवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

चित्छाया मायाविषै,
अधिष्ठान संयुक्त ॥
मेघव्योम सम ईस सो,
अंतरयामी मुक्त ॥ ८९ ॥

टीकाः—मायाकेविषै जो चेतनकी छाया कहिये आभास औ मायाका अधिष्ठानचेतन, दोनूंवांकूं ईश्वर कहैहैं, सो ईश्वर मेघाकाशके सम है ॥

१ सो ईश्वर अंतर्यामी है। काहेतें? सर्वके अंतरप्रेरणा करैहै, यातें अंतर्यामी है। औ

२ सदा मुक्त है। काहेतें? वाकूं अपने स्वरूपमैं आवरण नहीं, यातें जन्ममरणादिक बंधकी प्रतीति नहीं। इस हेतुतें ईश्वर नित्यमुक्त है ॥ औ—

३ सर्वज्ञ है। सर्वपदार्थनके जाननैवाला है। याकेविषै यह हेतु हैः— मायाविषै शुद्ध-सत्वगुण है ॥

तमोगुण औ रजोगुणसैं दब्याहुआ सत्व-गुण नहीं होवै, किंतु रजोगुण औ तमोगुणकूं आप दबावनैवाला होवै, सो शुद्धसत्वगुण कहियेहै।

सत्वगुणसैं ज्ञानकी उत्पत्ति होवैहै, यातैं प्रकाशस्वभाववाला सत्वगुण है। ऐसी सत्व-गुणवाली मायाकेविषै जो चेतनका आभास ताकूं स्वरूपविषै अथवा औरपदार्थविषै आवरण संभवै नहीं, यातैं मुक्त है औ सर्वज्ञ है।

अधिष्ठान जो चेतन है सो तौ जीव औ ईश्वर दोनूंविषै बंधमोक्षभेदसैं रहित है। आकाशकी न्यांई एकरस है परंतु आभास अंश-विषै बंधमोक्ष है। अधिष्ठानविषै आभासकूं भ्रांतिसैं प्रतीत होवैहै। यातैं केवलआभासमैं बंधमोक्ष है। तिसविषै बी इतना भेद हैः—

१ जा आभासमैं आवरण है ताकेविषै बंध है।

२ जाविषै स्वरूपका आवरण नहीं है सो मुक्त है।

१ ईश्वरमैं आवरण नहीं यातैं ईश्वर सदा-मुक्त है औ—

२ जीवविषै आवरण है सो बद्ध है। बद्ध कहिये बंध्या हुवा। काहेतैं? जा अविद्याके अंशमैं चेतनके आभासकूं जीव कह्या ता अविद्याका आवरण करनैका स्वभाव है ॥

यद्यपि १ अविद्या औ २ अज्ञान औ ३ माया एकही वस्तुकूं कहैहैं। तथापि—

१ शुद्ध सत्वगुणकी प्रधानतासैं माया कहियेहै ॥ औ—

२-३ मलिन सत्वगुणकी प्रधानतासैं अज्ञान औ अविद्या कहैहैं।

रजोगुण औ तमोगुणसैं दब्या जो सत्व गुण है सो मलिनसत्वगुण कहियेहै।

यातैं तमोगुण औ रजोगुणकी अधिकता होनैतैं अविद्यामैं जो जीवका आभासअंश ताकूं अविद्या, स्वरूपका आवरण करेहै। यातैं जीवमैं बंधन है औ ईश्वरमैं नहीं।

॥ १८२ ॥ इहां आभास शब्दकरिके मायासहित आभासका ग्रहण है।

॥ १८३ ॥ जैसैं कोई ब्राह्मणजातिवाला राजा होवै सो क्षत्रिय औ शूद्रजातिवाले दो मंत्रिनसैं आप दबाता नहीं। किंतु तिन दोनूंकूं आप दबावताहै तैसैं रजोगुणतमोगुणसैं दबता नहीं। किंतु तिन दोनुंकूं आप दबावनैवाला होवै ऐसा जो सत्वगुण सो शुद्धसत्वगुण है ॥

॥ १८४ ॥ जैसैं शूद्रजातिवाले दोनूं राजपुत्रनसैं ब्राह्मणजातिवाला एकमंत्री दबताहै तैसैं रजोगुण तमोगुणसैं दब्या जो सत्वगुण है सो मलिनसत्व-गुण है ॥

१ अधिष्ठानचेतनसहित जो मायामैं आभासरूप ईश्वर है सो तत्पदका वाच्य कहियेहै ।

२ केवलअधिष्ठानचेतन तत्पदका लक्ष्य है.

"जो ईश्वर है सोई जगत्की उत्पत्ति औ पावन औ संहार करैहै" यह संपूर्णशास्त्रमैं कह्याहै । ताका यह अभिप्राय हैः— चेतनअंश तौ आकाशकी न्यांई असंग है औ आभासअंश जगत्की उत्पत्तिआदि करैहै औ ताहीविषै सर्वज्ञता है औ भक्तजनके ऊपरि अनुग्रह जो करैहै सो वी केवलआभासअंश करैहै । और जो कछु ऐश्वर्य है सो केवल आभासमैं है औ चेतनअंश एकरस है। वाकेविषै सत्तास्फूर्ति देनैविना औरऐश्वर्य बनै नहीं ॥ ८९ ॥

॥ १७२ ॥ ४ अथ ब्रह्मस्वरूपवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

अंतर बाहिर एकरस,
जो चेतन भरपूर ॥
विभुनभ सम सो ब्रह्म है,
नहिं नेरे नहिं दूर ॥ ९० ॥

टीकाः—ब्रह्मांडके अंतर कहिये भीतर औ बाहिर जो महाकाशकी न्यांई भरपूरचेतन है सो ब्रह्म कहिये है । सो ब्रह्म नेरे नहीं औ दूरि नहीं । काहेतैं? जो वस्तु अपनैसैं भिन्न होवै औ देशरूप उपाधिवाला होवै सो नेरे औ दूरि कहि जावैहै । ब्रह्म भिन्न नहीं किंतु सर्वका आत्मा है औ देशादिक सर्वउपाधितैं रहित है, यातैं नेरे औ दूरि नहीं कह्याजावै ॥

यद्यपि ब्रह्मशब्दका वाच्य वी सोपाधिक है । काहेतैं? व्यापकवस्तुका नाम ब्रह्म है । सो व्यापकता दोप्रकारकी हैः— १ एक तौ आपेक्षिक व्यापकता है औ २ एक निरपेक्षिक व्यापकता है ॥

१ जो वस्तु किसी पदार्थकी अपेक्षासैं व्यापक होवै औ किसीकी अपेक्षासैं न होवै । ताकेविषै आपेक्षिक व्यापकता कहियेहै । जैसैं पृथ्वीआदिकी अपेक्षासैं माया व्यापक है औ चेतनकी अपेक्षासैं नहीं है । यातैं मायाविषै आपेक्षिक व्यापकता है ॥ औ—

२ जो वस्तु सर्वकी अपेक्षासैं व्यापक होवै ताकेविषै जो व्यापकता सो निरपेक्षिक व्यापकता कहियेहै । सो निरपेक्षिक व्यापकता चेतनविषै है । काहेतैं ? चेतनके समान अथवा चेतनसैं अधिक औरकोई व्यापक है नहीं । किंतु चेतनही सर्वसैं व्यापक है, यातैं चेतनविषै निरपेक्षिक व्यापकता है ।

यह दोनूं प्रकारकी व्यापकतासहित जो वस्तु है सो ब्रह्मशब्दका वाच्य है। सो दोनूंप्रकारकी व्यापकता मायाविशिष्टचेतनविषै है । काहेतैं ?

१ विशिष्टविषै जो मायाअंश है ताकेविषै तौ आपेक्षिक व्यापकता है । औ—

२ चेतनअंशविषै निरपेक्षिक व्यापकता है ।

यद्यपि मायाविशिष्टचेतनविषै निरपेक्षिक व्यापकता बनै नहीं । काहेतैं ? मायाचेतनके एकदेशविषै है । ता मायाविशिष्टचेतनसैं शुद्धचेतनकी व्यापकता अधिक है । यातैं शुद्धचेतनविषै निरपेक्षिक व्यापकता है । तथापि माया विशिष्ट जो चेतन है सो परमार्थदृष्टिकरिके शुद्धसैं भिन्न नहीं किंतु शुद्धरूपही है । यातैं मायाविशिष्टमैं वी जो चेतन अंश है ताकेविषै निरपेक्षिकही व्यापकता है । इसरीतिसैं—

१ मायाविशिष्टही ब्रह्मशब्दका वाच्य बनैहै । औ—

२ शुद्धचेतन ब्रह्मशब्दका लक्ष्य है।
यातैं ईश्वरशब्द औ ब्रह्मशब्द दोनूंवांका समानही अर्थ प्रतीत होवैहै। भिन्न अर्थ नहीं॥ तथापि–

१ ब्रह्मशब्दका तौ यह स्वभाव है:—
जो बहुतस्थानविषै लक्ष्यअर्थकूं बोधन करैहै औ काहूस्थानविषै वाच्यअर्थकूं कहैहै। औ—

२ ईश्वरशब्दका यह स्वभाव है:–जो बहुतस्थानमैं वाच्यअर्थका बोधन करैहै। इतना भेद है, यातैं लक्ष्यअर्थकूं लेके ब्रह्मशब्दका अर्थ भिन्न निरूपण कियाहै॥९०॥

॥ अंक १५८ गत प्रश्नका उत्तर ॥ ॥ १७३–१७५ ॥

॥ १७३ ॥ कूटस्थ प्रकाशमान है औ आभास भोगैहै ॥

॥ दोहा ॥

चतुर्भांति चेतन कह्यो,
तामैं मिथ्या जीव ॥
पुन्यपाप फल भोगवै,
चितकूटस्थ सु सीव ॥ ९१ ॥

टीका:—हे शिष्य! चारिप्रकारका चेतन कह्या, तामैं—

१ जीवके स्वरूपमैं जो मिथ्याआभासअंश है सो पुण्यपाप करैहै औ तिनके फलकूं भोगै है। औ–

२ कूटस्थ जो चेतन है सो सीव कहिये शिवरूप है॥

शिव नाम कल्याणका है।

यातैं प्रथम जो शंका करीथी "जो बुद्धिरूपी वृक्षमैं दोपक्षी हैं। एक परमात्मा औ जीव" ताका यह उत्तर कह्या:– परमात्मा औ जीवका ग्रहण नहीं करना किंतु कूटस्थ तौ प्रकाशमान है औ आभास भोगैहै॥९१॥

॥ १७४ ॥ आभास कर्म करैहै औ फल देवैहै। चेतन नहीं ॥

॥ दोहा ॥

कर्मी छाया देत फल,
नहीं चेतनमैं जोग ॥
सो असंग इकरूप है,
जानै भिन्न कुलोग ॥ ९२ ॥

टीका:—जीवके स्वरूपमैं जो चेतनकी छाया कहिये आभास अंश है। सो कर्मी कहिये कर्म करैहै। ता कर्म करनैवालेकूं छाया जो ईश्वरका आभास अंश है सो फल देवैहै॥

छायाशब्दका देहलीदीपकन्यायकरिके पूर्वउत्तर दोनूं ओरकूं संबंध है। जैसैं देहलीके ऊपर धन्या जो दीपक है सो दोनूं-ओरकूं प्रकाशैहै। "छाया कर्मी" औ "छाया देत फल"॥

यातैं यह वार्त्ता सिद्ध हुई:–

१ जीवके स्वरूपमैं जो आभासअंश है सो तौ पुण्यपाप करैहै औ तिनका फल भोगैहै। औ–

२ ईश्वरमैं जो आभासअंश है सो कर्मका फल देवैहै॥ औ–

१ दोनूंवांविषै जो चेतनअंश है तिसविषै किसी बातका जोग नहीं।

२ जीवमैं जो चेतनअंश है ताविषै तौ कर्म औ फलका जोग नहीं।

३ ईश्वरमैं जो चेतनअंश है तामैं फल-देनैका जोग नहीं है॥

ता चेतनमैं जो कहैहै सो मूर्ख है।

काहेतैं? चेतन दोनूंवांविषै असंग है औ एकरूप है। चेतनमैं भेद नहीं। जीवचेतनकूं जो ईश्वर-चेतनसैं अथवा ईश्वरचेतनकूं जो जीवचेतनसैं भिन्न कहीये न्यारा जानै, सो कुलोग कहिये निंदन करनैयोग्य लोक हैं।

या कहनैतैं दूसरा जो प्रश्न कियाथा जो "जीव औ परमात्माकी एकता अंगीकार करनैतैं कर्म जौ उपासनका प्रतिपादक वेद निष्फल होवैगा" ताका उत्तर कह्याः— जो जीव औ ईश्वरमैं चेतनभाग है, तिनका तौ अभेद है औ आभासका भेद है, यातैं दोनूं प्रकारके वचन बनैहैं ॥ ९२ ॥

॥ १७५ ॥ जीवब्रह्मके लक्ष्य अर्थका अभेद है ॥

॥ चौपाई ॥

अहो सिष्य तैं प्रश्न जु कीनै।
तिनके ये उत्तर मैं दीनै ॥
कहे जु तैं तरुमैं द्वै पच्छी।
इक भोगै इक आहि अनिच्छी ॥ ९३ ॥
ते चेतन आभास लखाये।
नभ छाया ज्युं भिन्न बताये।
कह्यो भिन्न कर्मी फलदाता।
मति माया छाया सो ताता ॥ ९४ ॥
जीव ईसमैं चेतनरूपं।
भेदगंधतैं रहित अनूपं।
यातैं "अहं ब्रह्म" यह जानो।
"अहं" सब्द कूटस्थ पिछानो ॥ ९५ ॥
"ब्रह्म" सब्दको अर्थ सु भाख्यो।
महाकास सम लच्छय जु राख्यो ॥
"अहं ब्रह्म" नहिं जौलौं जानै।
तौलौं दीन दुखित भय मानै ॥ ९६ ॥

टीकाः— हे शिष्य! जो तैनैं प्रश्न करे तिनके मैं उत्तर कहे।

१ जो तैं कह्याथाः—"एकवृक्षमैं दोपक्षी हैं, एक भोगैहै औ एक इच्छातैं रहित है, यातैं जीवब्रह्मकी एकता बनै नहीं" याका—

हमनैं उत्तर कह्याः— जो "या स्थानमैं जीवब्रह्मका ग्रहण नहीं करना, किंतु कूटस्थ औ बुद्धिमैं जो आभास तिनका ग्रहण करना, सो आपसमैं घटाकाश औ आकाश-की छायाकी न्यांई भिन्न हैं"। औ—

२ जो तैं प्रश्न कियाथाः— "जीव तौ कर्मउपासना करनैवाला है औ परमात्मा फल देनैवाला है, तिनकी एकता बनैनहीं"

याकावी हमनै यह उत्तर कह्याः—

१ "जो कर्म करनैवाला जीव नहीं है औ फल देनैवाला ईश्वर नहीं है; किंतु जीवमैं जो आभास—अंश है सो करैहै।

२ ईश्वरमैं जो आभास अंश है सो फल देवैहै औ—

३ जीवईश्वरमैं जो चेतन—अंश है सो घटाकाशमहाकाशकी न्यांई भेदका जो गंध कहिये लेश, तासैं रहित है।

इसरीतिसैं हे शिष्य! जीव औ ब्रह्मकी एकता बनैहै, यातैं "अहं कहिये 'मैं' ब्रह्म हूं" ऐसैं तू जान।

१ अहंशब्दका अर्थ तौ कूटस्थकूं पिछान।
२ ब्रह्मशब्दका जो महाकाशके सम लक्ष्य अर्थ कह्या है सो जान।

"अहं" शब्दका औ "ब्रह्म" शब्दका वाच्यअर्थका अभेद नहीं वी है; परंतु लक्ष्य अर्थका अभेद है। औ हे शिष्य! —

१ जबलग तूं ' अहं ब्रह्मास्मि ' ऐसैं नहीं जानैगा तबलग तूं अपनैकूं दीन मानैगा औ दुःखी मानैगा । औ—

२ न्यारा जो परमात्मा जान्याहै, सो तेरेकूं भयका हेतु होवैगा ।

यातैं "मैं ब्रह्महूं" ऐसैं जान ॥ ९३—९६ ॥

॥ १७६ ॥ प्रश्नः— "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान किसकूं होवैहै ?

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

कहो गुरू व्है कौनकूं,
"अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ?।
नहिं जानूं मैं आपके,
भाखे विना सुजान ॥ ९७ ॥

टीकाः— हे गुरु ! आप कृपाकरिके कहो । 'अहं ब्रह्मास्मि' ऐसा ज्ञान किसकूं होवैहै ? आपके कहेविना यह वार्त्ता मैं जानूं नहीं हूं ।

शिष्यके चित्तमैं यह गूढ अभिप्राय है:— १ "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ज्ञान कूटस्थविषै होवैहै ? २ अथवा आभाससहित बुद्धिमैं होवैहै ?

१ जो कूटस्थमैं कहोगे तौ कूटस्थ विकारी होवैगा । औ—

२ आभाससहित बुद्धिमैं कहोगे तौ वाकूं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ज्ञान भ्रांतिरूप होवैगा । काहेतैं ? आपनै ऐसा पूर्व कह्या जो "कूटस्थकी औ ब्रह्मकी एकता है, औ आभास भिन्न है" यातैं ब्रह्मसैं भिन्न जो आभास, ताका ब्रह्मरूपकरिके जो ज्ञान सो भ्रांतिही होवैगा । जैसैं सर्पसैं भिन्न जो रज्जू, ताका सर्परूपकरिके ज्ञान भ्रांति है । इसरीतिसैं आभाससहित बुद्धिकूं "मैं ब्रह्म हूं" यह ज्ञान यथार्थ नहीं होवैगा, किंतु भ्रांतिरूप होवैगा । औ—

जो कदाचित् "अहं ब्रह्मास्मि" इस ज्ञानकूं भ्रांतिरूपही अंगीकार करोगे तौ या ज्ञानतैं मिथ्याजगत्‌की निवृत्ति नहीं होवैगी । किंतु यथार्थज्ञानसैं मिथ्याकी निवृत्ति होवैहै । जैसैं रज्जूके यथार्थज्ञानसैं मिथ्यासर्पकी निवृत्ति होवैहै । इसरीतिसैं आभाससहित बुद्धिकूं "मैं ब्रह्म हूं" यह ज्ञान बनै नहीं ॥ ९७ ॥

॥ गतप्रश्नका उत्तर ॥ १७७–१८३ ॥

॥ १७७ ॥ आभासकी सप्तअवस्थाके नाम ॥ १७७—१७८ ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ सोरठा ॥

कहूं अवस्था सात,
सुन सिष्य व आभासकी,
नहिं चेतनकी तात,
तिनहींमैं यह ज्ञान है ॥ ९८ ॥

टीकाः— हे शिष्य ! अब आभासकी सात अवस्था मैं कहूंहूं सो तू सुनः—

[अबकी ठौर बकार पढ्याहै]

तिन सात अवस्थामैं कोई बी चेतन जो कूटस्थ ताकी नहीं है औ " मैं ब्रह्म हूं " यह ज्ञान बी तिन सातके भीतरही है ॥ ९८ ॥

॥ १७८ ॥ अथ सप्तअवस्था नाम ॥

॥ चौपाई ॥

इक अज्ञान आवरन सु जानौ ।
भ्रांति द्विविध पुनि ज्ञान पिछानौ ॥

सोकनास अतिहर्ष अपारा ।
सप्त अवस्था इम निर्धारा ॥ ९९ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ ९९ ॥

॥ १७९ ॥ अथ १ अज्ञान औ २ आवरणस्वरूपवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

"नहिं जानूं मैं ब्रह्मकूं,"
याकूं कहत अज्ञान ॥
"ब्रह्म है न नहिं भान व्है,"
यह आवरन सुजान ॥ १०० ॥

टीकाः—हे शिष्य !

१ "मैं ब्रह्मकूं नहीं जानूंहूं" यह जो पुरुष कहैं, या व्यवहारका हेतु अज्ञान है।

२ "ब्रह्म है नहीं औ भान नहीं होवैहै" इस व्यवहारका हेतु आवरण है।

आवरणसैं यह व्यवहार होवैहै। काहेतैं ? दो प्रकारकी अज्ञानकी शक्ति हैः–(१) एक तौ असत्वापादक है; औ (२) एक अभानापादक है। तिन दोनूंकूं आवरण कहैहैं।

(१) "वस्तु नहीं है" ऐसी प्रतीति करावनैवाली जो शक्ति सो असत्वापादक कहियेहै। औ–

(२) "वस्तुका भान नहीं होवैहै" ऐसी प्रतीति करावनैवाली जो अज्ञानकी शक्ति सो अभानापादक कहियेहै।

(१) इसरीतिसैं "ब्रह्म नहीं है" इस व्यवहारकी हेतु अज्ञानकी असत्वापादक-शक्ति है। औ–

(२) "ब्रह्म भान नहीं होवैहै" इस व्यवहारकी हेतु अज्ञानकी अभानापादक-शक्ति है।

इन दोनूंका नाम आवरण है ॥ १०० ॥

॥१८०॥ ३ अथ भ्रांतिवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

जन्ममरन गमनागमन,
पुन्यपाप सुखखेद ।
निजस्वरूपमैं भान व्है,
भ्रांति बखानी वेद ॥ १०१ ॥

टीकाः–जन्मसैं आदिलेके जो संसार है, ताकी जो निजस्वरूप कहिये कूटस्थमैं प्रतीति, सो वेदमैं भ्रांति कहियेहै औ याहीकूं शोक कहैहैं ॥ १०१ ॥

॥ १८१ ॥ ४-५ अथ द्विविधज्ञानवर्णन ॥

(परोक्ष औ अपरोक्ष)

॥ दोहा ॥

द्वैविध ज्ञान बखानिये,
इक परोछ अपरोछ ।
"अस्ति ब्रह्म" परोछ है,
"अहं ब्रह्म" अपरोछ ॥ १०२ ॥
"नहिं ब्रह्म" या अंसको,
करै परोछ विनास ।
सकल अविद्याजालकूं,
दूजो नसै प्रकास ॥ १०३ ॥

॥ १८५ ॥ देह, प्राण, इंद्रिय औ अंतःकरणसहित चिदाभास, इनके जन्मादिक संबंधविशिष्ट केवलधर्मरूप संबंधिनकी वा संबंधविशिष्ट धर्मीसहित धर्मरूप संबंधिकी आत्मामैं अपनै विषयसहित प्रतीति औ आत्माके तादात्म्यसंबंधकी वा सत्यत्वादिक धर्मनके संबंधकी अनात्मामैं अपनै विषयसहित प्रतीति, सो अध्यास कहियेहै। याहीकूं भ्रांति, विक्षेप औ शोक बी कहतेहैं।

टीकाः—

१ "ब्रह्म नहीं है" या आवरणके अंशकूं "ब्रह्म है" ऐसा परोक्षज्ञान विनाशैहै। काहेतैं ? "सत्यज्ञानअनंतरूप ब्रह्म है" ऐसा जो ज्ञान, ताका नाम **परोक्षज्ञान** है। सो "ब्रह्म नहीं है" ऐसी प्रतीतिका विरोधी है; औरका नहीं। औ—

२ "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा जो **अपरोक्षज्ञान**, सो सकल अविद्याजालका विरोधी है। या कारणतैं—

(१) "मैं ब्रह्मकूं नहीं जानूंहूं" यह **अज्ञान**। औ—

(२) "ब्रह्म नहीं है" औ "भान नहीं होवैहै" यह **आवरण**। औ—

(३) "मैं ब्रह्म नहीं हूं, किंतु पुण्यपापका कर्त्ता औ सुखदुःखका भोक्ता जीव हुं" यह **भ्रांति**।

इतना जो **अविद्याजाल** है ताकूं अपरोक्षज्ञान नाश करैहै ॥ १०२-३ ॥

॥ १८२ ॥ ६ अथ भ्रांतिनाशवर्णन ॥

दोहा ॥

जन्ममरन मोमैं नहीं,
नहिं सुखदुखको लेस।
किंतु अजन्यकूटस्थ मैं,
भ्रांतिनास यह बेस ॥ १०४ ॥

टीकाः—

१ मेरेविषै जन्म औ मरण नहीं, औ—

२ सुखदुःखका लेश बी नहीं है।

३ और कोई बी संसारधर्म मेरेविषै नहीं है। किंतु—

४ अजन्य कहिये जन्मसैं रहित जो कूटस्थ, "सो मैं हूं"।

हे शिष्य ! इसरीतिसैं सर्व अनर्थका जो निषेध यह **भ्रांतिनाशका** वेस कहिये **स्वरूप** है।

अथवा यह भ्रांतिनाश बेस कहिये उत्तम है।

या जगै कूटस्थमैं जन्मका निषेध करनैतैं सर्वका निषेध जानि लेना। काहेतैं ? जन्मप्रतीतिसैं अनंतर और अनर्थ प्रतीत होवैहैं, यातैं जन्मके निषेधतैं सर्व अनर्थका निषेध है।

यह जो भ्रांतिनाश है, याहीकूं **शोकनाश** बी कहैहैं ॥ १०४ ॥

॥ १८६ ॥ देश काल औ वस्तुतैं जाका अंत कहिये परिच्छेद होवै नहीं, ऐसा जो सर्वदेश सर्वकाल औ सर्ववस्तुविषै व्यापकवस्तु, सो **अनंत** कहियेहै। याहीकूं **विभु** औ **भूमा** बी कहतेहैं।

१ ब्रह्म जातैं सर्वदेशविषै **व्यापक** है यातैं ताका घटकी न्यांई **किसी देशतैं अंत नहीं**। औ—

२ ब्रह्म जातैं उत्पत्ति अरु नाशतैं रहित होनैकारि **नित्य** है, यातैं ताका देहकी न्यांई **कालतैं अंत नहीं**। औ—

३ ब्रह्म जातैं घटशरावादिकविषै अनुगत मृत्तिकाकी न्यांई अपनै स्वरूपमैं अध्यस्त सर्वकार्यका आत्मा है। यातैं ताका घटपटादिकके भेदकी न्यांई किसी **वस्तुतैं भेदरूप अंत नहीं**।

जातैं ब्रह्मदेशकालवस्तुकृतअंततैं रहित है, यातैं सो श्रुतिविषै **अनंतरूप** कह्याहै।

इहां अनंतरूप कहनैकारि "आनंदरूप ब्रह्म" है यह कथन अर्थतैं सिद्ध होवैहै। काहेतैं ? छांदोग्यउपनिषद्‌विषै भूमविद्याके प्रसंगमैं नारदके प्रति सनकादिक गुरुनै कह्याहैः—"जो भूमा (परिपूर्ण) है, सो सुखरूप है। अल्प (परिच्छिन्न) विषै सुख नहीं है" इसरीतिसैं कह्याहै। "यातैं जो अनतरूप है सो भूमा है औ जो भूमा है सो आनंदरूप है" यह जानना।

॥ १८३ ॥ ७ अथ हर्षस्वरूपवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

संसयरहित स्वरूपको,
होइ जु अद्वयज्ञान ।
तव उपजै हिय मोद तव,
सो तूं हर्ष पिछान ॥ १०५ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! जब तेरेकूं संशयरहित अपनै स्वरूपका ऐसा ज्ञान होवैगा, जो "मैं अद्वय ब्रह्मरूप हूं" तब तेरेकूं जो मोद होवैगा, ताकूं तूं हर्ष पिछान ॥ १०५ ॥

॥ दोहा ॥

कही अवस्था सात मैं,
तोकूं सिष्य सुजान ।
सो सगरी आभासकी,
है तिनहींमैं ज्ञान ॥ १०६ ॥
"ज्ञान होत है कौनकूं ?"
यह पूछी तैं वात ।
मैं ताको उत्तर कह्यो,
चहै सु पूछ व तात ॥ १०७ ॥

अर्थ स्पष्ट है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

॥ १८४ ॥ प्रश्नः— ब्रह्मसैं भिन्न आभासकूं "मैं ब्रह्म" यह ज्ञान मिथ्या होवैगा । (अंक १७६ गतप्रश्नका गूढ अभिप्राय ।)

जा गूढ अभिप्रायतैं प्रश्न कऱ्या था, ताकूं अब शिष्य प्रगट करैहैः—

॥ दोहा ॥

भगवन है आभासकूं,
"अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ।
तुम भाख्यो सो मैं लख्यो,
पुनि संका इक आन ॥ १०८ ॥

॥ चौपाई ॥

है आभास ब्रह्मतैं न्यारा ।
अस तुम पूर्व कियो निर्धारा ॥
"अहं ब्रह्म" सो कैसै जानै ? ।
आपहि भिन्न ब्रह्मतैं मानै ॥ १०९ ॥
जो जानै तौ मिथ्याज्ञाना ।
होई जेवरी भुजग समाना ॥
श्रीगुरु यह संदेह मिटाऊ ।
युक्तिसहित निजउक्ति सुनाऊ ॥११०॥

टीकाः—हे भगवन् ! आपनै यह पूर्व कह्या जोः—"कूटस्थ औ ब्रह्म तौ दोनूं एक हैं औ आभास ब्रह्मतैं न्यारा है" ता ब्रह्मसैं भिन्न आभासकूं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ब्रह्मरूप-करिके ज्ञान बनै नहीं ॥

१ "मेरा अधिष्ठान जो कूटस्थ सो ब्रह्मरूप है" ऐसा जो आभासकूं ज्ञान होवै तौ यथार्थज्ञान होवै । औ—

२ "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान यथार्थ नहीं बनै । काहेतैं ? अहं नाम अपनै स्वरूपका है । जाकूं मैं कहैहैं सो आभासका स्वरूप मिथ्या है, यातैं भिन्न है । यातैं ब्रह्मसैं भिन्न आभासका जो स्वरूप वाकूं ब्रह्मरूपकरिके ज्ञान होवै तौ मिथ्याज्ञान होवै । जैसैं सर्पसैं भिन्न

॥ १८७ ॥ याही हर्षका श्रीविद्यारण्यस्वामीनै पंचदशीके तृप्तिदीपविषै 'निरंकुशा तृप्ति' ऐसा नाम धऱ्याहै ।

जो जेवरी, ताका सर्परूपकरिके ज्ञान मिथ्या होवैहै। मिथ्या नाम भ्रांतिका है। सो ब्रह्मज्ञानकूं भ्रांतिरूप कहना बनै नहीं ॥११०॥

॥ १८५ ॥ उत्तरः—'अहं' शब्दके दो-अर्थ। तिनमैं कूटस्थका ब्रह्मसैं मुख्य-सामानाधिकरण्य, औ आभासका बाधसामानाधिकरण्य।

॥ दोहा ॥

'अहं' सब्दके अर्थको,
सुन अब सिष्य विवेक।
तव हियके जासूं नसै,
संक कलंक अनेक ॥ १११ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ १११ ॥

ऱ्है यद्यपि आभासमैं,
'अहं ब्रह्म' यह ज्ञान ॥
तथापि सो कूटस्थको,
ऌहै आप अभिमान ॥ ११२ ॥

ताको सदा अभेद है,
विभुचेतनतैं तात।
बाध समै निजरूपहू,
ब्रह्मरूप दरसात ॥ ११३ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! यद्यपि "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ज्ञान बुद्धिसहित आभासकूं होवैहै औ कूटस्थकूं नहीं, तथापि सो आभास कूटस्थकूं औ अपनै स्वरूपकूं दोनूंवांकूं अपना आत्मा जानैहै। ता आत्माका "मैं" शब्द-करिके ग्रहण होवैहै, सोई अहंशब्दका अर्थ है।

१ ता 'अहं' शब्दमैं भान जो होवैहै कूटस्थ, ताका तौ ब्रह्मके साथ सदा अभेद है। जैसैं घटाकाशका औ महाकाशका सदा अभेद है॥ इसीकारणतैं कूटस्थका ब्रह्मके साथ मुख्य समानाधिकारण वेदांतशास्त्रमैं कह्याहै ॥

जा वस्तुका जा वस्तुके संग सदा अभेद होवै

॥ १८८ ॥ इहां यह प्रश्नकर्ता शिष्यके प्रति प्रश्न हैः—

१ 'ब्रह्मज्ञानका स्वरूप मिथ्यासंसारके अंतर्गत मिथ्याचिदाभासके आश्रित होनैतैं मिथ्या है, यातैं इस मिथ्याज्ञानतैं मृगजलकरि तृषाकी निवृत्तिकी न्याई संसारकी निवृत्ति कैसै होवैगी' यह कहते हो ?

२ 'अथवा तिस ज्ञानका विषय जो चिदाभास औ ब्रह्मकी एकता, सो सर्प औ जेवरीके एकताकी न्याई मिथ्या है, यातैं तिस मिथ्याविषयका ज्ञान बी मिथ्या है। यातैं तिस मिथ्याज्ञानतैं संसारकी निवृत्ति कैसैं होवैगी' यह कहते हो ?

१ तिनमैं 'ज्ञानका स्वरूप मिथ्या है' यह वार्ता हम बी अंगीकार करैहैं। परंतु तिस मिथ्याज्ञानसैं संसारकी निवृत्ति बनैहै। काहेतैं ? "जैसा यक्ष तैसा बलि" इस लौकिकन्यायकरि **जैसा** मिथ्यासंसार है, ताकी निवृत्तिअर्थ ज्ञान बी **तैसा** मिथ्याही चाहिये।

किंवा:—"समानसत्तावाले पदार्थ आपसमैं साधक-बाधक हैं" इस नियमतैं बी मिथ्याज्ञानतैंही मिथ्या-संसारकी निवृत्ति संभवैहै।

मृगजलकी औ तृषाकी समानसत्ता नहीं, किंतु विषमसत्ता है। यातैं प्रातिभासिक मृगजलसैं व्यावहारिक तृषाकी निवृत्ति संभवै नहीं। यह वार्ता आगे पंचमतरंगमैं बी कहियेगी। औ—

२ 'चिदाभास अरु ब्रह्मकी एकतारूप ज्ञानका विषय मिथ्या है, यातैं ताका ज्ञान बी मिथ्या है' यह द्वितीयपक्ष जो तुमनैं प्रकट किया, सो संभवै नहीं। यह वार्ता अब १८५ के अंकविषै प्रतिपादन करैहैं ॥

॥ १८९ ॥ समानविभक्तिके बलकरि समान कहिये एक है अधिकरण कहिये अर्थरूप आश्रय

ता वस्तुका ताके संग मुख्य समानाधिकरण कहियेहै । जैसें घटाकाशका महाकाशके संग सदा अभेद है। यातें घटाकाश महाकाश है। इसरीतिसें घटाकाशका महाकाशके साथ **मुख्यसमानाधिकरण** है ॥

इसरीतिसें कूटस्थका ब्रह्मके संग मुख्य-समानाधिकरण है। काहेतें? कूटस्थका ब्रह्मतें सदा अभेद है, यातें "मैं" शब्दमें भान जो होवैहै कूटस्थ ताका तौ ब्रह्मके संग सदा अभेद है। औ—

२ "मैं" शब्दमें भान जो होवैहै आभास ताका ब्रह्मसें अपनै स्वरूपकूं बाधिके अभेद होवेहै। जैसें मुखका जो प्रतिबिंब ताका बिंबस्वरूप मुखके संग प्रतिबिंबस्वरूपकूं बाधिके अभेद होवैहै। इसीकारणतें वेदांतशास्त्रविषै आभासका ब्रह्मके संग **बाधसमानाधिकरण** कह्याहै।

जा वस्तुका बाध होईके जाके संग अभेद होई ता वस्तुका ताके संग बाध-**समानाधिकरण** कहियेहै।

(१) जैसें मुखके प्रतिबिंबका बाध होयके मुखके साथ अभेद होवैहै, यातें प्रतिबिंब मुख है। न्यारा नहीं। ऐसा प्रतिबिंबका मुखके साथ **बाधसमानाधिकरण** है।

(२) किंवा जैसें—स्थाणुमें पुरुषभ्रम होयके स्थाणुज्ञानसें अनंतर "पुरुष स्थाणु है"। इसरीतिसें पुरुषका स्थाणुसें **बाधसमाधिकरण** होवैहै। तैसें आभासका बाध होईके ब्रह्म साथ अभेद होवैहै।

यातें "मैं" शब्दविषै भान जो होवै आभास सो ब्रह्म है। न्यारा नहीं। ऐसा बाधसमानाधिकरण आभासका ब्रह्मके साथ होवैहै। इसरीतिसें। हे शिष्य! —

१ 'अहं' शब्दमें भान जो होवैहै कूटस्थ, ताका तौ मुख्य अभेद है। औ—

२ आभासका बाधकरिके अभेद है ॥ ११२–१३ ॥

॥ १८६ ॥ प्रश्नः—अहंवृत्तिविषै कूटस्थ औ आभासका भान क्रमसें अथवा क्रम-विना होवैहै ? ॥

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

अहंवृत्तिमें भान है,
साछी अरु आभास।
सो क्रमतें वा क्रम विना,
याको करहु प्रकास ॥ ११४ ॥

जिनका, ऐसे जो दो शब्द, सो **समानाधिकरण** कहियेहैं, तिन दोनूं शब्दनका जो परस्परसंबंध सो **सामानाधिकरण्य** नाम एकअर्थवानपना कहियेहै ॥

इहां 'सामानाधिकरण्य' के स्थानमैं 'समानाधिकरण' पढ्याहै, सो भाषाके अभ्यासीजनोंकूं सुगमउच्चारअर्थ है।

उक्तसामानाधिकरण्यरूप संबंध। जीवईश्वरकी एकताके बोधक एकविभक्तिवाले पदनकरि युक्त चारि वेदनके चारि महावाक्यनविषै तथा तिसप्रकारके अन्य लौकिक वैदिकवाक्यनविषै जानि लेना। तिनमैं

१ एकसत्ता औ एकस्वरूपवाले होनैकरि वास्तवभेदरहित दो अर्थनके बोधक वाक्यगत दो पदनका "मुख्यसामानाधिकरण्य" कहियेहै। जैसें घटाकाशपद अरु महाकाशपदका है औ कूटस्थपद अरु ब्रह्मपदका है।

२ भिन्नसत्तावाले दो पदार्थनकी एकविभक्तिके बलकरी एकताके बोधक वाक्यगत दो पदनका "बाधसामानाधिकरण्य" कहियेहै। जैसें स्थाणुपद अरु पुरुषपदका है, औ जगत् अरु ब्रह्मपदका है; औ बिंब अरु प्रतिबिंबपदका है।

टीकाः—हे भगवन् ! आपनै कह्या जो " अहंवृत्तिमैं साक्षी अरु आभास दोनूंवांका भान होवैहै "

याकेविषै मैं एक वार्त्ता नहीं जानूंहूं ।

१ सो कूटस्थ औ आभासका भान अहंवृत्तिविषै क्रमसैं होवैहै ?

२ अथवा क्रमसैं विना होवैहै ?

याका अर्थ यह हैः—

१ क्रमसैं कहिये भिन्नभिन्नकालमैं भान होवैहै?

२ अथवा दोनूंवांका एकही कालमैं भान होवैहै ?

याका आप मेरेकूं प्रकाश कहिये बोध करो ॥ ११४ ॥

॥ (गतप्रश्नका उत्तर ॥ १८७-२०५॥)

॥ १८७ ॥ एकही समय साक्षीका औ आभासका भान होवैहै ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

दोहा ॥

सावधान व्है सिष्य सुन,
भाखूं उत्तर सार ।
सुनत नसै अज्ञानतम,
बोधभानु उजियार ॥१५॥

टीकाः—हे शिष्य ! जो तैंनै प्रश्न किया मैं ताका सारभूत उत्तर कहूंहूं । तूं सावधान होईके सुन । कैसा उत्तर है ? याके सुनतैंही बोधरूपी सूर्यका प्रकाश होयके अज्ञानरूपी तमकूं नाशै है ॥ ११५ ॥

॥ दोहा ॥

एकसमयही भान व्है,
साछी अरु आभास ।
दूजो चेतनको विषय,
साछी स्वयंप्रकास ॥ ११६ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! एकही समय साक्षीका, औ आभासका अहंवृत्तिविषै भान होवैहै।

सारे प्रकरणविषै " आभास " शब्दसैं अंतःकरणसहित आभासका ग्रहण करना। यातैं—

१ दूजो कहिये अंतःकरणहित जो आभास है, सो तौ चेतन जो साक्षी ताका विषय होइके भान होवै है । औ—

२ साक्षी स्वयंप्रकाशरूपकरिके भान होवैहै औ अंतःकरणकी जो आभाससहित वृत्ति, ताका विषय साक्षी नहीं । औ—

घटादिक बाहिरके पदार्थनविषै तौ ऐसी रीति हैः—जब इंद्रियका औ घटका संयोग होवै, तब इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति निकसिके घटके समान आगरकूं प्राप्त होवैहै । जैसैं मूंषामैं गेऱ्या जो ताम्र, ताका मूषाके आकारके समान आकार होवैहै । तैसैं अंतःकरणकी वृत्तिका बी घटके आकारके समान आकार होवैहै ।

सो वृत्ति आभासविना नहीं होवैहै, किंतु आभाससहित होवैहै । काहेतैं ? वृत्ति अंतःकरणका परिणाम है ।

अंतःकरणका जो परिणाम ताकूं वृत्ति कहैहैं ।

जैसैं अंतःकरण सत्वगुणका कार्य होनैतैं स्वच्छ है, यातैं अंतःकरणविषै चेतनका आभास होवैहै; तैसैं वृत्तिबी स्वच्छ अंतःकरणका कार्य है, यातैं वृत्तिविषै चेतनका आभास होवैहै औ वृत्ति जो उत्पन्न होवैहै सो

॥ १९० ॥ मूषा नाम लोहरचित वा मृत्तिकारचित सांचेका है ।

आभाससहित अंतःकरणसैं उत्पन्न होवैहै। इस कारणतैं वी वृत्ति आभाससहितही होवैहै। औ—

॥ १८८ ॥ अज्ञानका आश्रय औ विषय चेतन है ॥

विषय जो घट है सो तमोगुणका कार्य है, यातैं स्वरूपसैं जड है औ ताकेविषै अज्ञान औ ताका आवरण है। यामैं—

यह शंका होवैहैः-अज्ञान औ ताका आवरण विचारदृष्टिसैं चेतनविषै है, घटविषै नहीं। काहेतैं? १ अज्ञान चेतनके आश्रित है औ २ चेतनहीकूं विषय करैहै। यह वेदांतका सिद्धांत है। औ—

१ सात अवस्थाके प्रसंगमैं जो अज्ञानका आश्रय अंतःकरणसहित आभास कह्या, सो अज्ञानका अभिमानी है। "मैं अज्ञानी हूं" ऐसा अभिमान अंतःकरणसहित आभासकूं होवैहै। इस कारणतैं अज्ञानका आश्रय कहियेहै औ मुख्य आश्रय चेतन है। आभाससहित अंतःकरण नहीं। काहेतैं? आभाससहित अंतःकरण अज्ञानका कार्य है। जो जाका कार्य होवैहै, सो ताका आश्रय बनै नहीं। यातैं चेतनही अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय है। औ—

२ चेतनहीकूं अज्ञान विषय करैहै। स्वरूपका जो आवरण करना सोई अज्ञानका विषय करना है। सो अज्ञानकृत आवरण जडवस्तुविषै बनै नहीं। काहेतैं? जडवस्तु स्वरूपसैंही आवृत है। वाकेविषै अज्ञानकृत आवरणका कछु उपयोग नहीं।

इसरीतिसैं अज्ञानका आश्रय औ विषय चैतन्य है। जैसैं गृहके मध्य जो अंधकार है सो गृहके मध्यकूं आवरण करैहै, यातैं घटकेविषै अज्ञान औ ताका आवरण बनै नहीं। ताका—

॥ १८९ ॥ बाहिरके पदार्थविषै वृत्ति औ आभास दोनूंवाका उपयोग है। तिसविषै अज्ञान--आवृत घटका उदाहरण ॥ १८९–१९० ॥

यह समाधान हैः—जैसैं चेतनके स्वरूपसैं भिन्न सत्‌असत्‌सैं विलक्षण अज्ञान चेतनके आश्रित है, ता अज्ञानसैं चेतन आवृत्त होवैहै, तैसैं घटके स्वरूपसैं भिन्न अज्ञान यद्यपि घटके आश्रित नहीं है, तथापि अज्ञाननैं घटादिक स्वरूपसैं प्रकाशरहित जडस्वरूप रचेहैं, यातैं सदाही अंधके समान आवृत्त हैं। सो आवृत्तस्वभाव घटादिकनका अज्ञाननैं कियाहै। काहेतैं? तमोगुणप्रधान अज्ञानसैं भूतकी उत्पत्तिद्वारा घटादिक उपजेहैं। सो तमोगुण आवरणस्वभाववाला है। यातैं घटादिक प्रकाशरहित अंधही होवैहैं।

इसरीतिसैं अंधतारूप आवरण घटादिकनमैं अज्ञानकृत स्वभावसिद्ध है औ घटादिकनके अधिष्ठान-चेतन-आश्रित अज्ञान चेतनकूं आच्छादित करिके स्वभावसैं आवृत घटादिकनकूं वी आवृत करैहै।

यद्यपि स्वभावसैं आवृत्त पदार्थके आवरणमैं प्रयोजन नहीं है, तथापि आवरणकर्त्ता पदार्थ प्रयोजनकी अपेक्षासैं विनाही निरावरणकी न्यांई आवरणसहितमैं वी आवरण करैहै। यह लोकमैं प्रसिद्ध है।

ता अज्ञानसैं आवृत्त घटकूं व्याप्त जो होवैहै अंतःकरणकी आभाससहित घटाकारवृत्ति, तामैं—

॥ १९१ ॥ जैसैं धनका मुख्य आश्रय कोश (पेटीआदिक धनका भंडार) है औ "मैं धनी हूं" ऐसा धनका अभिमानीरूप आश्रय पुरुष है। तैसैं अज्ञानका मुख्य आश्रय चेतन है, औ अभिमानीरूप आश्रय साभास अंतःकरण है॥

१ वृत्तिभाग तौ घटके आवरणकूं दूरि करैहै । औ—

२ वृत्तिमैं जो आभासभाग है सो घटका प्रकाश करैहै ।

इसरीतिसैं बाहिरके पदार्थविषै वृत्ति औ आभास दोनूंवांका उपयोग है ।

॥ १९० ॥ ॥ दृष्टांत—॥

जैसैं अंधकारमैं कुंडेसैं मृत्तिका अथवा लोहका पात्र ढक्या धर्या होवै, तहां दंडसैं कुंडेकूं फोडि बी गेरे पीछे दीपकविना उस निरावरण पात्रका बी प्रकाश होवै नहीं । किंतु दीपकसैं प्रकाश होवैहै । तैसैं अज्ञानसैं आवृत्त जो घट, ताके आवरणकूं वृत्ति भंग बी करैहै । तथापि घटका प्रकाश होवै नहीं । काहेतैं ? घट तौ स्वरूपसैं जड है औ वृत्ति बी जड है । ताका आवरणभंगमात्र प्रयोजन है । तासैं प्रकाश होवै नहीं । यातैं घटका प्रकाशक आभास है ।

नेत्रका विषय जो वस्तु है, ताके प्रत्यक्षज्ञानकी यह रीति कही औ श्रवणादिकका जो विषय है, ताके प्रत्यक्षकी बी रीति ऐसैही जानि लेनी ।

१ वृत्ति औ घट दोनूं एकदेशमैं स्थित होनैतैं घटका ज्ञान प्रत्यक्ष कहियेहै । औ—

२ अंतःकरणकी वृत्ति तौ घटाकार होवै औ घटके संग वृत्तिका संबंध न होवै; किंतु अंतरही वृत्ति होवै । सो घटका परोक्षज्ञान कहियेहै ।

१ " यह घट है " ऐसा अपरोक्षज्ञानका आकार है । औ—

२ "घट है" अथवा " सो घट है " ऐसा परोक्षज्ञानका आकार है ।

यद्यपि स्मृतिज्ञान बी परोक्षज्ञानही है, तथापि स्मृतिज्ञान तौ संस्कारजन्य है औ अनुमितिआदिक परोक्षज्ञान प्रमाणजन्य है । इतना भेद है ।

॥ १९२ ॥ जहां श्रोत्रइंद्रियसैं शब्दविषयका प्रत्यक्ष होवै, तहां श्रोत्रद्वारा निकसी जो अंतःकरणकी साभासवृत्ति, सो दूरदेशविषै वा समीपदेशविषै स्थित शब्दके आकारके समान आकारकूं पावतीहै । तब वृत्तिसैं शब्दका **आवरण भंग** होवैहै औ आभासभाग शब्दका **प्रकाश** करैहै ।

२ जहां **त्वक्इंद्रियसैं** स्पर्शगुण औ तिसके आश्रय घटादिकका प्रत्यक्ष होवै, तहां शरीररूप गोलककूं छोडिके वृत्ति बाहिर जावै नहीं । किंतु शरीरकी क्रियासैं अथवा अन्यकी क्रियासैं शरीररूप गोलकके साथी संयोगकू पाया जो घटादिकविषय ताकूं औ ताके आश्रित कठिनतादिरूप स्पर्शगुणकूं शरीररूप गोलकमैंही स्थित हुई साभासअंतःकरणकी वृत्ति विषय करैहै । ता वृत्तिसैं आश्रयसहित स्पर्शका **आवरण भंग** होवैहै औ चिदाभास ताका **प्रकाश** करैहै ।

३ जहां **रसनइंद्रियसैं** रसविषयका प्रत्यक्ष होवै, तहां बी जिन्हारूप गोलककूं छोडिके वृत्ति बाहिर जावै नहीं । किंतु जिन्हारूप गोलकसैं जब रसविषयका संयोग होवै, तब जिन्हाके अग्रभागवर्ति रसइंद्रियमैं स्थित साभासवृत्ति रसकूं विषय करैहै । तहां वृत्तिसैं रसका **आवरण भंग** होवैहै औ चिदाभास मधुरादि रसका **प्रकाश** करैहै ।

४ जहां **घ्राणइंद्रियसैं** गंधका प्रत्यक्ष होवै, तहां बी नासिकारूप गोलकसैं पुष्पादिरूप गंधके आश्रयका वा तिसके सूक्ष्म अवयवनका जब संयोग होवै, तब नासिकाके अग्रभागवर्त्ति घ्राणइंद्रियम स्थित साभासअंःकरणकी वृत्ति पुष्पादिरूप द्रव्यके आश्रित गंधमात्रकूं ग्रहण नाम विषय करैहै । तहां वृत्तिभागसैं गंधका **आवरण भंग** होवैहै औ वृत्तिमैं स्थित चिदाभासभाग गंधका **प्रकाश** करैहै ।

यह श्रोत्रादिकनका जो विषय है, ताके **प्रत्यक्षकी रीति** है ।

॥ १९१ ॥ प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति औ अनुपलब्धि-प्रमाणका कथन ॥ १९१-१९६ ॥

प्रमाणके प्रसंगसें हम प्रमाण निरूपण करैहैं:-

१ चार्वाक जो हैं, सो एक प्रत्यक्ष-प्रमाण अंगीकार करैहैं। औ—

॥ १९२ ॥ २ कणाद औ सुगतमतके जो अनुसारी हैं, सो दूसरा अनुमान-प्रमाण वी अंगीकार करैहैं। काहेतें? एक प्रत्यक्ष-ही प्रमाण अंगीकार करैं तौ तृप्तिके अर्थीकी भोजनविषै प्रवृत्ति नहीं होवैगी। काहेतें? अभुक्त-भोजनविषै तृप्तिकी हेतुताका प्रत्यक्षप्रमाण-जन्य प्रत्यक्षज्ञान है नहीं। यातें भुक्तभोजनमैं अनुभव जो करीहै तृप्तिकी हेतुता, सो अभुक्त-भोजनमैं वी अनुमानसें जानिके तृप्तिके अर्थीकी भोजनमैं प्रवृत्ति होनैतें अनुमानप्रमाण वी अंगीकार कर्‌या चाहिये। इसरीतिसें कणाद औ सुगतमतके अनुसारी प्रत्यक्ष औ अनुमान दो प्रमाण अंगीकार करैहैं। औ—

॥ १९३ ॥ ३ सांख्यशास्त्रका कर्त्ता जो कपिल है, ताके मतके अनुसारी तीसरा शब्दप्रमाण वी अंगीकार करैहैं। काहेतें? जो प्रत्यक्ष औ अनुमान दोही प्रमाण अंगीकार करैं तौ देशांतरविषै जाका पिता मरि गया होवै, ताकूं कोई यथार्थवक्ता आनिके कहै "तेरा पिता मरि गया है" तब श्रोताकूं पिताके मरनैका निश्चय नहीं हुवाचाहिये। काहेतें? देशांतरविषै स्थित पिताके मरणका ज्ञान प्रत्यक्ष औ अनुमान करिके बनै नहीं। इस-रीतिसें कपिलमतके अनुसारी प्रत्यक्ष, औ अनुमान औ शब्द तीनि प्रमाण अंगीकार करैहैं। औ—

॥ १९४ ॥ ४ न्यायशास्त्रका कर्त्ता जो गौतम है, ताके मतके अनुसारी उपमान वी चतुर्थप्रमाण अंगीकार करैहैं। काहेतें? प्रत्यक्ष आदिक तीनिही प्रमाण अंगीकार करैं तौ जा पुरुषनैं गवय नहीं देख्याहै औ वनवासीपुरुषसें ऐसा श्रवण कियाहै:-"गौके सदृश गवय होवैहै" सो पुरुष जो वनमैं चल्याजावै औ गवयकूं देख लेवै तब वाकूं वनवासी पुरुषनैं कह्या जो "गौके सदृश गवय होवैहै" यह वाक्य, ताके अर्थका स्मरण होवैहै। ता स्मृतिसें अनंतर पुरुषकूं ऐसा ज्ञान होवैहै:-"यह पशु गवय है"। ऐसा ज्ञान नहीं हुआचाहिये। यातें ऐसे विलक्षणज्ञानका हेतु उपमानप्रमाण वी अंगीकार करैहैं। औ—

॥ १९३ ॥ जाके मतमैं पांचभूतनका अंगीकार है ऐसे जो देहात्मवादी, वे लोकायत कहियेहैं। तिनतें विलक्षण जे आकाशविना चारि भूतनकाही अंगीकार करैहैं, ऐसे जे देहात्मवादी, वे चार्वाक कहियेहैं।

॥ १९४ ॥ प्रत्यक्षप्रमाणका औ प्रमाका निरूपण वृत्तिरत्नावलिके द्वितीयरत्नमैं औ वृत्तिप्रभाकरके प्रथमप्रकाशमैं सविस्तर किया है।

॥ १९५ ॥ वैशेषिक शास्त्रका कर्ता जाकूं कणभुक् वी कहतेहैं।

॥ १९६ ॥ बौद्धमतके।

॥ १९७ ॥ अनुमानप्रमाण औ अनुमितिप्रमाका निरूपण वृत्तिरत्नावलिके तृतीयरत्नमैं औ वृत्तिप्रभाकर-के द्वितीयप्रकाशमैं कियाहै।

॥ १९८ ॥ शब्दप्रमाण औ शाब्दीप्रमाका निरूपण वृत्तिरत्नावलिके पंचमरत्नमैं औ वृत्ति-प्रभाकरके तृतीयप्रकाशमैं कियाहै।

॥ १९९ ॥ 'रोज' नामक पशुविशेष।

॥ २०० ॥ उपमानप्रमाण औ उपमितिप्रमाका निरूपण वृत्तिरत्नावलिके चतुर्थरत्नमैं औ वृत्तिप्रभाकर-के पंचमप्रकाशमैं कियाहै।

॥ १९५ ॥ ५ पूर्वमीमांसाका एकदेशी जो भट्टका शिष्य प्रभाकर है, सो पंचम अर्थापत्तिप्रमाण बी अंगीकार करैहै । दिनमैं भोजनत्यागी पुरुषकूं स्थूल देखिके ऐसा ज्ञान होवैहैः–"यह पुरुष रात्रिकूं भोजन करैहै"। तहां रात्रिभोजनविना दिनमैं भोजनत्यागीके विषै स्थूलता बनै नहीं, यातैं रात्रिभोजनका स्थूलता संपाद्य है । रात्रिभोजन संपादक है। संपादक जो रात्रिभोजन ताके ज्ञानका हेतु स्थूलताका ज्ञान [२०१]अर्थापत्तिप्रमाण कहियेहै । औ—

॥ १९६ ॥ ६ पूर्वमीमांसक जो भट्ट है, सो षष्ठ अनुपलब्धिप्रमाण बी अंगीकार करैहै औ वेदांतशास्त्रविषै बी षट्प्रमाण अंगीकार कियेहैं । अनुपलब्धिप्रमाणका प्रयोजन यह हैः–गृहादिकनमैं घटादिकनके अभावका ज्ञान होवैहै, तहां जा पदार्थकी प्रतीति नहीं होवैहै, ताके अभावका ज्ञान होवैहै । अप्रतीतिकूं अनुपलब्धि कहैहैं । घटकी जो अनुपलब्धि कहिये अप्रतीति, तातैं घटका अभाव निश्चय होवैहै । ऐसैं पदार्थनके अभावनिश्चयका हेतु जो पदार्थनकी अप्रतीति, ताकूं [२०२]अनुपलब्धिप्रमाण कहैहैं ।

॥ १९७ ॥ प्रमाण औ प्रमाज्ञानका लक्षण ॥

१ प्रमाज्ञानका जो करण है सो प्रमाण कहियेहै ।

२ स्मृतिसैं भिन्न जो अबाधित अर्थकूं विषय करनैवाला ज्ञान है, सो प्रमा कहियेहै । स्मृतिज्ञान जो है सो प्रमा नहीं है । काहेतैं ? जो प्रमाज्ञान है सो प्रमाताके आश्रित होवैहै औ स्मृति प्रमाताके आश्रित नहीं । किंतु साक्षीके आश्रित अंगीकार करीहै औ भ्रांतिज्ञान औ संशय बी साक्षीके आश्रित अंगीकार कियेहैं । इसीकारणतैं स्मृति औ भ्रांति औ संशयज्ञान ये तीनूं आभाससहित अविद्याकी वृत्तिरूप हैं । अंतःकणरकी वृत्तिरूप नहीं । यातैं प्रमाताके आश्रित नहीं, किंतु साक्षीके आश्रित हैं । जो अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान होवै सो प्रमाताके आश्रित होवैहै औ सोई प्रमा कहियेहै । स्मृतिज्ञान अंतःकरणकी वृत्ति नहीं, यातैं प्रमाताके आश्रित नहीं; औ प्रमा बी नहीं, यातैं प्रमाके लक्षणविषै स्मृतिसैं भिन्न कह्याचाहिये ।

अबाधितअर्थकूं विषय करनैवाला ज्ञान तौ स्मृतिज्ञान बी है, परंतु स्मृतिज्ञान स्मृतिसैं भिन्न नहीं है । यातैं अबाधित अर्थकूं विषय करनैवाला जो स्मृतिसैं भिन्न ज्ञान है, सो [२०३]प्रमा कहियेहै । या लक्षणविषै कोई दोष नहीं ।

॥ १९८ ॥ स्मृतिज्ञान औ षट्प्रमाके विचारपूर्वक करणका लक्षण ॥ १९८–१९९ ॥

और कोई स्मृतिज्ञानकूं बी प्रमारूप मानैहैं, तिनके मतमैं प्रमाके लक्षणविषै "स्मृतिसैं भिन्न" ऐसा नहीं कहना । किंतु अबाधितअर्थकूं

॥ २०१ ॥ अथापत्तिप्रमाण औ प्रमाका निरूपण वृत्तिरत्नावलिके षष्ठरत्नमैं औ वृत्तिप्रभाकरके पंचमप्रकाशमैं कियाहै । इहां टीकाविषै दृष्टिदोषतैं संपाद्य औ संपादक शब्दका विपरीत लेख था सो वृत्तिप्रभाकरके अनुसार हमनै यथास्थित धऱ्याहै । इहां संपाद्य कार्य है औ संपादक कारण है ।

॥ २०२ ॥ अनुपलब्धिप्रमाण औ अनुपलब्धिप्रमाका नाम अभावप्रमाका निरूपण वृत्तिरत्नावलिके सप्तरत्नमैं औ वृत्तिप्रभाकरके षष्ठप्रकाशमैं कियाहै ।

॥ २०३ ॥ यथार्थअनुभव प्रमा है । यह प्रमाका लक्षण स्मृतिसैं व्यावृत्त नाम भिन्न है ।

विषय करनैवाला जो ज्ञान है सो प्रमा कहियेहै।

भ्रांतिज्ञान जो है सो अबाधित अर्थकूं विषय नहीं करैहै, किंतु बाधितअर्थकूं विषय करैहै, यातें प्रमाका लक्षण भ्रांतिज्ञानमें नहीं जावैहै।

जिनोंके मतमैं स्मृतिज्ञानविषै बी प्रमाव्यवहार है, तिनके मतमैं स्मृतिज्ञान अंतःकरणकी वृत्ति है। अविद्याकी वृत्ति नहीं। औ साक्षीके आश्रित बी नहीं; किंतु प्रमाताके आश्रित है। काहेतें? अंतःकरणकी वृत्तिका आश्रय प्रमाताही बनैहै। साक्षी बनै नहीं।

इसरीतिसैं स्मृतिज्ञान

१ किसीके मतमें तौ अंतःकरणकी वृत्ति है। यातें प्रमारूप है। औ—

२ किसीके मतमैं अविद्याकी वृत्ति है। यातें प्रमारूप नहीं है। औ—

भ्रांतिज्ञान औ संशयज्ञान ये दोनूं सर्वके मतमैं अविद्याकी वृत्ति है औ साक्षीके आश्रित है, यामैं कोई विवाद नहीं। औ—

विचारकरिके देखिये तौ स्मृतिज्ञान बी अविद्याकी वृत्ति है औ साक्षीके आश्रित है। प्रमारूप नहीं। काहेतें? जो वेदांतसंप्रदायके वेत्ता हैं तिनोंनें प्रमाज्ञान षट्प्रकारका कह्याहै। ता षट्प्रकारमैं स्मृतिज्ञान है नहीं। यातें प्रमा नहीं। औ मधुसूदनस्वामीनें स्मृतिज्ञान साक्षीके आश्रितही कह्याहै।

॥ १९९ ॥ एक तौ प्रत्यक्षप्रमा है; दूसरी अनुमितिप्रमा है; तीसरी उपमितिप्रमा है; चतुर्थी शाब्दीप्रमा है; पंचमी अर्थापत्तिप्रमा है; औ षष्ठी अभावप्रमा है; ये षट्प्रमा हैं। औ—

पूर्व कहे जो प्रत्यक्षआदिक षट्प्रमाण हैं सो इनके क्रमतें करण हैं।

प्रत्यक्षप्रमाका जो करण होवै सो प्रत्यक्षप्रमाण कहियेहै।

१ असाधारणकारण जो होवै, सो करण कहियेहै।

२ जो सर्वकार्यका कारण होवै, सो साधारणकारण कहियेहै।

॥ २०४ ॥ यथार्थज्ञान प्रमा है यह प्रमाका लक्षण बी स्मृतिसाधारण है।

॥ २०५ ॥ इहां यह विवेक है:—

१ भ्रमरूप अनुभवके संस्कारसैं जन्य जो स्मृति सो बाधित अर्थकूं विषय करनैवाली होनेतें अयथार्थ है। याहीतें सो अविद्याकी वृत्ति है। अंतःकरणकी वृत्ति नहीं। औ साक्षीके आश्रित है; प्रमाताके आश्रित नहीं।

२ जो यथार्थ अनुभवके संस्कारसें जन्य स्मृतिज्ञान है सो अबाधित अर्थकूं विषय करनैवाला होनेतें यथार्थ ज्ञान है। याहीतें सो अंतःकरणकी वृत्ति है। अविद्याकी वृत्ति नहीं। औ प्रमाताके आश्रित है; साक्षीके आश्रित नहीं।

परंतु स्मृतिज्ञानमैं पूर्वाचार्योंनैं प्रमाव्यवहार किया नहीं। यातैं दोनूंप्रकारकी स्मृति अप्रमा है। तिनमैं अयथार्थस्मृति अयथार्थअप्रमा है औ यथार्थस्मृति यथार्थअप्रमा है। इतना भेद है।

॥ २०६ ॥ १ जो केवल असाधारण कारणकूं करण कहैं तौ जहां दो असाधारण कारण होवैं तहां कौनसा कारण करण है, यह निश्चय नहीं होवैगा। यातैं दोनूं कारणमैंसें एककूं व्यापाररूप मानिके अवशेष रहा जो दूसरा कारण, सो व्यापारवाला असाधारणकारण करण कहियेहै।

२ जो कार्यकूं किसीद्वारा उपजावै सो व्यापारवाला कारण कहियेहै। सोई करण है॥ जैसैं कपाल जो है सो संयोगद्वारा घटकूं उपजावैहै। यातैं कपाल घटका व्यापारवाला कारण है। सोई घटका करण बी है॥

३ जो कार्यकूं किसीद्वारा उपजावै नहीं किंतु साक्षात् उपजावै सो केवलकारण है। करण नहीं॥

१ जैसैं धर्मअधर्मादिक सर्वकार्यके कारण हैं, यातैं साधारणकारण हैं ॥

२ सर्वकार्यका कारण न होवै। किंतु किसी कार्यका कारण होवै। सो असाधारण कारण कहियेहैं। जैसैं दंड जो है सो सर्व-कार्यका कारण नहीं। किंतु घटआदिक जो कार्य-विशेष हैं तिनका कारण है। यातैं दंड असाधारणकारण कहियेहै औ घटका करण बी कहियेहै।

१ तैसैं प्रत्यक्षप्रमाके ईश्वर औ ताकी इच्छासैं आदिलेके तौ साधारणकारण हैं। काहेतैं? ईश्वरसैं आदि लेके सर्वकार्यके कारण है, तिन विना कोई कार्य होवै नहीं। यातैं ईश्वरादिक साधारणकारण हैं। औ—

२ नेत्रसैं आदिलेके जो इंद्रिय हैं सो प्रत्यक्षप्रमाके असाधारणकारण हैं। यातैं नेत्रआदिक जो इंद्रिय हैं सो प्रत्यक्षप्रमाके करण हैं। इसरीतिसैं नेत्रआदिक जो इंद्रिय हैं सो प्रत्यक्षप्रमाण कहियेहै ॥

॥ २०० ॥ प्रमाता, प्रमाण, प्रमिति औ प्रमेयचेतन ॥

यद्यपि इंद्रियकूं वेदांतसिद्धांतविषै प्रमाज्ञान-की कारणता कहना बनै नहीं। काहेतैं? चेतनके चारि भेद हैं:— १ एक तौ प्रमाताचेतन है औ २ दूसरा प्रमाणचेतन है औ ३ तीसरा प्रमितिचेतन है। ताहीकूं प्रमाचेतन बी कहैहैं औ ४ चौथा प्रमेयचेतन है। ताहीकूं विषय-चेतन बी कहैहैं ॥

इसरीतिसैं प्रमा नाम चेतनका है सो नित्य है। इंद्रियजन्य नहीं। यातैं इंद्रिय ताका कारण नहीं। तथापि चेतनमैं प्रमाव्यवहारका संपादक वृत्ति बी प्रमा कहियेहै। ताके इंद्रिय करण हैं ॥

१ देहके मध्य जो अंतःकरण, ताकरिके अवच्छिन्न जो चेतन, सो प्रमाता कहियेहै।

२ सोई अंतःकरण नेत्रादिक इंद्रियद्वारा निकसिके जितने दूरि घटादि विषय स्थित होवैं उतना लंबापरिणाम अंतःकरणका होवैहै औ आगे विषय जो घटादिक हैं, तिनसैं मिलिके जैसा घटादिकका आकार होवै तैसाही अंतः-करणका आकार होवैहै। जैसैं कोठेमैं भर्‍या जो जल सो छिद्रद्वारा निकसिके लंबे नालेका आकार होयके बगीचेके केदारमैं जावैहै औ केदारमैं जाइके जैसा केदारका आकार होवै तिस आकारकूं जल प्राप्त होवैहै, तैसैं अंतः-करण बी इंद्रियरूपी छिद्रद्वारा निकसिके विषय-रूपी केदारकूं जावैहै। तहां शरीरसैं लेके घटादिक विषयपर्यंत जो अंतःकरणका नालेके समान परिणाम, ताकूं वृत्तिज्ञान कहैहैं। ताकरिके अवच्छिन्न जो चेतन ताकूं प्रमाण-चेतन कहैहैं ॥ औ—

जैसैं दो कपालोंका संयोग घटकूं साक्षात् उपजावैहै, यातैं सो घटका केवल कारण है। करण नहीं।

यद्यपि उक्त करणका लक्षण प्रत्यक्ष, अनुमान औ शब्द इन तीन प्रमाणनविषै घटताहै तथापि उपमान, अर्थापत्ति, औ अनुपलब्धि ये तीनप्रमाण उपमितिआदिक प्रमाके निर्व्यापार कारण हैं। तिनमैं उक्तकरणके लक्षणकी अव्याप्ति होवैगी यातैं "व्यापारसैं भिन्न असाधारणकारण करण कहियेहै" यह करणका लक्षण निर्दोष है। काहेतैं? कहूं व्यापार है औ कहूं व्यापार नहीं है। दोनूं ठिकानै व्यापारसैं भिन्नताके होनैतैं ॥

॥ २०७ ॥ इहां आदिशब्दकरिके ईश्वरका ज्ञान, ईश्वरका प्रयत्न, काल, दिशा, अदृष्ट, प्रागभाव औ प्रतिबंधकाभाव, इन सातका ग्रहण है। ये नव सर्व कार्यनके साधारणकारण हैं ॥

३ वृत्तिज्ञानरूप जो अंतःकरणका परिणाम ताकूं **प्रमाण** कहैहैं। जैसैं केदारविषै जल जाइके केदारके समान आकार होवैहै तैसैं घटादिक जो विषय हैं, तिनमैं वृत्ति जाइके घटादिकके समान आकारकूं प्राप्त होवैहै। ताकरिके अवच्छिन्न जो चेतन, सो प्रमाचेतन कहियेहै ॥

४ ज्ञानके विषय जो घटादिक तिनकरिके अवच्छिन्न जो चेतन सो विषयचेतन कहियेहै औ प्रमेयचेतन बी कहियेहै ॥

यह वेदअर्थके जाननैवाले जो आचार्य हैं तिनकी परिभाषा है।

॥ २०१ ॥ अवच्छेदवादकी रीतिसैं प्रमाता औ साक्षीसहित विशेषण औ उपाधिका लक्षण ॥

यामैं इतना भेद हैः—जो अवच्छेदवाद अंगीकार करैहैं तिनके मतमैं तौ—

१ अंतःकरणविशिष्ट जो चेतन है सो प्रमाता है औ सोई कर्त्ताभोक्ता है। औ—

२ अंतःकरणउपहित साक्षी है।

एकही अंतःकरण प्रमाताका तौ विशेषण है औ साक्षीकी उपाधि है ॥

स्वरूपविषै जाका [२०८] प्रवेश होवै ऐसी जो व्यावर्त्तक वस्तु है, सो विशेषण कहियेहै ॥

और पदार्थसैं भिन्नताकरिके वस्तुके स्वरूपकूं जो जनावै सो व्यावर्त्तक कहियेहै ॥

जाकूं भिन्नताकरिके जनावै सो व्यावर्त्य कहियेहै ॥

जैसैं "नीलघट है" या स्थानमैं घटका नीलता विशेषण है। काहेतैं? नीलघटकेविषै नीलताका प्रवेश है औ पीतश्वेतादिकनसैं भिन्नताकरिके जनावैहै। यातैं व्यावर्त्तक है ॥

इसरीतिसैं नीलता घटका विशेषण है औ घट परिच्छेद्य है। काहेतैं? पीतश्वेतादिकनतैं भिन्नता कहिये जुदाकरिके जनाइयेहै।

जो भिन्नताकरिके जनाइये सो परिच्छेद्य कहियेहै; व्यावर्त्य कहियेहै; औ विशेष्य बी कहियेहै। औ "दंडी पुरुष है" या स्थानमैं बी पुरुषका दंड विशेषण है।

इसरीतिसैं प्रमाताका अंतःकरण विशेषण है। काहेतैं? प्रमाताके स्वरूपविषै अंतःकरणका प्रवेश है औ प्रमेय चेतनसैं भिन्नताकरिके प्रमाताके स्वरूपकूं जनावैहै। यातैं व्यावर्त्तक है।

जा वस्तुका स्वरूपविषै [२०९] प्रवेश न होवै औ व्यावर्त्तक होवै सो उपाधि कहियेहै।

१ जैसैं नैयायिकके मतमैं कर्णशष्कुलीसैं अवच्छिन्न जो आकाश है सो श्रोत्र कहियेहै। या स्थानमैं कर्णशष्कुली श्रोत्रकी उपाधि है। काहेतैं? श्रोत्रके स्वरूपविषै तौ कर्णशष्कुलीका प्रवेश है नहीं औ बाहिरके आकाशतैं भिन्नताकरिके श्रोत्रकूं जनावैहै। यातैं व्यावर्त्तक है। औ—

२ घटाकाश जो है सो मणपरिमाण अन्नकूं अवकाश देवैहै। या स्थानमैं बी आकाशकी घट उपाधि है। काहेतैं? मणअन्नकूं अवकाश देनैवाला जो आकाश है ताके स्वरूपविषै तौ घटका प्रवेश है नहीं। घट पार्थिव है। ताकेविषै अवकाश देना बनै नहीं। यातैं घटका स्वरूपमैं प्रवेश बनै नहीं औ व्यापक आकाशतैं भिन्नता-

॥ २०८ ॥ कार्यसैं संबंधी ॥

॥ २०९ ॥ आश्रयके कार्यमैं असंबंधीपना "अप्रवेश" कहियेहै।

करिके जनावैहै । यातैं मणअन्नकूं अवकाश देनैवाला जो आकाश ताकी घट उपाधि है ।

तैसैं अंतःकरणउपहित जो चेतन है सो साक्षी है । या स्थानमैं अंतःकरण साक्षीकी उपाधि है । काहेतैं ? साक्षीके स्वरूपविषै तौ अंतःकरणका प्रवेश है नहीं औ प्रमेयचेतनसैं साक्षीकूं भिन्नताकरिके जनावैहै । यातैं एकही अंतःकरण साक्षीकी तौ उपाधि है औ प्रमाताका विशेषण है । इसरीतिसैं—

१ अंतःकरणउपहित जो चेतन है सो तौ साक्षी है । औ—
२ अंकःकरणविशिष्टचेतन प्रमाता है ॥—

१ जो उपाधिवाला होवै सो उपहित कहियेहै । औ—
२ विशेषणवाला होवै सो विशिष्ट कहियेहै ।

जो अंतःकरणविशिष्ट प्रमाता है सोई कर्त्ताभोक्ता सुखीदुःखी संसारी जीव है । यह अवच्छेदवादकी रीति है । औ—

॥ २०२ ॥ आभासवादकी रीतिसैं जीव औ साक्षीआदिकका लक्षण ॥

१ आभासवादमैं आभाससहित अंतःकरण जीवका विशेषण है । औ—
२ आभाससहित अंतःकरण साक्षीकी उपाधि है । यातैं—

१ साभास अंतःकरणविशिष्ट चेतन जीव है । औ—
२ साभास अंतःकरणउपहित चेतन साक्षी है ॥

यद्यपि दोनूंपक्षमैं विशेषणसहित चेतन जीव है सोई संसारी है, तथापि विशेष्यभाग जो चेतन है ताकेविषै तौ जन्ममरणसैं आदिलेके संसारका संभव है नहीं यातैं विशेषणमात्रमैं संसार है । सोई विशिष्टचेतनमैं प्रतीत होवैहै ।

१ कहूं तौ विशेषणके धर्मका विशिष्टमैं व्यवहार होवैहै । औ—
२ कहूं विशेष्यके धर्मका विशिष्टमैं व्यवहार होवैहै । औ—
३ कहूं विशेषणविशेष्य दोनूंवांके धर्मका विशिष्टमैं व्यवहार होवैहै ।

जैसैं दंडकरिके घटाकाशका नाश होवैहै । या स्थानमैं विशेषण जो घट है ताका दंडकरिके नाश होवैहै, औ विशेष्य जो आकाश है ताका नाश बनै नहीं; तौ बी विशिष्ट जो घटाकाश है ताका नाश प्रतीत होवैहै । औ—

२ "कुंडलीपुरुष सोवैहै" या स्थानमैं कुंडल विशेषण है औ पुरुष विशेष्य है । विशेषण जो कुंडल है ताकेविषै सोवना बनै नहीं । किंतु विशेष्य जो पुरुष है ताकेविषै सोवना है । औ "कुंडलविशिष्ट सोवैहै" ऐसा विशिष्टमैं व्यवहार होवैहै । औ—

३ "शस्त्री पुरुष युद्धमैं गयाहै" या स्थानमैं विशेषण जो शस्त्र औ विशेष्य पुरुष दोनूं युद्धमैं गयेहैं । यातैं दोनूंवांके धर्मका विशिष्टमैं व्यवहार होवैहै ॥

या स्थानमैं

१ अवच्छेदवादमैं तौ अंतःकरण विशेषण है । औ—
२ आभासवादमैं साभासअंतःकरण विशेषण है । औ—

दोनूं पक्षमैं चेतन विशेष्य है, ताकेविषै तौ जन्मादिसंसार बनै नहीं; किंतु विशेषण-अंतःकरण अथवा साभासअंतःकरण ताका धर्म जो जन्मादिकसंसार ताका विशिष्टचेतनमैं व्यवहार करियेहै ॥

॥ २१० ॥ अविवेकी जनोंकरि अंतःकरणरूप विशेषणके धर्मरूप संसारका अज्ञानकृत भ्रांतिसैं विशेषणसहित चेतनमैं प्रतीति औ कथनरूप व्यवहार करियेहै ।

व्यवहार नाम प्रतीति औ कहनेका है ॥

इस रीतिसें आभासवाद औ अवच्छेदवादका भेद है ॥

॥ २०३ ॥ आभासवादकी श्रेष्ठता ॥

आभासवादमें तौ अंतःकरण आभाससहित है औ अवच्छेदवादमें अंतःकरण आभासरहित है । दोनूं पक्षमें आभासवाद श्रेष्ठ है । काहेतें ?—

१ भाष्यकारनें आभासवाद अंगीकार कियाहै ॥ औ—

२ अवच्छेदवादमें विद्यारण्यस्वामीनें दोष बी कह्याहै:-जो आभासरहित अंतःकरण अवच्छिन्नचेतनकूं प्रमाता मानैं तौ घट-अवच्छिन्नचेतन बी प्रमाता हुवाचाहिये । काहेतें ?

(१) जैसें अंतःकरण भूतनका कार्य है तैसें घट बी भूतनका कार्य है ॥ औ—

(२) जैसें अंतःकरण चेतनका अवच्छेदक कहिये व्यावर्त्तक है तैसें घट बी चेतनका अवच्छेदक है ।

यातें अंतःकरणविशिष्टकी न्यांई घटविशिष्ट बी प्रमाता हुवाचाहिये ॥ औ—

अंतःकरणमें आभास अंगीकार कियेतें यह दोष नहीं । काहेतें ?

१ अंतःकरण तौ भूतनके सत्वगुणका कार्य है । यातें स्वच्छ है । औ—

२ घटादिक भूतनके तमोगुणके कार्य हैं, यातें स्वच्छ नहीं ॥

१ जो स्वच्छ पदार्थ होवै सोई आभासके योग्य होवैहै ।

२ मलिन पदार्थ आभासके योग्य नहीं । जैसें काच औ ताका ढकना दोनूं पृथिवीके कार्य हैं । परंतु—

१ काच तौ स्वच्छ है, तामैं मुखका आभास होवैहै ।

२ ढकना स्वच्छ नहीं, यातें तामें आभास होवै नहीं ॥

१ तैसें सत्वगुणका कार्य होनेतें अंतःकरण स्वच्छ है । ताहीमें चेतनका आभास होवैहै ।

२ शरीरादिक औ घटादिक तमोगुणके कार्य होनेतें स्वच्छ नहीं । तिनमें चेतनका आभास होवै नहीं ॥

॥ २०४ ॥ अंतःकरणमें द्विविधप्रकाश है । यातें सोई प्रमाता है । अन्य नहीं ॥

इस रीतिसें अंतःकरणमें द्विविध प्रकाश है । एक तौ व्यापकचेतनका प्रकाश औ दूसरा आभासका प्रकाश है ॥

शरीरादिक औ घटादिकनमें एक व्यापक-चेतनका प्रकाश तौ है । दूसरा आभासका प्रकाश नहीं । यातें द्विविधप्रकाशसहित अंतः-करणविशिष्टही चेतन प्रमाता कहियेहै ।

एकप्रकाशसहित जो घटादिक तिन-करिके संयुक्त चेतन प्रमाता नहीं ॥ जिनके मतमें अंतःकरणमें आभास नहीं तिनके मतमें घटादिकनकी न्यांई अंतःतरणमें बी आभास-का दूसरा प्रकाश तौ है नहीं । व्यापक चेतनका जो एकप्रकाश अंतःकरणमें सोई व्यापक चेतनका प्रकाश घटादिकनमें है । यातें अंतः-करणविशिष्टकी न्यांई घटविशिष्ट वा शरीर-विशिष्ट वा भीतविशिष्टचेतन बी प्रमाता हुवा-चाहिये ॥

इस रीतिसें घटशरीरादिकनतें अंतःकरणमें यही विलक्षणता है:—

१ अंतःकरण सत्वगुणका कार्य है, यातें स्वच्छ होनेतें चेतनका आभास ग्रहण करनेके योग्य है ।

२ और पदार्थ स्वच्छ नहीं । यातैं आभास ग्रहण करनैके योग्य नहीं ॥

१ आभासग्रहणके योग्य जो अंतःकरण ताकरिके संयुक्तही चेतन **प्रमाता** कहियेहै ।

२ घटादिक औ शरीरादिक आभास-ग्रहणके योग्य नहीं । यातैं तिनकरिके विशिष्टचेतन प्रमाता नहीं ॥

इस रीतिसैं आभासवादही उत्तम[२११] है । अवच्छेदवाद नहीं ॥

॥ २०५ ॥ प्रमाताआदिक चारि चेतनका स्वरूप ॥

जैसैं अंतःकरण आभाससहित है, तैसैं अंतःकरणकी वृत्ति बी आभाससहितही होवैहै ।

साभासवृत्तिविशिष्ट चेतन **प्रमाणचेतन** कहियेहै ॥

अंतःकरणकी घटादिविषयाकार जो वृत्ति तामैं आरूढ चेतनकूं **प्रमा** औ **यथार्थज्ञान** कहैहैं ॥

ताका साधन जो इंद्रिय सो **प्रमाण** कहियेहैं । काहेतैं ? विषयाकारवृत्तिमैं आरूढचेतनकूं **प्रमा** कहैहैं । तहां चेतन यद्यपि स्वरूपकरिके नित्य है । यातैं इंद्रियजन्यताके अभावतैं प्रमा-चेतनका साधन इंद्रिय नहीं । तथापि निरुपाधिक चेतनमैं तौ प्रमाव्यवहार है नहीं । किंतु विषयाकारवृत्तिउपहित चेतनमैं प्रमाव्यवहार होवैहै । यातैं चेतनविषै प्रमाशब्दकी प्रवृत्तिमैं विषयाकारवृत्ति उपाधि है सो विषयाकार-वृत्ति इंद्रियजन्य है । इंद्रिय ताका साधन है । प्रमापनैकी उपाधि जो वृत्ति ताको इंद्रिय-जन्य होनैतैं उपहित जो प्रमा सो बी इंद्रिय-जन्य कहियेहै । यातैं इंद्रिय **प्रमाका साधन** कहियेहै । परंतु अंतःकरणका परिणाम सारा प्रमा नहीं कहियेहै । किंतु शरीरके भीतर जो अंतःकरण ताका विषय घटादिकनतोडी परिणाम । ताकूं **प्रमाण** कहैहै ॥

विषयतैं मिलिके विषयके समान जो अंतः-करणका परिणाम उतनैकूं **प्रमा** कहैहैं ।

शरीरके भीतर जो अंतःकरण तासैं लेके घटादिक विषयतोडी पहुंचा जो अंतःकरणका परिणाम सोई प्रमारूपकूं धारैहै । यातैं प्रमाका प्रमाणरूप अंतःकरणकी वृत्तिसैं अत्यंत भेद नहीं ॥

१ इस रीतिसैं बाहिरके पदार्थनका प्रत्यक्ष-ज्ञान जहां होवै तहां अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर जायके विषय जो घटादिक तिनके समान आकाररूपकूं धारैहै । औ—

२ शरीरके अंतर जो आत्मा ताका प्रत्यक्ष होवै । तब अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर जावै नहीं । किंतु शरीरके भीतरही वृत्ति आत्माकार होवैहै ॥

१ ता वृत्तिसैं आत्माके आश्रित आवरण दूरि होवैहै । औ—

२ आत्मा अपनै प्रकाशतैं ता वृत्तिमैं प्रकाशैहै । इसी कारणतैं वृत्तिका विषय आत्मा कह्याहै औ चिदाभासरूप जो वृत्तिमैं फल ताका विषय आत्मा नहीं ।

या प्रकारतैं साक्षी आत्मा स्वयंप्रकाशरूप भान होवैहै, यह सिद्ध हुआ ॥ ११६ ॥

॥ २११ ॥ यद्यपि आभासवादमैं आभासकी कल्पना अधिक करनी होवैहै । अवच्छेदवादमैं नहीं । यातैं आभासवादमैं गौरव है । अवच्छेदवादमैं लाघव है । तथापि मंदबुद्धिवाले जिज्ञासुकी बुद्धिमैं आभासवादका आरोप ठीक बैठताहै । या अभिप्राय-सैं इहां आभासवादकी स्तुति करीहै । भाष्यकार-आदिकनका बी यही तात्पर्य है ॥

॥२०६॥ प्रश्नः—इंद्रियसंबंधविना "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान प्रत्यक्ष कैसै बनै ?॥ २०६—२१० ॥

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

इंद्रियके संबंध बिन,
"अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ।
कैसै व्हे प्रत्यच्छ प्रभु ?
मोकूं कहौ बखान ॥ ११७ ॥

टीकाः—"ब्रह्मके अपरोक्षज्ञानतैं सकल-अविद्याजालका नाश होवैहै। परोक्षज्ञानतैं नहीं" यह पूर्व कह्या । ताकेविषै शंका करैहैः—ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष बनै नहीं । काहेतैं ? इंद्रिय-जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष होवैहै । ब्रह्मका ज्ञान इंद्रिय-जन्य बनै नहीं । काहेतैं ?

॥२०७॥ १ ब्रह्मकूं नेत्रकी अविषयता ॥

(रामकृष्णादिकनके शरीर ब्रह्म नहीं ॥)

नेत्रइंद्रियतैं रूपवान्‌का अथवा नीलादिक रूपका ज्ञान होवैहै । ऐसा ब्रह्म नहीं । यातैं नेत्रइंद्रियजन्य ज्ञान ब्रह्मका बनै नहीं ॥

रामकृष्णादिकनकी जो मनुष्याकारमूर्ति है सो यद्यपि रूपवाली है तथापि सो मूर्ति मायारचित है । मिथ्या है । सो मूर्ति ब्रह्म नहीं ॥ औ—

पुराणमैं रामकृष्णादिकनकूं ब्रह्मरूपता कहीहै सो तिनकी शरीररूप मूर्ति ब्रह्मरूप है, इस अभिप्रायतैं नहीं कही । किंतु तिनके शरीरन-का अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है । इस अभिप्रायतैं कहीहै । याकेविषै—

ऐसी शंका होवैहैः—सर्वशरीरनका अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है, यातैं अधिष्ठानचेतन-अभिप्रायतैं रामकृष्णादिकनकूं ब्रह्मरूपता कही-होवै तौ सर्वशरीरनका अधिष्ठानचेतन ब्रह्म होनैतैं मनुष्यपशुपक्षीआदिक सर्वही ब्रह्मरूप हैं । तिनके समानही रामकृष्णादिक होवैंगे । यातैं रामकृष्णादिकनकूं अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है । इस अभिप्रायतैं ब्रह्मरूपता नहीं कही । किंतु तिनकूं और जीवनतैं विशेषरूपताकी सिद्धि-वास्तै तिनका शरीरही ब्रह्म है । ऐसा मानना योग्य है ॥

सो बनै नहीं । काहेतैं ? शरीरका बाध-करिके तिनके शरीरनकूं ब्रह्मरूपता मानै तौ—

१ सर्वशरीरनका बाधकरिके सारेई शरीर ब्रह्मरूप हैं । औ—
२ बाध किये विना तौ अन्य शरीरनकी न्यांई हस्तपादादिक अवयवसहित रूपवान् क्रियावान् शरीरका निरवयव नीरूप अक्रिय ब्रह्मतैं अभेद बनै नहीं, यातैं रामकृष्णादिकनका शरीर ब्रह्म नहीं । परंतु—

इतना भेद हैः—१ जीवनके शरीर पुण्यपापके आधीन हैं । २ भूतनके कार्य हैं औ ३ जीवनकूं देहादिक अनात्म पदार्थनविषै अविद्या-बलतैं अहंममअध्यास है । आचार्यके उपदेशतैं ता अध्यासकी निवृत्ति होवैहै । औ—

१ रामकृष्णादिकनके शरीर अपनैं पुण्य-पापतैं रचित नहीं । भूतनके कार्य नहीं । किंतु—

(१) जैसैं सृष्टिके आदिमैं प्राणियोंके कर्म भोग देनैकूं सन्मुख होवैं तब आप्तकाम ईश्वर-मैं बी प्राणियोंके कर्मके अनुसार "मैं जगत्‌की उत्पत्ति करूं" ऐसा संकल्प होवैहै । ता संकल्पतैं जगत्‌की उत्पत्तिरूप सृष्टि होवैहै ।

(२) तैसैं सृष्टितैं अनंतर बी "मैं जगत्‌का पालन करूं" ऐसा ईश्वरका संकल्प होवैहै । ता संकल्पतैं जगत्‌का पालन होवैहै ॥

कर्मनके अनुसार सुखदुःखका संबंध पालन कहियेहै ॥

(३) ता पालनसंकल्पके मध्य उपासक पुरुषनकी उपासनाके बलतैं ईश्वरकूं ऐसा संकल्प होवैहैः—"रामकृष्णादिकनामसहित मूर्त्ति सर्वकूं प्रतीत होवै" ता ईश्वरसंकल्पतैं विशेषनामरूपरहित ईश्वरमैं रामकृष्णादिकनाम पीतांबरधरादिस्यामसुंदरविग्रहरूपकी उत्पत्ति होवैहै। सो विग्रह कर्मके आधीन नहीं।

यद्यपि रामकृष्णादिक विग्रहतैं साधु औ दुष्टनकूं क्रमतैं सुखदुःख होवैहै। जो जाके सुखदुःखका हेतु होवैहै सो ताके पुण्यपापतैं रचित होवैहै। यातैं पुण्यपापआधीन कहियेहै॥ इसरीतिसैं-

१ अवतारनके शरीर साधुपुरुषनकूं सुखके हेतु होनैतैं साधुपुरुषनके पुण्यसमुदायतैं रचित हैं।

२ तैसैं असुरादिक असाधु पुरुषनकूं दुःखके हेतु होनैतैं तिनके पापतैं रचित हैं।

यातैं "अवतारनके शरीर पुण्यपापके आधीन नहीं" यह कहना नहीं संभवै।

तथापि जैसैं जीवनै पूर्वशरीरमैं पुण्यपापकर्म कियेहैं तिनका फल उत्तरशरीरमैं ता जीवकूं सुखदुःख होवैहै। तहां शरीरअभिमानी जीवके पूर्वशरीरके अपनै पुण्यपापके आधीन उत्तरशरीर कहियेहै तैसैं रामकृष्णादिकनके शरीर यद्यपि साधुअसाधुपुरुषनके पुण्यपापके आधीन हैं औ तिनकूं सुखदुःखके हेतु हैं। परंतु रामकृष्णादिकनके पुण्यपापतैं रचित अवतारशरीर नहीं औ तिनकूं अपनै शरीरतैं सुखका तथा दुःखका भोग होवै नहीं। यातैं रामकृष्णादिकनके शरीर अपनै पुण्यपापके आधीन नहीं। यह संभवैहै॥

२ तैसैं भूतनके परिणाम बी रामकृष्णादिकशरीर नहीं किंतु चेतनआश्रित मायाका परिणाम है॥

(१) जो पंचीकृतभूतनके परिणाम होवै तो कृष्णशरीरविषै रज्जुकृत बंधनादिकनका अभाव शास्त्रमैं कह्याहै, सो असंगत होवैगा॥

यद्यपि पंचभूतरचित सिद्धयोगीशरीरमैं बी बंधनादिक होवै नहीं तथापि योगीशरीरमैं प्रथम बंधनादिकनका संभव होवैहै। फेरि योगाभ्यासरूप पुरुषार्थतैं बंधनदाहादिकनकी योग्यता नाश होवैहै।

कृष्णादिकनके शरीरमैं योगीकी न्यांई कछु पुरुषार्थसैं बंधनादिकनका अभाव नहीं। किंतु तिनके शरीर सहजही बंधनादियोग्य नहीं। यातैं भूतनके परिणाम नहीं। औ—

(२) मांडूक्यभाष्यकी टीकामैं आनंदगिरिनै रामादिकशरीर भूतनके परिणाम कहेहैं सो स्थूलदृष्टिसैं औरशरीरनके समान वे शरीर प्रतीत होवैहैं इस अभिप्रायतैं कहेहैं। काहेतैं ?

(३) भाष्यकारनैं गीताभाष्यमैं यह कह्याहैः— "जीवनके ऊपर अनुग्रहकरिके शरीरधारीकी न्यांई मायाके बलतैं परमात्मा कृष्णरूप प्रतीत होवैहै। सो जन्मादिकरहित है। ताका वसुदेवद्वारा देवकीतैं जन्म बी मायातैं प्रतीत होवैहै" इसरीतिसैं भाष्यकारनै कृष्णशरीर मायाका कार्य कह्याहै।

यातैं भूतनतैं अवतारशरीरनकी उत्पत्ति नहीं। किंतु तिनके शरीरनका उपादानकारण साक्षात् माया है॥

३ और जीवनकूं देहादिकनमैं आत्मभ्रांति है, रामकृष्णादिकनकूं नहीं। काहेतैं ?

(१) जीवनकी उपाधि अविद्या मलिनसत्वगुणवाली है। रामकृष्णादिकनकी उपाधि माया शुद्धसत्वगुणवाली है। यातैं जीवनकूं अविद्याकृत भ्रांति औ रामकृष्णादिकनकूं मायाकृत सर्वज्ञता होवैहै॥

(२) जीवनकूं अज्ञानकृत आवरण औ भ्रांतिके नाशनिमित्त आचार्यद्वारा महावाक्यके उपदेशजन्य ज्ञानकी अपेक्षा है। तैसैं रामकृष्णादिकनकूं आवरण औ भ्रांति नहीं। यातैं उपदेशजन्य ज्ञानकी अपेक्षा नहीं। किंतु जीअंतःकर्-

करणकी वृत्तिरूप ज्ञानकी न्यांई ईश्वरकूं माया-की वृत्तिरूप आत्माका ज्ञान तौ उपदेशादिक विना वी होवैहै । परंतु ता ज्ञानतैं कछु प्रयोजन तिनकूं सिद्ध होवै नहीं । काहेतैं ?

[१] जीवनकूं घटादिकनके ज्ञानतैं आवरभंग औ विषय जो घटादिक तिनका प्रकाश होवैहै औ ब्रह्मरूपतैं आत्माका ज्ञान जो जीवनकूं होवैहै । तहां—

(क) ज्ञानका विषय जो आत्मा ताका आवरणभंग तौ ज्ञानतैं होवैहै औ आत्माविषय स्वयंप्रकाश है ।

(ख) यातैं आत्मज्ञानतैं विषयका प्रकाश होवै नहीं । तैसैं ईश्वरकूं मायाकी वृत्तिरूप जो "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान, ताका विषय ईश्वरका आत्मा सो आवरणरहित स्वयंप्रकाश है । यातैं आवरणभंग वा विषयका प्रकाश । ईश्वरके ज्ञानका प्रयोजन नहीं ॥

[२] जैसैं जीवन्मुक्तविद्वानकूं निरावरण-आत्माकूं विषय करनैवाली अंतःकरणकी "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी वृत्ति आवरणभंगादिक प्रयोजन-रहित होवैहै तैसैं ईश्वरकूं वी आवरणभंगादिक प्रयोजनविना मायाकी वृत्तिरूप "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान उपदेशादिकतैं विना होवैहै ॥

इसरीतिसैं रामकृष्णादिकनकूं जीवनतैं वि-लक्षणता ईश्वरता है तौ वी तिनका शरीर मायारचित है । यातैं ब्रह्म नहीं किंतु मिथ्या है। मायानैं उत्पन्न कीया जो अवतारनका शरीर सो हस्तपादादिक अवयवसहित औ रूपसहित कियाहै । यातैं नेत्रइंद्रियका विषय तिनका शरीर होवैहै । ब्रह्मकूं नेत्रइंद्रिय विषय करै नहीं ॥

॥ २०८ ॥ २ ब्रह्मकूं त्वचाइंद्रियकी अविषयता ॥

तैसैं त्वचाइंद्रिय वी स्पर्शकूं औ स्पर्शके आश्रयकूं विषय करैहै । ब्रह्म स्पर्शका आश्रय नहीं औ स्पर्श नहीं । यातैं त्वचाइंद्रियका विषय नहीं ॥

॥ २०९ ॥ ३-५ ब्रह्मकूं रसना घ्राण औ श्रोत्रइंद्रियकी अविषयता ॥

रसनाइंद्रियतैं रसका ज्ञान, घ्राणतैं गंधका ज्ञान औ श्रोत्रतैं शब्दका ज्ञान होवैहै । रसगंध-शब्दतैं ब्रह्म विलक्षण है । यातैं रसना घ्राण औ श्रोत्रतैं ब्रह्मका ज्ञान होवै नहीं ॥ औ—

॥ २१० ॥ ब्रह्मकूं कर्मइंद्रियनकी अविषयता ॥

कर्मइंद्रिय ज्ञानके साधन नहीं किंतु वचना-दिकक्रियाके साधन हैं । यातैं तिनतैं तौ किसीका ज्ञान होवै नहीं ।

इस रीतिसैं किसी इंद्रियतैं ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं ॥

औ इंद्रियतैं जो ज्ञान होवै सो ज्ञान प्रत्यक्ष कहियेहै । प्रत्यक्षकूंही अपरोक्ष कहैहैं ॥

यातैं ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान बनै नहीं । किंतु शब्दसैं ब्रह्मका ज्ञान होवैहै । जो शब्दसैं ज्ञान होवै सो परोक्ष होवैहै । यातैं ब्रह्मका ज्ञान वी परोक्षही होवैहै ॥

(॥ २०६-२१० गत प्रश्नका उत्तर ॥ २११-२१२ ॥)

॥ २११ ॥ इंद्रियसंबंधविना प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं । यह नियम नहीं ॥ सुख-दुःखकी साक्षीभास्यता ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

इंद्रिय बिन प्रत्यच्छ नहिं,

सिष यह नियम न जान ।
बिन इंद्रिय प्रत्यच्छा व्है,
जैसै सुखदुःख ज्ञान ॥ ११८ ॥

टीकाः-इंद्रियसंबंधविना प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं यह नियत नहीं । काहेतैं ? जैसैं सुखका औ दुःखका ज्ञान होवै सो किसी इंद्रियतैं होवै नहीं । सो सुखदुःखका ज्ञान बी प्रत्यक्ष होवैहै । यातैं इंद्रियसंबंधतैं जो ज्ञान होवै सोई प्रत्यक्षज्ञान होवै यह नियम नहीं । किंतु विषयतैं वृत्तिका संबंध होयके विषयाकारवृत्ति जहां होवै तहां प्रत्यक्षज्ञान कहियेहै ॥

१ सो विषयतैं वृत्तिका संबंध कहूं इंद्रियद्वारा होवैहै । औ-

२ कहूं शब्दसैं होवैहै ॥ जैसैं " दशम तूं है" इस शब्दतैं दशम जो आप तातैं अंतःकरणकी वृत्तिका संबंध होयके दशमाकारवृत्ति होवैहै । यातैं शब्दजन्य बी दशमका ज्ञान प्रत्यक्ष होवैहै ॥

तैसैं प्रमाताविषै सुखःदुःख होवै तब सुखाकारदुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति होवै । ता वृत्तिसैं सुखःदुखका संबंध होवैहै । यातैं सुखदुःखका ज्ञान प्रत्यक्ष कहियेहै ॥

पूर्वउत्पन्न सुखदुःख नष्ट हुये पीछे जहां रूपकूं याद आवै तहां सुखाकार दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति तौ होवैहै । परंतु वृत्तिके नष्ट हुये सुखदुःखतैं संबंध नहीं । यातैं सो ज्ञान स्मृतिरूप है, प्रत्यक्षरूप नहीं ॥

१ यद्यपि अंतःकरणके धर्म सुखदुःख साक्षीभास्य हैं, तथापि सुखाकारदुःखाकार अंतःकरणकी वृत्तिद्वारा साक्षी सुखदुःखका प्रकाश करैहै ।

२ जो साक्षीभास्य पदार्थ हैं तिनकूं बी साक्षी वृत्तिकी अपेक्षातैंही प्रकाशैहै । जैसैं शुक्तिरजत साक्षीभास्य हैं तहां अविद्याकी वृत्तिकी अपेक्षाकरिके साक्षी रजतकूं प्रकाशैहै ।

१ परंतु सुखदुःखके प्रकाशमैं अंतःकरणकी वृत्ति साक्षीकी सहायक है । औ

॥ २१२ ॥ विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेदही प्रत्यक्ष ज्ञानका लक्षण है । सो अभेद—

१ कहूं इंद्रियद्वारा होवैहै ।
२ कहूं शब्दसैं होवैहै । औ—
३ कहूं इंद्रियादिरूप बाह्यनिमित्तसैं विनाही शरीरके भीतर उपजी वृत्तिद्वारा होवैहै ।

तहां प्रत्यक्षज्ञान कहियेहै—

चेतनका स्वरूपसैं तो कहूं भेद है नहीं । किंतु विषय औरं वृत्तिरूप उपाधिका किया भेद है । सो उपाधि जब भिन्नदेशमैं स्थित होवै । तब तिस उपाधिवाले चेतनका भेद कहियेहै ।

जब विषयाकारवृत्ति होवै तब दोनूं उपाधि एकदेशविषै स्थित होवैहै, यातैं तिस उपाधिवाले विषयचेतन औ वृत्तिचेतनका अभेद कहियेहै । सो विषयचेतनतैं वृत्तिचेतनका अभेदही प्रत्यक्षज्ञान कहियेहै । याहीकूं अपरोक्षज्ञान औ साक्षात्कार बी कहतेहैं ।

यह प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण

१ इंद्रियजन्य बाह्यघटादिकके प्रत्यक्षज्ञानविषै अनुगत है । औ —
२ महावाक्यजन्य ब्रह्मके प्रत्यक्षज्ञानविषै अनुगत है । औ—
३ बाह्यनिमित्तसैं विना अंतर उपजे सुखदुःखके प्रत्यक्षज्ञानविषै अनुगत है । औ—
४ मायाकी वृत्तिरूप ईश्वरके ज्ञानविषै अनुगत है । औ—
५ अविद्याकी वृत्तिरूप रज्जुसर्पादिकनके ज्ञानविषै अनुगत है ॥

प्रत्यक्षज्ञानके लक्षणका विशेष निर्णय वृत्तिरत्नावलिके द्वितीयरत्नविषै कियाहै ॥

२ मिथ्यारजतादिकनके प्रकाशमैं अविद्याकी वृत्ति सहायक है ।

इस रीतिसैं साक्षीभास्य पदार्थके ज्ञानमैं बी वृत्तिकी अपेक्षा है ॥

१ सो वृत्ति जहां इंद्रियादिक बाह्यसाधनतैं होवै ताका विषय **साक्षीभास्य नहीं** कहियेहै ।

सुखदुःखकूं विषय करनैवाली वृत्तिमैं बाह्यइंद्रियादिक हेतु नहीं । किंतु जब सुखादिक उत्पन्न होवैं तिसी कालमैं अन्यसाधनकी अपेक्षाविना सुखाकारदुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति होवैहै । ता वृत्तिमैं आरूढ साक्षी सुखदुःखकूं प्रकाशैहै । यातैं सुखदुःख **साक्षीभास्य** कहियेहैं ॥ औ—

॥ २१२ ॥ ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष संभवैहै ॥ तत्त्वदृष्टिकूं भेदभ्रमका अंत ॥

बाह्य जो घटादिक हैं तिनसैं अंतःकरणकी वृत्तिका संबंध नेत्रादिक इंद्रियद्वारा होवैहै । यातैं घटादिक साक्षीभास्य नहीं ।

तैसैं ब्रह्माकार अंतःकरणकी वृत्ति होवैहै सो अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर नहीं जावैहै । किंतु शरीरके अंतरही होवैहै । ता वृत्तिसैं ब्रह्मका संबंध है । यातैं ब्रह्मका ज्ञान बी सुखदुःखके ज्ञानकी न्यांई प्रत्यक्षरूप है । परंतु

१ सुखाकारदुःखाकार वृत्तिमैं बाह्यसाधनकी अपेक्षा नहीं, यातैं सुखदुःख **साक्षीभास्य** हैं ॥ औ—

२ ब्रह्माकार जो अंतःकरणकी वृत्ति तामैं तौ गुरुद्वारा वेदवचनका श्रोत्रसैं संबंध बाह्यसाधन चाहियेहै । यातैं ब्रह्म **साक्षीभास्य नहीं** ।

इस रीतिसैं जहां विषयतैं वृत्तिका संबंध होवै, तहां प्रत्यक्षज्ञान कहियेहै ॥ "अहं ब्रह्मास्मि"

॥ २१३ ॥ जैसैं:—

१ चक्षुविषै सूर्यकी अभेदता है तिसकूं अंगुलीआदिरूप स्वल्पआवरणसैं आच्छादित भये ब्रह्मांडवर्ति सूर्यका प्रकाश दीखता नहीं । औ—

२ तिस आवरणके निवृत्त भये चक्षुगत अंतःकरणकी वृत्तिसैं ब्रह्मांडवर्ति सूर्यका प्रकाश दीखताहै ।

तैसैं:—

१ साक्षीआत्माविषै ब्रह्मकी अभेदता है तिसकूं अंतःकरणगत अज्ञानांशरूप स्वल्पआवरणसैं आच्छादित भये सर्वत्र परिपूर्णब्रह्म प्रत्यक्ष भासता नहीं ।

२ जब शरीरके भीतर उपजी ब्रह्मात्माकी अभेदताके आकार वृत्तिकरि उक्त आवरणका भंग होवै तब गृहगत आकाशके असंगतादिकके ज्ञानकरि महाकाशके असंगतादिके ज्ञानकी न्यांई सर्वत्र परिपूर्ण ब्रह्मका स्वप्रकाशताकरिके भान होवैहै ॥

॥ २१४ ॥ जैसैं ब्रह्म साक्षीभास्य नहीं तैसैं ब्रह्म चिदाभाससहित अंतःकरणकी वृत्तिरूप प्रमाताका बी विषय नहीं । अन्यदीपककी अपेक्षासैं रहित केवल नेत्रके विषय दीपककी न्यांई अंतःकरणकी "अहं ब्रह्मास्मि" इस आकारवाली केवलवृत्तिका विषय ब्रह्म है । यातैं ब्रह्म प्रमाताभास्य बी नहीं । किंतु अपनै प्रकाशमैं अन्यप्रकाशकी अपेक्षासैं रहित सर्वका प्रकाशक ऐसा **स्वयंप्रकाशरूप** ब्रह्म है ।

वृत्ति बी वस्त्रके मलकूं साबूनकी न्यांई ब्रह्मका आवरण भंग करैहै सोई ताका विषय करना है । औरप्रकारका विषय करना वृत्तिका नहीं । औ—

"अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी वृत्तिरूप तत्त्वज्ञानकूं बाह्यसाधनकी अपेक्षाविना साक्षी प्रकाशताहै । यातैं सो तत्त्वज्ञान साक्षीभास्य है ।

या वृत्तिका विषय जो ब्रह्म तासैं संबंध है। यातैं ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष संभवैहै। औ—

१ जहां धूमकूं देखिके अग्निका ज्ञान होवैहै तहां धूमका ज्ञान तौ प्रत्यक्ष है औ अग्निका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं। काहेतैं ? नेत्रद्वारा अंतःकरणकी वृत्तिका धूमतैं संबंध है यातैं धूमका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है। औ—

२ अनुमानतैं अंतःकरणकी वृत्ति शरीरके अंतर अग्निके आकारकूं ग्रहण करनैवाली तौ हुई। परंतु अग्निसैं वृत्तिका संबंध नहीं। यातैं अग्निका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं।

इसरीतिसैं जहां वृत्तिसैं विषयका संबंध होवै तहां प्रत्यक्षज्ञान कहियेहै।

जहां वृत्तिसैं विषयका संबंध नहीं होवै, विषय बाहिर दूरि होवै अथवा भूत वा भविष्यत् होवै औ अनुमानतैं अथवा शब्दतैं विषयाकारवृत्ति अंतर होवै सो ज्ञान परोक्ष कहियेहै ॥

इंद्रियजन्य ज्ञानही प्रत्यक्ष होवैहै। यह नियम नहीं। जैसैं सुखदुःखका ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं औ प्रत्यक्ष है। तैसैं दशमपुरुषका ज्ञान शब्दजन्य है तौ बी प्रत्यक्ष होवैहै ॥

इस रीतिसैं गुरुद्वारा श्रवण किया जो महावाक्यरूप वेदशब्द तासैं उत्पन्न हुवा ब्रह्मज्ञान बी प्रत्यक्षही संभवैहै ॥ ११८ ॥

॥ दोहा ॥

गुरुको अस उपदेस सुनि,
तत्त्वदृष्टि बुद्धिमंत।
ब्रह्मरूप लखि आतमा,
कियो भेदभ्रम अंत ॥ ११९ ॥
'अहं ब्रह्म' या वृत्तिमैं,
निरावरन व्है भान ॥
दादू आदूरूप सो,
यूं हम लियो पिछान ॥ १२० ॥

इति श्रीविचारसागरे उत्तमाधिकारीउपदेशनिरूपणं नाम चतुर्थस्तरंगः समाप्तः ॥ ४ ॥

॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ पंचमस्तरंगः ॥ ५ ॥

॥ अथ श्रीगुरुवेदादिव्यावहारिकप्रतिपादन ॥ २१३-२७६ ॥

ओं

॥ मध्यमाधिकारीसाधननिरूपणं ॥ २७७-३०३ ॥

॥२१३॥ अदृष्टिका प्रश्नः—वेदगुरु सत्य होवै वा मिथ्या होवै ? दोनूंरीतिसें वेदगुरुतें अद्वैतज्ञान बनै नहीं ॥

पूर्वतरंगमें यह कह्याः—"गुरुमुखद्वारा श्रवण किये वेदवाक्यतें अद्वैतब्रह्मका साक्षात्कार होवैहै" ताकूं सुनिके अदृष्टिनाम द्वितीयशिष्य यह शंका करैहैः—

१ वेदगुरु सत्य होवैं तौ अद्वैतकी हानि।
२ असत्य होवै तौ तिनतें पुरुपार्थकी प्राप्ति बनै नहीं।
दोनूंरीतिसें वेदगुरुतें अद्वैतज्ञान बनै नहीं ॥

॥ चौपाई ॥

वेद रु गुरु जो मिथ्या कहिये।
तिनतैं भवदुख नस्यो न चहिये ॥
जैसैं मिथ्या मरुथलको जल।
प्यासनासको नहिं तामैं बल ॥ १ ॥
सत्य वेद गुरु कहैं तु द्वैत
भयो गयो सिद्धांत अद्वैत ॥
यूं संकरमत पेखि असुद्धा।
तज्यो सकल मध्वादि प्रबुद्धा ॥ २ ॥
["भयो" पदको प्रथमपादसें अन्वय है]
यह संका भगवन् मुहि उपजे।
उत्तर देहु दयाल न कुपिजे ॥

(॥ उत्तर ॥ २१४-२३६ ॥)

॥ २१४ ॥ शंकरमतकी प्रमाणता ॥

गुरु बोले सिपकी सुनि बानी।
संकरको मत परम प्रमानी ॥ ३ ॥
चारियार मध्वादिक जे हैं।
वेदविरुद्ध कहत सब ते हैं ॥
यामैं व्यासवचन सुनि लीजे।
संकरमतहि प्रमान करीजे ॥ ४ ॥
कलिमैं वेदअर्थ बहु करि हैं।
श्रीसंकरसिव तब अवतरि हैं ॥
जैनबुद्धमत मूल उखारै।
गंगातैं प्रभु मूर्ति निकारै ॥ ५ ॥

जैसैं भानु उदय उजियारो ।
दूरि करै जगमैं अंधियारो ॥
सब वस्तुहि ज्यूंको त्यूं भासै ।
संसै और विपर्यय नासै ॥ ६ ॥

वेदअर्थमैं त्यूं अज्ञाना ।
नसि है श्रीसंकरव्याख्याना ॥
करि है ते उपदेस यथारथ ।
नासहि संसय अरु अयथारथ ॥ ७ ॥

अयथार्थ कहिये भ्रांति ।

और जु वेदअर्थकूं करि हैं ।
ते सठ वृथा परिश्रम धरि हैं ॥
यूं पुरानमैं व्यास कही है ।
संकरमतमैं मान यही है ॥ ८ ॥

मध्वादिकको मत न प्रमानी ।
यह हम व्यासवचनतैं जानी ॥
और प्रमान कहूं सो सुनिये ।
वालमीकरिषि मुख्य जु गिनिये ॥९॥

तिन मुनि कियो ग्रंथ वासिष्ठा ।
तामैं मत अद्वैत स्पष्टा ॥
श्रीसंकर अद्वैतहि गान्यो ।
तिनको मत यहं हेतु प्रमान्यो ॥१०॥

॥ २१५ ॥ भेदवादकी अप्रमाणता ॥

वालमीकरिषि वचन विरुद्धं ।
भेदवाद लखि सकल असुद्ध ॥ ११ ॥

॥ २१५ ॥ या प्रकारके वायुपुराणकूर्मपुराण आदिगत व्यासभगवान्‌के वाक्यतैं ॥

टीकाः—सर्वप्रकरणका भाव यह हैः—व्यासभगवान्‌नै पुराणमैं यह कहीहैः—"जब कलिमैं वेदके अर्थकूं नानाभांति करैंगे तब कृपालु शिव श्रीशंकर नाम धारके अवतार लेके बद्रिनाथकी मूर्तिका देवनदीमध्यतैं उद्धार, स्वस्थानमैं स्थापन, जैनबुद्धमतखंडण औ वेदका यथार्थव्याख्यान करैंगे" ।

१ या व्यासवचनतैं श्रीशंकरमत प्रमाण है ।

२ औ मध्वादिकनका भेदमत अप्रमाण है ।

और उपनिषद्, गीता व सूत्र ये तीनि जो वेदांतके प्रस्थान हैं, तिनके यद्यपि मध्वादिकननै किसीतरैं खीचके स्वस्वमतके अनुसार व्याख्यान कियेहैं, तथापि व्यासवचनतैं श्रीशंकरकृत व्याख्यानही यथार्थ है॥औ—

आदिकवि सर्वज्ञ वाल्मीकऋषिनै उत्तररामायण वासिष्ठनाम ग्रंथ किया है, तहां अद्वैतमतमैं प्रधान जो दृष्टिसृष्टिवाद है सो अनेक इतिहासनसैं प्रतिपादन किया है, यातैं वाल्मीकवचनअनुसार अद्वैतमत प्रमाण है औ वाल्मीकवचनविरुद्ध भेदमत अप्रमाण है ॥

इसरीतिसैं सर्वज्ञऋषिमुनिवचनविरोधतैं भेदवाद अप्रमाण कह्या औ युक्तिसैं बी भेदवाद विरुद्ध है, यह खंडन आदिकग्रंथनमैं श्रीहर्षादिकननै प्रतिपादन कियाहै । युक्ति कठिन है । यातैं भेदमतखंडनकी युक्ति नहीं लिखी ॥ औ

॥ २१६ ॥ भेदवादका तिरस्कार ॥

ऋषिमुनिवचनतैं विरुद्ध भेदमतमैं जैनमतकी न्यांई अप्रमाणता निश्चय हुयेतैं युक्तिसैं खंडनकी आस्तिक अधिकारीकूं अपेक्षा बी नहीं । यह तीनि चौपाईसैं कहैहैः—

॥ चौपाई ॥

कियो ग्रंथ श्रीहर्ष[२१६] जु खंडन ।
खंडनभेद एकतामंडन ॥
लिख्यो तहां यह बहु विस्तारा ।
भेदवाद नहिं युक्ति सहारा ॥ १२ ॥

और भेदधिकार जु ग्रंथा ।
तहां भेदखंडनको पंथा ॥
कठिन दुरूहतर्क[२१७] है ते अति ।
नहीं पैठिहि सिष तिनमैं ते मति ॥१३॥

यातैं कही न ते तुहि उक्ती ।
करै जु भेदहि खंडन युक्ती ॥
अप्रमान मत भेद लख्यो जब ।
खंडनमैं युक्ति न चहियत तब ॥१४॥

वेदवचनसैं बी भेदमत विरुद्ध है, यह कहैहैं:—

भेदप्रतीति महादुखदाता ।
यैम[२१८] कठमैं यह टेरत ताता ॥
यातैं भेदवाद चित त्यागहु ।
इक अद्वैतवाद अनुरागहु ॥ १५ ॥

॥ १ ॥ "मृत्योः[२१९] स मृत्युमाप्नोति, य इह नानेव पश्यति" इति श्रुतेः।
॥ १ ॥ "द्वितीयाद्वै भयं भवति" ॥
॥ २ ॥ "अन्योसावन्योहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानां" इति द्वे श्रुती ॥

अर्थः—

जो द्वितीयकूं मतिमैं धारै ।
भय ताकूं यह वेद पुकारै ॥
ज्ञेय ध्येय मोतैं कछु औरा
लखै सु पसु यह वेद ढंढोरा ॥ १६ ॥

सिष यातैं मध्वादिकबानी ।
सुनी सु विसरहु अति दुखदानी ॥
द्वैतवचन तव हियमैं जौलौं ।
व्है साछात् अद्वैत न तौलौं ॥ १७ ॥

(॥ राजाके मंत्री भर्छुकी कथा ॥ २१७—२२८ ॥)

॥२१७॥ ॥ भर्छुका तपस्वी होना ॥

द्वैतवचनको स्मरन जु होवै ।
व्है साछात तु ताहि विगोवै ॥

॥ २१६ ॥ श्रीहर्षमिश्राचार्यनामक सरस्वतीकरि अनुगृहीत अद्वैतवादी पंडित भयेहैं । तिनोंनै जु कहिये जे, खंडन कहिये खंडनखंडखाद्यनामक ग्रंथ कियाहै, तामैं ।

॥ २१७ ॥ दुरूहतर्क कहिये जिनकी दुःखसैं बुद्धिमैं कल्पना होवै ऐसी प्रतिवादीके अनिष्टके संपादनरूप तर्क नाम युक्तियां हैं ।

॥ २१८ ॥ यम कहिये धर्मराजा, सो कठमैं कहिये कठवल्लीउपनिषद्मैं, यह वार्ता टेरत कहिये पुकारतेहैं ।

॥ २१९ ॥ अर्थः—"जो पुरुष इस परमात्माविषै नानाकी न्यांई देखताहै, सो मृत्युतैं मृत्युकूं पावताहै" इति ॥

पूर्वस्मृती साछात बिनासत ।
सुन इक अस तुहि कथा प्रकासत १८

राजाको इक भर्छू मंत्री ।
राज काज सब ताके तंत्री ॥
और मुसाहिब मंत्री जेते ।
करैं ईरषा तासू तेते ॥ १९ ॥

[तंत्री कहिये आधीन]

करि न सकत भर्छूकी हाना ।
महाराज निजजिय प्रिय जाना ॥
तब सब मिलि यह रच्यो उपाया ।
धारी[२२०] दौर दंगा मचवाया ॥ २० ॥

सो सुनि राजहि करी कचहरी ।
लिये बुलाय मुसाहिब जहरी ॥
तिनसूं कह्यो वेग चढि जावहु ।
दौरत[२२१] धारि सु धूम नसावहु ॥२१॥

तब सब मिलि उत्तर यह दीना ।
सदा एक भर्छुहि तुम चीना ।
मरनलिए अब हमहिं पठावतु ।
भर्छूकूं कहु क्यूं न चढावतु ? ॥ २२ ॥

तब बोल्यो भर्छू कर जोरी ।
महाराज सुनु बिनती मोरी ॥
आज्ञा होय मोहि यह रौरी[२२२] ।
मारूं सकल धारि जो दौरी ॥ २३ ॥

तब भर्छूकूं बोल्यो राजा ।
तुम चढि जाहु समारहु काजा ॥
ते जातहि भर्छू सब मारे ।
बैनेक[२२३] कृषीबैलें[२२४] किये सुखारे ॥ २४ ॥

भर्छू विजय सुन्यो तिन जबही ।
राजापैं भाख्यो यह तबही ।
" भर्छू मन्यो न सुधन्यो काजा " ।
मिथ्यावचन सुनतही राजा ॥ २५ ॥

औरप्रधान मुसाहिब[२२५] कीनो ।
छत्र रु पीनसें[२२६] पंखा दीनो ॥
बंदोबस तिन कीने अपनहु ।
सुनै न राजा भर्छु सुपनहु ॥ २६ ॥

सब वृत्तांत भर्छु तब सुनिके ।
रूप तपस्वि धन्यो यह गुनिके ॥
राजापैं मुहिं जान न दै हैं ।
गये द्वारलग प्रानहु लै हैं ॥ २७ ॥

अबलग सबहि पदारथ भोगे ।
देह रु इंद्रिय रहे अरोगे ॥

॥ २२० ॥ दौर धारि कहिये धाडाकरिके ।

॥ २२१ ॥ दौरत धारि कहिये धाडा करनैवालेकी । धूम कहिये लडाईकूं । सु कहिये अच्छीतरहसैं । नसावहु कहिये नाश करहु ।

॥ २२२ ॥ तुम्हारी ।

॥ २२३ ॥ वैश्य (धनिक) ॥

॥ २२४ ॥ खेती करनैवाले ॥

॥ २२५ ॥ और मुसाहिब कहिये वजीर (लघुमंत्री) कूं । प्रधान (मुख्यमंत्री) कीनो ।

॥ २२६ ॥ पालखी ।

तिय[227] जो चारि चतुर्पद[228] सोहत।
च्यारि फूल फल खग मन मोहत ॥२८॥

॥ २१८ ॥ नारीकी निंदा ॥

"तिय" आदि "खग" अंत। ये दोपदके अर्थका

दोहा ॥

॥ चारिचतुर्पद ॥

[229]
करि कर उरु मृग खुरु पुरज,
केहरिसी कटि मान ॥
लोयन चपल तुरंगसे,
बरनै परम[230]सुजान ॥ २९ ॥

॥ चारिफूल ॥

कमलवदन अलसी कुसुम,
चिबुकचिन्ह मतिधाम ॥
तिलप्रसूनसी नासिका,
चंपक तनु अभिराम[231] ॥ ३० ॥

॥ चारिफल ॥

बिंब अधर दारिम दसन,
उरज[232] बिल्लसे धीर ॥
कोहर[233]सी एडी कहत,
कोविद मति गंभीर ॥ ३१ ॥

॥ च्यारिखग ॥

है मराल[234]सी मंदगति,
कंठ कपोत[235] सुढार ॥
पिकसी बानी अति मधुर,
मोरपुच्छसे वार ॥ ३२ ॥

॥ चौपाई ॥

गंग पयोनिधि कबहु न त्यागत।
जातैं रसिकसु मन अनुरागत ॥

॥ २२७ ॥ इहांसैं लेके ३४ वें छंदपर्यंत काव्यग्रंथनकी रीतिसैं जो स्त्रीके अंगनका वर्णनरूप आरोप कियाहै, सो दोषदृष्टिरूप अपवादअर्थ है। काहेतैं? लक्ष्य जो अमाज तिस विना बाणके प्रहारकी न्यांई आरोपविना अपवाद होवै नहीं। यातैं प्रथम विषयासक्त पामर कविजनोंके कथनका अनुवादरूप आरोप कियाहै। पीछे या तरंगके ३५ वें छंदसैं स्त्रीके अंगनमैं दोषदृष्टिरूप अपवाद कहेंगे।

जातैं पीछे अपवाद कियाहै, तातैं इहां स्त्रीके अंगनकी उपमामैं तात्पर्य नहीं। किंतु तैसी उपमा देनैवाले विषयलंपट जनोंके उपहासमैं तात्पर्य है। सर्व-काव्यग्रंथनका बी यही अभिप्राय है।

उक्त स्त्रीके अंगनकी उपमाका यथास्थित खंडन हमनै रूपकादर्शमैं शृंगारवैराग्यके प्रसंगमैं लिख्याहै। तहां देख लेना।

॥ २२८ ॥ चारी पगवाले पशुकी न्यांई।

॥ २२९ ॥ करिकर कहिये हस्तीके सूंड जैसी। उरु कहिये साथर (जानूंसैं उपरका अंग) है।

॥ २३० ॥ काव्यग्रंथनमैं कुशल।

॥ २३१ ॥ तनु जो शरीर, ताका अभिराम कहिये आकार।

॥ २३२ ॥ उरज कहिये पयोधर, बिल्लसे कहिये बिल्वफल जैसैं हैं औ धीर कहिये सघन होनैतैं स्थिर हैं। अथवा धीर कहिये हे धीर!।

॥ २३३ ॥ मूलेके पत्ते जैसै पत्तेवाला। तैसाही छोटाशाकका वृक्षविशेष है। ताका नाम कोहर हैं। याहीकूं हिंदुस्थानमैं फारसीशब्दमैं सलगम बी कहतेहैं। ताके मूलमैं प्याज जैसा लालरंगवाला गोल-फल होवैहै, ताका नाम कोहरफल है। तिस जैसी स्त्रीकी एडी कवि कहतेहैं।

॥ २३४ ॥ हंसपक्षी जैसी।

॥ २३५ ॥ कोकिलानामक पक्षी जैसी

विधि तिलोत्तमा अपर बनाई ।
हन्यो सुंद जिन[२३६] सो न सुहाई ॥३३॥
मिहिंदी जावक कर पद रागा ।
तिनको मैं किय निमिष न त्यागा ।
और भोग[२३७] तिनके उपकरना ।
भोगे सबैं निकट भौ मरना ॥ ३४ ॥
अहो[२३८] मूढ को मम सम जगमैं ।
भौ लंपट अबलग मैं भगमैं ॥
गीलो मलिन मूत्रतैं निसिदिन ।
स्रवत मांसमय रुधिर जु छत[२३९] बिन॥३५॥
चर्म लपेट्यो मांसमलीना ।
ऊपरि वार असुद्ध अलीना ॥
इनमैं कौन पदारथ सुंदर ।
अति अपवित्र ग्लानिको मंदिर ॥३६॥
तियकी जंघ[२४०] जघन्य सदाही ।
रंभा करिकर उपमित जाही ।
आर्द्र मूतको मनु पतनारो ।
रुधिर मांस त्वक् अस्थि पसारो ॥३७॥
लगत जु नीके स्थूलनितंबा[२४१] ।
तिनके मध्य मलिन मैलबंबा[२४२] ॥
तट ताके ते अतिदुर्गंधा ।
व्है आसक्त तहां सो अंधा ॥ ३८ ॥

॥ २३६ ॥ जिन कहिये जिस ब्रह्माकी रची हुई तिलोत्तमानें सुंद औ तिसकरि उपलक्षित निसुंद-नामक दैत्य, हन्यो कहिये मरवायोहै । यातैं सो तिलोत्तमा हत्यारी होनैंतैं न सोहाई कहिये अच्छी नहीं औ मेरी स्त्री हत्यारी नहीं । यातैं तिस ब्रह्मदेव-रचित तिलोत्तमानामक अपसरातैं बी उत्तम है । यह अभिप्राय है ॥

इहां यह **महाभारतगत कथा** है:—कोई सुंद-निसुंदनामक दोनों दैत्य भ्राता थे । तिनोंनें तप-करिके ब्रह्मदेवसैं ऐसा वर लिया किः—"हम दोनूं भ्राता परस्परके हाथसैं लड मरैं तो मरैं, परंतु दूसरे किसीके हाथसैं मरैं नहीं." ऐसा वर पायके त्रिलोकीकूं दुःख देनै लगे । तब ब्रह्मदेवनैं दोनूं भ्राताकी प्रीतिभंगके निमित्त सारे जगत्की स्त्रियनतैं अतिसुंदर ऐसी तिलोत्तमा नाम अप्सरा रचिके ब्रह्मलोकसैं पृथ्वीपर तिन दोनूं दैत्यनके पास गेरी । ताकूं देखिके वे दैत्य प्रच्छा करनै लगे किः—"तूं हम दोनूंकूं वरैगी?" तब तिसनैं कह्या किः—"मैं एककूं वरौंगी । दोकूं नहीं" ॥ फेर सो तिन दोनूंकूं भिन्न भिन्न एकांतमैं बुलायके कहत भई किः— "तूं दूसरे भाईकूं मार तो तुजकूं वरूगी" इसरीतिसैं दोनूंसैं न्यारा न्यारा मंत्र (सलाह) किया, तब वे दोनूं भ्राता परस्पर लड मरे ॥

इसरीतिसैं वह तिलोत्तमा सुंद औ निसुंद दैत्यके मारनैमैं निमित्त भई । यातैं सो हत्यारी है ॥

॥ २३७ ॥ और खानपानआदिक अन्यइंद्रियन-के विषयनके भोग तिनके (स्त्री भोगके) उपकरण कहिये सामग्री है ॥

॥ २३८ ॥ इहांसैं लेके ३८ वें छंदपर्यंत जो पाठ है, सो स्त्रीके पास पुरुषकूं वांचना योग्य नहीं ॥

॥ २३९ ॥ शस्त्रादिककी चोटसैं जो अंग फटे । ता फटनैकूं छत (क्षत) कहतेहैं, तिस विना ऋतु-कालमैं स्त्रीकी योनितैं मांसमय रुधिर स्रवताहै, सो ग्लानिका स्थान है ॥

॥ २४० ॥ स्त्रीकी जंघ कहिये ऊरु नाम साथर, सो सर्वकालमैं जघन्य कहिये निकृष्ट है । जाकूं रंभा कहिये कदलीका खंभा औ करीकर कहिये हस्तिकी सुंड, तिनकरिके उपमित कहिये केइक विषयलंपट कवि उपमायुक्त करतेहैं । सो जंघ मनु कहिये मानौ आर्द्र (गीलो) मूत्रको पतनारो कहिये वर्षाकालमैं जिसतैं ग्रहके उपरका जल गिरे ऐसा पनवारा है ॥

॥ २४१ ॥ कटिपश्चात्भाग ॥

॥ २४२ ॥ गुद (मूलद्वार) ॥

अधर जो थूक लारसैं भीजत ।
तजि ग्लानि निजमुखमैं दीजत ॥
दृष्टमदा नारी मदिरा भजि ।
सुद्धअसुद्ध विवेक दियो तजि ॥३९॥
[दृष्टमदा कहिये जाके देखतही मद चढै]
कहत नारिके अंग जु नीके ।
करत विचार लगत यूं फीके ॥
कपट कूटको[२४३] आकर नारी ।
मैं जानी अव तजन विचारी ॥४०॥
॥ २१९ ॥ ॥ भर्तृके वैराग्यका कथन ॥
कलाकंद दधि पायसैं[२४४] पेरा ।
तंदुल घृत व्यंजैन[२४५] वहुतेरा ॥
और विविधभोजन जे कीने ।
तिन सबके रसना रस लीने ॥ ४१ ॥
अवलौं भई न तृप्ति जु याकूं ।
यातैं वृथा पोषिना ताकूं ॥
छुधा विनासहि बन फल कंदा ।
व्है क्यूं पराधीन यह बंदा ॥ ४२ ॥
गुहा महल बन बाग घनेरा ।
क्यूं राजाको व्है हूं चेरो[२४६] ॥
सैजसिला अरु निजभुज तकिया ।
निर्झरजल कर पात्र न[२४७] रुकिया॥४३॥

बैठी इकंत होय सुछंदा ।
लहिये भर्तृ परमानंदा ॥
विन एकांत न आनंद कवहू ।
मिलै अब्धिलौं पृथ्वी सवहू ॥ ४४ ॥
॥२२० ॥ राजासैं लेके ब्रह्मापर्यंत सर्वसुख एकांतमैं होवैहै ॥
॥ दोहा[२४८] ॥
पृथ्वीपती निरोग युव,
दृढ स्थूल बलवंत ॥
विद्यायुत तिहि भूपमैं,
मानुष सुखको अंत ॥ ४५ ॥
॥ चौपाई ॥
जे मानव गंधर्व कहावत ।
ता नृपतैं सतगुन सुख पावत ॥
होत देव गंधर्व जु औरा ।
तिनतैं तहँ सौगुन सुख व्यौरा ॥४६॥
सुख गंधर्व देवको जो है ।
तातैं सतगुन पितरनको है ॥
पुनि अजानदेवमैं तिनतैं ।
सौगुन कर्मदेवमैं जिनतैं ॥ ४७ ॥
मुख्यदेव जे हैं पुनि तिनमैं ।
कर्मदेवतैं सौगुन जिनमैं ॥

॥ २४३ ॥ समूहको औ तजन विचारी कहिये तजवेकूं विचारकी विषय करीहै ॥

॥ २४४ ॥ चावल औ दुग्धसैं बनाया जावैहै ऐसा दुग्धपाक ॥

॥ २४५ ॥ भोजन ॥

॥ २४६ ॥ किंकर कहिये चाकर ॥

॥ २४७ ॥ न रुकिया कहिये मृत्तिकाका कूजा औ तिसकरि उपलक्षित लोटाआदिक पात्र नहीं । किंतु स्वतःसिद्ध कररूप पात्र है ॥

॥ २४८ ॥ इहांसैं लेकै ५१ वें छंदपर्यंत जो अर्थ कहाहै, सो तैत्तिरीयउपनिषद्का है । सो हमनै ईशाद्यष्टोपनिषद्गत ता उपनिषद्की भाषाटीकामैं सविस्तर लिख्याहै ॥

जो त्रिलोकपति इंद्र कहीजै।
तामैं पुनि सौगुन गिनि लीजै॥ ४८॥
[मुख्यदेव कहिये ग्यारा रुद्र। बाराआदित्य। आठ वसु। ये इकतीस]
सबदेवनको गुरू बृहस्पति।
लहै इंद्रतैं सतगुन सुखगति॥
जाको नाम प्रजापति भाखत।
गुरुतैं सुख सौगुन सो राखत॥ ४९॥
ताहूतैं सौगुन ब्रह्महि सुख।
लहै न रंचक सो कबहू दुख॥
इतने या क्रमतैं सुख पावत।
तैतिरीयश्रुति यूं समुझावत॥ ५०॥

॥ सोरठा ॥

राजातैं ब्रह्मांत,
कह्यो जु सुख सगरो लहै॥
रहत सदा एकांत,
कामदग्ध जाको न हिय॥ १५॥

॥ चौपाई ॥

व्है एकांत देसमैं अस सुख।
युवति पुत्र धन संग सदा दुःख॥

॥ २२१॥ ॥ अथ युवतिसंगदुःखवर्णन ॥

युवति कुरूप कुबोलिनि जाके।
सदा सोक हिय व्है यह ताके ॥५२॥
प्रभु [२४९]पुरीषपंडा यह रंडा।
दिय मुहि कौन पापको दंडा॥
बोलत बैन व्याल कागनिके।
भेड भैसि न्योरी नागनिके ॥ ५३॥
भूंत[२५०] भावती ऊठनिको है।
बोल खरीको सुनि खर मोहै॥
[२५१]रैनि जु ऊंचे स्वरहि उचारत।
स्यार हजारन सुनत पुकारत ॥५४॥
निरपराध[२५२] तिय विन वैरागा।
तजत न वनत पाप जिय लागा॥
रहत दुखित यूं निसिदिन पिय मन॥
तिय कुवोल सुनि लखि कुरूप तन ५५
कामनि व्है जु सुरूप सुवानी।
सो कुरूपतैं व्है दुखदानी॥
चमकचामकी पियहि पियारी।
अर्थ धर्म नसि मोछ बिगारी॥ ५६॥

॥ २२२॥ अथ युवतिसंगसैं धनबिगार॥

मीठे बैन जहरयुत लडवा।
खाय गमाय बुद्धि व्है भडवा॥
और कछू सुपनहु नहिं देखै।
काम अंध इक कमानि लेखै ॥ ५७॥

॥ २४९॥ पुरीषपंडा कहिये विष्ठाका पिंड॥

॥ २५०॥ भूतनी (चूडेल)॥

॥ २५१॥ स्यालनामक पशुकी स्त्री (स्यालनी)॥

॥ २५२॥ इहां यह अर्थ है:—व्यभिचारादि अपराधतैं अथवा वैराग्यतैं स्त्रीका त्याग होवैहै। या स्त्रीका कुरूप औ कुबोल जो है सो पूर्वकर्मके संयोग-तैं ईश्वरनैं रच्याहै। इसमैं याका वर्त्तमानअपराध नहीं औ मेरे चित्तमैं वैराग्य बी नहीं। तातैं निरपराध-स्त्रीका वैराग्य विना त्याग कियेतैं मुजकूं पाप लगेगा। यातैं याका त्याग करना बनता नहीं। किंतु "पाप जिय लागा" कहिये मेरे जीवकूं पूर्वजन्ममैं किये पापका यह स्त्रीरूप फल प्राप्त भयाहै॥

धन कछु मिलै जु बाहिर घरमैं ।
सो सब खरचै कामनि धरमैं ॥
भूपन वस्त्र ताहि पहिरावै ।
गुरु पितु मात यादिहु न आवै ॥५८॥

पायस पान मिठाई मेवा ।
देय भक्तितैं तिय निजदेवा ॥
२५३ नेह-नाथ-नाथ्यो नहिं छूटै ।
२५४ तियर्कैसान पियबैलहि कूटै ॥ ५९ ॥

॥ २२३ ॥ अथ युवतिसंगसैं धर्मबिगार ॥

ज्यूं सूवा पिंजरेमैं बंधुवा ।
सिखयो बोलत सुद्ध असुद्ध वा ॥
तैसैं जो कछु नारि सिखावत ।
सो गुरु पितु मातही सुनावत ॥ ६० ॥

जैसैं मोर मोरनी आगै ।
नाचि रिझाय आप अनुरागै ॥
तैसैं विविधवेष करि तियको ।
मन रिझाय रीझत मन पियको ॥६१॥

२५५ जैबै दुहूनको मन अनुराग्यो ।
तबहि मदन मदिरा मद जाग्यो ॥
भये बावरे वसनहु त्यागे ।
अतिउन्मत घूरन पुनि लागे ॥ ६२ ॥

प्रेतरूप धरि नग्न अमंगल ।
भिरि फिरि भिरत मेष मन दंगल ॥
ज्यूं लोटत मद्य पि मतवारो ।
गिनत मलीनं गलीन न नारो ॥ ६३ ॥

त्यूं नरनारी मदन-मदअंधे ।
अतिगलीन अंगनमैं बंधे ॥
करत मदन मद भ्रम जे मनकूं ।
व्है अचरज सुनि त्यागी जनकूं ॥ ६४ ॥

नसै मदनमदतैं मति नरकी ।
लखत न ऊंच नीच परघरकी ॥
तियहुं बावरी मदन बनाई ।
क्रियादुखद जिहि व्है सुखदाई ॥ ६५॥

प्रबल काममदिरा मद जागै ।
तब द्विजतिय २५६ धाँनकतैं लागै ॥
पिये मदन मदिरा नरनारी ।
ऐसैं करत अनंतखुवारी ॥ ६६ ॥

कामदोष यूं नरहि विगोवत ।
सो प्रकट सुंदरी तिय जोवत ॥
यातैं अतिसुरूप तिय दुखदा ।
ताको त्याग कहत मुनि सुखदा ॥६७॥

जो सुरूप तियमैं अनुरागत ।
विषसम दुखद पेखि नहिं भागत ॥
उभयलोककी करत सु हानी ।
मुनिजन गन गुन साख बखानी॥६८॥

॥ २५३ ॥ स्नेहरूप नाथ (बैलकी नासिकाविषै डालनैके सूत्र) करिके नाथ्यो कहिये बांध्यो पतिरूप बैल सो छूटै नहीं ॥

॥ २५४ ॥ स्त्रीरूप खेतीकी करनैवाली पतिरूप बैलकूं कूटै ॥

॥ २५५ ॥ इहांसै लेके ६६ वें छंदपर्यंत जो पाठ है सो स्त्रीके पास पुरुषनै बांचना न चाहिये ।

॥ २५६ ॥ धानक नाम पारधीका वा भोयाका है ॥

॥ २२४ ॥ युवतिसंगसैं बिंदुका नाश ॥

जो नानाविध भोजन खावै ।
रस ताको फल बिंदु उपावै ॥
जीवन बिंदु अधीन सबनको ।
नसत सोक बिंदुहुतैं मनको ॥ ६९ ॥

ह्वै जब जनको मन मलवासी ॥
करत सोक अति धरत उदासी ॥
रुधिर निवास धरत मन जबहू ।
चंचल अधिक रजोगुन तबहू ॥ ७० ॥

जब मन करत बिंदुमैं वासा ।
तबैं सोक चंचलता नासा ॥
पुनि आपहि बलवत जन जानै ।
ह्वै प्रसन्न सुभ कारज ठानै ॥ ७१ ॥

बिंदु अधिक होवै जा जनमैं ।
सुंदरकांतिरूप ता तनमैं ॥
बिंदुहुको तनमैं उजियारो ।
नसैं बिंदु तन मनु हतियारो ॥ ७२ ॥

जाको बिंदु न कबहू नासै ।
बलि[२५७] न पलित[२५८] तिहि तन परकासै ।
योगी करत खेचरीमुद्रा[२५९] ।
तातै बिंदु राखि ह्वै भद्रा ॥ ७३ ॥

अष्टसिद्धि जे धारत योगी ।
बिंदु खसैं हारत ते भोगी ।
अस अति उत्तम बिंदु जु जगमैं ।
तिहिं तिय छीनि लेत निजभगमैं ७४

ज्यूं किसान बेलनमैं[२६०] ऊंषहि[२६१] ।
पीरत लेत निचोरि पियूषहि ॥
वार वार बेलनमैं धारहि ।
ह्वै असार दथ्था तब जारहि ॥७५॥

[हलकी बाथ गंडेकी बंधी हुई बेलनमैं देवै । ताका नाम दथ्था पंजाबमैं प्रसिद्ध है]

त्यूं तिय भीचि भुजनमैं पीकूं ।
भरत योनि-घट खीचि अमीकूं ॥
पुनिपुनि करत क्रिया नित तौलौं ।
सेष बिंदुको बिंदु न जौलौं ॥ ७६ ॥

कियो असार नारि नरदेहा ।
खीच फुलेल फूल ज्यूं खेहा ॥

॥ २५७ ॥ बलि नाम वृद्धावस्थामैं शरीरकी त्वचामैं वल् (सल) पडतेहैं तिसका है । याहीकूं जोगरी औ पेटी बी कहतेहैं ॥

॥ २५८ ॥ पलित नाम केश श्वेत होवैहैं तिसका है ॥

॥ २५९ ॥ षण्मासके अभ्याससैं जिव्हाके मूलकी नाडीकूं २१ रोमपरिमित क्रमतैं छेदिके जिव्हाकूं बढावतेहैं, ता जिव्हाकूं योगी लंबका कहैहैं ॥ ऊर्ध्वगमनकरिके मूर्ध्वनिमैं स्थित भये प्राणवायुके रोकनैअर्थ तालुके छिद्रमैं ता लंबकाकूं लगावना, ताकूं खेचरीमुद्रा कहतेहैं। तातैं सारे शरीरविषै कामादिवृत्ति सहित मनके प्रचारके अभावसैं बिंदु जो वीर्य ताकी रक्षाकरिके भद्रा कहिये योगीका कल्याण होवैहै ॥

॥ २६० ॥ बेलन नाम कोल्हका है । याहीकूं किसीदेशमैं चींचोडा बी कहतेहैं ॥

॥ २६१ ॥ गुडशकरका उपादान ऐसा इक्षुदंड (गन्ना) याके टुकडेकूं गंडा कहतेहैं ॥

भौ अकाम सब ताहि जरावै ।
सूके बैन मुरौर[२६२] लगावै ॥ ७७ ॥
व्है जु सुरूप जोर धन भारी ।
ता नरपैं नारी बलिहारी ॥
करि सुरूप धन बलको अंता ।
कहत ताहि तूं काको कंता ॥ ७८ ॥
तिहि पुनि मिलन चहै जु अनारी ।
कर धरपैं धरतहु दै गारी ॥
नाक चढाय आंखिहू मोरै ।
जाय न पति सैजहुके धोरै ॥ ७९ ॥
कोटिवज्र संघात जु करिये ।
सबको सार खीचि इक धरिये ।
तियके हिय सम सो न कठोरा ।
रिषि-मुनि-गन यह देत ढंढोरा ॥८०॥
करत गुमान हटत तिय ज्यूं ज्यूं ।
चिपटत सठ मति जन मन त्यूं त्यूं ॥
कबहुक ताको वांछित करिके ।
मरन अंत छोडत न पकरिके ॥ ८१ ॥
पढ्यो पुरान वेद स्मृति गीता ।
तर्कनिपुन पुनि किनहु न जीता ॥
करत अधीन ताहि तिय ऐसैं ।
बाजीगर वंदरकूं जैसैं ॥ ८२ ॥
सब कछु मन भावत करवावत ।
पढे-पसुहि भलभांति नचावत ॥
उक्ति युक्ति सब तबही बिसरै ।
जब पंडित पढि तियपैं ढिसरै ॥ ८३ ॥
जब कबहू सुमरत यह वेदा ।
तब तियमैं मानत कछु खेदा ॥
तिहिं त्यागनकी इच्छा धारै ।
पुनि तिय नैन सैन सर सारै ॥८४॥
जहरकटाछ नैनसर बोरै ।
तानि कमान भौंह जुग जोरै ॥
मारत सारत हिय सब जनको ।
विज्ञहूं बचत न धन सठ गनको ॥८५॥
[विज्ञ कहिये विद्वानहु न बचत । सठगनको धन कहिये कहा चीज ।]
भयो न तियमैं तीव्रविरागा ।
यूं मतिमंद करत पुनि रागा ॥
करत विविध आज्ञा ज्यूं चाकर ।
हुकम करै बैठी मनु ठाकर ॥ ८६ ॥
जे नर नारनयनसर वींधे ।
तिनके हिये होत नहिं सीधे ॥
भलो बुरो सुखदुख सब विसरत ।
ते कैसैं भवदुखतैं निसरत ॥ ८७ ॥
नारि[२६३] बुरी वेस्या अरु परकी ।
तीजी नरकनिसानी घरकी ॥

॥ २६२ ॥ उलमुक (अर्धजल्या काष्ट) ॥ इहां आगे ७९ वीं चौपाईमैं " अनारी (अनाडी)" याका ताकी वृद्धपुरुषमैं अरुचिकूं नहीं जाननैवाला मूर्ख । यह अर्थ है ॥ औ " कर धरपैं धरतहु" याका धर नाम धड जो शरीर तापैं हस्त लगावतैंही । यह अर्थ है ॥ औ " धोरै" कहिये समीप ॥

॥ २६३ ॥ इहां काव्यशास्त्रउक्त सामान्या (वेस्या) परकीया (परकी) औ स्वकीया (घरकी) इस भेदतैं तीनप्रकारकी जे नायिका हैं तिनका त्याग बतायाहै ॥

तजत विवेकी तिहूँमैं नेहा ।
करै नेह तिह सठमुख खेहा ॥ ८८ ॥

॥ दोहा ॥

अर्थ धर्म अरु मोछकूं,
नारि बिगारत ऐन[२६४] ॥
सब अनर्थको मूल लखि,
तजै ताहि व्है चैन ॥ ८९ ॥

॥ २२५ ॥ पुत्रसंगदुःखवर्णन ॥

पुत्र सदा दुख देत यूं,
बिन प्राप्ति दुख एक ॥
गर्भसमय दुख जन्म दुख,
मरै तु दुःख अनेक ॥ ९० ॥

॥ चौपाई ॥

गर्भ धरत जौलौं नहिं नारी ।
दुख दंपति-मन[२६५] तौलौं भारी ॥
व्है जु गर्भ यह चिंत न नासै ।
पुत्री होय कि पुत्र प्रकासै ? ॥ ९१ ॥
गर्भ गिरनके हेतु अनंता ।
तिनतैं डरत करत अतिचिंता ॥
व्है जु पूत नवमास बिहानै ।
जननी जनक अधिक दुख सानै॥९२॥
नवग्रहमैं इक द्वै नहिं बिगरै ।
अस जनको जन्म न जग-सगरै ॥
बिगरै ग्रहकी निसिदिन चिंता ।
करत मातपितु बैठि इकंता ॥ ९३ ॥
सिसु उदास व्है जब तजि बोबा ।
तब दोऊ मिलि लागत रोबा ॥
यूं चिंतत कछु गये महीने ।
दांत पूतके निकसैं झीने ॥ ९४ ॥
मरत बाल बहु निकसत दंता ।
तब यह चिंता दुख तिय कंता ॥
जिये दूबरो दुखतैं वारो ।
देखि चुहारो धरत उतारो ॥ ९५ ॥
म्लेच्छ चमार चूहरे कोरी ।
तिनतैं झरवावत द्विज धोरी ॥
सइयद ख्वाजा पीर फकीरा ।
धोकत जोरत हाथ अधीरा ॥ ९६ ॥
जाकूं हिंदु कबहु नहिं मानै ।
पुत्रहेतु तिहि इष्ट पिछानै ॥
भैरो भूत मनावत नाना ।
धरत सिवाबिल[२६६] भूमिमसाना ॥ ९७ ॥
धानकको[२६७] डमरू घरि बाजे ।
कर जोरत पूजन नहिं लाजे ॥
औरजंत्र तावाज घनैरे ।
लिखि मढवाय पूत-गर गेरै ॥ ९८ ॥
निजकुलमैं इक अच्युतपूजा ।
किनहु न सुपनहु सुमर्‍यो दूजा ॥

॥ २६४ ॥ अच्छीतरहसैं ।

॥ २६५ ॥ स्त्री औ पतिके ।

॥ २६६ ॥ उरदमगचावलआदिकरंधितअन्नका वा मांसका बलिदान ठीकरेमैं किंवा पत्रावलीमैं डालिके चौबटेमैं किंवा समसानमैं रखतेहैं । ताका नाम शिवाबल है ॥

॥ २६७ ॥ धानकको कहिये पारधीको । डमरु कहिये डाक घरमैं बाजताहै ॥

सो कुल नेम पूतहित त्याग्यो ।
व्यभिचारन ज्यूं जहँतहँ लाग्यो ॥९९॥
होत सीतलाको जब निकसन ।
नसत मातपितु मनको बिकसन ॥
स्नानक्रिया तजि रहत मलीना ।
परमदेव गदहाकूं कीना ॥ १०० ॥
मोरि वाग बकसहु सिसु मोरा ।
गदहा मात चराऊं तोरा ॥
यूं कहि चना गोदमैं धारै ।
बिनती करि गदहाकूं चारै ॥ १०१ ॥
अस अनंतदुखतैं सिसु पारन ।
जुवा होत लौं औरेहैंजारन ॥
उमर पूतकी व्है जो थोरी ।
मरि है करहु उपाय करोरी ॥ १०२ ॥
मरै मातपित कूटहिं माथा ।
मानि आपकूं दीन अनाथा ॥
हाय हाय करि निसदिन रोवैं ।
करि धिकधिक निजजन्म विगोवैं ॥१०३॥
पूत मरनको व्है दुख जैसो ।
लखत सपूत अपूत न तैसो ॥
जो जीवै तौ होतहि तरुना ।
लगत नारिके पोषन भरना ॥१०४॥

सपूत कहिये जाका पूत जीवैहै औ अपूत कहिये जाके पूत नहीं हुआ ॥

जिन अनेकयत्ननि प्रतिपारौ ।
तिनकूं जल प्यावन है भारौ ॥
रजनि-सैजपैं सिखवै नारी ।
तव पितमात देहु मुहिं गारी ॥ १०५ ॥
व्है सुपूत तौ प्रातहि उठिके ।
नवैं दूरतैं माथ न गठिके ॥
चहै मातपित आवैं नेरै ।
पूत न सन्मुख आंखिहु हेरै ॥ १०६ ॥
व्है कुपूत तौ उठतहि प्राता ।
वचन गारिसम बकि असुहाता ॥
जुदौ होय ले सब घरको धन ।
दे पितमातहि इक तिनको तन ॥१०७॥
फेरि संभारत कबहु न तिनकूं ।
पोषत सबदिन तिय-निज-तिनकूं ॥
देखि लेत पितमात उसासा ।
याविधि पुत्र सदा दुखरासा ॥ १०८ ॥

॥ २६८ ॥

१ युवाअवस्थासैं पूर्व बालककी खेलमैं रुचि विशेष होवैहै ताकूं बलसैं प्रवृत्ति करावनैसैं प्रतिदिन दुःख होवैहै । और—

२ विद्याशालामैं अन्यबालकनकूं मारि आवै किंवा आप मार खाई आवै तौ बी क्लेश होताहै ।

३ फेर मंदसंस्कारतैं पढै नहीं तौ बी चिंता होवैहै औ

४ पढै अरु व्यवहारनिपुण न होवै तौ बी चिंता होवैहै ।

५ फिर जुगारआदिक दुर्व्यसनमैं लगै तौ बी चिंता होवैहै ।

६ फेर तिसकी सादीके निमित्त बडी चिंता होवैहै ।

७ फेर तिसके विवाहके निमित्त बी चिंता होवैहै ।

इससैं आदिलेके युवाअवस्थापर्यंत मातापिताकूं अनंतदुःख होवैहैं । यह भाव है ।

॥ दोहा ॥

करि विचार यूं देखियें,
पुत्र सदा दुखरूप ॥
सुख चाहत जे पूततैं,
ते मूढनके भूप ॥ १०९ ॥

॥ २२६ ॥ धनसंगदुःखवर्णन ॥

तजि तिय पूत जु धन चहै,
ताके मुखमैं धूर ॥
धन जोरन रच्छा करन,
खरच नास दुखमूर ॥ ११० ॥

॥ चौपाई ॥

जो चाहे माया बहु जोरी ।
करै अनर्थ[२६९] सु लाख करोरी ॥
जातिधर्म कुलधर्म सु त्यागै ।
जो धनकूं जोरन जन लागै ॥१११॥
बिना भाग तदपि न धन जुरि हैं ।
जुरै तु रच्छा करिकरि मरि हैं ॥
खरचत धन घटि है यह चिंता ।
नासै निसिदिन ताप अनंता ॥ ११२ ॥
सदा करत यूं दुख धन मनकूं
चहै ताहि धिक धिक तिहि जनकूं ॥
युवति पूत धन लखि दुखदाता ।
तज्यो भर्तृ ममताको नाता ॥ ११३ ॥

॥ २६९ ॥ पंचदश अनर्थ होवैं तब एक अर्थ (धन) होवै । ऐसा एकादशस्कंधके २३ वें अध्यायविषै कदर्यके आख्यानमैं कह्याहै । इसकरि उपलक्षित अनंत अनर्थ करै ॥

॥ २२७ ॥ राजाकूं भर्तृमैं प्रेतबुद्धि होनी औ राजाका भागना ॥

॥ कुंडलिया छंद ॥

भर्तृ बन एकांतमैं ।
गयो कियो चित सांत ॥
भयो नयो दीवान तिन ।
सुन्यो सकलवृत्तांत ॥
सुन्यो सकलवृत्तांत[२७०] ।
चिंत यह उपजी ताके ॥
जो नृप जीवत सुनै ।
मिलै वा काहू नौंके[२७१] ॥
तौ झूठे हम होहिं ।
भूप दे सबकूं दंडा ॥
यातैं अब मिलि कहौ ।
भर्तृ भौ प्रेत प्रचंडा ॥ ११४ ॥

॥ दोहा ॥

करि सलाह यह परस्पर,
गये कचहरी बीच ॥
सबहिं कही यह भूपतैं,
भर्तृ प्रेत भौ नीच ॥ ११५ ॥
राख लगाये देहमैं,
मिलै जाहि बतरात[२७२] ॥
तिहि मारत सो नर बचत,
जो तिहि देखि परात ॥ ११६ ॥

॥ २७० ॥ गतअर्थ (पूर्वे होगई वार्त्ता) ।
॥ २७१ ॥ वनकी गल्लीमैं ।
॥ २७२ ॥ बात करै ।

[परात कहिये भाग जावै]

सुनि भूपह निश्चय कियो,
भर्छु मरी भौ प्रेत ॥
साचझूठ भूप न लखत,
व्है जु प्रमाद अचेत ॥ ११७ ॥
कछु दिन बीते भूप तब,
मारन गयो सिकार ॥
पैठ्यो गिरि वनसघनमैं,
जहँ मृगराज हजार ॥ ११८ ॥
तपत तहां इक तरुतरै,
भर्छू निजदीवान ॥
पेखि ताहि भाज्यो उलटि,
मानि प्रेत दुखदान ॥ ११९ ॥

॥ २२८ ॥ अंक २२७ उक्तदृष्टांतकूं सिद्धांतमैं जोडना ॥ भेदवादकी धिक्कारपूर्वक त्याज्यता ॥

॥ इंदव छंद ॥

भर्छु मर्‍यो ऽरु परेत भयो यह।
वाक्य असत्यहु सत्य पिछाना ॥
देखि लियो निज आखिन जीवत।
तौहु परेत हु मानि भगाना ॥
वंचकतैं सुनि द्वैत तथा मति-।
मैं विसवास करै जु अजाना ॥
ब्रह्म अद्वैत लखै परतच्छहु।
तौहु न ताहि हिये ठहराना ॥१२०॥

॥ दोहा ॥

भेदवचन विस्वास करि,
सुनत जु कोउ अजान ॥
सो जन दुख भुगतै सदा,
व्है न ब्रह्मको ज्ञान ॥ १२१ ॥
यातैं सुनै जु भेदके,
वचन लखै सु असत्य ॥
तबही ताकूं ज्ञान व्है,
महावाक्यतैं सत्य ॥ १२२ ॥

॥ चौपाई ॥

सिष तैं सुनी जु भेदकहानी।
जानि झूठ ते नरकनिसानी ॥
तिनके कहनहार सब झूठै।
पुरुषारथ सुखतैं सठ रूठै ॥ १२३ ॥
तिनको संग न कबहू कीजै।
व्है जो संग न वचन सुनीजै ॥
जो कहुं सुनै तु सुनतहि त्यागहु।
म्लेछ जैन वच सम लखि भागहु ॥१२४॥

॥ २२९ ॥ मिथ्यादुःखका मिथ्यासैं नाश एक भूपकूं स्वप्नकी प्राप्ति। तिसकूं गादरीकरि दुःखका होना औ मिथ्यावैद्यसैं मिटना ॥

जो मिथ्या व्है दैसिक वेदा।
कैसैं करही भवदुख छेदा ? ॥
याको अब उत्तर सुनि लीजै।
मिथ्यादुख मिथ्यातैं छीजै ॥ १२५ ॥
वेदऽरु गुरु सत्य जो होवै।

तौ मिथ्याभवदुख नहिं खोवै ॥
यामैं इक दृष्टांत सुनाऊं ।
जातैं तव संदेह नसाऊं ॥ १२६ ॥
सुरपति इंद्र स्वर्गमैं जैसो ।
प्रबलप्रताप भूप इक ऐसो ॥
भीम समान सूर बहुतेरे ।
तिनके चहुधा डेरे गेरे ॥ १२७ ॥
जोधा ले निजनिज हथियारन ।
खरे रहे तिहि द्वार हजारन ॥
अंदिर मंदिर ड्योढी ठाढे ।
लिये खडग कोसनतैं काढे ॥ १२८ ॥
[कोस कहीये म्यान]
ऊंचो महल अटारी जामैं ।
फूलसैज सोवै नृप तामैं ॥
पंछी हू पौचन नहिं पावै ।
तहां और कैसै चलि जावै ॥ १२९ ॥
तहां भूप देख्यो अस सुपना ।
पकन्यो पैर गाँदरी[२७३] अपना ॥
भूप छुडायो चाहत निजपग ।
तजत न गादरि पकरि जु पगरग १३०
तब राजा यूं खरो पुकारै ।
है को अस जो गादरि मारै ॥
जोधा जो ठाढे निजद्वारा ।
तिन रंचकहु न दियो सहारा ॥ १३१ ॥
तब नृप दंड लियो निजकरमैं ।
आपुहि मान्यो स्यारनि सिरमैं ॥
लगत दंड भौ ताको अंता ।
तब निसरै पगरगतैं दंता ॥ १३२ ॥
दांत लगे गाढे नृप पगमैं ।
यूं लंगरात सु चालत मगमैं ॥
तब चाल्यो ले लाठी करमैं ।
पहुच्यो घाँवरियाके[२७४] घरमैं ॥ १३३ ॥
ताहि कह्यो फोहाँ[२७५] अस दीजे ।
घाव पावको तुरत भरीजे ॥
घावरिया नृपतैं यह भाख्यो ।
फोहा नहिं तयार घर राख्यो ॥१३४॥
जो तूं दे पैसा इक मोकूं ।
तौ तयार करि देहूं तोकूं ॥
तब उलट्यो नृप लाठी टेका ।
नहीं दैनकुं कौडिहु एका ॥ १३५ ॥
लाग्यो सोच करन टरि घरतैं ।
बूजे बात कौन बिन जैरतैं[२७६] ॥
जो मैं होत धनी बडभागा ।
आवतु घर घावरिया भागा ॥ १३६ ॥
मोहिं निकंमा जानि कंगाला ।
घरतैं तुरत रोग ज्यूं टाला ॥
याहीकूं कछु दोष न दीजे ।
बिनस्वारथको किहि न पैतीजे[२७७] १३७
मातपिता बांधव सुत नारी ।
करत प्यार स्वारथतैं भारी ॥

॥ २७३ ॥ शियालिनी स्वानतुल्य पशुविशेषकी स्त्री ।

॥ २७४ ॥ मल्लमपट्टी करनैवालेके ।

॥ २७५ ॥ मल्लम ।

॥ २७६ ॥ द्रव्यतैं ।

॥ २७७ ॥ स्वार्थविना कोई किसकी न पतीजै कहिये प्रतीति (विश्वास) करता नहीं ।

जो नहिं स्वारथ सिद्धी पावै ।
तौं इनकूं देख्योहु न भावै ॥ १३८ ॥
जा बिन घरी एक नहिं रहते ।
दुख अपार बिछुरे सब लहते ॥
जब देखैं आयो घर पौरी[२७८] ॥
घरके मिलत भाँजि[२७९] भरि कोरी॥१३९॥
विधि अधीन कोढी सो होवै ।
सब अंगनिमैं पानी चोवै ॥
अरु जरि परी आंगुरी जाके ।
भिनभिनात मुख माखी ताके ॥१४०॥
कहत ताहि ते घरके प्यारे ।
मरि पापी अब तौ हतियारे ॥
जिहि देखत अखियां न अघानी ।
तिहि लखि ग्लानि वमन ज्यूं आनी१४१
जो तिय हिय लागत पति प्यारो ।
किय न चहत पल उरतैं न्यारो ॥
ताकी पवन बचायो लौरै[२८०] ।
भिरै जु वैसैन तु नाक सकौरै ॥१४२॥
जिहि पितुमात गोदमैं लेते ।
सचुकत तिहि करते कछु देते ॥
मिलत भ्रात जो भरि भुज कोरी ।
सो बतरात बीच दै डोरी ॥ १४३ ॥
ऐसैं जग स्वारथको सारो ।
बिन स्वारथको काको प्यारो ॥
मुहि स्वारथयोग्य न विधि कीनो ।
यातैं इन फोहा नहिं दीनो ॥ १४४॥
यूं चिंतत इक मुनि[२८२] तिहिं भेट्यो ।
तिन दै जरी घावदुख मेट्यो ॥
निद्रातैं जाग्यो नृप जबही ।
घाव दरद मुनि नासै तबही ॥ १४५॥
सिष यह तुहि दृष्टांत प्रकास्यो ।
लखि मिथ्यातैं मिथ्या नास्यो ॥
मिथ्यादुख देख्यो जब राजा ।
साचसमाज न किय कछु काजा॥१४६॥

॥२३०॥अंक २२९ उक्त प्रसंगकी टीका ॥

टीकाः—सेर्वप्रकरणका अर्थ स्पष्ट ।

भाव यह हैः—संसाररूप दुःख मिथ्या है, यातैं तिसके दूरि करनैके साधन वेदगुरु मिथ्याही चाहियेहैं । मिथ्याके नाशमैं सत्य-साधनकी अपेक्षा नहीं । औ—

सत्यसाधन होवै तौ तिनतैं मिथ्याका नाश होवै नहीं । जैसैं राजाके समीप मिथ्या-गादरी स्वप्नमैं पहुंची। किसी सत्यजोधासैं रुकी नहीं औ राजा पुकार्‍यो जब काहूसैं वी मरी नहीं औ राजाके पास अनेक साचे शस्त्र धरे रहे तौ वी मिथ्यादंडसैं मरी । औ राजाके मिथ्याघाव भया तब कोई वैद्यजराह[२८३] साचा पाया नहीं । मिथ्याजराहके पास गया । तानै पैसा माग्या । तौ अनंतखजानै साचे धरेही रहे । एकपैसा वी राजाकूं मिल्या नहीं । कोई वी सत्यसाधन राजाके दुःखके नाश करनैमैं

॥ २७८ ॥ पगतिया (सोपान) ।

॥ २७९ ॥ भाजि कहिये सन्मुख दौरिके। कौरी भरि कहिये बाथ भराईके घरके आदमी मिलतेहैं।

॥ २८० ॥ इच्छै ।

॥ २८१ ॥ वस्त्र ।

॥ २८२ ॥ संन्यासी ।

॥ २८३ ॥ वैद्य किंवा जराह कहिये मह्लमपट्टी मात्रका करनैवाला ।

समर्थ हुआ नहीं। किंतु मिथ्यामुनिनै मिथ्या-जरी देके मिथ्यादुःखका नाश किया।

इसरीतिके स्वम सर्वकूं अनुभवसिद्ध हैं। जाग्रत्पदार्थका स्वममैं काहूकूं कदे बी उपयोग होवै नहीं तैसैं मिथ्या जो संसारदुःख, ताका नाश मिथ्यावेदगुरुसैं होवैहै। साचे वेद-गुरु अपेक्षित नहीं॥

॥ २३१ ॥ मरुस्थलके जल औ प्यासमैं सत्ताका भेद।

" जैसैं मरुस्थलके मिथ्याजलतैं तृषाका नाश होवै नहीं तैसैं मिथ्यावेदगुरुतैं संसार-दुःखका नाश होवै नहीं औ मिथ्यावेदगुरु मानिके संसारदुःखका तिनतैं नाश अंगीकार करौगे तौ मरुभूमिके जलतैं बी तृपाका नाश हुयाचाहिये " यह शंका शिष्यनै करीथी ताका समाधान॥

॥ चौपाई॥

यद्यपि मिथ्या मरुथलपानी। तातैं किनहु न प्यास बुझानी॥
तदपि विषमदृष्टांत सु तेरो। सत्ताभेद दुहनमैं हेरो॥ १४७॥

टीकाः—यद्यपि मिथ्या जो मरुभूमिका पानी, तातैं किसीनै प्यास नहीं बुझाई औ मिथ्यागुरुवेदतैं दुःखके नाशकी न्यांई मिथ्या-जलसैं प्यासका नाश हुवाचाहिये औ प्यास-नाश होवै नहीं। तैसैं मिथ्यागुरुवेदतैं संसार का नाश बनै नहीं। तदपि कहिये तौ बी तेरा दृष्टांत विषम है। काहेतैं? दुहुनमैं कहिये मरुस्थलका जल औ प्यास इन दोनूंमैं सत्ताका भेद है, ताकूं हेरो कहिये देखो॥ १४७॥

॥ २३२ ॥ समसत्ताकी आपसमैं साधकबाधकता॥

॥ चौपाई॥

समसत्ता भवदुख गुरुवेदा। यूं गुरुवेद करत भवछेदा॥
आपसमैं समसत्ता जिनकी। लखि साधकबाधकता तिनकी॥१४८॥

॥ २८४ ॥ इहां यह शंका है:—समसत्तावाले पदार्थही आपसमैं साधक बाधक हैं। यह नियम घटित नहीं। किंतु विषमसत्तावाले पदार्थ बी कहींक आप-समैं साधकबाधक होवैहैं। काहेतैं?

१ सर्वत्र आरोपकी अधिष्ठानतैं **विषमसत्ता है। ताकी साधकता** अधिष्ठानमैं है। **जैसैं** कल्पित-रजतका अधिष्ठान शुक्ति है, ताकी व्यावहारिक सत्ता है। रजतकी प्रतिभाससत्ता है। तिस प्रतिभाससत्ता-वाले रजतकी साधकता (कारणता) शुक्तिमैं है।

२ **किंवा** जगत्का अधिष्ठान ब्रह्म है, ताकी परमार्थसत्ता है औ जगत्की व्यावहारिकसत्ता है, तिस व्यावहारिक सत्तावाले जगत्की साधकता ब्रह्ममैं है। यातैं **विषमसत्तावाला बी साधक** होवैहै॥ औ—

३ अंतःकरणकी वृत्तिरूप शुक्तिके यथार्थज्ञानसैं ज्ञानसहित रजतका बाध होवैहै। तहां ज्ञानसहित रजतकी प्रतिभाससत्ता है औ शुक्तिके ज्ञानकी व्यावहारिक सत्ता है। यातैं **विषमसत्तावाला बी बाधक** होवैहै॥

तातैं विषमसत्तावाले पदार्थ आपसमैं साधक-बाधक होवैं नहीं। यह नियम असंगत है। याका—

यह समाधान है:—केवल (शुद्ध) शुक्ति किंवा ब्रह्म क्रमतैं रजतकी औ जगत्की कल्पनाके अधिष्ठान नाम विवर्त उपादानकारण नहीं। किंतु तूलअविद्या-सहित शुक्ति रजतका अधिष्ठान है औ मूलअविद्या-सहित ब्रह्मचेतन जगत्का अधिष्ठान है। कहुं विशेषणके धर्मका विशिष्टमैं व्यवहार होवैहै। इस नियमतैं प्रातिभासिक तूलअविद्यासहित शुक्ति किंवा शुक्ति-

टीकाः—भवदुःख औ गुरुवेदकी समसत्ता कहिये एकसत्ता है, यातैं गुरुवेदतैं भवदुःखका छेद होवैहै ॥

जिनकी आपसमैं समसत्ता होवै तिनकी आपसमैं साधकता औ बाधकता होवैहै। जैसैं-

१ मृत्तिका औ घटकी समसत्ता है, यातैं मृत्तिका घटका साधक है।

२ अग्नि औ काष्ठकी समसत्ता है। तहां अग्नि काष्ठका बाधक है॥

१ साधक कहिये कारण। औ—

२ बाधक कहिये नाशक।

मरुस्थलके जलकी औ प्यासकी समसत्ता नहीं। यातैं मरुस्थलका जल प्यासका बाधक नहीं ॥

या स्थानमैं यह रहस्य हैः—चेतनमैं परमार्थसत्ता है औ चेतनसैं भिन्न जो मिथ्या-पदार्थ तिनमैं दोप्रकारकी सत्ता हैः—एक तौ व्यवहारसत्ता है औ दूसरी प्रतिभाससत्ता है।

अवच्छिन्नचेतन प्रातिभासिक कहियेहै औ व्याव-हारिक मूलअविद्याअवच्छिन्न ब्रह्मचेतन बी व्यावहारिक कहियेहै ॥

यद्यपि इहां अविद्या उपाधि है। विशेषण नहीं। तथापि अविवेकी जनोंकी, दृष्टिसैं विशेषणकी न्यांई प्रतीत होवैहै। यातैं विशेषण कहियेहै। याहीतैं तिन अविद्याके धर्म प्रातिभासिकता औ व्यावहारिकता ताका अपनै विशेष्य (आश्रय) शुक्ति औ ब्रह्ममैं व्यवहार होवैहै। यातैं इहां विषमसत्तावाला साधक नहीं। किंतु **समसत्तावालाही साधक है** ॥ औ—

पंचपादिकाकारकी रीतिसैं मूलअविद्यासैं भिन्न तूलअविद्या नहीं। यातैं ताकी निवृत्ति शुक्तिके ज्ञानसैं होवै नहीं किंतु ब्रह्मज्ञानसैं होवैहै। परंतु व्यावहारिक अंतःकरणकी वृत्तिरूप शुक्तिके यथार्थ ज्ञानसैं शुक्तिनिष्ठ तूलअविद्याका तिरस्कार होवैहै। तातैं ताके कार्य ज्ञानसहित रजतका बी तिरस्कार होवैहै। यातैं इहां **विषमसत्तावाला बाधक नहीं**।

॥ २३३ ॥ १ व्यावहारिक, २ प्राति-भासिक औ ३ पारमार्थिक सत्ता ॥ २३३–२३५ ॥

१ जा पदार्थका ब्रह्मज्ञानविना बाध होवै नहीं किंतु ब्रह्मज्ञानसैंही बाध होवै ता पदार्थमैं **व्यवहारसत्ता** कहिये है।

सो व्यवहारसत्ता ईश्वरसृष्टिमैं है। काहेतैं? देहइंद्रियादिक प्रपंच जो ईश्वरसृष्टि ताका ब्रह्मज्ञानसैं विना बाध होवै नहीं। ब्रह्मज्ञानसैं ही बाध होवैहै॥

यद्यपि ईश्वरसृष्टिके पदार्थनका ब्रह्मज्ञानसैं विना नाश तौ होवै बी है। परंतु ब्रह्मज्ञानसैं विना बाध होवै नहीं ॥

अपरोक्षमिथ्यानिश्चयका नाम बाध है।

सो अपरोक्षमिथ्यानिश्चय ईश्वरसृष्टिके पदार्थनमैं ब्रह्मज्ञानसैं प्रथम किसीकूं होवै नहीं, ब्रह्मज्ञानसैं अनंतरही होवैहै। यातैं मूल-

यह प्रसंगानुसारि समाधान है। औ—

विचारदृष्टिसैं देखिये तौ अधिष्ठानरूप साधकमैं औ अधिष्ठानके ज्ञानरूप बाधकमैं समानसत्ताका नियम नहीं। किंतु—

१ अधिष्ठानरूप साधक तौ विषमसत्तावालाही होवैहै। समसत्तावाला नहीं। औ—

२ ज्ञानरूप बाधक तौ कहीं विषमसत्तावाला होवैहै। जैसैं शुक्तिरजतका बाधक शुक्तिज्ञान है औ स्वप्नजगत्का बाधक जाग्रत्का ज्ञान है। औ—

३ कहीं समसत्तावाला बी होवैहै। जैसैं व्यावहारिक जगत्का बाधक ब्रह्मज्ञान है। परंतु—

४ मिथ्याज्ञानही मिथ्यावस्तुका बाधक है। यह नियमित है।

यातैं इहां कह्या जो नियम सो अधिष्ठानरूप साधक औ ज्ञानरूप बाधककूं छोडिके अवशिष्ट रहे पदार्थनकूं विषय करनैहारा है ॥

अविद्याके कार्य जो जाग्रत्के पदार्थ ईश्वरसृष्टि तामैं व्यवहारसत्ता है।

जन्म मरण बंध मोक्ष आदिक व्यवहारके सिद्ध करनैवाली जो सत्ता कहिये होना सो व्यवहारसत्ता कहियेहै। औ—

॥ २३४ ॥ २ ब्रह्मज्ञानसैं विनाही जिनका बाध होवै तिन पदार्थनमैं प्रतिभाससत्ता कहिये है। जैसैं ब्रह्मज्ञानसैं विनाही शुक्ति-जेवरीमरुस्थलआदिकनके ज्ञानतैं रूपा सर्प जल-आदिकनका बाध होवैहै, तिनमैं प्रतिभास-सत्ता है।

प्रतिभास कहिये प्रतीतिमात्र जो सत्ता कहिये होना सो प्रतिभाससत्ता कहिये है। तूलअविद्याके कार्य रूपाआदिक पदार्थनका प्रतीतिमात्रही होना है, यातैं तिनकी प्रतिभाससत्ता है॥

॥ २३५ ॥ ३ जाका तीनकालमैं बाध होवै नहीं ताकी परमार्थसत्ता कहिये है। चेतन-का बाध कदै होवै नहीं, यातैं परमार्थसत्ता चेतनकी है॥

॥ २३६ ॥ वेदगुरु औ संसारदुःखकी व्यावहारिक सत्ता है, यातैं तिनतैं भवदुःखका नाश बनैहै॥

इसरीतिसैं वेदगुरु औ संसारदुःख इनकी एक व्यवहारसत्ता होनैतैं आपसमैं समसत्ता है। यातैं मिथ्यावेदगुरुतैं मिथ्याभवदुःखका नाश बनैहै। औ—

॥ २८५ ॥ घटादिजडपदार्थउपहित चेतनकूं आच्छादन करनैवाली (ढांपनैवाली) जो अविद्या सो तूलअविद्या कहियेहै। याहीकूं अवस्थाअज्ञान औ सादिदोषवाली अविद्या बी कहतेहैं।

सो तूलअविद्या अंशभेदतैं नाना है औ भिन्न-भिन्नपदार्थनकूं आवरण करैहै। जिस घटादिपदार्था-कार अंतःकरणकी वृत्ति होवै तिस पदार्थका आच्छादक तूलअविद्याका अंश नष्ट होवैहै। फेर जब वृत्ति अन्यदेशविषै जावै तब तहां औरअविद्याअंश उपजैहै। इस तूलअविद्याके नाशनिमित्त ब्रह्मज्ञानकी अपेक्षा नहीं। किंतु ताकूं प्रातिभासिक सत्तावाली होनैतैं घटादिकके ज्ञानसैंही ताका नाश होवैहै। औ—

पंचपादिकाके कर्त्ता पद्मपादाचार्य 'मूलअविद्या सोई तूलअविद्या है तिसतैं भिन्न नहीं' ऐसैं मानते-हैं। इनके मतमैं जैसैं लोकसमूहके मध्य बिजली-के पतनकरि सर्वलोक हट जातेहैं फेर एकत्र होतेहैं। तैसैं जिस पदार्थाकार अंतःकरणकी वृत्ति होवै तिस पदार्थाकार अविद्या तहांतैं तिरोहित (तिरोधानकूं प्राप्त) होवैहै। फेर जब वृत्ति अन्यदेशमैं जावै तब वह अविद्या फेर तहां प्रसरतीहै। परंतु ब्रह्मज्ञान-विना ताका नाश होवै नहीं औ स्वप्न तथा कल्पित-सर्पादिकनका अविद्याके नाशविना बी विरोधि-पदार्थके ज्ञानतैं वा अविद्याके तिरोधानतैं अविद्याविषै लयरूप नाश वा तिरोधान होवैहै।

यह प्रसंगसैं तूलअविद्याका वर्णन किया।

॥ २८६ ॥ यद्यपि मिथ्यावेदगुरुतैं मिथ्याभव-दुःखका नाश संभवैहै औ ऐसैं माननैतैं सिद्धांतकी बी हानि नहीं तथापि—

१ वेदगुरुरूप इष्टकूं मिथ्या कहना अयोग्य है। औ—

२ जगत्सत्यत्ववादिनके उपहास्यका विषय है। औ—

३ जिज्ञासुनकी विचित्तताका बी कारण है।

यातैं इस उक्तिका खंडनकरिके सिद्धांतका भंग न होवै तैसैं अन्यप्रकारकी उक्तिका निरूपण करैहैं:—

वेदगुरुकूं मिथ्या कहनैवालेके प्रति पूछतेहैं किः—

१ शिष्यकी दृष्टिसैं वेदगुरु मिथ्या है?, २ किंवा गुरुकी दृष्टिसैं?।

१ जो शिष्यकी दृष्टिसैं कहैं तौ (१) सो शिष्य ज्ञानी है? (२) वा अज्ञानी है?।

(१) 'सो शिष्य ज्ञानी है' ऐसैं कहैं तो ताकूं शिष्यपना संभवै नहीं। यद्यपि उपदेष्टा गुरुकी अपेक्षातैं सर्वज्ञानीनकूं शिष्यपना है तथापि तिनकूं अधिकार होयके शिक्षाके योग्य शिष्यपना नहीं है। औ—

क्षुधापिपासा प्राणके धर्म हैं । प्राण औ ताके धर्मनका ब्रह्मज्ञानसैं विना बाध होवै नहीं । यातैं पिपासाकी व्यवहारसत्ता है । मरुस्थलके जलका ब्रह्मज्ञानसैं विनाही मरुस्थलके ज्ञानतैं बाध होनैतैं मरुस्थलके जलकी प्रतिभाससत्ता है । यातैं प्यास औ मरुस्थलके जलकी समसत्ता नहीं होनैतैं ता जलतैं प्यासका नाश होवै नहीं ।

१ याप्रकारतैं दार्ष्टांतविषै बाधका वेदगुरु औ बाध्य संसारदुःख तिनकी सत्ता एक है औ—

२ दृष्टांतविषै जल औ प्यास सत्ताका भेद है ।

यातैं दृष्टांत विषम कहिये दार्ष्टांतके सम नहीं ॥ १४८ ॥

॥ १३७ ॥ शंकाः—शुक्तिरूपाआदिकका ब्रह्मज्ञानविनाही बाध औ संसारदुःख ब्रह्मज्ञानसैं अनंतर बाध यह भेद कौन हेतुसे राखौहौ ?

॥ चौपाई ॥

ब्रह्मभिन्न मिथ्या सब भाखौ ॥
तिनको भेद हेतु किहि राखौ ॥
उपज्यो यह मोकूं संदेहा ।
प्रभु ताको अब कीजे छेहा ॥ १४९ ॥

टीकाः—हे प्रभु ! ब्रह्मसैं भिन्न आप सर्वकूं मिथ्या कहौहौ तिन मिथ्यापदार्थमैं—

१ शुक्तिरूपा रज्जुसर्प मरुस्थलजलआदिकनका ब्रह्मज्ञानसैं विनाही बाध । औ—

२ संसारदुःखका ब्रह्मज्ञानसैं अनंतर बाध । यह भेद कौन हेतुसैं राखौहौ ?

॥ २३८ ॥ उत्तरः—जाके ज्ञानसैं जो उपजे तिसका ताके ज्ञानसैं बाध होवैहै ॥

॥ चौपाई ॥

सकल अविद्याकारज मिथ्या ।
सिप तामैं रंचकहु न तथ्या ॥

---

(२) 'सो शिष्य अज्ञानी है ' ऐसैं कहैं तौ ताकी मिथ्या जानेहुये वेदगुरुविषै श्रद्धापूर्वक प्रवृत्तिके अभावतैं बोधकी प्राप्ति दुष्कर है । किंवा अज्ञानी पुरुषकूं वेदांतश्रवणतैं पूर्व किसी बी जगत्के पदार्थविषै मिथ्यात्वबुद्धि संभवै बी नहीं ।

यातैं शिष्यकी दृष्टितैं वेदगुरु मिथ्या हैं । यह कथन बनै नहीं ॥ औ

२ जो गुरुकी दृष्टिसैं वेदगुरु मिथ्या हैं । ऐसैं कहैं तौ (१) गुरु अज्ञानी है (२) किंवा ज्ञानी है ?

(१) अज्ञानी कहैं तौ ताकूं गुरु कहना वेदसैं विरुद्ध है । यद्यपि केईक अज्ञानी पुरुष बी जगत्विषै मूर्खनकी दृष्टिसैं गुरु केहलातेहैं तथापि वेदवेत्ताविद्वानोंकी दृष्टिसैं वे गुरुशब्दके विषय (वाच्य) नहीं । यह वार्त्ता तृतीयतरंगमैं स्पष्ट निरूपण करीहै यातैं तिस अज्ञानीकी दृष्टिसैं तौ वेदगुरु मिथ्या हैं । यह कथन बनै नहीं । किंतु वेदगुरुसहित सर्वजगत् सत्य है । यह कथन बनैहै ।

(२) जो कहैं 'गुरु ज्ञानी है ' तौ [१] तिस ज्ञानीकूं वेदगुरुसहित सर्वजगत् ब्रह्मतैं भिन्न प्रतीत होवैहै ? [२] किंवा अभिन्न प्रतीत होवैहै ?

[१] प्रथमपक्ष कहैं तौ तिस भेदवादीकूं ज्ञानी किंवा गुरु कहना अयुक्त है । औ—

[२] द्वितीयपक्ष कहैं तौ सर्वजगत् औ आपकूं परमार्थसत्तामय ब्रह्मरूप जाननैवाले अद्वैतवादी गुरुकी दृष्टिसैं ' वेदगुरु मिथ्या है ' यह कथन बनै नहीं ।

यातैं वेदगुरु मिथ्या है यह उक्ति अज्ञतज्ज्ञकी नहीं । किंतु अर्धदग्धकाष्ठकी न्यांई वेदांतश्रवणमनन करनैहारे अर्धप्रबुद्ध पुरुषकी किंवा वाचव्यवहाररत बहिर्मुखज्ञानीनकी है ।

इसरीतिसैं ' वेदगुरु सत्य हैं ' यह उक्ति युक्तिसहित है ॥

जा अज्ञानसैं उपजत जोई ।
ताके ज्ञान बाध तिहि होई ॥ १४० ॥

टीकाः—हे शिष्य ! यद्यपि ब्रह्मसैं भिन्न सकल अविद्याका कार्य है यातैं मिथ्या है । तामैं रंचक श्री तथ्या कहिये सत्य नहीं । परंतु जाके अज्ञानसैं जो उपजैहै ताके ज्ञानसैं तिसका बाध होवैहै ।

१ शुक्ति रज्जु मरुस्थल आदिकनके अज्ञानतैं रूपा सर्प जल आदि उपजैहैं, तिनका बाध शुक्ति रज्जु मरुस्थल आदिकनके ज्ञानतैं होवैहै । औ—

२ ब्रह्मके अज्ञानसैं जो जन्ममरणादिक संसारदुःख उपजैहै ताका बाध ब्रह्मज्ञानतैं होवैहै ॥ १५० ॥

॥ २३९ ॥ प्रश्नः—ब्रह्मके अज्ञानसैं संसार कौन क्रमतैं उपजैहै ? ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

भगवन् ब्रह्म-अज्ञानतैं,
जो उपजे संसार ॥
सो किहि क्रमतैं होत है,
कहो मोहिं निरधार ॥ १५१ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ १५१ ॥

॥ गतप्रश्नका उत्तर ॥ २४०-२७१ ॥

॥ २४० ॥ स्वप्नसमान विनाक्रमतैं जगत्का भासना ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ चौपाई ॥

जैसैं स्वप्न होत बिन क्रमतैं ।
त्यूं मिथ्याजग भासत भ्रमतैं ॥
जो ताको क्रम जान्यो लौरे ॥
सो मरुथलजल वर्णन निचोरे ॥१५२॥

अर्थ स्पष्ट ॥ १५२ ॥

॥ दोहा ॥

उपनिषदनमें बहुत विधि,
जगउत्पत्ति प्रकार ॥
अभिप्राय तिनको यही,
चेतनभिन्न असार ॥ १५३ ॥

टीकाः—यद्यपि उपनिषदनमें जगत्की उत्पत्ति अनेकप्रकारसैं कहीहै ।

१ छांदोग्यमैं तौ 'सत्‌रूप परमात्मातैं अग्नि-जलपृथ्वी क्रमतैं उपजैहैं' यह कह्याहै ॥ औ तैत्तिरीयमैं आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी क्रमतैं होवैहैं । इसरीतिसैं पांचभूतकी उत्पत्ति कहीहै । औ—

२ कहूं सर्वकी परमेश्वर उत्पत्ति करैहै । इस-रीतिसैं क्रमसैं विनाही उत्पत्ति कहीहै ।

ऐसैं जगत्की उत्पत्ति वेदमैं अनेकप्रकारसैं कहीहै ।

तहां वेदका यह अभिप्राय हैः—जगत् मिथ्या है । जो जगत् कछु पदार्थ होता तौ ताकी उत्पत्ति अनेकप्रकारसैं वेद नहीं कहता । अनेकप्रकारसैं जगत्की उत्पत्ति कहीहै यातैं जगत्की उत्पत्तिप्रतिपादनमैं वेदका अभिप्राय नहीं । किंतु अद्वैतब्रह्म लखावनैकूं जगत्के निषेध करनैवास्तै मिथ्या जगत्का किसीरीतिसैं आरोप कियाहै ।

दृष्टांतः—जैसैं विनोदके निमित्त दारूका

हस्ती उडावनैकूं वनावैहै, ताके कान पूछ टेढे होवैं तो सूधे करनैवास्तै यत्न नहीं करते तैसैं अद्वैतज्ञानके निमित्त प्रपंचके निषेधनकूं प्रपंचका आरोप कियाहै। यातैं वेदनैं प्रपंचकी उत्पत्तिक्रम एकरूप कहनैमैं यत्न नहीं किया ॥

प्रपंचकी उत्पत्ति एकरूपसैं वेदनैं नहीं कही यातैं यह जानैहैंः—वेदका अभिप्राय प्रपंचनिषेधनमैं है ताकी उत्पत्तिमैं अभिप्राय नहीं। और

॥ २४१ ॥ सूत्रकारभाष्यकारका श्रुतिवचनसैं जगत्‌उत्पत्तिकथनका अभिप्राय ॥

१ सूत्रकारभाष्यकारनै द्वितीयअध्यायमैं उत्पत्ति कहनैवाले श्रुतिवचनका विरोध दूरिकरिके जो एकरूपसैं तैत्तिरीय श्रुतिके अनुसार उत्पत्तिमैं सर्वउपनिषदनका अभिप्राय कह्याहै। सो मंदजिज्ञासुके निमित्त कह्याहै। जो उत्पत्तिवाक्यनके पूर्व कहे अभिप्रायकूं नहीं जानैं ता मंदजिज्ञासुकूं उपनिषदनमैं नानाप्रकारसैं जगत्‌की उत्पत्ति देखिके आपसमैं उपनिषदनका विरोध है। यह भ्रांति होय जावैगी। ताके दूरि करनैकूं सर्वउपनिषदनमैं एकरूपसैं जगत्‌की उत्पत्तिप्रतिपादनका प्रकार कह्याहै। औ—

२ जाकूं ब्रह्मविचारसैं यथार्थज्ञान नहीं होवै ताकूं लयचिंतनके निमित्त बी उत्पत्तिक्रम कह्याहै। जा क्रमतैं उत्पत्ति कहीहै तासैं विपरीत क्रमतैं लयचिंतन करै। ता लयचिंतनसैं अद्वैतमैं बुद्धि स्थित होवैहै। सो लयचिंतनका प्रकार पंचीकरणमैं वार्तिककार सुरेश्वराचार्यनैं कह्याहै।

३ यह ग्रंथ उत्तमजिज्ञासुके निमित्त है। यातैं जगत्‌की उत्पत्ति औ लयका प्रकार नहीं लिख्या औ सागररूप है, यातैं संक्षेपतैं दिखावैहैंः—शुद्धब्रह्मसैं जगत्‌की उत्पत्ति होवै नहीं। काहेतैं? शुद्धब्रह्म असंग है औ अक्रिय है। किंतु मायाविशिष्ट जो ईश्वर तासैं जगत्‌की उत्पत्ति होवैहै। यातैं माया औ ईश्वरका स्वरूप प्रतिपादन करैहैं ॥ १५२ ॥

॥ २४२ ॥ प्रसंगसैं मायास्वरूपप्रतिपादन ॥

॥ कवित्व ॥

जीवईस भेदहीन
चेतनस्वरूपमांहि ।
माया सो अनादि एक
सांत ताहि मानिये ॥

॥ २८९ ॥ दृष्टिसृष्टिवादकी रीतिसैं ब्रह्मविषै प्रपंचका आरोप करिके फेर ताके अपवादपूर्वक पंचमभूमिकामैं आरूढ होनैयोग्य जो उत्तमसंस्कारवान् जिज्ञासु हैं वे इहां **उत्तमजिज्ञासु** कहियेहैं ॥

॥ २९० ॥ **यद्यपि** जगत्‌का विवर्तउपादानरूप अधिष्ठान मायाउपहितचेतन है, मायाविशिष्टचेतन नहीं। **तथापि** मायाविशिष्टकूं विवर्तउपादान कहिके तासैं जगत्‌की उत्पत्ति कहीहै। सो अविवेकी पुरुषनकी दृष्टिके अनुसार है।

१ विवेकीपुरुषनकी दृष्टिसैं तौ जगत्‌की परिणामीउपादानता विवर्त्तउपादानता मायाविशिष्टचेतनमैं नहीं है, किंतु—

(१) जगत्‌की **परिणामीउपादानता** केवल मायामैं है। औ—

(२) **विवर्तउपादानता** मायाउपहितचेतनमैं है।

२ अविवेकी जनोंकूं दोनूं धर्मनकी मायाविशिष्टचेतनमैं भ्रांतिसैं प्रतीति होवैहै।

यातैं शास्त्रकारोंनै इस अविवेकी जनोंकी दृष्टिका अनुवादमात्र कियाहै।

सत औ असततैं
विलच्छन स्वरूप ताको ।
ताहिकूं अविद्या औ
अज्ञानहू बखानिये ॥
चेतनसामान्य न
विरोधी ताको साधक है ।
वृत्तिमैं आरूढ वा
विरोधी वृत्ति जानिये ॥
मायामैं आभास अधि-
-ष्ठान अरु माया मिल ।
ईस सरवज्ञ जग-
हेतु पहिचानिये ॥ १५४ ॥

टीकाः—जीवईश्वरभेदरहित जो शुद्ध-चेतन, ताके आश्रित माया है। सो माया अनादि कहिये आदिरहित है ॥

आदि नाम उत्पत्तिका है।

१ जो मायाकी उत्पत्ति अंगीकार करैं तौ मायाके कार्य प्रपंचसैं तौ पुत्रसैं पिताकी न्यांई मायाकी उत्पत्ति बनै नहीं। चेतनसैंही मायाकी उत्पत्ति माननी होवैगी ॥ तहां—

२ जीवभाव औ ईश्वरभाव तौ मायाके कार्य हैं। मायाकी सिद्धि हुएविना जीवईश्वर-का स्वरूप असिद्ध है। यातैं जीवचेतन वा ईश्वरचेतनसैं मायाकी उत्पत्ति कहना असंभव है। औ—

३ शुद्धचेतन असंग है; अक्रिय है; निर्विकार है; तातैं मायाकी उत्पत्ति मानै विकारी होवैगा। औ शुद्धचेतनसैं मायाकी उत्पत्ति होवै तौ मोक्षदशाविषै माया फेरि उपजैगी। यातैं मोक्षनिमित्तसाधन निष्फल होवैंगे ॥

इसरीतिसैं माया—

१ उत्पत्तिरहित है, यातैं अनादि है। औ—

२ एक है।

३ सांत कहिये अंतवाली है। ज्ञानतैं मायाका अंत होवैहै। औ—

४ सत्असत्सैं विलक्षण है।

(१) जाका तीनिकालमैं बाध होवै नहीं सो सत् कहियेहै। ऐसा चेतन है।

(२) मायाका ज्ञानतैं बाध होवैहै यातैं सत्सैं विलक्षण है ॥

(३) जाकी तीनिकालमैं प्रतीति होवै नहीं सो शशशृंग वंध्यापुत्र आकाशफूल-आदिक असत् कहियेहैं।

(४) ज्ञानसैं पूर्व माया औ ताका कार्य प्रतीत होवैहै ॥

[१] जाग्रत्विषै "मैं अज्ञानी हूं। ब्रह्मकूं नहीं जानूंहूं"। इसरीतिसैं माया प्रतीत होवैहै। औ—

[२] स्वप्नकेविषै जो नानापदार्थ प्रतीत होवैहैं। तिनका उपादानकारण माया है। औ—

[३] सुषुप्तिसैं अनंतर अज्ञानकी इसरीति-सैं स्मृति होवैहैः—"मैं सुखसैं सोया। कछु बी न जानताभया" सो स्मृति अज्ञात वस्तुकी होवै नहीं। यातैं सुषुप्तिमैं अज्ञानका भान होवैहै। सो अज्ञान औ माया एकही है। तिनका भेद नहीं।

या प्रकारतैं तीनूं अवस्थाविषै मायाकी प्रतीति होवैहै। यातैं असत्सैं विलक्षण है ॥

इसरीतिसैं सत्असत्सैं विलक्षण जो माया ताका कार्य बी सत्असत्सैं विलक्षण है ॥

सत्असत्सैं विलक्षणकूंही अद्वैतमतमैं मिथ्या कहैहैं औ अनिर्वचनीय कहैहैं ॥

यातैं माया औ ताके कार्यतैं द्वैतकी सिद्धि होवै नहीं। काहेतैं ? जैसैं चेतन सत्रूप है।

तैसैं माया औ ताका कार्य सत्‌रूप होवै तौ द्वैत होवै। सो माया औ ताका कार्य सत्-असत्‌सैं विलक्षण होनैतैं मिथ्या है। मिथ्या-पदार्थसैं द्वैत होवै नहीं। जैसैं स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं तिनतैं द्वैत होवै नहीं।

॥ २४३ ॥ अज्ञानकी स्वाश्रयता औ स्वविषयता ॥

१ जीव-ईश्वर-विभागरहित शुद्धब्रह्मके आश्रित माया है। औ—

२ शुद्धब्रह्मकूंही आच्छादन करैहै।

जैसैं गेहके आश्रित अंधकार गेहकूं आच्छादन करैहै।

या पक्षकूं स्वाश्रयस्वविषयपक्ष कहैहैं।

१ स्व कहिये शुद्धब्रह्महीं आश्रय। औ—

२ स्व कहिये शुद्धब्रह्महीं विषय कहिये मायानैं आच्छादित है। अर्थ यह ढक्याहै।

संक्षेपशारीरक, विवरण, वेदांतमुक्तावली, अद्वैतसिद्धि, अद्वैतदीपिका आदिक ग्रंथकारोंनैं स्वाश्रयस्वविषयही अज्ञान अंगीकार किया-है। औ—

॥ २४४ ॥ उक्तअर्थमैं वाचस्पतिका मत ॥

वाचस्पतिका यह मत है:—

१ "अज्ञान जीवके आश्रित है औ २ ब्रह्मकूं विषय करैहै।

१ 'मैं अज्ञानी ब्रह्मकूं नहीं जानूंहूं'। या प्रतीतिसैं 'मैं' शब्दका अर्थ जीव 'अज्ञानी' कहनैतैं अज्ञानका आश्रय भान होवैहै। औ—

२ 'ब्रह्मकूं नहीं जानूंहूं' यातैं अज्ञानका विषय ब्रह्म प्रतीत होवैहै।"

इसरीतिसैं अज्ञान जीवके आश्रित औ ब्रह्मकूं विषय कहिये आच्छादन करैहै।

"सो अज्ञान एक नहीं; किंतु अनंत हैं। काहेतें ?

१ जो एक अज्ञान मानैं तौ एक अज्ञानकी एकके ज्ञानतें निवृत्ति हुयेतें औरनकूं अज्ञान औ ताका कार्य संसार प्रतीत नहीं हुवा चाहिये।

२ जो ऐसैं कहैः-आजतोरी किसीकूं ज्ञान हुवा नहीं तौ आगे बी किसीकूं ज्ञान नहीं होवैगा। यातैं श्रवणादिक साधन निष्फल होवैंगे।

यातैं अनंतजीवनके आश्रित अज्ञान अनंत हैं। अनंतजीवनके अनंतअज्ञानकल्पित ईश्वर अनंत औ ब्रह्मांड अनंत हैं। जा जीवकूं ज्ञान होवै ताका अज्ञान ईश्वर ब्रह्मांडकी निवृत्ति होवैहै। जाकूं ज्ञान नहीं होवै ताकूं बंध रहैहै"॥

यह वाचस्पतिका मत है सो समीचीन नहीं। काहेतें ?

॥ २४५ ॥ वाचस्पतिके मतकी असमीचीनता औ अज्ञानकी एकता ॥

१ "ईश्वर जीवके अज्ञानसैं कल्पित है"। यह कहना श्रुतिस्मृतिपुराणतैं विरुद्ध है।

२ "ईश्वर अनंत औ जीवजीवमैं सृष्टिका भेद" यह बी विरुद्ध है।

यातैं नानाअज्ञान माननैं असंगत है। औ—

नानाअज्ञान मानिके ईश्वर औ सृष्टि एक मानैं तौ बनै नहीं। काहेतें ? जीवईश्वरप्रपंच अज्ञानकल्पित हैं। अनंतअज्ञान मानैतैं एकएक अज्ञानकल्पित जीवकी न्याई ईश्वर औ प्रपंच बी अनंतही होवैंगे। याहीतैं वाचस्पतिनैं अनंत-ईश्वर औ अनंतसृष्टि कहीहै। यातैं "अज्ञान एक है" यह मत समीचीन है॥

॥ २४६ ॥ स्वाश्रयस्वविषयपक्षका अंगीकार ॥

सो एकै अज्ञान बी जीवके आश्रित नहीं किंतु शुद्धब्रह्मके आश्रित है। काहेतैं ?

१ जीवभाव अज्ञानका कार्य है। सो अज्ञान स्वतंत्र कदै बी रहै नहीं। यातैं निराश्रय-अज्ञानसैं तौ जीवभाव बनै नहीं। प्रथम किसीके आश्रित अज्ञान होवै तब अज्ञानका कार्य जीवभाव होवै।

२ जीवपनैकी न्यांई ईश्वरता बी अज्ञानका कार्य है। ताके आश्रित बी अज्ञान नहीं।

किंतु शुद्धब्रह्मके आश्रित अनादिअज्ञान है। अनादि जो चेतन औ अज्ञान तिनका संबंध बी अनादि चेतन अज्ञानके अनादि-संबंधसैं जीवभावईश्वरभाव बी अनादि हैं। परंतु जीवभाव औ ईश्वरभाव अज्ञानके आधीन हैं। यातैं अज्ञानका कार्य कहियेहै।

यद्यपि "मैं अज्ञानी हूं" इसरीतिसैं जीवके आश्रित अज्ञान प्रतीत होवैहै; तथापि शुद्धब्रह्मके आश्रित जो अज्ञान, ताका जीवकूं "मैं अज्ञानी हूं" यह अभिमान होवैहै। औ—

१ जीव अज्ञानका कार्य है। यातैं अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय जीव बन नहीं। किंतु शुद्धब्रह्मही अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय है।

२ शुद्धब्रह्मअधिष्ठानके आश्रित जो अज्ञान सो ता ब्रह्मकूंही आच्छादन करैहै। तिसतैं अनंतर "मैं अज्ञानी हूं" इसरीतिसैं अज्ञानका अभिमानीरूप आश्रय जीव होवैहै।

याप्रकारतैं स्वाश्रयस्वविषय अज्ञान है।

॥ २४७ ॥ एकअज्ञानपक्षमैं बंधमोक्षकी व्यवस्था। सर्वप्रक्रियाकी श्रेष्ठतापूर्वक मायाका नामभेदसैं स्वरूप ॥

सो अज्ञान यद्यपि एक है औ ज्ञानतैं निवृत्त होवैहै। परंतु जा अंतःकरणमैं ज्ञान होवै ता अंतःकरणअवच्छिन्नचेतनमैं स्थित जो अज्ञानका अंश, ताकी निवृत्ति ता ज्ञानसैं होवैहै। सोई मुक्त होवैहै। जा अंतःकरणमैं ज्ञान नहीं होवै। तहां अज्ञानका अंश रहैहै औ बंध रहैहै। यारीतिसैं एक अज्ञानपक्षमैं बंधमोक्षव्यवहार बनैहै। औ—

किसीकूं वाचस्पतिकी रीतिसैं नानाअज्ञानवादही बुद्धिमैं प्रवेश होवै तौ वह बी अद्वैत-

॥ २९१ ॥ याका यह अभिप्राय है:—जैसैं अंशीरूप अंधकार एक है, ताके अंशरूप नाना-अंधकार प्रतिगृहविषै स्थित हैं। जा गृहमैं दीपक होवै ता गृहके अंशरूप अंधकारका नाश होवैहै। तैसैं अंशीअज्ञान एक है, ताके अंशरूप नानाअज्ञान नाना अंतःकरणदेशमैं गत साक्षीचेतनविषै स्थित हैं। जा अंतःकरणदेशमैं ज्ञान होवै ता अंतःकरण-देशगत अज्ञानांशका नाश होवैहै, यातैं एककूं ज्ञान होवै तिसतैं सर्वकूं अज्ञानतत्कार्यकी निवृत्तिद्वारा मुक्ति प्रतीत होवै नहीं। इसरीतिसैं एकअज्ञानके अंगीकार किये बी बंधमोक्षकी व्यवस्था बनैहै। औ जीवके अज्ञानसैं कल्पित ईश्वर अनंत हैं औ जीव-जीवमैं सृष्टिका भेद है। इस श्रुतिस्मृतिपुराणनतैं विरुद्धपक्षका अंगीकार करना बी नहीं होवैहै। यातैं यह पक्ष समीचीन है॥

॥ २९२ ॥ "मैं अज्ञानी हूं" इस अनुभवकरि वाचस्पतिमिश्रनै अज्ञानका आश्रय जीव कह्याहै। सो सुगमरीतिसैं मुमुक्षुकी बुद्धिमैं बटै इस निमित्त कहाहै। परंतु वाचस्पतिमिश्रका गूढअभिप्राय यह है:— "मैं" शब्दका वाच्य जो अंतःकरणविशिष्टचेतनरूप जीव है, ताका विशेष्यभाग जो साक्षीचेतन सो ब्रह्म है। सो अज्ञानका आश्रय है। ताका (विशेष्यके धर्मका) विशिष्टमैं व्यवहार होवैहै।

ज्ञानका उपाय है ताके खंडनमैं कछु आग्रह नहीं । जिसरीतिसैं[२९३] जिज्ञासुकूं अद्वैतबोध होवै तैसैं बुद्धिकी स्थिति करै ॥

शुद्धब्रह्मके आश्रित जो माया ताकूं अविद्या औ अज्ञान कहैहैं ।

१ अचिंत्यशक्ति औ युक्तिकूं नहीं सहारै, यातैं माया कहैहैं ।
२ विद्यातैं नाश होवैहै, यातैं अविद्या कहैहैं ।
३ स्वरूपका आच्छादन करैहै, यातैं अज्ञान कहैहैं ॥

१ जा चेतनके आश्रित है सो सामान्यचेतन ताका विरोधी नहीं । किंतु सामान्यचेतन मायाका साधक है । सत्तास्फुरण देवैहै ॥ औ—
२ वृत्तिमैं आरूढ कहिये स्थित सो चेतन अथवा चेतनसहित वृत्ति, ताकी विरोधी जानिये ।

कवित्वके तीनिपादनतैं मायाका स्वरूप कह्या ।

॥ २४८ ॥ प्रसंगसैं ईश्वरका स्वरूप, द्विविधकारणका लक्षण, जगत्का उपादान औ निमित्तकारण ईश्वर है ॥ ॥ २४८--२४९ ॥

"मायामैं आभास" इत्यादि चतुर्थपादसैं ईश्वरका स्वरूप कहैहैं:—

१ शुद्धसत्वगुणसहित माया । औ—
२ मायाका अधिष्ठान चेतन ।
३ मायामैं आभास ।

तीनूं मिले ईश्वर कहियेहै ॥

सो ईश्वर सर्वज्ञ है । सोई जगत्का हेतु कहिये कारण है ।

कारण दोप्रकारका होवैहै:— १ एक तौ उपादानकारण होवैहै । २ एक निमित्तकारण होवैहै ॥

१(१) जाका कार्यके स्वरूपमैं प्रवेश होवै । औ
(२) जा विना कार्यकी स्थिति होवै नहीं ।
सो उपादानकारण कहियेहै ॥
जैसैं मृत्तिका घटका उपादानकारण[२९४] है ।
(१) घटके स्वरूपमैं ताका प्रवेश है । औ
(२) मृत्तिकाविना घटकी स्थिति नहीं ॥

२(१) जाका स्वरूपमैं प्रवेश नहीं । किंतु
(२) कार्यकूं भिन्न स्थित होयके करै । औ
(३) जाके नाशतैं कार्य बिगरै नहीं ।
सो निमित्तकारण[२९५] कहियेहै ॥

जैसैं घटके कुलालदंडचक्रआदिक निमित्तकारण हैं ।
(१) घटके स्वरूपमैं तिनका प्रवेश नहीं ।
(२) घटसैं भिन्न कहिये किनारै स्थित होयके घटकी उत्पत्ति करैहै । औ
(३) उत्पत्ति हुये पीछे कुलाल दंड चक्र आदिकनके नाशतैं घट बिगरै नहीं ।

इसरीतिसैं उपादान औ निमित्त दोप्रकारका कारण होवैहै । औ—

॥ २९३ ॥ इहां यह नैष्कर्म्यसिद्धिकारका वचन है:—

"यया यया भवेत्पुंसां व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि । सा सैव प्रक्रियेह स्यात् साध्वी सा च व्यवस्थितिः "॥१॥

अर्थः—पुरुषनकूं जिस जिस प्रक्रियाकरि प्रत्यगात्माविषै बोध होवै । सोई सोई प्रक्रिया इहां (वेंदांतसिद्धांतविषै) श्रेष्ठ है औ सोई व्यवस्था है ।

॥ २९४ ॥ कार्यकी उत्पत्ति स्थिति औ लय इन तीनका जो कारण सो उपादानकारण कहियेहै । यह बी उपादानका लक्षण है ॥

॥ २९५ ॥ कार्यकी उत्पत्तिमात्रका जो कारण सो निमित्तकारण कहियेहै । यह निमित्तकारण अनेकप्रकारका होवैहै ।

|| २४९ ||

जगत्‌का उपादान औ निमित्त दोनूंप्रकारतैं ईश्वरही कारण है। जैसैं एकही मँकरी[२९६] जालेका उपादानकारण औ निमित्तकारण है ।। औ जो ऐसै कहैं:–

१ मकरीका जडशरीर जालेका उपादानकारण है। औ—

२ मकरीके शरीरमैं जो चेतनभाग सो निमित्तकारण है।

यातैं एकईश्वरकूं निमित्तकारण औ उपादानकारण माननैमैं कोई दृष्टांत नहीं।

तौ मकरीकी न्यांई

१ ईश्वरका[२९७] शरीर जडमाया जगत्‌का उपादानकारण है। औ—

२ चेतनभाग निमित्तकारण है।

इसरीतिसैं एकही ईश्वर जगत्‌का उपादान औ निमित्तकारण है। तामैं मकरीका दृष्टांत औ मुख्यदृष्टांत[२९८] स्वप्न है ।।

१ जा समय जीवनके कर्म फल देनैकूं सन्मुख नहीं होवै तब प्रलय होवैहै। औ

२ जीवनके कर्म फल देनैकूं सन्मुख होवैं तब सृष्टि होवैहै।

इसरीतिसैं जीवकर्मके आधीन सृष्टि है। यातैं

|| २५० || जीवका स्वरूप कहैहैं:–

|| दोहा ||

मलिनसत्व अज्ञानमैं,
जो चेतनआभास ||
अधिष्ठानयुत जीव सो,
करत कर्म फल आस ||१५५||

टीका:—

१ रजोगुण औ तमोगुणकूं दाबि लेवै, सो शुद्धसत्वगुण कहियेहै ।। औ—

२ रजोगुणतमोगुणसैं आप दबै, सो मलिनसत्वगुण कहियेहै।

|| २९६ || मकरी नाम ह्वतातंतूका है । याहीकूं ऊर्णनाभि वी कहतेहैं।

|| २९७ ||

१ जैसैं मकरीका शरीर जालेका उपादानकारण है औ—

२ अंतःकरणसहित चेतनभाग निमित्तकारण है।

१ तैसैं तमःप्रधानप्रकृतिरूप माया जगत्‌का उपादान है औ—

२ शुद्धसत्वप्रधान मायासहित चेतनभाग जगत्‌का निमित्तकारण है।

केवलचेतनभागमैं कारणता नहीं। यह अभिप्राय है।।

|| २९८ ||

१ न्यायमतमैं घटके साथि ईश्वरके संयोगविषै ईश्वरकूं अभिन्ननिमित्तउपादानकारण मान्याहै औ जीवात्मगत ज्ञानादिगुणविषै जीवात्माकूं अभिन्ननिमित्तउपादानकारण मान्याहै। औ—

२ श्रीमद्भागवतविषै जब ब्रह्माजीनै वत्स औ वत्सपाल हरण कियेथे तब श्रीकृष्णपरमात्मा वत्स औ वत्सपालादिसर्वरूप आपही वन्याहै। तहां वी श्रीकृष्णपरमात्मा तिनका अभिन्ननिमित्तउपादानकारण है। औ—

३ सूर्य जो है, सो अष्टमासपर्यंत पृथ्वीके रसका शोषण करैहै । फेर ग्रीष्म औ वर्षाऋतुके चारिमासपर्यंत जलकूं छोडताहै। तिस जलका सूर्य-अभिन्ननिमित्तउपादानकारण है ।। औ—

४ कोई कमांगर नखरूप कलमसैं स्वशरीरपर चित्र लिखताहै। फेर ताकूं देखिके मुदित होताहै। फेर ताकूं नाश करताहै । तिस चित्रका वह कमांगर (चित्रकार) अभिन्ननिमित्तउपादानकारण है। औ—

५ जैसैं साक्षीचेतन स्वप्नप्रपंचका अभिन्ननिमित्तउपादानकारण है तैसैं ईश्वर जगत्‌का अभिन्ननिमित्तउपादानकारण है ।।

१ ता मलिनसत्वगुणसहित अज्ञानके अंशमें जो चेतनका आभास । औ—

२ अज्ञान औ—

३ ताका अधिष्ठान कूटस्थ ।

तीनूं मिले जीव कहियेहै ।

सो जीव कर्म करैहै औ फलकी आशा करैहै ॥ १५५ ॥

॥ २५१ ॥ ईश्वरमें विषमदृष्टि औ क्रूरता नहीं ।

ता जीवके कर्मनके अनुसार ऊंचनीच-भोगके निमित्त ईश्वर सृष्टि रचैहै । यातें ईश्वरमें विषमदृष्टि औ क्रूरता नहीं । और—

जो ऐसै कहैः—सर्वसें प्रथमसृष्टिसें पूर्व कर्म नहीं औ प्रथमसृष्टिमें ऊंचनीचशरीर औ भोग ईश्वरनें रचेहैं । यातें ईश्वर विषमदृष्टि है ।

सो बनै नहीं । काहेतें ? संसार अनादि है । उत्तरउत्तरसृष्टिमें पूर्वपूर्वसृष्टिके कर्म हेतु हैं । सर्वसें प्रथम कोई सृष्टि नहीं । यातें ईश्वरमें दोष नहीं ।

॥ २५२ जीवनके भोगनिमित्त ईश्वरकूं जगत्‌के उपजावनैकी इच्छा ।

॥ कवित्व ॥

जीवनके पूर्व सृष्टि
कर्म अनुसार ईस ।
इच्छा होय जीव भोग
जग उपजाईये ॥
नभ वायु तेज जल
भूमि भूत रचे तहां ।
शब्द स्पर्श रूप रस
गंध गुन गाईये ॥
सत्वअंस पंचनको
मेलि उपजत सत्व ।
रजोगुनअंस मिलि
प्रान त्यूं उपाईये ॥
एक एक भूत सत्व-
-अंस ज्ञानइंद्रि रचे ।
कर्मइंद्रि रजोगुन-
-अंसतें लखाईये ॥ १५६ ॥

टीकाः—

१ जब जीवनके कर्म भोग देनैसें उदासीन होवैं तब प्रलय होवैहै । प्रलयमें सर्वपदार्थनके संस्कार मायामें रहैहैं । यातें जीवनके कर्म बी जो बाकी रहेथे सो सूक्ष्म होयके मायामें रहैहैं ।

२ जब कर्म भोग देनैकूं सन्मुख होवैं तब ईश्वरकूं यह इच्छा होवैहैः— "जीवनके भोग-निमित्त जगत् उपजाइये" ॥

॥ २९९ ॥ इहां यह शंका हैः—

१ दुःख औ दुःखके साधनकी निवृत्तिके निमित्त किंवा सुख औ सुखके साधनकी प्राप्तिके निमित्त इच्छा होवैहै । अन्यवस्तुकी इच्छा होवै नहीं । यह नियम है ॥ ईश्वरकूं दुःख औ दुःखके साधनका अभाव है । यातें ईश्वरकूं दुःख औ दुःखके साधनकी निवृत्तिके निमित्त इच्छा बनै नहीं । औ—

२ जातें ईश्वर पूर्णकाम है यातें ताकूं सुख औ सुखके साधनकी प्राप्तिके निमित्त बी इच्छा बनै नहीं ॥

जो कहो बालककूं विनोदकी इच्छा होवैहै । ताकी न्याई ईश्वरकूं जगद्रचनारूप विनोदकी इच्छा निर्निमित्त बी होवैहै । सो कहना बी बनै नहीं । काहेतें ? जैसें बालककूं चित्तके आल्हादरूप सुखकी प्राप्तिके निमित्त इच्छा होवैहै तैसें पूर्णकामईश्वरकूं आल्हादरूप सुखप्राप्तिकी इच्छा संभवै नहीं ।

(॥सूक्ष्मसृष्टिनिरूपण ॥ २५३–२५७)

॥ २५३ ॥ पंचभूत औ तिनके गुणनकी उत्पत्ति ॥

ऐसी ईश्वरकी इच्छातैं माया तैंमोगुणप्रधान होवैहै। ता तमोगुणप्रधान मायातैं नभ वायु तेज जल भूमि, ये पंचभूत रचैजावैहैं। तिन भूतनमैं क्रमतैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस औ गंध, ये पांचगुण होवैहैं ॥

१ मायातैं शब्दसहित आकाशकी उत्पत्ति। औ—

२ आकाशतैं वायुकी उत्पत्ति।
- (१) वायु आकाशका कार्य है। यातैं आकाशका शब्दगुण वायुसैं होवैहै।
- (२) अपना गुण स्पर्श होवैहै ॥

३ वायुतैं तेजकी उत्पत्ति। औ—
- (१) तेजमैं आकाशका शब्द।
- (२) वायुका स्पर्श होवैहै।
- (३) अपना रूप होवैहै।

४ तेजतैं जलकी उत्पत्ति।
- (१) आकाशका शब्द।
- (२) वायुका स्पर्श।
- (३) तेजका रूप जलमैं होवैहै।
- (४) अपना रस होवैहै ।

५ जलसैं पृथ्वीकी उत्पत्ति औ—
- (१) आकाशका शब्द।
- (२) वायुका स्पर्श।
- (३) तेजका रूप।
- (४) जलका रस पृथिवीमैं होवैहै।
- (५) पृथिवीका गंध होवैहै ॥

१ आकाशमैं प्रतिध्वनिरूप शब्द है ॥

२ वायुमैं
- (१) सीसी शब्द। औ—
- (२) उष्ण शीत कठिनतैं विलक्षण स्पर्श है ॥

३ अग्निरूप तेजमैं
- (१) भुकभुक शब्द। औ—
- (२) उष्ण स्पर्श। औ—
- (३) प्रकाश रूप है।

४ जलमैं
- (१) चुलचुल शब्द।
- (२) शीत स्पर्श।

या शंकाका यह समाधान है:—जैसैं कल्पवृक्ष अन्यपुरुषके संकल्परूप निमित्तसैं स्वस्वभावकरि वांछितफलकूं देताहै, तैसैं ईश्वर बी फल देनेकूं सन्मुख भये जीवनके अदृष्टरूप निमित्तसैं स्वस्वभावकरि इच्छा ज्ञान औ प्रयत्नकूं करताहै ॥ सो ईश्वरके इच्छादिककी एकएकही व्यक्ति सृष्टिके आरंभकालमैं उपजैहै औ प्रलयपर्यंत स्थायी है। यातैं **नित्य** कहियेहै। औ भूतभविष्यत्वर्त्तमानकालगत सकलपदार्थनकूं विषय करैहै। यातैं सदा सृष्टि किंवा प्रलय, शीत किंवा उष्ण किंवा वर्षा होवै नहीं। किंतु समयके अनुसारही होवैहै ॥

॥ ३०० ॥ जैसैं स्वपतिके शुक्ररूप बीजकूं धारनैवाली औ कृमिआदिक अनेकजंतुयुक्त पुत्ररूप गर्भवाली सगर्भा स्त्री प्रसवतैं पूर्व संततिके लाभरूप निमित्तसैं सदा प्रसन्न रहतीहै, यातैं सत्वगुणप्रधानकी न्यांई है। पीछे प्रसवकालमैं वेदनारूप निमित्तसैं प्रसन्नताका तिरोधानकरिके शून्यचित्तवाली होनैतैं **तमोगुणप्रधान**की न्यांई होवैहै औ जैसैं पूर्व श्वेतरंगवाला बादल है। सो वर्षाकालमैं **श्यामरंगवाला** होवैहै। तैसैं सृष्टितैं पूर्व ब्रह्मके प्रतिबिंबरूप जगत्के बीज (कारण) कूं धारनैवाली औ अविद्योपाधिकअनंतजीवयुक्त प्रपंचरूप गर्भवाली शुद्धसत्वप्रधानमाया (ईश्वरकी उपाधि) है। सो सृष्टिके आरंभकालमैं शुद्धसत्वप्रधानस्वरूपका तिरोधान करिके सृष्टिके योग्य **तमोगुणप्रधानप्रकृतिरूप** होवैहै ॥

(३) शुक्ल रूप।
(४) मधुर रस है। औ क्षार तथा कटु पृथिवीके संबंधसैं जल प्रतीत होवैहै। जलका रस मधुरही है। सो मधुरता हरीतकीआदिक भक्षणकरिके जलपान किये प्रगट होवैहै।

५ पृथिवीमैं
(१) कटकट शब्द है।
(२) उष्णशीतसैं विलक्षण कठिण स्पर्श है।
(३) श्वेत नील पीत रक्त हरित आदि रूप हैं।
(४) मधुर आम्ल क्षार कटु कषाय तिक्त रस हैं।
(५) सुगंध औ दुर्गंध दोप्रकारका गंध है॥ इसरीतिसैं:—

१ आकाशमैं एक।
२ वायुमैं दोय।
३ तेजमैं तीनि।
४ जलमैं चारि। औ—
५ पृथिवीमैं पांच गुण हैं।

तिनमैं एकएक अपना है। अधिक कारणके हैं। औ—

सर्वका मूलकारण ईश्वर है। तामैं माया औ चेतन दोभाग हैं।
१ मिथ्यापना मायाका भाग है। औ—
२ सत्तास्फूर्ति सर्वभूतनमैं चेतनका भाग है।
कवित्वके दोपादका यह अर्थ है॥

॥ २५४ ॥ अंतःकरणकी चारी भेदसहित उत्पत्ति।

पंचभूतनका सत्वगुण अंश मिलिके सत्व कहिये अंतःकरणकूं उपजावैहै। अंतःकरण ज्ञानका हेतु है औ ज्ञानकी उत्पत्ति सत्वगुणतैं अंगीकार करीहै; यातैं अंतःकरण भूतनके सत्वगुणका कार्य है. औ पंचभूतनके कार्य पंचज्ञानइंद्रिय, तिन सबका सहायक हैं। यातैं पंचभूतनके मिले सत्वगुणतैं अंतःकरणकी उत्पत्ति कहीहै।

१ देहके अंतर कहिये भीतर है औ करण कहिये ज्ञानका साधन है, यातैं अंतः-करण कहियेहै। औ—
२ भूतनके सत्वगुणका कार्य है, यातैं अंतः-करणका सत्व बी नाम है।

अंतःकरणका जो परिणाम ताकूं वृत्ति कहैहैं। सो अंतःकरणकी वृत्ति चारि हैं॥
१ पदार्थके भलेबुरेस्वरूपकूं निश्चय करनै-वाली वृत्ति बुद्धि कहियेहै।
२ संकल्पविकल्पवृत्ति मन कहियेहै।
३ चिंतावृत्ति चित्त कहियेहै।
४ "अहं" ऐसी अभिमानवृत्ति अहंकार कहियेहै।

॥२५५॥ प्राणकी पंचभेदसहित उत्पत्ति।

पंचभूतनके मिले रजोगुणके अंशतैं प्राणकी उत्पत्ति होवैहै। सो प्राण क्रियाभेदतैं औ स्थानभेदतैं पांचप्रकारका है।

१ (१) जाका हृदय स्थान है। औ—
(२) क्षुधापिपासा क्रिया है।
सो प्राण कहियेहै। औ—
२ (१) जाका गुद स्थान है
(२) मूत्रमल अधोनयन क्रिया है
सो अपान कहिये है।
३ (१) जाका नाभि स्थान। औ—
(२) भुक्तपीत अन्नजलकूं पाचनयोग्य सम करनैकी क्रिया है
सो समान है।
४ (१) जाका कंठ स्थान है। औ—
(२) स्वास क्रिया है
सो उदान कहिये है।

५ (१) जाका सर्वशरीरं स्थान है,
(२) रसमेलन क्रिया है,
सो व्यान कहिये है औ—

कहूं नाग कूर्म कृकल देवदत्त औ धनंजय ये पंचप्राण अधिक कहेहैं । तिनकी उद्गार निमेष छीक जृंभाई औ मृतशरीरफुलावन इस क्रमतैं क्रिया कहीहै । पृथिवी जल तेज वायु आकाश पंचनके रजोगुणअंशतैं एकएककी क्रमतैं उत्पत्ति कहीहै । औ अपान समान प्राण उदान व्यान इनकी बी पृथिवी आदिक एकएकके रजोगुण-अंशतैं उत्पत्ति कहीहै । सर्वके मिले रजोगुणअंशतैं नहीं । परंतु अद्वैतसिद्धांतमैं यह प्रक्रिया नहीं । काहेतैं ? विद्यारण्यस्वामीनै तथा पंचीकरणमैं वार्तिककारनै सूक्ष्मशरीरमैं औ पंचकोशनमैं नागकूर्म आदिकनका ग्रहण किया नहीं औ तिननैं अपान आदिक पंचप्राणकी उत्पत्ति बी भूतनके मिले रजोगुण अंशतैं कहीहै । यातैं—

१ एकएकके रजोगुणअंशतैं अपान आदिकनकी उत्पत्तिकथन असंगत । औ—
२ सूक्ष्मशरीरमैं नाग कूर्म आदिकनका ग्रहण असंगत ।

पंचप्राणकाही सूक्ष्मशरीरमैं ग्रहण है ॥

प्राण विक्षेपरूप हैं औ विक्षेपस्वभाव रजोगुणका है यातैं भूतनके रजोगुण अंशतैं प्राणकी उत्पत्ति कहीहै ।

यह तृतीयपादका अर्थ है ।

॥ २५६ ॥ ज्ञानेंद्रिय औ कर्मेंद्रियकी उत्पत्ति ॥

१ एकएकभूतका सत्वगुणअंश पंचज्ञान-इंद्रिय रचैहै । औ—
२ एकएकका रजोगुणअंश एकएककर्म-इंद्रिय रचैहै ।

१ आकाशके सत्वगुणतैं श्रोत्र ।
२ वायुके सत्वगुणअंशतैं त्वक् ।
३ तेजके सत्वगुणअंशतैं नेत्र ।
४ जलके सत्वगुणअंशतैं रसना औ—
५ पृथिवीके सत्वगुणतैं घ्राण होवैहै ।

ये पंचेंद्रिय ज्ञानके साधन हैं । यातैं ज्ञानेंद्रिय कहियेहैं ॥ औ—

ज्ञान सत्वगुणतैं होवैहै यातैं भूतनके सत्वगुणतैं उत्पत्ति कहीहै ।

श्रोत्रेंद्रिय आकाशके गुणकूं ग्रहण करैहै । यातैं श्रोत्रेंद्रियकी आकाशतैं उत्पत्ति कही । तैसैं जा भूतके गुणकूं जो इंद्रिय ग्रहण करै ता भूतसैं ता इंद्रियकी उत्पत्ति कहीहै ॥

१ आकाशके रजोगुणअंशतैं वाक्इंद्रियकी उत्पत्ति होवै है ।
२ वायुके रजोगुणअंशतैं पाणिकी ।
३ तेजके रजोगुणअंशतैं पादकी ।
४ जलके रजोगुणअंशतैं उपस्थकी ।
५ पृथिवीके रजोगुणअंशतैं गुदाकी उत्पत्ति होवैहै ।

स्त्रीकी योनि औ पुरुषके मेढ्रमैं जो विषयानंदका साधन इंद्रिय सो उपस्थ कहियेहै ।

कर्म नाम क्रियाका है ॥

ये पांचइंद्रिय क्रियाके साधन हैं । यातैं कर्मेंद्रिय कहियेहैं ॥

क्रिया रजोगुणतैं होवैहै । यातैं भूतनके रजोगुणअंशतैं इनकी उत्पत्ति कहीहै ॥ १५६ ॥

इति सूक्ष्मसृष्टिनिरूपण ॥

॥ २५७ ॥ ॥ सवैयाछंद ॥

भूत अपंचीकृत औ कारज,
इतनी सूछमसृष्टि पिछान ॥
पंचीकृत भूतनतैं उपज्यो,
स्थूलपसारो सारो मान ॥

कारन सूछम थूलदेह अरु ।
पंचकोस इनहीमैं जान ॥
करि विवेक लखि आतम न्यारो ।
मुंज इषीकातैं ज्यूं भान ॥ १५७ ॥

टीकाः–अपंचीकृतभूत औ तिनका कार्य अंतःकरण, प्राण, कर्मइंद्रिय, औ ज्ञानइंद्रिय, इतनी सूक्ष्मसृष्टि कहियेहै ।

सूक्ष्मसृष्टिका ज्ञान इंद्रियतैं होवै नहीं । नेत्रनासिकादिक गोलक तौ इंद्रियनके विषय हैं । परंतु तिन गोलकनमैं स्थित जो इंद्रिय सो काहूके इंद्रियनके विषय नहीं ॥

सूक्ष्मसृष्टिकी उत्पत्तिसैं अनंतर ईश्वरकी इच्छातैं स्थूलसृष्टिके निमित्त भूतनका पंचीकरण होताभया ॥

(॥ पंचीकरण ॥ २५८–२५९ ॥)

॥ २५८ ॥ पंचीकरणप्रकार ॥

पंचीकरण दोभांतिसैं कह्याहैः—

१ एकएक भूतके दोदोभाग सम होयके एकएक भागके चारिचारि भाग भये । पांचभूतनका आधाआधा भाग प्रथम ज्यूंकात्यूं रह्याहै। आधे आधे भागके जो चारिचारि भाग सो पृथक् रहे । बडे अर्धभागनमैं अपनै अपनै भागकूं छोडिके मिलेतैं अर्धभागसबभूतनमैं अपना औ अर्धभाग अपनैसैं इतर चारिभूतनका मिलिके पंचीकरण कहावैहै ।

२ दूसैरा यह प्रकार हैः–एकएक भूतके दोदोभाग भये सो सम नहीं । किंतु एकभाग चारिअंशका औ पंचमअंशका एक भाग इसरीतिसैं न्यूनअधिक दोदो भाग भये; तिनमैं सबके अधिकभाग ज्यूंकेत्यूं पृथक् स्थित रहे औ पंचभूतनके न्यून जो पंचभाग तिनके एकएक भागके पंचपंच भाग करिके पृथक्स्थित अधिक पंचभागनमैं एकएक भाग मिलिके पंचीकरण होवैहै ।

१ प्रथमपक्षमैं एकभागके चारिभाग पृथक् रहे । आधेआधे भागनमैं अपनै भागकूं छोडिके मिले । औ—

२ दूसरेपक्षमैं न्यूनभागके पंचभाग पृथक् रहे । अधिकपंचभागनमैं अपनै भागसहितमैं मिले ॥औ—

१ प्रथमपक्षमैं पंचीकृत भूतनमैं अपना अंश अर्ध औ अर्धअंश औरनका ॥

२ दूसरे पक्षमैं पंचीकरण कियेतैं अपनै अंश इकीस, औरनके अंश चारि औ—

दूसरे पक्षकी सुगमरीति यह हैः– एकएक भूतके पचीस पचीस भाग होयँ ॥ इकीसइकीस भाग औ चारि चारिभाग पृथक् भये ॥ चारि चारि भागनमैं एकएक भाग इकीस इकीस भागनमैं मिले अपनै इकीसभागकूं छोडिके ।

इसरीतिसैं दोप्रकारका पंचीकरण कह्याहै ॥

एकएक भूतमैं पांचपांच भूत मिलायके करनैका नाम पंचीकरण है ।

जिनभूतनका पंचीकरण कियाहै तिनकूं पंचीकृत कहैहैं ॥

॥ ३०१ ॥ पंचीकरणकी प्रथमरीतिसैं सर्वभूतनमैं अर्धअर्धभाग आपआपका है औ अर्धभागजितनै चारिभाग अन्य भूतनके मिलेहैं । यातैं अन्य भूतनके चारिभागनसैं आपआपके अर्धअर्धभागके तिरोधानके होनैतैं आकाशादिक प्रत्येक भूतका पृथक् पृथक् भान न हुवाचाहिये औ होवैहै । यातैं उक्त पंचीकरणकी रीति अघटित है । ऐसी शंका किसी मुमुक्षुके चित्तमैं होवै तौ ताके निवारणार्थ यह पंचीकरणका दूसरा प्रकार कहैहैं ॥

॥ २५९ ॥ ॥ स्थूलब्रह्मांडादिककी उत्पत्ति ॥

तिन पंचीकृत भूतनतैं

१ इंद्रियनका विषय स्थूलब्रह्मांड होताभया।

२ ता ब्रह्मांडके अंतर भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक औ सत्यलोक, ये सातभुवन ऊपरके होतेभये ॥ औ—

३ अतल, सुतल, पाताल, वितल, रसातल, तलातल औ महातल ये सातलोक नीचेके होतेभये।

४ तिन चतुर्दशलोकनमैं जीवनके भोगयोग्य अन्नादिक औ भोगका स्थान देवमनुष्यपशुआदिस्थूलशरीर होतेभये ॥

यह संक्षेपतैं सृष्टिका निरूपण किया औ— मायाके कार्यका विस्तासैं निरूपण कियेतैं कोटिब्रह्माकी उमरतैं वी मायाकृतपदार्थनिरूपणका अंत होवै नहीं। यह वाल्मीकिनै अनेक इतिहासनतैं वासिष्ठमैं निरूपण कियाहै। (यह सवैयाके दोपादनका अर्थ है)॥

(आत्मविवेक अथवा पंचकोशविवेक ॥ २६०--२७१ ॥)

॥ २६० ॥ पंचकोश औ तिनकरि आत्माका आच्छादन करना ॥

तृतीय पादका अर्थ यह है:—इनहीमैं कहिये माया औ ताके कार्यमैं तीनि शरीर औ पंच कोश हैं।

१ (१) शुद्धसत्वगुणसहित माया ईश्वरका कारणशरीर है। औ—

(२) मलिनसत्वगुणसहित अविद्याअंश जीवका कारणशरीर है।

२(१) उत्तरशरीरके आरंभक पंचसूक्ष्मभूत मन बुद्धि चित्त अहंकार, पंचप्राण पंचकर्मइंद्रिय औ पंचज्ञानइंद्रिय, यह जीवका सूक्ष्मशरीर है ॥ औ—

(२) सर्वजीवनके सूक्ष्मशरीरही मिलिके ईश्वरका सूक्ष्मशरीर है ॥

३ (१) संपूर्णस्थूलब्रह्मांड ईश्वरका स्थूलशरीर है ॥ औ—

(२) जीवनके व्यष्टिस्थूलशरीर प्रसिद्ध हैं ॥

इन तीनि शरीरनमैंही पंचकोश हैं ॥

१ कारणशरीरकूं आनंदमयकोश कहैहैं ॥

२-४ विज्ञानमय, मनोमय, औ प्राणमय, ये तीनि कोश सूक्ष्मशरीरमैं हैं ॥

(१) पंचज्ञानेंद्रिय औ निश्चयरूप अंतःकरणकी वृत्ति बुद्धि विज्ञानमयकोश कहियेहै ॥

(२) पंचज्ञानेंद्रिय औ संकल्पविकल्प अंतःकरणकी वृत्ति मन मनोमयकोश कहियेहै।

(३) पंचप्राण औ पंचकर्मेंद्रिय प्राणमयकोश है।

५ स्थूलशरीरकूं अन्नमयकोश कहैहैं।

इसरीतिसैं तीनिशरीरनमैंही पंचकोश हैं ॥

१ [३०२] ईश्वरके शरीरमैं ईश्वरके कोश हैं। औ

॥ ३०२ ॥

१ समष्टिअज्ञानरूप माया ईश्वरका कारणशरीर है सो ईश्वरका आनंदमयकोश है। औ

२-४ जीवनके सूक्ष्मशरीकी समष्टिरूप हिरण्यगर्भ ईश्वरका सूक्ष्मशरीर है। तामैं (१) विज्ञानमय (२) मनोमय औ (३) प्राणमयरूप ईश्वरके तीनिकोश हैं तिनमैं—

(१) दिक्पाल, वायु, सूर्य, वरुण, अरु, अश्विनी-

२ जीवके शरीरनमैं जीवके कोश हैं।
कोश नाम म्यानका है।

म्यानकी न्यांई पंचकोश आत्माके स्वरूपकूं आच्छादन करैहैं, यातें अन्नमयादिक कोश कहियेहैं ॥

अनेक मंदमतिपुरुष पंचकोशनमैं जो अनात्मपदार्थ हैं, तिनमैं किसी एककूं आत्मा मानिके मुख्यसाक्षी आत्मस्वरूपतें विमुखही रहैहैं। यातें अन्नमयादिक आत्मस्वरूपकूं आच्छादन करैहैं। तहां—

॥ २६१ ॥ विरोचनका सिद्धांत ॥

(अन्नमयकोश आत्मा)

कितने पामर विरोचनमतके अनुसारी स्थूलशरीररूप अन्नमयकोशकूंही आत्मा कहैहैं औ यह युक्ति कहैहैं:—

१ जामैं अहंबुद्धि होवै सो आत्मा है। सो अहंबुद्धि स्थूलशरीरमैं होवैहै।

(१) "मैं मनुष्य हूं, मैं ब्राह्मण हूं" ऐसी प्रतीति सर्वकूं होवैहै। औ—

(२) मनुष्यपना, ब्राह्मणपना, औ स्थूलशरीरमैंही हैं।

यातें स्थूलशरीरही अहंबुद्धिका विषय होनैतें आत्मा है ॥

२ किंवा जामैं मुख्यप्रीति होवै सो आत्मा है ॥

(१) स्त्री पुत्र धन पशु आदिक स्थूलशरीरके उपकारक होवैं तौ तिनमैं प्रीति होवैहै। औ—

(२) स्थूलशरीरके उपकारक नहीं होवैं तौ प्रीति होवै नहीं ॥

जाके निमित्त अन्यपदार्थमैं प्रीति होवै ता स्थूलशरीरमैंही मुख्यप्रीति है। यातें स्थूलशरीरही आत्मा है ॥

स्थूलशरीरका वस्त्र भूषण अंजन मंजन नानाविधभोजनसैं शृंगार पोषणही परमपुरुषार्थ है।

यह असुरस्वामी विरोचनका सिद्धांत है ॥

कुमार, ये पांच ईश्वरकी ज्ञानइंद्रिय औ समष्टिबुद्धिमय महत्तत्त्वरूप वा सर्व बुद्धिनका अभिमानी ब्रह्मारूप ईश्वरकी बुद्धि मिलिके ईश्वरका विज्ञानमयकोश है औ—

(२) उक्त श्रोत्रादिकके अधिष्ठाता देवतारूप पांच ईश्वरके ज्ञानइंद्रिय औ समष्टिमन रूप अहंकारमय वा सर्वके मनका अभिमानी चंद्रमामय ईश्वरका मन मिलिके ईश्वरका मनोमयकोश है। औ—

(३) अग्नि, इंद्र, उपेंद्र, प्रजापति, अरु मृत्यु (यम) ये पांच ईश्वरके कर्मइंद्रिय औ समष्टिप्राण वा वायुका अभिमानी देवतारूप ईश्वरका प्राण मिलिके ईश्वरका प्राणमयकोश है। औ—

५ समष्टिस्थूलसृष्टिरूप विराट् ईश्वरका स्थूलशरीर है सो ईश्वरका अन्नमयकोश है।

जैसैं जीवके शरीरमैं जीवके कोश हैं, वे कोशकार नाम कृमि (कीडे) के कंटकरचित गृहरूप कोशकी न्यांई जीवकी दृष्टिसैं ताके निजरूप प्रत्यगात्माके आच्छादक हैं; तैसैं ईश्वरके शरीरनमैं जो ईश्वरके कोश हैं वे ईश्वरकी दृष्टिसैं ताके निजरूप ब्रह्मके आच्छादक नहीं। किंतु जीवकी दृष्टिसैं ब्रह्मके आच्छादक हैं। यातें जीवकूं व्यष्टिपंचकोशनतें जैसैं प्रत्यगात्माका विवेचन कर्त्तव्य है तैसैं समष्टिपंचकोशनतें ब्रह्मका विवेचन बी जीवकूंही कर्त्तव्य है। ईश्वरकूं आवरणके अभावतें नित्यमुक्त होनैंकरि कछु बी कर्त्तव्य नहीं है ॥

॥ ३०२ ॥ १ "मैं देखूंहूं" "सुनूंहूं" इसरीतिसैं इंद्रियनन बी अहंबुद्धिके देखनैतें औ स्थूलदेहतें इंद्रियनविषै अधिक प्रीतिके देखनैतें स्थूलदेहविषै अहंबुद्धि औ मुख्यप्रीतिके व्यभिचारतें। औ—

॥ २६२ ॥ इंद्रियआत्मवादीका मत ॥
(इंद्रियआत्मा)

और कोऊ ऐसैं कहैहैं:-स्थूलशरीरही आत्मा नहीं। किंतु-

१ स्थूलशरीरमैं जाके होनैतैं जीवनव्यवहार होवैहै औ जाके नहीं होनैतैं मरणव्यवहार होवैहै सो आत्मा स्थूलशरीरसैं भिन्न है। जीवन मरण इंद्रियनके आधीन है। जितनैं काल शरीरमैं इंद्रिय होवै उतनैं काल जीवन है। औ कोऊ इंद्रिय न होवै तब मरण कहियेहै। औ-

२ "मैं देखूं हूं, "मैं सुनूंहूं ? "मैं बोलूंहूं" इसरीतिसैं अहंबुद्धि बी इंद्रियनमैं होवैहै।

यातैं इंद्रियही आत्मा है। औ-

॥ २६३ ॥ हिरण्यगर्भके उपासकका मत ॥
(प्राणआत्मा)

हिरण्यगर्भके उपासी प्राणकूं आत्मा कहैहैं। तामैं यह युक्ति कहैहैं:-

१ जब मरणसमय मूर्छा होवैहै तब ताके संबंधी पुत्रादिक प्राण शेष होवैं तौ जीवन जानैहै औ प्राण शेष न होवैं तौ मरण जानैहैं।

२ किंवा शरीरमैं नेत्रइंद्रिय नहीं होवैं तौ अंधाशरीर रहैहै श्रोत्रसैं विना बधिर रहैहै। वाक्‌विना मूक रहैहै। ऐसैं जो इंद्रिय नहीं होवै ताके व्यापारसैं विना बी शरीर स्थितही रहै औ प्राणसैं विना तिसीक्षणमैं स्मशानके समान अमंगल भयंकर होयके गिरैहै॥ औ-

३ "मैं देखूंहूं"। "सुनूंहूं" या प्रतीतिसैं बी इंद्रियनतैं भिन्नही आत्मा सिद्ध होवैहै। काहेतैं ? "नेत्रस्वरूप मैं देखूंहूं। श्रवणस्वरूप मैं सुनूंहूं"। जो ऐसी प्रतीति होवै तो इंद्रियरूप आत्मा सिद्ध होवै। किंतु "मैं नेत्रवाला देखूंहूं। श्रोत्रवाला मैं सुनूंहूं"। ऐसी प्रतीति होवैहै॥

यातैं इंद्रियनतैं भिन्नही आत्मा है॥ औ-

४ सुषुप्तिमैं सर्वइंद्रियनका अभाव है। तौ बी प्राणके होनैतैं जीवनव्यवहार होवैहै। यातैं जीवनमरण बी इंद्रियनके आधीन नहीं। किंतु स्थूलशरीर औ प्राणके वियोगकूं मरण कहैहैं।

यातैं जीवनमरण प्राणकेही आधीन हैं। सोई आत्मा है॥

---

२ "मेरा देह है" औ "मुंजकूं धिक्कार है" इसरीतिसैं स्थूलदेहकूं उलटा ममबुद्धि औ द्वेषका विषय होनेतैं।

यह स्थूलदेह आत्मा नहीं है।

इस देहात्मवादीके मतका विशेषकरिके खंडन हमनै श्रीपंचदशीके चित्रदीपके ६१ वें श्लोकके टिप्पणविषै लिख्याहै।

॥ ३०४ ॥

१ इंद्रियके अभावतैं बधिर-अंध-मूक-पंगुरूप होयके बी शरीर जीवैहै, यातैं जीवनमरण इंद्रियनके आधीन नहीं॥ औ-

२ "मैं क्षुधावान् हूं" "मैं तृषावान् हूं" ऐसैं क्षुधातृषारूप धर्मवाले प्राणविषै बी अहंबुद्धिके होनैतैं। औ-

३ "मेरी चक्षु" "मेरी वाणी" ऐसैं इंद्रियनकूं ममबुद्धिके विषय होनेतैं इंद्रियगत अहंबुद्धिका व्यभिचार है।

यातैं इंद्रिय आत्मा नहीं।

इंद्रियआत्मवादीके मतका विशेषखंडन हमनै श्रीपंचदशीके चित्रदीपके ६५ वें श्लोकके टिप्पणविषै लिख्याहै॥

॥ ३०५ ॥ प्राण आत्मा नहीं है यह अर्थ पंचदशीके चित्रदीपके ६७ वें श्लोकके टिप्पणविषै सविस्तर लिख्याहै।

|| २६४ || मनआत्मवादीका मत ||

(मन आत्मा)

औ़र कोई ऐसें कहैहैं:—

१ प्राण जड है, यातें घटकी न्यांई अनात्मा है। औ—

२ बंधमोक्ष मनके आधीन हैं।

(१) विषयमैं आसक्त जो मन सो बंधनका हेतु है।

(२) विषयवासनारहित मन मोक्षका हेतु है। औ—

३ मनके संबंधतेंही इंद्रिय ज्ञानके हेतु हैं। मनके संबंधविना इंद्रियतें ज्ञान होवै नहीं।

यातें सर्वव्यवहारका हेतु मन है। सोई आत्मा है। औ—

|| २६५ || विज्ञानवादी बौद्धका मत ||

(बुद्धि आत्मा)

क्षणिकविज्ञानवादी बौद्ध यह कहैहैं:—मनका व्यापार बुद्धिके आधीन है। काहेतें? बुद्धिकाही आकार मन होवैहै। यातें क्षणिकविज्ञानरूप बुद्धिही आत्मा है। मन नहीं ||[306]

यह तिनका अभिप्राय है:—

१ संपूर्णपदार्थ विज्ञानकेही आकार हैं।

२ सो विज्ञान प्रकाशरूप है। औ—

३ क्षणक्षणमैं विज्ञानके उत्पत्तिनाश होवैहैं।

पूर्वविज्ञानके समान अन्यविज्ञानकी उत्पत्ति हुयेतें पूर्वविज्ञानका नाश होवैहै। तैसें तृतीयविज्ञानकी उत्पत्ति औ द्वितीयविज्ञानका नाश, चतुर्थकी उत्पत्ति, तृतीयका नाश होवैहै। यारीतिसैं नदीके प्रवाहकी न्यांई विज्ञानकी धारा बनी रहैहै। सो विज्ञानकी धारा दोप्रकारकी है। १ एक तौ आलयविज्ञानधारा है औ २ दूसरी प्रवृत्तिविज्ञानधारा है।

१ "अहं अहं" ऐसी विज्ञानधाराकूं आलयविज्ञानधारा कहैहैं। ताहीकूं बुद्धि कहैहैं।

२ "यह घट है, यह शरीर है"। ऐसी विज्ञानधाराकूं प्रवृत्तिविज्ञानधारा कहैहैं।

आलयविज्ञानधारासैं प्रवृत्तिविज्ञानधाराकी उत्पत्ति होवैहै। मनका स्वरूप बी प्रवृत्तिविज्ञानधारामैं है। यातें आलयविज्ञानधारारूप बुद्धिका कार्य है। सो बुद्धिही आत्मा है।

आलयविज्ञानधाराविषै प्रवृत्तिविज्ञानधाराका बाधचिंतनतें निर्विशेषक्षणिकविज्ञानधाराकी स्थितिही तिनके मतमैं मोक्ष है।[307]

इसरीतिसें विज्ञानवादी बुद्धिकूंही क्षणिकरूप औ स्वयंप्रकाशरूप कल्पनाकरिके आत्मा कहैहैं || औ—

|| २६६ || भट्टका मत ||

(आनंदमयकोश आत्मा)

पूर्वमीमांसाका वार्त्तिककारभट्ट यह कहैहै:—विद्युत्की न्यांई क्षणिकरूप आत्मा नहीं। किंतु स्थिरस्वरूप आत्मा १ जडस्वरूप औ २ चेतनरूप है।

यह ताका अभिप्राय है:—

१ सुषुप्तिसैं जागिके पुरुष यह कहैहै:— "मैं जड होयके सोवताभया" यातें आत्मा जडरूप है। औ—

|| ३०६ || 'मन आत्मा नहीं है' यह अर्थ पंचदशीके चित्रदीपके ६८ वें श्लोकके टिप्पणविषै विस्तारसैं लिख्याहै।

|| ३०७ || क्षणिकविज्ञानरूप बुद्धिही आत्मा है। ऐसैं माननैवाले क्षणिकविज्ञानवादीके मतका प्रतिपादन औ खंडन चित्रदीपके ७४ वें श्लोकके टिप्पणविषै हमने विस्तारसैं लिख्याहै ||

२ जागेकूं स्मृति होवैहै, अज्ञातकी स्मृति होवै नहीं। आत्मस्वरूपसैं भिन्न ज्ञानके सुषुप्तिमैं और साधन नहीं। यातैं स्मृतिका हेतु सुषुप्तिमैं ज्ञान है। सो आत्माका स्वरूपही है ॥

इसरीतिसैं खद्योतकी न्यांई आत्मा प्रकाश औ अप्रकाशरूप है।

१ ज्ञानरूप है, यातैं प्रकाशरूप है। औ–
२ जड है, यातैं अप्रकाशरूप है।

सो प्रकाशरूप औ अप्रकाशरूप आनंदमयकोश है। काहेतैं? सुषुप्तिमैं चेतनके आभाससहित जो अज्ञान, ताकूं आनंदमयकोश कहैहैं। तहां आभास तौ प्रकाशरूप औ अज्ञान अप्रकाशरूप है। यातैं भट्टके मतमैं आँनंदमयकोशही आत्मा है ॥

॥ २६७ ॥ माध्यमिक बौद्धका मत ॥

(आनंदमयकोश आत्मा)

शून्यवादी बौद्ध यह कहैहैं:– आत्मा निरंश है, यातैं एक आत्माकूं प्रकाशरूप औ अप्रकाशरूप कहना बनै नहीं औ खद्योतका तौ एकअंश प्रकाशरूप है औ दूसरा अंश अप्रकाशरूप है। ताकी न्यांई अंशरहित आत्माविषै उभयरूप कहना असंगत है। यातैं–

१ उभयरूपकी सिद्धिवास्तै आत्मा अंशासहितही मानना होवैगा।
२ जो अंशवाले पदार्थ घटादिक हैं सो उत्पत्ति औ नाशवाले होवैहैं। तैसैं आत्मा बी अंशसहित होनैतैं उत्पत्तिनाशवालाही मानना होवैगा।
१ जो उत्पत्तिनाशवाला पदार्थ होवै सो उत्पत्तिसैं पूर्व औ नाशतैं अनंतर असत् होवैहै। जो आदिअंतमैं असत् होवै सो मध्य बी सत् होवै नहीं। किंतु मध्य बी असत्ही होवैहै। यातैं आत्मा असत्रूप है।

तैसैं आत्मासैं भिन्न बी संपूर्णपदार्थ उत्पत्तिनाशवाले हैं यातैं असत्रूप हैं।

इसरीतिसैं आत्मा औ अनात्मा समग्रवस्तु असत्रूप होनैतैं शून्यही परमतत्त्व है। यह शून्यवादी माध्यमिक बौद्धका मत है ॥

सो बी अज्ञानरूप आनंदमयकोशकूं प्रतिपादन करैहैं। काहेतैं? अज्ञान तीनिरूपसैं प्रतीत होवैहै।

१ अद्वैतशास्त्रके संस्काररहित जो मूढ तिनकूं तौ जगत्रूप परिणामकूं प्राप्त अज्ञान सत्य प्रतीत होवैहै। औ—
२ अद्वैतशास्त्रके अनुसार युक्तिनिपुणपंडितनकूं सत्असत्सैं विलक्षण अनिर्वचनीयरूप अज्ञान औ ताका कार्य जगत् प्रतीत होवैहै।
३ ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्त जो जीवन्मुक्तविद्वान् तिनकूं कार्यसहित अज्ञान तुच्छरूप प्रतीत होवैहै।

तुच्छ असत्, औ शून्य, ये तीनिशब्द एकही अर्थकूं कहैहैं ॥

इसरीतिसैं जीवन्मुक्तनकूं तुच्छरूप जो प्रतीति होवै अज्ञान, ताकेविषै मोहित शून्यवादी परमपुरुषार्थकूं नहीं जानैहैं। किंतु तुच्छरूप आँनंदमयकोशकूंही आत्मा कहैहैं। औ

॥ ३०८ ॥ आत्माकूं जडचेतन उभयरूप माननैहारे भट्टके मतका खंडन चित्रदीपके ९८ वें श्लोकके टिप्पणविषै हमनै लिख्याहै।

॥ ३०९ ॥ शून्यवादी माध्यमिकके मतका खंडन चित्रदीपके ७६ वें श्लोकके टिप्पणविषै लिख्याहै ॥

॥ २६८ ॥ प्रभाकर औ नैयायिकका मत ॥

(आनंदमयकोश आत्मा)

पूर्वमीमांसाका एकदेशी प्रभाकर औ नैयायिक यह कहैहैं:—आत्मा शून्यरूप नहीं। काहेतें? जो शून्यरूप आत्मा मानै ताकूं यह पूछैहैं:—१ शून्यरूपका तैंनें अनुभव कियाहै २ अथवा नहीं?

१ जो कहै "शून्यका अनुभव कियाहै" तौ जानै शून्यका अनुभव कियाहै। सो आत्मा शून्यसैं विलक्षण सिद्ध होवैहै ॥
२ जो ऐसैं कहै "शून्यरूपका अनुभव नहीं किया" तौ शून्य नहीं है। यह सिद्ध हुआ ॥

इसरीतिसैं शून्यतें विलक्षण आत्मा है।

१ ताकेविषै मनके संयोगतें ज्ञान होवैहै।
२ ता ज्ञानगुणतें आत्मा चेतन कहिये है। औ
३ स्वरूपसैं आत्मा जड है।
४ तैसैं सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, आदिक गुण आत्माविषै हैं।

तिनके मतमैं बी आनंदमय कोशही आत्मा है। औ—

विज्ञानमयकोशमैं जो बुद्धि है सो आत्माका ज्ञानगुण कहैहैं। काहेतें? आनंदमयकोशमैं चेतन गूढ है। विवेकहीनकूं प्रतीत होवै नहीं औ प्रभाकर तथा नैयायिक आत्माकूं सुषुप्तिमैं ज्ञानहीन मानिके स्वरूपसैं जड कहैहैं। यातें गूढचेतन आनंदमयकोशमैंही तिनकूं आत्मभ्रांति है। औ—

आत्मस्वरूप नित्यज्ञानकूं तौ जीवमैं मानै नहीं किंतु अनित्यज्ञान मानैहैं। सो अनित्यज्ञान सिद्धांतमैं अंतःकरणकी वृत्ति बुद्धिरूप है।

यारीतिसैं प्रभाकरनैयायिकमतमैं आनंदमयकोश आत्मा है औ बुद्धि ताका गुण है ॥ तिनका मत बी समीचीन नहीं। काहेतें?—

॥ २६९ ॥ जीवका पंचकोशकी न्यांई ईश्वरके पंचकोशनसैं ताके स्वरूपका आच्छादन ॥

१ ज्ञानसैं भिन्न जो जडवस्तु घटादिक हैं सो अनित्य हैं। तैसैं आत्मा बी ज्ञानस्वरूप नहीं होवै तौ घटादिकनकी न्यांई जड होनैतें अनित्य होवैगा।
२ जो आत्मा अनित्य होवै तौ मोक्षके अर्थ साधन निष्फल होवैगा।

इसरीतिसैं वेदांतवाक्यनमैं विश्वासहीन अनेकबहिर्मुख पंचकोशनमैंही किसी पदार्थकूं आत्मा मानैहैं औ मुख्यआत्मस्वरूप साक्षीकूं नहीं जानैहैं। यातें अन्नमयादिक आत्माके आच्छादक होनैतें कोश कहियेहैं ॥

जैसैं जीवके पंचकोश जीवके यथार्थस्वरूप साक्षीकूं आच्छादन करैहैं तैसैं ईश्वरके समष्टि-पंचकोश ईश्वरके यथार्थस्वरूपकूं आच्छादन करैहैं। काहेतें? ईश्वरका यथार्थस्वरूप तौ तत्पदका लक्ष्य है ताकूं त्यागिके—

१ कोई तौ मायारूप आनंदमयकोशविशिष्ट जो अंतर्यामी तत्पदका वाच्य ताकूंही परमतत्त्व कहैहैं ॥
२ तैसैं हिरण्यगर्भ, वैश्वानर, विष्णु,

॥ २१० ॥ नैय्यायिक औ प्रभाकरके मतका प्रतिपादन चित्रदीपके ८८ सैं ९४ वें श्लोकपर्यंत किया है औ तिनके मतका खंडन चित्रदीपके ९४ वें श्लोकके टिप्पणविषै लिख्याहै। इहां "गूढचेतन" या शब्दका गूढ है चेतन जिसविषै ऐसा आनंदमयकोश तातैं यह अर्थ है—

ब्रह्मा, शिव, गणेश, देवी औ सूर्यसैं आदिलेके असि, कुदाल, पीपल, अर्क वंशपर्यंत पदार्थनमैं परमात्माभ्रांति करैहै

यद्यपि सर्वपदार्थनमैं लक्ष्यभाग परमात्मासैं भिन्न नहीं तथापि तिसतिस उपाधिसहितकूं जो परमात्मा मानैहैं सो तिनकूं भ्रांति है। यारीतिसैं—

१ पंचकोशनतैं आवृत जो जीवईश्वरका परमार्थस्वरूप, तासैं विमुख होयके देहादिकनमैं आत्मभ्रांतिकरिके पुण्यपापकर्म करै है। औ—

२ अंतर्यामीसैं आदिलेके वंशपर्यंतकूं ईश्वररूप मानिके आराधनकरिके सुख चाहैहैं। जैसी उपाधिका आराधन करैहैं, ताके अनुसारही तिनकूं फल होवैहै। काहेतैं? कारण-सूक्ष्मस्थूलप्रपंच सारा ईश्वरके तीनि शरीरनके अंतर्भूत है। तातैं उपासनाके अनुसार फल बी सर्वसैंही होवैहै।

परंतु ब्रह्मज्ञानविना मोक्ष होवै नहीं। जो मोक्षकी इच्छा होवै तौ विवेकतैं जीवईश्वरके स्वरूपकूं पंचकोशनतैं पृथक् करै॥

दृष्टांतः—जैसैं मुंज औ इषीका कहिये [३११]तूली मिली होवैहै तिनकूं तोरीके पृथक् करैहैं। तैसैं विवेकतैं जीवईश्वरके स्वरूपकूं पंचकोशनतैं पृथक् जानै।

यह सवैयाका अर्थ है॥ १५७॥

॥ २७०॥ सो पंचकोशविवेकका प्रकार दिखावैहैं:—

॥ सवैया ॥

स्थूलदेहको भान न होवै,
स्वप्नमांहि लखि आतमज्ञान।
सूछमज्ञान सुषुप्ति समै नहिं,
सुखस्वरूप व्है आतम भान॥
भासै भये समाधि अवस्था,
निरावरनआतम न अज्ञान।
ऐसै तीनिदेह व्यभिचारी।
आतम अनुगत न्यारो जान १५८

टीकाः—

१ स्वप्नअवस्थामाही स्थूलदेहका भान होवै नहीं औ आत्माका भान होवैहै।

२ तैसैं सुषुप्तिअवस्थामैं सूक्ष्मशरीरका ज्ञान होवै नहीं औ सुखस्वरूप आत्मा स्वयंप्रकाशरूपतैं भान कहिये प्रतीत होवैहै। सुखका ज्ञान सुषुप्तिमैं नहीं होवै तौ "मैं सुखसैं सोवताभया" ऐसी स्मृति जागिके नहीं हुईचाहिये। यातैं सुखका ज्ञान सुषुप्तिमैं होवैहै। सो सुख विषयजन्य तौ सुषुप्तिमैं है नहीं, किंतु आत्मस्वरूपही है। सो आत्मा स्वयंप्रकाश है। यातैं सुखस्वरूप आत्मा स्वयंप्रकाशरूपतैं सुषुप्तिमैं भासैहै। औ—

३ निदिध्यासनके फल निर्विकल्पसमाधिअवस्थामैं निरावरण कहिये अज्ञानकृत आवरणरहित आत्मा भासैहै औ न अज्ञान कहिये कारणशरीरअज्ञान नहीं भासैहै।

१ ऐसैं तीनिदेह व्यभिचारी हैं। एक अवस्थाकूं छोडिके दूसरीअवस्थामैं भासैं नहीं।

२ आत्मा अनुगत है। सर्वअवस्थामैं भासैहै यातैं व्यापक है।

या विवेकतैं तीनि शरीरनतैं आत्माकूं न्यारो जान॥

[३११] ॥ ३११ ॥ मुंजनामक तृणविशेषके लंबे पर्णोंके मध्यमैं गुप्त होयके स्थित जो तूल (कपास) करि वेष्टित लंबी शलाका सो इषीका औ तूली कहियेहै। यह वृक्ष वृंदावनगत मुंजाटवीमैं प्रसिद्ध है।

१ स्थूलशरीर तौ अन्नमयकोश है। औ-
२ कारणशरीर आनंदमयकोश है। औ-
३-५ सूक्ष्मशरीरमैं प्राणमय, मनोमय औ विज्ञानमय, ये तीनिकोश हैं।

यातैं तीनि शरीरके विवेकतैं पंचकोशकाही विवेक होवैहै।

जैसैं जीवका स्वरूप पंचकोशनतैं पृथक् है। तैसैं ईश्वरका स्वरूप बी समष्टिपंचकोशनतैं पृथक् है। औ—

चतुर्थतरंगमैं चतुर्विधआकाशके दृष्टांतसैं जीवईश्वरके लक्ष्यस्वरूपका विवेक विस्तारसैं करी आयेहैं औ उत्तरतरंगमैं अस्तिभातिप्रियरूपके निरूपणमैं तथा महावाक्यनके अर्थनिरूपणमैं आत्माका परमार्थस्वरूप प्रतिपादन करैंगे। यातैं इहाँ संक्षेपतैंही आत्मविवेक कह्याहै।

॥ २७१ ॥ महावाक्यके अर्थका उपदेश ॥

इसरीतिसैं पंचकोशनतैं आत्माकूं न्यारा जानैसैं बी कृतकृत्य होवै नहीं। किंतु जीवब्रह्मके अभेदनिश्चयवास्तै फेरि बी विचार कर्त्तव्य रहैहै। यातैं कर्त्तव्यका अभावरूप कृतकृत्यताकी सिद्धिवास्तै महावाक्यका अर्थ उपदेश करैहैंः—

॥ सवैया ॥

पंचकोसतैं आतम न्यारो,
जानि सु जानहु ब्रह्मस्वरूप।
तातैं भिन्न जु दीखै सुनिये,
सो मानहु मिथ्या भ्रमकूप॥
मिथ्या अधिष्ठान न बिगारै,
स्वप्नभीख न दरिद्री भूप।
सब कछु कर्त्ता तऊ अकर्त्ता,
तव अस अद्भुतरूप अनूप॥१५९॥

टीकाः— हे शिष्य! पंचकोशतैं आत्माकूं न्यारा जानिके सु कहिये सो आत्मा ब्रह्मस्वरूप है। यह जानो॥ याकेविषै—

॥ २७२ ॥ प्रश्नः—आत्मा पुण्यपाप करैहै, सुखदुःख भोगैहै, यातैं ताकी ब्रह्मसैं एकता बनै नहीं॥

ऐसी शंका होवैहैः—आत्मा पुण्यपाप करैहै। तातैं स्वर्गनरक औ मृत्युलोकमैं नानाप्रकारके सुखदुःख भोगैहै। ताकी ब्रह्मसैं एकता बनै नहीं।

(॥गत प्रश्नका उत्तर ॥ २७३--३०३॥)

॥२७३॥ अकर्त्ता अभोक्ता औ नित्यमुक्त आत्माका सदा ब्रह्मसैं अभेद॥

ताका समाधानः—" तातैं भिन्न जु दीखै" इत्यादि तीनिपादनतैं कहैहैंः—

ता ब्रह्मरूप आत्मासैं भिन्न जो दीखैहै औ सुनियेहै शास्त्रसैं, स्वर्गनरक पुण्यपाप, सो संपूर्ण मिथ्याभ्रम है। ऐसैं मानो। औ—

मिथ्यावस्तु अधिष्ठानकूं बिगारै नहीं। जैसैं
१ स्वप्नकी मिथ्याभीख कहिये भिक्षा मागनैतैं भूप दरिद्री नहीं होवैहै औ—
२ मरुस्थलके मिथ्याजलतैं भूमि गिली होवै नहीं।
३ मिथ्यासर्पतैं रज्जु विषसहित होवै नहीं।

यातैं सबकछु कर्त्ता कहिये संपूर्णमिथ्याशुभ अशुभ क्रियाका कर्त्ता है। तऊ कहिये तौ बी अकर्त्ता कहिये परमार्थसैं कर्त्ता नहीं। ऐसा तव कहिये तेरा अद्भुतआश्चर्यरूप अनूप कहिये उपमारहित है॥

याका भाव यह हैः—

१ ब्रह्मसैं अभिन्न तेरे स्वरूपविषै स्थूलसूक्ष्मशरीर औ तिनकी शुभअशुभक्रिया

औ ताका फल जन्ममरण स्वर्गनरक सुखदुःख संपूर्ण अविद्यासैं कल्पित है ।
२ ता कल्पित सामग्रीसैं तेरा ब्रह्मभाव बिगरै नहीं । यातैं ज्ञानतैं प्रथम बी आत्मा ब्रह्मस्वरूपही है ।
३ ताकेविषै तीनिकालमैं शरीर औ ताके धर्मनका संबंध नहीं । किंतु आत्मा सदाही नित्यमुक्त है । ताका ब्रह्मसैं कदै बी भेद नहीं ॥ १५९ ॥

॥ २७४ ॥ जीवन्मुक्तका निश्चय ॥

वेदांतश्रवणका फल ॥

जो ऐसै कहैः—आत्मा सदाही नित्यमुक्त ब्रह्मस्वरूप होवै तौ श्रवणादिक ज्ञानके साधन निष्फल होवैंगे ।

ताका समाधान ।

॥ इंदव छंद ॥

नाहिं खपुष्पसमान प्रपंच तु,
ईस कहा करता जु कहावै ।
साछ्य नहीं इम साछिस्वरूप न,
दृश्य नहीं दृक काहि जनावै ।
बंधुहु होई तु मोछ बनै अरु,
होय अज्ञान तु ज्ञान नसावै ।
जानि यही करतव्य तजै सब,
निश्चल होतहि निश्चल पावै १६०

टीकाः—जीवन्मुक्त विद्वान्‌की दृष्टिमैं अज्ञान औ ताका कार्य तुच्छ है । सो जीवन्मुक्तका निश्चय बतावैहैंः— हे शिष्य !

१ यह प्रपंच खपुष्पसमान कहिये आकाशके फूलकी न्यांई होनैतैं है नहीं, यातैं ताका कर्त्ता ईश्वर बी नहीं है ।

२ साक्षीका विषय अज्ञानादिक साक्ष्य कहियेहै । सो साक्ष्य नहीं । यातैं साक्षी बी नहीं ॥

३ तैसैं दृश्यका प्रकाशक दृक् कहियेहै औ प्रकाशनै योग्य देहादिक दृश्य कहियेहै । सो देहादिक दृश्य है नहीं । यातैं दृक् बी नहीं । यद्यपि केवल कूटस्थचेतनकूं साक्षी औ दृक् कहैहैं, ताका निषेध बनै नहीं, तथापि साक्ष्यकी अपेक्षातैं साक्षी नाम औ दृश्यकी अपेक्षातैं दृक् नाम है । साक्ष्य औ दृश्यका अभाव है । यातैं साक्षी औ दृक् नामका निषेध करैहैं । स्वरूपका नहीं ॥ औ—

४ बंध होवै तौ बंधकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवै । बंध नहीं यातैं मोक्ष बी नहीं ॥ औ

५ अज्ञान होवै तौ ताका ज्ञानसैं नाश होवै । अज्ञान है नहीं । यातैं ताका नाशक ज्ञान बी नहीं ॥

यह जानिके कर्तव्य तजै कहिये "मेरेकूं यह करनैयोग्य है" या बुद्धिकूं त्यागै । काहेतैं ?
१ यह लोक तथा परलोक तौ तुच्छ हैं । तिनके निमित्त कछु कर्त्तव्य नहीं ॥
२ आत्मामैं बंध नहीं । यातैं मोक्षके निमित्त बी कर्त्तव्य नहीं ॥

यारीतिसैं आत्माकूं नित्यमुक्त ब्रह्मरूप जानिके जब निश्चल होवै, सब कर्त्तव्य त्यागै, तब निश्चल कहिये अक्रियब्रह्मस्वरूप विदेहमोक्षकूं प्राप्त होवै ॥

याका अभिप्राय यह हैः—

यद्यपि आत्मा ज्ञानसैं प्रथम बी नित्यमुक्तब्रह्मस्वरूपही है । परंतु ज्ञानसैं पूर्व आत्माकूं कर्त्ताभोक्ता मिथ्या मानिके सुखप्राप्ति औ दुःखकी निवृत्तिवास्तै अनेकसाधन करैहैं । तासैं क्लेशकूंही प्राप्त होवैहै ।

जब उत्तमआचार्य मिलै तौ वेदांतवाक्यनका

उपदेश करैहै ॥ तिन वेदांतवाक्यनके श्रवणतैं ऐसा ज्ञान होवैहैः—"मैं कर्त्ताभोक्ता नहीं। किंतु मैं ब्रह्मस्वरूप हूं। यातैं मेरेकूं किंचित् वी कर्त्तव्य नहीं" ऐसा जाननाही श्रवणादिकनका फल है औ ब्रह्मकी प्राप्ति वेदांतश्रवणका फल नहीं। काहेतैं? ब्रह्म अपना स्वरूप है। यातैं नित्यप्राप्त है ॥ १६० ॥

॥ २७५ ॥ ज्ञानी औ अज्ञानीका चिह्न

(अकर्त्तव्य औ कर्त्तव्य)

॥ दोहा ॥

यही चिन्ह अज्ञानको,
जो मानै कर्त्तव्य।
सोई ज्ञानी सुघरनर,
नहिं जाकूं भवितव्य ॥ १६१ ॥

टीकाः—जो कर्त्तव्य मानै सो अज्ञानका चिन्ह है औ जाकूं भवितव्य नहीं कहिये अन्यरूप हुआ नहीं चाहैहै सो नर ज्ञानी कहियेहै ॥ १६१ ॥

॥ २७६ ॥ गोप्यतत्त्वका उपदेश।

॥ इंदव छंद ॥

एक अखंडित ब्रह्म असंग,
अजन्म अदृस्य अरूप अनामैं।
मूलअज्ञान न सूछमथूल,
समष्टि न व्यष्टिपनो नहिं तामैं ॥
ईस न सूत्र विराट न प्राज्ञ न,
तैजस विस्वस्वरूप न जामैं।
भोग न जोग न बंध न मोछ,
नहिं कछु वामैं रु है सब वामैं॥१६२॥
जाग्रतमैं जु प्रपंच प्रभासत,
सो सब बुद्धिविलास बन्यो है।
ज्यूं सुपनेमहिं भोग्य न भोग,
तऊं इक चित्र विचित्र जन्यो है॥
लीन सुषूपतिमैं मति होतहि,
भेद भगै इकरूप सुन्यो है।
बुद्धि रच्यो जु मनोरथमात्र सु,
निश्चैल[312] बुद्धि प्रकास भन्यो है॥१६३॥

॥ सवैयाछंद ॥

जाके हिय ज्ञानउजियारो,
तम अंधियारो खरो विनास।
सदा असंग एकरस आतम,
ब्रह्मरूप सो स्वयंप्रकास ॥
ना कछु भयो न है नहिं व्है है,
जगत मनोरथ मात्र विलास ॥
ताकी प्राप्ति निवृत्ति न चाहत,
ज्यूं ज्ञानीके कोउ न आस॥१६४॥
देखै[313] सुनै न सुनै न देखै,
सब रस गहै रु लेत न स्वाद।

॥ ३१२ ॥ निश्चल कहिये ब्रह्म, सो बुद्धिको प्रकाशक सिद्धांतमैं कह्योहै। यातैं क्षणिकविज्ञानवादीके मतमैं अतिव्याप्ति नहीं। काहेतैं? तिसके मतमैं बुद्धिसैं भिन्न पदार्थ (प्रकाशक) के अभावतैं।

॥ ३१३ ॥ इहां जिन गीताके पंचम अध्यायगत ७ सैं ९ पर्यंत श्लोकनका अभिप्राय लेके ग्रंथकर्त्तानै यह सवैयेका युगल लिख्याहै तिन तीन श्लोकनकूं मुमुक्षुनकी बुद्धिमैं सम्यक्बोध (अविपरीतबोध) वास्ते अर्थसहित लिखेहैंः—

॥ श्लोकः ॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः ॥
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥

अस्यार्थः—

१ जो कर्मरूप योगकरि वा ब्रह्मनिष्ठारूप संन्यासयोगकरि युक्त है औ ताहीतैं **शुद्ध** (रागद्वेषादिरहित) है **आत्मा** (मन) जिसका। औ—

२ ताहीतैं **जीते** (विषयकी ग्रहणतातैं विमुखताकूं प्राप्त किये)हैं दोनूं प्रकारके **इंद्रिय जिसनै**।

३ याहीतैं जीत्याहै आत्मा बाह्यवासनारूप **स्वभाव** जिसनै।

४ ताहीतैं ब्रह्मासैं आदिलेके स्तंबपर्यंत **सर्वभूतनका आत्मभूत** (स्वरूपभूत) **भयाहै** प्रत्यक्रूप **आत्मा जिसका**।

एसा सर्वात्मभावकूं प्राप्त भया जो ब्रह्मवित्तम है सो शरीरकी यात्रा (निर्वाह)अर्थ कछुक विधिपूर्वक वा अविधिपूर्वक कर्मकूं करताहुया बी तिस पुण्य वा अपुण्यरूप **कर्मकरि लेपकूं पावता नहीं** कहिये कर्मविषे अकर्मताकी दृष्टिकरि संबंधकूं पावता नहीं ॥ ७ ॥

अब योगयुक्तताआदिक विद्वान्‌के पांचलक्षणकरि विशिष्ट औ आहारआदिकविषै प्रवृत्त भये ब्रह्मवेत्ताकूं दर्शनआदिक इंद्रियनके व्यापारनविषै "मैं कर्त्ता नहीं" ऐसी बुद्धिकरिके स्थित होना योग्य है। ऐसैं दो श्लोककरिके कहैहैं:—

॥ श्लोकौ ॥

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ॥
पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्नश्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन् ॥ ८ ॥
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेषु वर्त्तंत इति धारयन् ॥ ९ ॥

अनयोरर्थः— आत्माके स्वभावकूं जाननैवाला जो **तत्त्ववित्** (ब्रह्मवित्) सो अपनी कूटस्थता असंगता औ अंतरबाहिरपूर्णताके दर्शनरूप प्रज्ञाकरि **युक्त हुया**, आप बाहिर **देखता हुया सुनताहुया, स्पर्श करताहुया, सूंघताहुया, खाताहुया, चलताहुया, निद्राकूं करताहुया, उच्छ्वास अरु निःश्वासकूं करताहुया, बोलताहुया, मलत्यागकूं करताहुया, लेनदेन करताहुया, औ निमेष अरु उन्मेषकूं करताहुया।** बी "शब्दादिविषयरूप इंद्रियनके **अर्थनविषै इंद्रियही वर्त्ततेहैं।** मैं द्रष्टा श्रोता स्पृष्टा घ्राता (सूंघनैवाला) भोक्ता औ गंता नहीं हूं।" **इस प्रकारके** लक्षणवालीही वृत्तिकूं सर्वदा **धारताहुया।** "तिनतिन कर्मनकूं इंद्रियही करैहैं। मैं तौ अविक्रिय होनैतैं **कछु बी नहीं करताहूं।** किंतु तिसतिस क्रियाका साक्षी होनैकरि निष्क्रियरूपसैं तूष्णींही स्थित हूं" । ऐसैं मानै कहिये आपकूं तिसतिस क्रियाविषै निष्क्रियहीं देखै ॥

अर्थ यह जो देहइंद्रियनके व्यापारनविषै "मैं औ मेरा" इस भावनाकूं त्यागीके विद्वान्‌नै तूष्णीं स्थित होना योग्य है। (यह दोनूं श्लोकनका इकठा अर्थ है) ॥८॥९॥

इहां यह रहस्य है:— जातैं ज्ञानीकूं "मैं असंग औ निर्विकार (अक्रिय) ब्रह्मचेतन हूं" यह निश्चय है। यातैं ज्ञानी वास्तवतैं कछु बी क्रिया करता नहीं औ प्रारब्धके बलसैं ज्ञानीके देहइंद्रियआदिककरि दर्शनादि व्यापाररूप क्रिया होवैहै, सो प्रारब्धके फलका भोग है। परंतु तिस भोगविषै जो दृढ आसक्तिरूप राग होवैहै।

१ सो राग **इंद्रियनका किया नहीं** होवैहै। काहेतैं? इंद्रियनकूं दर्शनादिक्रियामात्रकरि कृतार्थ होनैतैं। औ—

२ सो राग **आत्माका किया बी नहीं** होवैहै। काहेतैं? आत्माकूं सदा सर्वका साधारण निर्विकार प्रकाशक होनैतैं।

३ **परिशेषतैं** विषयनके गुणदोषके विचारके कारण मनकूंही अनुकूलताके ज्ञानसैं राग होवैहै।

४ सो राग ज्ञानीके **अंतःकरणमैं होवै नहीं।** काहेतैं? ज्ञानीके अंतःकरणकूं शांत (अंतर्मुख) होनैतैं यह वार्ता "राग अबोधका लिंग है" इत्यादिरूप शास्त्रके वाक्यविषै स्पष्ट है।

यद्यपि सर्वथा रागके अभाव हुये भोजनादिरूप शरीरयात्राके हेतु व्यापारविषै बी प्रवृत्तिके अभावतैं

ज्ञानीकूं प्रारब्धका भोग बी नहीं होवैगा औ ईश्वर-संकल्पके विषय प्रारब्धके भोगका अभाव ज्ञानीकूं बी संभवै नहीं ।

१ तथापि प्रारब्धफलके भोगविषै विचारसैं निवृत्त नहीं होनैं योग्य ऐसा रोगादिककी न्यांई प्रारब्ध-जनित अदृढ (अहंकार औ चिदात्माके भ्रमज-तादात्म्यके अभावतैं आभासरूप) राग ज्ञानीकूं बी होवैहै। परंतु सो अदृढराग **स्वाधीन होनैतैं** औ दग्धबीजकी न्यांई निर्बल होनैतैं देहनिर्वाहके हेतु शास्त्रविहितभोगका हेतु है। व्यसनके उत्पादक शास्त्र-निषिद्धभोगका हेतु नहीं ।

२ किंवाः—ज्ञानीकूं विषयनविषै सत्यताकी भ्रांतिके अभावतैं औ मिथ्यापनैकी बुद्धिसैं जन्य दृढ-वैराग्यके सद्भावतैं बी दृढराग होवै नहीं। यह अर्थ आगे षष्ठतरंगविषै ग्रंथकारनैंही निरूपण किया है ।

३ किंवाः—दोरपर खेल करनैवाले नटके अग्र-देशमैं संलग्नचित्तकी न्यांई। किंवा परस्पर वार्त्तालाप करनैवाला पनियारिके बीडामैं संलग्नचित्तकी न्यांई ज्ञानीके अंतःकरणकूं आपातकरि विषयनविषै प्रवृत्त होनैतैं औ विशेष (मुख्यता) करि स्वरूप-विषै संलग्न (अंतर्मुख) होनैतैं औ ताके जड (चिदाभासरहित) देह अरु इंद्रियनकूं रागसैं विनाही प्रारब्धके फलभूत दर्शनादिक्रियाकरि कृतार्थ होनैतैं बी निष्ठायुक्त साभासअंतःकरणरूप ज्ञानीकूं विषयभोगविषै दृढराग संभवै नहीं ।

४ यद्यपि किसी प्रवृत्तिके हेतु प्रारब्धवाले ज्ञानीका मनरूप हस्ती विषयनविषै किंचित् विक्षिप्त (प्रमादकूं प्राप्त) होवैहै। तथापि विवेक (दोषदृष्टि औ मिथ्यात्वबुद्धि) रूप केसरी (सिंह)के जागरणतैं सो मनरूप हस्ती झटिति प्रमादरूप विक्षेपकूं छोडिके शांत होवैहै ।

जातैं ज्ञानीके चित्तविषै दृढ राग नहीं। यातैं—

१ भोगके हेतु प्रारब्धके होते सो काकाक्षीकी न्यांई औ गंगामग्नार्धकायकी न्यांई मुख्यताकरि स्वरूपसुखमैं रमताहै। औ—

२ अमुख्यताकरि विष्टिगृहीतकी न्यांई क्लेशकूं पावताहुया तीव्रप्रारब्धके फलकूं भोगताहै। औ—

शिथिलप्रारब्धके फलरूप निषिद्धविषयकूं प्रयत्नसैं त्यागताहै। तौ बी तिस भोग किंवा त्यागविषै विकल (पागल) पुरुषके चित्तकी न्यांई ज्ञानीके चित्तकी अमुख्यताके अभिप्रायतैं औ ताके जडइंद्रियकरिही भोग औ त्यागके करनैंके अभिप्रायसैं ऊपर कहे गीताके श्लोकमैं "इंद्रियनके अर्थनविषै इंद्रिय वर्त्ततेहैं" ऐसैं कहा ॥ औ—

याके १६६ वें सवैयेमैं बी "त्यागहु विषय की भोगहु इंद्रिय" इस वचनकरि निषिद्ध किंवा दृष्टदोष। विषयनके त्यक्ता औ अदृढरागतैं प्राप्त विहितविषयनके भोक्ता इंद्रियनकूं कहाहै। अंतःकरणकूं नहीं। औ—

याके १६५ वें सवैयेके चतुर्थपादविषै "भोगै युवति सदा संन्यासी" ऐसैं कहाहै। ताका यह अभिप्राय है किः—

१ त्यागी ज्ञानीकूं तौ स्त्रीभोग प्राप्त बी नहीं तौ ताकूं स्त्रीभोगके होते संन्यासके निरूपणरूप निषेध-का संभव बी कहांसैं होवैगा? औ जो त्यागी होयके स्त्रीभोगविषै प्रवृत्त होवै तौ सो वांताशी (वमनभक्षक) पुरुष त्यागी नहीं। किंतु त्यागीके वेषके धारनैवाले नटकी न्यांई दंभी होनैतैं गृहस्थतैं बी अधम है। पूजाका पात्र नहीं ।

२ यातैं परिशेषतैं गृहस्थज्ञानीविषै स्त्रीभोग प्राप्त है। सो गृहस्थज्ञानी बी घृतभक्षणके अभ्यासीकूं तैलभक्षणकी न्यांई शास्त्ररीतिसैं संततिके निमित्त ऋतुआदिकालमैं परिणीत स्त्रीका संग करताहै। विषया-सक्तिसैं नहीं। जो विषयविषै आसक्तिवान् वेदांत-वार्तानिपुणगृहस्थ होवै तौ सो दृढरागरूप अज्ञान-के चिन्हकरि युक्त होनैतैं ज्ञानी नहीं किंतु अज्ञानी है ।

इहां स्त्रीरूप विषयका जो विचार है सो अन्य सर्वविषयनके विचारका बी उपलक्षण है औ रागकी दृढताका अभाव जो कहाहै सो द्वेषआदिककी दृढताके अभावका बी उपलक्षण है ।

सूंघि परसि परसै न न सूंघै,
बैन न बोलै करै विवाद ॥
ग्रहि न ग्रहै मल तजै न त्यागै,
चलै नहीं अरु धावत पाद ।
भोगै युवति सदा संन्यासी,
सिष लखि यह अद्भुतसंवाद॥१६५॥

याका अभिप्राय कहैहैं:—

निजविषयनमैं इंद्रिय वर्त्तै,
तिनतैं मेरो नाहिं संग ।
मैं इंद्रिय नहिं मम इंद्रिय नहिं,
मैं साक्षी कूटस्थ असंग ॥
त्यागहु विषय कि भोगहु इंद्रिय,
मोकूं लगै न रंचक रंग ।
यह निश्चय ज्ञानीको जातैं,
कर्त्ता दीखै करै न अंग ॥ १६६ ॥

हे अंग ! प्रिय ! ॥ अन्यअर्थ स्पष्ट ॥१६६॥

(लयचिंतन ॥ २७७—२८० ॥)

॥ २७७ ॥ सर्वप्रपंचकी ईश्वररूपता ॥

इसरीतिसैं आचार्यनै शिष्यकूं गोप्यतत्त्वका उपदेश किया तौ बी शिष्यका मुख अत्यंत-प्रसन्न नहीं देखिके यह जान्या:— शिष्य कृतार्थ नहीं हुवा । जो कृतार्थ होता तौ याका मुख[३१४] प्रसन्न होता । यातैं फेरि स्थूलरीतिसैं उपदेश करनैकूं—

लयचिंतन[३१५] कहैहैं:—

॥ सवैयाछंद ॥

माटीको कारज घट जैसै,
माटी ताके बाहरि मांहि ।
जलतैं फैन तरंग बुदबुदा ,
उपजत जलतैं जुदे सु नाहिं ॥
ऐसै जो जाको है कारज,
कारनरूप पिछानहु ताहि ।
कारन ईस सकलको "सो मैं",
लयचिंतन जानहु विध याहि १६७

टीका:—जैसैं माटीके कारजके बाहिर-भीतरी माटी है । यातैं माटीका सर्वकार्य माटी-स्वरूपही है । फैनआदिक जलके कार्य जल-रूप हैं । ऐसैं जो जाका कार्य है सो ता कारणस्वरूपसैं भिन्न नहीं । किंतु कार्य कारण-स्वरूपही है । औ—

सकलप्रपंचका मूलकारण ईश्वर है, यातैं सर्वकार्यप्रपंच ईश्वरस्वरूपसैं भिन्न नहीं । किंतु सर्वप्रपंचका स्वरूप ईश्वरही है ।

"सो ईश्वर मैं हूं" या रीतिसैं लयचिंतन जानिके तूं कर ॥

॥ ३१४ ॥ वांछितपदार्थकी प्राप्तिसैं चित्तकी चंचलताके हेतु इच्छारूप वृत्तिके नाशरूप निमित्ततैं स्थिरदपर्णकी न्यांई अंतर्मुख उदय भई सात्त्विकी वृत्ति-विषै स्वरूपभूत आनंदका प्रतिबिंब होवैहै । ता आनंदकूं अनुभवकरिके मुखकी प्रसन्नता होवैहै ।

शिष्यकूं ज्ञानद्वारा वांछित जो कार्यसहित अविद्या-की निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्ष सो सिद्ध भया नहीं । यातैं इच्छाकी निवृत्ति भई नहीं । तातैं अंतर्मुखवृत्तिके अनुदयतैं स्वरूपानंदके प्रतिबिंब-का अभाव है । याहीतैं तिस प्रतिबिंबगोचर अनुभवके अभावतैं मुखकी प्रसन्नता नहीं भई । तिस मुखकी अप्रसन्नतारूप लिंगसैं इष्टवस्तुकी अप्राप्ति-रूप अकृतार्थताकी अनुमिति होवैहै ॥

॥ ३१५ ॥ कार्यकूं कारणरूप जानिके जो चिंतन सो लयचिंतन कहियेहै ॥

॥ २७८ ॥ सारीसूक्ष्मसृष्टिकी अपंचीकृत भूतरूपता ॥

लयचिंतनका संक्षेपतैं यह क्रम हैः—

१ स्थूलब्रह्मांड सारा पंचीकृतभूतनका कार्य है। तहां जो पृथ्वीका कार्य सो पृथ्वीस्वरूप औ जलका कार्य जलस्वरूप या रीतिसैं जा भूतनका जो कार्य सो ताकाही स्वरूप है। इसरीतिसैं सारा स्थूलब्रह्मांड पंचीकृतभूतस्वरूप है।

२ तैसैं पंचीकृतभूत बी अपंचीकृतभूतनके कार्य हैं। यातैं अपंचीकृतस्वरूपही पंचीकृतभूत हैं। भिन्न नहीं। औ

३ अंतःकरणआदिक सूक्ष्मसृष्टि बी अपंचीकृतभूतनका कार्य होनैंतैं अपंचीकृतभूतस्वरूप है। तामैं—

(१-२) अंतःकरण सारे भूतनके सत्वगुणके कार्य हैं। यातैं सत्वगुणस्वरूप हैं। औ—

(३-७) भूतनके रजोगुणअंशके कार्य प्राण रजोगुणस्वरूप हैं॥

(८-९) गुदाइंद्रिय पृथ्वीके रजोगुणअंशका कार्य सो पृथ्वीका रजोगुणस्वरूप है। घ्राणइंद्रिय पृथ्वीके सत्वगुणका कार्य सो सत्वगुणस्वरूप।

(१०-११) ऐसैं रसना औ उपस्थ जलके सत्वगुणरजोगुणस्वरूप।

(१२-१३) नेत्र औ पाद तेजके सत्वगुणरजोगुणस्वरूप।

(१४-१५) त्वक् औ पाणि वायुके सत्वगुणरजोगुणस्वरूप।

(१६-१७) श्रोत्र औ वाक् आकाशके सत्वगुणरजोगुणस्वरूप।

या रीतिसैं सारी सूक्ष्मसृष्टि अपंचीकृतभूतस्वरूप है।

॥२७९॥ सर्वअनात्मपदार्थनका क्रमसैं ब्रह्मविषै लयचिंतन ॥

यह चिंतनकरिके अपंचीकृतभूतनका बी लयचिंतन करै।

१ पृथ्वी जलका कार्य है। यातैं जलस्वरूप है॥

२ तेजका कार्य जल तेजस्वरूप है॥

३ तेज वायुका कार्य होनैंतैं वायुस्वरूप है।

४ आकाशका कार्य वायु आकाशस्वरूप है॥

५ तमोगुणप्रधान प्रकृतिका कार्य आकाश प्रकृतिस्वरूप है। औ—

६ मायाकी अवस्थाविशेषही प्रकृति है। यातैं प्रकृति मायास्वरूप है॥

एकवस्तुके (१) प्रधान। (२) प्रकृति (३) माया। (४) अविद्या। (५) अज्ञान (६) शक्ति। ये नाम हैं॥

(१) सर्वकार्यकूं अपनैंमैं लीनकरिके प्रलयमैं स्थित उदासीनस्वरूपकूं प्रधान कहैहैं।

(२) सृष्टिके उपादानयोग्य तमोगुणप्रधान स्वरूपकूं [३१६]प्रकृति कहैहैं॥

(३) जैसैं देशकालादिक सामग्रीविना दुर्घट पदार्थकी इंद्रजालसैं उत्पत्ति होवैहै।

॥ ३१६ ॥ १ जिससैं प्रकर्षकरि सर्वजगत् करियेहै ऐसी जो सृष्टिकी उपादानकारण सो प्रकृति है॥

२ किंवा "प्र" जो सत्वगुण औ "कृ" जो रजोगुण तिनकरि सहित "ति" जो तमोगुण सो तमोगुणप्रधानस्वरूप प्रकृति है।

तहां इंद्रजालकूं माया कहैहैं। तैसैं असंगअद्वितीयब्रह्ममैं इच्छादिक दुर्घट हैं तिनकूं करैहै। यातैं माया कहैहैं॥

(४) स्वरूपकूं आच्छादन करैहै। यातैं अज्ञान कहैहैं॥

(५) ब्रह्मविद्यातैं नाश होवैहै। यातैं अविद्या कहैहैं। औ—

(६) स्वतंत्र कदै बी रहै नहीं। किंतु चेतनके आश्रितही रहैहै। यातैं शक्ति बी कहैहैं॥

इसरीतिसैं प्रकृतिआदिक प्रधानकेही भेद हैं। यातैं प्रधानरूप हैं॥

७ सो प्रधान ब्रह्मचेतनकी शक्ति है॥ जैसैं पुरुषमैं सामर्थ्यरूप शक्ति पुरुषसैं भिन्न नहीं। तैसैं चेतनमैं प्रधानरूप शक्ति ब्रह्मचेतनसैं भिन्न[३१७] नहीं।

याप्रकारतैं सर्वअनात्मपदार्थनका ब्रह्मविषै लयचिंतनकरिके "सो अद्वयब्रह्म मैं हूं" यह चिंतन करै।

॥२८०॥ ध्यान औ ज्ञानका भेद। अहंग्रहध्यान॥

जाकूं महावाक्यविचार कियेतैं बी बुद्धिकी मंदतादिक[३१८] किसी प्रतिबंधकतैं अपरोक्षज्ञान होवै नहीं ताकूं यह लयचिंतनरूप ध्यान कह्याहै॥

ध्यान औ ज्ञानका इतना भेद है:—

१ ज्ञान[३१९] तौ प्रमाण औ प्रमेयके आधीन है।

॥ ३१७ ॥ यद्यपि ब्रह्मकी शक्ति ब्रह्मसैं भिन्न कहैं तौ अद्वैतश्रुतिसैं विरुद्ध होवैगा औ अभिन्न कहैं तौ ताकूं ब्रह्मरूप होनैतैं ब्रह्मसैं भिन्नताका शक्ति नामसैं कथन व्यर्थ होवैगा। यातैं शक्तिकों ब्रह्मसैं भेदअभेद दोनूं कहनै होवैंगे औ भेदअभेद दोनूं-धर्म तमप्रकाशकी न्यांई एकआश्रयविषै रहै नहीं। परंतु शक्तिका ब्रह्मके साथि रज्जुसैं सर्पके संबंधकी न्यांई कल्पितभेद औ वास्तवअभेदरूप अनिर्वचनीय-तादात्म्यसंबंध है। तातैं शक्तिका अपनै शक्ति-(आश्रय)सैं वास्तवभेदके अभावतैं औ कोई प्रमाण करि भिन्नप्रतीतिके अभावकरि सो शक्ति ब्रह्मसैं भिन्न नहीं। किंतु जैसैं कल्पितसर्प परमार्थसैं रज्जु-रूप है। तैसैं शक्ति परमार्थसैं ब्रह्मरूपही है॥

॥ ३१८ ॥ इहां आदिशब्दकरिके

१ बुद्धिमंदताके सहवर्ति विशयाशक्ति कुतर्क औ विपर्ययदुराग्रहरूप **त्रिविधवर्त्तमानप्रतिबंधका** ग्रहण करना॥ औ—

२ धनपुत्रादिरूप प्रियवस्तुके नाश भये पीछे बी तिनके अनुसंधान (अविस्मरण)रूप **भूतप्रतिबंधका** ग्रहण करना॥ औ—

३ ब्रह्मलोकादिककी इच्छा किंवा जन्मांतरके हेतु शेषप्रारब्धरूप भविष्य (आगामी) **प्रतिबंधका** ग्रहण करना॥

इन ज्ञानकी उत्पत्तिके प्रतिबंधका निरूपण पंचदशीके ध्यानदीपनाम नवमप्रकरणके ३८ सैं ५३ वें श्लोकपर्यंत तथा वेदांतपदार्थमंजूषाविषै कियाहै। जाकूं जिज्ञासा होवै सो तहां देखै॥

॥ ३१९ ॥ इहां यह रहस्य है:—१ भ्रांतिज्ञान। २ स्मृतिज्ञान औ ३ प्रमाज्ञान। इसभेदतैं ज्ञान तीनभांतिका है। तिनमैं—

१ **भ्रांतिज्ञान** केवल वस्तु (भ्रमरूपविषय) के आधीन है। औ—

२ **स्मृतिज्ञान** तौ अपनै विषयके सदृश वा तत्संबंधवस्तुके ज्ञानकरिके वा अपनै विषय (पूर्वदृष्टवस्तु) के चिन्तनकरिके उदय भये पूर्वदृष्टवस्तुके मनोमयआकारके आधीन है औ

३ **प्रमाज्ञानके** अंतर्गत जो सुखादिकका ज्ञान सो न्यायमतमैं औ वाचस्पतिमिश्रके मतमैं तौ मनरूप प्रमाण औ सुखादिरूप प्रमेयके आधीन है।

परंतु सिद्धांतमैं मनविषै प्रमाणताके अनंगीकारतैं सुखादिकका ज्ञान केवलप्रमेय (सुखादिरूप वस्तु) के

३२०
विधि औ पुरुषकी इच्छाके आधीन नहीं । औ–

२ ध्यान विधिके तथा पुरुषकी इच्छा औ विश्वास तथा हठके आधीन है ।

१ जैसैं प्रत्यक्षज्ञानमें प्रमाणनेत्र औ प्रमेय-घटादिक है । तहां नेत्रका औ घटका संबंध हुयेतैं पुरुषकी इच्छाविना बी घटका प्रत्यक्षज्ञान होवैहै । भाद्रपदशुद्धचतुर्थीके दिन चंद्रदर्शनका निषेध है, विधि नहीं, औ पुरुषकूं यह इच्छा होवैहैः–"मेरेकूं आज चंद्रदर्शन नहीं होवै" तौ बी किसीरीतिसें नेत्रप्रमाणका जो प्रमेय-चंद्रसें संबंध होय जावै तौ चंद्रका प्रत्यक्षज्ञान अवश्यही होवैहैं ॥ इसरीतिसें प्रमाणप्रमेयके आधीन ज्ञान है । विधि औ इच्छाके आधीन नहीं ॥ औ—

२ "शालिग्राम विष्णुरूप है" यह ध्यान करै ताकूं उत्तमफल प्राप्त होवैहै । तहां शास्त्रप्रमाणसें विष्णुकूं तौ चतुर्भुजमूर्ति, शंख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मीसहित जानैहै औ नेत्रप्रमाणतैं शालिग्रामकूं शिला जानैहै । तथापि विधिविश्वासइच्छातैं "शालिग्राम विष्णु है" यह ध्यान होवैहै । परंतु सो ध्यान नानाप्रकारका है—

(१) कहूं तौ अन्यवस्तुका अन्यरूपसें ध्यान। जैसैं शालिग्रामका विष्णुरूपसें ध्यान, याकूं प्रतीकध्यान कहैहैं । औ—

आधीन हैं औ अन्य जे प्रमाज्ञान हैं वे इंद्रिय-अनुमानादिरूप प्रमाणका जो प्रमेयरूप वस्तुके साथि संबंध होवैहै तिसके आधीन होवैहैं । तिनमें—

१ शब्दप्रमाणसें जन्य ब्रह्मज्ञानरूप जो शाब्दी-प्रमा है सो महावाक्यरूप शब्दप्रमाणका औ प्रत्यक्अभिन्नब्रह्मरूप प्रमेयका लक्षणवृत्तिरूप जो परंपरासंबंध है । ताके ज्ञानके आधीन है । औ—

२ अन्यलौकिक पदार्थनका शाब्दीप्रमारूप जो ज्ञान है । सो—

(१) कहूं शक्तिवृत्तिरूप संबंधके ज्ञानके आधीन है ।

(२) कहूं लक्षणावृत्तिरूप संबंधके ज्ञानके आधीन है ॥

इसरीतिसैं

(१) कोई ज्ञान ज्ञेयरूप वस्तुमात्रके आधीन है । औ—

(२) कोई ज्ञान प्रमाण औ प्रमेयरूप वस्तुके संबंधके वा तत्संबंधके ज्ञानके आधीन है ।

भ्रमप्रमा साधारणज्ञानके विषयकूं ज्ञेय कहैहैं । तामैं प्रमेयपना नहीं है । औ—

केवलप्रमाज्ञानके विषयकूं प्रमेय कहैहैं तामैं ज्ञेयपना बी है ।

इसप्रकारका सर्वज्ञान वस्तुके आधीन हैं ॥

१ इहां "वस्तु" शब्दकरिके ईश्वररचित वा मनोमय (परोक्षज्ञानके विषय) वा भ्रमरूप वस्तुके साथि प्रमाणद्वारा वा साक्षात् वृत्तिके संबंधका ग्रहण है । यातैं ज्ञान विधिआदिकके आधीन नहीं । औ—

२ ध्यान जो उपासना सो वस्तुके आधीन नहीं । किंतु कर्त्ताके आधीन है ।

यद्यपि ध्यान बी मनकी वृत्तिरूप है **तथापि** सो पुरुषकरि किये इच्छाआदिकके आधीन है । वस्तुके आधीन नहीं । यातैं सो मानसज्ञान नहीं । किंतु **मानसक्रिया** है ॥

॥ ३२० ॥ तहां विधि औ पुरुषकी इच्छा, विश्वास औ हठका उपलक्षण (सूचक) है ॥ जिस प्रकारसैं विधिआदिक चारिके आधीन ज्ञान नहीं । सो प्रकार पंचदशीगत ध्यानदीपके ७४वें श्लोकके टिप्पणविषै हमनै लिख्याहै । यातैं इहां लिख्या नहीं ।

॥ ३२१ ॥ जाकी वृत्ति शास्त्रद्वारा परोक्षध्येय-विषै स्थित होवै नहीं, सो पुरुष । पुरुषके प्रेरक शास्त्रके वचनरूप विधिकरिके बोधित (अन्यध्येयके प्रतिनिधिरूप) वस्तुविषै अन्य (ध्येय) की बुद्धिकरिके उपासना करै । ता अन्यविषै अन्यकी बुद्धिकरिके उपासन (ध्यान)कूं **प्रतीकध्यान** कहैहैं ॥

(१) वैकुंठलोकवासी विष्णुका शंखचक्रादिक सहित चतुर्भुजमूर्तिरूपसैं ध्यान है। तहां अन्यका अन्यरूपसैं ध्यान नहीं। किंतु ध्येयरूपके अनुसार यह ध्यान है ॥ वैकुंठवासी विष्णुका स्वरूप प्रत्यक्ष तौ है नहीं। केवल शास्त्रसैं जानियेहैं औ शास्त्रनै शंखचक्रादिकसहितही विष्णुका स्वरूप कह्याहै। यातैं ध्येयस्वरूपके अनुसारही यह ध्यान है।

विधिविश्वासइच्छाविना ध्यान होवै नहीं।

(१) "यह उपासना करै" ऐसा पुरुषका प्रेरकवचन विधि कहियेहै।

(२) ता वचनमैं श्रद्धाकूं विश्वास कहैहैं। औ—

(३) अंतःकरणकी कामनारूप रजोगुणकी वृत्ति इच्छा कहियेहै ॥

ध्यानके हेतु ये तीनि हैं। ज्ञानके नहीं।

(४) ध्यान हठसैं होवैहै। ज्ञानमैं हठकी अपेक्षा नहीं। काहेतैं निरंतर ध्येयाकार चित्तकी वृत्तिकूं ध्यान कहैहैं। तहां वृत्तिमैं विक्षेप होवै तौ हठसैं वृत्तिकी स्थिति करै। औ—

ज्ञानरूप अंतःकरणकी वृत्तिसैं तत्काल आवरणभंग हुयेतैं वृत्तिकी स्थितिका उपयोग नहीं। यातैं हठकी अपेक्षा नहीं।

वैकुंठवासी चतुर्भुजविष्णुके ध्यानकी न्यांई "मैं ब्रह्म हूं" यह ध्यान बी ध्येयके अनुसार है। प्रतीक नहीं। परंतु यह अहंग्रहध्यान है ॥

ध्येयस्वरूपका अपनैसैं अभेदकरिके चिंतन अहंग्रहध्यान कहियेहै ॥

जा पुरुषकूं अपरोक्षज्ञान नहीं होवै औ वेदकी आज्ञारूप विधिमैं विश्वासकरिके हठतैं निरंतर "मैं ब्रह्म हूं" या वृत्तिकी स्थितिरूप अहंग्रहध्यान करै। ताकूं बी ज्ञान प्राप्त होयके मोक्षकी प्राप्ति होवैहै ॥ १६७ ॥

(॥ प्रणवकी उपासना ॥ २८१–३०३॥)

॥ २८१ ॥ प्रणवका अहंग्रहध्यान ॥

औररीतिसैं अहंग्रहउपासना कहैहैं:—

॥ सवैया छंद ॥

ध्यान अहंग्रह प्रनवरूपको,
कह्यो सुरेश्वर श्रुतिअनुसार।
अच्छर प्रनव ब्रह्म ममरूप सु,
यूं अनुलव निजमति गति धार ॥
ध्यानसमान आन नहिं याके,
पंचीकरनप्रकार विचार।
जो यह करत उपासन सो मुनि,
तुरत नसै संसार अपार ॥ १६८ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! प्रणवरूपका कहिये

॥ ३२२ ॥ तैसैं "मैं ब्रह्म हूं" इस आकारवाला जो निर्गुणउपासनरूप अहंग्रहध्यान है, सो बी ध्येयानुसार ध्यान है ॥

॥ ३२३ ॥ जैसैं संवादीभ्रांतिकरिके प्रवृत्त भये पुरुषकूं यथार्थज्ञानद्वारा इष्टवस्तुका लाभ होवैहै तैसैं "मैं ब्रह्म हूं" या वृत्तिकी स्थितिरूप अहंग्रहध्यान करै, ताकूं बी ज्ञानद्वारा मोक्षकी प्राप्ति होवैहै ॥

यद्यपि ध्यानका विषय जो ब्रह्म सो परमार्थरूप नहीं किंतु मनःकल्पित है। यातैं भ्रमरूप है। याहीतैं ताकूं विषय करनैवाली वृत्तिरूप ध्यान बी भ्रांतिज्ञानही है। यथार्थज्ञान नहीं। तथापि मणिकी प्रभाविषै मणिबुद्धिरूप संवादीभ्रांतिकरिके दौडे पुरुषकूं मणिके ज्ञानद्वारा मणिकी प्राप्तिकी न्यांई उक्तध्यानसैं ब्रह्मका ज्ञान होयके मोक्षकी प्राप्ति संभवैहै ॥

संवादिभ्रमका वर्णन पंचदशीगत ध्यानदीपके आरंभविषै लिख्याहै ॥

ओंकारस्वरूपका अहंग्रहध्यान मांडूक्य[३२४]-प्रश्न-आदिक श्रुतिके अनुसार सुरेश्वराचार्यनैं कह्या-है, सो तूं कर। ताका संक्षेपतैं प्रकार यह हैः— प्रणवअक्षर ब्रह्मस्वरूप है ॥ "सो प्रणवरूप ब्रह्म मैं हूं" यारीतिसैं अनुलव कहिये क्षणमात्र-अंतरायरहित निजमतिकी गति कहिये वृत्ति धार कहिये स्थित कर। याके समान आनध्यान नहीं है औ या ध्यानका प्रकार कहिये विशेप-रीति सुरेश्वरकृतपंचीकरणनाम ग्रंथसैं विचार।

चतुर्थपाद स्पष्ट ॥ १६८ ॥

॥ २८२ ॥ निर्गुण औ सगुणप्रणवकी उपासनाका फलसहित कथन।

यद्यपि प्रणवउपासना बहुतउपनिषदनमैं है तथापि मांडूक्यउपनिषद्सैं विशेष है। ताके व्याख्यानमैं भाष्यकार औ आनंदगिरिनैं ताकी रीति स्पष्ट लिखीहै। सोईरीति वार्तिक-कारनैं पंचीकरणमैं लिखीहै। तथापि तिन ग्रंथनके विचारनैंमैं जिनकी बुद्धि समर्थ नहीं है, तिनके अर्थ प्रणवउपासनाकी रीति हम लिखैंहैंः—दोप्रकारसैं प्रणवका चिंतन उपनिषदन-मैं कह्याहै। १ एक तौ परब्रह्मरूपतैं प्रणवका चिंतन कह्याहै औ २ दूसरा अपरब्रह्मरूपतैं कह्याहै।

१ निर्गुणब्रह्मकूं परब्रह्म कहैंहैं। औ—

२ सगुणब्रह्मकूं अपरब्रह्म कहैंहैं।

१ परब्रह्मरूपतैं प्रणवका चिंतन करै। सो मोक्षकूं प्राप्त होवैहै। औ—

२ अपरब्रह्मरूपतैं प्रणवका चिंतन करै सो ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवैहै।

ऐसैं निर्गुण सगुणभेदतैं प्रणवउपासना दो-प्रकारकी है। तामैं—

॥ २८३ ॥ निर्गुणरूप प्रणवउपासनाके प्रकारका प्रारंभ।

निर्गुणउपासनाकी रीति लिखैंहैं। सगुणकी नहीं। काहेतैं ?

१ जाकूं ब्रह्मलोककी कामना होवै ताकूं निर्गुणउपासनातैं बी कामनारूप प्रतिबंधक-तैं ज्ञानद्वारा तत्काल मोक्ष होवै नहीं। किंतु ब्रह्मलोककीही प्राप्ति होवैहै। तहां हिरण्यगर्भ-के समान भोगनकूं भोगिके ज्ञान होवै तब मोक्ष होवै। औ—

२ जाकूं ब्रह्मलोककी कामना नहीं होवै ताकूं इसलोकमैंही ज्ञान होयके मोक्ष होवैहै।

इसरीतिसैं सगुणउपासनाका फल बी निर्गुणउपासनाके अंतर्भूत है। यातैं निर्गुण-उपासनाका प्रकार कहैंहैंः—

जो कछु कारणकार्यवस्तु है सो ओंकार-स्वरूप है। यातैं सर्वरूप ओंकार है।

१ सर्वपदार्थनमैं नाम औ रूप दोभाग हैं। तहां रूपभाग अपनै अपनै नामभागसैं न्यारा नहीं। किंतु नामस्वरूपही रूपभाग है। काहेतैं ? पदार्थका रूप कहिये आकार, ताका नामसैं निरूपणकरिके ग्रहण वा त्याग होवैहै। नाम जानैं विना केवलआकारतैं व्यवहार सिद्ध होवै नहीं। यातैं नामही सार है ॥ औ आकार-के नाश हुयेतैं बी नाम शेष रहैहै। जैसैं घटका नाश हुयेतैं मृत्तिका शेष रहैहै। तहां घट मृत्तिकासैं पृथक्वस्तु नहीं। मृत्तिकास्वरूप है। तैसैं आकारका नाश हुयेतैं मृत्तिकाकी न्यांई शेष रहे जो नाम तासैं आकार पृथक् नहीं। नामस्वरूपही आकार है ॥

किंवा जैसैं घटशरावादिकनमैं मृत्तिका

॥३२४॥ इहां "मांडूक्य" शब्दकरिके गौडपादाचार्य-कृत मांडूक्यउपनिषद्की कारिकाका बी ग्रहण है ॥

अनुगत है औ घटशरावादिक[325] परस्परव्यभिचारी हैं। यातैं घटशरावादिक मिथ्या। तिनमैं अनुगत मृत्तिका सत्य[326] है। तैसैं घट आकार अनेक हैं। तिन सबका "घट" यह दो अक्षरनाम एक है। सो आकार परस्परव्यभिचारी औ सर्वघटके आकारनमैं नाम एक अनुगत है। यातैं मिथ्याआकार सत्यनामतैं[327] पृथक् नहीं।

इसरीतिसैं सर्वपदार्थनके आकार अपनै अपनै नामसैं भिन्न नहीं। किंतु नामस्वरूपही आकार हैं।

२ सो सारेनाम ओंकारसैं भिन्न नहीं। किंतु **ओंकारस्वरूपही नाम** हैं। काहेतैं ? वाचकशब्दकूं **नाम** कहैहैं औ लोकवेदके सारे शब्द ओंकारसैं उत्पन्न हुयेहैं। यह श्रुतिमैं प्रसिद्ध है। संपूर्णकार्य कारणस्वरूप होवैहैं। यातैं ओंकारके कार्य जो वाचकशब्दरूप नाम सो ओंकारस्वरूप हैं ॥

इसरीतिसैं रूपभाग जो पदार्थनका आकार सो तौ नामस्वरूप है औ सर्वनाम ओंकारस्वरूप है। यातैं सर्वस्वरूप ओंकार है ॥

॥ २८४ ॥ ओंकार औ ब्रह्मका अभेद ॥

३ जैसैं—

(१) सर्वस्वरूप ओंकार है तैसैं सर्वस्वरूप ब्रह्म है। यातैं **ओंकार ब्रह्मरूप** है।

(२) किंवा-ओंकार ब्रह्मका वाचक है। ब्रह्म वाच्य है। वाच्यका औ वाचकका अभेद होवैहै। यातैं बी **ओंकार ब्रह्मरूप** है। औ—

(३) विचारदृष्टिसैं जो अक्षर ब्रह्मविषै अध्यस्त है। ब्रह्म तिसका अधिष्ठान है। अध्यस्तका स्वरूप अधिष्ठानतैं न्यारा होवै नहीं। यातैं बी **ओंकार ब्रह्मस्वरूप** है ॥

यातैं ओंकारकूं ब्रह्मरूपकरिके चिंतन करै ॥

॥ २८५ ॥ चारिपादनके कथनपूर्वक आत्माका ब्रह्मसैं औ विश्वका विराट्सैं अभेद । विराट्विश्वके सप्तअंग औ उन्नीस मुख ॥

४ ब्रह्मरूप ओंकारका आत्मासैं बी अभेद चिंतन करै। काहेतैं ? **आत्माका ब्रह्मसैं मुख्य अभेद** है। औ—

ब्रह्मके चारिपाद[328] हैं। तैसैं आत्माके बी चारिपाद हैं ॥

पाद नाम ¼भागका है। ताहीकूं अंश बी कहैहैं

(१) विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, औ तत्पदका लक्ष्य ईश्वर साक्षी, ये **चारि पाद ब्रह्मके** हैं।

(२) विश्व, तैजस, प्राज्ञ औ त्वंपदका लक्ष्य जीवसाक्षी। ये **चारिपाद आत्माके** हैं।

॥ ३२५ ॥ शराव नाम कूंडेका है औ आदिशब्दकरि अन्य मृत्तिकाके पात्रनका ग्रहण है।

॥ ३२६ ॥ घटशरावादिकनकी अपेक्षातैं मृत्तिका बहुकालस्थायी है यातैं सो **आपेक्षिकसत्य** कहियेहै।

॥ ३२७ ॥ घटकी अपेक्षातैं "घट" ऐसा दोअक्षरवाला नाम बहुकालपर्यंत स्थायि है। यातैं पुण्यके क्षयतैं मरनैवाला बहुकालस्थायी देव जैसै अमर कहिये है तैसैं वह नाम बी सत्य (नित्य) कहियेहै।

॥ ३२८ ॥ इहां पादशब्द जो है सो धान्यके पादकी न्यांई विभागरूप अर्थका बोधक है। गौके पादकी न्यांई अवयव (अंग) रूप अर्थका बोधक नहीं।

जीवसाक्षीकूंही तुरीय कहैहैं ।

(१) समष्टिस्थूलप्रपंचसहित चेतन विराट् कहियेहै ।

(२) व्यष्टिस्थूलअभिमानी विश्व कहियेहैं ।

विराट्‌की औ विश्वकी उपाधि स्थूल है । यातें विराट्रूपही विश्व है । विराट्‌तें न्यारा नहीं ।

विराट्रूप विश्वके सात अंग हैंः—

(१) स्वर्गलोक मूर्धा है ।

(२) सूर्य नेत्र हैं ।

(३) वायु प्राण है ।

(४) आकाश धड है ।

(५) समुद्रादिरूप जल मूत्रस्थान है ।

(६) पृथ्वी पाद है ।

(७) जा अग्निमें होम करिये सो अग्नि मुख है।

ये सातअंग विश्वके कहैहैं ।

मांडूक्यमें यद्यपि स्वर्गलोकादिक विश्वके अंग बनें नहीं तथापि विराट्‌के अंग हैं । ता विराट्सें विश्वका अभेद है । यातें विश्वके अंग कहैहैं ॥

तैसें विराट्विश्वके उन्नीस मुख हैंः—पंचप्राण, पंचकर्मइंद्रिय, पंचज्ञानइंद्रिय, औ चारि अंतःकरण, ये उन्नीस मुखकी न्यांई भोगके साधन हैं । यातें मुख कहियेहैं ।

इन उन्नीसतें स्थूलशब्दादिकनकूं बाह्यवृत्तिकरिके जाग्रत्अवस्थाविषै भोगैहै । यातें विराट्रूप विश्व स्थूलका भोक्ता औ बाह्यवृत्ति कहियेहै औ जाग्रत्अवस्थावाला कहियेहै ।

॥ २८६ ॥ ॥ चतुर्दशत्रिपुटी ॥

प्राणादिक उन्नीस जो भोगके साधन हैं तिनविषै श्रोत्रादिक इंद्रिय औ अंतःकरणचारि ये चतुर्दश अपनै अपनै विषय औ अपनै अपनै देवताकी सहाय चाहैहैं । देवताविषयकी सहायविना केवल इनतें भोग होवै नहीं । यातें पंचप्राण औ चतुर्दशत्रिपुटी विराट्रूप विश्वके मुख कहियेहैं । तिनके समुदायका नाम त्रिपुटी है ।

सो त्रिपुटी इसरीतिसें कहीहैः—

(१) [१] श्रोत्रइंद्रिय अध्यात्म है । औ—
[२] ताका विषय शब्द अधिभूत है ।
[३] दिशाका अभिमानी देवता अधिदैव है ।

(क) या प्रकरणमें क्रियाशक्तिवाले औ ज्ञानशक्तिवाले इंद्रिय औ अंतःकरण अध्यात्म कहियेहैं ।

(ख) तिनके विषय अधिभूत कहियेहैं । औ

(ग) तिनके सहायक देवता अधिदैव कहियेहैं ।

(२) [१] त्वचाइंद्रिय अध्यात्म है ।
[२] ताका विषय स्पर्श अधिभूत है ।
[३] वायुतत्त्वका अभिमानी देवता अधिदैव है ।

(३) [१] नेत्रइंद्रिय अध्यात्म है ।
[२] रूप अधिभूत है ।
[३] सूर्य अधिदैव है ।

(४) [१] रसनाइंद्रिय अध्यात्म है ।
[२] रस अधिभूत है ।
[३] वरुण अधिदैव है ।

(५) [१] घ्राणइंद्रिय अध्यात्म है ।
[२] गंध अधिभूत है ।
[३] अश्विनीकुमार अधिदैव है ॥ औ

वार्त्तिककार सुरेश्वराचार्यनै पृथिवीका अभिमानी देवता घ्राणका अधिदैव कह्याहै । सो बी

॥ ३२९ ॥ बहिःप्रज्ञ ।

बनैहै। काहेतैं ? पृथिवीसैं घ्राणकी उत्पत्ति है। यातैं पृथिवी अधिदैव कह्याहै औ सूर्यकी वडवाकी नासिकातैं अश्विनीकुमारकी उत्पत्ति कहीहै। यातैं नासिकाका अधिदैव कहूं अश्विनीकुमारही कहैहैं।

(६) [१] वाक्इंद्रिय अध्यात्म है।
[२] वक्तव्य[330] अधिभूत है।
[३] अग्निदेवता अधिदैव है॥

(७) [१] हस्तइंद्रिय अध्यात्म है।
[२] पदार्थका ग्रहण अधिभूत है।
[३] इंद्र अधिदैव है॥

(८) [१] पादइंद्रिय अध्यात्म है।
[२] गमन अधिभूत है।
[३] विष्णु अधिदैव है॥

(९) [१] गुदाइंद्रिय अध्यात्म है।
[२] मलका त्याग अधिभूत है।
[३] यम अधिदैव है॥

(१०) [१] उपस्थइंद्रिय अध्यात्म है।
[२] ग्राम्यधर्मके[331] सुखकी उत्पत्ति अधिभूत है।
[३] प्रजापति अधिदैव है॥

(११) [१] मन अध्यात्म है।
[२] मननका विषय अधिभूत है।
[३] चंद्रमा अधिदैव है॥

(१२) [१] बुद्धि अध्यात्म है।
[२] बोद्धव्य अधिभूत है।
[३] बृहस्पति अधिदैव है॥

ज्ञानका विषय बोद्धव्य कहियेहै॥

(१३) [१] अहंकार अध्यात्म है।
[२] अहंकारका विषय अधिभूत है॥
[३] रुद्र अधिदैव है॥

(१४) [१] चित्त अध्यात्म है।
[२] चिंतनका विषय अधिभूत है।
[३] क्षेत्रज्ञ जो साक्षी[332] सो अधिदैव है॥

ये चतुर्दशत्रिपुटी औ पंचप्राण ये उन्नीस विराट्‌रूप विश्वके मुख हैं॥

॥ २८७ ॥ विश्व विराट् औ अकारका अभेदचिंतन ॥

१ जैसैं विराट्‌तैं विश्वका अभेद है तैसैं ओंकारकी प्रथममात्रा जो आकार ताका बी विराट्‌रूप विश्वतैं अभेद है। काहेतैं ?

(१) ब्रह्मके चारिपादनमैं प्रथमपाद विराट् है। औ—
(२) आत्माके चारिपादनमैं प्रथम विश्व है।
(३) तैसैं ओंकारकी चारिमात्रारूप पादनमैं प्रथमपाद अकार है।

यातैं प्रथमता तीनूंमैं समानधर्म होनैतैं विश्व-विराट्-अकारका अभेदचिंतन करै। जो सातअंग उन्नीसमुख विश्वके कहे।

॥ २८८ ॥ विश्व औ तैजसकी विलक्षणता ॥

सोई सातअंग औ उनीसमुख तैजसके बी जाननैकूं योग्य हैं॥ परंतु इतना भेद है:—

॥ ३३० ॥ वचनक्रियाका विषय पदार्थ वक्तव्य कहियेहै। सो वचनक्रियाद्वारा वाक्इंद्रियका अधिभूत है। ऐसैं सर्वइंद्रियनके आपआपकी क्रियाद्वारा जो विषयरूप अधिभूत हैं, वे जानी लेनै॥ कहूं वचनादिक्रियाकूं अधिभूत कहीहै सो स्थूलदृष्टिवाले जनोंके ज्ञानअर्थ है। श्रुतिअर्थके विचारसैं कहा नहीं॥

॥ ३३१ ॥ मैथुनक्रियारूप पशुधर्मके॥

॥ ३३२ ॥ साक्षीचेतन, जातैं चित्तका आश्रय होनैकरि चित्तके तांई अनुग्रह करैहै यातैं ताका अधिदैव कहियेहै। याहीतैं किसी आचार्यनैं चिंतनरूप स्मृतिज्ञान साक्षीके आश्रित कहाहै। कहूं चित्तका अधिदैव नारायण (वासुदेव) कहाहै॥

(१) विश्वके जो अंग औ सुख हैं सो तो ईश्वररचित हैं। औ—

(२) तैजसके जो इंद्रिय-देवता-विषयरूप त्रिपुटी औ सुखादिअंग सो मनोमय हैं।

तैजसका भोग सूक्ष्म है।

(१) यद्यपि भोग नाम सुख अथवा दुःखके ज्ञानका है ताकेविषै स्थूलता औ सूक्ष्मता कहना बनै नहीं, तथापि बाह्य जो शब्दादिक विषय हैं तिनके संबंधमैं जो सुख अथवा दुःखका साक्षात्कार सो स्थूल कहियेहै। औ—

(२) मानस जो शब्दादिक तिनके संबंधतैं जो भोग होवै सो सूक्ष्म कहियेहै॥

इसी कारणतैं—

(१) विश्व तौ स्थूलका भोक्ता श्रुतिविषै कह्या है। औ—

(२) तैजस सूक्ष्मका भोक्ता कह्याहै। काहेतें?

(१) तैजसके भोग्य जो शब्दादिक हैं सो तौ मानस हैं। यातैं सूक्ष्म हैं। औ—

(२) तिनकी अपेक्षाकरिके विश्वके भोग्य बाह्यशब्दादिक हैं सो स्थूल हैं॥ औ—

विश्व बहिष्प्रज्ञ है। तैजस अंतःप्रज्ञ है। काहेतें? जो विश्वकी अंतःकरणकी वृत्तिरूप प्रज्ञा है सो बाहिर जावैहै औ तैजसकी नहीं जावैहै॥

॥ २८९ ॥ तैजस हिरण्यगर्भ औ उकारका अभेदचिंतन ॥

२ जैसैं विश्वका औ विराट्का अभेद है तैसैं तैजसकूं बी हिरण्यगर्भरूप जानै। काहेतें? सूक्ष्मउपाधि तैजसकी है औ सूक्ष्महीं हिरण्यगर्भकी है। यातैं दोनूंवाकी एकता जानै॥

तैजसहिरण्यगर्भकी एकता जानिके ओंकारकी द्वितीयमात्राउकारसैं तिनका अभेदचिंतन करै। काहेतें?

(१) आत्माके च्यारिपादनमैं द्वितीयपाद तैजस है।

(२) ब्रह्मके पादनमैं हिरण्यगर्भ दूसरा पाद है॥

(३) ओंकारकी मात्रामैं द्वितीयमात्रा उकार है॥

द्वितीयता तीनूंमैं समानधर्म है। यातैं तीनूंकी एकता चिंतन करै॥

॥ २९० ॥ प्राज्ञ ईश्वर औ मकारका अभेद ॥ प्राज्ञके विशेषण ॥

३ औ प्राज्ञकूं ईश्वररूप जानै। काहेतें?

(१) प्राज्ञकी कारण उपाधि है। औ—

(२) ईश्वरकी बी कारण उपाधि है।

ईश्वर औ प्राज्ञ पादनमैं तृतीय हैं॥

(३) ओंकारकी तृतीयमात्रा मकार है॥

तीसरापना तीनूंमैं समानधर्म है। यातैं तीनूंकी एकता जानै॥ औ—

(१) यह प्राज्ञ प्रज्ञानघन है। काहेतें? जाग्रत् औ स्वप्नके जितने ज्ञान हैं। सो सुषुप्तिविषै घन कहिये एक अविद्यारूप होय जावैहैं। यातैं प्रज्ञानघन कहियेहै। औ—

(२) आनंदभुक् बी यह प्राज्ञ श्रुतिनै कह्याहै। काहेतें? अविद्यासैं आवृत जो आनंद है ताकूं यह प्राज्ञ भोगैहै। यातैं आनंदभुक् कहियेहै॥

॥ ३३३ ॥ जैसैं पिंड (अन्नका चूर्ण)। जलसैं पिंडके बांधे हुये एकरूप होवैहै औ वर्षाके अनंत बिंदु तडाग (तलाव) विषै एकरूप होवैहै। तैसैं जाग्रत्स्वप्नके ज्ञान, सुषुप्तिविषै एकघनविद्यारूप होवैहैं। तिस अविद्याविषै स्थित जो अधिष्ठान कूटस्थसहित चेतनका प्रतिबिंबरूप प्राज्ञजीव सो "प्रज्ञानघन" कहियेहै॥

जैसैं तैजस औ विश्वका भोग त्रिपुटीसैं होवैहै तैसैं प्राज्ञके भोगकी बी त्रिपुटी कहियेहैः—

(१) चेतनके प्रतिबिंबसहित जो अविद्याकी वृत्ति है सो अध्यात्म है ।
(२) अज्ञानसैं आवृत जो स्वरूप आनंद सो अधिभूत है । औ—
(३) ईश्वर अधिदैव है ॥

इसरीतिसैं—

(१) विश्व तौ बहिरप्रज्ञ है । औ—
(२) तैजस अंतरप्रज्ञ है । औ—
(३) प्राज्ञ प्रज्ञानघन है ॥

॥ २९१ ॥ वास्तव विश्वआदिक तीनूंकी एकता ॥ तुरीयका ईश्वरसाक्षीसैं अभेद ॥

४ ऐसा जो तीनूंका भेद है सो उपाधिकरिके है ।

(१) विश्वकी स्थूल सूक्ष्म अज्ञान तीनि उपाधि हैं । औ—
(२) तैजसकी सूक्ष्म अज्ञान उपाधि है औ—
(३) प्राज्ञकी एक अज्ञान उपाधि है ॥

इसरीतिसैं उपाधिकी न्यूनताअधिकतासैं तीनूंका भेद है । परमार्थकरिके स्वरूपसैं भेद नहीं ॥

विश्व, तैजस, औ प्राज्ञ, इन तीनूंविषै अनुगत चेतन है सो परमार्थसैं तीनूं उपाधिके संबंधसैं रहित है ॥ तीनूं उपाधिका अधिष्ठान तुरीय है।

(१) सो बहिरप्रज्ञ नहीं । औ—
(२) अंतरप्रज्ञ नहीं औ—
(३) प्रज्ञानघन बी नहीं ।
(४) कर्मइंद्रियका औ ज्ञानइंद्रियका विषय नहीं । औ—
(५) बुद्धिका विषय नहीं ।
(६) किसी शब्दका विषय नहीं ॥

ऐसा जो तुरीय है ताकूं परमात्माका चतुर्थपाद ईश्वर साक्षी शुद्धब्रह्मरूप जानै ॥

॥२९२॥ दोस्वरूपवाले ॐकार औ आत्माका मात्रा औ पादरूपसैं अभेदचिंतन॥

१ इसरीतिसैं दोप्रकारका आत्माका स्वरूप कह्या । एक तौ परमार्थरूप है औ एक अपरमार्थरूप है ॥

(१) तीनिपाद तौ अपरमार्थरूप हैं । औ—
(२) एकपाद तुरीय परमार्थरूप है ॥

२ जैसैं आत्माके दो स्वरूप हैं तैसैं ओंकारके बी दो स्वरूप हैं ॥

(१) अकार उकार औ मकार ये तीनिमात्रारूप जो वर्ण हैं सो तौ अपरमार्थरूप हैं औ—
(२) तीनूंमात्राविषै व्यापक जो अस्तिभातिप्रियरूप अधिष्ठानचेनत है सो परमार्थरूप है ॥

जा ओंकारका परमार्थरूप है ताकूं श्रुतिविषै अमात्रशब्दकरिके कह्याहै । काहेतैं? ता परमार्थस्वरूपविषै मात्राविभाग है नहीं । यातैं अमात्र कहियेहै ॥

इसरीतिसैं दोस्वरूपवाला जो ओंकार है ताका दोस्वरूपवाले आत्मासैं अभेद जानै ॥

१ व्यष्टि औ समष्टि जो स्थूलप्रपंच तासहित विश्व औ विराट्का अकारसैं अभेद जानै ॥ आत्माके जो पाद हैं । तिनविषै

(१) विश्व आदि है औ—
(२) ओंकारकी मात्राविषै अकार आदि है।

यातैं दोनूंकूं एक जानै ॥

२ सूक्ष्मप्रपंचसहित जो हिरण्यगर्भरूप तैजस है । ताकूं उकाररूप जानै ॥

(१) तैजस बी दूसरा है औ—
(२) उकार बी दूसरा है ।

यातैं दोनूंकूं एक जानै ॥

३ कारणउपाधिसहित जो ईश्वररूप प्राज्ञ है ताकूं मकाररूप जानै ॥

(१) जैसैं ईश्वररूप प्राज्ञ तीसरा है ।

(२) तैसैं मकार बी तीसरा है ।

यातैं ईश्वररूप प्राज्ञ औ मकारकूं एक जानै ॥

४ तीनूंविषै अनुगत जो परमार्थरूप तुरीय है ताकूं ओंकारावर्णकी तीनिमात्राविषै अनुगत जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है तासैं अभिन्न जानै ॥

(१) जैसैं विश्वादिकविषै तुरीय अनुगत है ।

(२) तैसैं अकारादिक तीनि मात्राविषै अमात्र अनुगत है ।

यातैं ओंकारके अमात्ररूपकूं औ तुरीयकूं एक जानै ॥

इसरीतिसैं आत्माके पाद औ ओंकारकी जो मात्रा है तिनकी एकता जानिके लयचिंतन करै ॥

॥२९३ ॥ लयचिंतनका अनुवाद ॥ (एक-एकमात्रारूप विश्वआदिककी अन्यमात्रारूपता)

सो लयचिंतन कहियेहैः—

१ विश्वरूप जो अकार है सो तैजसरूप उकारसैं न्यारा नहीं किंतु उकाररूपही है । ऐसा जो चिंतन करना सो या स्थानमैं लय कहियेहै ॥ ऐसाही औरमात्राविषै बी जानि लेना ॥ और—

२ जा उकारविषै अकारका लय कियाहै । ता तैजसरूप उकारका प्राज्ञरूप जो मकार है ताकेविषै लय करै ॥ औ—

३ प्राज्ञरूप जो मकार है ताकूं तुरीयरूप जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है ताकेविषै लीन करै । काहेतैं ? स्थूलकी उत्पत्ति औ लय सूक्ष्मविषै होवैहै । यातैं—

१ विश्वरूप जो अकार है ताका तैजस-रूप उकारमैं लय बनैहै ॥ औ—

२ सूक्ष्मकी उत्पत्ति औ लय कारणमैं होवैहै । यातैं तैजसरूप जो उकार है ताका कारण प्राज्ञरूप जो मकार है ताकेविषै लय बनैहै ॥

या स्थानविषै विश्वआदिकनके ग्रहणतैं समष्टि जो विराट् आदिक हैं तिनका औ अपनी अपनी जो त्रिपुटी हैं, तिन सर्वका ग्रहण जानना ॥

३ जा प्राज्ञरूप मकारविषै उकार लय कियाहै ता मकारकूं तुरीयरूप जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है, ताकेविषै लीन करै । काहेतैं ? ओंकारके परमार्थस्वरूपका तुरीयसैं अभेद है ॥ सो तुरीय ब्रह्मरूप है औ शुद्धविषै ईश्वर प्राज्ञ दोनूं कल्पित हैं ॥ जो जाकेविषै कल्पित होवैहै सो ताका स्वरूप होवैहै । यातैं ईश्वरसहित प्राज्ञरूप मकारका लय बनैहै ॥

इसरीतिसैं जो ओंकारके परमार्थस्वरूप अमात्रविषै सर्वका लय कियाहै "सो मैं हूं" ऐसा एकाग्रचित्त होयके चिंतन करै ॥

स्थावरजंगमरूप, असंग, अद्वय, असंसारी, नित्यमुक्त, निर्भय औ ब्रह्मरूप जो ओंकारका परमार्थस्वरूप "सो मैं हूं" ऐसा चिंतन करनैसैं ज्ञान उदय होवैहै । यातैं ज्ञान-द्वारा मुक्तिरूप फलका देनैवाला यह ओंकारका निर्गुणउपासन है सो सर्वसैं उत्तम है ॥

॥ २९४ ॥ ॐकारचिंतनमैं परमहंसका अधिकार ॥

जो पूर्वरीतिसैं ओंकारके स्वरूपकूं जानैहै सो मुनि है । जो नहीं जाने है सो मुनि नहीं । काहेतैं मुनि नाम मनन करनैवालेका है । यह ओंकारका चिंतन मननरूप है । जाके ओंकार-का चिंतनरूप मनन नहीं सो मुनि नहीं ॥

यह मांडूक्यउपनिषद्की रीतिसैं संक्षेपतैं ओंकारका चिंतन कह्याहै ॥ और बी नृसिंह-तापिनी आदिक उपनिषद्नमैं याका प्रकार है ॥ यह ओंकारका चिंतन परमहंसोंका गोप्यधन है ॥ बहिर्मुखपुरुषका याविषै अधिकार नहीं । अत्यंतअंतर्मुखका अधिकार है । गृहस्थका यामैं अधिकार नहीं । धनपुत्रस्त्रीसंगादिकरहित परमहंसका अधिकार है ॥

॥ २९५ ॥ ॐकारके ध्यानवालेकूं फल ॥ २९५--२९६ ॥

१ पूर्वप्रकारतैं ओंकारका ब्रह्मरूपतैं ध्यान कियेतैं ज्ञानद्वारा मोक्ष होवैहै ।

२ परंतु जा पुरुषकी इसलोकके भोगनमैं अथवा ब्रह्मलोकके भोगनमैं कामना होवै, तीव्र-वैराग्य नहीं होवै औ हठसैं कामनाकूं रोकिके धनपुत्रादिकनकूं त्यागिके परमहंसगुरुके उपदेश-तैं ओंकाररूप ब्रह्मका ध्यान करै ताकूं भोगकी कामना ज्ञानमैं प्रतिबंध है । यातैं ज्ञान नहीं होवैहै । किंतु ध्यान करतेही शरीरत्यागतैं अनंतर अन्यशरीरकी प्राप्ति होवै ॥

(१) जो इसलोककी भोगनकी कामना रोकिके ध्यानमैं लगा होवै तौ इसलोकमैं अत्यंतविभूतिवाले पवित्रसत्संगीकुलमैं जन्म होवैहै ॥ तहां पूर्वकामनाकेविषै सारे भोग प्राप्त होवैहैं औ पूर्वजन्मके ध्यानके संस्कारनतैं फेरि विचारमैं अथवा ध्यानमैं प्रवृत्ति होवैहै तातैं ज्ञान होयके मोक्ष होवैहै ॥ औ—

॥ २९६ ॥ (२) ब्रह्मलोकके भोगनकी कामना रोकिके ओंकाररूप ब्रह्मके ध्यानमैं लग्या होवै तौ शरीर त्यागिके ब्रह्मलोककूं जावैहै ॥ तहां मनुष्यनकूं पितरनकूं देवनकूं दुर्लभ जो स्वतंत्रता है ताके आनंदकूं भोगैहै ॥ जितनी हिरण्यगर्भकी विभूति है, सो सारी सत्यसंकल्पादिक विभूति इसकूं प्राप्त होवैहै ॥

॥ २९७ ॥ ब्रह्मलोकके मार्गका क्रम ॥

जा मार्गतैं ब्रह्मलोककूं जावैहै सो मार्गका[३३४] क्रम यह हैः—जो पुरुष ब्रह्मकी उपासनामैं तत्पर है ताके मरणसमय इंद्रियअंतःकरण यद्यपि सारे मूर्छित[३३५] हैं । कहीं जानैमैं समर्थ नहीं औ यमके दूत ताके समीप आवैं नहीं जो ताके लिंगशरीरकूं ले जावैं । परंतु—

१ अग्निका अभिमानी देवता ताकूं मरणसमय शरीरसैं निकासिके अपनै लोककूं ले जावैहै ॥

२ ता अग्निलोकतैं दिनका अभिमानी देवता ले जावैहै ॥

३ तिसतैं शुक्लपक्षका अभिमानी देवता अपनै लोककूं ले जावैहै ।

४ तिसतैं आगे उत्तरायण जो षट्मास हैं— तिनका अभिमानी देवता ले जावैहै ।

५ तिसतैं आगे संवत्सरका अभिमानी देवता ले जावैहै ।

६ तिसतैं आगे देवलोकका अभिमानी देवता ले जावैहै ।

७ तिसतैं आगे वायुका अभिमानी देवता ले जावैहै ।

८ तिसतैं आगे सूर्यदेवता ले जावैहै ।

९ तिसतैं आगे चंद्रदेवता ले जावैहै ।

॥ ३३४ ॥ यह मार्गका क्रम यजुर्वेदकी ईशा-वास्यउपनिषद्के अंतविषै औ छांदोग्यविषै लिख्याहै ॥

॥ ३३५ ॥ मरणसमय स्थूलशरीरसैं लिंग-शरीरके वियोगनैं चेतनाके अभावकरि उपासकके इंद्रिय औ अंतःकरण अन्यप्राणिनकी न्याईं मूर्छित होवैहैं औ यातैं स्वतः कहीं जानैमैं समर्थ नहीं औ क्रियाशक्तिवाले प्राणकूं स्वरूपतैं अचेतन होनैकरि इच्छाके अभावतैं तिसकरि तिनका गमन संभवै नहीं ॥

१० तिसतैं आगे बिजलीका अभिमानी देवता अपनै लोकमैं ले जावैहै ।

११ तहां बिजलीके लोकमैं तिस उपासकके सामनै हिरण्यगर्भकी आज्ञातैं दिव्यपुरुष हिरण्यगर्भलोकवासी हिरण्यगर्भसमानरूप ताके लेनैकूं आवैहै । सो पुरुष बिजलीके लोकतैं वरुणलोककूं ले जावैहै । बिजलीका अभिमानी देवता साथि आवैहै ॥

१२ वरुणलोकतैं इंद्रलोककूं ले जावैहै औ वरुणदेवता बी इंद्रलोकतोडी हिरण्यगर्भलोकवासी पुरुष औ उपासकके साथि रहैहै ।

१३ तिसतैं आगे इंद्रदेवता प्रजापतिके लोकतोडी दोनूंके साथि रहैहै ।

१४ तिसतैं आगे प्रजापति तिन दोनूंके साथ ब्रह्मलोक ले जानैविषै समर्थ नहीं । यातैं ब्रह्मलोकमैं ता दिव्यपुरुषके साथि सो उपासक प्राप्त होवैहै ॥

ब्रह्मलोकका अधिपति हिरण्यगर्भ है ।

सूक्ष्मसमष्टिका अभिमानी चेतन हिरण्यगर्भ कहियेहै । ताहीकूं कार्यब्रह्म कहैहैं ॥

कार्यब्रह्मके निवासस्थानकूं ब्रह्मलोक कहैहैं ॥

॥ २९८ ॥ सायुज्यमोक्षका वर्णन ॥

यद्यपि पूर्वरीतिसैं ओंकारकी उपासना शुद्धब्रह्मरूपकरिके कहीहै । शुद्धब्रह्मके उपासककूं शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति चाहिये तथापि शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति ज्ञानतैंही होवैहै औ कामनारूप प्रतिबंधतैं जाकूं ज्ञान हुया नहीं ताकूं कार्यब्रह्मकी प्राप्तिरूप सायुज्यरूप मोक्ष होवैहै ॥

१ ब्रह्मलोकमैं प्राप्त जो उपासक है ताकूं हिरण्यगर्भके समान विभूति प्राप्त होवैहै ।

२ सत्यसंकल्प होवैहै ॥

३ जैसैं शरीरकी इच्छा करै तैसाई उसका शरीर होवैहै ॥

४ जिन भोगनकी वांछा करै सो सारे भोग संकल्पतैंही प्राप्त होवैहैं ॥

५ जो एकसमय हजारशरीरनसैं जुदेजुदे भोगनकी इच्छा करै तौ ताही समय हजारशरीर औ उनके भोगनकी जुदी जुदी सामग्री उपजैहै ॥ औ—

बहुत क्या कहैं ? जो कछु संकल्प करै सोई सिद्ध होवैहै । परंतु जगत्की उत्पत्तिपालनसंहार छोडिके औरसारी विभूति ईश्वरके समान होवैहै । याहीकूं [२३६] सायुज्यमोक्ष कहैहैं ॥

ऐसैं हिरण्यगर्भके समान हुवा बहुतकाल संकल्पसिद्ध दिव्यपदार्थनकूं भोगिके प्रलयकालमैं जब हिरण्यगर्भके लोकका नाश होवै । तब ज्ञान होयके उपासककूं विदेहमोक्षकी प्राप्ति होवैहै ॥

॥ २९९ ॥ ॐकारके अहंग्रहध्यानतैं ब्रह्मलोककी प्राप्तिका नियम ॥

जैसैं ॐकाररूप ब्रह्मकी उपासना करनै-

॥ २३६ ॥

१ राजाके प्रजाकी न्यांई ईश्वरके लोकविषै वासका नाम सालोक्यमुक्ति है ।

२ तिसतैं श्रेष्ठ राजाके किंकरकी न्यांई ईश्वरके समीप वास करनैका नाम सामीप्यमुक्ति है

३ तिसतैं श्रेष्ठ राजाके अनुजकी न्यांई ईश्वरके समानरूपकी प्राप्तिका नाम सारूप्यमुक्ति है।

४ तिसतैं श्रेष्ठ राजाके ज्येष्ठपुत्रकी न्यांई ईश्वरके समान सत्यसंकल्पादि ऐश्वर्य (विभूति) की प्राप्तिका नाम सार्ष्टिमुक्ति है ।

इसरीतिसैं शास्त्रविषै फलरूप चारिप्रकारकी मुक्ति कहीहै । तिनमैं अंत्यकी सार्ष्टिमुक्ति श्रेष्ठ है । तिस सार्ष्टिमुक्तिकूंही सायुज्यमोक्ष बी कहैहैं ॥

वाला ब्रह्मलोककी प्राप्तिद्वारा मोक्षकूं प्राप्त होवैहै। तैसैं और वी उपनिषद्नमैं ब्रह्मकी उपासना कहीहै तिनतैं यही फल होवैहै। परंतु अहंग्रहउपासनाविना औरउपासनातैं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै नहीं। यह वार्ता सूत्रकारनै औ भाष्यकारनै चतुर्थअध्यायमैं प्रतिपादन करीहै॥

१ जैसैं नर्मदेश्वरका शिवरूपतैं औ शालिग्रामका विष्णुरूपतैं ध्यान कह्याहै सो प्रतीकध्यान है। अहंग्रह नहीं। औ—

२ मनका ब्रह्मरूपतैं औ आदित्यका ब्रह्मरूपतैं ध्यान कह्याहै सो वी प्रतीकध्यान है। अहंग्रह नहीं।

तिनतैं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै नहीं॥ सगुण अथवा निर्गुणब्रह्मकूं अपनैतैं अभेदकरिके चिंतन करै ताकूं अहंग्रहध्यान कहैहैं, ताहीतैं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवैहै।

॥ ३०० ॥ उत्तरायणमार्गसैं ब्रह्मलोकमैं गयेकूं फेरी संसारकी अप्राप्ति औ ज्ञानद्वारा मोक्षकी प्राप्ति।

पूर्व कह्या जो मार्ग है ताकूं **उत्तरायणमार्ग** कहैहैं औ **देवमार्ग** वी कहैहैं।

ता देवमार्गतैं ब्रह्मलोककूं जो उपासक जावैहै तिनकूं फेरी संसार नहीं होता। किंतु ज्ञान होयके विदेहमुक्तिकूं प्राप्त होवैहै।

तहां ज्ञानके साधन जो गुरुउपदेशादिक हैं तिनकी वी अपेक्षा नहीं। किंतु ब्रह्मलोकमैं गुरुउपदेशादिक साधनविनाही ज्ञान होवैहै। काहेतैं? ब्रह्मलोकमैं तमोगुणरजोगुणका तौ लेश वी नहीं। केवल सत्वगुणप्रधान वह लोक है।

१ तमोगुण नहीं यातैं जडताआलस्यादिक नहीं।

२ रजोगुण नहीं, यातैं कामक्रोधादिरूप रजोगुणका कार्य विक्षेप नहीं।

३ केवलसत्वगुण है, यातैं सत्वगुणका कार्य ज्ञानरूप प्रकाश ता लोकमैं प्रधान है।

॥ ३०१ ॥ हिरण्यगर्भवासीकूं असंग निर्विकार ब्रह्मरूप आत्माका भान होवैहै, तामैं कारण।

ओंकारकी ब्रह्मरूपतैं जो पूर्व उपासना करीहै तब ओंकारकी मात्राका अर्थ इसरीतिसैं चिंतन कियाहैः—

१ "स्थूलउपाधिसहित विराट्विश्वचेतन अकारका वाच्य है॥

२ सूक्ष्मउपाधिसहित चेतन हिरण्यगर्भतैजस उकारका वाच्य है।

३ कारणउपाधिसहित चेतन ईश्वरप्राज्ञ मकारका वाच्य है॥"

ऐसा अर्थ जो पूर्व चिंतन कियाहै ताकी ब्रह्मलोकमैं स्मृति होवैहै औ सत्वगुणप्रभावतैं ऐसा विवेचन होवैहैः—

१ स्थूलउपाधिकरिके चेतनमैं विराट्पना औ विश्वपना प्रतीत होवैहै॥

(१) स्थूलसमष्टिकी दृष्टितैं विराट्पना है॥ औ—

(२) स्थूलव्यष्टिकी दृष्टितैं विश्वपना है औ समष्टिव्यष्टिस्थूलकी दृष्टिविना विराट्भाव औ विश्वभाव प्रतीत होवै नहीं। किंतु चेतनमात्रही प्रतीत होवैहै।

२ तैसैं सूक्ष्मउपाधिसहित हिरण्यगर्भतैजसचेतन उकारका वाच्य है॥ तहां-

(१) समष्टिसूक्ष्मउपाधिकी दृष्टितैं चेतनमैं हिरण्यगर्भता प्रतीत होवैहै। औ—

(२) व्यष्टिसूक्ष्मउपाधिकी दृष्टितैं तैजसता प्रतीत होवैहै॥

सूक्ष्मउपाधिकी दृष्टिविना हिरण्यगर्भता औ तैजसता प्रतीत होवै नहीं ॥

३ तैसैं मकारका वाच्य ईश्वर प्राज्ञ है ॥ तहां—

(१) समष्टिअज्ञानउपाधिकी दृष्टितें चेतनमैं ईश्वरता प्रतीत होवै है । औ—

(२) व्यष्टिअज्ञानउपाधिकी दृष्टितें चेतनमैं प्राज्ञता प्रतीत होवैहै ।

अज्ञानउपाधिकी दृष्टिविना ईश्वरता औ प्राज्ञता प्रतीत होवै नहीं ।

जो वस्तु जाकेविषै अन्यकी दृष्टितें प्रतीत होवै सो ताकेविषै परमार्थसें होवै नहीं । जो जाका रूप अन्यकी दृष्टिविना प्रतीत होवै सो ताका परमार्थरूप होवैहै । जैसें एकपुरुषमें पिताकी दृष्टितें पुत्रता औ दादाकी दृष्टितें पौत्रतादिक रूप भान होवैंहैं सो परमार्थसें नहीं। पुरुषका पिंडही परमार्थ है । तैसें स्थूलसूक्ष्मकारणउपाधिकी दृष्टितें जो विराट्विश्वादिक रूप भान होवैंहैं सो मिथ्याहैं । चेतनमात्रही सत्य है ॥

सो चेतन सर्वभेदरहित है । काहेतें ?

१ विराट् औ विश्वका जो भेद है सो उपाधि तौ दोनूंकी यद्यपि स्थूल है तथापि समष्टिउपाधि विराट्की औ व्यष्टिउपाधि विश्वकी । सो समष्टिव्यष्टिउपाधितें तिनका भेद है, यातें स्वरूपतें भेद नहीं ॥

२ तैसैं तैजसका हिरण्यगर्भतें भेद बी समष्टिव्यष्टिउपाधितें है । स्वरूपतें नहीं ।

३ तैसैं ईश्वरतें प्राज्ञका भेद बी समष्टिव्यष्टिउपाधिके भेदतें है । स्वरूपतें नहीं ।

१ ऐसें प्राज्ञका ईश्वरतें अभेद है । औ—

२ तैजसका हिरण्यगर्भतें अभेद है ।

३ तथा विश्वका विराट्तें अभेद है ।

या प्रकारतें स्थूलउपाधिवालेका सूक्ष्मउपाधिवालेतें वा कारणउपाधिवालेतें भेद नहीं । काहेतें ? स्थूलसूक्ष्मकारणउपाधिकी दृष्टि त्यागेतें चेतनस्वरूपमें किसीप्रकारका भेद प्रतीत होवै नहीं ॥ औ—

अनात्मासें बी चेतनका भेद नहीं । काहेतें ? अनात्मदेहादिक अविद्याकालमें प्रतीत होवैहैं । परमार्थसें नहीं । तिनका बी चेतनसें भेद बनै नहीं ।

ऐसें सर्वभेदरहित, असंग, निर्विकार, नित्यमुक्त, ब्रह्मरूप आत्मा ओंकारका लक्ष्य स्वयंप्रकाशरूप तिस उपासककूं भान होवैहै । तातें हिरण्यगर्भलोकवासीकूं संसार होवै नहीं ।

॥ ३०२ ॥ ॐ औ महावाक्यके अर्थकी एकता ॥

यद्यपि महावाक्यके विवेकविना ज्ञान होवै नहीं, तथापि ओंकारका विवेकही महावाक्यका विवेक है ।

१(१) स्थूलउपाधिसहित चेतन अकारका वाच्य है ।

(२) स्थूलउपाधिकूं त्यागिके चेतनमात्र अकारका लक्ष्य ।

२(१) तैसैं सूक्ष्मउपाधिसहित चेतन उकारका वाच्य है ।

(२) सूक्ष्मउपाधिकूं त्यागिके चेतनमात्र उकारका लक्ष्य है ।

३(१) कारणउपाधिसहित चेतन मकारका वाच्य है ।

(२) कारणउपाधिकूं त्यागिके चेतनमात्र मकारका लक्ष्य है ।

इसरीतिसैं—

१ उपाधिसहित विश्वादिक अकारादिमात्राका वाच्य है औ—

२ उपाधिरहित चेतन सर्वमात्रके लक्ष्य हैं ॥

१ तैसैं नामरूप सकलउपाधिसहित चेतन ॐकारवर्णका वाच्य है । औ—

२ नामरूपसकलउपाधिरहित चेतन ॐकारवर्णका लक्ष्य है ।

ऐसैं ॐकारका औ महावाक्यनका अर्थ एकही है । यातैं ओंकारके विवेकतैं अद्वैतज्ञान होवैहै ॥

ऐसैं आचार्यके मुखतैं श्रवणकरिके अदृष्टि नाम जो मध्यमशिष्य सो उपासनामैं प्रवृत्त होयके ज्ञानद्वारा परमपुरुषार्थमोक्षकूं प्राप्त हुवा ॥ १६८ ॥

॥३०३॥ निर्गुणउपासनाके अनधिकारीकूं कर्तव्य ।

निर्गुणउपासनामैं जाका अधिकार नहीं, ताकूं कर्त्तव्य[३३८] कहैहैं:—

॥ सवैयाछंद ॥

जो यह निर्गुनध्यान न व्है तौ, सगुनईस[३३९] करि मनको धाम[३४०] ।

॥ ३३८ ॥ इहां यह अभिप्राय है:— जो जिज्ञासुकी वेदांतके श्रवणमननरूप विचारविषै प्रवृत्ति भईहै ताकूं विचार छोडिके अन्यसाधन कर्त्तव्य नहीं ।

१ जो कदाचित् सो विचारशील पुरुष विचारकूं छोडिके अन्यसाधनविषै प्रवृत्त होवैगा तौ आरूढपतित होवैगा ।

२ किंवा ताकूं "करं लेढि न्याय" (लड्डु गमायके हाथ चाटनैका दृष्टांत) प्राप्त होवैगा ।

यातैं सो विचारशील पुरुष दृढबोधपर्यंत विचार करै । औ—

१ जाकी विचारविषै प्रवृत्ति होवै नहीं ताकूं निर्गुणउपासना कर्तव्य है । औ—

२ जाका निर्गुणउपासनामैं अधिकार नहीं ताकूं "उपवासतैं भिक्षा श्रेष्ठ है" इस न्यायकरि सगुणउपासनादिरूप कर्तव्य कहैहै ॥

॥ ३३९ ॥

१ मायाविशिष्टचेतनरूप कारणब्रह्म सगुणईश

२ किंवा ताके उपलक्षण जे हिरण्यगर्भ, वैश्वानर, हरि, हर, गौरी, गणेश, सूर्य, अरु तिनके अवताररूप कार्यब्रह्म सगुणईश कहियेहै ।

३ किंवा तिनकी प्रतिमादिरूप प्रतिनिधि (तिनके ठिकाने स्थापित) सो इहां सगुणईश कहियेहै ।

उक्त उपास्यनमैं पूर्वपूर्व श्रेष्ठ है ।

यद्यपि आगे सप्तमतरंगउक्त रीतिकरि मायाविशिष्ट चेतनरूप कारणब्रह्मही ईशपदका मुख्यअर्थ है औ सोई उपास्य है तथापि "मायाकूं प्रकृति (सारे जगत्की उपादान) जानै । औ ब्रह्मकूं महेश्वर जानै" इस श्रुतिकरि मायाविशिष्टचेतनतैं भिन्न वस्तुके अभावतैं श्रीविद्यारण्यस्वामीनै सर्वमतसैं अविरुद्ध ईश्वरका चित्रदीपविषै निरूपण कियाहै । ताके अनुसार हिरण्यगर्भादिक सर्वउपास्यवस्तु बी ईश कहियेहै । तामैं—

॥ ३४० ॥ मनको धाम कहिये स्थानक (निवास) कर ॥

सगुनउपासनहू नहिं व्है तौ,
करि निष्कामकर्म[341] भजि राम ॥
जो निष्कामकर्महू नहीं व्है,
तौ करिये सुभकर्म सकाम ।
जो सकामकर्महू नहीं होवै,
तौ सठ* वारवार मरि जाम ॥ १६९ ॥

॥ दोहा ॥

ओंकारको अर्थ लखि,
भयो कृतार्थ अदृष्टि ॥
पढै जु याहि तरंग तिहि,
दादू करहु सुदृष्टि ॥ १७० ॥

इति श्रीविचारसागरे गुरुवेदादिव्यावहारिकप्रतिपादन मध्यमाधिकारीसाधनवर्णनं नाम पंचमस्तरंगः समाप्तः ॥ ५ ॥

॥ ३४१ ॥ फलकी कामनासैं रहित स्ववर्णाश्रमके कर्मकूं ईश्वरार्पणबुद्धिसैं कर औ तिसके साथि नामकीर्तनादिकरिके रामकूं भज ।

अथवा निष्कामकर्मकरिके राम भजि कहिये सो कर्म रामकूं अर्पण कर । फलकी कामनासैं रहित होयके रामके अर्थ किया जो पुण्यकर्म सो बी रामकी प्रसन्नताका हेतु होनैतैं रामकाही भजन है ।

* इहां "सठ" कहिये हे दुष्ट ! औ 'मरि जाम' कहिये मरिके जन्मकूं पाव ॥

॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ षष्ठस्तरंगः ॥ ६ ॥

॥ अथ श्रीगुरुवेदादिसाधनमिथ्यावर्णनम् ॥

॥ ३०४ ॥ ॥ उपोद्धात ॥

॥ दोहा ॥

चेतन भिन्न अनात्म सब,
मिथ्या स्वप्नसमान ॥
यूं सुनि बोल्यो तीसरो,
तर्कदृष्टि मतिमान ॥ १ ॥

टीकाः—

१ चतुर्थतरंगमैं उत्तम अधिकारीकूं उपदेशका प्रकार कह्या ।

२ पंचमतरंगमैं मध्यमअधिकारीकूं कह्या ।

३ या तरंगमैं कनिष्ठअधिकारीकूं उपदेशका प्रकार कहैहैं:—

जाकूं शंका बहुत उपजै ताकी यद्यपि बुद्धि तीव्र होवैहै । तथापि वह कनिष्ठ-अधिकारी है ।

यह तरंग युक्तिप्रधान है, यातैं सुनै-अर्थमैं जाकूं कुतर्क उपजै ताकूं इस तरंगका उपयोग है ।

कुतर्कदूषितबुद्धि कनिष्ठअधिकारी होवैहै । ताकूं उपदेशका प्रकार या तरंगमैं है ॥

पहले तरंगमैं प्रणवउपासना औ जगत्‌की उत्पत्तिनिरूपणसैं पूर्व यह कह्याः—"जो चेतनसैं भिन्न अज्ञान औ ताका कार्य अनात्म कहियेहै । सो अनात्मपदार्थ सारे स्वप्नकी न्याई मिथ्या है" इस वार्ताकूं सुनिके दोनूं भायूंकूं प्रश्नतैं उपराम देखिके—

(तर्कदृष्टिका प्रश्न ॥ ३०५-३०६ ॥)

॥ ३०५ ॥ प्रश्नः— स्वप्नदृष्टांतसैं जाग्रत्-पदार्थ मिथ्या संभव नहीं ।

तर्कदृष्टि प्रश्न करैहैः—

॥ दोहा ॥

पहिली जानै वस्तुकी,[३४२]
स्मृति स्वप्नमैं होय ।
जाग्रतमैं अज्ञात अति ।
ताहि लखै नहिं कोय ॥ २ ॥

टीकाः— पूर्व जो अत्यंतअज्ञातपदार्थ है ताका स्वप्नमैं ज्ञान होवै नहीं । किंतु जाग्रत्‌मैं जाका अनुभवज्ञान होवै ताकी स्वप्नमैं स्मृति होवैहै । यातैं स्मृतिज्ञानके विषय जाग्रत्‌के पदार्थ सत्य होनैतैं तिनका स्वप्नमैं स्मृतिरूप ज्ञान बी सत्य है । यातैं स्वप्नके दृष्टांतसैं जाग्रत्‌के पदार्थनकूं मिथ्या कहना संभवै नहीं ।

॥ ३४२ ॥ नैयायिक स्वप्नकूं जाग्रत्‌विषै अनुभव किये पदार्थनकी स्मृतिरूप मानसविपर्यास कहैहैं । तिनके मतके अनुसार शिष्य प्रश्न करैहै ॥

॥ ३०६ ॥ प्रश्नः—स्वप्न मिथ्या नहीं ॥

अन्यप्रकारतैं स्वप्नज्ञानके विषय पदार्थनकूं सत्यता प्रतिपादन करैहैं:—

॥ दोहा ॥

अथवा स्थूलहि लिंग तजि,
बाहरि देखत जाय ॥
गिरि समुद्र वन वाजि गज,
सो मिथ्या किहिं भाय ॥ ३ ॥

टीकाः—अथवा कहिये औरप्रकारतैं स्वप्नका ज्ञान औ ताके विषय पदार्थ सत्य हैं, मिथ्या नहीं। काहेतें ? स्वप्नअवस्थामैं स्थूलशरीरकूं त्यागिके लिंगशरीर बाहरि निकसिके साचे गिरिसमुद्रादिकनकूं देखैहै, यातैं स्वप्न मिथ्या नहीं ॥

(अंक ३०५-३०६ गत प्रश्नके उत्तर ॥ ३०७-३२८ ॥)

॥ ३०७ ॥ जाग्रत्के पदार्थनकी स्वप्नमैं स्मृति नहीं ॥

॥ दोहा ॥

यह हस्ती आगै खरो,
ऐसो होवै ज्ञान ॥
स्वप्नमांहि स्मृतिरूप सो,
कैसै होय सुजान ॥ ४ ॥

टीकाः—

१ पूर्वकालसंबंधी पदार्थका ज्ञान स्मृति होवैहै। जैसैं पूर्व देखे हस्तीकी "सो हस्ती" ऐसी स्मृति होवैहै। औ—

२ "यह हस्ती सन्मुख स्थित है" ऐसा ज्ञान स्मृति नहीं, किंतु प्रत्यक्ष कहियेहै। औ—

स्वप्नमैं तौ "यह हस्ती आगे स्थित है, यह पर्वत है, यह नदी है" ऐसा ज्ञान होवैहै, यातैं जाग्रत्मैं देखे पदार्थनकी स्वप्नमैं स्मृति नहीं। किंतु हस्ती आदिकनका प्रत्यक्षज्ञान होवैहै ॥ और—

जो ऐसैं कहैं:—"जाग्रत्मैं जानै पदार्थनकाही स्वप्नमैं ज्ञान होवैहै। अज्ञातपदार्थका ज्ञान नहीं होवै। यातैं जाग्रत्पदार्थनके ज्ञानके संस्कारनतैं स्वप्नके ज्ञानकी उत्पत्ति होवैहै॥ संस्कारजन्य ज्ञान स्मृति कहियेहै। यातैं स्वप्नका ज्ञान स्मृतिरूप है"।

सो शंका बनै नहीं। काहेतें ? प्रत्यक्षज्ञान दोप्रकारका होवैहै:—१ एक अभिज्ञारूप प्रत्यक्ष होवैहै। २ दूसरा प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्ष होवैहै।

१ केवलइंद्रियसंबंधतैं जो ज्ञान होवै सो अभिज्ञाप्रत्यक्ष कहियेहै। जैसैं नेत्रके संबंधतैं हस्तीका "यह हस्ती है" ऐसा ज्ञान अभिज्ञाप्रत्यक्ष है ॥ औ—

२ पूर्वज्ञानके संस्कारनतैं औ इंद्रियसंबंधतैं जो ज्ञान होवै। सो प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष[३४३] कहियेहै। जैसैं पूर्वदेखे हस्तीका "सो हस्ती यह है" ऐसा ज्ञान होवै सो प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहियेहै ॥

तहां पूर्व हस्तीके ज्ञानके संस्कार औ हस्तीसैं नेत्रका संबंध प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षका हेतु है,

॥ ३४३ ॥ प्रत्यक्षज्ञानकी सामग्रीसहित संस्कारजन्यज्ञान, प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहियेहै। जो ताकूं संस्कारसहित इंद्रियसंबंधतैं जन्य कहैं तौ सो लक्षण बाह्यप्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षमैं तौ घटेगा। परंतु आंतरप्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षमैं ता लक्षणकी अव्याप्ति होवैगी। यातैं प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षका प्रथम कहा जो लक्षण सोई निर्दोष है। बाह्यआंतर साधारण है।

यातैं "संस्कारजन्यज्ञान स्मृतिरूपही होवैहै" यह नियम नहीं । किंतु प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष बी संस्कारजन्य होवैहै । परंतु इंद्रियसंबंधविना केवलसंस्कारजन्य ज्ञान होवै सो स्मृतिज्ञान कहियेहै ।

१ स्वप्नमैं हस्तीआदिकनका ज्ञान केवल-संस्कारजन्य नहीं; किंतु निद्रारूप दोषजन्य है औ हस्तीआदिकनकी न्यांई स्वप्नमैं कल्पित-इंद्रिय बी हैं । यातैं इंद्रियजन्य है ।

यद्यपि स्वप्नके पदार्थ साक्षीभास्य हैं, इंद्रियजन्यज्ञानके विषय नहीं । तथापि अविवेकीकी दृष्टितैं स्वप्नका ज्ञान इंद्रियजन्य कहियेहै ॥

इसरीतिसैं स्वप्नका ज्ञान जाग्रत्‌के पदार्थनकी स्मृति नहीं ॥ औ—

२ निद्रासैं जागिके पुरुष ऐसैं कहैहैः—"मैं स्वप्नमैं हस्तीआदिकनकूं देखताभया" । जो हस्तीआदिकनकी स्वप्नमैं स्मृति होवै तौ जागिके ऐसा कह्या चाहिये "मैं स्वप्नमैं हस्ती-आदिकनकूं स्मरण करताभया" ऐसैं कोई नहीं कहता । यातैं जाग्रत्‌के पदार्थनकी स्वप्नमैं स्मृति नहीं ॥ औ—

३ "जाग्रत्‌मैं जो देखे सुने पदार्थ हैं तिनकाही स्वप्नमैं ज्ञान होवै" यह नियम नहीं । किंतु जाग्रत्‌मैं अज्ञातपदार्थनका बी स्वप्नमैं ज्ञान होवैहै । कदाचित् स्वप्नमैं ऐसै विलक्षणपदार्थ प्रतीत होवैहैं, जो सारे जन्मविषै कदी देखे-सुने होवैं नहीं, यातैं तिनका ज्ञान स्मृति नहीं ।

४ यद्यपि "इस जन्मके पदार्थनके ज्ञानके संस्कारही स्मृतिके हेतु हैं" यह नियम नहीं किंतु अन्यजन्मके ज्ञानके संस्कारनतैं बी स्मृति होवैहै । काहेतैं ? अनुकूलज्ञानतैं प्रवृत्ति होवैहै, अनुकूलज्ञानविना प्रवृत्ति होवै नहीं । यातैं बालककी स्तनपानमैं जो प्रथमप्रवृत्ति होवैहै ताका हेतु बालककूं बी "स्तनपान मेरे अनुकूल है" ऐसा ज्ञान होवैहै । तहां अन्यजन्मविषै जो स्तनपानमैं अनुकूलता अनुभव करीहै । ताके संस्कारनतैं बालककूं प्रथमअनुकूलताकी स्मृति होवैहै । यातैं जन्मांतरके ज्ञानसंस्कारनतैं बी स्मृति होवैहै । तैसैं इस जन्मविषै अज्ञात-पदार्थनकी वा अन्यजन्मके ज्ञानके संस्कारनतैं स्वप्नविषै स्मृति संभवैहै ॥

तथापि कोई पदार्थ स्वप्नमैं ऐसै प्रतीत होवैहैं, जिनका जाग्रत्‌मैं किसी जन्मविषै ज्ञान संभवै नहीं । जैसैं अपनै मस्तकछेदनकूं आप नेत्रनसैं स्वप्नमैं देखैहै । तहां अपना मस्तकछेदन नेत्रनसैं जाग्रत्‌मैं देखै नहीं । यातैं जाग्रत्पदार्थन-के ज्ञानके संस्कारनतैं स्वप्नमैं स्मृति नहीं ।

५ ऐसैं स्वप्नकूं स्मृतिरूप खंडनमैं अनेकयुक्ति ग्रंथकारोंनै कहीहैं, परंतु स्वप्नकूं स्मृति माननैमैं पूर्वउक्तदूषण अतिप्रबल हैंः—जो स्मृतिज्ञानका विषय सन्मुख प्रतीत होवै नहीं औ स्वप्नके हस्तीआदिक सन्मुख प्रतीत स्वकालमैं होवैहैं । यातैं हस्तीआदिकनकी स्वप्नमैं स्मृति नहीं ।

॥ ३४४ ॥ इहां यह विशेष हैः—

१ संस्कारजन्य ज्ञानकूं जो स्मृति कहैं तौ प्रत्यभिज्ञाज्ञान बी संस्कारजन्य है, तामैं स्मृतिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी । ताके निवारण-अर्थ स्मृतिके लक्षणमैं मात्रपदका निवेश कियाचाहिये ।

२ जो संस्कारमात्रजन्य ज्ञानकूं स्मृति कहैं तौ संस्कारमात्ररूप सामग्रीकूं अनुभवनाशके अनंतर सदा विद्यमान होनेतैं सदा स्मृति हुई-चाहिये । इस दोषके निवारणअर्थ स्मृतिके लक्षणमैं उद्भूतपदका बी निवेश किया चाहिये ॥

इसरीतिसैं "उद्भूतसंस्कारमात्रजन्यज्ञान" स्मृति है । यह स्मृतिका लक्षण निर्दोष है ।

॥३०८॥ स्वप्नमैं लिंगशरीर बाहिर जायके जाग्रत्के पदार्थौंकूं देखता नहीं ।

"लिंगशरीर बाहरि निकसिके साचे गिरिसमुद्रादिकनकूं देखैहै" याका—

उत्तर ॥ दोहा ॥

बाहरि लिंग जु नीकसै,
देह अमंगल होय ॥
प्रानसहित सुंदर लसै,
यातैं लिंगहि जोय ॥ ५ ॥

टीकाः—जो स्थूलशरीरतैं निकसिके लिंगशरीर बाहरि साचे गिरिसमुद्रादिकनकूं देखै तौ लिंगशरीरके निकसनैतैं जैसैं मरणअवस्थामैं शरीर भयंकररूप प्रतीत होवैहै, तैसैं स्वप्नअवस्थाविषै बी लिंगके अभावतैं स्थूलशरीर अमंगल कहिये भयंकर हुवा चाहिये । तैसैं प्राणरहित मृतकसमान हुवा चाहिये । औ स्वप्नअवस्थामैं ऐसा होवै नहीं, किंतु स्वप्नअवस्थामैं स्थूलशरीर प्राणसहित होवैहै औ जाग्रत्की न्याईं सुंदर कहिये मंगलरूप होवैहै । यातैं स्थूलशरीरके बाहरि लिंगशरीर स्वप्नावस्थामैं निकसै नहीं । औ—

जो ऐसैं कहै:—स्वप्नअवस्थामैं प्राण तौ जावै नहीं, किंतु अंतःकरण औ इंद्रिय बाहरि पर्वतादिकनमैं जायके तिनकूं देखैहै; बाहरि नहीं जावै । यातैं स्थूलशरीर मरणअवस्थाके समान भयंकर होवै नहीं औ प्राणका बाहरि जानैका कछु प्रयोजन बी नहीं । काहेतैं ? प्राणमैं ज्ञानशक्ति नहीं । किंतु क्रियाशक्ति है। यातैं बाहरिके पदार्थनके ज्ञानकी जिनमैं सामर्थ्य है सोई जावैहै । ज्ञानशक्ति अंतःकरण औ ज्ञानइंद्रियनमैं है । प्राणकी न्याईं कर्मइंद्रियनमैं बी ज्ञानशक्ति नहीं । क्रियाशक्ति है । यातैं प्राण औ कर्मइंद्रिय शरीरमैं रहैहैं । यातैं मरणनिमित्ततैं दाहादिकनकी रिछा होवैहै औ बाहरि अंतःकरणज्ञानइंद्रिय जावैहैं । साचे पर्वतादिकनकूं देखिके प्राण औ कर्मइंद्रियनके समीप आवैहै ।

सो बी बनै नहीं । काहेतैं ?

१ स्थूलसूक्ष्मसमाजमैं सर्वका स्वामी प्राण है । प्राणविना शरीरकूं देखिके क्षणमात्र बी रहनै नहीं देते; बाहरि लेजावैहैं, दाह करैहैं, स्पर्शतैं स्नान करैहैं । यातैं स्थूलशरीरका सार प्राण है, तैसैं सूक्ष्मशरीरमैं बी प्रधान प्राण हैं ।

प्राँणइंद्रियादिक परस्पर श्रेष्ठताविवादकरिके प्रजापतिके समीप जायके कह्या 'हे भगवन् ! हमारेविषै कौन श्रेष्ठ है ?' तब प्रजापतिनै कह्या । 'तुम सारे स्थूलशरीरमैं प्रवेशकरिके एकएक निकसते जावो । जिसके निकसेतैं शरीर अमंगलरूप होइके गिरि पडै,सो तुमारेमैं श्रेष्ठ है' । प्रजापतिके वचनतैं नेत्रादिक इंद्रियनतैं एकएकके अभावतैं अंधादिरूप शरीरकी स्थिति देखी औ प्राणके निकसनैका उद्योग करतैंही शरीर गिरनै लगा । तब सर्वनै यह निश्चय किया । हमारा सर्वका स्वामी प्राण है ।

इसकारणतैं जितनै शरीरमैं प्राण रहै । उतनै रहैहैं । शरीरतैं प्राणके निकसतैंही सारे निकस जावैहैं । यातैं सूक्ष्मसमाजका राजाकी न्याईं प्राणही प्रधान है । ताके निकसैविना अंतःकरणज्ञानइंद्रिय बाहरि निकसै नहीं ।

२ किंवा अंतःकरण औ ज्ञानइंद्रिय भूतनके सत्वगुणके कार्य हैं । तिनमैं ज्ञानशक्ति है । क्रियाशक्ति नहीं । प्राणमैं क्रियाशक्ति है । ताके चलतैं मरणसमय लिंगशरीर इस स्थूलकूं

॥ ३४५ ॥ इहां प्राण औ इंद्रियशब्दकरिके तिनके अभिमानी देवनका ग्रहण है ॥

त्यागिके लोकांतरकूं जावैहै औ प्राणकेही बलतैं इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति बाहरि घटादिकनके समीप जावैहै औ प्राणके सहारेविना अंतःकरणादिकनका बाहरि गमन संभवै नहीं ॥ इसीकारणतैं योगशास्त्रमैं कह्याहैः—"प्राणनिरोधविना मनका निरोध होवै नहीं । प्राणके[३४६] संचारतैं मनका संचार होवैहै । प्राणनिरोधतैं मनका निरोध होवैहै" । यातैं मनका निरोधरूप जो राजयोग ताकी जिसकूं इच्छा होवै, सो प्राणनिरोधरूप हठयोगका अनुष्ठान करै । यातैं बी प्राणके आधीन अंतःकरणका गमन है । ताके निकसैविना अंतःकरणज्ञानइंद्रिय बाहरि निकसै नहीं । औ—

३ स्वप्नअवस्थामैं स्थूलशरीर प्राणसमेत प्रतीत होवैहै । यातैं "बाहरि जायके साचे पदार्थनकूं स्वप्नमैं देखैहै" यह संभवै नहीं ॥

४ किंवा कोईपुरुष अपनै संबंधीसैं स्वप्नमैं मिलिके जो व्यवहार करै तौ जागिके वह संबंधी मिलै । तब ऐसै नहीं कहता जो रात्रिकूं हम मिलेथे औ अमुकव्यवहार कियाथा औ पूर्वपक्षकी रीतिसैं तौ बाहरि निकसिके ता संबंधीसैं मिलिके व्यवहार साचा कियाहै । ता मिलनैका औ व्यवहारका ज्ञान संबंधीकूं चाहिये औ मिले । जब संबंधीनै कह्या चाहिये औ सिद्धांतमैं तौ संबंधी औ ताका मिलाप सब अंतरही कल्पित है ॥

५ किंवा जो बाहरि जायके साचे पदार्थनकूं देखै तौ रात्रिमैं सोया पुरुष हरिद्वारमैं मध्यानके सूर्यतैं तपे महैल[३४७] गंगातैं पूर्व औ नीलपर्वत गंगातैं पश्चिम देखैहै । तहां रात्रिमैं मध्यानका सूर्य नहीं । गंगातैं पूर्वदिशामैं हरिद्वारपुरी नहीं औ गंगातैं पश्चिम नीलपर्वत नहीं । यातैं बी साचे पदार्थनका देखना स्वप्नमैं असंभव है॥ औ—

जाग्रत्की स्मृति अथवा ईश्वरकृत पर्वतादिकनका बाहरि निकसिके स्वप्नमैं ज्ञान होवैहै । इन दोनूं पक्षनका निराकार किया ॥

(सिद्धांतः—जाग्रत्स्वप्नकी तुल्यता ॥ ३०९--३२८ ॥)

॥ ३०९ ॥ सारा त्रिपुटीसमाज स्वप्नमैं उपजैहै ॥

सिद्धांत कहैहैंः--

॥ दोहा ॥

यातैं अंतर ऊपजै,
त्रिपुटी सकलसमाज ॥
वेद कहत या अर्थकूं,
सब प्रमान सिरताज ॥ ६ ॥

टीकाः—जाग्रत्के पदार्थनकी स्मृति औ बाहरि लिंगका निकसना तौ संभवै नहीं । तथापि जाग्रत्की न्याईं ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय त्रिपुटी स्वप्नमैं प्रतीत होवैहै । यातैं कंठकी नाडीके अंतरही सबकुछ उत्पन्न होवैहै ।

सबप्रमाणका सिरताज कहिये प्रधान जो वेद है । तानै यह कह्याहै । उपनिषद्मैं[३४८] यह

॥ ३४६ ॥ "हे सौम्य (प्रियदर्शन) ! प्राण (रूप खंभे विषे) है (पक्षीकी न्याईं) बंधन जिसका ऐसा मन है" इस श्रुतिकरिके मन प्राणके आधीन है । यह स्पष्ट जानियेहै ॥

॥ ३४७ ॥ इहां महल कहिये हरिद्वारपुरीमैं स्थित मंदिर ॥

॥ ३४८ ॥ "न तत्र रथा न रथयोगा न पंथानो भवंत्यथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते" । अर्थः— "तहां (स्वप्नविषे) रथ नहीं है अरु घोडे नहीं हैं औ मार्ग नहीं है [किंतु स्वप्नका अधिष्ठान साक्षी किंवा ब्रह्मचेतन है] । जाग्रत्के अनंतरहीं रथ घोडे औ मार्गनकूं सृजताहै" इस श्रुतिमैं स्वप्नकालमैं रथादि-

प्रसंग है:—"जाग्रत्‌के पदार्थ स्वप्नमैं नहीं प्रतीत होवैहैं। किंतु रथ औ घोडे तथा मार्ग तैसें रथमैं बैठनैवाले स्वप्नमैं नवीन उत्पन्न होवैहैं। यातैं पर्वत समुद्र नदी वन ग्राम पुरी सूर्य चंद्र जो कुछ स्वप्नमैं दिखैहैं सो नवीन उपजैहैं ॥

जो स्वप्नमैं पर्वतादिक नहीं होवैं तौ तिनका प्रत्यक्षज्ञान स्वप्नमैं होवैहै सो नहीं हुवा-चाहिये। काहेतैं? विषयतैं इंद्रियका संबंध वा अंतः-करणकी वृत्तिका संबंध। प्रत्यक्षज्ञानका हेतु है। यातैं पर्वतादिकविषय औ तिनके ज्ञानके साधन इंद्रिय तथा अंतःकरण, सारे अंतर उत्पन्न होवैहैं ॥

यद्यपि स्वप्नके पदार्थ शुक्तिरजतादिकनकी न्याई साक्षीभास्य हैं। अंतःकरणइंद्रियनका स्वप्नके ज्ञानमैं उपयोग नहीं। यातैं ज्ञेय जो पर्वतादिक हैं तिनकीही उत्पत्ति स्वप्नमैं माननी योग्य है। ज्ञाता ज्ञान औ इंद्रियनकी उत्पत्ति माननी योग्य नहीं ॥

१ तथापि जैसैं स्वप्नमैं पर्वतादिक प्रतीत होवैहैं तैसैं इंद्रिय अंतःकरणप्राणसहित स्थूल-शरीर बी स्वप्नमैं प्रतीत होवैहै, यातैं तिनकी बी उत्पत्ति माननी चाहिये।

२ किंवा स्वप्नके पदार्थनविषै नेत्रादिकनकी विषयता भान होवैहै सो व्यावहारिक नेत्रादिकन-की विषयता तौ स्वप्नके प्रातिभासिक पदार्थनविषै बनै नहीं। काहेतैं? समसत्तावाले पदार्थही आपसमैं साधकबाधक होवैहैं। यह पंचमतरंगमैं प्रति-पादन करी है। यातैं व्यावहारिक नेत्रादिक शरी-रमैं हैं बी, तिनतैं स्वप्नके पदार्थनकी विषमसत्ता होनैतैं। तिनके ज्ञानकी विषयता स्वप्नके पर्वता-दिकनकूं बनै नहीं ॥

३ किंवा व्यावहारिक जो इंद्रिय हैं सो अपनै अपनै गोलकोंकूं त्यागिके कार्य करनैमैं समर्थ होवैं नहीं औ स्वप्नअवस्थामैं हस्तपाद्-वाक्‌के गोलक तौ निश्चल दूसरेकूं दीखैहैं औ हस्तमैं द्रव्य ग्रहणकरिके पुकारता धावन करैहै। यातैं स्वप्नमैं इंद्रियनकी उत्पत्ति अवश्य माननीचाहिये।

४ तैसैं सुखदुःख औ तिनका ज्ञान तथा सुखदुःखज्ञानका आश्रय प्रमाता स्वप्नमैं प्रतीत होवैहै औ विना हुये पदार्थकी प्रतीति होवै नहीं।

यातैं सारा त्रिपुटीसमाज स्वप्नमैं उत्पन्न होवैहै ॥

अनिर्वचनीयख्यातिकी यह रीति है:—जितनै भ्रमज्ञान हैं, तिनके विषय सारे अनिर्वचनीय उत्पन्न होवैहैं ॥ विषयविना कोई ज्ञान होवै नहीं। यह सिद्धांत है ॥

औरशास्त्रनके मतमैं तौ अन्यपदार्थका अन्य-रूपतैं भान होवै, सो भ्रम कहियेहै। सिद्धांतमैं तौ जैसा पदार्थ होवै तैसाही ज्ञान होवैहै। यातैं भ्रमस्थलमैं बी विषयकी उत्पत्ति अवश्य होवैहै। विषयविना ज्ञान होवै नहीं ॥

इसरीतिसैं स्वप्नमैं त्रिपुटीकी प्रतीति होनैतैं सारा समाज उत्पन्न होवैहै ॥ याके विषै—

॥ ३१० ॥ स्वप्नके उत्पत्तिकी शंका-करिके अंतःकरण वा अविद्याके परिणाम औ चेतनके विवर्त्त स्वप्नकी सिद्धि ॥ ३१०—३११ ॥

ऐसी शंका होवैहै:—स्वप्नके जो पदार्थ

तीनकरि उपलक्षित सारे जगत्‌की नवीनसृष्टि (उत्पत्ति) कहीहै औ "संध्ये सृष्टिराह हि (उक्त-श्रुति जाग्रत् औ सुषुप्तिकी संधिविषै सृष्टिकूं कहैहै)" यह उक्त श्रुतिरूप मूलवाला व्याससूत्र है सो उक्तश्रुतिके अर्थ (स्वप्नसृष्टि) कूं दृढ करैहै। यातैं स्वप्नविषै जाग्रत्‌के पदार्थनकी स्मृति किंवा लिंगशरीरका बाहरि निर्गमन होयके तिसकरि साचे गिरिसमुद्रादिकनका दर्शन संभवै नहीं ॥

प्रतीत होवैहैं, तिनकी उत्पत्ति अंगीकार होवै तौ जैसैं स्वप्नदृष्टांतसैं जाग्रत्के पदार्थ मिथ्या सिद्धांतमैं कहेहैं, तैसैं जाग्रत्के पदार्थनकी न्यांई उत्पत्तिवाले होनैतैं स्वप्नके पदार्थही सत्य हुयेचाहिये औ स्वप्नके मांहि पदार्थनकी उत्पत्ति नहीं मानैं तब यह दोष नहीं। काहेतैं? जाग्रत्के पदार्थ तौ उत्पन्न हुये प्रतीत होवैहैं औ स्वप्नमैं पदार्थ विनाहुये प्रतीत होवैहैं। यातैं स्वप्नमैं विनाहुये पदार्थनका ज्ञान भ्रमरूप होवैहै। तिनकी उत्पत्ति माननी योग्य नहीं ॥ ता—

॥ ३११ ॥ शंकाका समाधान ॥

॥ दोहा ॥

साधन सामग्री विना,
उपजै झूठ सु होय ॥
बिन सामग्री ऊपजै,
यूं तिहि मिथ्या जोय ॥ ७ ॥

टीकाः—१ जिस वस्तुकी उत्पत्तिमैं जितना देशकालादिसामग्री साधन कहिये कारण है, उतनी सामग्रीविना उपजै सो मिथ्या कहियेहै औ स्वप्नके हस्तीआदिकनकी उत्पत्तिके योग्य देशकाल हैं नहीं। बहुतकालमैं औ बहुतदेशमैं उपजनै योग्य हस्तीआदिक क्षणमात्र कालमैं सूक्ष्मकंठदेशमैं उपजैहैं। यातैं मिथ्या हैं।

२ यद्यपि स्वप्नअवस्थामैं कालदेश बी अधिक प्रतीत होवैहैं तथापि अन्यपदार्थनकी न्यांई स्वप्नमैं अधिककाल औ अधिकदेश बी अनिर्वचनीय प्रातिभासिक उत्पन्न होवैहैं। काहेतैं? विषयविना प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं औ स्वप्नमैं अधिकदेशकालका ज्ञान होवैहै। व्यावहारिक देशकाल न्यून हैं यातैं प्रातिभासिक उत्पन्न होवैहैं। परंतु स्वप्नअवस्थामैं उपजे जो प्रातिभासिक देशकाल हैं सो स्वप्नअवस्थाके हस्तीआदिकनके कारण नहीं। काहेतैं? कारण होवै सो पहली उपजैहै औ कार्य पीछे उपजैहै॥ स्वप्नके देशकाल औ हस्तीआदिक एकही समयमैं होवैहैं। यातैं तिनका कार्यकारणभाव बनै नहीं॥ औ व्यावहारिक देशकाल न्यून हैं। हस्तीआदिकनके योग्य नहीं। यातैं देशकालरूप सामग्रीविना उपजैहैं। यातैं स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं।

३ और बी मातासैं आदि लेके हस्तीआदिकनकी सामग्री स्वप्नमैं नहीं है। यद्यपि स्वप्नमैं प्राणी पदार्थनके मातापिता बी प्रतीत होवैहैं तथापि स्वप्नके मातापिता पुत्रकी उत्पत्तिके कारण नहीं। काहेतैं? मातापिता औ पुत्र एकक्षणमैं साथ उपजैहैं। यातैं तिनका कार्यकारणभाव नहीं॥ जा निद्रासहित अविद्यासैं स्वप्नके पदार्थ उपजैहैं सोई अविद्या तिन पदार्थनविषै मातापना पितापना औ पुत्रपना उपजावैहै॥ इसरीतिसैं स्वप्नके पदार्थनकी उत्पत्तिमैं औरकोई सामग्री नहीं। किंतु अविद्याही निद्रारूप दोषसहित कारण है। जो दोषसहित अविद्यासैं जन्य होवै सो शुक्तिरजतकी न्यांई मिथ्या होवैहै। यातैं स्वप्नके पदार्थ सत्य नहीं। मिथ्या हैं॥

तिनका उपादानकारण अंतःकरण है। अथवा साक्षात् अविद्याही तिनका उपादानकारण है॥

१ पहले पक्षमैं **साक्षीचेतन** स्वप्नका अधिष्ठान है। औ—

२ दूसरे पक्षमैं **ब्रह्मचेतन** स्वप्नका[३४९] अधिष्ठान है॥

॥ ३४९ ॥ इहां यह कछु विशेष हैः—

१ स्थूलसूक्ष्मदेहद्वयअवच्छिन्न कूटस्थचेतनरूप पारमार्थिकजीव है। औ—

२ मायासैं आवृत कूटस्थविषै कल्पित अंतःकरणमैं चिदाभासरूप देहद्वयमैं अभिमानका कर्त्ता व्यावहारिकजीव है। औ—

इसरीतिसैं अंतःकरणका अथवा अविद्याका परिणाम औ चेतनका निवर्त्त स्वप्न है ॥ याके विषै—

॥ ३१२ ॥ त्रिविधसत्तापक्षमैं विलक्षण जाग्रत्स्वप्नकी दोसत्ताके मानैतैं अविलक्षणता ॥ ३१२—३१८ ॥

ऐसी शंका होवैहै:-दूसरे पक्षमैं ब्रह्मचेतन स्वप्नका अधिष्ठान कह्या औ अविद्या उपादानकारण कही । तहां अधिष्ठानज्ञानसैं कल्पितकी निवृत्ति होवैहै औ स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म है । यातैं ब्रह्मज्ञानविना अज्ञानीकूं जागरणमैं स्वप्नकी निवृत्ति नहीं हुई चाहिये ।

॥ ३१३ ॥ अन्यशंकाः-जैसें स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म औ उपादानकारण अविद्या है । तैसैं वेदांतसिद्धांतमैं जाग्रत्के व्यावहारिक पदार्थनका बी अधिष्ठान ब्रह्म है औ उपादानकारण अविद्या है । यातैं—

१ जाग्रत्के पदार्थनकूं व्यावहारिक कहैहैं । औ—

३ निद्रारूप मायासैं आवृत व्यावहारिक जीवरूप अधिष्ठानमैं कल्पित प्रातिभासिकजीव है ॥

इस भेदतैं जीव त्रिविध है । तिसके वादी जे विद्यारण्यस्वामीआदिक हैं तिनूंनै स्वप्नका अधिष्ठान व्यावहारिक जीव औ जगत् कह्याहै । तिनमैं—

१ स्वप्नके जीव (द्रष्टा)का अधिष्ठान जाग्रत्का जीव (द्रष्टा) है । औ—

२ स्वप्नके जगत् (दृश्य)का अधिष्ठान जाग्रत्का जगत् (दृश्य) है । अरु—

३ स्वप्नअध्यासका उपादान व्यावहारिक जीव जगत्का आवरक निद्रारूप अवस्थाज्ञान (तूलाज्ञान) है ।

व्यावहारिक द्रष्टा औ दृश्य जड हैं ताकूं सत्तास्फूर्ति देनैरूप अधिष्ठानता संभवै नहीं । यातैं १ अहंकारावच्छिन्नचेतन २ वा अहंकारअनवच्छिन्न चेतन स्वप्नका अधिष्ठान है । यह दो मत समीचीन है । तिनमैं—

१ प्रथममत मानैं तौ अहंकारअवच्छिन्नका आच्छादक तूलाज्ञानही स्वप्नका उपादान संभवैहै । जाग्रत्के बोधसैं ब्रह्मज्ञानविना ताकी निवृत्ति बी संभवैहै । औ—

२ अविद्यामैं प्रतिबिंबरूप जीवचेतन वा बिंबरूप ईश्वरचेतन विवरणकारकी रीतिसैं व्यापक होनैतैं अहंकारअनवच्छिन्नचेतन है । ताकूं स्वप्नका अधिष्ठान मानैं तौ ताका आच्छादक मूलाज्ञानही स्वप्नका उपादान मानना होवैहै । जाग्रत्बोधसैं ता स्वप्नकी बाधरूप निवृत्ति होवै नहीं । किंतु उपादानमैं विलयरूप निवृत्ति होवैहै । परंतु अहंकारअनवच्छिन्न चेतनकूं स्वप्नका अधिष्ठान मानैं बी शरीरके अंतरदेशस्थ चेतनही अधिष्ठान संभवैहै । बाह्यदेशस्थ चेतन नहीं ॥ अविद्यामैं प्रतिबिंब जीवचेतन वा अविद्यामैं बिंब ईश्वरचेतन दोनूं अहंकारअनवच्छिन्न हैं औ व्यापक होनैतैं शरीरके अंतर बी हैं ॥ अंतरदेशस्थ चेतनमैंही जो स्वप्नकी अधिष्ठानता है । ताका अंतःकरणकूं अवच्छेदक मानैं तौ अहंकारअवच्छिन्नकूं अधिष्ठानता सिद्ध होवैहै ॥ तिसी चेतनमैं स्वप्नकी अधिष्ठानताका अंतःकरणकूं अवच्छेदक (व्यावर्तक) नहीं मानैं तौ अहंकारअनवच्छिन्नकूं अधिष्ठानता सिद्ध होवैहै । अहंकारअनवच्छिन्न, अविद्याप्रतिबिंब औ बिंब दोनूं हैं औ मतभेदसैं दोनूंकूं स्वप्नकी अधिष्ठानता है । तथापि अविद्यामैं प्रतिबिंबरूप जीवचेतनकूं अधिष्ठानता कहनांही समीचीन है ॥

किंवा अविद्यामैं प्रतिबिंबकूं कल्पित होनेतैं अधिष्ठानताकी अयोग्यता है । यातैं अंतःकरणउपहित वा अविद्याउपहित साक्षीचेतनही स्वप्नका अधिष्ठान मानना उचित है । ये सर्व त्रिसत्तावादिनकी रीतियां हैं ॥ औ—

दृष्टिसृष्टिवादकी रीतिसैं सर्व अनात्मपदार्थनकी एक (प्रातिभासिक) सत्ताके होनैतैं जाग्रत्स्वप्न दोनूंका ब्रह्मचेतनही अधिष्ठान मान्याहै ॥

स्वप्नकूं प्रातिभासिक कहैहैं ।

ऐसा भेद नहीं हुवाचाहिये। काहेतैं ? दोनूंका अधिष्ठान ब्रह्म है औ उपादानकारण अविद्या है । यातैं—

१ जाग्रत् स्वप्न दोनूं व्यावहारिक हुयेचाहिये ।

२ अथवा दोनूं प्रातिभासिक हुयेचाहिये ।

॥ ३१४ ॥ **सो दोनूं शंका बनै नहीं ।** काहेतैं ?

प्रथमशंकाका समाधान यह है:— निवृत्ति दोप्रकारकी होवैहै । यह पूर्व ख्यातिनिरूपणमैं कहीहै ॥

१ कारणसहित कार्यका विनाशरूप अत्यंतनिवृत्ति तौ स्वप्नकी जाग्रत्मैं ब्रह्मज्ञानविना बनै नहीं ।

२ परंतु दंडके प्रहारतैं जैसैं घटका मृत्तिकामैं लय होवैहै । तैसैं स्वप्नकी हेतु जो निद्रादोष ताके नाशतैं वा स्वप्नकी विरोधी जाग्रत्की उत्पत्तितैं अविद्यामैं लयरूपनिवृत्ति स्वप्नकी ब्रह्मज्ञानविना संभवैहै ।

॥३१५॥ **और जो शंका करी:—"जाग्रत्स्वप्न दोनूं समान हुयेचाहिये" सो बनै नहीं ।** काहेतैं ?

१ जाग्रत्के देहादिक पदार्थनकी उत्पत्तिमैं तौ अन्यदोषरहित केवल अनादिअविद्याही उपादानकारण है । औ—

२ स्वप्नके पदार्थनमैं तौ सादिनिद्रादोष वी अविद्याका सहायक है ।

१ यातैं अन्यदोषरहित केवल अविद्याजन्य व्यावहारिक कहियेहै । औ—

२ सादिदोषसहित[३५०] अविद्याजन्य प्रातिभासिक कहियेहै ।

१ स्वप्नके पदार्थ निद्रादोषसहित अविद्याजन्य होनैतैं प्रातिभासिक हैं । औ—

२ जाग्रत्के पदार्थ अन्यदोषरहित अविद्याजन्य होनैतैं व्यावहारिक कहियेहै ।

इसरीतिसैं स्वप्नके पदार्थनमैं जाग्रत्पदार्थनतैं विलक्षणता है । परंतु यह संपूर्ण तीनप्रकारकी सत्ता मानिके स्थूलदृष्टिसैं कहीहै ।

विचारदृष्टिसैं तौ—

१ तीनि प्रकारकी सत्ता बनै नहीं । औ—

२ जाग्रत्स्वप्नकी परस्परविलक्षणता वी बनै नहीं ।

॥ ३१६ ॥ यद्यपि वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमैं पूर्वप्रकारतैं व्यावहारिक औ प्रातिभासिकपदार्थनका भेद कह्याहै। यातैं तीनि सत्ता मानीहैं ।

तैसैं विद्यारण्यस्वामीनै वी तीनि सत्ता मानीहै । काहेतैं ? यह प्रसंग तिन्होंनै लिखाहै:—दोप्रकारके देहादिक पदार्थ हैं:—

१(१) एक तौ ईश्वररचित हैं । सो बाह्य हैं । औ—

(२) दूसरे जीवके संकल्परचित हैं । सो मनोमय कहियेहैं औ अंतर हैं ॥

तिन दोनूंमैं—

२(१) जीवसंकल्पतैं रचित अंतरमनोमय साक्षीभास्य हैं । औ—

(२) ईश्वररचित बाह्य हैं, सो प्रमाताप्रमाणके विषय हैं ॥ औ—

३(१) अंतरमनोमय देहादिकहीजीवकूं सुखदुःखके हेतु हैं । औ—

(२) बाह्य जो ईश्वररचित हैं, । सो सुखदुःखके हेतु नहीं ।

४(१) यातैं अंतरमनोमयपदार्थनकी निवृत्ति मुमुक्षुकूं अपेक्षित है ॥ औ—

॥ ३५० ॥ तूलाविद्याजन्य ॥

(२) बाह्यप्रपंच सुखदुःखका हेतु नहीं। यातैं ताकी निवृत्ति अपेक्षित नहीं ॥

जैसैं दोपुरुषनके दोपुत्र विदेशमैं गये होवैं तिनमैं एकका पुत्र मरि जावै। एकका जीवता होवै। सो जीवतापुत्र बडी विभूतिकूं प्राप्त होयके किसी पुरुषद्वारा अपनै पिताकूं अपनी विभूति-प्राप्तिका औ द्वितीयके मरणका समाचार भेजे। तहां समाचार सुनावनैवाला दुष्ट होवै। यातैं—

१ जीवते पुत्रके पिताकूं कहैः—तेरा पुत्र मरिगया। औ—

२ मरे पुत्रके पिताकूं कहैः—तेरा पुत्र शरीरतैं नीरोग है। बडी विभूतिकूं प्राप्त हुवाहै। थोडेकालमैं हस्तीआरूढ बडेसमाजतैं आवैगा ॥

ता वंचकवचनकूं सुनिकै—

१ जीवते पुत्रका पिता रोवैहै। बडे दुःखको अनुभव करैहै। औ—

२ मरे पुत्रका पिता बडेहर्षकूं प्राप्त होवैहै। इसरीतिसैं देशांतरविषै—

१(१) ईश्वररचितपुत्र जीवैहै तौ बी मनोमयपुत्र मरिगया। यातैं दुःख होवैहै ॥

(२) ईश्वररचित जीवतेका सुख होवै नहीं।

२(१) तैसैं दूसरेका ईश्वररचितपुत्र मरि गयाहै। ताका दुःख होवै नहीं।

(२) मनोमय जीवैहै। ताका सुख होवैहै ॥

यातैं—

१ जीवसृष्टिही सुखदुःखकी हेतु है।

२ ईश्वरसृष्टि सुखदुःखकी हेतु नहीं ॥

इसरीतिसैं विद्यारण्यस्वामीनैं जीवसृष्टि औ ईश्वरसृष्टि दोप्रकारकी कहीहै ॥ तहां—

जीवसृष्टि प्रातिभासिक है। औ—

२ ईश्वरसृष्टि व्यावहारिक है ॥

ऐसैं औरग्रंथकारोंनै बी सत्ता तीनिप्रकारकी कहीहै ॥

१ चेतनकी परमार्थसत्ता है। औ—

चेतनसैं भिन्न जडपदार्थनकी दोप्रकारकी सत्ता है ॥ एक व्यावहारिकसत्ता औ दूसरी प्रातिभासिकसत्ता है ॥

२ सृष्टिके आदिकालमैं ईश्वरसंकल्पतैं उपजे जो केवलअविद्याके कार्य पंचभूत औ तिनके कार्यकी व्यावहारिकसत्ता है ॥

३ दोषसहित अविद्याके कार्य स्वप्नशुक्तिरजतादिकनकी प्रातिभासिकसत्ता है ॥

इसरीतिसैं

१ जाग्रत्पदार्थनकी व्यावहारिकसत्ता। औ—

२ स्वप्नकी प्रातिभासिकसत्ता कहीहै ॥

॥ ३१७ ॥ तथापि अनात्मपदार्थनकी सर्वकी प्रातिभासिकही सत्ता है। यातैं दोप्रकारकीही सत्ता है ॥

१ चेतनकी परमार्थसत्ता है। औ—

२ चेतनसैं भिन्न सकलअनात्माकी प्रातिभासिकही सत्ता है ॥

जाग्रत्स्वप्नके पदार्थनकी किंचित्मात्र बी विलक्षणता सिद्ध होवै नहीं। या उत्तमसिद्धांतकूं प्रतिपादन करैहैंः—

॥ चौपाई ॥

बिन सामग्री उपजत यातैं,
स्वप्नसृष्टि सब मिथ्या तातैं ॥
देसकालको लेस न जामैं,
सर्व जगत उपजत है तामैं ॥ ८ ॥

॥ ३५१ ॥ इहां ३१७ सैं लेके ३२९ पर्यंत दृष्टिसृष्टिवादकाही प्रतिपादन कियाहै ॥

स्वप्नसमान झूठजग जानहु, लेस सत्य ताकूं मति मानहु ॥ जाग्रतमांहि स्वप्न नहिं जैसैं, स्वप्नमांहि जाग्रत नहिं तैसैं ॥ ९ ॥

टीकाः— देशकालसामग्रीविना स्वप्नके हस्तीपर्वतादिक उपजैहैं । यातैं मिथ्या कहियेहैं ॥ तैसैं आकाशादिप्रपंचकी सृष्टि ब्रह्मतैं होवैहै, ता ब्रह्मविषै देशकालका लेश बी नहीं है ॥ स्वप्नविषै हस्तीपर्वतादिकनके योग्य तौ देशकाल नहीं है । तथापि अल्पदेशकाल हैं । तैसैं आकाशादिकनकी सृष्टिमैं अल्पदेशकाल बी नहीं हैं । काहेतैं ? देशकालरहित परमात्मासैं आकाशादिकनकी सृष्टि कहीहै ॥ इसकारणतैं—

१ तैत्तिरीयश्रुतिमैं आकाशादिकनकी क्रमतैं सृष्टि कहीहै । देशकालकी सृष्टि नहीं कही ॥ औ—

२ सूत्रकार भाष्यकारनैं बी देशकालकी सृष्टि नहीं कही ॥

सृष्टि नाम उत्पत्तिका है ॥

तहां तैत्तिरीयश्रुतिका औ सूत्रकारभाष्यकारका यही अभिप्राय हैः—आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्ति देशकालसामग्रीविना होवैहै । यातैं आकाशादिक स्वप्नकी न्यांई मिथ्या हैं ॥

॥ ३५२ ॥ इहां यह रहस्य हैः—जैसैं कोई दो बलिष्ठपुरुष शून्यवनमैं अपनीअपनी बलिष्ठताका विवादकरिके स्वस्वबलकी परीक्षाअर्थ "जो अन्यकूं मारे सो बलिष्ठ" ऐसी प्रतिज्ञाकरिके उभयफलयुक्तशक्ति (शस्त्रविशेष)कूं बीचमैं धरिके तिसके एक-एक फलकूं हृदयदेशमैं लगायके परस्परके सन्मुख बलके करनैकरिके दोनूं मृत्युकूं पावैं । तैसैं ब्रह्मरूप शून्यवनमैं जाग्रत्प्रपंच औ स्वप्नप्रपंचरूप दो बलीपुरुष हैं । तिनका परस्परविषै परस्परके दृष्टांतसैं परस्परका प्रहार होवैहै । सो दिखावैहैंः—

१ देशकालादिसामग्रीसैं विना उपजै सो झूठ होवैहै । जैसैं देशरूप सामग्रीके पूर्ण होते बी कालरूपसामग्रीकी न्यूनतासैं उपजे पांखका परेवा, ठीकरीकी अशरफी, चमडेका सर्प, इत्यादिक ऐंद्रजालिक-(बाजीगररचित) पदार्थ मिथ्या कहियेहैं ॥

तैसैं हितानामक कंठकी नाडीरूप अल्पदेश औ अल्पकालविषै उपज्या स्वप्नप्रपंच मिथ्या है । ताके दृष्टांतसैं (तिसके सदृश होनैतैं) जाग्रत्प्रपंच मिथ्या है ॥ ऐसैं स्वप्नके दृष्टांतसैं जाग्रत्का प्रहार है ॥

२ तैसैंही देशकालरूप सामग्रीके लेशतैं रहित ब्रह्मविषै जाग्रत्प्रपंच प्रतीत होवैहै । यातैं सो असत् है । काहेतैं ? प्रतीयमान देशकाल तौ जाग्रत्प्रपंचके अंतर्गत हैं । तिनतैं भिन्न देशकाल प्रपंचके कारण कहै । ताकूं पूछ्या चाहियेः—(१) वे देशकाल ब्रह्मसैं अभिन्न हैं । (२) वा भिन्न हैं ?

(१) अभिन्न कहै तौ ब्रह्मसैं भिन्न देशकालके अभावतैं देशकालरहित ब्रह्मविषै प्रपंचकी प्रतीति सिद्ध भई ॥ औ—

(२) जो ब्रह्मसैं भिन्न देशकाल कहै तौ (१) वे सत्य हैं । (२) किंवा मिथ्या हैं ?

[१] सत्य कहै तौ अद्वैतश्रुतिसैं विरोध होवैगा । औ

[२] मिथ्या कहै तौ तिनकूं बी प्रपंचकी न्यांई कार्य होनैतैं तिनके कारण बी कोई देशकाल कहे चाहिये ॥

(क) जो आपके कारण आपही हैं तौ **आत्माश्रय** होवैगा । औ—

(ख) जो प्रथमदेशकालके कारण द्वितीय औ द्वितीयके प्रथम कहै तौ परस्परकी उत्पत्तिविषै परस्परकी अपेक्षाके होनैतैं **अन्योन्याश्रय** होवैगा । औ—

(ग) जो द्वितीयके तृतीय, फेर तृतीयके प्रथमदेशकाल कारण कहै तौ चक्रकी न्यांई भ्रमणरूप **चक्रिका** होवैगी ।

(घ) जो तृतीयदेशकालके कारण चतुर्थ औ चतुर्थके कारण पंचम कहै तौ अनंतदेश-

॥ ३१८ ॥ यद्यपि मधुसूदनस्वामीनैं देशकाल साक्षात् अविद्याके कार्य कहेहैं। यातैं मायाविशिष्ट परमात्मासैं पहली मायाके परिणाम देशकाल होवैहैं। तिसतैं अनंतर आकाशादिकनकी उत्पत्ति होवैहैं । यातैं योग्यदेशकालतैं आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्ति संभवैहै ॥

तथापि मधुसूदनस्वामीका यह अभिप्राय नहीं:—जो देशकाल प्रथम होवैहैं औ आकाशादिक उत्तर होवैहैं । काहेतैं ?

१ अतीतकालमैं होवै सो प्रथम औ पूर्व कहियेहै ॥

२ भविष्यकालमैं होवै सो उत्तर कहियेहै । जाकूं पाछे कहैहैं ॥

आकाशादिकनकी उत्पत्तितैं प्रथम देशकाल उपजैहैं। या कहनैतैं आकाशादिकनकी उत्पत्तिकालतैं पूर्वकालउपहितपरमात्मा देशकालका अधिष्ठान है। यह सिद्ध होवैगा । यातैं देशकालकी उत्पत्तिमैं पूर्वकालकी अपेक्षा होवैगी औ कालकी उत्पत्तिविना पूर्वकाल असिद्ध है । यातैं आकाशादिकनतैं पूर्वकालमैं देशकालादिक होवैहैं । यह कहना बनै नहीं । किंतु

मधुसूदनस्वामीका यह अभिप्राय है:—

१ जैसैं भूतभौतिकप्रपंच प्रतीत होवैहै तैसैं देशकाल बी प्रतीत होवैहै । औ—

(१) आत्मासैं भिन्न कोई नित्य है नहीं । यातैं देशकाल नित्य नहीं ॥ औ—

(२) विनाहुयेकी प्रतीति होवै नहीं । यातैं आकाशादिकनकी न्यांई देशकालकी बी उत्पत्ति होवैहै ॥

सो देशकाल मायाके परिणाम हैं औ चेतनके विवर्त हैं। जो विवर्त होवै सो किसीका कारण होवै नहीं। यातैं आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्तिमैं देशकालकूं कारणता बनै नहीं ॥

२ किंवा कारण प्रथम होवैहै, कार्य उत्तर होवैहै ॥ आकाशादिक प्रपंचतैं देशकाल प्रथम होवैहै । यह कहना बनै नहीं । यह वार्ता

कालकी धारारूप अनवस्था होवैगी ।

यातैं ब्रह्मविषै कोईबी देशकाल सिद्ध होवै नहीं ॥

इसरीतिसैं देशकालरहित ब्रह्मतैं जाग्रत्जगत्की उत्पत्ति प्रतीत होवैहै । यातैं जाग्रत्प्रपंच असत् (तुच्छ) है ॥

किंवा जाग्रत्कालमैं स्वप्नपदार्थनकी स्मृति होवैहै औ स्वप्नमैं बहुत करिके जाग्रत्के पदार्थनकी स्मृति होवै नहीं । यातैं बी जाग्रत्प्रपंच असत् है । ताके दृष्टांतसैं (तिसके सदृश होनैकरि) स्वप्नप्रपंच बी असत् (वंध्यापुत्रके समान) है औ जब जाग्रत्का अभाव है । तब ताके अंतर्गत समाधिअवस्थाका बी चेतनमैं अभाव है औ जब जाग्रत्स्वप्नका अभाव है तब दोनूं अवस्थाविषै वर्तमान बुद्धिके अभावतैं ताका विलयरूप सुषुप्ति औ सुषुप्तिके अंतर्गत मरण मूर्छाका बी अभाव है ।

इसरीतिसैं ब्रह्मविषै सारे प्रपंचकी असिद्धितैं अजातवाद सिद्ध होवैहै ।

॥ ३५३ ॥ देशकालकी उत्पत्तिमैं पूर्वकाल (भूतकाल)कूं कारण मानै तौ ता (पूर्वकाल) की उत्पत्तिमैं किसी कालकूं कारण मान्या चाहिये ।

१ जो सो आपकी उत्पत्तिमैं आपही कारण है तौ आत्माश्रय होवैगा । औ—

२ ताका अन्य पूर्वकाल औ अन्यका आप कारण कहै तौ *अन्योन्याश्रय* होवैगा ।

३ जो द्वितीय पूर्वकालका कारण तृतीय पूर्वकाल औ तृतीयपूर्वकालका कारण प्रथमपूर्वकाल कहै तौ चक्रिका होवैगी ॥

४ जो तृतीयपूर्वकालका कारण चतुर्थपूर्वकाल औ चतुर्थका कारण पंचमपूर्वकाल कहै । तौ अनवस्था होवैगी ॥

इसरीतिसैं दोषसमूहके सद्भावतैं देशकालकी उत्पत्तिमैं पूर्वकालकूं कारण मानना अयुक्त है ॥

नेडैही कही आयेहैं । यातैं बी देशकालकूं आकाशादिक प्रपंचकी कारणता बनै नहीं । किंतु स्वप्नके पितापुत्रकी न्यांई देशकालसहित आकाशादिक प्रपंच मायाविशिष्ट परमात्मातैं उत्पन्न होवैहै ॥ औ—

कोई पदार्थ किसी देशमैं किसीकालमैं उपजैहै, अन्यदेशमैं अन्यकालमैं नहीं उपजैहै । इसरीतिसैं सारे पदार्थ प्रलयकालमैं नहीं उपजैहैं । सृष्टिकालमैं उपजैहैं । यातैं देशकालकूं कारणता प्रतीत बी होवैहै तौ बी जा मायातैं देशकालसहित प्रपंचकी उत्पत्ति होवैहै । ता मायातैंही देशकालमैं कारणता औ अन्यप्रपंचमैं कार्यता प्रतीत होवैहै ।

आकाशादिप्रपंचके देशकाल कारण नहीं । याकेविषै

॥ ३१९ ॥ ब्रह्मकी कारणता देशकालमैं प्रतीत होवैहै । इत्यादिस्थलमैं अन्यथाख्यातिका अंगीकार ॥ ३१९—३२१ ॥

ऐसी शंका होवैहैः—[पूर्वपक्षी] विनाहुये पदार्थनकी तौ प्रतीति होवै नहीं औ सिद्धांतमैं अंगीकार नहीं । जो विनाहुयेकी प्रतीति मानैं । तौ—

- १ असत्ख्यातिका अंगीकार होवैगा ॥ औ
- २ विनाहुये वंध्यापुत्र शशशृंगादिकनकी प्रतीति हुईचाहिये ।

यातैं विनाहुयेकी प्रतीति होवै नहीं ॥

यातैं देशकालमैं कारणता नहीं होवै तौ देशकालमैं सर्वपदार्थनकी कारणता मायाके बलतैं बी प्रतीत नहीं हुईचाहिये औ कारणता देशकालमैं प्रतीत होवैहै । यातैं देशकाल सर्वप्रपंचके कारण हैं । औ—

जो सिद्धांती ऐसै कहैः—सर्वप्रपंचका कारण ब्रह्म है । ब्रह्मकी कारणता देशकालमैं प्रतीत होवैहै औ देशकालमैं कारणता नहीं ॥ सो बी बनै नहीं । काहेतैं ?—

१ जैसैं देशकालका अधिष्ठान ब्रह्म है तैसैं सर्वप्रपंचका अधिष्ठान ब्रह्म है । देशकालमैंही ब्रह्मकी कारणता प्रतीति होवै । अन्यमैं नहीं । या कहनैमैं कोई हेतु नहीं । यातैं अधिष्ठानब्रह्मकी कारणता देशकालमैं प्रतीत होवै तौ ब्रह्म सर्वप्रपंचका अधिष्ठान है । यातैं सर्वप्रपंचमैं कारणता प्रतीत हुईचाहिये । किसीमैं कारणता, औ किसीमैं कार्यता ऐसा भेद नहीं चाहिये ।

२ किंवा देशकालमैं कारणता नहीं है औ ब्रह्ममैं कारणता है । सो ब्रह्मकी कारणता देशकालमैं प्रतीत होवैहै । या कहनैतैं अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवैगा । काहेतैं ? अन्यवस्तुकी अन्यरूपतैं प्रतीतिकूं अन्यथाख्याति कहैहैं । देशकाल कारण नहीं । यातैं कारणतैं अन्य अकारण है ॥ तिनकी अन्यरूपतैं कहिये कारणरूपतैं प्रतीति माननैमैं अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवैगा औ सिद्धांतमैं अन्यथाख्याति अंगीकार नहीं ।

जो या स्थानमैं अन्यथाख्याति मानैं तौ शुक्तिमैं अनिर्वचनीय रूपेकी उत्पत्ति सिद्धांतमैं मानीहै सो निष्फल होवैगी । काहेतैं ? अन्यथाख्यातिमैं दो मत हैंः—

(१) एक तौ अन्यदेशमैं स्थित पदार्थकी अन्यदेशमैं प्रतीति अन्यथाख्याति है । जैसैं कांताकरमैं स्थित रजतकी सन्मुख शुक्तिदेशमैं प्रतीति अन्यथाख्याति है ।

(२) अथवा अन्यपदार्थकी अन्यरूपतैं प्रतीति अन्यथाख्याति है । जैसैं शुक्तिकीही रजतरूपतैं प्रतीति अन्यथाख्याति कहियेहै ॥

ऐसैं सारे भ्रमस्थलमैं अन्यथाख्यातिसैं निर्वाह संभवैहै। अनिर्वचनीय रजतादिकनकी उत्पत्तिकथन असंगत होवैगा ॥ औ—

जो सिद्धांती ऐसैं कहैः—विषयके समानाकार ज्ञान होवैहै। अन्यवस्तुका अन्यरूपतैं ज्ञान संभवै नहीं। यातैं रजताकार ज्ञानका विषय बी अनिर्वचनीय रजत उत्पन्न होवैहै। या अद्वैतसिद्धांतमैं कारणतैं अन्य जो देशकाल, तिनविषै ब्रह्मकी कारणताका ज्ञान संभवै नहीं। यातैं देशकालमैं कारणता जो प्रतीत होवैहै ताका विनाहुयेका अथवा ब्रह्ममैं स्थितका भान संभवै नहीं। किंतु देशकालमैंही कारणता है। ताका भान होवैहै ॥

इसरीतिसैं "आकाशादिक प्रपंचके कारण देशकाल नहीं"। यह कथन असंगत है ॥

॥ ३२० ॥ [सिद्धांतीः—] सो शंका बनै नहीं। काहेतैं? ब्रह्मकी कारणता देशकालमैं प्रतीत होवैहै।

जैसैं जपापुष्पसंबंधी स्फटिकमैं पुष्पकी रक्तता प्रतीत होवैहै। अधिष्ठानकी सत्यता स्वप्नकालमैं मिथ्याहस्तीपर्वतादिकनमैं प्रतीत होवैहै। तहां स्फटिकमैं अनिर्वचनीय रक्तताकी उत्पत्तिका अंगीकार नहीं। किंतु पुष्पकी रक्तता स्फटिकमैं प्रतीत होवैहै, यातैं श्वेतस्फटिककी रक्तरूपतैं प्रतीति होनैतैं रक्तताके ज्ञानमैं अन्यथाख्यातिही मानीहै ॥

तैसैं स्वप्नमैं मिथ्यापदार्थनविषै सत्यता प्रतीत होवै। तहां अनिर्वचनीयसत्यता तिन पदार्थनविषै उत्पन्न होवैहै। यह कथन तौ "सत्य। मिथ्या है"। इस [व्याघातदोषवाले] वचनकी न्यांई संभवै नहीं औ विनाहुयेकी प्रतीति होवै नहीं। किंतु स्वप्नके अधिष्ठानचेतनकी सत्यका मिथ्यापदार्थनमैं प्रतीत होवैहै। यातैं मिथ्यापदार्थनकी सत्यरूपतैं प्रतीति होनैतैं सत्यताके ज्ञानमैं अन्यथाख्यातिही मानीहै। तैसैं अधिष्ठानब्रह्मकी कारणता देशकालमैं अन्यथाख्यातिसैं प्रतीत होवैहै। और—

॥ ३२१ ॥ जो ऐसैं कहैः—इतनै स्थानमैं अन्यथाख्याति मानै तौ सारे भ्रममैं अन्यथाख्यातिही मानी चाहिये ॥

सो शंका बनै नहीं। काहेतैं? शुक्तिरजतादिकनमैं अन्यथाख्याति माननैमैं यह दोष कह्याहैः—विषयतैं विलक्षण ज्ञान बनै नहीं॥ औ—

जहां स्फटिकमैं रक्तताका ज्ञान होवै तहां रक्तपुष्पका स्फटिकतैं संबंध है। यातैं स्फटिकसंबंधीपुष्पकी रक्तता स्फटिकमैं प्रतीत होवैहै। काहेतैं? अंतःकरणकी वृत्ति जब रक्तपुष्पाकार होवै, ताही वृत्तिका विषय रक्तपुष्पसंबंधी स्फटिक है। यातैं पुष्पकी रक्तता स्फटिकमैं प्रतीत होवैहै ॥ औ [तैसैं] शुक्तिका तौ रजतरूपतैं ज्ञान संभवै नहीं। काहेतैं? शुक्तिदेशमैं अनिर्वचनीय तथा व्यावहारिकरजत तौ अन्यमतमैं है नहीं। किंतु शुक्ति है। ता शुक्तिके संबंधसैं शुक्तिके समानाकारही अंतःकरणकी वृत्ति होवैगी। रजताकार अंतःकरणकी वृत्ति होवै नहीं। यातैं अविद्याका परिणाम। चेतनका विवर्त अनिर्वचनीयरजत औ ताका ज्ञान। दोनूं उत्पन्न होवैहै। औ—

स्फटिकमैं रक्तता प्रतीत होवै। तहां वृत्तिका संबंध स्फटिक औ रक्तपुष्प दोनूंसैं होवैहै। रक्तपुष्पके संबंधतैं रक्ताकारवृत्ति होवैहै। ता वृत्तिका स्फटिकतैं बी संबंध है औ स्फटिकमैं रक्तताकी छाया है। यातैं पुष्पका धर्म रक्तता स्फटिकमैं ताही वृत्तिका विषय है ॥

॥ ३५४ ॥ जावकके पुष्प। जाहीकूं किसीदेशमैं जावलीके किंवा जासूदके पुष्प बी कहतेहैं। यह पुष्प लालरंगवाला होवैहै।

इसरीतिसैं

१ जहां दोपदार्थनका संबंध है तहां एकके धर्मकी दूसरेमैं प्रतीति संभवै है । तहां अन्यथाख्यातिही संभवैहै ॥

२ जहां दोनूं पदार्थनका संबंध नहीं तहां अन्यथाख्याति नहीं । किंतु अनिर्वचनीयख्याति है ॥

जैसैं पुष्पसंबंधी स्फटिकमैं पुष्पकी रक्तता प्रतीत होवैहै तैसैं स्वप्नके हस्तीपर्वतादिकनका वी अधिष्ठानचेतनतैं संबंध है । यातैं चेतनका धर्म सत्यता वी चेतनसंबंधी हस्तीपर्वतादिकनमैं प्रतीत होवैहै । सो अन्यथाख्याति है ॥ तैसैं अधिष्ठानचेतनका धर्म कारणता अधिष्ठानचेतनसंबंधी देशकालमैं प्रतीत होवैहै ॥

॥ ३२२ ॥ जाग्रत्प्रपंच सामग्रीविना होवैहै । यातैं स्वप्नसमान मिथ्या है ॥

और जो पूर्व शंका करीः—"अधिष्ठानचेतनका संबंध सर्वप्रपंचतैं है । जो संबंधीका धर्म अन्यथाख्यातिसैं अन्यमैं प्रतीत होवै तौ चेतनकी कारणता सर्वप्रपंचमैं प्रतीत हुईचाहिये"।

सो शंका बनै नहीं । काहेतैं ?

१ जैसैं स्वप्नमैं दो शरीर उत्पन्न होवैहैं ।

(१) एकशरीर पितारूप प्रतीत होवैहै । औ

(२) दूसरा शरीर पुत्ररूप प्रतीत होवैहै ॥

तहां दोनूं शरीरनका स्वप्नके अधिष्ठानचेतनतैं संबंध वी है । तथापि पिताशरीरमैं अधिष्ठानचेतनकी कारणता प्रतीत होवैहै औ पुत्रशरीरमैं कारणता प्रतीत होवै नहीं । किंतु पिताजन्य पुत्र है । इसरीतिसैं पुत्रशरीरमैं कार्यता प्रतीत होवैहै ॥ इसरीतिसैं यद्यपि अधिष्ठानचेतनसैं संबंध तौ सर्वका है । तथापि देशकालमैं चेतनधर्म कारणताकी प्रतीति होवैहै । औरनमैं कार्यताकी प्रतीति होवैहै ॥

२ अथवा अधिष्ठानचेतन असंग है सो किसीका परमार्थतैं कारण नहीं । मायामैं आभास यद्यपि कारण है तथापि आभासका स्वरूप मिथ्या होवैहै ॥ जो आपही मिथ्या होवै सो दूसरेका कारण बनै नहीं । यातैं परमात्माविषै प्रपंचकी कारणता होवै तौ ताकी देशकालमैं भ्रमतैं प्रतीति संभवै । सो परमात्माविषै कारणता है नहीं । परमात्मा कारणतादिक धर्मरहित असंग है, ताकी कारणता देशकालमैं प्रतीत होवैहै, यह कहना संभवै नहीं । किंतु मायाकृत अनिर्वचनीयदेशकाल अनिर्वचनीय कारणतावाले होवैहैं ॥ औ—

परमार्थसैं देशकाल कारण नहीं । जैसैं पुत्रहीन पुरुष स्वप्नमैं पुत्रपौत्र दोनूंवाकूं देखै । तहां पुत्रपौत्रशरीर अनिर्वचनीय होवैहैं औ पुत्रशरीरमैं पौत्रशरीरकी अनिर्वचनीयकारणता होवैहै ॥ तहां परमार्थसैं पुत्रशरीर औ पौत्रशरीरका परस्परकार्यकारणभाव नहीं होवैहै । तैसैं अनिर्वचनीयकारण देशकाल प्रतीत होवैहै । परमार्थसैं देशकाल औ आकाशादिक प्रपंचका कार्यकारणभाव है नहीं ॥

इसरीतिसैं देशकालसामग्रीविना जाग्रत्प्रपंचकी उत्पत्ति होवैहै । यातैं स्वप्नकी न्यांई जाग्रत् वी मिथ्या है ॥ और—

जैसैं स्वप्नके स्त्रीपुत्रादिक स्वप्नमैंही सुखदुखके हेतु हैं । जाग्रत्मैं तिनका अभाव है । तैसैं जाग्रत्के पदार्थनका स्वप्नमैं अभाव होवैहै । दोनूं सम हैं ॥ और—

॥ ३२३ ॥ जाग्रत्के पदार्थ ज्ञानके साथिही उत्पन्न होवैहैं । यातैं दूसरीजाग्रत्मैं रहै नहीं ॥ ३२३—३२४ ॥

जो ऐसैं कहैः—'जाग्रत्सैं स्वप्न होयके फिरी जाग्रत् होवै, तहां पहली जाग्रत्के जो

पदार्थ हैं सोई स्वप्नव्यवहित दूसरे जाग्रत्‌में रहैहैं औ प्रथमस्वप्नके पदार्थ दूसरे स्वप्नमैं नहीं रहैहैं। यातैं स्वप्नके पदार्थनतैं जाग्रत्‌के पदार्थ विलक्षण हैं।

सो शंका बी सिद्धांतके अज्ञानी मूढनकी दृष्टितैं होवैहै। काहेतैं? ऐसी मूर्खनकी दृष्टि है। संसारप्रवाह अनादि है, तामैं जीवनकूं जाग्रत् स्वप्नसुषुप्ति होवैहै ॥

१ जाग्रत्‌कालमैं स्वप्नसुषुप्ति नष्ट होवैहैं। औ—

२ स्वप्नकालमैं जाग्रत्सुषुप्ति नष्ट होवैहैं ॥

३ जैसैं सुषुप्तिकालमैं जाग्रत्स्वप्न नष्ट होवैहैं ॥

परंतु "स्वप्न सुषुप्ति होवै तब जाग्रत्‌कालके स्त्रीपुत्रपशुधनादिक दूरि होवैं नहीं किंतु बनै रहैं। तिनका ज्ञानही दूरि होवैहै ॥ फिरि जाग्रत् होवै तब प्रथमजाग्रत्‌के विद्यमानपदार्थनका ज्ञान होवैहै" यह अज्ञानी मूर्खनकी दृष्टि है ॥ औ—

॥ ३२४ ॥ सिद्धांत यह है:—

१ सारे पदार्थ चेतनका विवर्त्त हैं।

२ अविद्याका परिणाम हैं।

यातैं शुक्तिरजतकी न्याई जिसकालमैं जो पदार्थ प्रतीत होवै तिसकालमैं अधिष्ठानचेतनआश्रितअविद्याका द्विविधपरिणाम होवैहै ॥

१ अविद्याके तमोगुणअंशका घटादिविषयरूप परिणाम होवैहै। औ—

२ अविद्याके सत्वगुणका ज्ञानरूप परिणाम होवैहै।

यद्यपि चेतनकूं ज्ञान कहैहैं। यातैं सत्वगुणका परिणाम ज्ञान है। यह कहना बनै नहीं। तथापि सारे व्यापकचेतन ज्ञान नहीं। किंतु साभासवृत्तिमैं आरूढ चेतनकूं ज्ञान कहैहैं। यातैं चेतनमैं ज्ञानव्यवहारकी संपादक वृत्ति है। इसरीतिसैं चेतनमैं ज्ञानपनैकी संपादक वृत्ति है ॥

इसरीतिसैं चेतनमैं ज्ञानपनैकी उपाधि वृत्ति है, ताकेविषै बी ज्ञानशब्दका प्रयोग होवैहै ॥ जैसैं लोकमैं कहैहैं:—"घटका ज्ञान उत्पन्न हुवा, पटका ज्ञान नष्ट हुवा" तहां वृत्तिमैं आरूढ चेतनका तौ उत्पत्तिनाश संभवै नहीं। वृत्तिके उत्पत्तिनाश होवैहैं औ ज्ञानके उत्पत्तिनाश कहैहैं। यातैं वृत्तिमैं बी ज्ञानशब्दका प्रयोग होवैहै ॥

सो वृत्तिरूप ज्ञान सत्वगुणका परिणाम है। यह कहना संभवैहै ॥

१ ता वृत्तिरूप परिणाममैं चेतनका आभास होवैहै।

२ घटादिक विषयरूप परिणाममैं चेतनका आभास होवै नहीं ॥

काहेतैं? विषय औ वृत्ति यद्यपि दोनूं अविद्याके परिणाम हैं। तथापि—

१ घटादिक विषय तौ अविद्याके तमोगुणका परिणाम हैं, यातैं मलिन हैं, तिनमैं आभास होवै नहीं ॥ औ—

२ वृत्ति, सत्वगुणका परिणाम स्वच्छ है। तामैं आभास होवैहै ॥

इसरीतिसैं—

१ वृत्तिकूं चेतनके आभासग्रहणकी योग्यता होनैतैं वृत्तिअवच्छिन्नचेतनकूं ज्ञान कहैहैं औ साक्षी कहैहैं ॥

२ घटादिक विषयकूं आभासग्रहणकी योग्यता नहीं। इसकारणतैं विषयअवच्छिन्नचेतन ज्ञान नहीं औ साक्षी बी नहीं ॥

इसरीतिसैं जाग्रत्‌के पदार्थ औ तिनका ज्ञान दोनूं साथिही उत्पन्न होवैहैं औ साथिही नष्ट होवैहैं। यह वेदका गूढसिद्धांत है। यातैं

जाग्रत्के पदार्थ दूसरी जाग्रत्मैं रहैहैं । यह कहना संभवै नहीं ॥

॥३२५॥ जाग्रत्के पदार्थनका परस्पर-कार्यकारणभाव नहीं ॥ ३२५–३२७ ॥

यद्यपि स्वप्नतै जागे पुरुषकूं ऐसी प्रत्यभिज्ञा होवैहैः–"जो पूर्वपदार्थ थे सोई ये पदार्थ हैं" । यातैं जाग्रत्के पदार्थनका ज्ञानके समकाल उत्पत्तिनाश नहीं होवैहै । किंतु ज्ञानसैं प्रथम विद्यमान होवैहै औ ज्ञाननाशतैं अनंतर बी रहैहैं । तथापि जैसैं स्वप्नके पदार्थ तिस क्षणमैं उत्पन्न होवैहैं औ ऐसैं प्रतीत होवैहैः–"मेरे जन्मसैं बी प्रथम उपजे ये पर्वत-समुद्रादिक हैं" तहां तत्काल उपजे पदार्थनमैं बहुकालस्थिरताकी भ्रांति होवैहै । यातैं जा अविद्यानैं मिथ्यापर्वतसमुद्रादिक उपजायेहैं, तिसी अविद्यासैं बहुकालस्थिरता औ स्थिरताकी प्रतीति अनिर्वचनीय उपजैहै, तैसैं जाग्रत्के पदार्थनविषै बी अनेकदिन स्थिरता है नहीं किंतु अविद्याबलसैं मिथ्यास्थिरता[३५५] बी तिन पदार्थनके साथि उपजिके प्रतीत होवैहै ॥ और–

जो ऐसैं कहैः–

१ स्वप्नके पदार्थ साक्षात्अविद्याके परिणाम हैं । औ–

२ जाग्रत्के पदार्थ साक्षात् अविद्याके परिणाम नहीं ।

किंतु घटकी उत्पत्ति दंडचक्रकुलालसैं होवैहै । तैसैं सर्वपदार्थनकी उत्पत्ति अपनैअपनै कारणतैं होवैहै । साक्षात् अविद्यासैं नहीं । जो साक्षात्अविद्याके परिणाम होवैं तौ आकाशादिक क्रमतैं पंचभूतनकी उत्पत्ति औ पंचीकरण तिनसैं ब्रह्मांडकी उत्पत्ति श्रुतिमैं कहीहै सो असंगत होवैगी । यातैं ईश्वरसृष्टि जाग्रत्के पदार्थ अपनै अपनै उपादानके परिणाम हैं । अविद्याके साक्षात् परिणाम नहीं ॥

१ स्वप्नके तौ सारे पदार्थ अविद्याके परिणाम हैं । तिनका एकअविद्या उपादान होनैतैं तिन पदार्थनकी औ तिनके ज्ञानकी एकअविद्यासैं एककालमैं उत्पत्ति संभवैहै ।

२ जाग्रत्के पदार्थ भिन्नभिन्न कारणसैं उत्पन्न होवैहैं । कार्यतैं पहली कारण होवैहै औ कारणमैं कार्यका लय होवैहै । यातैं घटकी उत्पत्तिसैं प्रथम औ घटनाशतैं आगे मृत्पिंड रहैहै ॥ इसरीतिसैं कोई पदार्थ अल्पकाल स्थिर औ कोई अधिककाल स्थिर कार्यकारण हैं । तैसैं स्वप्नके नहीं ॥

॥ ३२६ ॥ **सो शंका बनै नहीं । काहेतैं ?** जाग्रत्के पदार्थनकी न्यांई स्वप्नके पदार्थनविषै बी कार्यकारणभाव प्रतीत होवैहै ॥ जैसैं किसीकूं ऐसा स्वप्न होवैः– मेरी गउके वत्स हुवाहै अथवा मेरी स्त्रीके पुत्र हुवाहै ॥ तहां गउ औ स्त्रीविषै कारणताकी प्रतीति औ बहुकालस्थायिताकी प्रतीति होवैहै ॥ वत्स औ पुत्रविषै कार्यता औ अल्पलस्थिरता प्रतीत होवैहै औ सारे समकाल हैं । कोई किसीका कारण नहीं । किंतु गउ वत्स स्त्रीआदिकनका अविद्याही उपादान है । तैसैं जाग्रत्विषै बी कोई

॥ ३५५ ॥ जाग्रत्के पदार्थनका "वे पूर्वजाग्रत्विषै देखेहुये पदार्थ ये हैं" इस आकारवाला प्रत्यभिज्ञाज्ञान निद्रातैं ऊठे पुरुषकूं होवैहै । सो ज्ञान नदीप्रवाह, दीपशिखा, आकाशगत ताराकी स्थिति औ वृक्षके फल, इनके प्रत्यभिज्ञाज्ञानकी न्यांई भ्रमरूप है । यामैं मुख्यदृष्टांत स्वप्न है । सो ऊपर ग्रंथकारनैंही लिख्याहै ॥

अधिककालस्थायिकारणस्वरूपतें कोई न्यूनकालस्थायिकार्यरूपतें स्वप्नकी न्यांई प्रतीत होवैहै। कोई किसीका परस्पर कार्यकारण नहीं। किंतु साक्षात् अविद्याके कार्य हैं। औ—

॥ ३२७ ॥ श्रुतिविषे जो क्रमतें सृष्टि कहीहै तहां सृष्टिप्रतिपादनमें श्रुतिका अभिप्राय नहीं। किंतु अद्वैतबोधनमें अभिप्राय है ॥

सारे पदार्थ परमात्मासें उपजैहैं, यातें ताके विवर्तहैं। जो जाका विवर्त होवै सो ताकाही स्वरूप होवैहै। यातें सारा नामरूप ब्रह्मतें पृथक् नहीं। ब्रह्मही है। इसअर्थ बोधन करनैकूं सृष्टि कहीहै। सृष्टिका औरप्रयोजन नहीं।

तहां क्रमका जो कथन है सो स्थूलदृष्टिकूं विपरीतक्रमतें लयचिंतनके निमित्त है। ताका बी अद्वैतबोधही प्रयोजन है। यातें क्रमकथनमें बी अभिप्राय नहीं ॥

सृष्टिमें क्रम नहीं है, किंतु सारे पदार्थ एक अविद्यासें उपजैहैं। तिनका परस्परकार्यकारणभाव औ पूर्वउत्तरभाव अविद्याकृतस्वप्नकी न्यांई मिथ्या प्रतीत होवैहै ॥ औ—

श्रुतिनै तिनकी आपसमें कार्यकारणता औ पूर्वउत्तरता कहीहै। सो लयचिंतनके निमित्त कहीहै। ध्यानमें यह नियम नहीं:- जैसा स्वरूप होवै तैसाही ध्यान होवैहै ॥

यातें जाग्रत्‌के पदार्थनका आपसमें कार्यकारणभाव नहीं। किंतु—

॥ ३२८ ॥ दृष्टिसृष्टिवादका अंगीकार ॥

सारे पदार्थ साक्षात् अविद्याके कार्य हैं। शुक्तिरजतकी न्यांई वा स्वप्नकी न्यांई अविद्याकी वृत्तिउपहित साक्षीतें तिनका प्रकाश होवैहै। यातें सारे पदार्थ साक्षीभास्य हैं ॥ औ—

ज्ञानाकार औ ज्ञेयाकार अविद्याका परिणाम एकही कालमें उपजैहै। साथही नष्ट होवैहै। यातें जब पदार्थकी प्रतीति होवै तबही प्रतीतिका विषय पदार्थ होवैहै। अन्यकालमें नहीं होवैहै। याहीकूं दृष्टिसृष्टिवाद कहैहैं ॥

या पक्षमें पदार्थकी अज्ञातसत्ता नहीं। ज्ञातसत्ता है। अद्वैतवादमें यह सिद्धांतपक्ष है। या पक्षमें दो सत्ता हैं। तीनि नहीं। काहेतें? अनात्मपदार्थ सारे स्वप्नकी न्यांई प्रातिभासिक हैं। प्रतीतिकालसें भिन्नकालमें अनात्माकी सत्ता नहीं, यातें तीसरी व्यावहारिक सत्ता नहीं ॥

या पक्षमें सारे अनात्मपदार्थ साक्षीभास्य हैं। प्रमाताप्रमाणका विषय कोई बी नहीं। काहेतें? अंतःकरण औ इंद्रिय तथा घटादिक सारी-त्रिपुटी औ ज्ञान, स्वप्नकी न्यांई एककालमैं उपजैहै। तिनका विषयविषयीभाव बनै नहीं। जो घटादिक विषय औ नेत्रादिक इंद्रिय। तैसैं अंतःकरण। ये ज्ञानतें प्रथम होवैं। तौ नेत्रादिद्वारा अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान प्रमाणजन्य होवै सो अंतःकरण इंद्रिय औ विषय तीनूं ज्ञानके पूर्वकालमें हैं नहीं। किंतु ज्ञानसमकालही स्वप्नकी न्यांई त्रिपुटी उपजैहै। यातें त्रिपुटीजन्य ज्ञान कोई बी नहीं। तथापि ज्ञानविषे स्वप्नकी न्यांई त्रिपुटीजन्यता प्रतीत होवैहै। यातें जाग्रत्‌के पदार्थ साक्षीभास्य हैं ॥ प्रमाणजन्य ज्ञानके विषय नहीं। यातें बी स्वप्नके समान मिथ्या हैं किंवा—

१ जाग्रत्‌में कितनै पदार्थनकूं मिथ्यारूपकरिके जानैहै।

२ औरनकूं सत्यरूपकरिके ऐसैं जानैहै:—

(१) अनादिकालके पदार्थ हैं, तिनमैं कोई

॥ २५६ ॥ दृष्टि कहिये अविद्याकी वृत्तिरूप ज्ञान, ताके समसमयमैंही सृष्टि कहिये प्रपंचकी उत्पत्ति, ताका जो कथन सो दृष्टिसृष्टिवाद कहियेहै। याहीकूं अजातवाद बी कहतेहैं ॥

नष्ट होवैहैं और तिसके समान उत्पन्न होवैहैं। ऐसैं प्रपंचधाराका उच्छेद कदै होवै नहीं ॥

(२) जाकूं ज्ञान होवैहै ताकूं प्रपंचकी प्रतीति होवै नहीं। औरनकूं प्रपंचकी प्रतीति होवैहै।

(३) ता ज्ञानके साधन वेदगुरु हैं। तिनतैं परमसत्यकी प्राप्ति होवैहै।

ऐसी प्रतीति जाग्रत्‌मैं होवैहै। तहां—

१ किसी पदार्थमैं मिथ्यापना।

२ किसीमैं नाश।

३ किसीमैं उत्पत्ति।

४ वेदगुरुतैं परमपुरुषार्थकी प्राप्ति।

ये सारी अविद्याकृत स्वप्नकी न्यांई मिथ्या हैं ॥

वासिष्ठमैं ऐसै अनंतइतिहास कहेहैं।

१ क्षणमात्रके स्वप्नमैं बहुकाल प्रतीत होवैहै। औ—

२ जाग्रत्‌की न्यांई स्थायीपदार्थ प्रतीत होवैहैं औ—

३ तिनतैं बहुकालभोग होवैहै ॥

यातैं जाग्रत्‌पदार्थकी स्वप्नतैं किंचित्‌विलक्षणता नहीं। किंतु आत्मभिन्न सर्व मिथ्या है ॥

॥३२९॥ प्रश्नः—स्वप्नकी न्यांई स्वल्पकालस्थायी संसार होवै तौ अनादिकालका बंध नहीं होवैगा॥ बंधनिवृत्तिरूप मोक्षके निमित्त श्रवणादिक साधन निष्फल होवैंगे।

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

लख हजारन कल्पको,
यह उपज्यो संसार ॥
तामैं ज्ञानी मुक्त व्हे,
बंधे अज्ञ हजार ॥ ११ ॥
झूठो स्वप्नसमान जो,
छन घटिका व्हे जाम ॥
बद्ध कौन को मुक्त है,
श्रवणादिक किह काम ॥ १२ ॥

टीकाः— ईश्वरसृष्टि अनंतकल्पतैं अनादि है, तामैं ज्ञानी मुक्त होवैहै। अज्ञानीकूं बंध रहैहै।

जो स्वप्नसमान होवै तौ स्वप्न एकक्षण घडी तथा प्रहर होवैहै। तैसैं संसार बी क्षण अथवा

॥ ३५७ ॥ यह दृष्टिसृष्टिवादका निष्कर्ष (निचोड) है ॥ या पक्षका प्रतिपादन बृहदारण्यक उपनिषद्‌के व्याख्यानमैं भाष्यकार औ वार्तिककारनै कियाहै औ शांकरभाष्य अरु आनंदगिरिकृत व्याख्यानसहित मांडूक्यउपनिषद्‌की कारिकामैं कियाहै। ताकी वेदांतदीपिकानामक भाषाटीकाविषै हमनै स्पष्ट लिखाहै औ वासिष्ठग्रंथमैं तथा वेदांतमुक्तावलीमैं तथा वृत्तिप्रभाकरके अष्टमप्रकाशमैं तथा आत्मपुराणमैं औ अद्वैतसिद्धिआदिकआकरग्रंथनमैं बी याका प्रतिपादन है। जाकूं विशेष जिज्ञासा होवै सो तिन ग्रंथनमैं देखै ॥ परंतु "अर्क (गृहके कोण) विषै जो मधु मिलै तौ पर्वतविषै किसअर्थ जाना?" इस न्यायकरि जा जिज्ञासुकूं याही ग्रंथविषै या दृष्टिसृष्टिवादरूप उत्तमसिद्धांतका ज्ञान होवै, ताकूं अन्य बहुतग्रंथनके देखनैका बुद्धिके विनोदविना औरप्रयोजन नहीं ॥

घडी वा प्रहरकाल वा किंचित्‌अधिककाल होवैगा ।

१ स्वप्नकी न्यांई स्वल्पकालस्थायि संसार होवै तौ अनादिकालका बंध नहीं होवैगा ।

२ बंधनिवृत्तिरूप मोक्षके निमित्त श्रवणादिकसाधन निष्फल होवैंगे ।

[गुरुः—] यद्यपि पूर्वउक्तसिद्धांतमैं—

१ बंधमोक्ष वेदगुरु अंगीकार नहीं ।

२ किंतु चेतन नित्यमुक्त है ।

३ अविद्याके परिणाम चेतनमैं नानाविवर्त होवैहैं, तातैं आत्मरूपकी किंचित्‌मात्र बी हानि नहीं ॥

४ आत्मा सदा असंग एकरस है ।

५ आजतोडी कोई मुक्त हुवा नहीं । आगे होवै नहीं । किंतु चेतन नित्यमुक्त है ।

६ अविद्या औ ताके परिणामका चेतनसैं किसीकालमैं संबंध नहीं, यातैं बंध औ वेदगुरु श्रवणादिक औ समाधि तथा मोक्ष इनकी प्रतीति बी स्वप्नकी न्यांई अविद्याजन्य है । यातैं मिथ्या है ॥

७ इनविषै बहुकालस्थायिका बी अविद्याजन्य है ॥

तथापि या सिद्धांतकूं नहीं जानिके स्थूलदृष्टिका प्रश्न है ॥

(अगृधदेव [इच्छारहित आत्मदेव]-का स्वप्न ॥ ३३०–४५२ ॥)

(॥ गतप्रश्नका उत्तर ॥ ३३०–३३८ ॥)

॥ ३३० ॥ अगृधदेवकूं स्वप्नकी प्रतीति ॥ ३३०–३३१ ॥

॥ गुरुवाक्य ॥

॥ दोहा ॥

अगृधदेवकूं स्वप्नमैं,
भ्रम उपज्यो जिहि रीति ॥
सिष तोकूं यह ऊपजी,
बंधमोछ परतीति ॥ १२ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! जैसैं निद्रादोषतैं स्वप्नमैं अध्यापक, अध्ययन, वेदशास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र, अध्ययनकर्त्ता, कर्म औ तिनका फल प्रतीत होवैहै औ तिन सर्वपदार्थनमैं सत्यताकी भ्रांति होवैहै ।

॥ २५८ ॥ इहां यह अभिप्राय हैः— इस दृष्टिसृष्टिवादमैं एकजीवके अंगीकारतैं अन्यजीवरूप गुरु किंवा शिष्यका अंगीकार नहीं । किंतु स्वप्नगत एक-मुख्यजीवतैं भिन्न अन्यजीवाभासकी न्यांई अन्य-जीवाभास प्रतीत होतेहै । तैसैंही आभासरूप गुरु किंवा शिष्य है, तिस गुरुविषै ईश्वरभावपूर्वक भक्ति करीतीहै सो बी स्वप्नगुरुके भक्तिकी न्यांई मिथ्या (प्रातिभासिक सत्तावाली) है ॥ या पक्षमैं जीव-ईश्वरादिकषट्‌पदार्थ स्वरूपसैं अनादि मानेहैं । तिनके मध्य—

१ ब्रह्मकी परमार्थसत्ता है ॥ औ—

२ ब्रह्मसैं भिन्न प्रपंचकी व्यावहारिकसत्ता है ॥ औ—

३ अन्य प्रवाहरूपसैं अनादि सकलकार्यप्रपंचकी प्रातिभासिक सत्ता है ।

यातैं उत्तरउत्तरअध्यासके कारण पूर्वपूर्व अध्यासके ज्ञानजन्य संस्कारकी आश्रयभूत अविद्याके विद्यमान होनैतैं औ ईश्वरके विद्यमान होनैतैं क्षणिकविज्ञान-वादकी किंवा अनीश्वरवादकी प्राप्तिआदिक दोष नहीं । यह अर्थ अद्वैतसिद्धिमैं मधुसूदनस्वामीनै लिख्याहै ॥ यह वार्त्ता जीवके प्रसंगसैं कही ॥

तथापि सो स्वप्नके सारे पदार्थ मिथ्या हैं। तैसैं जाग्रत्‌के सारे पदार्थ मिथ्या हैं। तिनविषै सत्यताप्रतीतिभ्रम है।

दोहेमैं बंधमोक्षग्रहणतैं सर्व अनात्माका ग्रहणहै

जैसैं तेरेकूं हम गुरु प्रतीत होवैहैं, वेद-अर्थका बंधविघातक उपदेश करैहैं, सो तेरेकूं मिथ्याप्रतीति है ॥

जैसैं अगृधदेवकूं स्वप्नमैं मिथ्याप्रतीतिके विषय गुरुवेदादिक अनिर्वचनीय उपजेहैं, तैसैं तेरी प्रतीतिकेविषै मेरेसैं आदिलेके सारे अनिर्वचनीय मिथ्या हैं ॥

॥ ३३१ ॥ सो अगृधदेवका[359] ऐसा स्वप्न हुवाहै:—एक अगृध नाम देवता अनादिकालका निद्रामैं सोवताहुवा स्वप्नकूं[360] देखताभया। तास्वप्नमैं तिस पुरुषकूं ऐसी प्रतीति हुई जो:—

१ मैं चंडाल[361] हूं।
२ महादुःखी हूं।
३ अस्थि मज्जा रुधिर त्वचा मांस मेद वीर्यरूप सप्तधातुसैं मेरा मुख भऱ्याहै। औ—
४ महाघोर भयंकर सर्प हस्ती आदिकसैं युक्त जो वन[362] ताकेविषै मैं भ्रमण करूंहूं।

सो देवता भ्रमण करताहुवा ता वनमैं अनंतस्थान देखताहुवा ॥

[363]१ कहूं नाना भयंकर प्राणी सन्मुख भक्षण करनेकूं धावन करैहैं। औ—
२ कहूं राधिरुधिरसैं[364] भरे कुंड हैं। तिन्हमैं पडे प्राणी हाहाकारशब्द करैहैं। औ—
३ कहूं लोहेके तप्तस्तंभ हैं तिन्हसैं बंधे पुरुष रोवैहैं। औ—
४ कहूं तप्तवालुयुक्त मार्ग होइके नग्नपाद-पुरुष जावैहैं औ तिन्ह पुरुषनकूं राजभट लोहमय दंडनसैं ताडना करैहैं।

इसरीतिसैं—

१ नाना जो भयंकरस्थान हैं तिनकूं सो देवता देखताहुवा। औ—
२ कदाचित् आप बी अपराधकरिके स्वप्नमैं तिन्ह दुःखनकूं प्राप्त होताभया। औ—

[365]कहूं दिव्यस्थान देखताहुवा।

१ तिन्ह स्थानमैं उत्तमदेव विराजैहैं।
२ तिन्ह देवनके दिव्य भोग हैं।
३ अमृतके दर्शनमात्रसैं तिन्हकूं तृप्ति रहैहै।
४ क्षुधातृषाकी बाधा तिन्ह देवनकूं होवै नहीं। औ—
५ मलमूत्ररहित जिनका प्रकाशमान शरीर है। औ—
६ उत्तमविमानमैं स्थित होयके कोई देव रमण करैहै। सो विमान ता देवकी इच्छाके अनुसार गमन करैहै। औ—
७ कहूं रंभा उर्वशीसैं आदिलेके अप्सरा नृत्य

॥ ३५९ ॥ गृधा कहिये इच्छा, तातैं रहित औ देव कहिये स्वप्रकाश, ऐसा जो शुद्धचेतन सो इहां **अगृधदेवपदका गूढ अर्थ है**। ताकूं जाग्रत्‌स्वप्नरूप विलक्षणता रहित अनादिनिद्राकरि कल्पित यह प्रतीयमानप्रपंचरूप स्वप्न भयाहै। ता प्रपंचकी विलक्षणताके अभावतैं जाग्रदादिअवस्थाके भेदका अभाव है। यातैं तिस एकही प्रपंचकूं दृष्टांतरूपता औ दार्ष्टांतरूपता यद्यपि बनै नहीं। तथापि ग्रंथकारनै तिसीअर्थकूं गोप्य राखिके एकही चेतनमैं दृष्टांतदार्ष्टांतका आरोप कियाहै। इस गोप्यअर्थकी प्रगटता हम आगे बी टिप्पणविषै प्रसंगसैं जहांतहां करैंगे ॥

॥ ३६० ॥ संसारकूं ॥

॥ ३६१ ॥ देहद्वयका अभिमानी जीव हूं ॥

॥ ३६२ ॥ संसार (जगत्)

॥ ३६३ ॥ इहांसैं नरकनका वर्णन है ॥

॥ ३६४ ॥ पिरू (पूय) ॥

॥ ३६५ ॥ इहांसैं स्वर्गलोकका वर्णन है।

करैहैं तिन्हके संपूर्णअंग दोपरहित हैं। औ संपूर्ण [366]स्त्री गुणयुक्त हैं॥

८ उत्तमसुगंध तिन्हके शरीरसैं कामकी प्रकाशक आवैहैं औ कहूं तिन्हसैं देव रमण करैहैं। औ–

९ कदाचित् [367]आँप बी देवभावकूं प्राप्त होयके तिन्हसैं बहुतकाल रमण करैहैं। औ—

१० कदाचित् तिन्ह अप्सरानसैं दिव्यस्थानमैं रमण करताहुवा [368]अंकस्मात् रुधिरमलपूरित जो कुंड हैं। तिन्हविषै मज्जन करैहै। औ

एकस्थानमैं सर्वका [369]अधिपतिपुरुप स्थित है। ताके आज्ञाकारी [370]अंनुचर ताके आगे स्थित हैं।

१ कितनै [371]अंनुपनकूं सो अधिपति औ ताके अनुचर सौम्यरूप प्रतीत होवैहैं। औ

२ कितनै [372]पुंरुपनकूं महाभयंकररूप प्रतीत होवैहैं। औ

३ ता वनमैं स्थित पुरुपनकूं कर्मके अनुसार फल देवैहैं॥

इसरीतिसैं अगृध नाम देवता स्वप्नकालमैं नाना जो स्थान है तिन्हकूं देखताहुवा। औ

१ कहूं अन्यस्थानमैं ब्राह्मण वेदकी ध्वनि करैहैं। औ—

२ कहूं [373]यंज्ञशालामैं उत्तमकर्म करैहैं। औ–

३ कहूं उत्तमनदी बहैहै। तिन्हमैं पुण्यके निमित्त लोक स्नान करैहैं। औ—

४ कहूं ज्ञानवान् आचार्य शिष्यनकूं ब्रह्मविद्याका उपदेश करैहै। ता ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त होयके वा वनसैं निकसि जावैहै॥

इसरीतिसैं स्वप्नविषै अगृधनाम देवता क्षणमात्रमैं नानाआश्चर्यरूप पदार्थ ता वनमैं देखताहुवा। ताकूं ऐसी प्रतीति स्वप्नमैं हुई जोः–

१ मै अनंतकालका या वनमै स्थित हूं।

२ या वनका कदी उच्छेद होवै नहीं॥

३ (१) कदाचित् [374]बाँगवान् चारि मुखनसैं नानाबीज निकासिके वनकी उत्पत्ति करैहै। औ—

(२) [375]जंलसेचनसैं पालन करैहै। औ–

(३) कदाचित् घोरहास्यकरिके मुखसैं अग्नि निकासिके वनका [377]दांह करैहै॥

४ वनकी उत्पत्तिके संगि मेरी उत्पत्ति होवैहै औ वनके दाहसंगि मेरा दाह होवैहै। औ–

५ सर्ववनका दाहकरिके सो बागवान् एकही रहैहै।

६ ताके शरीरमैं वनके बीज रहैहैं॥

यह प्रतीति स्वप्नवेदके श्रवणसैं ता अगृधदेवताकूं स्वप्नहीविषै हुई॥

॥ ३६६ ॥ काव्यअलंकारादिसाहित्यग्रंथनमैं जो स्त्रियांके सुंदरता आदिक ३२ गुण कहेहैं। तिनकरिके युक्त ऐसी।

॥ ३६७ ॥ अगृधदेव।

॥ ३६८ ॥ पुण्यके क्षीण भये औ पापरूप अदृष्टके उदय भये।

॥ ३६९ ॥ धर्मराजा।

॥ ३७० ॥ यमदूत।

॥ ३७१ ॥ पुण्यवानोंकूं।

॥ ३७२ ॥ पापिष्ठजनोंकूं।

॥ ३७३ ॥ इहांसैं मृत्युलोक [गत भरतखंड] का वर्णन है।

॥ ३७४ ॥ ब्रह्माविष्णुशिवरूपसैं जगत्की उत्पत्ति पालन औ संहारका कर्त्ता ईश्वर।

॥ ३७५ ॥ जीवनके परिपक्व भये अदृष्ट।

॥ ३७६ ॥ कर्मके अनुसार सुखदुःखके अनुभवरूप भोगके देनैसैं।

॥ ३७७ ॥ प्रलय (संहार)।

॥ ३३२ ॥ अगृधदेवका स्वप्नमैं गुरुसैं मिलाप ॥

तब वारंवार अपना जन्ममरण सुनिके ता अगृधदेवनै विचार किया जोः—

१ किसी प्रकारसैं वनके बाहरि निकसी जाऊं। औ—

१ वनके बाहरि नहीं बी निकसूं तौ बी चांडालभाव मेरा दूरि होयजावै औ देवभाव सदा बन्यारहै ॥

२ सो और तौ कोई उपाय वनतैं निकसनैका है नहीं। ब्रह्मविद्याके उपदेश करनैवाले आचार्य अपनैं शिष्यनकूं वनके बाहरि निकासैहैं ॥

यह विचारिके आचार्यकूं स्वप्नकालमैंही सो अगृधदेवता प्राप्तहुवा। सो विधिपूर्वक प्राप्तहुवा जो शिष्य ताकूं आचार्य देववाणीरूप मिथ्याग्रंथ उपदेश करताहुवा ॥

॥३३३॥ मिथ्याआचार्यका मिथ्याशिष्यकूं मिथ्यासंस्कृतग्रंथसैं उपदेश ॥ ग्रंथके मंगलाचरण ॥ ३३३–३३८ ॥

संस्कृतग्रंथ जो मिथ्याआचार्यनै मिथ्याशिष्यकूं उपदेश किया ता ग्रंथकूं भाषाकरिके लिखैहै ॥

संस्कृतग्रंथके भाषाकरनैमैं मंगल करैहैं। काहेतैं?

१ मंगल करनैतैं जो ग्रंथकी समाप्तिके प्रतिबंधकविघ्न हैं तिन्हका नाश होवैहै। विघ्न नाम पापका है। पापतैं शुभकार्यकी समाप्ति होवै नहीं। ता पापका मंगलतैं नाश होवैहै ॥ औ—

२ जो पापरहित होवै सो बी ग्रंथके आरंभमैं मंगल अवश्य करै। काहेतैं? जो ग्रंथआरंभमैं मंगल नहीं कियाहोवै। तौ ग्रंथकर्ताविषै पुरुषनकूं नास्तिकभ्रांति होयके ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं ॥

सो मंगल तीनि प्रकारका है:—एक वस्तुनिर्देशरूप है औ दूसरा नमस्काररूप है औ तीसरा आशीर्वादरूप है।

सगुण अथवा निर्गुण जो परमात्मा सो वस्तु कहियेहै, ताके कीर्तनका नाम वस्तुनिर्देश कहियेहै ॥

अपना अथवा शिष्यनका जो वांछितवस्तु, ताके प्रार्थनका नाम आशीर्वादरूप मंगल कहियेहै। सो अपनै वांछितका प्रार्थन चतुर्थदोहेमैं स्पष्ट है, शिष्यके इष्टका प्रार्थन पंचमदोहेमैं स्पष्ट है ॥

॥ ३३४ ॥ गणेश औ देवीकूं ईश्वरता पुराणमैं प्रसिद्ध है। यातैं अनीश्वरका चिंतन नहीं। औ पुराणमैं गणेशका जो जन्म है सो जीवकी न्यांई कर्मका फल नहीं। किंतु रामकृष्णादिकनकी न्यांई भक्तजनके अनुग्रहवास्तै परमात्माकाही आविर्भाव होवैहै। यह व्यासभगवान्का परमअभिप्राय है ॥

या स्थानमैं यह रहस्य है:—परमार्थदृष्टिसैं जीव बी परमात्मासैं भिन्न नहीं। परंतु जन्ममरणादिक बंधका आत्माविषै जो अध्यास सो जीवका जीवपना है। सो जन्मादिकबंध गणेशादिकनकूं आत्मामैं प्रतीत होवै नहीं। यातैं जीव नहीं ॥ इसरीतिसैं गणेशादिकनकूं ईश्वरता है। यातैं ग्रंथके आरंभमैं तिन्हका चिंतन योग्य है ॥

॥ ३७८ ॥ चांडालभाव कहिये जीवभाव औ देवभाव कहिये ब्रह्मभाव ॥

॥ ३७९ ॥ इहां संस्कृतग्रंथके कथनकरि कोई-एक अगृधदेवके दृष्टांतकरि युक्त संस्कृतग्रंथका ग्रहण नहीं। किंतु इस ग्रंथके मूलरूप अनेक संस्कृतग्रंथनका ग्रहण है ॥

नानारूप ईश्वरका जो कथन है, सो[३८०] सर्वकूं ईश्वरता द्योतन करनैवास्ते है औ ईश्वर-भक्ति औ गुरुभक्ति विद्याकी प्राप्तिका मुख्य-साधन है। इसअर्थकूं बी द्योतन करनैवास्ते है ॥

॥ ३३५ ॥ अथ निर्गुणवस्तुनिर्देशरूप मंगल ॥

॥ दोहा ॥

जा विभु सत्य प्रकासतैं,
परकासत रवि चंद ॥
सो साछी मैं बुद्धिको,
सुद्धरूप आनंद ॥ १ ॥

॥ अथ सगुणवस्तुनिर्देशरूप मंगल ॥

॥ दोहा ॥

नासै विघ्न समूलतैं,
श्रीगणपतिको नाम।
जा चिंतन बिन व्है नहीं,
देवनहूके काम ॥ २ ॥

टीकाः—त्रिपुरवधमैं यह वार्ता प्रसिद्ध है ॥

॥ अथ नमस्काररूप मंगल ॥

॥ सोरठा ॥

असुरनको संहार,
लछमी पारवतीपती ॥
तिन्हें प्रनाम हमार,
भजतनकूं संतत भजे ॥ ३ ॥

॥ अथ स्ववांछितप्रार्थनारूप आशीर्वाद ॥

॥ मंगल ॥ दोहा ॥

जा सक्तीकी सक्ति लहि,
करै ईस यह साज ॥
मेरी बानीमैं वसहु,
ग्रंथ-सिद्धिके काज ॥ ४ ॥

॥अथ शिष्यवांछितप्रार्थनरूप आशीर्वाद॥

॥ दोहा ॥

बंधहरन सुख करन श्री,
दादू दीनदयाल ॥
पढै सुनै जो ग्रंथ यह,
ताके हरहु जंजाल ॥ ५ ॥

॥ ३८० ॥ गणेश विष्णु शिव देवी औ आचार्य इनकूं ॥

॥ ३८१ ॥ मयदानवरचित तीनपुरके नाशमैं प्रवृत्त भये महादेवका जब विजय भया नहीं, तब सो सर्वदेवसहित होयके विघ्नराज जो गणेश ताकूं पूजताभया। तिसकरि महादेवके विजयद्वारा देवन-का कार्य (निर्भयपना) सिद्ध भया। यह प्रसंग पुराणमैं प्रसिद्ध है ॥

॥ ३८२ ॥ जन्मादिदुःख ॥

॥ ३३६ ॥ अथ वेदांतशास्त्रकर्त्ता आचार्य-नमस्कार ॥ ३८५ ॥

॥ कवित्व ॥

वेदवादवृच्छ बन
भेदवादीवायु आय ।
पकर हलाय क्रिया
कंटक पसारिके ॥
सरल सुसुद्ध सिष्य
कंज पुनि तोरि गेरि ।
सूलनमैं फेरत
फिरत फेरि फारिके ॥
पेखी सु पथिक भग-
- वान जानि अनुचित ।
अंकमैं उठाय ध्याय
व्यासरूप धारिके ॥
सूत्रको बनाइ जाल
बनको विभाग कीन्ह ।
करत प्रनाम ताहि
निश्चल पुकारिके ॥ ६ ॥

टीकाः—(१) जैसैं वायु, (२) वनमैं-पैठिके, वृक्षनकूं हलायके, (३) तिन्हके कंटक पसारिके, (४) सुंदर (५) कमलनके पुष्प-नकूं (६) स्वस्थानसैं तोरिके (७) कंटकन-विषै भ्रमावै तिन्ह भ्रमते पुष्पनकूं देखिके ।

(८) पथिकके चित्तमैं ऐसी आवैः—(९) जो ये सुंदरकमल या स्थानयोग्य नहीं (१०) किंतु उत्तमस्थानयोग्य है । यह विचारिके

॥ ३८३ ॥ वेदांत जो उपनिषद्, तिनके तात्पर्यका निर्णायक होनैतैं तिनका अनुसारी जो ब्रह्म-सूत्ररूप उत्तरमीमांसा, सो बी **वेदान्तशास्त्र** कहिये-है । ताके कर्त्ता श्रीवेदव्यास ।

॥ ३८४ ॥

॥ श्लोकः ॥

आचिनोति च शास्त्रार्थं आचारे स्थापयत्यपि ॥
स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेन कथ्यते ॥ १ ॥

अस्यार्थः— जो शास्त्रके अर्थकूं आचरे औ लोकनकूं शास्त्रउक्तआचारविषै स्थापन बी करै औ जातैं आप बी शास्त्रोक्त आचारकूं आचरताहै । तिस हेतुकरि सो **आचार्य** कहियेहै । इसशास्त्रउक्त-लक्षणकरि संपन्न श्रीवेदव्यासजी हैं। यातैं सो साधारण (सर्वआस्तिक संप्रदायोंके) **आचार्य** हैं । तिनका नमस्काररूप मंगल ग्रंथकार करैहैं।

इहां गुरुशिष्यके संवादके मिषकरि ग्रंथकर्त्तानें जो मंगल कियाहै । सो आदिअंतकी न्याईं शास्त्रके मध्यविषै बी मंगल कियाचाहिये । इस विधिके अनुसार है ॥

॥ ३८५ ॥ मनकरि किंवा वाणीकरि शरीर करि अपनी निकृष्टतापूर्वक इष्टकी उत्कृष्टताके क्रमतैं चिंतन कथन औ करनैका नाम **नमस्कार** है ॥ यह नीतिभांतिका नमस्कार क्रमतैं उत्तम मध्यम कनिष्ठरूप है । तिनमैं—

१ मनका नमस्कार **बीज** है औ—
२ जो वाणीका है सो **अंकुर** है । औ—
३ जो शरीरका है सो **वृक्ष** है ।
४ तिसतैं गुरुआदिककी प्रसन्नतारूप **फल** होवैहै ॥

॥ ३८६ ॥ पथिक कहिये पांथ । याहीकूं बटाऊ बी कहतेहैं ॥

(११) तिन्ह पुष्पनकूं उठाईलेवै औ (१२) फेरि विचार करैः-जो आगे वी पवन कंटकनविषै पुष्पनकूं तोडिके भ्रमण करावैगा, यातैं ऐसा उपाय करूं, जातैं फेरि वायु कंटकनमैं पुष्पनकूं भ्रमावै नहीं । (१३) यह विचारिके सूत्रके जालसैं कंटकयुक्त वृक्षनका विभाग करीदेवै, ता जालसैं पुष्पनका कंटकनमैं प्रवेश होवै नहीं ॥

॥ ३३७ ॥ (१) तैसैं भेदवादी आचार्यरूप जो वायु है, (२) सो वेदरूपी वनमैं (३) वाद कहिये अर्थवादरूप जो कंटकसहित वृक्ष हैं, तिन्हतैं सकामकर्मरूप कंटक प्रवर्तकरिके, (४) सरल कहिये कपटरहित औ सुशुद्ध कहिये अतिशुद्ध रागादिदोषरहित, (५) जो शिष्यरूप कमलपुष्प, (६) तिन्हकूं शमादिरूप जो स्वस्थान, तासों तोरके, (७) सकामकर्मरूप कंटकनविषै भ्रमावते देखिके, (८) पथिक समान व्यापकविष्णुनै विचार कियाः-(९) जो यह सुंदरकमलरूप शुद्धपुरुष या स्थानजोग नहीं है, (१०) किंतु मेरे स्वरूपकूं प्राप्त होनैयोग्य है । यह विचारिके व्यासरूप धारिके (११) तिन्ह शिष्यनकूं उपदेशरूप अंकमैं स्थापन किया । जैसैं पुरुषके अंकमैं स्थित पुष्पकूं वात उडावनैविषै समर्थ नहीं तैसैं ब्रह्मनिष्ठ आचार्यके उपदेशमैं स्थित पुरुषनकूं भेदवादी बैहकावनैमैं समर्थ नहीं, यातैं उपदेश ही अंक कहिये गोद है, (१२) फेरि व्यासभगवान्नै विचार कियाः-जो भेदवादी और पुरुषनकूं आगे वी सकामकर्मरूप कंटकनमैं भ्रमावैंगे । यातैं ऐसा उपाय होवै । जातैं आगे शिष्य भ्रमैं नहीं । (१३) यह विचारिके सूत्ररूपी जालसैं वेदके वाक्यरूप वृक्षनका विभाग करीदिया ॥

जैसैं वनमैं दोप्रकारके वृक्ष होवैंः—

१ सकंटक औ—
२ कंटकरहित ।

तिन्हका जालसैं विभाग करी देवै औ जालतैं पुष्पनका कंटकसहित वृक्षनमैं प्रवेश होवै नहीं ॥

तैसैं वेदमैं दोप्रकारके वाक्य हैं।

१ एक तौ कर्मकी स्तुति करिके कर्मविषै बहिर्मुख पुरुषकी प्रवृत्ति करावैहैं औ—
२ दूसरे कर्मके फलकूं अनित्य बोधन करिके पुरुषकी निवृत्ति करावैहैं ।

तिन्ह वाक्यनका—

॥३३८॥ वेदव्यासनै विभागकरिके सूत्रनसैं यह बोधन कियाः—जो सर्ववाक्यनका निवृत्तिमैं तात्पर्य है, प्रवृत्तिमैं किसी वाक्यका वी तात्पर्य नहीं ।

जो प्रवृत्तिबोधक वाक्य हैं, तिन्हका वी स्वाभाविक औ निषिद्ध जो प्रवृत्ति है, तासैं निवृत्तिकरिके विहितप्रवृत्तिसैं अंतःकरण शुद्ध होयके तासैं वी निवृत्ति होयके ज्ञाननिष्ठपुरुष होवै । इसरीतिसैं निवृत्तिमैं तात्पर्य है । औ—अर्थवादवाक्यनै जो कर्मका फल बोधन

॥ ३८७ ॥ इहां भेदवादिनकूं आचार्य कहाहै सो "देवदत्त सिंह है" इस वाक्यकी न्यांई गौणीवृत्तिसैं कहाहै । मुख्य (शक्तिवृत्तिसैं) नहीं । यातैं पूर्व (तृतीयतरंग) औ उत्तर (इस तरंग) का विरोध नहीं ।

॥३८८॥ संशययुक्त करिके निष्ठातैं डिगावनैमैं ।

कियाहै सो गुडजिह्वान्यायतैं कियाहै । फलमैं तिनका तात्पर्य नहीं । यह अर्थ सूत्रनसैं व्यासजीनै बोधन कियाहै । या अर्थकूं सूत्रनसैं जानिके पुरुषकी सकाम कर्ममैं प्रवृत्ति होवै नहीं ॥

जैसैं सूतका जाल पुष्पनकूं कंटकनसैं निरोध करैहै तैसैं व्यासभगवान्के सूत्र सकाम कर्मनसैं निरोध करैहैं । यातैं जालरूप कहे ॥ ६ ॥

॥३३९॥ अगृधदेवके तीन प्रश्नः—

१ "मैं कौन हूं ?

२ संसारका कर्त्ता कौन है ?

३ मुक्तिका हेतु ज्ञान है अथवा कर्म है अथवा उपासना है अथवा दोनों हैं ?"

॥ दोहा ॥

कोउक सिष्य उदारमति,
गुरुके सरनै जाइ ॥
प्रश्न कियो कर जोरिके,
पादपद्म सिर नाइ ॥ ७ ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

भो भगवन् मैं कौन यह,
संसृति कातैं होइ ॥
हेतु मुक्तिको ज्ञान वा,
कर्म उपासन दोइ ॥ ८ ॥

टीकाः—

१ हे भगवन् ! मैं कौन हूं ?

(१) देहस्वरूप हूं ?

(२) अथवा देहसैं भिन्न हूं ?

मैं मनुष्य हूं औ मेरा शरीर है । यह दो प्रतीति होवैहैं । यातैं मेरेकूं संशय है। औ— देहसैं भिन्न बी जो आप कहो तौ—

(३) मैं कर्त्ताभोक्ता हूं ?

(४) अथवा अक्रिय हूं ?

जो अक्रिय कहो तौ बी—

(५) सर्वशरीरविषै एक हूं ?

(६) अथवा नाना हूं ?

यह प्रथमप्रश्नका अभिप्राय है ॥ औ—

२ यह संसृति कहिये संसार, ताका कर्त्ता कौन है ? याका यह अभिप्राय है:—

(१) या संसारका कोई कर्त्ता है ?

(२) अथवा आपही होवैहै ?

॥ ३८९ ॥ किसी बालककूं अपनी माता जिह्वामैं गुडकी अंगुली लगायके कटुऔषधमैं मधुर-रसकी बुद्धि उपजायके कटुऔषध पिलाय देवै । ताकूं शास्त्रमैं "**गुडजिह्वान्याय**" कहैहैं । ताकी न्यांई श्रुतिरूप जो माता है, सो पामरजीवरूप बालककूं अपनै जे कर्मफलके स्तावकवचनरूप अर्थवादवाक्य हैं, तिसरूप गुडकी अंगुली चटायके कर्मके स्वर्गादिककी प्राप्तिरूप फलका बोधन-करिके तिस कर्मविषै प्रवृत्ति करावैहै । परंतु जैसैं तिस माताका बालककी रोगनिवृत्तिमैं तात्पर्य है । गुडकी अंगुलीके स्वादमैं नहीं । तैसैं श्रुतिरूप माताका पापकी निवृत्तिद्वारा चित्तकी शुद्धिमैं तात्पर्य है । स्वर्गादिफलमैं नहीं ।

जो कर्त्ता कहो तौ बी—
(३) कोई जीव कर्त्ता है ?
(४) अथवा ईश्वर कर्त्ता है ?
जो ईश्वर कहो तौ बी—
(५) एकदेशमैं सो ईश्वर स्थित है ?
(६) अथवा सो ईश्वर व्यापक है ?
जो व्यापक है तौ बी—
(७) जैसैं व्यापकआकाशतैं जीव भिन्न है तैसैं ता ईश्वरतैं जीव भिन्न है ?
(८) अथवा ईश्वरतैं जीव अभिन्न है ? औ—
३ मुक्तिका हेतु
(१) ज्ञान है ?
(२) अथवा कर्म है ?
(३) अथवा उपासना है ?
(४) अथवा दो हैं ?
जो दो कहो तौ बी—
(५) ज्ञान कर्म है ?
(६) अथवा ज्ञान उपासना है ?
(७) अथवा कर्म उपासना है ?

(१ "मैं कौन हूं ?" याका उत्तर ॥ ३४०—३६९ ॥)

॥३४०॥ आत्मा संघातका साक्षी है ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

(अर्धदोहा)

सत् चित् आनंद एक तूं, ब्रह्म अजन्म असंग ॥

टीकाः—प्रथम जो शिष्यनै प्रश्न किया, ताका उत्तर कहैहैंः—"तूं सत्‌चित्‌आनंदस्वरूप है" या कहनैतैं देहतैं भिन्न कह्या। काहेतैं ? देह असत्‌रूप है औ जडरूप है औ दुःखरूप है औ कर्त्ताभोक्ता बी नहीं। काहेतैं ?—

१ जाकेविषै दुःख होवै सो दुःखकी निवृत्ति औ सुखकी प्राप्तिवास्तै क्रिया करै, सो कर्त्ता कहियेहै।
(१) सो तेरेविषै दुःख है नहीं, यातैं दुःखकी निवृत्तिवास्ते क्रियाका कर्त्ता नहीं ॥
(२) तूं आनंदस्वरूप है, यातैं सुखकी प्राप्तिके निमित्त बी तूं क्रियाका कर्त्ता नहीं ॥
२ जो कर्त्ता होवै सोई भोक्ता होवैहै। तूं कर्त्ता नहीं, यातैं भोक्ता बी नहीं।

पुण्यपापका जनक जो कर्म है ताका कर्त्ता औ सुखदुःखका भोक्ता स्थूलसूक्ष्मसंघात है। तूं नहीं। तूं संघातका साक्षी है ॥ याहीतैं—

॥ ३४१ ॥ आत्मा, सुखदुःखादिधर्मसैं रहित व्यापक एक है ॥ सांख्यमतका औ त्रिविध न्यायमतका कथन औ खंडन ॥ ३४१—३५४ ॥

आत्मा एक है, नाना नहीं। जो आत्मा कर्त्ताभोक्ता होवै तव तौ नाना होवै। काहेतैं ? कोई सुखी है, कोई दुःखी है। औ कर्त्ताभोक्ता एकही अंगीकार होवै तौ एकके सुख होनैतैं तथा दुःख होनैतैं सर्वकूं सुख तथा दुःख हुवाचाहिये। यातैं भोक्ता नाना हैं औ आत्मा भोक्ता है नहीं। यातैं एक है ॥

॥ ३४२ ॥ [पूर्वपक्षीः—] सांख्यके मतमैं आत्मा कर्त्ताभोक्ता अंगीकार नहीं करिके नानापुरुष जो अंगीकार किये, सो अत्यंतविरुद्ध है। काहैतैं ? यह सांख्यका सिद्धांत हैः—
१(१) सत्वरजतमगुणकी समअवस्थाका नाम प्रधान कहैहैं, सो प्रधान प्रकृति है, विकृति नहीं ॥

[१] विकृति नाम कार्यका है। औ—
[२] प्रकृति नाम उपादानकारणका है।
[१] सो प्रधान महत्तत्त्वका उपादानकारण है यातैं प्रकृति है। औ—
[२] अनादि है, यातैं विकृति नहीं। औ—
(२-८) महत्तत्त्व अहंकार औ पंचतन्मात्रा। ये सातप्रकृति विकृति हैं।
[१] उत्तरउत्तरके प्रकृति हैं। औ—
[२] पूर्वपूर्वके विकृति हैं।

तन्मात्रा वी भूतनके प्रकृति हैं। इसरीतिसैं सातप्रकृति विकृति हैं। औ—

(९-२४) पंचभूत औ दशइंद्रिय औ मन, ये सोलह विकृति हैं। प्रकृति नहीं ॥ औ—
(२५) पुरुष, प्रकृतिविकृति नहीं। काहेतैं?
[१] जो हेतु किसी पदार्थका होवै तौ प्रकृति होवै। औ—
[२] कार्य होवै तो विकृति होवै।
[१] सो पुरुष किसीका हेतु नहीं। यातैं प्रकृति नहीं। औ—
[२] कार्य नहीं। यातैं विकृति नहीं। यातैं पुरुष असंग है ॥

इसरीतिसैं सांख्यमतमैं पचीस तत्त्व हैं ॥ तत्त्व नाम पदार्थका है ॥

२ सांख्यमतमैं ईश्वरका अंगीकार नहीं।
३ स्वतंत्रप्रकृति जगत्का कारण है। औ—
४ पुरुषके भोगमोक्षके निमित्त प्रकृतिही प्रवृत्त होवैहै। पुरुष नहीं।
५ प्रकृतिके विषयरूप परिणामतैं पुरुषकूं भोग होवैहै ॥ औ—
६ बुद्धिद्वारा विवेकरूप प्रकृतिके परिणामतैं मोक्ष होवैहै।
७ यद्यपि पुरुष असंग है, ताकेविषै भोग-मोक्ष बनैं नहीं तथापि ज्ञान सुख-दुःख रागद्वेषसैं आदिलेके बुद्धिके परिणाम हैं। ता बुद्धिका आत्मासैं अविवेक है। विवेक नहीं। यातैं आत्मामैं

॥ ३९० ॥ १ सेश्वरीसांख्य औ २ निरीश्वरी-सांख्य भेदतैं **सांख्यमत द्विविध** है।

१ कर्दम औ देवहूतीका पुत्र जो भगवत्का अवतार कपिलदेव, तिसनैं **सेश्वरीसांख्य** मान्याहै ॥
२ अन्य कोई कपिल भयाहै, तिसनैं **निरीश्वरी-सांख्य** मान्याहै। ताके मतमैं ईश्वरका अंगीकार नहीं। किंतु प्रधान (प्रकृति)कूं जगत्का कारण मानिके पुरुषके भोगमोक्षका हेतु कह्याहै।

सो बनै नहीं। काहेतैं? प्रलयकालमैं सत्वादि-गुणनकी साम्य (मिलित)अवस्थाकूं **प्रधान** कहैहैं। सो जब सृष्टिकालमैं साम्यअवस्थाकूं त्याग करै, तब जगत्की उत्पत्ति होवै। सो प्रधान जातैं जड है, तातैं स्वतः साम्यअवस्थाके त्यागविषै प्रवीण होवै नहीं औ चेतनपुरुषकूं तिसके मतमैं असंग होनैतैं तिसका प्रधानके साथि संबंध नहीं है औ चेतनके संबंधविना जडतैं कार्यकी उत्पत्ति होवै नहीं। तातैं प्रधानरूप मायाकरि विशिष्ट चेतन अंतर्यामी ईश्वर है। सोई जगत्का कर्त्ता है। ऐसैं मानना योग्य है ॥ औ—

सांख्यमतमैं आत्माके नानात्व औ प्रकृतिकी नित्यताके अंगीकारकरि आत्माविषै सजातीयसंबंध औ विजातीय-संबंधकी प्राप्तितैं नानाआत्माके असंगपनैका कथन वी व्याघातदोषयुक्त है औ एक व्यापक आत्माके अंगीकार किये नानाअंतःकरणकरि भोगआदिकके असंकरकी व्यवस्था होवैहै। फेर आत्माके नानात्वके अंगीकारसैं अद्वैतश्रुतिके औ वक्ष्यमाण टिप्पणउक्त भेदबाधक-युक्तिक साथ विरोधसैं विना अन्यफल मिलै नहीं।

इसरीतिसैं **सांख्यमत असंगत** है।

आरोपित बंधमोक्ष हैं । परमार्थसैं नहीं ॥

८ अविवेकसिद्ध जो आत्मामैं भोग, तासैंही आत्माकूं सांख्यमतमैं भोक्ता कहैहैं । औ—

९ परमार्थसैं आत्मा भोक्ता नहीं । बुद्धिही भोक्ता है ॥

१० बुद्धि आत्मासैं भिन्न है ।

११ इस ज्ञानका नाम विवेक है ।

१२ ताके अभावका नाम अविवेक है ॥

इसरीतिसैं सांख्यमतमैं—

१३ आत्मा असंग है । औ—

१४ सुखादिक बुद्धिके परिणाम हैं । यातैं बुद्धिके धर्म हैं । औ—

१५ आत्मा नाना हैं ।

[सिद्धांती:—] सो वार्त्ता अत्यंतविरुद्ध है । जो सुखदुःख आत्माके धर्म होवैं तौ सुखदुःखके प्रतिशरीर भेद होनैतैं आत्माका भेद होवै । सो सुखदुःख आत्माके धर्म तौ हैं नहीं । किंतु बुद्धिके धर्म हैं । यातैं सुखदुःखके भेदसैं बुद्धिकाही भेद सिद्ध होवैहै । आत्माका भेद सिद्ध होवै नहीं ॥

जैसैं एकही व्यापक आकाशमैं नानाउपाधिके धर्म, उपाधि औ आकाशके अविवेकसैं प्रतीत होवैहैं; तैसैं एकही व्यापक आत्मामैं नानाबुद्धिके धर्म अविवेकसैं प्रतीत होवैहैं । यह वार्त्ता सांख्यमतमैं अंगीकार करनी उचित है ॥

आत्माकूं असंग मानिके नाना अंगीकार करनै निष्फल है ॥ औ—

कोई आत्मा मुक्त है । औरनकूं बंध है । इसरीतिसैं बंधमोक्षके भेदसैं जो आत्माका भेद अंगीकार करैं सो बी बनै नहीं । काहेतैं ? जो बंधमोक्ष आत्मामैं अंगीकार करैं तौ बंधमोक्षके भेदसैं आत्माका भेद सिद्ध होवै, सो बंधमोक्ष सांख्यमतमैं असंग आत्मामैं अंगीकार किये नहीं । किंतु बुद्धिके अविवेकसैं बंध अंगीकार कियाहै औ बुद्धिके विवेकसैं बंधका मोक्ष अंगीकार कियाहै ॥

जो वस्तु अविवेकसैं होवै औ विवेकसैं दूरि होवै सो वस्तु रज्जुसर्पकी न्यांई मिथ्या होवैहै । आत्माविषै बी बुद्धिके अविवेकसैं बंध है औ विवेकसैं दूरि होवैहै । यातैं बंध मिथ्या है ॥

जैसैं बंध मिथ्या है, तैसैं आत्माका मोक्ष बी मिथ्या है । जामैं बंध सत्य होवै, ताकाही मोक्ष सत्य होवैहै औ आत्मामैं बंध मिथ्या है । यातैं मोक्ष बी मिथ्याही है ॥

इसरीतिसैं मिथ्या जो बंधमोक्ष सो आकाशकी न्यांई एक आत्मामैं बी बनैहै ॥ तिन्हके भेदसैं आत्माका भेद सिद्ध होवै नहीं । यातैं सांख्यमतमैं आत्माका भेद[३९१] असंगत है ॥

॥३९१॥ इहां यह भेदकी बाधक युक्ति हैं:— 'एक आत्माका भेद अन्यआत्माविषै वर्त्तताहै' ऐसैं कहनैवाले प्रतिवादीकूं पूछा चाहियेः—१ सो भेद क्या भेदरहित आत्माविषै वर्त्तताहै ? २ किंवा भेद सहित आत्माविषै ?

१ प्रथमपक्षको कहैं तौ व्याघातदोष होवैगा । काहेतैं ? तिस भेदके आश्रय आत्माकूं भेदरहित बी कहताहै । फेर तिसविषै भेद वर्त्तताहै ऐसैं बी कहताहै । यातैं "मेरा पिता बालब्रह्मचारी है" इस वाक्यकी न्यांई यह तेरा वचन व्याघातदोषयुक्त होवैगा । औ—

२ 'जो भेदसहित आत्माविषै आत्माका भेद वर्त्तताहै' यह द्वितीयपक्ष कहैं, तौ (१) जिस भेदकरि सहित आत्मा है सो भेद औ यह भेद क्या परस्पर एक हैं ? (२) किंवा दो हैं ?

(१) जो एकही कहैं तौ आपहीकरि सहित आत्माविषै आपहीके वर्त्तनैतैं आत्माश्रयदोष होवैगा । औ—

(२) जो जिस भेदकरि सहित आत्मा है सो-

॥३४३॥ [पूर्वपक्षीः–] तैसैं न्यायमतमैं बी आत्माका भेद असंगत है। काहेतैं? यह न्यायका सिद्धांत हैः—

१ सुख, दुःख, ज्ञान, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, ज्ञानके संस्कार, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग औ विभाग, ये चतुर्दशगुण जीवरूप आत्माविषै हैं।

२ संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, ज्ञान, इच्छा, औ प्रयत्न ये अष्टगुण ईश्वरमैं हैं।

इतना भेद हैः–

(१) ईश्वरके ज्ञान, इच्छा औ प्रयत्न नित्य हैं। औ—

(२) जीवके तीनूं अनित्य हैं।

(१) ईश्वर व्यापक है औ नित्य है।

(२) जीव नाना हैं औ संपूर्ण व्यापक हैं। नित्य हैं। औ जीवका ज्ञान अनित्य है। यातैं जब ज्ञान गुण होवै तब तौ जीव चेतन है औ ज्ञानगुणका नाश होवै तब जडरूप रहैहैं ॥

३ ईश्वरजीवकी न्यांई आकाश, काल, दिशा औ मन नित्य हैं ॥ औ–

४ पृथिवीजलतेजवायुके परमाणु नित्य हैं। जो झरोखेमैं सूक्ष्मरज प्रतीत होवैहै, ताके छठै भागका नाम परमाणु है। सो परमाणु आत्माकी न्यांई नित्य हैं।

५ और बी जातिसैं आदिलेके कितनै पदार्थ न्यायमतमैं नित्य हैं।

वेदविरुद्धसिद्धांतका बहुत लिखनैका जिज्ञासुकूं उपयोग नहीं। यातैं लिखे नहीं ॥

६ "मैं मनुष्य हूं, ब्राह्मण हूं" ऐसी जो देहविषै आत्मभ्रांति तासैं रागद्वेष होवैहै। ता रागद्वेषतैं धर्मअधर्मके निमित्त प्रवृत्त होवैहै। तिन्हतैं ? शरीरके संबंधद्वारा सुखदुःख होवैहै। इसरीतिसैं न्यायमतमैं आत्माकूं संसारका हेतु भ्रांतिज्ञान है ॥

७ सो भ्रांतिज्ञान तत्त्वज्ञानसैं दूरि होवैहै।

आत्माका विशेषणरूप भेद, ये दोनूं परस्परभिन्न हैं ऐसैं कहैं तौ—

[१] तिस आत्माके विशेषणरूप भेदकूं बी भेदरहित आत्माविषै तौ रहना संभवै नहीं। किंतु भेदसहित आत्माविषै रहना कहाचाहिये। यातैं आत्माविषै प्रथमभेदकी स्थितिअर्थ द्वितीयभेदकूं विशेषण कहै औ फेर द्वितीयभेदकी स्थितिअर्थ प्रथमभेदकूं विशेषण कहै तौ परस्परकी स्थितिअर्थ परस्परकी अपेक्षा होनैतैं **अन्योन्याश्रयदोष** होवैगा। औ—

[२] जो आत्माविषै द्वितीयभेदकी स्थितिअर्थ ताके आश्रय आत्माकूं भेदसहित करनैकूं ताका विशेषण तृतीयभेद मानैं तौ तिस तृतीयभेदकी स्थितिअर्थ बी पूर्वकी न्यांई आत्माकूं भेदसहित कियाचाहिये। जो तिस तृतीयभेदकी स्थितिअर्थ ताके आश्रय आत्माका विशेषण प्रथमभेद कहैं तौ प्रथमभेदकूं द्वितीयकी औ द्वितीयकूं तृतीयकी। फेर तृतीयकूं प्रथमभेदकी अपेक्षाके होनैतैं चक्रकी न्यांई भ्रमणरूप **चक्रिकादोष** होवैगा। औ—

[३] जो तृतीयभेदकी स्थितिअर्थ भेदके आश्रय आत्माकूं भेदसहित करनैकूं ताका विशेषणरूप अन्य-चतुर्थभेद कहै। फेर चतुर्थभेदकी स्थितिअर्थ पंचमभेद कहै तौ प्रमाणरहित भेदकी धारणरूप **अनवस्थादोष** होवैगा।

यातैं आत्माका परस्परभेद (नानात्व) असंगत है, यह भेदबाधकयुक्ति नैयायिकआदिक सर्वभेदवादी-करि संमत भेदकी खंडक है।

८ देहादिक संपूर्ण पदार्थनसें आत्मा भिन्न है। या निश्चयका नाम तत्त्वज्ञान है ॥

(१) ता तत्त्वज्ञानसें "मैं ब्राह्मण हूं, मनुष्य हूं" यह भ्रांति दूरि होवैहै।

(२) भ्रांतिके नाशतें रागद्वेषका अभाव होवैहै।

(३) तिन्हके अभावतें धर्मअधर्मके निमित्त प्रवृत्तिका अभाव होवैहै।

(४) प्रवृत्तिके अभावतें शरीरसंबंधरूप जन्मका अभाव होवैहै औ प्रारब्धका भोगतें नाश होवैहै।

(५) शरीरसंबंधके अभावतें इकीस दुःखोंका नाश होवैहै ॥

९ सो दुःखका नाशरूपही न्यायमतमैं मोक्ष है।

एक शरीर औ श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना, घ्राण,

॥ ३९२ ॥ इहां यह विशेष हैः— नैयायिक मतमैं तत्त्वज्ञानका हेतु मनन कहाहै। "आत्मा इतरपदार्थनतें भिन्न है, आत्मा होनेतें। जो इतरपदार्थनतें भिन्न नहीं किंतु इतरपदार्थरूप है, सो आत्मा नहीं। जैसें घट है" ॥ इस व्यतिरेकिअनुमानतें आत्मामैं इतरपदार्थनके भेदका अनुमितिज्ञान होवै, सो मनन कहिहै ॥ औ—

इतरपदार्थनके ज्ञानविना आत्मामैं इतरपदार्थनके भेदका ज्ञान संभवै नहीं। काहेतें? जिसका अन्यविषे भेद होवै सो भेदका प्रतियोगी है। तिस प्रतियोगीके ज्ञानविना भेदज्ञान होवै नहीं। यातें आत्मामैं इतरपदार्थनके भेदकी अनुमितिरूप मननका उपयोगी इतरपदार्थनका निरूपण बी तत्त्वज्ञानका उपयोगी है, ऐसें मानतेहैं।

सो संभवै नहींः। काहेतें? श्रवण किये अर्थके निश्चयके अनुकूल जे प्रमेयमतसंदेहकी निवर्तक युक्तियां हैं, तिनके चिंतनकूं मनन कहैहैं औ भेदज्ञानसें अनर्थ होवैहै। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इत्यादिश्रुतिवाक्यनतें अभेदमैं सकलवेदका तात्पर्य है। 'द्वितीयाद्वै भयं भवति' "मृत्योः स मृत्युमाप्नोति। य इह नानेव पश्यति' इत्यादि वाक्यनतें भेदज्ञानकी निंदा करीहै। यातें भेदज्ञानकूं साक्षात् वा तत्त्वज्ञानद्वारा पुरुषार्थजनकता संभवै नहीं ॥ औ—

मननपदसें बी आत्मासें इतरपदार्थनके भेदकी प्रतीतिरूप अर्थ होवै नहीं। किंतु मननपदका चिंतनमात्र अर्थ है। भाष्यांतरके अनुसारसें अभेदचिंतनमैं मननशब्दका पर्यवसान (परिसमाप्ति) होवैहै। किसी प्रकारकरि आत्मासें इतरपदार्थनका भेद मननशब्दका अर्थ संभवै नहीं ॥

किंवा १ इतरपदार्थनके ज्ञानसैंही जो पुरुषार्थके (मोक्षके) साधन तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होवै तौ सकलपुरुषनकूं तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हुईचाहिये। २ अथवा किसीकूं नहीं होवैगी। सो दिखावैहैं—

१ जो इतरपदार्थनका सामान्यज्ञान तत्त्वज्ञान (आत्मज्ञान) विषे अपेक्षित होवै तौ सामान्यज्ञान सर्वपुरुषनकूं है। यातें इतरपदार्थनके ज्ञानपूर्वक इतर पदार्थनके भेदज्ञानतें सर्वकूं तत्त्वज्ञान हुयाचाहिये। औ—

२ सर्वपदार्थनका असाधारणधर्म (एकधर्मीविषे धर्मस्वरूप जो विशेषरूप) है तिस विशेषरूपतें इतर पदार्थनका ज्ञान तत्त्वज्ञानविषे अपेक्षित होवै तौ सर्वज्ञ ईश्वरविना असाधारणधर्मतें सकलइतरपदार्थनका किसीकूं बी ज्ञान संभवै नहीं। यातें सर्व इतरपदार्थनके ज्ञानतें आत्माके इतरपदार्थनतें भेदज्ञानके अभावतें सकलअनात्मपदार्थनतें भिन्न आत्माका ज्ञानरूप तत्त्वज्ञान किसीकूं नहीं होवैगा।

यातें नैयायिक मतमैं मान्या जो आत्माका अन्यआत्मातें औ अनात्मातें भेदज्ञान सो संभवै नहीं। याहीतें देहादिकविषे आत्मभ्रांतिका अभाव, तातें रागद्वेषका अभाव, तातें धर्मअधर्मके निमित्त प्रवृत्तिका अभाव, तातें शरीरसंबंधरूप जन्मका अभाव, तातें इकीसप्रकारके दुःखका नाशरूप मोक्ष नैयायिकोंके अनुसारीकूं नहीं होवैगा। किंतु महावाक्यरूप। श्रुतिअर्थके गोचर अभेदज्ञानही कारणसहित अनर्थकी निवृत्तिपूर्वक परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्षका हेतु है

औ मन ये पट्इंद्रिय औ पट्इंद्रियोंके विषय औ पट्इंद्रियके ज्ञान औ सुखदुःख, ये इकीस-दुःख हैं।

शरीरादिक बी दुःखके जनक हैं, यातैं दुःख कहियेहैं। औ—

स्वर्गादिकनका सुख बी नाशके भयतैं दुःखका हेतु है। यातैं दुःख कहियेहै।

यद्यपि न्यायमतमैं श्रोत्र औ मन नित्य हैं, तिन्हका नाश बनै नहीं, तथापि, जिसरूप

॥ ३९३ ॥ न्यायमतमैं श्रोत्रकूं आकाशरूप मानिके नित्य मान्याहै।

सो बनै नहीं:— काहेतैं?

१ श्रुतिविषै नेत्रादिकनकी न्याईं आकाशतैं श्रोत्रकी उत्पत्ति कहीहै। जो उत्पत्तिवान् वस्तु होवै ताकी नित्यता संभवै नहीं॥ औ—

२ श्रोत्रकूं आकाशरूप बी कहना संभवै नहीं। काहेतैं? कर्णगोलकवृत्ति जो आकाश है ताकूं न्यायमतमैं श्रोत्र कहैहैं, सो अयुक्त है। काहेतैं? कर्णगोलकवृत्ति आकाशके होते बी कदाचित् श्रवणक्रियाका मंदपना किंवा अभाव होवैहै, सो नहीं हुवाचाहिये। यातैं पंचीकृत भूतरूप जो कर्णगोलकवृत्ति आकाश है, तिसतैं भिन्न अपंचीकृत भूतरूप आकाशका कार्य श्रोत्रइंद्रिय उत्पत्तिनाशवाला होनैतैं अनित्य है॥

३ किंवा दुर्जनतोषन्यायकरि ताकूं आकाशरूप मानैं तौ बी ताकी नित्यता संभवै नहीं। काहेतैं? 'आत्मन आकाशः संभूतः'(आत्मासैं आकाश होता-भया) इस तैत्तिरीयके वाक्यमैं आकाशकी उत्पत्ति कहिके अनित्यता सूचन करीहै। जब आकाशकी बी अनित्यता सिद्ध भई तब तिसके एकदेशरूप श्रोत्रकी अनित्यता है यामैं क्या कहनाहै?

इसरीतिसैं श्रोत्रकी नित्यता संभवै नहीं।

तैसैं मनकी नित्यता बी बनै नहीं। काहेतैं?

१ मनकूं परमाणुरूप मानिके नित्य कहैं तिनकूं पूछ्या चाहियेः— (१) मन निरवयव है? (२) किंवा सावयव है?

(१) जो निरवयव कहैं तौ तिसविषै अवयवरूप देशके अभावतैं तिसका आत्माके साथि संयोग संभवै नहीं। यातैं स्वतः जडआत्माविषै मनके संयोगसैं जन्य ज्ञानगुणकी उत्पत्तिके अभावतैं जगत्की अंधताका प्रसंग होवैगा। औ—

(२) जो मन सावयव है तौ तिसविषै घटपटादिककी न्याईं अनित्यता निर्विवादतैं सिद्ध भई।

२ किंवा मन नित्य होवै तौ ताका सुषुप्तिविषै विशेषज्ञानकी जनकतारूप लिंगके अभावतैं गम्य अपनै उपादान अज्ञानमैं लय होवैहै सो नहीं हुवाचाहिये। यातैं बी मन अनित्य है॥ औ—

३ जो नैयायिक कहैं:—आत्मा औ मनका संयोग ज्ञानका हेतु है सो संयोग एककी क्रियातैं किंवा दोकी क्रियातैं होवैहै? विभुआत्मामैं तौ क्रिया कदे बी होवै नहीं औ मोक्षकालमैं किंवा सुषुप्तिकालमैं भोगके सन्मुख अदृष्टके अभावतैं मनमैं बी क्रिया होवै नहीं। यातैं आत्माके साथि मनके संयोगके अभावतैं सुषुप्ति आदिकविषै विशेष ज्ञान होवै नहीं।

सो कथन बनै नहीं। काहेतैं? व्यापक जो वस्तु है तिसके साथि सर्ववस्तुनका क्रियासैं विना बी सदा संयोग रहैहै। जैसैं व्यापक आकाशके साथि क्रियारहित पर्वतका किंवा वृक्षपाषाणआदिकनका सदाही संयोग रहैहै। तैसैं मोक्षकालमैं किंवा सुषुप्तिमैं जो क्रियारहित बी मन विद्यमान होवै तौ तिसके विभुआत्माके साथि संयोगकी सिद्धितैं विशेषज्ञान हुयाचाहिये औ होता नहीं। यातैं सुषुप्ति आदिक कालविषै अवश्य मनका विलय होवैहै। फेरि जाग्रत्कालमैं ताकी उत्पत्ति होवैहै।

इसरीतिसैं उत्पत्तिनाशवान् होनैतैं मन अनित्य है। ताकी नित्यताका कथन प्रलापमात्र है।

करिके श्रोत्र मन दुःखके हेतु हैं। तिसरूपका नाश होवैहै।

पदार्थनके ज्ञानकी उत्पत्तिकरिके दुःखके हेतु हैं, सो पदार्थनका ज्ञान मोक्षकालमैं श्रोत्र औ मन करे नहीं। काहेतैं? जो कर्णगोलकमैं स्थित आकाश है, सो श्रोत्र कहियेहै। ता कर्णगोलकका मोक्षकालमैं अभाव है। यातैं आकाशरूप श्रोत्रइंद्रिय है बी। परंतु गोलकके अभावतैं ज्ञान होवै नहीं।

इसरीतिसैं ज्ञानका जनक जो श्रोत्रइंद्रियका स्वरूप, सोई दुःख है औ ताकाही नाश होवैहै॥ औ—

१० आत्माके साथि मनके संयोगतैं ज्ञान होवैहै। सो मनका संयोग न्यायसिद्धांतमैं (१) एककी क्रियातैं होवैहै (२) अथवा दोकी क्रियातैं संयोग होवैहै॥

(१) जैसैं श्याजवृक्षका संयोग एकश्याजकी क्रियातैं होवैहै। औ—

(२) दोमेषनका संयोग दोकी क्रियातैं होवैहै॥

तैसैं विभूआत्मामैं तौ क्रिया कदै बी होवै नहीं औ मोक्षकालमैं मनमैं बी क्रिया होवै नहीं। यातैं संयोगवान् मनकाही मोक्षकालमैं अभाव होवैहै॥ और—

॥ ३४४ ॥ कोई एकदेशी त्वचाके साथ मनके संयोगकूं ज्ञानका हेतु कहैहै। आत्माके संयोगकूं नहीं॥ सुषुप्तिमैं पुरीतत् नाम नाडीविषै मन प्रवेश करैहै। त्वचासैं मनका संयोग है नहीं। यातैं सुषुप्तिमैं ज्ञान होवै नहीं। तिन्हके मतमैं त्वचासैं संयोगवाला मनही ज्ञानद्वारा दुःखका हेतु होनैतैं दुःख है। केवल मन नहीं॥ मोक्षमैं त्वचाके नाश होनैतैं ताके साथि

॥ ३९४ ॥ १ आत्माके साथि मनके संयोगतैं ज्ञान होवै तौ सुषुप्तिविषै तिस संयोगके अभावहुये जागरणकालमैं (उत्थानसमयमैं) होनैवाली सुख औ अज्ञानकी स्मृतिका मूलभूत अनुभव सिद्ध होवैहै। सो नहीं हुयाचाहिये।

२ किंवाः—आत्माके साथि मनके संयोगसैं जो ज्ञान होवै तौ न्यायमतमैं मनकूं अणुरूप मानैहैं। यातैं ताके संयोगसैं जन्य ज्ञान बी शरीरके एकदेशमैंही होवैगा। सारे शरीरमैं नहीं। यातैं सारे शरीरविषै भये कंटकवेधकी पीडाका भान न हुआचाहिये। औ—

३ जो मनकूं सिद्धांतकी न्यांई सारे शरीरविषै वर्त्तनैवाला मानै तौ यद्यपि सारे शरीरविषै पीडाका असंभव नहीं तथापि सुषुप्तिविषै सुख औ अज्ञानका सामान्यज्ञान है ताका असंभव होवैगा।

यातैं आत्माके साथि मनके संयोगतैं ज्ञान होवै नहीं। किंतु आत्माका स्वरूपभूत उत्पत्तिनाशसैं रहित ज्ञान नित्य है। ऐसैं मानना योग्य है।

॥ ३९५ ॥ कोई न्यायका एकदेशी त्वचाके साथि मनके संयोगकूं ज्ञानका हेतु कहैहै।

सो बी असंगत है। काहेतैं?—

१ जैसैं 'मनके साथि आत्माका संयोग ज्ञानका हेतु है' इस अर्थके माननैमैं कोई प्रमाण नहीं। तैसैं 'त्वचाके साथि मनका संयोग ज्ञानका हेतु है' इस अर्थके माननैमैं कोई श्रुतिआदिकप्रमाण नहीं।

२ जो प्रमाणकरि असिद्ध स्वकपोलकल्पित अर्थ माननै योग्य होवै तौ किसीनै कह्या किः—"मैंनै मृगतृष्णाके जलमैं स्नानकरिके आकाशके पुष्पका मुकुटकरिके औ शशशृंगका धनुषकरिके वंध्याका पुत्र संग्राममैं जाता देख्या" इस वचनका अर्थ बी मानना योग्य है। यातैं त्वचाके साथि मनका संयोग ज्ञानका हेतु नहीं।

३ किंवाः—सुषुप्तिविषै त्वचा औ मनके संयोगके अभाव हुये बी बुद्धिमानोंकी बुद्धिकरि गम्य सुख औ अज्ञानका सामान्यज्ञान होवैहै। सो नहीं हुवाचाहिये॥

यातैं त्वचा औ मनका संयोग ज्ञानका हेतु नहीं। किंतु आत्माका स्वरूपभूतही ज्ञान है। यह मानना योग्य है।

संयोग है नहीं। यातैं ज्ञान होवै नहीं। मोक्षकालमैं मन है बी। परंतु दुःखका हेतु जो ज्ञानका जनक त्वचासैं संयोगवाला मन, ताका संयोगके नाशतैं नाश होवैहै।

११इसरीतिसैं मोक्षकालमैं परमात्मासैं भिन्नही दुःखरहित होयके व्यापक आत्मा जडरूप स्थित होवैहै। काहेतैं? ज्ञानगुणतैं आत्माका प्रकाश होवैहै सो जीवका ज्ञान संपूर्ण इंद्रियजन्यही है। नित्य है नहीं। ता इंद्रियजन्य ज्ञानका मोक्षकालमैं नाश होवैहै, यातैं प्रकाशरहित जडरूप होयके आत्मा मोक्षकालमैं स्थित होवैहै।

यह न्यायका सिद्धांत है। औ—

॥ ३४५ ॥ न्यायमतमैं पूर्वउक्तप्रकारसैं सुख दुःख औ बंधमोक्ष आत्माकूं होवैहैं, यातैं आत्मा नाना हैं औ संपूर्ण व्यापक हैं।

सर्व अल्पपदार्थनसैं जो संयोग, सोई न्यायमतमैं व्यापकका लक्षण है औ सजातीय-विजातीय-स्वगत-भेदका अभाव, व्यापकका लक्षण नहीं। काहेतैं? न्यायमतमैं यद्यपि आत्मा निरवयव है। यातैं स्वगतभेदका तौ ताकेविषै अभाव है बी। परंतु सजातीय औ विजातीयके भेदका अभाव नहीं। किंतु—

१ सजातीय जो दूसरा आत्मा, ताका भेद आत्मामैं है। औ—

२ विजातीय घटादिकनका भेद बी आत्मामैं है॥

यातैं सजातीय-विजातीय-स्वगत-भेदका अभाव व्यापकका लक्षण नहीं। किंतु सर्वअल्प-

॥ ३९६ ॥ न्यायमतमैं आत्माकूं व्यापक मानिके जड मान्याहै।

१ सो श्रुतिविरुद्ध है। काहेतैं?

(१) "इहां (स्वप्नविषै) यह पुरुष स्वयंज्योति (स्वप्रकाश) होवैहै (तहां सूर्यादि ज्योतिनके अभावतैं स्पष्ट जान्या जावैहै)"। औ—

(२) "जो यह प्राणोंविषै हृदयमैं अंतर्ज्योति (प्रकाश)रूप पुरुष है"। औ—

(३) "सत्यज्ञानअनंतरूप ब्रह्म (परिपूर्णवस्तु) है"

इत्यादि अनेक श्रुतिवाक्यनमैं व्यापक आत्माकी चेतनरूपता सुनियेहै। औ—

यामैं युक्ति है, सो आगे ३५६ सैं ३५९ पर्यंतके अंकविषै ग्रंथकारनै कहीहै, यातैं 'आत्मा स्वरूपसैं जड है' यह न्यायकी उक्ति असंगत है॥

॥ ३९७ ॥ सिद्धांतमैं सजातीय-विजातीय-स्वगत-भेदका अभाव व्यापकका लक्षण मान्याहै, सो "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म (एकही अद्वितीय ब्रह्म है)" इस छांदोग्यके षष्ट अध्यायके वचनअनुसार है। इहां

१ "एकं"पदकरि सजातीयभेदका निषेध है।

२ "एव"पदकरि विजातीयभेदका निषेध है।

३ "अद्वितीयं"पदकरि स्वगतभेदका निषेध है।

इसीही लक्षणके अनुसार देशकालवस्तुकृत अंततैं रहित बी व्यापकका लक्षण है॥ इहां—

१ "एकं"पदकरिके देशकृत अंतका निषेध है। काहेतैं? जो वस्तु परिच्छिन्न है सो नाना होवैहै औ जो व्यापक है सो नाना नहीं। किंतु आकाशकी न्यांई एक है। आत्मा जातैं एक है यातैं परिच्छिन्न नहीं। किंतु व्यापक है। याहीतैं आत्मा देशकृतअंततैं रहित है औ न्यायमतमैं नानाव्यापक कहेहै सो अद्वैतश्रुति औ वक्ष्यमाणयुक्ति औ लोकानुभवसैं विरुद्ध है। उक्तश्रुतिगत एकपदकरि आत्माविषै देशकृतअंतका निषेध किया। औ—

२ निश्चयके वाचक "एव" पदकरि आत्माकी निरपेक्षव्यापकताके कथनतैं आत्माविषै कालकृत अंतका निषेध किया। औ—

३ "अद्वितीय"पदकरि भेदके प्रतियोगी (निरूपक) अन्यवस्तुके निषेधतैं आत्माविषै वस्तुकृत अंतका निषेध किया।

इसरीतिसैं सिद्धांतउक्त उभयविध व्यापकका लक्षण श्रुतिअनुसार है॥

॥ ३९८ ॥ यह न्यायमतउक्त व्यापकका लक्षण श्रुति युक्ति औ लोकानुभवसैं विरुद्ध है॥

पदार्थनसैं संयोगही व्यापक लक्षण है । याकेविषै—

कोई शंका करैहै:—न्यायमतमैं आत्माकी न्याई आकाशकालदिशा बी व्यापक हैं औ परमाणु सूक्ष्म हैं । निरवयव हैं । तिनसैं सर्व व्यापक पदार्थनका संयोग बनै नहीं । काहेतें? जो परमाणु सावयव होवैं तब तौ किसी देशमैं आत्माका संयोग होवै औ किसी देशमैं अन्य-व्यापक पदार्थनका संयोग होवै । सो परमाणु सावयव हैं नहीं । किंतु निरवयव हैं औ अति-सूक्ष्म हैं । तिन्हके साथि एकही देशमैं सर्व-व्यापक पदार्थनका संयोग होवैगा । सो बनै नहीं । काहेतें? जो एकके संयोगसैं स्थान निरुद्ध है । ता देशमैं अन्यपदार्थका संयोग बनै नहीं । यातें नानापदार्थनकूं व्यापकता बनै नहीं । एकही कोई पदार्थ व्यापक बनैहै ॥

यह शंका बनै नहीं । काहेतें? जो सावयववस्तुका संयोग है, सो तौ अन्यके संयोगका विरोधी है ।

१ जैसैं जा पृथिवीदेशमैं हस्तका संयोग होवै तादेशमैं पादका संयोग होवै नहीं औ निरवयवका संयोग स्थानकूं रोकै नहीं । यातें अन्यके संयोगका विरोधी नहीं । यह वार्त्ता अनुभवसिद्ध है ॥

२ जैसैं घटके जा देशमैं आकाशका संयोग है, ता देशमैंही कालका औ दिशाका संयोग बी है । जो कोई घटका देश आकाशकाल-दिशासैं बाहिर होवै तौ ता देशमैं आकाश-काल दिशाका संयोग होवै नहीं । सो बाहरि तौ कोई देश है नहीं । किंतु सर्वपदार्थनके सर्वदेश आकाशकालदिशामैंही हैं । यातें सर्वपदार्थनके सर्वदेशनविषै आकाशकालदिशाका संयोग है ॥

इसरीतिसैं परमाणुविषै बी एकही देशमैं नानानिरवयव विभुका संयोग बनैहै । कोई दोष नहीं । यातें आत्मा नाना हैं औ संपूर्ण व्यापक हैं ॥

॥३४६॥ [सिद्धांती:—] सर्वकौं सर्वपदार्थनसैं संयोग है । यह न्यायका सिद्धांत है । सो समीचीन नहीं । काहेतें? जो व्यापक आत्मा नाना अंगीकार करैं तौ सर्वशरीरमैं सर्वआत्माका संबंध अंगीकार करना होवैगा । यातें कौन शरीर किसका है । यह निश्चय नहीं होवैगा । किंतु एकएक आत्माके सर्वशरीर हुयेचाहिये ।

जो ऐसैं कहै:—जाके कर्मसैं जो शरीर उत्पन्न हुआहै ता आत्माका सो शरीर है ।

सो बी बनै नहीं । काहेतें? कर्म जा शरीर-सैं होवैहै ता कर्म करनेवाले पूर्वशरीरमैं बी सर्वआत्माका संबंध है । यातें कर्म बी सर्व-आत्माकेही होवैंगे । एकके नहीं ।

और ऐसैं कहै:—जा आत्माके मनसहित-शरीर है, ता आत्माका सो शरीर है ॥

सोबी बनै नहीं । काहेतें?

१ शरीरकी न्याई मनके साथ बी सर्व-आत्माका संबंध है । ताकेविषै यह निश्चय होवै नहीं । जो कौनसा मन किस आत्माका है । किंतु सर्वआत्माके सर्वमन हुएचाहिये ।

२ तैसैं इंद्रिय बी सर्वआत्माके सर्वही होवैंगे ।

३ बाहरिके पदार्थनविषै "यह मेरा है । यह औरका है" ऐसा व्यवहार बी शरीरनिमित्तक है । सो शरीर सर्व-आत्माके सर्व हैं । यातें बाहरिके पदार्थ बी सर्वआत्माके सर्व हुएचाहिये । और

॥ ३९९ ॥ सर्वव्यापक ।

॥ ४०० ॥ सर्वआत्माका व्यापकवस्तुसैं भिन्न सर्व परिच्छिन्न देह इंद्रिय मन परमाणु आदिक वस्तुन-सैं संयोग है । यह इस वाक्यका अर्थ है ॥

जो ऐसैं कहै:—जा आत्माकूं जा शरीरमैं अहंबुद्धि औ ममबुद्धि होवै ता आत्माका सो शरीर है, सो अहंबुद्धि औ ममबुद्धि एक है। यासैं सर्व आत्मामैं रहै नहीं। किंतु एकधर्म एकही धर्मीविषै रहैहै। यातैं एकही आत्माका शरीर है। जा आत्माका जो शरीर है ता शरीरके संबंधी मनइंद्रिय औ बाहरिके पदार्थ ता आत्माके हैं। यातैं व्यापक नाना आत्मा अंगीकार करनैमैं बी दोष नहीं।

सो वार्त्ता बी बनै नहीं। काहेतैं? यद्यपि अहंबुद्धि एकदेहमैं एकही आत्माकूं होवैहै तथापि सो न्यायमतमैं बनै नहीं। किंतु सर्वआत्माकूं एकदेहमैं अहंबुद्धि हुईचाहिये। काहेतैं? न्यायमतमैं बुद्धि नाम ज्ञानका है सो ज्ञान आत्मा औ मनके संयोगतैं होवैहै सो मनके साथि संयोग सर्वआत्माका है। यातैं मनके संयोगसैं जैसैं एकदेहमैं एकआत्माकूं अहंबुद्धि होवैहै तैसैं एकदेहमैं सर्वआत्माकूं अहंबुद्धि हुईचाहिये।

जो ऐसैं कहै:—यद्यपि मनका संयोग तौ सर्वआत्मासैं है तथापि जा आत्मामैं ज्ञानका जनक अदृष्ट है ता आत्माकूंही अहंबुद्धि होवैहै।

तौ बी सर्वकूंही ज्ञान हुवाचाहिये। काहेतैं? जो व्यापक नाना आत्मा अंगीकार करैं तौ एकशरीरकी शुभअशुभक्रियातैं शरीरमैं स्थित सर्वआत्मामैंही अदृष्ट हुये चाहिये। यह वार्त्ता पूर्व कही आये; यातैं व्यापक जो नाना आत्मा अंगीकार करैं तौ एकदेहमैं सर्वकूं सुखदुःखका भोग हुया चाहिये।

यातैं 'व्यापक नाना कर्त्ता भोक्ता आत्मा है' यह न्यायका सिद्धांत समीचीन नहीं। औ—

॥ ३४७ ॥ हमारे सिद्धांतमैं तौ कर्त्ता भोक्ता अंतःकरण है, सो अंतःकरण नाना हैं। व्यापक औ अणु नहीं। किंतु शरीरके समान ता अंतःकरणका परिमाण है॥ दीपकके प्रकाशकी न्यांई वडे शरीरकूं प्राप्ति होवै, तब अंतःकरणका विकास होवैहै औ न्यूनशरीरमैं संकोच होवैहै। यह वार्त्ता सिद्धांतबिंदुके व्याख्यानमैं मधुसूदनस्वामीनै प्रतिपादन करीहै। जा अंतःकरणका जा शरीरसैं संबंध है ता अंतःकरणकूं ता शरीरसैं भोग होवैहै।

जो अंतःकरणकूं व्यापक अंगीकार करैं तौ सर्वशरीर सर्वके होवैं औ भोग बी सर्वकूं होवै, सो व्यापक अंतःकरण नहीं। यातैं दोष नहीं॥ औ अंतःकरणकूं अणु अंगीकार करैं तौ शरीरके एकदेशमैं अंतःकरण रहैहै ऐसा अंगीकार करना होवैगा सो वार्त्ता बनै नहीं। काहेतैं? जो एककालमैंही पाद औ मस्तकमैं कंटकवेध होवै तौ दोनूं स्थानमैं एकही कालमैं पीडा होवैहै। सो नहीं हुईचाहिये। काहेतैं? जो अंतःकरण अणु होवै तौ एकही स्थानमैं एककालमैं रहै। यातैं जा स्थानमैं अंतःकरण होवै ता स्थानमैंही पीडा हुईचाहिये। दोनूं स्थानमैं नहीं॥

यातैं अंतःकरण अणु औ व्यापक नहीं; किंतु शरीरके समान है। यातैं कोई दोष नहीं।

अणु औ व्यापकसैं विलक्षण जो है, ताकूंही मध्यमपरिमाण कहैहैं॥ औ—

॥ ३४८ ॥ [पूर्वपक्षीः—] न्यायमतमैं किसीनवीननै ऐसा अंगीकार कियाहै:—

॥ ४०१ ॥ जैसैं नानाघटकूं व्यापक कहना निष्फल है तैसैं देहदेहविषैही कर्त्ता भोक्ता नाना आत्माकूं व्यापक कहना निष्फल है।

किंवा नानाअंतःकरणके अंगीकार किये भोगकी असंकरकी सिद्धितैं व्यापकआत्माकूं नाना कहना निष्प्रयोजन है॥

१ आत्मा नाना हैं, कर्त्ता भोक्ता हैं। व्यापक नहीं, यातैं भोगका संकर नहीं॥
२ अणु बी नहीं, यातें दोस्थानमें पीडाका असंभव बी नहीं।

किंतु जैसें वेदांतमतमें अंतःकरण मध्यमपरिमाण है तैसें आत्मा बी मध्यमपरिमाण है, ताकेविषे चतुर्दशगुण रहैहें।

॥ ३४९ ॥ [सिद्धांतीः-] **सो बी समीचीन नहीं। काहेतें ?**

१ जो आत्माकूं संकोचविकासवाला अंगीकार करैं तौ दीपकी प्रभाकी न्यांई आत्मा विकारी औ विनाशवाला होवैगा। यातें मोक्षप्रतिपादक शास्त्र औ साधन निष्फल होवैंगे। औ—

२ मध्यमपरिमाण अंगीकार करिके संकोचविकास अंगीकार नहीं करैं तौ कौनसे शरीरके समान आत्माकूं अंगीकार करैं, यह निश्चय होवै नहीं॥

३ जो मनुष्यशरीरके समान अंगीकार करैं तौ जब आत्मा हस्तीके शरीरकूं प्राप्त होवै, तब सर्वशरीरमें आत्मा नहीं होवैगा। यातें जा देशमें हस्तीके आत्मा नहीं है ता देशमें पीडा नहीं हुईचाहिये। औ—

४ हस्तीके शरीरके समान अंगीकार करै तौ तासैं औरशरीर वडे हैं, तिन्हके एकदेशमें पीडा नहीं हुईचाहिये औ सर्वसैं वड़ा किसीका शरीर है नहीं। जाके समान आत्मा अंगीकार करैं। औ—

५ सर्वसैं वडा विराट्का शरीर है; ताके समान जो आत्मा अंगीकार करैं तौ विराट्के शरीरके अंतर्भूत सर्वशरीर हैं। यातैं सर्व-आत्माका सर्वशरीरसैं संबंध होवैगा, ताकेविषे पूर्वदोष कहेही हैं। औ—

यह नियम हैः—जो मध्यमपरिमाणवस्तु होवै सो शरीरकी न्यांई अनित्य होवै है। यातें आत्मा बी अनित्य होवैगा औ अंतःकरणका तौ हमारे मतमें ज्ञानतें नाश होवैहै। यातें अनित्य है। मध्यमपरिमाण अंगीकार कियेसें दोष नहीं॥

इसरीतिसें नवीन तार्किकका मत बी समीचीन नहीं। औ—

॥ ३५० ॥ [पूर्वपक्षीः-] **जो कोई ऐसैं कहैः**— आत्मा नाना हैं औ अणु हैं।

[सिद्धांतीः-] **सो वार्त्ता बी बनै नहीं। काहेतें ?**

१ जो आत्माकूं कर्त्ताभोक्ता अंगीकार करैं तौ अंतःकरणके अणुपक्षमें जो दोष कह्या सो दोष होवैगा॥ औ—
२ कर्त्ताभोक्ता अंगीकार नहीं करैं तौ नानाआत्मा अंगीकार निष्फल होवैगा।

एकही व्यापक सर्वशरीरमें अंगीकार करना योग्य है। औ—

कर्त्ताभोक्ता अंगीकार नहीं करैं तौ अपने सिद्धांतका बी त्याग होवैगा। काहेतें ? अणुवादीका यह सिद्धांत हैः—ज्ञानसुखदुःखधर्मसें आदिलेके आत्माके धर्म हैं। यातैं जो आत्माकूं अणु अंगीकार करैं तौ जा शरीरदेशमें आत्मा नहीं है, सो देश मृतसमान है। ताकेविषै पीडादिक नहीं हुईचाहिये॥

॥ ३५१ ॥ **और जो ऐसैं कहैः**— यद्यपि आत्मा तौ शरीरके एकदेशमें है। परंतु कस्तूरीके गंधकी न्यांई ताका ज्ञान सारे शरीरमें

॥४०२ इहां यह रहस्य हैः—जातैं शरीरके अंतर्गत मनइंद्रियआदिक सर्वअल्पपदार्थनसैं आत्माका संयोग है। यातैं मध्यमपरिमाणवाले आत्माविषै वी न्यायसंप्रदायउक्त व्यापकका लक्षण संभवैहै।

व्याप्त है। यातैं सर्वशरीरविषै अनुकूलप्रतिकूलके संबंधकूं अनुभव कहैहै ॥

सो बी बनै नहीं। काहेतैं? यह नियम है:—जितनै देशमैं गुणवाला रहै तासैं बाहरि गुण रहै नहीं। किंतु गुणीमैंही गुण रहैहै ॥ जैसैं रूप घटादिकनतैं बाहरि रहै नहीं, तैसैं आत्मासैं बाहरि ज्ञान बी बनै नहीं। औ कस्तुरीके सूक्ष्मभाग जितनै देशमैं व्याप्त होवैं, उतनै देशमैंही गंध व्याप्त होवैहै। यातैं कस्तुरीका दृष्टांत बी बनै नहीं। यातैं "आत्मा अणु है"। यह पक्ष बी बनै नहीं ॥ औ—

कहूं श्रुतिमैं आत्मा अत्यंतअणुसैं बी अणु जो कह्याहै सो दुर्विज्ञेय है, यातैं कह्याहै ॥ जैसैं अत्यंतअणुवस्तुका मंददृष्टिपुरुषकूं ज्ञान होवै नहीं। तैसैं बहिर्मुखपुरुषकूं आत्माका बी ज्ञान होवै नहीं। यातैं अणुके समान है। यह श्रुतिका अभिप्राय है औ "आत्मा अणु है" यह अभिप्राय नहीं। काहेतैं? [403] बहुतस्थानमैं व्यापकरूप आपही वेदनै प्रतिपादन कियाहै। यातैं अणु नहीं ॥

इसरीतिसैं "व्यापक तथा मध्यमपरिणाम अथवा अणुआत्मा नाना हैं" यह कहना संभवै नहीं ॥

॥ ३५२ ॥ [404] परिशेषतैं एक व्यापक आत्मा है, ताकेविषै धर्मअधर्म सुखदुःख औ बंधमोक्ष जो अंगीकार करैं। तौ किसीकूं सुख औ किसीकूं दुःख, किसीकूं बंध, किसीकूं मोक्ष, ऐसा व्यवहार नहीं होवैगा। यातैं धर्मादिक बुद्धिके धर्म हैं ॥

यद्यपि बुद्धि जड है। यातैं ताकेविषै बी धर्मसुखादिक बनै नहीं। तथापि आत्माके धर्म नहीं हैं। इस अभिप्रायतैं बुद्धिके धर्म कहियेहैं औ "बुद्धिके धर्म हैं" याकेविषै अभिप्राय नहीं ॥

बुद्धि औ सुखादिक आत्मामैं अध्यस्त हैं ॥

१ जो वस्तु जामैं अध्यस्त होवैं, सो तामैं परमार्थसैं होवै नहीं। जैसैं सर्प रज्जुमैं अध्यस्त है, सो परमार्थसैं रज्जुमैं है नहीं ॥ तैसैं बुद्धि औ सुखादिक आत्मामैं हैं नहीं ॥ औ—

२ अध्यस्तवस्तु बी किसीका आश्रय होवै नहीं। यातैं बुद्धि बी सुखादिकनका आश्रय है नहीं। परंतु—

(१) अज्ञान तौ शुद्धचेतनमैं अध्यस्त है। औ—

(२) अंतःकरण अज्ञानउपहितमैं अध्यस्त है। औ—

(३) अंतःकरणउपहितमैं धर्मअधर्म सुखदुःख बंधमोक्ष अध्यस्त हैं ॥

इसरीतिसैं आत्मामैं धर्मादिकनके अधिष्ठान-

॥ ४०३ ॥ "अणोरणीयान् महतो महीयान्" या श्रुतिका यह अर्थ है:—

१ पृथिवीतैं जल सूक्ष्म है औ व्यापक है।
२ जलतैं तेज सूक्ष्म है औ व्यापक है।
३ तेजतैं वायु सूक्ष्म है औ व्यापक है।
४ वायुतैं आकाश सूक्ष्म है औ व्यापक है।
५ आकाशतैं माया सूक्ष्म है औ व्यापक है।
६ मायातैं आत्मा सूक्ष्म है औ व्यापक है। औ
७ इत्यादि श्रुतिनविषै आत्माकी सर्वतैं सूक्ष्मता औ व्यापकता कहीहै ॥

यह अर्थ उपदेशसहस्रीमैं भगवान्‌भाष्यकारनै प्रतिपादन कियाहै औ तिसके अनुसार हमनै विचारचंद्रोदयकी दशमकलाविषै युक्तिसहित लिख्याहै। यातैं 'आत्मा अणु है' यह कथन निष्फल है।

॥ ४०४ ॥ बहुतअर्थनके प्राप्तहुये अन्योंके निषेध भये अवशेष रहे एकअर्थविषै जो निश्चय होवै सो परिशेष कहियेहै। तिसपरिशेषतैं ॥

पनैका अंतःकरण उपाधि है । यातैं अंतः-करणके धर्म कहियेहैं ॥

॥ ३५३ ॥ जो अंतःकरणविशिष्टमैं धर्मादिक अध्यस्त कहैं तौ बनै नहीं । काहेतें? विशेपणयुक्तका नाम विशिष्ट है ॥ धर्मादिक अध्यासका अधिष्ठान जो आत्मा, ताका अंतःकरण जो विशेपण अंगीकार करैं तौ अंतःकरण बी धर्मसुखादिकनका अधिष्ठान होवैगा ॥ सो वार्त्ता बनै नहीं । काहेतें? मिथ्या-वस्तु अधिष्ठान होवै नहीं । यातैं आत्मामैं धर्मादिकनके अध्यासका अंतःकरण विशेपण नहीं । किंतु उपाधि है ॥

१ उपाधिका यह स्वभाव है:– आप तटस्थ होयके जितनै देशमैं आप होवै । उतनै देशमैं स्थित वस्तुकूं जनावै ॥ औ–

२ विशेपणका यह स्वभाव है:– जितनै देशमैं आप होवै उतनै देशमैं स्थित वस्तुकूं अपनै सहित जनावै ॥

१ विशेपणवान्कूं विशिष्ट कहैहैं । औ–

२ उपाधिवालेकूं उपहित कहैहैं ॥

इसरीतिसैं अंतःकरणविशिष्टमैं जो धर्मादि अध्यस्त कहैं तौ जितनै देशमैं अंतःकरण हैं ता देशमैं स्थित चेतनभाग औ अंतःकरण दोनूंवाकूं अधिष्ठानता होवै । सो अंतःकरण आप बी अध्यस्त है । यातैं अधिष्ठान बनै नहीं इस अभिप्रायतैं अंतःकरणउपहितमैं धर्मादिक अध्यस्त कहे ॥

यातैं "जितनै देशमैं अंतःकरण है उतनै देशमैं स्थित चेतनभागमात्रमैं अधिष्ठानता है । अंतःकरणमैं नहीं" यह वार्त्ता बनैहै ॥

॥ ३५४ ॥ तैसैं अंतःकरण बी अज्ञान-उपहितमैं अध्यस्त है । अज्ञानविशिष्टमैं नहीं ॥

इसरीतिसैं अध्यस्त जो धर्मादिक तिन्हका अधिष्ठान आत्मा है ॥

१ अध्यासके अधिष्ठानपनैकी अंतःकरण उपाधि है । यातैं बुद्धिके धर्म कहैहैं । औ–

२ अविवेकसैं अंतःकरण–आत्मा दोनूंवांविषै प्रतीत होवैहै । यातैं अंतःकरण-विशिष्ट जो प्रमाता, ताके धर्म कहैहैं ।

१ धर्मादिक अंतःकरणके धर्म होवैं ।

२ अथवा अंतःकरणविशिष्टप्रमाताके धर्म होवैं ।

३ अथवा रज्जूसर्प, स्वप्नके पदार्थ, गंधर्वनगर, नभनीलताकी न्यांई किसीके धर्म ना होवैं ।

सर्वप्रकारसैं आत्माके धर्म नहीं ॥

यद्यपि आत्मामैं अध्यस्त है तथापि जो वस्तु जामैं अध्यस्त होवै सो ताहीमैं परमार्थसैं होवै नहीं । यातैं रागद्वेप, धर्म अधर्म, सुखदुःख औ बंधमोक्षसैं रहित एकव्यापक आत्मा है ॥

अध्यस्त नाम कल्पितका है ॥

॥ ३५५ ॥ आत्मा सत् है ॥

सो आत्मा सत् है ॥

१ जा वस्तुका ज्ञानतैं अभाव होवै सो असत् कहियेहै ॥

२ जाकी निवृत्ति किसी कालमैं बी नहीं होवै सो सत् कहियेहै ॥

सर्वपदार्थनका औ तिनकी निवृत्तिका आत्मा अधिष्ठान है ॥

जो आत्माकी निवृत्ति होवै तौ ताका औरअधिष्ठान कह्या चाहिये । काहेतें?–

१ शून्यमैं निवृत्ति होवै नहीं ॥

२ जो आत्मा औ ताकी निवृत्तिका अन्य-अधिष्ठान अंगीकार करै तौ ताका औरअधिष्ठान अंगीकार करना होवैगा इसरीतिसैं अनवस्था होवैगी ॥ औरु–

आत्माकी जो निवृत्ति अंगीकार करै, ताकूं यह पूछैहैं:— १ जो आत्माकी निवृत्ति किसीनै अनुभव करीहै ? २ अथवा नहीं ?

१ जो ऐसैं कहैः—अनुभव करीहै ।

सो बनै नहीं । काहेतैं ? जो अनुभव करनैवाला है सोई आत्मा है औ अपना स्वरूप है, ताकी निवृत्तिका अनुभव अपनै मस्तकछेदनके अनुभवसमान है। यातैं आत्माकी निवृत्तिका अनुभव बनै नहीं ॥ औ—

२ ऐसैं कहै जोः— आत्माकी निवृत्ति तौ होवैहै । परंतु ताकी निवृत्तिका अनुभव किसीकूं नहीं ॥

तौ यह वार्त्ता सिद्ध हुई । जो आत्माकी निवृत्ति तौ होवै नहीं । काहेतैं ? जो वस्तु किसीनै अनुभव नहीं करी, सो वंध्यापुत्रके समान होवैहै ।

यातैं आत्माकी निवृत्ति होवै नहीं । याहीतैं आत्मा सत् है ॥ औ—

॥ ३५६ ॥ आत्मा चित् (चैतन्य) है ॥ ३५६—३५९ ॥

आत्मा चित् है ॥

प्रकाशरूप जो ज्ञान सो चित् कहियेहै ॥

१ जो अप्रकाशरूप आत्मा अंगीकार करैं तौ अनात्मजडवस्तुका प्रकाश कदै होवै नहीं ॥

२ जो अंतःकरण औ इंद्रियनसैं पदार्थनका प्रकाश कहैं तौ बनै नहीं। काहेतैं ? अंतःकरण औ इंद्रिय परिच्छिन्न हैं । यातैं कार्य हैं ॥

१ जो परिच्छिन्न होवै सो घटकी न्यांई कार्य होवैहै औ अंतःकरण इंद्रिय बी परिच्छिन्न है, यातैं कार्य हैं ॥

२ देशकालतैं जाका अंत होवै सो परिच्छिन्न कहियेहै ॥

३ जो कार्य होवै सो जड होवैहै ॥

अंतःकरण औ इंद्रिय बी जड हैं । तिनतैं किसी वस्तुका प्रकाश बनै नहीं । यातैं जो आत्मा सर्वका प्रकाश करैहै । सो प्रकाशरूप है ॥ और—

॥ ३५७ ॥ जो ऐसैं कहैं:—आत्मा प्रकाशरूप नहीं किंतु आत्मा तौ जड है औ ताकेविषै ज्ञानगुण है, ता ज्ञानतैं आत्मा औ अनात्माका प्रकाश होवैहै ॥ ताकूं यह पूछैहैं:— १ आत्माका ज्ञानगुण नित्य है ? २ अथवा अनित्य है ?

१ जो नित्य कहैं—

तौ आत्माका स्वरूपही ज्ञान सिद्ध होवैगा । काहेतैं ? यह नियम हैः—जो आत्मासैं भिन्न होवै, सो अनित्य होवैहै ॥ जो ज्ञानकूं आत्मासैं भिन्न अंगीकार करैं तौ अनित्यही होवैगा । यातैं नित्य मानिके आत्मासैं भिन्न ज्ञान हैं । यह कहना बनै नहीं । औ—

२ जो अनित्य अंगीकार करैं—

तौ घटादिकनकी न्यांई जड होवैगा ॥ जो अनित्यवस्तु होवै सो जड होवैहै । यातैं "ज्ञान अनित्य है" यह कहना बनै नहीं किंतु ज्ञान नित्यही है ॥ सो नित्यज्ञान आत्मस्वरूपही है ॥ जो अनित्य अंगीकार करैं तौ कदाचित् आत्मामैं ज्ञान होवै औ कदाचित् नहीं । यातैं आत्मासैं भिन्न बी ज्ञान होवै औ नित्य अंगीकार कियेसैं तौ भिन्न होवै नहीं ॥

॥ ४०५ ॥ अलुप्तप्रकाशकूं चित् कहैहैं ॥ चेतनरूप ज्ञानका लोप नहीं है । इस अर्थविषै यह श्रुति हैः—द्रष्टाकी (स्वरूपभूत) दृष्टिका लोप (नाश) नहीं है । अविनाशी होनैतैं ॥

जो गुण होवै सो गुणवान्‌विषै कदाचित् रहै औ कदाचित् नहीं बी रहै । जैसैं वस्त्रका नीलपीतगुण कदाचित् रहै औ कदाचित् नहीं रहै, यातैं जो गुण होवै सो आगमापायी होवैहै ॥ औ—

ज्ञानकूं नित्यता होनैतैं आगमापायी है नहीं यातैं आत्माका स्वरूपही ज्ञान है । औ—

॥ ३५८ ॥ ज्ञानकूं अनित्य कहैं तौ 'इंद्रिय अथवा अंतःकरणसैं ज्ञान उत्पन्न होवैहै' यह कहना होवैगा ।

सो बनै नहीं । काहेतैं ? सुषुप्तिमैं इंद्रियादिक तौ हैं नहीं औ सुखका ज्ञान होवैहै सो नहीं हुवा चाहिये ।

जो सुषुप्तिमैं सुखका ज्ञान अंगीकार नहीं करैं तौ जागिके 'मैं सुखसैं सोया' यह सुषुप्तिके सुखकी स्मृति होवैहै, सो नहीं हुईचाहिये । जा वस्तुका पूर्व ज्ञान होवै ताकी स्मृति होवैहै औ अज्ञातवस्तुकी स्मृति होवै नहीं औ सुषुप्तिके सुखकी जागिके स्मृति होवैहै, यातैं सुषुप्तिमैं सुखका ज्ञान होवैहै । ता ज्ञानके जनक इंद्रियादिक सुषुप्तिमैं हैं नहीं । यातैं नित्य है ।

ज्ञानकूं त्यागिके आत्मा कदै बी रहै नहीं, यातैं ज्ञान आत्माका स्वरूप है । जैसैं उष्णताकूं त्यागिके अग्नि कदै बी रहै नहीं, यातैं उष्णता वह्निका स्वरूप है, तैसैं ज्ञान बी आत्माका स्वरूप है । जो आगमापायी होवै सो गुण होवैहै । उष्णता औ ज्ञान आगमापायी हैं नहीं, यातैं अग्नि औ आत्माके स्वरूप हैं ।

जो वस्तु कदाचित् होवै औ कदाचित् न होवै सो आगमापायी कहियेहै ।

॥ ३५९ ॥ उत्पत्ति औ विनाश अंतःकरणकी वृत्तिके होवैहैं, ज्ञानके नहीं ॥

१ आत्मस्वरूप जो ज्ञान है सो विशेषव्यवहारका हेतु नहीं । किंतु ज्ञानसहित वृत्ति अथवा वृत्तिमैं आरूढ ज्ञान व्यवहारका हेतु है । यह अवच्छेदवादकी रीति है । औ—

आभासवादमैं आभाससहित वृत्तिसैं व्यवहार होवैहै । आभासद्वारा अथवा साक्षात्वृत्तिद्वारा आत्मस्वरूपज्ञानसैंही सर्व व्यवहार सिद्ध होवैहै । नहीं तौ होवै नहीं ।

इसरीतिसैं सर्वका प्रकाशक ज्ञानस्वरूप आत्मा है । यातैं चित् है । औ—

॥ ३६० ॥ आत्मा आनंदरूप है ॥ ३६०—३६३ ॥

आत्मा आनंदरूप है ।

जो आत्मा आनंदरूप नहीं होवै तौ विषयसंबंधसैं स्वरूपआनंदका भान होवैहै, सो नहीं हुयाचाहिये । विषयमैं आनंद नहीं । यह वार्त्ता पूर्व कहीहै ।

जो विषयमैं आनंद होवै तौ जा विषयतैं एकपुरुषकूं सुख होवै तासैंही अन्यकूं दुःख होवैहै । जैसैं अग्निके स्पर्शतैं अग्निकीटकूं औ सर्पसिंहके रूप देखनैतैं सर्पनीसिंहनीकूं आनंद होवैहै औ अन्यपुरुषनकूं दुःख होवैहै सो नहीं हुयाचाहिये[४०६] औ सिद्धांतमैं तौ अग्निकीटकूं

॥ ४०६ ॥ जातैं एकही विषयतैं किसीकूं सुख होवैहै औ किसीकूं दुःख होवैहै । यातैं सो विषय नियमतैं अपनी इच्छातैं रहित किंवा इच्छासहित सर्व पुरुषनकूं सुखका हेतु नहीं । किंतु विषयकी इच्छासहित पुरुषकूंही अपनी प्राप्तिसैं इच्छाके तिरस्कारद्वारा अंतर्मुख भई वृत्तिमैं प्रियमोदप्रमोदके पर्यायरूप आत्मस्वरूप आनंदके प्रतिबिंबमैं निमित्त है । यातैं विषयमैं आनंदकी कारणताका व्यभिचार है । औ—

अग्निस्पर्शकी इच्छा होवै, तब चंचलबुद्धिमैं स्वरूपआनंदका भान होवै नहीं। अग्निसंबंधतैं क्षणमात्र इच्छा दूरि होयके निश्चलबुद्धिमैं स्वरूपआनंदका भान होवैहै। अन्यपुरुषनकूं अग्निसंबंधकी इच्छा है नहीं किंतु अन्यपदार्थनकी इच्छा है। तिन पदार्थनकी इच्छा अग्निसंबंधसैं दूरि होवै नहीं, यातैं चंचलअंतःकरणमैं अग्निसंबंधसैं आनंद होवै नहीं। याकेविषै—

॥ ३६१ ॥ यह शंका होवैहै:—जो इच्छारूप अंतःकरणकी वृत्ति है सो तौ विषय प्राप्तिसैं नाशकूं प्राप्त होयगई औ अन्यवृत्तिका कोई निमित्त है नहीं, यातैं उत्पत्ति हुई नहीं औ वृत्तिसैं विना स्वरूपआनंदका भान होवै नहीं; यातैं विषयमैंही आनंद है ॥

सो शंका बनै नहीं। काहेतैं?

१ यद्यपि इच्छारूप तौ अंतःकरणकी वृत्तिका अभाव है सो इच्छारूप वृत्ति होवै तौ बी ताकेविषै आनंद प्रकाश होवै नहीं। काहेतैं? इच्छारूप वृत्ति राजस है औ आनंदका प्रकाश सात्विकवृत्तिमैं होवैहै। तथापि वांछितपदार्थ जो मिल्याहै ताके स्वरूपकूं विषय करनै वास्ते जो ज्ञानरूप अंतःकरणकी वृत्ति है सो सात्विक है। काहेतैं? सत्वगुणसैं ज्ञान होवैहै यह नियम है। ता सात्विक वृत्तिमैं आनंदका भान होवैहै। परंतु सो ज्ञानरूप वृत्ति बहिर्मुख है। ताके पृष्ठभागमैं स्थित जो अंतःकरणउपहित चेतनस्वरूप आनंद, ताका तिस वृत्तिसैं ग्रहण होवै नहीं। यातैं विषयउपहित चेतनरूप आनंदका भान होवैहै, सो विषयउपहितचेतन आत्मासैं भिन्न नहीं। यातैं आत्मानंदकाही विषयमैं भान कहियेहै ॥ ता ज्ञानरूप वृत्तिविषै विषयके साथ नेत्रादिकनका संबंधही निमित्त है ॥

२ अथवा ज्ञानरूप जो बहिर्मुखवृत्ति तासैं अन्यअंतर्मुखवृत्ति होवैहै। ताकेविषै अंतःकरणउपहितचेतनरूप आनंदकाही भान होवैहै। यह उत्तमसिद्धांत है। ता वृत्तिकी उत्पत्तिमैं इच्छादिकनका अभावही निमित्त है। जैसैं इच्छादिकनतैं रहित जो एकांतमैं उदासीनपुरुष स्थित है, ताकूं बहिर्मुखज्ञानरूपतैं कोई वृत्ति होवै नहीं। आनंदका भान होवैहै। यातैं इच्छादिकनके अभावरूप निमित्ततैं अंतर्मुखवृत्ति आनंद ग्रहण करनैवाली होवैहै। तासैं वांछितविषयके लाभसैं इच्छादिकनका अभाव होनैतैं ज्ञानसैं अनंतर अंतर्मुखवृत्ति होवैहै। तिसतैं अंतःकरणउपहित आनंदकाही ग्रहण होवैहै।

सो स्वरूपआनंदका ग्रहण औ विषयका ज्ञान अत्यंत अव्यवहित है, यातैं पुरुषकूं ऐसी भ्रांति होवैहै:—"मैंने विषयमैं आनंद अनुभव

विषयकी प्राप्तिसैं किंवा एकांतदेशके सेवनतैं होता जो है इच्छाका अभाव, सो प्रतिबिंबरूप सुखका नियमित कारण है।

जो आत्मा आनंदरूप नहीं होवै तौ अंतर्मुखवृत्तिविषै जो आनंद होवैहै सो नहीं हुया चाहिये। यातैं आत्मा आनंदरूप है। यह सारे प्रकरणका निष्कर्ष (निचोड) है।

॥ ४०७ ॥ एकाग्रतायुक्त सात्विकीवृत्ति। याहीकूं प्रियमोद औ प्रमोदवृत्ति बी कहतेहैं।

॥ ४०८ ॥ जैसैं श्वान हड्डीकूं चावताहै, तिसकरि अपनै मुखके मसोडेआदिक टूटे अवयवनसैं रुधिर निकसताहै ताकूं-प्राशन करिके "यह रुधिर मुझकूं हड्डीमैंसैं प्राप्त भयाहै" ऐसैं मानताहै। तैसैं वांछित विषयकी प्राप्तिरूप निमित्तसैं इच्छाकी निवृत्ति

कियाहै" । प्रथमपक्षसैं यह पक्ष उत्तम है। काहेतैं ? जो विषयका ज्ञानरूप वृत्ति है तासैं अंतःकरणउपहित आनंदका तौ भान बनै नहीं। यातैं विषयउपहित आनंदका भान होवैगा तौ मार्गमैं वृक्षका जो ज्ञानरूप वृत्ति है, सो बी सात्विक है। तासैं बी वृक्षउपहित चेतनस्वरूप आनंदका भान हुवा चाहिये। तैसैं सर्वज्ञानसैं ज्ञेयउपहित चेतनरूप आनंदका भान हुवा चाहिये, यातैं अनात्मवस्तुका ज्ञानरूप जो बहिर्मुखवृत्ति तासैं ज्ञेयउपहित चेतनस्वरूप आनंदका ग्रहण होवै नहीं।

इसरीतिसैं विषयके संबंधसैं आत्मस्वरूपानंदका भान होवैहै। जो आत्मा आनंदरूप नहीं होवै तौ विषयसंबंधसैं आनंदका भान बनै नहीं। यातैं आत्मा आनंदरूप है ॥ औ—

॥ ३६२ ॥ आत्माका संबंधी जो वस्तु है ताकेविषै प्रेम होवैहै। तासैं सन्निहितमैं अधिक प्रेम होवैहै॥ इसरीतिसैं बाहिरबाहिरके पदार्थनकी अपेक्षातैं अंतरअंतरके पदार्थनमैं अधिकप्रीति है।

१ परंपरातैं आत्माका संबंधी जो पुत्रका मित्र तामैं प्रीति होवैहै।

२ पुत्रके मित्रकी अपेक्षातैं पुत्रमैं अधिकप्रीति होवै है ॥ औ—

३ पुत्रसैं बी स्थूलसूक्ष्मशरीरमैं अधिकप्रीति है। औ—

४ स्थूलसूक्ष्मशरीरमैं बी स्थूलतैं सूक्ष्ममैं अधिक प्रीति है।

पूर्वपूर्वसैं उत्तरउत्तर आत्माके समीप हैं ॥

१ आत्माका आभास सूक्ष्मशरीरमैं है, औरमैं नहीं। यातैं आभासद्वारा आत्माका सूक्ष्मशरीरसैं संबंध है। औरसैं नहीं।

२ स्थूलशरीरसैं सूक्ष्मशरीरका संबंध है। यातैं स्थूलशरीरसैं सूक्ष्मशरीरद्वारा आत्माका संबंध है। औ—

३ पुत्रसैं स्थूलशरीरद्वारा संबंध है। औ

४ पुत्रके मित्रसैं पुत्रद्वारा संबंध है।

इसरीतिसैं उत्तरउत्तर जो आत्माके समीप ताकेविषै अधिक प्रीति है।

जा आत्माके संबंध होनैतैं पदार्थमैं प्रीति होवै ता आत्मामैंही मुख्यप्रीति है औरपदार्थमैं नहीं। जैसैं पुत्रके मित्रमैं पुत्रके संबंधसैं प्रीति है, यातैं पुत्रमैंही प्रीति है, पुत्रके मित्रमैं नहीं, तैसैं आत्माके अधिकसमीपमैं अधिकप्रीति होवैहै। यातैं आत्माविषैही सर्वकी प्रीति है ॥

द्वारा अंतर्मुख भई वृत्तिविषै प्रतिबिंबित स्वरूपआनंदका अनुभवकरिके "मैंने विषयमैं आनंद अनुभव कियाहै" ऐसी अविवेकी पुरुषकूं भ्रांति होवैहै।

तिस भ्रांतिकरि सो फेर बी अधिकअधिक विषयकी प्राप्तिके निमित्त प्रयत्न करताहै औ विवेकीपुरुषकूं उक्तभ्रांति नहीं है। यातैं सो निरुपाधिक आनंदकी प्राप्तिके निमित्त वेदांतविचारआदिकविषै प्रयत्न करताहै ॥

१ यद्यपि विषयमैं जो आनंदका भान होवैहै, सो बी स्वरूपका आनंद है। तथापि श्वानकी खलडीविषै स्थित दुग्धकी न्याईं निषिद्ध होनैतैं सो विषयानंद उपादेय नहीं। किंतु अनेकविक्षेपनका हेतु होनैतैं हेय है।

२ विषयके अभावपूर्वक विचारआदिक साधनतैं जो आनंदका भान होवैहै सो सुवर्णआदिकके पात्रविषै स्थित दुग्धकी न्याईं शास्त्रविहित होनैतैं उपादेय है ॥

॥४०९॥ "विषयाकारवृत्तिसैं विषयउपहित चेतनरूप आनंदका भान होवैहै" इस प्रथमपक्षसैं "अन्य अंतर्मुखवृत्तिविषै अंतःकरणउपहित चेतनआनंदकाही भान होवैहै" यह द्वितीयपक्ष उत्तम है। यहही पक्ष पूर्व चतुर्थतरंगविषै बी कहाहै।

सो प्रीति आनंदमैं औ दुःखके अभावमैं होवैहै, औरमैं नहीं। औरपदार्थनमैं जो प्रीति होवै सो आनंद औ दुःखके अभावके निमित्त होवैहै। यातैं आनंद औ दुःखके अभावसैं औरमैं प्रीति नहीं। यातैं सर्वकी प्रीतिका विषय जो आत्मा सो आनंदरूप है। औ—

दुःखका अभाव आत्मारूप है। कल्पितका अभाव अधिष्ठानरूप होवैहै। जैसैं सर्पका अभाव रज्जुरूप है यातैं कल्पित जो दुःख ताका अभाव बी आत्मारूप है।

इसरीतिसैं आत्मा आनंदरूप है। औ—

॥ ३६३ ॥ न्यायमतमैं आत्माका आनंदगुण है सो समीचीन नहीं। काहेतैं?

जो आनंदगुणकूं नित्य अंगीकार करैं तौ आगमापायी नहीं होवै। यातैं आत्माका स्वरूपही आनंद सिद्ध होवैगा औ नित्यआनंद न्यायमतमैं है बी नहीं॥ औ—

अनित्य जो कहैं, तौ अनुकूलविषय औ इंद्रियके संबंधसैं आनंदकी उत्पत्ति अंगीकार करनी होवैगी। यातैं सुषुप्तिमैं आनंदका भान नहीं हुवा चाहिये। काहेतैं? सुषुप्तिमैं विषयका औ इंद्रियका संबंध है नहीं। यातैं आत्माका आनंदगुण नहीं किंतु आत्मा आनंदरूप है।

इसरीतिसैं आत्मा सत्‌चित्‌आनंदरूप है॥

॥ ३६४ ॥ सच्चिदानंद परस्पर भिन्न नहीं ॥ ३६४-३६५ ॥

सो सच्चिदानंद परस्पर भिन्न नहीं किंतु एकही है। जो आत्माके गुण होवैं तौ परस्पर भिन्न बी होवैं। औ आत्मस्वरूप है। यातैं भिन्न नहीं।

१ एकही आत्मा निवृत्तिरहित है। यातैं सत् कहियेहै। औ—

२ जडसैं विलक्षण प्रकाशरूप है। यातैं चित् कहियेहै। औ—

३ दुःखसैं विलक्षण मुख्यप्रीतिका विषय है। यातैं आनंद कहियेहै।

जैसैं उष्णप्रकाशरूप अग्नि है तैसैं सत्‌चित्‌आनंदरूप आत्मा है। औ—

सत्‌चित्‌आनंदस्वरूपही शास्त्रमैं ब्रह्म कह्याहै। यातैं ब्रह्मस्वरूप आत्मा है॥ औ—

ब्रह्म नाम व्यापकका है।

१ देशतैं जाका अंत नहीं होवै सो व्यापक कहियेहै। तासैं आत्मा जो भिन्न होवै तौ देशतैं अंतवाला होवैगा॥

२ 'जाका देशतैं अंत होवै ताका कालसैं बी अंत होवैहै' यह नियम है। यातैं अनित्य होवैगा। जाका कालसैं अंत होवै सो अनित्य कहियेहै। यातैं ब्रह्मसैं भिन्न आत्मा नहीं॥ औ—

आत्मासैं भिन्न जो ब्रह्म होवै तौ अनात्मा होवैगा। जो अनात्म घटादिक हैं सो जड हैं, यातैं आत्मासैं भिन्न ब्रह्म बी जडही होवैगा। यातैं आत्मासैं भिन्न ब्रह्म बी नहीं। किंतु ब्रह्मस्वरूपही आत्मा है॥

॥ ३६५ ॥

१ एकही चेतन सर्वप्रपंच औ मायाका अधिष्ठान है, यातैं ब्रह्म कहियेहै।

२ अविद्या औ व्यष्टिदेहादिकनका अधिष्ठान है, यातैं आत्मा कहियेहै।

१ तत्पदका लक्ष्य ब्रह्म कहियेहै। औ—

२ त्वंपदका लक्ष्य आत्मा कहियेहै।

१ ईश्वरसाक्षी तत्पदका लक्ष्य है। औ—

२ जीवसाक्षी त्वंपदका लक्ष्य है।

१ व्यष्टिसंघातउपहित चेतन जीवसाक्षी है। औ—

२ समष्टिसंघातउपहित चेतन ईश्वरसाक्षी कहियेहै ।

यद्यपि जीवकी औ ईश्वरकी एकता बनै नहीं तथापि जीवसाक्षी औ ईश्वरसाक्षीका उपाधिके भेदसैं भेद है औ स्वरूपसैं एकही है । जैसैं मठमैं स्थित जो घटाकाश औ मठाकाश तिन्हका उपाधिके भेदविना स्वरूपसैं भेद नहीं, तैसैं आत्मा औ ब्रह्मका उपाधिभेदविना भेद नहीं । एकही वस्तु है ।

॥ ३६६ ॥ ब्रह्मरूप आत्मा अजन्मा है

॥ ३६६—३६८ ॥

सो ब्रह्मरूप आत्मा अजन्मा कहिये जन्मरहित है ।

जो आत्माका जन्म अंगीकार करैं तौ अनित्य होवैगा । सो वार्त्ता परलोकवादी जो आस्तिक हैं तिन्हकूं इष्ट नहीं । काहेतें ? जो आत्मा उत्पत्तिनाशवान् होवै तौ प्रथमजन्मविषै पूर्वकर्मविनाही सुखदुःखका भोग औ किये कर्मका भोगसैं विना नाश होवैगा । यातें कर्त्ताभोक्ता जो आत्मा अंगीकार करैं तौ बी जन्मनाशरहितही अंगीकार करना होवैगा । औ—

आत्माका जन्म जो अंगीकार करैं तौ हेतुसैं विना तौ किसी वस्तुका जन्म होवै नहीं । यातें किसी हेतुसैंही जन्म कहना होवैगा । सो बनै नहीं । काहेतें ? जो आत्माका हेतु है सो आत्मासैं भिन्नही कहना होवैगा । सो आत्मासैं भिन्न संपूर्ण आत्मामैं कल्पित हैं । यातें आत्माका हेतु बनै नहीं । जैसैं रज्जुमैं कल्पितसर्प रज्जुका हेतु नहीं तैसैं आत्मामैं कल्पितवस्तु आत्माका हेतु बनै नहीं ।

॥ ३६७ ॥ जैसैं एकरज्जुविषै नानापुरुषनकूं दंड, सर्प, पृथिवीरेषा, जलधाराकी भ्रांति होवैहै ता भ्रांतिमैं दो अंश हैं ॥

१ एक तौ सामान्यइदंअंश है औ—
२ एक सर्पादिक विशेषअंश है ॥

सो सामान्यइदंअंश सर्पादिक विशेषअंशनमैं सारे व्यापक है ।

१ "यह सर्प है ।
२ यह दंड है ।
३ यह पृथिवीकी रेषा है ।
४ यह जलकी रेषा है ।"

इसरीतिसैं सर्पादिक विशेषअंशमैं इदंअंश सारे व्यापक है । सो व्यापक सामान्यइदंअंश रज्जुस्वरूप है । ता सामान्यइदंअंशके ज्ञानकूंही भ्रांतिका हेतु रज्जुका सामान्यज्ञान कहैहैं ।

सो सामान्यइदंअंश सत्य है । काहेतें ? रज्जुका ज्ञान हुयेसैं अनंतर बी ता इदंअंशकी प्रतीति होवैहै ।

१ जैसैं भ्रांतिकालमैं "यह सर्प है" यारीतिसैं सर्पादिकनसैं मिलिके इदंअंशकी प्रतीति होवैहै ।
२ तैसैं भ्रांतिकी निवृत्तिसैं अनंतर बी "यह रज्जु है" यारीतिसैं रज्जुके साथि मिलिके इदंअंशकी प्रतीति होवैहै ॥

जो इदंअंश बी मिथ्या होवै तौ सर्पादिकनकी न्यांई भ्रांतिकी निवृत्तिसैं अनंतर ताकी बी प्रतीति नहीं हुईचाहिये । यातें सर्पादिक भ्रांतिमैं व्यापक जो इदंअंश सो सत्य है औ अधिष्ठान रज्जुरूप है औ परस्परव्यभिचारी जो सर्पादिक सो कल्पित हैं ।

॥ ३६८ ॥ तैसैं सर्वपदार्थनमैं पांचअंश हैं ॥ १ एक नाम, २ रूप, ३ अस्ति, ४ भाति, औ ५ प्रिय ।

१ "घट" यह दोअक्षरका नाम । औ—
२ गोल रूप है ।
३ घट "है" यह अस्ति ॥ औ—
४ "घट प्रतीत होवैहै" यह भाति । औ—

५ "घट प्रिय है" यह आनंद। (सर्पादिक बी सर्पनीआदिकनकूं प्रिय हैं)

इसरीतिसैं सर्वपदार्थनमैं पांच अंश हैं।

१-३ तिन्हविषै अस्ति-भाति-प्रियरूप तीनि-अंश सर्वपदार्थनमैं व्यापक हैं। औ—

४-५ नाम-रूप व्यभिचारी हैं।

जो वस्तु कहूं होवै औ कहूं नहीं होवै सो व्यभिचारी कहियेहै।

१-२ 'घट'नाम औ 'गोल'रूप पटविषै नहीं हैं। 'पट'नाम औ ताका रूप घटविषै नहीं है। इसरीतिसैं सर्वपदार्थनविषै नामरूपअंश व्यभिचारी हैं। औ—

३-५ अस्ति-भाति-प्रियरूप सर्वविषै अनुगत हैं। जैसैं सर्पदंडादिकनमैं अनुगत इदंअंश सत्य औ अधिष्ठान है। तैसैं सर्वपदार्थनमैं अनुगत अस्ति-भातिप्रियरूप सत्य है औ अधिष्ठान-रूप हैं। औ—

१-२ सर्पदंडादिकनकी न्यांई व्यभिचारी नामरूप कल्पित हैं औ—

३-५ अस्ति-भाति-प्रिय सच्चित्‌आनंदरूप हैं। यातैं आत्मस्वरूप हैं ||

इसरीतिसैं सच्चित्‌आनंदरूप आत्माविषै संपूर्ण नामरूपप्रपंच कल्पित है। सो कल्पित-पदार्थ कोई आत्माके जन्मका हेतु बनै नहीं। यातैं आत्मा अजन्मा है ||

जा वस्तुका जन्म होवै ताहीके सत्ता, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय औ विनाशरूप पांच-विकार और होवैहैं। आत्माका जन्म होवै नहीं। यातैं उत्तर पांचविकार बी होवैं नहीं।

इसरीतिसैं अजन्मा कहिये जन्मादिक षट्‌विकारसैं रहित आत्मा है।

सत्ता नाम प्रगटताका है। औ—

अपक्षय नाम घटनैका है।

|| ३६९ || आत्मा असंग है।

सो आत्मा असंग है।

संग नाम संबंधका है। सो सजातीय-विजातीय-स्वगत-पदार्थनसैं होवैहै || जैसैं:—

१ घटका घटसैं जो संबंध है सो सजातीयसैं संबंध है। औ—

२ घटका पटसैं जो संबंध सो विजातीयसैं संबंध है।

३ स्वगत नाम अवयवका है। यातैं पटका तंतुसैं जो संबंध सो स्वगतसैं संबंध है।

१ आत्मा दो अथवा अनंत होवैं तौ सजातीयसैं आत्माका संबंध होवै सो आत्मा एक है। यातैं सजातीयआत्मासैं आत्माका संबंध नहीं || औ—

२ आत्मासैं विजातीय अनात्मा है सो मृगतृष्णाके जलकी न्यांई आत्मामैं कल्पित है। ता कल्पितसैं आत्माका संबंध बनै नहीं। जैसैं मृगतृष्णाके जलसैं पृथिवीका संबंध होवै नहीं, जो संबंध होवै तौ ऊषरभूमि ता जलसैं गिली हुईचाहिये || जैसैं मृगतृष्णाके जलसैं ऊषरभूमिका संबंध नहीं तैसैं आत्मामैं कल्पित जो विजातीयअनात्मा तासैं आत्माका संबंध नहीं ||

३ जो आत्माके अवयव होवैं तौ आत्माका

|| ४१० || जन्मसैं रहित है।

|| ४११ || "घटो जायते (घट होताहै)" इस व्यवहारका हेतु जन्म है। तिसके अनंतर "घटो जातः (घट जन्मकूं पाया)" इस व्यवहारका हेतु अस्तितारूप विकार है। याहीकूं प्रगटता बी कहतेहैं औ सत्ता बी कहतेहैं ||

स्वगतसैं संबंध होवै। आत्मा नित्य है। यातैं निरवयव है, ताका स्वगतसैं संबंध बनै नहीं।

इसरीतिसैं सजातीय-विजातीय-स्वगतसंबंध आत्माविषै नहीं। यातैं आत्मा असंग है॥

इसरीतिसैं हे शिष्य ! सच्चित्आनंदब्रह्मरूप, जन्मादिकविकाररहित औ असंग आत्मा है। "सो तूं है" यह प्रथमप्रश्नका अर्धदोहेसैं आचार्यनै उत्तर कह्या॥

(२ "संसारका कर्त्ता कौन है" याका उत्तर ॥ ३७०--३७४ ॥)

॥ ३७० ॥ जगत्‌का कर्त्ता ईश्वर है ॥

"जगत्‌का कर्त्ता कौन है" यह द्वितीयप्रश्नका उत्तर अर्धदोहेसैं कहैहैं:--

॥ दोहा ॥

विभु चेतन माया करै,
जगको उत्पत्ति भंग॥

टीकाः--विभु कहिये व्यापक जो चेतन, ताके आश्रित औ ताकूं विषय करनैवाली माया कहिये सत्असत्‌सैं विलक्षण अद्भुतशक्तिरूप अज्ञान, तासैं जगत्‌की उत्पत्ति भंग होवैहै।

उत्पत्ति औ भंग कहनैतैं स्थितिका ग्रहण अर्थतैं होवैहै।

यातैं यह अर्थ सिद्ध हुवाः-

१ मायायुक्त जो चेतन सो ईश्वर कहियेहै।
२ सो ईश्वर जगत्‌की उत्पत्तिपालननाशका हेतु है।

या कहनैतैं-

१ "जगत्‌का कोई कर्त्ता है अथवा आपसैं होवैहै ?" याका उत्तर कह्या॥ औ-
२ "जगत्‌का कर्त्ता कोई जीव है अथवा ईश्वर है" याका बी उत्तर कह्या।

॥ ३७१ ॥ ईश्वर १ सर्वज्ञ, २ सर्वशक्तिमान्, औ ३ स्वतंत्र है॥

॥ ३७१--३७२ ॥

जगत्‌का कर्त्ता ईश्वर है। आपसैं होवै नहीं। जो कर्त्तासैं विना जगत् होवै तौ कुलालविना घट हुवा चाहिये। यातैं जगत्‌का कोई कर्त्ता है।

१ सो कर्त्ता सर्वज्ञ है। काहेतैं ? जो कार्यका कर्त्ता होवै सो ता कार्यकूं औ ताके उपादानकूं जानिके करैहै। यातैं जगत्‌का कर्त्ता बी जगत्‌कूं औ जगत्‌के उपादानकूं जानिके करैहै। इसरीतिसैं जगत्‌का कर्त्ता जगत्‌कूं औ जगत्‌के उपादानकूं जानैहै। यातैं सर्वज्ञ है॥ औ—

२ सर्वशक्तिमान् है। काहेतैं ? जो अल्पशक्तिवाले जीव हैं तिन्हसैं या जगत्‌की रचना मनसैं बी चिंतन होवै नहीं। यातैं अद्भुतजगत्‌का कर्त्ता अद्भुतशक्तिवाला है॥ इसरीतिसैं जगत्‌का कर्त्ता सर्वशक्तिवान् है॥ औ-

३ स्वतंत्र है। काहेतैं ? जो न्यूनशक्तिवाला होवै सो पराधीन होवैहै औ सर्वशक्तिवाला पराधीन होवै नहीं। यातैं स्वतंत्र है॥

इसरीतिसैं जगत्‌का कर्ता सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् स्वतंत्र है। ताहीकूं ईश्वर कहैहैं। औ—

॥ ३७२ ॥ अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् पराधीनकूं जीव कहैहैं।

यद्यपि अल्पज्ञतादिक जीवमैं बी परमार्थसैं नहीं तथापि अविद्याकृत मिथ्या अल्पज्ञतादिक जीवमैं प्रतीति होवैहै। यातैं जीवमैं कहियेहैं।

अविद्याकृत अल्पज्ञतादिकनकी जो भ्रांति सोई जीवता है।

सो अल्पज्ञतादिकनकी भ्रांति ईश्वरमैं है नहीं। किंतु मायाकृत सर्वज्ञतादिक ईश्वरमैं हैं। यह वार्ता विस्तारसैं आगे प्रतिपादन करैंगे।

इसरीतिसैं जगत्का कर्त्ता जीव नहीं। ईश्वर है।

॥ ३७३ ॥ ईश्वर व्यापक औ नित्य है॥

सो ईश्वर एकदेशमैं स्थित नहीं किंतु सर्वत्र व्यापक है। जो एकदेशमैं अंगीकार करैं तौ जा वस्तुका देशतैं अंत होवै ताका कालसैं बी अंत होवैहै यातैं अनित्य होवैगा॥

जो अनित्य होवै सो कर्त्तासैं जन्य होवैहै। यातैं ईश्वरका बी कर्त्ता अंगीकार करना होवैगा॥

सो ईश्वरका कर्त्ता बनै नहीं। काहेतैं ?

१ आप तौ अपना कर्ता बनै नहीं। जो अपना कर्ता आपही अंगीकार करैं तौ आत्माश्रयदोष होवैगा॥

आपही क्रियाका कर्त्ता (आश्रय) औ आपही क्रियाका कर्म (क्रियाका विषयरूप कार्य) होवै तहां आत्माश्रय होवैहै। जैसैं कुलाल क्रियाका कर्त्ता है औ घट कर्म है तैसैं क्रियाका कर्त्ता औ कर्म भिन्न होवैहैं। एक बनै नहीं। यातैं आत्माश्रय दोष है॥

कर्म नाम कार्यका है। औ—

कार्यके विरोधीका नाम दोष है॥ आत्माश्रय कार्यका विरोधी है। यातैं दोष है। यातैं—

२ ईश्वरका कर्त्ता अन्य अंगीकार करना होवैगा। सो अन्य बी प्रथम कर्त्ताकी न्यांई कर्त्ताजन्यही कहना होवैगा॥ सो ताका कर्त्ता बी प्रथमकी न्यांई तासैं भिन्नही कहना होवैगा॥ सो प्रथम जो ईश्वर है, ताकूं द्वितीयकर्त्ताका कर्त्ता अंगीकार करैं तौ अन्योन्याश्रय-दोष होवैगा। यातैं—

तृतीयकर्त्ता और अंगीकार करना होवैगा। ता तृतीयका कर्ता जो द्वितीय मानैं तब तौ अन्योन्याश्रयदोष होवै औ प्रथम मानैं तब चक्रिकादोष होवैगा॥

जैसैं चक्रका भ्रमण होवैहै तैसैं—

(१) प्रथमकर्त्ता द्वितीयजन्य औ—

(२) द्वितीयकर्त्ता तृतीयजन्य। औ—

(३) तृतीय प्रथमजन्य।

(४) सो प्रथम फेरी द्वितीयजन्य।

इसरीतिसैं कार्यकारणभावका भ्रमण होवैगा। चक्रिकास्थानमैं कोई बी सिद्ध होवै नहीं। सर्वकी परस्पर अपेक्षा है।

४ अन्योन्याश्रयमैं दोकी परस्पर अपेक्षा है। एककी सिद्धि हुये विना अन्यकी सिद्धि होवै नहीं। यातैं—

(१) जैसैं कुलालका कर्त्ता आप नहीं, किंतु ताका पिता है। तैसैं प्रथम-ईश्वरकर्ताका अन्यकर्त्ता है॥ औ—

(२) कुलालका पिता अपनै पुत्रसैं उत्पन्न होवै नहीं। किंतु अन्यपितासैं उत्पन्न होवैहै। तैसैं द्वितीयकर्ता प्रथमकर्तासैं उत्पन्न होवै नहीं। किंतु अन्यकर्तासैं-ही कहना होवैगा॥ औ—

(३) कुलालका पितामह, कुलाल औ ताके पितासैं उत्पन्न होवै नहीं किंतु चतुर्थ जो कुलालका प्रपितामह, तासैं उत्पन्न होवैहै॥

(४) तैसैं तृतीयकर्त्ता बी प्रथम औ द्वितीय-कर्त्तासैं उत्पन्न होवै नहीं। यातैं चतुर्थकर्त्ता और अंगीकार करना होवैगा।

(५) ता चतुर्थका कर्त्ता और पंचम मानना होवैगा।

यातैं अनवस्थादोष होवैगा।

धाराका नाम अनवस्था है।

जो कर्त्ताकी धारा अंगीकार करैं तौ 'कौनसा कर्त्ता जगत् करैहै' यह निर्णय नहीं होवैगा।

५ किसीएककूं जगत्का कर्त्ता माननैमैं कोई युक्ति नहीं। ता युक्तिके अभावका नामही विनगमनविरह कहैहैं ॥ औ—

६ धाराकी कहूं विश्रांति अंगीकार करैं तौ जा कर्त्तामैं धाराका अंत अंगीकार किया, सोई कर्त्ता जगत्का माननै योग्य है ॥ पूर्व सारे निष्फल होवैंगे। याका नामही प्राग्लोप कहैहैं ॥

पीछलेके अभावका नाम प्राग्लोप है ॥

इसरीतिसैं ईश्वरका देशतैं अंत अंगीकार करैं तौ उत्पत्ति अंगीकार करनी होवैगी औ उत्पत्ति अंगीकार करैं तौ आत्माश्रयादिषट्दोष होवैंगे। यातैं ईश्वरका देशतैं अंत नहीं। किंतु व्यापक है। याहीतैं नित्य है ॥

॥ ३७४ ॥ ईश्वर औ जीवका स्वरूपसैं भेद नहीं ॥

ता व्यापक ईश्वरका औ जीवका स्वरूपसैं भेद नहीं किंतु उपाधिसैं भेद है। काहेतैं?

१ अवच्छेदवादमैं—

(१) मायाविशिष्टचेतन ईश्वर कहैहैं। औ—

(२) अविद्याविशिष्ट चेतन जीव कहैहैं ॥

२ आभासवादमैं—

(१) माया औ आभासविशिष्ट चेतन ईश्वर कहैहैं। औ—

(२) आभाससहित अविद्याविशिष्टचेतनकूं जीव कहैहैं ॥

१ आभासवादमैं आभाससहित अविद्या औ मायाका भेद है। चेतनका नहीं ॥

२ तैसैं अवच्छेदवादमैं बी अविद्या औ मायाका भेद है। स्वरूपसैं चेतनका भेद नहीं। औ—

३ (१) अज्ञानमैं चेतनका प्रतिबिंब जीव है। औ—

(२) बिंब ईश्वर है।

या पक्षमैं बी चेतनका स्वरूपसैं भेद नहीं। किंतु एकही चेतनमैं जीवपना औ ईश्वरपना आरोपित है। यह वार्त्ता आगै कहैंगे।

इसरीतिसैं जगत्का कर्त्ता सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् स्वतंत्र ईश्वर है ॥

सो ईश्वर व्यापक है ताका औ जीवका विशेषणमात्रसैं भेद है औ स्वरूपसैं अभेद है। यह द्वितीयप्रश्नका उत्तर कह्या।

(३ "मुक्तिका हेतु कौन?" याका उत्तर ॥ ३७५–४०६ ॥)

॥ ३७५ ॥ मुक्तिका हेतु ज्ञान है ॥

"मोक्षका साधन ज्ञान है अथवा कर्म है अथवा उपासना है अथवा दो हैं?" याका उत्तर कहैहैं:—

॥ दोहा ॥

हेतु मोछको ज्ञान इक,
नहीं कर्म नहिं ध्यान ॥
रज्जुसर्प तबही नसै,
होय रज्जुको ज्ञान ॥ १० ॥

टीकाः—मुक्तिका हेतु कर्म औ ध्यान कहिये उपासना नहीं किंतु ज्ञानही हेतु है।

॥४१२॥ यह वार्त्ता आगे४२८सैं ४४३ पर्यंतके अंकविषै कहैंगे ॥ यह तीसरा बिंबप्रतिबिंबवाद है ॥

काहेतैं ? जो आत्मामैं बंध सत्य होवै तौ ताकी निवृत्तिरूप मोक्ष ज्ञानसैं होवै नहीं । किंतु कर्म अथवा उपासनातैं होवै ॥ सो बंध आत्मामैं सत्य है नहीं किंतु रज्जुसर्पकी न्याई मिथ्या है ॥ ता मिथ्याकी निवृत्ति अधिष्ठान-ज्ञानसैंही बनैहै । कर्म अथवा उपासनासैं नहीं॥ जैसैं रज्जुका सर्प किसी क्रियातैं दूरि होवै नहीं, केवल रज्जुके ज्ञानसैं दूरि होवै । तैसैं आत्माके अज्ञानसैं प्रतीत जो होवैहै बंध, ता बंधकी प्रतीति औ अज्ञान आत्माके ज्ञानसैंही दूरि होवैहै ॥

॥ ३७६ ॥ कर्म औ उपासना मुक्तिके हेतु नहीं ॥ ३७६—३७९ ॥

१ जो कर्मका फल मोक्ष होवै तौ मोक्ष अनित्य होवैगा । काहेतैं ? यह नियम है:— जो कृषिआदिकर्मका फल अन्नादिक है सो अनित्य है औ यज्ञादिकर्मका फल स्वर्गादिक वी अनित्य है ॥ जो मोक्ष वी कर्मका फल अंगीकार करैं तौ अनित्य होवैगा । यातैं [४१३]कर्मका फल मोक्ष नहीं ॥

२ तैसैं उपासनाका फल जो अंगीकार करैं तौ वी मोक्ष अनित्य होवैगा । काहेतैं ? उपासना वी मानसकर्मही है औ कर्मका फल अनित्य होवैहै । यातैं उपासनारूप कर्मका फल वी मोक्ष नहीं ॥ औ—

॥ ३७७ ॥ कर्मकर्त्ताकूं कर्मसैं पांचप्रकारका उपयोग होवैहै:—१ पदार्थकी उत्पत्ति । २ पदार्थका नाश ।३ पदार्थकी प्राप्ति । ४ वा पदार्थका विकार ।५ तैसैं संस्कार ॥

अन्यरूपकी प्राप्तिका नाम विकार है ॥

संस्कार दोप्रकारका होवैहै:—मलकी निवृत्ति औ गुणकी उत्पत्ति ॥

यह पांचप्रकारका कर्मसैं उपयोग होवैहै ॥ सो मुमुक्षुकूं कोई वी बनै नहीं । यातैं मुमुक्षु ज्ञानके साधन श्रवणादिकविषैही प्रवृत्त होवै औ कर्ममैं नहीं ॥

१ जैसैं कुलालके कर्मतैं कुलालकूं घटकी उत्पत्ति उपयोग होवैहै । तैसैं मुमुक्षुकूं कर्मतैं मोक्षकी उत्पत्ति उपयोग बनै नहीं । काहेतैं ? जो अनर्थकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्ति-रूप मोक्ष है ।

(१) सो अनर्थकी निवृत्ति आत्मामैं [४१४]नित्य-सिद्ध है ॥ जैसैं रज्जुमैं सर्पकी निवृत्ति नित्यसिद्ध है ॥ औ—

(२) आत्मा परमआनंदस्वरूप है । यातैं पर-मानंदकी प्राप्ति वी [४१५]नित्यसिद्ध है ॥

॥ ४१३ ॥ "जैसैं यह कर्मरचित लोक क्षीण होवैहै तैसैं वह पुन्यरचित लोक क्षीण होवैहै । ऐसैं कर्मरचित लोकनकूं अनित्य जानिकै तिनतैं ब्राह्मण (ब्रह्म होनैकी इच्छावाला मुमुक्षु) वैराग्यकूं पावै ॥ कृत जो कर्म तासैं अकृत जो मोक्ष, सो नहीं है" इस श्रुतिकरि औ " भावना (उपासना) तैं जन्य जो फल है औ जो कर्मका फल है, सो स्थिर है । ऐसैं माननै योग्य नहीं । द्रविडदेशवासी-जनोंविषै संगतिकी न्याई" इस सुरेश्वराचार्यके वाक्यरूप स्मृतिकरि कर्मका किंवा उपासनाका फल मोक्ष नहीं । यह अर्थ निश्चित है ॥

॥ ४१४ ॥ जैसैं रज्जुविषै व्यावहारिक सत्तावाले सर्पका अभावरूप सर्पकी निवृत्ति नित्यसिद्ध है तैसैं आत्मामैं परमार्थसत्तावाले कार्यसहित अज्ञानरूप अनर्थकी अत्यंताभावरूप निवृत्ति नित्यसिद्ध है ॥

॥ ४१५ ॥ जैसैं विस्मृतकंठमणिकी प्राप्ति किंवा गृहविषै गाढ (गांढी) निधिकी प्राप्ति नित्यसिद्ध है, तैसैं निजरूप परमानंदकी प्राप्ति बी सर्वकूं नित्यसिद्ध है ॥

इसरीतिसैं स्वभावसिद्धमोक्षकी कर्मसैं उत्पत्ति बनै नहीं ॥

जो वस्तु आगै सिद्ध नहीं होवै ताकी कर्मसैं उत्पत्ति होवैहै औ सिद्धवस्तुकी उत्पत्ति होवै नहीं ॥ औ—

॥ ३७८ ॥ वेदांतश्रवण बी मोक्षकी उत्पत्तिके निमित्त नहीं कह्या । किंतु "आत्मा नित्यमुक्त है । किंचित्मात्र बी कर्त्तव्य नहीं" । इस वार्त्ताके जाननैवास्तै श्रवण है ॥ यह जानिके कर्त्तव्यभ्रांति दूरि होवैहै ॥ औ—

वेदांतश्रवणसैं अनंतर बी जिनकूं कर्त्तव्य प्रतीति होवैहै, तिन्हनै तत्त्व जान्या नहीं ॥ ४१६ इसीकारणतैं नित्यनिवृत्त जो अनर्थ, ताकी निवृत्ति औ नित्यप्राप्तआनंदकी प्राप्ति । वेदांतश्रवणका फल देवैंगुरुनै नैष्कर्म्यसिद्धिमैं कह्याहै ।

यातैं मोक्षकी उत्पत्तिरूप कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै नहीं ॥

॥ ३७९ ॥ २ जैसैं दंडके प्रहाररूप कर्मका घटका नाशरूप उपयोग होवैहै तैसैं मुमुक्षुकूं कर्मतैं किसीपदार्थका नाशरूप उपयोग बी बनै नहीं । काहेतैं? अन्यपदार्थका नाश तो मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं । बंधका नाशही कर्मसैं उपयोग कहना होवैगा ॥ सो बंध आत्मामैं है नहीं । मिथ्याप्रतीत होवैहै ॥ ता मिथ्याप्रतीतिका नाश कर्मतैं बनै नहीं औ आत्माके यथार्थज्ञानसैं तौ मिथ्याप्रतीतिका नाश बनैहै । यातैं मुमुक्षुकूं पदार्थका नाशरूप उपयोग बी कर्मसैं बनै नहीं ॥

३ जैसैं गमनरूप कर्मतैं ग्रामकी प्राप्ति होवैहै तैसैं मोक्षकी प्राप्तिरूप उपयोग कर्मसैं बनै नहीं । काहेतैं? जो आत्मा नित्यमुक्त है ताकूं मोक्षकी प्राप्ति कहना बनै नहीं । जाकूं बंध होवै ताकूं मोक्षकी प्राप्ति कहना बनै औ आत्मामैं बंध है नहीं । यातैं मोक्षकी प्राप्तिरूप कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै नहीं ॥

४ जैसैं पाकरूप कर्मसैं अन्नका विकाररूप उपयोग पाचककूं होवैहै तैसैं मुमुक्षुकूं कर्मसैं विकाररूप उपयोग बी बनै नहीं, काहेतैं? और तौ कोई विकार बनै नहीं । जो आत्मामैं प्रथम-बंध अंगीकार करैं औ मोक्षदशामैं चतुर्भुजादिक विलक्षणरूपकी प्राप्ति अंगीकार करैं तौ अन्यरूपकी प्राप्तिरूप विकार कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै ॥ सो अन्यरूपकी प्राप्ति आत्मामैं अंगीकार नहीं । यातैं कर्मसैं विकाररूप उपयोग बी मुमुक्षुकूं बनै नहीं ॥

५ जैसैं वस्त्रके क्षालनरूप कर्मका मलकी निवृत्तिरूप संस्कार होवैहै । तैसैं मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बी मुमुक्षुकूं कर्मसैं उपयोग नहीं । काहेतैं?

(१) अन्यके मलकी निवृत्ति तौ मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं । आत्माके मलकी निवृत्ति कहनी होवैगी । सो आत्मा नित्यशुद्ध है ।

॥ ४१६ ॥ इहां यह स्मृति है:—
ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ।
नैवास्ति किंचित्कर्त्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित् ॥

अस्यार्थः—ज्ञानरूपअमृतकरि तृप्त औ याहीतैं कृतकृत्य (कृतार्थ) भया जो योगी (ज्ञानी) है । ताकूं मोक्षके अर्थ किंवा ज्ञानके अर्थ किंचित् कर्त्तव्य नहीं है औ जाकूं कर्त्तव्य है सो तत्त्ववेत्ता नहीं ॥

॥ ४१७ ॥ मंडनमिश्र है नाम जिसका ऐसैं शंकराचार्यके शिष्य सुरेश्वराचार्यनै ॥

॥ ४१८ ॥ पूर्वरूपकूं त्यागीके अन्यरूपकी प्राप्ति सो विकार कहियेहै । सोई विक्रिया औ परिणाम बी कहियेहै ॥

॥ ४१९ ॥ पाकका कर्त्ता (रसोइया) ॥

॥ ४२० ॥ धोवनैरूप ॥

ताकेविषै मल है नहीं। यातैं मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बनै नहीं ॥ औ—

(२) अंतःकरणविषै पापरूप जो मल है ताकी निवृत्ति जो कर्मसैं उपयोग कहै तौ यह वार्त्ता सत्य है। परंतु शुद्धअंतःकरणवाला जो मुमुक्षु है, ताका विचार करैहैं। ताके अंतःकरणमैं बी पाप है नहीं। यातैं पापरूप मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बी मुमुक्षुकूं कर्मसैं उपयोग बनै नहीं ॥ औ—

(३) अज्ञानकूं जो मल कहैं तौ अज्ञान आत्मामैं है बी। परंतु ताकी निवृत्ति कर्मसैं होवै नहीं। काहेतैं ? अज्ञानका विरोधी ज्ञान है। कर्म नहीं। यातैं मुमुक्षुकूं मलकी निवृत्तिरूप संस्कार कर्मसैं उपयोग बनै नहीं ॥

(४) जैसैं वस्त्रका कुसुंभमैं मैंज्जनरूप[४२१] कर्मका रक्तगुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार उपयोग होवैहै। तैसैं गुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार मुमुक्षुकूं कर्मसैं उपयोग बनै नहीं। काहेतैं ? अन्यविषै ता गुणकी उत्पत्ति कहना बनै नहीं। आत्माविषैही कहना होवैगा। सो आत्मा निर्गुण है। ताकेविषै गुणकी उत्पत्ति बनै नहीं। यातैं मुमुक्षुकूं गुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार बी कर्मका उपयोग बनै नहीं ॥

या प्रकरणमैं उपयोग नाम फलका है ॥

कर्मका पांचही प्रकारका फल होवैहै। और नहीं ॥ सो पांचप्रकारका फल कर्मका मुमुक्षुकूं बनै नहीं। यातैं कर्मकूं त्यागिके ज्ञानके साधन श्रवणविषैही मुमुक्षु प्रवृत्त होवै ॥

उपासना बी मानसकर्मही है। यातैं ताके खंडनमैं पृथक्युक्ति नहीं कही ॥

इसरीतिसैं केवलकर्म अथवा उपासना मोक्षका हेतु नहीं। किंतु केवलज्ञान है ॥ औ—

॥ ३८० ॥ आक्षेपः—कर्म औ उपासना ज्ञानके औ मोक्षके हेतु हैं।

॥ ३८०–३८३ ॥

[पूर्वपक्षीः–]कोई[४२२] कर्मउपासनासहित ज्ञानकूं मोक्षका हेतु अंगीकार करैहैं औ ताकेविषै युक्तिदृष्टांत बी कहैहैं ॥

१ दृष्टांतः—जैसैं आकाशमैं पक्षीका एकपक्षसैं गमन होवै नहीं। किंतु दोपक्षसैं गमन होवैहै। तैसैं मोक्षलोककूं बी एक ज्ञानरूप पक्षसैं गमन होवै नहीं। किंतु एकपक्ष तौ उपासनासहितकर्म है औ द्वितीयपक्ष ज्ञान है ॥ उपासना बी मानसकर्मही है। यातैं एकही पक्ष है ॥

॥ ३८१ ॥ २ अन्यदृष्टांतः—जैसैं सेतुके दर्शनसैं पापका नाश होवैहै, सो सेतुका दर्शन बी प्रत्यक्षरूप ज्ञान है औ श्रद्धाभक्तिसहित गमनादिनियमकी अपेक्षा करैहै ॥ जो श्रद्धादिकरहित पुरुष होवै ताकूं सेतुदर्शनसैं फल होवै नहीं ॥ जैसैं सेतुका प्रत्यक्षज्ञान श्रद्धानियमादिकनकी फलकी उत्पत्तिमैं अपेक्षा करैहै। तैसैं ब्रह्मज्ञान बी मोक्षरूप फलकी उत्पत्तिमैं कर्मउपासनाकी अपेक्षा करैहै ॥ औ—

केवलज्ञानसैं जो मोक्ष अंगीकार करैहैं सो बी ज्ञानका हेतु तौ कर्मउपासना मानैहै ॥ शुद्ध औ निश्चलअंतःकरणमैं ज्ञान होवैहै ॥ सो अंतःकरण शुभकर्मसैं शुद्ध होवैहै औ उपासनासैं निश्चल होवैहै ॥

इसरीतिसैं अंतःकरणकी शुद्धि औ निश्चलताद्वारा कर्मउपासना ज्ञानके हेतु अंगीकार कियेहैं ॥

॥ ४२१ ॥ डुबावनैरूप ॥

॥ ४२२ ॥ कोई भर्तृप्रपंचनामक प्राचीनवृत्तिकार (ब्रह्मसूत्रकी टीकाका कर्त्ता) समुच्चयवादी भयाहै ताके अनुसारी ॥

॥ ३८२ ॥ जैसैं ज्ञानके हेतु . कर्मउपासना अंगीकार किये तैसैं ज्ञानके फल मोक्षके हेतु वी अंगीकार करनैं योग्य हैं ॥

१ दृष्टांतः—जैसैं जलका सेचन वृक्षकी उत्पत्तिका हेतु है औ वृक्षके फलकी उत्पत्तिका वी हेतु है ॥ जो वनके वृक्षनके जलसेचनविना फल होवैहै सो वी वृक्षके मूलमैं नीचे जलका संबंध है । यातैं फल होवैहै औ जलके संबंध-विना वृक्षही सूक जावै । फल होवै नहीं । तैसैं कर्मउपासना ज्ञानकी उत्पत्तिके हेतु हैं औ ज्ञानका फल जो मोक्ष ताके वी हेतु हैं ॥

इसरीतिसैं कर्म उपासना ज्ञान तीनूं मोक्षके हेतु हैं । यातैं ज्ञानवान् वी कर्म करै ॥

॥ ३८३ ॥ २ अथवा । कर्मउपासना ज्ञानकी रक्षाके हेतु हैं । काहेतैं ? जो कर्मउपासनाका ज्ञानवान् त्याग करै तौ उत्पन्न हुवा ज्ञान वी जलसैं विना वृक्षकी न्यांई नष्ट होय-जावैगा । काहेतैं ? शुद्धअंतःकरणमैं ज्ञान होवै-है औ शुभकर्म नहीं करै तौ ज्ञानवान्कूं पाप होवैगा औ उपासनाके त्यागसैं अंतः-करण फेरि चंचल होयजावैगा । ता मलिन औ चंचल अंतःकरणमैं ज्ञान रहै . नहीं । जैसैं सूकीभूमिमैं उत्पन्न हुवा वृक्ष वी रहै नहीं ॥

२ अन्यदृष्टांतः—जैसैं संस्कारसैं शुद्ध किये स्थानमैं वेदपाठीब्रह्मचारी निवास करैहै औ शुद्ध किया स्थान वी किसी निमित्तसैं फेरि मलिन होय जावै, तौ ता स्थानकूं त्यागी देवैहै ॥ तैसैं कर्मके त्यागसैं मलिन औ उपासनाके त्यागसैं चंचल हुवा जो अंतःकरण, ताकेविषै ज्ञान रहै नहीं । यातैं कर्म औ उपासना ज्ञानकी रक्षाके हेतु हैं ॥

इसरीतिसैं—

१ कर्म, उपासना औ ज्ञान तीनूं मोक्षके हेतु अंगीकार करैं ।
२ तथा ज्ञानकी रक्षाके हेतु कर्मउपासना अंगीकार करैं औ केवलज्ञान मोक्षका हेतु अंगीकार करैं ।

दोनूंप्रकारसैं ज्ञानवान्कूं कर्मउपासना कर्त्तव्य हैं ॥ याकूं समुच्चयवाद कहैहैं ॥

॥ ३८४ ॥ कर्मउपासनासैं ज्ञानका विरोध है ॥ ३८४–३८६ ॥

[सिद्धांतीः–] सो समीचीन नहीं । काहेतैं ? देहसैं भिन्न जो आत्मा नहीं जानै, तासैं कर्म होवै नहीं । काहेतैं ? जन्मांतरके भोगके निमित्त कर्म करैहैं औ देहका अग्निविषै दाह होवैहै । तासैं जन्मांतरका भोग बनै नहीं । यातैं—

१ शरीरतैं भिन्न आत्माका ज्ञान कर्मका हेतु है । सो शरीरसैं भिन्न वी आत्माका कर्त्ताभोक्तारूपकरिके ज्ञान कर्मका हेतु है ॥ "मैं पुण्यपापका कर्त्ता हूं औ पुण्यपापका फल मेरेकूं होवैगा" ऐसा जाकूं ज्ञान है, सो कर्म करैहै ॥ औ ज्ञानवान्कूं ऐसा आत्माका ज्ञान है नहीं । किंतु "पुण्यपाप औ सुखदुःख-तैं रहित असंगब्रह्मरूप आत्मा है" ऐसा वेदांतवाक्यसैं ज्ञान होवैहै । सो ज्ञान कर्मका हेतु नहीं । उलटा विरोधी है । यातैं ज्ञानवान्सैं कर्म होवै नहीं ॥ औ—

२ कर्त्ताकर्मफलका भेदज्ञान कर्मका हेतु है ॥ सो कर्त्ताकर्मफलकी ज्ञानवान्कूं आत्मासैं भिन्न प्रतीति होवै नहीं । संपूर्ण आत्म-स्वरूपही प्रतीत होवैहैं । यातैं वी ज्ञानवान्सैं कर्म होवै नहीं ॥ औ—

॥ ४२३ ॥ या मतका प्रतिपादन वृत्तिप्रभाकरके तृतीयप्रकाशमैं सम्यक् कियाहै ॥

भाष्यकारनै बहुतप्रकारसैं ज्ञानवानूकूं कर्मका अभाव प्रतिपादन कियाहै । कर्मका औ ज्ञानका फलसैं विरोध है । यातैं बी ज्ञानकर्मका समुच्चय बनै नहीं ॥

१ कर्मका फल अनित्यसंसार है औ—

२ ज्ञानका फल नित्यमोक्ष है ॥ औ—

॥ ३८५ ॥ ३ आत्मामैं जातिआश्रम-अवस्थाका अध्यास कर्मका हेतु है । काहेतैं ? जातिआश्रमअवस्थाके योग्य भिन्नभिन्न कर्म कहेहैं । यातैं जातिआदिकनका अध्यास कर्मका हेतु है ॥

यद्यपि जातिआश्रमअवस्था देहके धर्म हैं औ कर्मीकूं देहमैं आत्मबुद्धि है नहीं । किंतु देहसैं भिन्न कर्त्ताआत्मा कर्मी जानैहै । यह वार्त्ता पूर्व कही । यातैं जातिआश्रमअवस्थाकी प्रतीति आत्मामैं कर्मीकूं बी बनै नहीं । तथापि देहसैं भिन्न आत्माका कर्मीकूं अपरोक्षज्ञान नहीं । किंतु शास्त्रसैं परोक्षज्ञान है औ देहमैं आत्मज्ञान अपरोक्ष है ॥ जो देहसैं भिन्न आत्माका अपरोक्षज्ञान होवै तौ देहमैं अपरोक्ष-आत्मज्ञानका विरोधी होवै औ परोक्षज्ञानका अपरोक्षज्ञानसैं विरोध है नहीं । यातैं देहसैं भिन्न कर्त्ताआत्माका ज्ञान औ देहमैं आत्मबुद्धि दोनूं एककूं बनैहैं ॥

दृष्टांतः—मूर्त्तिमैं ईश्वरज्ञान शास्त्रसैं परोक्ष है औ पाषाणबुद्धि अपरोक्ष है, तिन्हका विरोध नहीं । दोनूं एककूं होवैहैं ॥ औ रज्जुमैं जाकूं सर्पसैं अपरोक्षभेदज्ञान है ताकूं अपरोक्ष-सर्पभ्रांति दूरि होवैहै । यातैं—

यह नियम सिद्ध हुवाः—अपरोक्षभ्रांतिका अपरोक्षज्ञानसैं विरोध है । परोक्षसैं नहीं । यातैं देहसैं भिन्न आत्माका परोक्षज्ञान औ देहसैं अपरोक्षज्ञान बनैहै । सो दोनूं कर्मके हेतु हैं ॥

१ देहसैं भिन्न बी कर्त्तारूपकरिके आत्माका ज्ञान कर्मका हेतु है ॥ सो कर्त्तारूपकरिके आत्माका ज्ञान भ्रांतिरूप है औ भ्रांति विद्वानूकूं है नहीं । यातैं कर्मका अधिकार नहीं ॥ औ—

२ देहमैं अपरोक्षआत्मबुद्धि होवै तब देहके धर्म जातिआश्रमअवस्था प्रतीत होवैं । सो देहमैं आत्मबुद्धि बी विद्वानूकूं है नहीं । किंतु ब्रह्मरूपकरिके आत्माका अपरोक्षज्ञान है । यातैं जातिआश्रमअवस्थाकी भ्रांतिके अभावतैं बी विद्वानूकूं कर्मका अधिकार नहीं ॥ औ

उपासना बी "मैं उपासक हूं । देव उपास्य है" या बुद्धिसैं होवैहै सो विद्वानूकूं उपास्य-उपासकभाव प्रतीत होवै नहीं ॥ "देहादिक-संघात तौ मेरा औ देवका स्वप्नकी न्यांई कल्पित है औ चेतन एक है" यह विद्वानूका निश्चय है । यातैं ज्ञानका उपासनासैं विरोध है ॥ औ—

॥ ३८६ ॥ पक्षीके गमनका दृष्टांत बनै नहीं । काहेतैं? पक्षीके तौ दोपक्ष एककालमैं रहैहैं । तिनका

॥ ४२४ ॥ यद्यपि वेदमैं बी कहूं ज्ञानकर्मका समुच्चय लिख्याहै । तथापि समसमुच्चय औ क्रम-समुच्चयके भेदतैं समुच्चय दोप्रकारका है ॥

१ ज्ञानके साधन श्रवणादिक औ कर्मके साधन अग्निहोत्रआदिकनका एकही कालमैं अनुष्ठान करनैका नाम समसमुच्चय है ॥ औ—

२ प्रथम अंतःकरणशुद्धिके अर्थ जिज्ञासापर्यंत कर्म करना । पीछे कर्मकी विधिका अनादर-करिके ज्ञानके साधन श्रवणआदिकद्वारा ज्ञानकूं संपादन करनैका नाम क्रमसमुच्चय है ॥

तिनमैं—

१ समसमुच्चय त्याज्य है । औ—

२ क्रमसमुच्चय ग्राह्य है ।

यह वेदका तात्पर्य है । यातैं इहां समसमुच्चयका खंडन किया । क्रमसमुच्चयका नहीं ॥

परस्परविरोध नहीं औ ज्ञानका तौ कर्मउपासनासैं विरोध है । एककालमैं वनै नहीं ।। औ—

।। ३८७ ।। ज्ञानमैं कर्मउपासनाकी अपेक्षा नहीं ।। ३८७—३९० ।।

सेतुके ज्ञानका दृष्टांत बी वनै नहीं। काहेतैं? सेतुका[४२५] दर्शन दृष्टफलका हेतु नहीं। किंतु अदृष्टफलका हेतु है ।।

१ प्रत्यक्ष जो फल प्रतीत होवै सो दृष्टफल कहियेहै ।। जैसैं भोजनका फल तृप्ति प्रत्यक्ष है । यातैं भोजन दृष्टफलका हेतु है ।।

२ तैसैं सेतुके दर्शनसैं प्रत्यक्षफल प्रतीत होवै नहीं । किंतु पापका नाशरूप फल शास्त्रसैं जान्या जावैहै । जो शास्त्रसैं फल जानिये औ प्रत्यक्ष प्रतीत होवै नहीं सो अदृष्टफल कहियेहै ।।

यातैं जैसैं यज्ञादिककर्म स्वर्गादिक अदृष्टफलके हेतु हैं तैसैं सेतुका दर्शन बी पापके नाशरूप अदृष्टफलका हेतु है ।। जो अदृष्टफलका हेतु होवैहै सो तौ जितना फलकी उत्पत्तिमैं शास्त्रनै सहाय बोधन कियाहै, तासहित फलका हेतु होवैहै । केवल नहीं । यातैं श्रद्धानियमादिकसहित सेतुका दर्शन पापनाशरूप फलका हेतु है । श्रद्धानियमादिकरहित हेतु नहीं । काहेतैं ? सेतुके दर्शनसैं प्रत्यक्ष तौ कोई फल प्रतीत होवै नहीं । केवलशास्त्रसैं जान्याजावैहै ।। सो शास्त्र श्रद्धादिकसहित सेतुके दर्शनसैं फल बोधन करैहै । केवलदर्शनसैं फलकी उत्पत्तिमैं कोई प्रमाण नहीं । यातैं सेतुका दर्शन फलकी उत्पत्तिमैं श्रद्धानियमभक्तिकी अपेक्षा करैहै।। औ

।। ३८८ ।। ब्रह्मविद्या अपनै फलकी उत्पत्तिमैं कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै नहीं । काहेतैं ? जो ब्रह्मविद्याका फल बी स्वर्गकी न्याईं लोकविशेष अदृष्ट होवै, सो लोकविशेष बी केवल ब्रह्मविद्यासैं शास्त्रनै बोधन नहीं कियाहोवै । किंतु कर्मउपासनासहितसैं बोधन कियाहोवै तौ ब्रह्मविद्या बी सेतुके दर्शनकी न्याईं फलकी उत्पत्तिमैं कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै सो ब्रह्मविद्याका फल मोक्ष, स्वर्गकी न्याईं लोकविशेषरूप अदृष्ट तौ है नहीं । किंतु मोक्ष नित्यप्राप्त है औ भ्रांतिसैं बंध प्रतीत होवैहै। ता भ्रांतिकी निवृत्तिही ब्रह्मविद्याका फल है।। सो भ्रांतिकी निवृत्ति केवलब्रह्मविद्यासैं हमारे[४२६] कूं प्रत्यक्ष है औ रज्जुज्ञानसैं सर्पभ्रांतिकी निवृत्ति सर्वकूं प्रत्यक्ष है । यातैं अधिष्ठानज्ञानका भ्रांतिकी निवृत्ति दृष्टफल है ।।

दृष्टफलकी उत्पत्ति जितनी सामग्रीसैं प्रत्यक्षप्रतीत होवैहै, सो सामग्री दृष्टफलकी हेतु कहियेहै ।।

१ जैसैं तुरी तंतु वेमसैं पटकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष है । यातैं [४२७]तुरी तंतु वेम पटके हेतु हैं ।। औ—

२ केवलभोजनसैं तृप्तिरूप फल प्रत्यक्षप्रतीत होवैहै । यातैं केवलभोजन तृप्तिका हेतु है ।।

तैसैं केवलअधिष्ठानज्ञानतैं भ्रांतिकी निवृत्ति प्रत्यक्षप्रतीत होवैहै । यातैं केवलअधिष्ठानका ज्ञानही भ्रांतिकी निवृत्तिका हेतु है ।।

जैसैं रज्जुका ज्ञान भ्रांतिकी निवृत्तिमैं

।। ४२५ ।। रामचंद्रनै रामेश्वरसैं लेके लंकाके प्रति समुद्रकी पाज बांधी है ताका दर्शन ।।

।। ४२६ ।। ब्रह्मवेत्ता ज्ञानिनकूं ।।

।। ४२७ ।।

१ तुरीनाम जिस लकडीपर कपडा बनबनके बीट्या जावैहै तिस लकडीका है । औ—

२ तंतुनाम पटके उपादानसूत्रका है ।

३ वेमनाम जिस नलिकाविषै सूत्र रहताहै तिस नलिकाका है । याहीकूं कहींक नडा बी कहतेहैं।।

अन्यकी अपेक्षा करै नहीं, तैसैं बंधकी भ्रांतिका अधिष्ठान जो नित्यमुक्त आत्मा, ताका ज्ञान बी बंधभ्रांतिकी निवृत्तिमैं कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै नहीं ॥ औ—

॥ ३८९ ॥ १ ज्ञानके फल मोक्षकूं जो स्वर्गकी न्यांई लोकविशेष अदृष्ट अंगीकार करैहैं सो वेदवाक्यसैं विरुद्ध है। काहेतैं ? ज्ञानवान्के प्राण किसीलोककूं गमन नहीं करते। यह वेदमैं कह्याहै ॥ औ—

२ लोकविशेष अंगीकार करनैतैं स्वर्गकी न्यांई मोक्ष अनित्य होवैगा। यातैं लोकविशेषरूप[४२८] मोक्ष नहीं ॥ औ—

३ लोकविशेष जो मोक्ष अंगीकार करैं ताकूं बी केवलज्ञानसैंही मोक्षलोककी प्राप्ति अंगीकार करनी योग्य है। काहेतैं ? जो शास्त्रनैं प्रतिपादन किया अर्थ होवै सो शास्त्रके अनुसारही अंगीकार करियेहै ॥ सो शास्त्र केवलज्ञानसैं मोक्ष कहैहै । यातैं केवलज्ञान मोक्षका हेतु है। कर्म उपासना ज्ञान तीनूं नहीं ॥ औ—

॥ ३९० ॥ वृक्षका दृष्टांत बी बनै नहीं। काहेतैं ? यद्यपि जलका सेचन वृक्षकी उत्पत्ति औ रक्षामैं हेतु है तथापि वृक्षके फलकी उत्पत्तिमैं नहीं ॥ वृद्ध जो वृक्ष है ताकेविषै जलका सेचन वृक्षकी रक्षाके निमित्त है। फलके निमित्त नहीं ॥ जलसैं पुष्ट जो वृक्ष सोई फलका हेतु है। जलसेचन नहीं ॥ तैसैं कर्मउपासनाका बी ज्ञानकी उत्पत्तिमैं उपयोग है। मोक्षमैं नहीं। यातैं ज्ञानकी उत्पत्तिसैं पूर्वही अंतःकरणकी शुद्धि औ निश्चलताके निमित्त कर्मउपासना करै । ज्ञानसैं अनंत मोक्षके निमित्त नहीं ॥

ज्ञानकी उत्पत्तिसैं पूर्व बी जितनैं अंतःकरणमैं मल औ विक्षेप होवै तबपर्यंतही करै। शुद्ध औ निश्चलअंतःकरण जाका होवै सो जिज्ञासु श्रवणके विरोधी कर्मउपासनाका त्याग करै ॥ मल नाम पापका है ॥ सो अशुभवासनाका हेतु है ॥ जबपर्यंत मल होवै तब पर्यंत अशुभवासना होवैहै ॥ जब अशुभवासना होवै नहीं तब मलका अभाव निश्चय करै ॥ अंतःकरणकी चंचलता औ एकाग्रता अनुभवसिद्ध है। यातैं उत्तमजिज्ञासु औ विद्वान्कूं कर्मउपासना निष्फल है ॥ औ—

॥३९१॥ कर्मउपासनातैं ज्ञानकी रक्षा होवै नहीं ॥

पूर्व जो कह्या "ज्ञानकी रक्षाके निमित्त कर्मउपासना करै ॥ जैसैं जलसैं उत्पन्न हुवा जो वृक्ष ताकी जलसैं रक्षा होवैहै। जो जलका संबंध नहीं होवै तौ वृद्धवृक्ष बी सूकजावैहै ॥ तैसैं कर्मउपासनासैं उत्पन्न हुवा जो ज्ञान, ताकी कर्मउपासनासैं रक्षा होवैहै ॥ जो ज्ञानी कर्मउपासना नहीं करै तौ अंतःकरण मलिन औ चंचल फेरि होयजावैगा ॥ ता मलिन औ चंचल अंतःकरणमैं सूकीभूमिमैं वृक्षकी न्यांई उत्पन्न हुवा ज्ञान बी नष्ट होयजावैगा। यातैं ज्ञानवान् बी कर्मउपासना करै ॥"

सो बनै नहीं। काहेतैं ? आभाससहित अथवा चेतनसहित जो अंतःकरणकी

॥ ४२८ ॥ इहां दुर्जनतोषन्यायकरिके जो लोकविशेषकूं मोक्ष मानैं तौ बी सो मोक्ष ज्ञानविना होवै नहीं। यह वार्ता सिद्धांती प्रतिपादन करैहैं ॥ जैसैं किसीका प्रबलशत्रु होवै सो अपनै निर्बलशत्रुकूं प्रथम प्रहार करनैकी आज्ञा देकै संतोषकूं प्राप्त करै। पीछे ताकूं मारै। ताका नाम दुर्जनतोषन्याय है ॥

॥ ४२९ ॥ जबपर्यंत ॥

" मैं असंग ब्रह्म हूं" यह वृत्ति सो वेदांतका फलरूप ज्ञान है, ताका कर्मउपासनासैं विना नाश होवैगा अथवा चेतनस्वरूप ज्ञानका नाश होवैगा ।

जो ऐसैं कहैंः—स्वरूपज्ञान तौ नित्य है, यातैं ताका तौ नाश औ रक्षा बनै नहीं । परंतु वेदांतका फल जो ब्रह्मविद्यारूप ज्ञान है, ताकी कर्मउपासनासैं उत्पत्ति होवैहै औ कर्मउपासनाके त्यागसैं उत्पन्न हुई विद्या बी नष्ट होयजावैगी । यातैं ताकी रक्षाके निमित्त कर्मउपासना करै ।

सो बनै नहीं । काहेतैं ?—

१ एकवार उत्पन्न हुई जो अंतःकरणकी ब्रह्माकारवृत्ति, तासैं अज्ञान औ भ्रांतिका नाशरूप फल तिसही समय सिद्ध होवैहै । अज्ञान औ भ्रांतिके नाशतैं अनंतर फेरि वृत्तिकी रक्षाका उपयोग नहीं । औ—

२ अंतःकरणकी वृत्तिकी कर्मउपासनासैं रक्षा बनै बी नहीं । काहेतैं ? जब कर्मउपासनाका अनुष्ठान करैगा, तब कर्मउपासनाकी सामग्रीकाही वृत्तिरूप ज्ञान होवैगा । ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं । औरवृत्ति हुयेतैं प्रथमवृत्ति रहै नहीं । यातैं कर्मउपासना ज्ञानकी उत्पत्तिके तौ परंपरातैं हेतु हैं औ उत्पन्न हुई वृत्तिके विरोधी हैं । यातैं कर्मउपासनातैं ज्ञानकी रक्षा होवै नहीं । औ—

॥ ३९२ ॥ ज्ञानीकूं पाप औ चंचलताके अभावतैं कर्म औ उपासनाका उपयोग नहीं ॥ ३९२—३९३ ॥

पूर्व जो कह्या " ज्ञानवान्कूं कर्मके त्यागसैं पाप होवैहै " सो वार्त्ता बनै नहीं । काहेतैं ?

१ जो शुभकर्मका त्याग है, सो पापका हेतु नहीं । किंतु निषिद्धकर्मका अनुष्ठानही पापका हेतु है । यह वार्त्ता भाष्यकारनैं बहुतप्रकारसैं प्रतिपादन करीहै । यातैं कर्मके त्यागसैं पाप होवै नहीं । औ—

२ ज्ञानवान्कूं तौ सर्वप्रकारसैं पापका असंभव है । काहेतैं ? पुण्यपाप औ तिनका आश्रय अंतःकरण परमार्थसैं हैं नहीं । अविद्यासैं मिथ्याप्रतीति होवैहै । सो अविद्या औ मिथ्याप्रतीति ज्ञानवान्के है नहीं । यातैं ज्ञानवान्कूं शुभकर्मके त्यागसैं अथवा अशुभके अनुष्ठानसैं पाप बनै नहीं ॥

॥ ३९३ ॥ या स्थानमैं यह सिद्धांत हैः— १ मंद औ २ दृढ, दोप्रकारका ज्ञान है ।

१ संशयादिकसहित जो ज्ञान, सो मंदज्ञान कहियेहै । औ—

२ संशयादिकरहित ज्ञान दृढ कहियेहै ।

जाकूं दृढज्ञान होवै, ताकूं किंचित्मात्र बी कर्त्तव्य नहीं । एकवार उत्पन्न हुवा जो संशयादिकरहित अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान, सोई अविद्याका नाश करि देवैहै । सो ज्ञान आप बी दूरि होयजावै तौ बी भलेप्रकारसैं जाने आत्मामैं फेरि भ्रांति होवै नहीं । काहेतैं ? जो भ्रांतिका कारण अविद्या है, सो अविद्या एकवार उत्पन्न हुये ज्ञानसैं नष्ट होयगई । यातैं भ्रांति औ अविद्याके अभावतैं वृत्तिज्ञानकी आवृत्तिका कुछ उपयोग नहीं ॥ औ—

जीवन्मुक्तिके आनंदके वास्ते जो वृत्तिकी आवृत्ति अपेक्षित होवै तौ वारंवार वेदांतके अर्थका चिंतनही करै । वेदांतके अर्थचिंतनसैंही वारंवार ब्रह्माकारवृत्ति होवैहै औ कर्मउपासनातैं नहीं । काहेतैं ? कर्म औ उपासनाका अंतःकरणकी शुद्धि औ निश्चलताद्वाराही ज्ञानमैं उपयोग है । औररीतिसैं नहीं । औ विद्वान्के अंतःकरणमैं पाप औ चंचलता हैं

नहीं। रागद्वेषद्वारा पाप औ चंचलताका हेतु अविद्या है, ता अविद्याका ज्ञानसैं नाश होवैहै। यातैं विद्वान्‌के पाप औ चंचलताके अभावतैं कर्मउपासनाका उपयोग नहीं। और—

॥ ३९४ ॥ ज्ञानिनके प्रारब्धकी विलक्षणता औ तिनकी जीवन्मुक्तिके सुखअर्थ बी उपासनामैं अप्रवृत्ति ॥

जो कदाचित् ऐसैं कहैं:—रागद्वेषादिक अंतःकरणके सहजधर्म हैं। जितनै अंतःकरण हैं, उतनै रागद्वेषका सर्वथा नाश ज्ञानवान्‌के बी होवै नहीं। तिन्ह रागद्वेषतैं ज्ञानवान्‌का बी अंतःकरण चंचल होवैहै। यातैं चंचलता दूरि करनैवास्ते ज्ञानवान् बी उपासना करै ॥

यद्यपि ज्ञानवान्‌कूं अंतःकरणकी चंचलतासैं विदेहमोक्षमैं हानि नहीं तथापि चंचलअंतःकरणमैं स्वरूपआनंदका भान होवै नहीं। यातैं चंचलता जीवन्मुक्तिकी विरोधी है। यातैं जीवन्मुक्तिके निमित्त चंचलता दूरि करनैवास्ते उपासना करै।

सो बनै नहीं। काहेतैं? यद्यपि दृढबोध जाके अंतःकरणमैं हुवाहै, ताके समाधि औ विक्षेप समान हैं। यातैं अंतःकरणकी निश्चलताके निमित्त किसी यत्नका आरंभ विद्वान्‌कूं बनै नहीं। तथापि विद्वान्‌की प्रवृत्ति औ निवृत्ति प्रारब्धके आधीन है ॥ प्रारब्धकर्म सर्वका विलक्षण है।

१ किसी विद्वान्‌का जनकादिकनकी न्याईं भोगका हेतु प्रारब्ध है। औ—

२ किसीका शुकदेव वामदेवादिकनकी न्याईं निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध है ॥

१ जाके भोगका हेतु प्रारब्ध है ताकूं तौ प्रारब्धसैं भोगकी इच्छा औ भोगके साधनका यत्न होवैहै। औ—

२ जाके निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध होवै, ताकूं जीवन्मुक्तिके आनंदकी इच्छा होवैहै औ भोगमैं ग्लानि होवैहै।

जाकूं जीवन्मुक्तिके आनंदकी इच्छा होवै सो ब्रह्माकारवृत्तिकी आवृत्तिके निमित्त वेदांतअर्थका चिंतनही करै। उपासना नहीं। काहेतैं? अंतःकरणकी निश्चलतामात्रसैं ब्रह्मानंदका विशेषरूपसैं भान होवै नहीं। किंतु ब्रह्माकारवृत्तिसैंही होवैहै। सो ब्रह्माकारवृत्ति वेदांतचिंतनसैंही होवैहै। उपासनासैं नहीं ॥ औ—

अंतःकरणकी चंचलता बी विद्वान्‌कूं वेदांतके चिंतनसैं दूरि होय जावैहै। यातैं अंतःकरणकी निश्चलताके निमित्त बी उपासनामैं प्रवृत्ति होवै नहीं ॥

इसरीतिसैं दृढबोध जाके हुवाहै ताकी कर्मउपासनामैं प्रवृत्ति होवै नहीं ॥ औ—

॥ ३९५ ॥ दृढअदृढज्ञानी औ उत्तममंदजिज्ञासुकूं कर्मउपासनामैं अधिकार नहीं ॥ ३९५-३९६ ॥

१ जाके मंदबोध है सो बी मनन औ निदिध्यासनही करै। कर्मउपासना नहीं। काहेतैं? मंदबोध जाकूं हुवाहै सो उत्तमजिज्ञासु है। ता उत्तमजिज्ञासुकूं मनननिदिध्यासनसैं विना अन्यकर्तव्य नहीं। यह वार्ता शारीरकमैं सूत्रकार औ भाष्यकारनै प्रतिपादन करीहै औ—

२ विद्वान्कूं मनननिदिध्यासन बी कर्त्तव्य नहीं । जो जीवन्मुक्तिके आनंदके वास्ते विद्वान् मनननिदिध्यासनमें प्रवृत्त होवैहै सो बी अपनी इच्छासें प्रवृत्त होवैहै औ "मैं वेदकी आज्ञा नहीं करूंगा तौ मेरेकूं जन्ममरणसंसार होवैगा" इसबुद्धिसें जो किया करै सो कर्तव्य कहियेहै ॥ सो जन्मादिकनकी बुद्धि विद्वान्के होवै नहीं । यातें अपनी इच्छातें जो विद्वान् मनननिदिध्यासन करै सो कर्तव्य नहीं ॥

इसरीतिसें मंदबोध अथवा दृढबोध जाके हुवाहै तिसकूं कर्मउपासना कर्त्तव्य नहीं ॥ औ- ॥ ३९६ ॥

३ जाके बोध नहीं हुयाहै । किंतु आत्माके जाननेकी तीव्र इच्छा है । भोगकी नहीं । ताका अंतःकरण शुद्ध है । यातें सो बी उत्तमही जिज्ञासु है । ताकूं बी बोधके वास्ते श्रवणादिकही कर्त्तव्य हैं । कर्मउपासना नहीं। काहेतें ? जो कर्मउपासनाका फल है सो ताके सिद्ध है ॥ औ—

४ ज्ञानकी सामान्यइच्छातें जो श्रवणमें प्रवृत्त हुवाहै औ अंतःकरण भोगनमें आसक्त है सो मंदजिज्ञासु है । सोबी श्रवणकूं त्यागिके फेरी कर्मउपासनामें प्रवृत्त होवै नहीं । जो कर्मउपासनाका फल अंतःकरणकी शुद्धि औ निश्चलता है । सो ताकूं श्रवणसेंही होयजावैगा । श्रवणकी आवृत्तितें अंतःकरणका दोष दूरि होयके इसजन्मविषै अथवा अन्यजन्मविषै अथवा ब्रह्मलोकविषै ज्ञान होवैहै ।

आवृत्ति नाम वारंवारका है औ—

श्रवणकूं त्यागिके जो कर्मउपासनामें प्रवृत्त होवैहै सो आरूढपतित कहियेहै ।

१-२ इसरीतिसें ज्ञातवान् औ उत्तम जिज्ञासुका कर्मउपासनाविषै अधिकार नहीं ॥ औ—

३ मंदजिज्ञासु बी जो वेदांतश्रवणमें प्रवृत्त हुआहै ताका अधिकार नहीं । औ—

४ ज्ञानकी जाकूं इच्छा तौ है परंतु भोगमें बुद्धि आसक्त है । यातें श्रवणमें प्रवृत्त नहीं हुवा ऐसा जो मंदजिज्ञासु ताका निष्कामकर्म औ उपासनामें अधिकार है । औ—

५ जाकी भोगविषैही आसक्ति है । ज्ञानकी इच्छा नहीं । ऐसा जो बहिर्मुख है ताका सकामकर्मविषै बी अधिकार है ।

यातें ज्ञानवान्कूं कर्मउपासनाका अधिकार नहीं ॥ कर्मउपासनाका ज्ञान विरोधी है ॥ औ—

॥ ४२० ॥

१ "जे अज्ञाततत्त्व होवैं वे श्रवणकूं करहु। मैं तत्त्वकूं जानताहुया किसकारणतें श्रवणकूं करूं ?" औ—

२ "जे संशयकूं प्राप्त भयेहैं वे मननकूं करहु । संशयरहित मैं मननकूं करता नहीं ॥"

३ "जो विपर्ययकूं पायाहोवै सो निदिध्यासनकूं करै । मैं देहविषै आत्मताके ज्ञानरूप विपर्ययकूं कदाचित् भजता नहीं । यातें मेरेकूं विपर्ययके अभावतें कौन ध्यान है ?" कोई बी नहीं ॥

इसरीतिसें पंचदशीके तृप्तिदीपमें विद्यारण्यस्वामीनें विद्वान्कूं कर्त्तव्यका अभाव सविस्तर लिख्या है ॥

॥ ४२१ ॥ मोक्षकी सीढीपैं चढिके फेर तहांसैं गिरै ताकूं "करलेढिन्याय (प्राप्तलड्डुकूं गमायके हाथ चाटनेका दृष्टांत)" प्राप्त होवैहै । यह अर्थ पंचदशीके ध्यानदीपनाम नवमप्रकरणके व्याख्यानविषै हमनै स्पष्ट लिख्या है ॥

॥ ३९७ ॥ दृढबोधके कर्मउपासना विरोधी नहीं । परंतु मंदबोधके विरोधी हैं ॥ ३९७—३९९ ॥

कर्मउपासना बी अंतःकरण शुद्धि औ निश्चलताद्वारा ज्ञानकी उत्पत्तिके तौ हेतु हैं, परंतु ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर जो कर्मउपासना करै तौ उत्पन्न हुवा ज्ञान नष्ट होयजावैगा । यातैं ज्ञानके विरोधी हैं, रच्छाके हेतु नहीं । काहेतैं ?

१ "मैं कर्त्ता हूं और यज्ञादिक मेरेकूं कर्तव्य हैं । यज्ञादिकनका स्वर्गादि फल है" या भेदबुद्धिसैं कर्म होवैहै । औ—

२ "मैं उपासक हूं । देव उपास्य है" या भेदबुद्धिसैं उपासना होवैहै ॥

सो दोनूंप्रकारकी बुद्धि "सर्व ब्रह्म है" या बुद्धिकूं दूरिकरिके होवैहै, यातैं कर्मउपासना ज्ञानके विरोधी हैं ॥

यद्यपि ज्ञानवान् आत्माकूं असंग जानैहै तौ बी देहका भोजनादिक व्यवहार अथवा जनकादिकनकी न्यांई अधिकराज्यपालनादिक व्यवहार करैहै । ता व्यवहारका ज्ञान विरोधी नहीं औ व्यवहार ज्ञानका बी विरोधी नहीं । काहेतैं? जो आत्मस्वरूप ज्ञानसैं असंग जान्याहै ता आत्माविषै जो व्यवहार प्रतीत होवै तौ व्यवहारका विरोधी ज्ञान, तथा ज्ञानका विरोधी व्यवहार[४३२] होवै सो विद्वान्‌कूं आत्माविषै व्यवहार प्रतीत होवै नहीं । किंतु संपूर्णव्यवहार देहादिकनके आश्रित है औ आत्माविषै व्यवहारसहित देहादिकनका संबंध है नहीं । या बुद्धिसैं संपूर्ण व्यवहार करैहै । इसीकारणतैं विद्वान्‌की प्रवृत्ति बी निवृत्तिही कही है ॥

॥ ३९८ ॥ **जैसैं** अन्यव्यवहार ज्ञानका विरोधी नहीं **तैसैं** कर्मउपासना बी अन्यबहिर्मुखपुरुषनके करावनै वास्तै आत्माकूं असंग जानिके औ देहवाक्‌अंतःकरणके आश्रित क्रिया जानिके जो कर्मउपासना करै तौ ज्ञानके विरोधी नहीं । काहेतैं ? जो आत्मा विद्वान्‌नैं असंग जान्याहै ताकूं कर्ता जानिके जो कर्मउपासना करै तौ ज्ञानके विरोधी होवैं । सो आत्माका असंगरूप दृढनिश्चय कर्मउपासनासैं विद्वान्‌का दूरि होवै नहीं । यातैं आभासरूप[४३३] कर्म औ उपासना दृढज्ञानके विरोधी नहीं । इसीकारणतैं जनकादिकननै आभासरूप कर्म करे हैं ।

जो आत्माकूं असंग जानिके और व्यवहारकी

॥ ४३२ ॥ यह अर्थ विद्यारण्यस्वामीनै तृप्तिदीपविषै बी ऐसैं लिख्या है:—

१ "प्रारब्ध जब जगत्‌की सत्यताकूं संपादन करिके भोगकूं देवै तब विद्याका विरोधी होवै भोगमात्रसैं विषयकी सत्यता होवै नहीं ॥"

२ "विद्या (ज्ञान) जब जगत्‌कूं विलय करै तब प्रारब्धकी विरोधी होवै औ मिथ्यापनैके बोधसैं तौ तिस (जगत्) का विलय नहीं होवैहै"। इहां प्रारब्धशब्दकरि ताके कार्य व्यवहारका बी ग्रहण है ॥

३ तैसैं ध्यानदीपविषै बी कहाहै:—"व्यवहार जो है सो प्रपंचकी सत्यताकूं औ आत्माकी जडताकूं बी अपेक्षा करता नहीं । किंतु यह साधनोंकूंही अपेक्षा करता है ॥"

४ "मन वाणी शरीर औ तिनतैं बाह्यपदार्थ (गृहक्षेत्रआदिक) जो हैं वे व्यवहारके साधन हैं, तिनकूं तत्त्ववित् मिथ्या जानताहै । परंतु स्वरूपतैं नाश करता नहीं । यातैं इस (ज्ञानी) का व्यवहार काहेतैं नहीं होवैगा ?" किंतु होवैगाही ॥

इसरीतिसैं ज्ञानका औ प्रारब्धजनित व्यवहारका विरोध नहीं ॥

॥ ४३३ ॥ आत्माकूं असंग जानिके औ देहवाणीमनके आश्रित क्रिया जानिके जो कर्मउपासना करिये हैं सो आभासरूप हैं ॥

न्यांई देहादिकनके धर्म जानिके विद्वान् शुभक्रिया करै सो आभासरूप कर्म कहियेहै। ताका ज्ञानसैं विरोध नहीं औ भाष्यकारनै कर्मउपासनाका जो ज्ञानसैं विरोध कह्याहै, सो आत्मामैं कर्त्ताबुद्धिसैं जो कर्मउपासना करेहैं ताका विरोध कह्याहै औ आभासरूपसैं नहीं ॥

॥ ३९९ ॥ तथापि मंदबोधके आभासरूप कर्म औ आभासरूप उपासना बी विरोधी हैं। काहेतैं ? जो संशयादिकसहित बोध है सो मंदबोध कहियेहै। जाके अंतःकरणमैं "आत्मा असंग है, अथवा नहीं है ?" ऐसा कदाचित् संशय होवै सो पुरुष जो वारंवार "आत्मा असंग है, मेरेकूं किंचित्मात्र बी कर्त्तव्य नहीं" या अर्थकूं चिंतन करै, तब तौ संशय दूरि होयके दृढबोध होयजावै औ कर्मउपासना करैगा तौ मंदबोध जो उत्पन्न हुवाहै, सो दूरि होयके "मैं कर्त्ताभोक्ता हूं" यह विपरीतनिश्चय होयजावैगा। यातैं मंदबोधकी उत्पत्तिसैं पूर्वही कर्मउपासना करै औ अनंतर नहीं ॥

जो मंदबोधवाला कर्मउपासना करैगा तौ उत्पन्न हुवा बोध नष्ट होयजावैगा ॥

दृष्टांतः—जैसैं पक्षी अपनै अंडेकूं पक्षकी उत्पत्तिसैं पूर्व सेवन करैहै औ पक्षकी उत्पत्तिसैं अनंतर नहीं। जो पक्षकी उत्पत्तिसैं अनंतर बी अंडेकूं सेवन करै तौ बालकपक्षीके ता अंडेके जलसैं पक्ष गलीजावैं । तैसैं ज्ञानकी उत्पत्तिसैं पूर्वही कर्मउपासनाका सेवन करै औ ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर नहीं ॥ जो ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर बी कर्मउपासनाका सेवन करै तौ बालकपक्षीकी न्यांई मंदज्ञानका नाश होयजावै औ वृद्धपक्षीकी जैसैं अंडेके संबंधसैं हानि होवै नहीं तैसैं दृढबोधकी तौ हानि होवै नहीं। औ वृद्धपक्षीकी न्यांई दृढबोधकूं कर्मउपासनासैं उपयोग बी नहीं ॥

इसरीतिसैं ज्ञानवान्कूं मोक्षके निमित्त किंचित्मात्र बी कर्त्तव्य नहीं। यह तृतीयप्रश्नका उत्तर कह्या ॥

॥ ४०० ॥ उक्तअर्थ सर्ववेदका सार है।

जो शिष्यकूं आचार्यनै उत्तर कहे सो वेदके अनुसार कहे, यातैं यथार्थ हैं। यह वार्त्ता कहैहैं:—

॥ दोहा ॥

सिष्य कह्यो जो तोहिं मैं,
सर्व वेदको सार ॥
लहै ताहि अनयासही,
संसृति नसै अपार ॥ ११ ॥

हे शिष्य ! जो मैं तेरेकूं कह्या सो सर्व वेदका सार है। यातैं याविषै विश्वास कर औ याके जाननैतैं अनायास कहिये खेदविना अपार जो संसृति कहिये जन्ममरणरूप संसार, ताका नाश होवैहै ॥

॥ ४०१ भाषाकी संप्रदाय ॥

यद्यपि खेदका नाम आयास है, ताके अभावका नाम अनायास है तथापि छंदके वास्ते अनयास पढ्याहै ॥

भाषामैं छंदके वास्ते गुरुके स्थानमैं लघु औ लघुके स्थानमैं गुरु पढनैका दोष नहीं ॥ औ—
मोक्षके स्थानमैं मोछही भाषामैं पाठ होवैहै। काहेतैं ? यह भाषाकी संप्रदाय है ॥

॥ दोहा ॥

लघु गुरु गुरु लघु होत है,
वृत्ति हेतु उच्चार ॥

रू ऱ्है अरुकी ठौरमैं,
अबकी ठौर वकार ॥ १ ॥
संयोगी क्ष न क पर ख न,
नहीं टवर्ग णकार ॥
भाषामैं ऋ ऌ ॡ नहीं,
अरु तालव्य शकार ॥ २ ॥

टीका:–इतनै अक्षर भाषामैं नहीं । कोई लिखै तौ कवि अशुद्ध कहै ॥

१ क्षके स्थानमैं छ ।
२ षके स्थानमैं ख ।
३ णकारके स्थानमैं नकार ।
४ ऋ–ऌके स्थानमैं रि–लि है ।
५ शकारके स्थानमैं सकार
भाषामैं लिखनै योग्य है ॥

॥४०२॥ उक्तअर्थका संग्रह ॥ ४०२-४०४॥

"जगत्का कर्ता ईश्वर है सो तेरेसैं भिन्न नहीं औ सत्‌चित्‌आनंदरूप ब्रह्म तूं है" यह आचार्यनै कह्या । सोई कृपातैं फेरि कहैहैं:—

॥ कवित्व ॥

दीनताकूं त्यागि नर
अपनो स्वरूप देखि ।
तू तौ सुद्धब्रह्म अज
दृश्यको प्रकासी है ॥
आपनै अज्ञानतैं
जगत सब तूही रचै ।
सर्वको संहार करै
आप अविनासी है ॥
मिथ्यापरपंच देखि
दुःख जिन आनि जिय ।
देवनको देव तू तौ
सब सुखरासी है ॥
जीव जग ईस होय
मायासैं प्रभासैं तूहि ।
जैसैं रज्जु साप सीप
रूप ऱ्है प्रभासी है ॥ १२ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥

॥ ४०३ ॥ ॥ कवित्व ॥

राग जारि लोभ हारि
द्वेष मारि मार वारि ।
वारवार मृगवारि
पारवार पेखिये ॥
ज्ञानभान आनि तम
तम तारि भागत्याग ।
जीव सीव भेद छेद
वेदन सु लेखिये ॥
वेदको विचार सार
आपकूं संभारि यार ।
टारि दासपास आस
इसकी न देखिये ॥
निश्चल तू चल न अचल
चलदल छल ।
नभ नील तल मल
तासूं न विसेखिये ॥ १३ ॥

टीका:–ज्ञानके साधन कहैहैं:–हे शिष्य ! राग जो पदार्थनमैं दृढआसक्ति है ताकूं जारिकै, लोभकूं हारि कहिये नाश करि, द्वेषकूं मारि, मार कहिये कामकूं वारि कहिये दूरि कर ।

रागलोभद्वेषकामके ग्रहणतैं सर्वराजसीतामसीवृत्तिका ग्रहण है । यातैं सर्वराजसीतामसीवृत्तिका नाश कर । यह अर्थ सिद्ध हुवा ॥ राजसीवृत्ति औ तामसीवृत्ति ये ज्ञानकी विरोधी हैं। तिन्हके नाशविना ज्ञान होवै नहीं, यातैं तिन्हकी निवृत्ति जिज्ञासुकूं अपेक्षित है।

विवेक, वैराग्य, शमादिपट्संपत्ति औ मुमुक्षुता, ये चारि जो ज्ञानके साधन हैं, तिन्हमैं विवेक प्रधान है। काहेतैं? विवेकसैं वैराग्यादिक उत्पन्न होवैहैं । यातैं विवेकका उपदेश आचार्य करैहैः—

हे शिष्य ! पारवार जो संसार है ताकूं वारंवार मृगवारि कहिये मृगतृष्णाके जलसमान मिथ्या जान ॥

१ पारवार नाम संसारका है । औ—

२ अपारवार नाम आत्माका है ॥

'पारवार मिथ्या है' या कहनैतैं अपारवार मिथ्या नहीं किंतु सत्य है । यह वार्त्ता अर्थसैं कही ॥

जैसैं बाजीगरके तमासै देखते पुत्रकूं पिता कहैः—" हे पुत्र ! यह आम्रवृक्षसैं आदिलेके जो बाजीगरनै बनायेहैं, सो सब मिथ्या हैं" या कहनैतैं बाजीगरकूं मिथ्या नहीं जानैहै । किंतु सत्य जानैहै ॥ तैसैं जगत्‌कूं मिथ्या कहनैतैं आत्माकूं सत्य जानि लेवैगा । या अभिप्रायतैं आचार्यनै पारवार मिथ्या कह्या ॥

इसरीतिसैं 'जगत् मिथ्या है औ आत्मा सत्य है' या विवेकका उपदेश कन्या ॥

ता विवेकसैं अन्यसाधन आपही उत्पन्न होवैहै । यातैं विवेकके उपदेशतैं सर्वसाधनका उपदेश अर्थसैं कह्या ॥

ज्ञानके बहिरंगसाधन कहे ॥

अंतरंगसाधन कथन करैहैंः— हे शिष्य ! ज्ञानरूपी जो भानु है ताकूं आनि कहिये श्रवणसैं संपादन करिके, तम कहिये अज्ञानरूपी जो तम कहिये अंधेरा है ताकूं तारि कहिये नाश कर ॥

तम नाम अंधेरे औ अज्ञानका है ।

अंधेरा उपमान है औ अज्ञान उपमेय है ॥

प्रथम जो तम शब्द है सो उपमेयका वाचक है औ दूसरा उपमानका वाचक है ॥

॥ दोहा ॥

जाकूं उपमा दीजिये,
सो उपमेय बखानि ॥
जाकी उपमा दीजिये,
सो कहिये उपमानि ॥ ३ ॥

॥ ४०४ ॥ ज्ञानका स्वरूप अन्यशास्त्रनमैं नानाप्रकारका अंगीकार कियाहै । यातैं महावाक्यके अनुसार ज्ञानका स्वरूप कहैहैंः— हे शिष्य !

॥ ४३४ ॥

१ विषयनविषै दोषके दर्शनतैं रागका नाश होवैहै । औ—

२ अर्थविषै अनर्थके ईक्षणतैं लोभका नाश होवैहै ।

३ कामके अभावतैं क्रोधरूप द्वेषकी उत्पत्ति होवै नहीं । औ—

४ पदार्थनके चिंतनरूप संकल्पके अभावतैं इच्छारूप कामकी उत्पत्ति होवै नहीं ।

इसरीतिसैं अन्यराजसीतामसीवृत्तिनके नाशका उपाय बी शास्त्रसैं जानीलेना ॥

किंवा एकादशस्कंधके १३ वें अध्यायविषै उक्त देशकालादिरूप दशसात्विकी पदार्थनके सेवनतैं सत्वगुणकी वृद्धिद्वारा सर्वराजसीतामसीवृत्तिनका नाश (तिरस्कार) होवैहै ॥

॥ ४३५ ॥ सांख्यन्यायआदिकशास्त्रमैं ॥

१ जीव औ ईश्वरविषै अविद्या औ माया-भागकूं त्यागिके तिन्हका जो भेद प्रतीत होवैहै ताकूं छेद कहिये दूरि करी। औ–

२ जीवईश्वरमैं जो वेदन कहिये चेतनभाग है ताकूं भेदरहित जान ॥

या कहनैतैं यह वार्त्ता कहीः–महावाक्यनमैं भागत्यागलक्षणातैं जीवईश्वरकी एकता जान ॥

शिवके स्थानमैं सीव पढ्याहै।

तृतीयपादका अर्थ स्पष्ट है।

पूर्वकहे अर्थकूं संक्षेपतैं चतुर्थपादसैं कहैहैं ॥ हे शिष्य! चल कहिये विनाशी जो देहादिक संघात, सो तूं नहीं। किंतु अचल कहिये अविनाशी जो ब्रह्म सो तूं है। औ चलदल कहिये वृक्षरूप[३६] जो संसार सो छल कहिये मिथ्या है ॥ जैसैं नभविषै नीलता औ तल-मल कहिये कटाहरूपता है नहीं। किंतु मिथ्या प्रतीत होवैहै। तैसैं संसार बी आत्माविषै है नहीं। मिथ्या प्रतीत होवैहै ॥

वृक्षरूपकरिके संसार श्रुतिस्मृतिमैं कह्याहै। यातैं वृक्षके वाचक चलदलशब्दका संसारमैं प्रयोग कर्याहै ॥ १३ ॥

॥ ४०५ ॥ अन्यप्रकारसैं मोक्षका साधन ज्ञान है, यह कथन ॥ ४०५–४०६ ॥

मोक्षका साधन ज्ञान है। या अर्थकूं अन्य-प्रकारसैं कहैहैं ॥

॥ कवित्व ॥

बंध मोछ गेह देह-
-वान ज्ञानवान जान।
राग रु विराग दोइ
धजा फररात हैं ॥
विषैविषै सत्यभ्रम
भ्रम मति वात तात।
हललात प्रात रात
घरी न ठहरात है ॥
साछ्य साछी पूतरी
अनूजरी रु ऊजरी द्वै।
देखि रागी त्यागी
ललचात जन जात हैं ॥

॥ ४३६ ॥

१ सर्वसैं उत्कृष्ट होनैतैं ऊंचा ऐसा मायाविशिष्ट-परब्रह्म है मूल जिसका। औ–

२ महत्तत्त्व है अंकुर जिसका औ––

३ अहंकार है स्कंध (पेड) जिसका। औ––

४ पंचतन्मात्रा हैं शाखा जिसकी।––

५ ये कहे जे महत्तत्त्वआदिक वे सर्व कार्यता-करि निकृष्ट होनैतैं जिसकी नीची शाखा कहियेहैं। औ––

६ वेदआदिक जे शास्त्र हैं वे प्ररोचनरूप वाक्यनसैं याके अनित्यताआदिक दोषनकूं ढांपतेहैं। यातैं वे शास्त्र जिसके पर्ण (पत्ते) हैं औ––

७ चारिपुरुषार्थरूप जाके रस हैं औ––

८ धर्मअधर्मरूप जिसके पुष्प हैं। औ––

९ जन्ममरणआदिक दुःख जिसका फल है। औ–

१० अज्ञजीवरूप पक्षी जिसके भोक्ता हैं। औ–

११ वैराग्यसैं तीक्ष्ण हुया ज्ञानरूप कुठार जिसका छेदक है।

ऐसा यह संसाररूप अश्वत्थवृक्ष है।

इत्यादि अनेकप्रकारसैं शास्त्रनमैं संसाररूप वृक्षका वर्णन किया है ॥

चंचल अचल भ्रम
ब्रह्म लखि रूप निज ।
दुःखरूप आनंद
स्वरूपमैं समात है ॥ १४ ॥

टीकाः-हे शिष्य !

देहवान् कहिये देहअभिमानी अज्ञानी औ ज्ञानवान्, बंध औ मोक्षके गेह कहिये धाम है ॥

१ अज्ञानी तौ बंधका धाम है । औ—

२ ज्ञानी मोक्षका धाम है ।

राग औ विराग तिनकी धजा है। जैसैं धजा राजाके नगरका चिन्ह होवैहै तैसैं राग औ विराग तिन्हके चिह्न हैं ।

१ अज्ञानीका राग चिह्न है ॥ औ—

२ ज्ञानीका विराग चिह्न है ।

अज्ञानीविषै बी विराग होवैहै, यातैं ज्ञानीका अज्ञानीसैं विलक्षण विराग कहैहैं:-हे तात! विषय जो शब्दादिक हैं तिन्हविषै सत्यभ्रम कहिये सत्यपनैकी भ्रांति औ भ्रममति कहिये रज्जुसर्पकी न्याई विषय भ्रमरूप हैं। यह जो मति निश्चय सो वातकी न्याई राग औ विरागकूं हलावैहै । जैसैं वायु धजाकी चंचलता करैहै तैसैं विषयमैं सत्यबुद्धि औ भ्रमबुद्धि राग औ विरागकूं चंचल करैहै। शिथिल होनै देवै नहीं ॥

१ विषयमैं सत्यबुद्धिसैं रागकी शिथिलता दूरि होवैहै । औ—

२, विषयमैं भ्रमबुद्धिसैं विरागकी शिथिलता दूरि होवैहै ॥

॥ ४०६ ॥ विषय असत्य हैं । यातैं तिन्हमैं सत्यबुद्धि भ्रांतिरूप है । इस वार्त्ताके जनावनैकूं कवित्तमैं सत्यभ्रम कह्या । सत्यबुद्धि नहीं कही ॥ भ्रांतिज्ञान औ भ्रांतिज्ञानका विषय जो मिथ्यावस्तु, सो दोनूं भ्रम कहियेहैं । या कहनैतैं अज्ञानीके विरागतैं ज्ञानीके विरागका भेद कह्या । काहेतैं ? जो अज्ञानीका विराग है, सो विषयमैं मिथ्याबुद्धिसैं उत्पन्न नहीं हुवा ! यातैं मंद है । "विषय मिथ्या हैं" यह बुद्धि अज्ञानीकूं होवै नहीं ॥

१ यद्यपि शास्त्रयुक्तिसैं अज्ञानी बी मिथ्या जानैहैं तथापि "विषय मिथ्या हैं" यह अपरोक्षमति ज्ञानवान्‌कूंही होवैहै । अज्ञानी-कूं नहीं । यातैं अज्ञानीकूं विषयमैं परोक्ष जो मिथ्याबुद्धि, तासैं अपरोक्षसत्यभ्रांति दूरि होवै नहीं । इसरीतिसैं अज्ञानीकूं विषयमैं जब विराग होवैहै, ता कालमैं परोक्ष-मिथ्याबुद्धि है बी परंतु परोक्षमिथ्याबुद्धिसैं प्रबल अपरोक्षसत्यबुद्धि है । यातैं अज्ञानीकी परोक्षमिथ्याबुद्धि विरागकी हेतु नहीं। किंतु प्रबल जो सत्यबुद्धि, तासैं विषयमैं रागही होवैहै औ जो विराग होवै तौ बी मिथ्याबुद्धिसैं नहीं । किंतु विषयमैं दोषदृष्टिसैं होवैहै ॥ औ—

२ ज्ञानवान् सर्वप्रपंचकूं अपरोक्षरूप करिके मिथ्या जानैहै । ता अपरोक्षमिथ्याबुद्धिसैं अपरोक्षसत्यबुद्धि दूरि होवैहै। यातैं रागकी हेतु विषयमैं सत्यबुद्धि तौ ज्ञानीकूं है नहीं। विरागकी हेतु विषयमैं मिथ्याबुद्धि ज्ञानवान्‌कूं है । जो ज्ञानीकूं विषयमैं सत्यबुद्धि फेरि होवै तौ राग बी फेरि होवै औ विराग दूरि होवै । सो अपरोक्षरूपतैं मिथ्या जाने पदार्थमैं फेरि सत्यबुद्धि होवै नहीं । जैसैं अपरोक्षरूपतैं मिथ्या जान्या जो रज्जुमैं सर्प, ताकेविषै सत्यबुद्धि फेरि होवै नहीं, तैसैं ज्ञानीकूं फेरि सत्यबुद्धि होवै नहीं । इसरीतिसैं रागकी उत्पत्ति औ विरागकी निवृत्ति ज्ञानीके होवै नहीं । यातैं ज्ञानीका विराग दृढ है ॥ औ—

दोषदृष्टिसैं जो अज्ञानीकूं विराग होवैहै,

सो तौ दूरि होय जावैहै। काहेतें? जा पदार्थनमैं दोषदृष्टि होवैहै ता पदार्थनमैंही अन्यकालमैं सम्यक्बुद्धि बी होय जावैहै। जैसैं सर्व-पुरुषनकूं पशुधर्मके अंतमैं स्त्रीविषै दोषदृष्टि होवैहै औ कालांतरमैं फेरि सम्यक्बुद्धि होवैहै। इसरीतिसैं दोषदृष्टि जब दूरि होवै तब अज्ञानीका विराग बी दूरि होयजावैहै। यातैं अज्ञानीकूं दृढविराग होवै नहीं॥

इसरीतिसैं राग औ विराग अज्ञानीके औ ज्ञानीके चिह्न कहे॥

और बी चिह्न कहैहैं:—हे शिष्य! जैसैं धामके ऊपरि पूतरि कहिये हस्तीआदिकनकी मूर्ति होवैहै तैसैं बंधमोक्षका धाम जो अज्ञानी औ ज्ञानीका अंतःकरण है, ताकेविषै साक्ष्य-साक्षी पूतरी है॥

१ अज्ञानीके अंतःकरणविषै तौ साक्ष्यरूपी पूतरी है॥ औ—

२ ज्ञानीके अंतःकरणमैं साक्षीरूपी पूतरी है॥

साक्षीका विषय जो प्रपंच है ताकूं साक्ष्य कहैहैं॥

१ साक्ष्यरूप पूतरी अनूजरि कहिये मलिन है औ—

२ साक्षीरूपी पूतरी ऊजरि कहिये शुद्ध है॥

आगे अर्थ स्पष्ट है॥

चंचलभ्रम निजरूप लखि औ अचलब्रह्म निजरूप लखि। या क्रमतैं अन्वय है॥

॥ ४३७ ॥ अज्ञानीकूं दृढविराग होवै नहीं, इसी अभिप्रायतैं गीताविषै भगवान्नै कहाहै:—निरा-हार (बाहिरतैं विषयनका त्यागी) जो देही (जिज्ञासु) है, ताके रसवर्जित जैसैं होवैं तैसैं विषय निवृत्त होवैहैं कहिये ताकूं विषयनविषै जो स्थूलराग है सो निवृत्त होवैहै। परंतु रसशब्दका वाच्य जो वासना-रूप सूक्ष्मराग सो मनमैं रहताहै। इस पुरुषका सो रस (सूक्ष्मराग) बी परब्रह्मकूं देखिके (अपरोक्ष-करिके) निवृत्त होवैहै॥

॥ ४०७ ॥ 'लक्षणा तीनिप्रकारकी हैं ॥ ४०७–४०९ ॥

भागत्यागलक्षणाका जो कवित्वमैं विशेष-करिके ग्रहण कियाहै, ताविषै हेतु कहनैकूं लक्षणाका भेद कहैहैं॥

॥ दोहा ॥

त्रिविधलच्छना कहतहैं,
कोविद बुद्धिनिधान॥
जहती अरु अजहती पुनि,
भागत्याग जिय जान ॥१५॥
आदि दोइ नहिं संभवै,
महावाक्यमैं तात॥
भागत्यागतैं रूप निज,
ब्रह्मरूप दरसात ॥ १६ ॥

अर्थ स्पष्ट॥

॥ ४०८ ॥ शिष्य उवाच ॥

॥ अर्धशंकरछंद ॥

अब लच्छना प्रभु कहत काकूं।
देहु यह समुझाय॥
पुनि भेद ताके तीनि तिनके।
लछनहु दरसाय ॥ १७ ॥

टीकाः—सामान्यज्ञानसैं अनंतर विशेषका ज्ञान होवैहै। जैसैं सामान्यब्राह्मणका ज्ञान

हुयेसैं अनंतर सारस्वतआदिक विशेषका ज्ञान होवैहै ॥ तैसैं लक्षणासामान्यका ज्ञान होवै तौ जहतीआदिक विशेषरूपनका ज्ञान होवै ॥ लक्षणाका सामान्यरूप जानैविना जहती-आदिक विशेषरूपनका ज्ञान होवै नहीं । इस अभिप्रायतैं—

शिष्य कहैहैः—हे प्रभो! लक्षणा काकूं कहतहैं, यह मैं नहीं जानूंहूं । यातैं लक्षणाका सामान्यरूप दिखायके तिसतैं अनंतर जो जहतीआदिक लक्षणाके तीनिभेद कहिये विशेष हैं, तिन्हके जुदेजुदे लक्षण दिखावो ॥

छंदवास्तै प्रभोकूं प्रभु पढ्या । औ—

भाषाकी संप्रदायतैं लक्षणाके स्थान लछना पढ्या ।

लक्षणके स्थान लछन पढ्या ॥

॥ ४३८ ॥

१ जैसैं वत्सका गौसैं संबंध है तब ताकी अनेकगौके मध्यस्थित अपनी मातारूप गो-विषै प्रवृत्ति होवैहै, संबंधविना प्रवृत्ति होवै नहीं, यातैं ता वत्सका औ गौका जो पर-स्पर **जन्यजनकभावसंबंध** जानियेहै तिस जन्यजनकभावरूपके ज्ञानकी हेतु जो वत्सकी गौविषै प्रवृत्ति है सो बी **संबंध** कहियेहै ॥

२ तैसैं शब्दकी अपनैअपने अर्थविषै जो प्रवृत्ति होवैहै सो बी किसी संबंधविना बनै नहीं । यातैं शब्दका अपनै वाच्यरूप किंवा लक्ष्यरूप अर्थके साथि **वाच्यवाचकभावरूप किंवा लक्ष्यलक्षकभावरूप संबंध** जानियेहै ॥

इस द्विविधसंबंधकूंही **स्मार्यस्मारकभावरूप संबंध** बी कहतेहैं ॥

(१) वाच्यरूप किंवा लक्ष्यरूप जो अर्थ सो पदकरिके स्मरण करनै योग्य है । यातैं **सो स्मार्य** कहियेहै ॥ औ—

(२) वाचकरूप किंवा लक्षकरूप जो पद, सो तिस अर्थका स्मरण करावनैहारा है । यातैं **सो स्मारक** कहियेहै ।

॥ ४०९ ॥ गुरुवाक्य ॥
शंकरछंद ॥

श्रुति चित निज एकाग्र करि ।
अब सिष्य सुनि म बानि ॥
ज्यूं लच्छना अरु भेद ताके ।
लेहु नीके जानि ॥
सुनि वृत्ति है द्वैभांति पदकी ।
सक्ति तामैं एक ॥
तहां लच्छना पुनि जानि दूजी ।
सुनहु सो सविवेक ॥ १८ ॥

टीकाः— पदका जो अर्थसैं संबंध[४३८] सो वृत्ति कहिये है ॥

तिन दोनूंका आपसमैं स्मार्यस्मारकरूप संबंध है । तिस संबंधके ज्ञान करनैकी हेतु जो शब्दकी अपनै अर्थविषै प्रवृत्ति सो बी **शब्दका अर्थसैं संबंध** कहियेहै । तिसी प्रवृत्तिरूप संबंधकूं **शब्दकी वृत्ति** बी कहतेहैं ॥

सो वृत्तिरूप संबंध कहूँ शक्तिरूप होवैहै । कहूँ लक्षणारूप होवैहै, यह प्रसंगसैं जानिलेना ॥

१ शास्त्रविषै **वृत्ति** नाम अंतःकरणके वा अविद्याके परिणामका बी है ।

२ तैसैं वर्त्तनैवालेका नाम बी **वृत्ति** है ।

३ तैसैं जीविकाका नाम बी **वृत्ति** है ।

४ तैसैं प्राणोंकी क्रियाका नाम बी **वृत्ति** है ।

५ तैसैं किसी व्याकरणके विभागका नाम बी वृत्ति है ।

तिनमैंसैं कोई बी वृत्तिशब्दका अर्थ इहां जाननै योग्य नहीं । किंतु शब्दका अर्थसैं जो संबंध सो इहां **वृत्तिशब्दका अर्थ जाननै योग्य है** ॥

इस शब्दकी वृत्तिका कछुक वर्णन हमनै वेदस्तुतिकी सान्वयार्थदीपिका करीहै तामैं तथा वृत्तिरत्नावलिमैं बी लिख्याहै ॥

सो वृत्ति दोप्रकारकी है । ता दोप्रकारमैं एक शक्तिवृत्ति है औ दूजी लक्षणावृत्ति है ।

|| ४३९ || शब्दमैं अपनै अर्थके ज्ञान करनैकी जो सामर्थ्य है सो **शब्दकी शक्ति** कहियेहै ।

सो शब्दकी शक्ति दो कपालनके मध्यमैं स्थित कपालसंयोगकी न्यांई औ कार्यकारणआदिकनके मध्यमैं स्थित समवायसंबंध किंवा तादात्म्यसंबंधकी न्यांई शब्द औ अर्थ इन दोनूंके मध्यमैं स्थित है । यातैं सो शक्ति शक्तिवृत्तिरूप शब्दका अर्थके साथि **साक्षात्संबंध** कहियेहै ।

इसरीतिसैं कही जो शब्दकी अर्थके साथि साक्षात्संबंधरूप शक्तिवृत्ति सो १ योगा, २ रूढि, औ ३ योगारूढि उभयरूप, इसभेदतैं तीनिभांतिकी है ।

१ जिस शब्दविषै अपनै अवयवनके योग (मिलाप) तैं अर्थके ज्ञान करनैकी सामर्थ्य है तिस शब्दका अपनै अर्थके साथि **योगशक्तिरूप संबंध** है । सोई शब्दकी **योगवृत्ति** कहियेहै । **जैसैं** "पगरखा" शब्द है । तिसविषै तिसके "पग" औ "रखा" ये दो अवयव हैं, तिनके योग (मिलाप) तैं पादत्राण (कांटारखी) रूप अर्थका ज्ञान करनैका सामर्थ्य है । यात "पगरखा" शब्दका अपनै पादत्राणरूप अर्थके साथि योगाशक्तिरूप संबंध है । औ—

२ जिस पदके अवयवनसैं अर्थका ज्ञान होवै नहीं, किंतु "इस पदका यहही अर्थ होवै" ऐसा अर्थ करनैका संकेत (परिभाषा) जिस पदविषै होवै तिस पदका अपनै अर्थके साथि **रूढिशक्तिरूप संबंध** है । सोई शब्दकी **रूढिवृत्ति** कहियेहै । **जैसैं** "पगडी" शब्द है, तिसक अवयवनसैं कुछ अर्थका ज्ञान होता नहीं । किंतु "पगडी" शब्दका शिरोवेष्टनरूपही अर्थ होवै । ऐसा जो लोकनका संकेत है सोई "पगडी" शब्दका अपने शिरोवेष्टनरूप अर्थके साथि **रूढिशक्ति** है । औ—

३ जिस पदके अवयवनसैं बी अर्थका ज्ञान होवै औ तहां लोकनका बी संकेत होवै तिस शब्दका अपनै अर्थके साथि **योगारूढि उभयरूप शक्ति** है । **जैसैं** "अंगरखा" शब्द जो है तिसके अवयव जो "अंग" औ "रखा" तिनके योगतैं कंचुक (पहिरण) रूप अर्थका ज्ञान होवैहै । औ "पगरूप अंगकी रक्षा करनेवाले पगरखेकूं अंगरखा नहीं कहना किन्तु इसी (कंचुक) कूंही अंगरखा कहना" ऐसा इस अंगरखेशब्दविषै लोकनका संकेत बी है । यातैं अंगरखेशब्दविषै अपनै अर्थके साथि **योगारूढिउभयरूप शक्तिमयसंबंध** है ।

तिनकूं सविवेक कहिये विवेकसहित । याका अर्थ लक्षणसहित सुनि ।

यह कही जो तीनभांतिकी शब्दकी शक्तिवृत्ति, याहीकूं **मुख्यवृत्ति** बी कहतेहैं ॥

|| ४४० ||

१ जो शब्दकी शक्तिवृत्तिरूप संबंधसैं जानियेहैं ऐसा जो शब्दका साक्षात्संबंधी अर्थ सो **शक्यअर्थ** कहियेहै ॥

२ तिस शक्यअर्थके संबंधी वक्ताके तात्पर्यके विषय अन्यअर्थकेविषै जो शब्दका परंपरासंबंध, सो शब्दकी **लक्षणावृत्ति** है । औ—

३ तिस लक्षणावृत्तिसैं जानियेहै ऐसा जो शब्दका परंपरासैं (शक्यअर्थद्वारा) संबंधी जो अर्थ, सो शब्दका **लक्ष्यअर्थ** कहियेहै ।

१ जैसैं पिताशब्दका शक्तिवृत्तिरूप साक्षात्संबंध जनकरूप अर्थसैं है । यातैं पिताशब्दकी शक्तिवृत्तिरूप संबंधतैं जानियेहै ऐसा जो पिताशब्दका साक्षात्संबंधी जनकरूप अर्थ सो पिताशब्दका **शक्यअर्थ** कहियेहै ॥

२ तिस जनकरूप शक्यअर्थका संबंधी औ किसी बडेदिनमैं "सर्वसैं प्रथम पिताके तांई नमस्कार कर" ऐसैं पौत्रके प्रति बोधन करनैहारे वक्तापुरुषके तात्पर्यका विषय जो पितामहरूप अन्यअर्थ हैं, तिसविषै जो पिताशब्दका परंपरासंबंध सो पिताशब्दकी **लक्षणावृत्ति** है । औ—

३ तिस लक्षणावृत्तिसैं जानियेहै ऐसा जो पिताशब्दका परंपरासैं (जनकरूप शक्यअर्थद्वारा) संबंधी पितामहरूप अर्थ सो पिताशब्दका **लक्ष्यअर्थ** है ।

जिस अर्थके साथि जिसका साक्षात्संबंध न होवै

॥४१०॥ न्यायरीतिसैं शक्तिलक्षण ॥

(ईशइच्छा)

॥ अथ शक्तिलक्षण ॥

॥ दोहा ॥

या पदतैं या अर्थकी,
व्है सुनतेहि प्रतीति ॥
ऐसी इच्छा ईसकी,
सक्ति न्यायकी रीति ॥ १९ ॥

टीकाः—या पदतैं कहिये घटपदतैं या अर्थकी कहियें सकलअर्थकी सुनतैंही प्रतीति कहिये ज्ञान सर्वपुरुषनकूं होवै, ऐसी जो ईश्वरकी इच्छा, ताकूं न्यायशास्त्रमैं शक्ति कहैहैं ॥

॥४११॥ अथ स्वरीति शक्तिलक्षण ॥

(पदमैं अर्थके ज्ञानकी सामर्थ्य)

॥ अर्धशंकरछंद ॥

सामर्थ्य पदकी सक्ति जानहु ।
वेदमत अनुसार ॥
सो वह्निमैं जिम दाहकी
है सक्ति त्यूं निरधार ॥ २० ॥

टीकाः—

१ घटपदके श्रोताकूं कलशरूप अर्थके ज्ञान करनैका जो घटपदविषै सामर्थ्य, सोई घटपदमैं शक्ति है ॥

२ तैसैं पटपदके श्रोताकूं वस्त्ररूप अर्थके ज्ञान करनैका जो पटपदविषै सामर्थ्य, सोई पटपदमैं शक्तिवृत्ति है ॥

ऐसैं सर्वपदनमैं जानि लेनी ॥

दृष्टांतः—जैसैं वह्निमैं अपनैसैं मिलतैही वस्तुके दाह करनैकी सामर्थ्यरूप शक्ति है, तैसैं श्रोताके कर्णसैं मिलतैही वस्तुके ज्ञान करनैकी जो पदविषै सामर्थ्य, सो शक्ति कहियेहै ।

सामर्थ्य नाम समर्थपनैका है । जाकूं समर्थाई कहैहैं औ बल बी कहैहैं । जोर बी कहैहैं ॥

जैसैं अग्निमैं दाहकी शक्ति हैं तैसैं जलविषै गीला करनेकी, तृषा दूरि करनैकी औ पिंड बांधनैकी जो समर्थाई है, सो शक्ति है ॥

इसप्रकारसैं सर्वपदार्थनविषै अपना अपना कार्य करनैकी सामर्थ्य है, सोई शक्ति है ॥ यह वेदका सिद्धांत है ॥ ताहीकूं निर्धार कहिये निश्चय कर औ न्यायकी रीति त्यागनैकूं योग्य है ॥

किंतु किसीद्वारा संबंध होवै, तिस अर्थके साथि तिसका **परंपरासंबंध** कहियेहै ॥

जैसैं पौत्ररूप तृतीयपुरुषका अपनै पितामहरूप प्रथमपुरुषके साथि साक्षात्संबंध (जन्यजनकभाव) नहीं है, किंतु पुत्रका अपनै पितासैं संबंध (जन्य-जनकभाव) है औ पिताका पितामहसैं संबंध है । यातैं पौत्रका पितामहसैं पिताद्वारा संबंध है, सो **परंपरासंबंध** है ॥

तैसैं शब्दका अपनै साक्षात्संबंधी शक्यअर्थसैं भिन्न जो शक्यअर्थका संबंधी, ताके साथि साक्षात् संबंध नहीं । किंतु शब्दका शक्तिरूप संबंध शक्य-अर्थसैं है औ शक्यअर्थका संयोगादिरूप किसी बी प्रकारका संबंध वक्ताके तात्पर्यके विषयरूप अपनै संबंधी अन्यअर्थसैं है । यातैं तिस शक्यके संबंधी अन्यअर्थसैं शब्दका शक्यअर्थद्वारा संबंध है । यातैं सो **परंपरासंबंध** कहियेहै ॥

यह शब्दका परंपरासंबंधही **लक्षणावृत्ति** है, सो शब्दका परंपरासंबंध जिस अर्थके साथि होवै, सो शब्दका **लक्ष्यअर्थ** है । यह लक्षणावृत्तिका सामान्यलक्षण औ उदाहरण कहा । याके जहति-आदिक त्रिविधभेदके अनेक उदाहरण आगे (४३० सैं ४३२ वें अंकपर्यंत) त्रिविधलक्षणाके प्रसंगमैं टिप्पण-विषै हम लिखैंगे ॥

॥४१२॥ प्रश्नः—वर्णसमुदायसैं जूदी शक्ति नहीं, यातैं ईशइच्छा शक्ति है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ शंकरछंद ॥

ननु वह्निमैं नहिं सक्ति भासै ।
वह्नि बिन कछु और ॥
है हेतुता जो दाहकी ।
सो वह्निमैं तिहि ठौर ॥
इम पदनहूमैं वर्णबिन कछु ।
सक्ति भासत नाहिं ।
या हेतुतें जो ईसइच्छा ।
सक्ति मो मतिमाहिं ॥ २१ ॥

टीकाः—ननुशब्द[४४१] संदेहका वाचक है। वह्निमैं ताके स्वरूपसैं जूदी शक्ति भासै कहिये प्रतीत होवै नहीं औ पूर्वकह्या दाहका हेतु जो वह्निमैं सामर्थ्य, सोई वह्निमैं शक्ति है। सो बनै नहीं। काहेतैं ? दाहकी हेतुता कहिये जनकता कारणपना केवल वह्निमैंही है ॥ अप्रसिद्धसामर्थ्य वह्निमैं मानिके ताकेविषै हेतुता माननैका औ प्रसिद्धवह्निमैं हेतुता त्यागनैका कछु प्रयोजन नहीं ॥ जैसैं दृष्टांतमैं शक्ति नहीं संभवै। इम कहिये इसरीतिसैं पदनकेविषै बी वर्णका समुदाय जो पदनका स्वरूप, तासैं जूदी शक्ति भासै नहीं औ ताका प्रयोजन बी नहीं ॥ या हेतुतैं ईश्वरकी इच्छारूप जो न्यायकी रीतिसैं शक्ति सोई मेरी मतिमांहि भासैहै ॥

(गतप्रश्नका उत्तर ॥ ४१३–४२७ ॥)

॥ ४१३ ॥ सिद्धांतरीतिसैं अग्निआदिकमैं दाहादिकार्यकी सामर्थ्यरूप शक्तिका प्रतिपादन ॥ ४१३–४१४ ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

॥ शंकरछंद ॥

प्रतिबंध होते वह्नितैं नहिं ।
दाह उपजै अंग ॥
उत्तेजक रु जब धरै तब ।
फिरि दहै वह्नि स्वसंग ॥
व्है वह्निमैं जो हेतुता ।
तौ दाह व्है सबकाल ॥
जो नसै उपजै वह्नि होते ।
हेतु सक्ति सु बाल ॥ २२ ॥

टीकाः—हे अंग प्रिय ! प्रतिबंधके होते अग्निसैं दाह होवै नहीं औ उत्तेजक समीप धरै। तब स्वसंग कहिये अग्निसैं मिल्या जो पदार्थ, ताका दाह प्रतिबंध होते बी होवैहै ॥ जो शक्तिसैं विना केवल अग्निकूं दाहकी हेतुता होवै तौ सर्वकाल कहिये उत्तेजकसहित प्रतिबंधकाल औ प्रतिबंधरहित कालकी न्यांई उत्तेजकरहित प्रतिबंधकालमैं बी दाह हुवाचाहिये। काहेतैं ? दाहका हेतु केवलअग्नि ताकालमैं बी है औ स्वमतमैं तौ यह दोष नहीं । काहेतैं ? स्वमतमैं अग्निकी शक्ति अथवा शक्तिसहित अग्नि दाहका हेतु है। केवल अग्नि नहीं ॥

जहां प्रतिबंध है तहां यद्यपि प्रतिबंधसैं

[४४१] ॥ ४४१ ॥ यह "ननु" ऐसा जो शब्द है, सो संदेहका वाचक है। कहिये शंकारूप अर्थका बोधक है । यातैं शिष्य इहां शंका करैहै। यह जानना ॥

अग्निका तौ नाश वा तिरोधान नहीं वी होता। तथापि अग्निकी शक्तिका नाश वा तिरोधान होवैहै, यातैं दाहका हेतु शक्ति अथवा शक्तिसहित अग्निका अभाव होनैतैं दाह होवै नहीं ॥ औ—

जा स्थानमैं प्रतिबंधके समीप उत्तेजक आयाहै। तहां प्रतिबंधनै तौ अग्निकी शक्तिका नाश वा तिरोधन करिदिया, परंतु उत्तेजकनै फेरि शक्तिकी उत्पत्ति वा प्रादुर्भाव कियाहै। यातैं प्रतिबंधके होते बी उत्तेजकके माहात्म्यतैं दाहका हेतु शक्ति वा शक्तिसहित अग्निके होनैतैं दाह होवैहै।

चतुर्थपादका अक्षरार्थ यह है:—हे बाल! अज्ञाततत्त्व जो नसै कहिये नाशकूं प्राप्त होवै प्रतिबंधतैं, औ उपजै उत्तेजकतैं, सु कहिये सो शक्ति दाहका हेतु है॥

१ कारजका जो विरोधी सो प्रतिबंधक कहियेहै ॥ औ—

२ प्रतिबंधकके होते कारजका साधक उत्तेजक कहियेहै।

१ अग्निके स्थान प्रतिबंध औ उत्तेजक मणिमंत्र औषध हैं। जा मणि वा मंत्र वा औषधके सन्निधानसैं दाह होवै नहीं सो प्रतिबंधक। औ—

२ जा मणिमंत्र[४४२] औषधके सन्निधानसैं प्रतिबंधक होते बी दाह होवै सो उत्तेजक है।

॥ ४१४ ॥ गुरुवाक्य ॥

॥ अर्धशंकरछंद ॥

सिष रीति यह सबवस्तुमैं तूं।
सक्ति लेहु पिछानी ॥
बिनसक्ति नहिं कछु काज होवै।
यहै निश्चै मानी ॥ २३ ॥

टीका:—हे शिष्य! वह्निकी न्याईं जलआदिक सर्वपदार्थनविषै तूं शक्ति पिछान। शक्तिसैं विना किसी हेतुसैं कोई कार्य होवै नहीं ॥

सार्द्धशंकरछंदसैं शक्तिका प्रयोजन कह्या ॥

पूर्व जो शिष्यनै प्रश्न कियाथा:— "शक्ति वह्निसैं भिन्न प्रतीत होवै नहीं" ताका समाधान कहनैकूं अर्द्धशंकरसैं शक्तिका अनुभव दिखावैहै:—

॥ अर्धशंकरछंद ॥

[४४३]अबै सक्ति यामैं है नहिं वह।
सक्ति उपजी और ॥
यह सक्तिको परसिद्धअनुभव।
लोपिहै किस ठौर ॥ २४ ॥

[अर्थ स्पष्ट]

॥ ४४२ ॥ इहां प्रतिबंधरूप जे मणिमंत्र औषध हैं औ तिनकरिके जो अग्निकी दाह करनैकी शक्तिका नाश वा तिरोधान होवैहै; तैसैं उत्तेजकरूप जे मणिमंत्रऔषध हैं औ तिनकरिके जो अग्निकी शक्तिकी उत्पत्ति वा प्रादुर्भाव होवैहै, सो ठीकरनाथआदिकनविषै प्रसिद्ध है॥

॥४४३॥ इस ऊपर कहे अर्धशंकरछंदका यह अर्थ है:—अब कहिये प्रतिबंधके सद्भावकालमैं शक्ति कहिये दाह करनैका सामर्थ्य, यामैं कहिये प्रज्वलित अग्निमैं नहीं है औ फेर उत्तेजकके सद्भावकालमैं वह औरशक्ति उपजीहै। यह शक्तिका प्रसिद्ध अनुभव ठीकरनाथआदिकनके कौतुकके देखनैवारे सर्वलोकनकूं है। तिस लोकनके अनुभवकूं हे शिष्य! तूं किस ठिकानै लोपैगा? अनुमितिप्रमारूप इस अनुभवका किसी प्रकारसैं लोप (बाध) संभवै नहीं। यह अर्थ है॥

सिद्धांतकी रीतिसैं शक्तिका स्वरूप औ शक्तिमैं प्रमाण निरूपण किया ॥

॥४१५॥ अन्यमतकी शक्तिका खंडन ॥ ४१५--४२७ ॥

॥ अर्धशंकरछंद ॥

जो सक्ति इच्छा ईसकी सो।
पदनके न नजीक ॥
मत न्यायको अन्याय या विधि।
सक्ति जानि अलीक ॥ २५ ॥

टीकाः— जो ईश्वरकी इच्छारूप पैदशक्ति कही, सो बनै नहीं। काहेतें? ईश्वरकी इच्छा ईश्वरका धर्म है। यातैं ईश्वरमैं रहै ॥ जो इच्छा सो पदकी शक्ति है। यह कहना बनै नहीं ॥ जो पदका धर्म शक्ति होवै तौ पदकी शक्ति है, यह कहना बनै। यातैं पदकी सामर्थ्यरूपही पदकी शक्ति है। ईशकी इच्छा पदके नजीक बी नहीं, सो पदकी शक्ति है। यह कहना बनै नहीं ॥

अलीक नाम झूठका है।

॥४१६॥ अथ वैयाकरणरीतिशक्तिलक्षण ॥

(पदमैं अर्थकी योग्यता)

॥ अर्धशंकरछंद ॥

योग्यता जो अर्थकी पद-
-मांहि सक्ति सु देखि ॥
यूं कहत वैयाकरनभूषन।
कारिका हरि लेखि ॥ २६ ॥

टीकाः— पदकेविषै जो अर्थकी योग्यता कहिये अर्थके ज्ञानकी हेतुता हेतुपना, सो पदमैं शक्ति है। जैसैं घटपदविषै कलशरूप अर्थके ज्ञानकी हेतुतारूप योग्यता है, सोई शक्ति है। इसरीतिसैं वैयाकरणभूषणग्रंथमैं हरिकी कारिका प्रमाण लिखिके शक्ति कहीहै ॥

अथवा वैयाकरणके जो भूषण कहिये उत्तमवैयाकरणतैं हरिकी कारिका कहिये श्लोककूं देखिके कहत है।

॥ ४४४ ॥ नैयायिकोंने पदशक्ति कहिये पदकी शक्ति कहीहै ॥

॥ ४४५ ॥ ईशकी इच्छा ईशका धर्म है। यातैं सो ईशके आश्रित होनैतैं (ईशके समीप है। याहीतैं सो ईशके संबंधी होनैतैं) ईशकी शक्ति है। सो इच्छा घटादिपदनका धर्म नहीं। यातैं पदनके समीप नहीं। याहीतैं पदनकी असंबंधी होनैतैं सो पदनकी शक्ति नहीं ॥ जैसैं कुलालकूं घट करनैकी इच्छा है, सो कुलालका धर्म है। घटका धर्म नहीं। तैसैं "इस (घट) पदका यह (कलशरूप) अर्थ होवै" इस संकल्पपूर्वक जो ईश्वरकी इच्छा है, सो ईश्वरके आश्रित धर्म है। यातैं ईश्वरकी शक्ति है।- पदनका धर्म नहीं। यातैं सो पदनकी शक्ति नहीं यह जानना ॥

॥४४६॥ हरिकी कारिका कहिये हरिपंडितकृत ७०० के सुमारमैं श्लोकबद्ध व्याकरणका ग्रंथ है, तिसरूप प्रमाणकूं लिखिके वैयाकरणभूषणनामक ग्रंथमैं शक्ति कहीहै।

॥ ४४७ ॥ यह वैयाकरणके भूषणकारका मत है औ मंजूषाग्रंथमैं योगभाष्यकी रीतिसैं वाच्यवाचकभावका मूल जो पदअर्थका तादात्म्यसंबंधी सोई शक्ति मानीहै। यही शक्ति योगमतमैं बी मानीहै, तिस वाच्यवाचकके तादात्म्यरूप शक्तिका खंडन आगे भट्टमतके प्रसंगमैं कियाहै ॥

॥ ४१७ ॥ वैयाकरणरीतिका शक्तिका खंडन ॥ ४१७—४१८ ॥

॥ गुरुवाक्य ॥

॥ सार्धशंकरछंद ॥

सुन सिष्य वैयाकरनमतमैं ।
प्रबलदूषन एक ।
सामर्थ्य पदमैं है न वा यह ।
पूछि ताहि विवेक ॥
भाखै जु है तौ सक्ति मानहु ।
ताहि लोकप्रसिद्ध ॥
कहि नाहिं जो असमर्थ पद सो ।
योग्य ह्वै यह सिद्ध ॥ २७ ॥
असमर्थ है पद अर्थ योग्य रु ।
कहतही सविरोध ।
जो औरदूषन देखनो तौ ।
ग्रंथदर्पन सोध ॥ २८ ॥

टीकाः—प्रथमपाद स्पष्ट ॥

हे शिष्य ! अर्थज्ञानकी हेतुतारूप योग्यताकूं जो शक्ति मानैहै, ताकूं यह विवेक पुछचा चाहियेः- तेरे मतमैं पदविषै सामर्थ्य है अथवा नहीं है ? प्रथमपक्ष कहै तौ हमारे मतकी शक्ति बलसैं सिद्ध होवैहै । यह तृतीयपादसैं कहैहैंः—" भाखै जु है तौ " इति । याका अन्वयः—जु कहिये जो भाखैहै तौ लोकप्रसिद्ध शक्ति ताहि मानहू । अर्थ जो वैयाकरणी कहै । पदमैं सामर्थ्य है तौ लोकमैं प्रसिद्ध जो सामर्थ्यरूप शक्ति है, ताहि पदमैं बी मानहू । पदमैं अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यताकूं शक्ति मति मान ॥

अभिप्राय यह हैः—जो पदमैं सामर्थ्य अंगीकार करै, ताकूं सामर्थ्यसैं भिन्नरूप शक्तिका मानना योग्य नहीं । किंतु सामर्थ्यरूपही शक्ति है, यह मानना योग्य है । काहेतैं ? सामर्थ्य, बल, जोर औ शक्ति, ये चारि नाम एकवस्तुके लोकमैं प्रसिद्ध हैं ॥

जोरहीनकूं लोक कहैहैंः—यह सामर्थ्यहीन है, बलहीन है औ शक्तिहीन है । और भर्जित[४४८]-अन्नकूं कहैहैंः— याकेविषै अंकुरउत्पत्तिकी सामर्थ्य नहीं है, बल नहीं है, शक्ति नहीं है, जोर नहीं है ॥

इसरीतिसैं सामर्थ्य औ शक्तिकी एकता लोकमैं प्रसिद्ध है । औ—

वह्निमैं बी सामर्थ्यरूपही शक्ति निर्णीत है । यातैं पदमैं सामर्थ्यरूपही शक्ति माननी योग्य है । औ पदमैं सामर्थ्य मानिके तासैं भिन्न योग्यताकूं शक्ति कहनैका लोकप्रसिद्धिके विरोधविना औरफल नहीं । केवल लोकप्रसिद्धिका विरोधही फल है ॥ औ—

॥ ४१८ ॥ जो ऐसैं कहैः—सामर्थ्यकूंही हम योग्यता कहैहैं तौ हमाराही मत सिद्ध होवैहै ॥ औ—

ऐसैं कहैः—हम सामर्थ्य अंगीकार करैं तौ सामर्थ्यरूप शक्ति पदमैं संभवै, सो सामर्थ्यकूं अंगीकारही नहीं करते । यातैं अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यताही पदमैं शक्ति है, ताकूं यह पुछचा चाहियेः—

सामर्थ्यका अभाव केवल पदमैंही अंगीकार करैहै । अथवा वह्निआदिक सर्वपदार्थनमैं सामर्थ्यका अभाव अंगीकार करैहै ?

॥ ४४८ ॥ भूंजे (दग्ध)

जो अंत्यपक्ष कहै तौ वह्निआदिक पदार्थनमैं सामर्थ्यरूप शक्तिके प्रतिपादनमैं उक्त जो युक्ति, तिन्हतैं खंडित है ॥ औ—

प्रथमपक्ष कहै तौ ताकेविषै अंत्यपक्षउक्त दोष तौ यद्यपि नहीं है । काहेतैं ? जो वह्नि-आदिक सर्वपदार्थनमैं सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं मानैं तौ प्रतिबंधकतैं दाहका अभाव बनै नहीं । यह अंत्यपक्षमैं दोष है । सो दोष प्रथम-पक्षमैं नहीं । काहेतैं ? वह्निआदिक सर्वपदार्थनमैं तौ सामर्थ्यरूप शक्ति है । यातैं प्रतिबंधकतैं दाहके अभावका असंभव नहीं, परंतु पदके-विषै अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यतासैं भिन्न सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं । किंतु पदमैं अर्थकी योग्यताही शक्ति है । यह प्रथमपक्ष है ॥ ताके-विषै प्रतिबंधकतैं दाहका असंभवरूप दोष तौ नहीं ॥

तथापि पदविषै बी वह्निकी न्यांई सामर्थ्यका अंगीकार अवश्य कियाचाहिये । यह प्रतिपादन करैहैं । शंकरके दोपादनतैं:— "नाहीं जो असमर्थ" इत्यादि "सविरोध" पर्यंत ॥ अर्थ नाहिं कहिये पदमैं सामर्थ्यका अंगीकार नहीं तौ जो असमर्थपद सो योग्य कहिये अर्थज्ञानका जनक है । यह सिद्ध कहिये मतका निश्चय है । सो असंगत है । काहेतैं ? पद असमर्थ है औ अर्थयोग्य कहिये अर्थज्ञानका जनक है । यह वाक्य नपुंसकका अमोघवीर्य है इस वाक्यकी न्यांई कहतेही सविरोध है । विरोधसहित है ॥

१ सामर्थ्यसहितका नाम समर्थ है । औ—

२ सामर्थ्यरहितका नाम असमर्थ है ।

असमर्थसैं कोई कार्य होवै नहीं, यह लोकमैं प्रसिद्ध है । यातैं असमर्थपदसैं बी अर्थका ज्ञानरूप कार्य बनै नहीं । यातैं पदमैं सामर्थ्य मानना योग्य है । जब सामर्थ्य पदमैं अंगीकार किया तब शक्ति बी पदमैं सामर्थ्यरूपही माननी योग्य है ॥

इसरीतिसैं अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यता पदमैं शक्ति नहीं । किंतु सामर्थ्यरूपही शक्ति है ॥

जो वैयाकरणमतमैं औरदूषण देखना होवै तौ शक्तिके निरूपणमैं दर्पणग्रंथकूं शोध कहिये देख । दूषण क्लिष्ट है । यातैं दर्पणउक्तदूषण लिख्या नहीं ॥

॥ ४१९ ॥ अथ भट्टरीतिशक्तिलक्षण ॥ ४१९–४२१ ॥

(पदका अर्थसैं भेदाभेदरूप तादात्म्य ।)

॥ अर्धशंकरछंद ॥

संबंध पदको अर्थसैं
तादात्म्यसक्ति सु वेद ॥
इम भट्टके अनुसारि भाखत ।
ताहि भेदाभेद ॥ २९ ॥

टीकाः—पदका अर्थसैं जो तादात्म्यसंबंध, ताकूं भट्टके अनुसारी शक्ति कहैहैं । सो वेद कहिये तूं जान । ताहि कहिये तिस तादात्म्यकूं भेदाभेदरूप कहैहैं ॥ यह तिन्हका अभिप्राय है:—

१ अग्निपदका अंगारअर्थसैं अत्यंतभेद नहीं । जो अत्यंतभेद होवै तौ जैसैं अग्निपदसैं अत्यंत-भिन्न जलआदिक हैं, तिन्हकी अग्निपदसैं

॥ ४४९ ॥ भर्जितबीजकी न्याईं सामर्थ्यहीन पदविषै अर्थज्ञानकी जनकताके बी अभावतैं सो योग्यता पदमैं शक्ति नहीं । किंतु सो योग्यता जिस सामर्थ्यकरिके होवैहै सो सामर्थ्यही लोकप्रसिद्ध-शक्ति है ॥

प्रतीति होवै नहीं, तैसैं अग्निपदसैं अंगाररूप अर्थकी प्रतीति नहीं होवैगी । पदसैं अत्यंतभिन्न अर्थकी प्रतीति होवै नहीं ॥

२ जैसैं पदका अपनै अर्थसैं अत्यंतभेद नहीं, तैसैं अत्यंतअभेद बी नहीं ॥ जो अत्यंतअभेद वाच्यवाचकका होवै तौ जैसैं अग्निपदके वाच्य अंगारसैं मुखका दाह होवैहै तैसैं अंगारका वाचक अग्निपदके उच्चारण कियेतैं बी मुखका दाह हुवाचाहिये औ पदके उच्चारणतैं दाह होवै नहीं । यातैं अत्यंतअभेद बी नहीं । किंतु—

अग्निपदका अंगाररूप अर्थसैं भेदसहित अभेद है ॥

१ भेद है, यातैं दाह होवै नहीं । औ—

२ अभेद है, यातैं अग्निपदतैं जलआदिकनकी न्यांई अंगारकी प्रतीतिका असंभव बी नहीं ॥

जैसैं अग्निपदका अंगाररूप अर्थसैं भेदसहित अभेद है, तैसैं उदक, वन, जल, दक, इन जीवनपदनका पानीरूप अर्थसैं भेदसहित अभेद है ॥

१ जो अत्यंतभेद होवै तौ जैसैं उदकआदिकपदनतैं अत्यंतभिन्न अग्निआदिक हैं, तिन्हकी उदकआदिकपदनतैं प्रतीति होवै नहीं, तैसैं पानीरूप अर्थकी बी उदकआदिक पदनतैं प्रतीति नहीं होवैगी । यातैं अत्यंतभेद नहीं । औ—

२ अत्यंतअभेद बी नहीं । जो अत्यंतअभेद होवै तौ जैसैं पानीतैं मुखमैं शीतलता होवैहै, तैसैं उदकआदिक पदनके उच्चारणतैं बी मुखमैं शीतलता हुईचाहिये औ पदनतैं शीतलता होवै नहीं । यातैं अत्यंतअभेद नहीं ।

किंतु भेदसहित अभेद होनैतैं दोऊदोष नहीं ॥

इसरीतिसैं सर्वत्रही अपनैअपनै वाच्यतैं वाचकपदनका भेदसहित अभेद है । ता भेदसहित अभेदकूंही भट्टके अनुसारी तादात्म्यसंबंध कहैहैं औ भेदाभेद कहैहैं । सो भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंधही सर्वपदनमैं अपनैअपनै अर्थकी शक्ति है । तादात्म्यसम्बन्धसैं जूदी सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं । भेदाभेदमैं युक्ति कही ॥

॥ ४२० ॥ ॥ अब प्रमाण कहैहैं:—

॥ अर्धशंकरछंद ॥

यह ॐअच्छर ब्रह्म है यूं ।
कहत वेद अभेद ॥
पुनि बानिमैं पद अर्थ बाहरि ।
देखियत यह भेद ॥ ३० ॥

टीकाः—मांडूक्य आदिक वेदवाक्यनमैं "ॐअक्षर ब्रह्म है" यह कह्याहै । तहां व्याकरणकी रीतिसैं प्रकाशरूप सर्वकी रक्षा करता ॐअक्षरका अर्थ है । ऐसा ब्रह्म है । यातैं ॐअक्षर ब्रह्मका वाचक है औ ब्रह्म वाच्य है ॥

१ जो वाच्यवाचकका आपसमैं अत्यंतभेद होवै तौ वाचक ॐअक्षरका औ वाच्यब्रह्मका मांडूक्यआदिकनमैं अभेद नहीं कहते । औ "ॐअक्षर ब्रह्म है" इसरीतिसैं अभेद कह्याहै । यातैं वाच्यवाचकके अभेदमैं वेदवचन प्रमाण हैं ॥ औ—

२ सर्वलोककी प्रतीतिसैं वाच्यवाचकका भेद सिद्ध है । काहेतैं ? अग्निआदिकपद वाणीमैं हैं औ अंगारआदिक तिनका अर्थ वाणीतैं बाहरि चुल्हिआदिकनमैं है ॥ तैसैं ॐअक्षररूप पद वाणीमैं है औ ताका अर्थ ब्रह्म वाणीमैं नहीं है किंतु वाणीतैं बाहरि कहिये अपनै महिमामैं है । यद्यपि ब्रह्म व्यापक है,

यातैं वाणीमैं ब्रह्मका अभाव नहीं। तथापि ब्रह्ममैं वाणी है औ वाणीमैं ब्रह्म नहीं[450]। इसरीतिसैं सर्वलोकनकूं पद वाणीमैं औ अर्थ वाणीतैं बाहरि प्रतीत होवैहैं। यातैं पदका औ अर्थका भेद लोकमैं प्रसिद्ध है॥

१ इसरीतिसैं वाच्यवाचकके भेदमैं सर्वलोकका अनुभव प्रमाण है। औ—

२ तिन्हके अभेदमैं वेदवचन प्रमाण हैं।

यातैं पदका अर्थसैं भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध अप्रमाण नहीं। किंतु प्रमाणसिद्ध है॥

॥ ४२१ ॥ प्रसंगतैं अन्यस्थानमैं बी भेदाभेदतादात्म्यसंबंध दिखावैहैं:—

॥ अर्धशंकरछंद ॥

जो गुन गुनी औ जाति व्यक्ती।
क्रिया अरु तद्वान।
संबंध लखि तादात्म्य इनको।
कार्य कारण सान ॥ ३१ ॥

टीका:—

१ रूपरसगंधआदिक गुण हैं, तिन्हका आश्रय गुणी कहियेहै। जैसैं रूपआदिकनका आश्रय भूमि गुणी है॥

२ अनेकनके मांहि रहै जो एकधर्म सो जाति कहियेहै॥ जैसैं सर्वब्राह्मणशरीरनके मांहि एक ब्राह्मणत्व है औ सर्वशूद्रमांहि शूद्रत्व है औ सर्वजीवनमांहि जीवत्व है। पुरुषनमैं पुरुषत्व है। सर्वघटनमांहि घटत्व है॥ जाकूं लोकमांहि ब्राह्मणपना, शूद्रपना, जीवपना, पुरुषपना, घटपना कहतेहैं, सोई ब्राह्मणआदिक शरीरनमांहि ब्राह्मणत्वआदिक जाति हैं॥ जातिका आश्रय जो ब्राह्मणआदिक, सो व्यक्ति कहियेहै॥

३ गमनआगमनआदिक क्रिया कहियेहैं॥ औ तद्वान् कहिये तिसवाला॥ अर्थ यह, क्रियाका आश्रय॥

इतने पदार्थनका तादात्म्यसंबंध है। यह लखि कहिये जानि॥ औ कारणकार्यकूं सान कहिये गुणगुणीआदिकविषै मिलाव।

अभिप्राय यह है:—

१ कारणकार्यका बी गुणगुणीकी न्यांई तादात्म्यसंबंध है।

२ गुणका औ गुणीका आपसमैं तादात्म्यसंबंध है॥

३ जातिका औ व्यक्तिका आपसमैं तादात्म्यसंबंध है।

४ तैसैं क्रिया औ क्रियावान्का तादात्म्यसंबंध है।

कारणका औ कार्यका बी तादात्म्यसंबंध है॥

तादात्म्य[451] नाम भेदसहित अभेदका है।

॥ ४५० ॥ जो न्यूनदेशमैं होवै सो व्याप्य कहियेहै औ जो अधिकदेशमैं होवै सो व्यापक कहियेहै। जैसैं घट न्यूनदेशमैं है यातैं व्याप्य है औ आकाश अधिकदेशमैं है यातैं व्यापक है॥

जो व्याप्य होवै सो व्यापकके भीतर है औ जो व्यापक होवै सो व्याप्यसैं बाहिर होवैहै॥ जैसैं घट आकाशके भीतरही है औ आकाश घटके बाहिर बी है। तैसैं वाणी ब्रह्मतैं न्यूनदेशमैं है। यातैं व्याप्य होनैतैं ब्रह्मके भीतर है औ ब्रह्म वाणीतैं अधिकदेशमैं है, यातैं व्यापक होनैतैं वाणीतैं बाहिर बी कहियेहै॥

॥ ४५१ ॥ गुणगुणीआदिक इन चारिठिकानै भट्टकी न्यांई 'वेदांती बी तादात्म्यसंबंध मानतेहैं। परंतु वेदांतमतमैं तादात्म्यसंबंधका लक्षण भट्टमततैं विलक्षण कियाहै। सो आगे नेडेही कहियेगा। औ इतने चारिठोर नैयायिक समवायसंबंध मानतेहैं॥ नित्यसंबंधकूं समवाय कहैहैं॥

यद्यपि निमित्तकारणका औ कार्यका तौ भेदाभेदरूप तादात्म्य नहीं है, किंतु अत्यंत-भेद है तथापि उपादानकारणका औ कार्यका भेदाभेदरूप तादात्म्यही संबंध है ॥ जैसैं घटके निमित्तकारण कुलालदंडआदिक हैं, तिनका घटरूप कार्यसैं अत्यंतभेद वी है । परंतु उपादानकारण मृत्तिकापिंड औ घट-कार्यका भेदसहित अभेद है ॥

१ जो मृत्तिकापिंडसैं घट अत्यंतभिन्न होवै तौ जैसैं मृत्तिकापिंडसैं अत्यंतभिन्न तैलकी उत्पत्ति होवै नहीं । तैसैं घटकी वी उत्पत्ति नहीं होवैगी ॥ औ—

२ उपादानकारणका कार्यतैं अत्यंतभेद होवै तौ वी मृत्पिंडसैं घटकी उत्पत्ति होवै नहीं । काहेतैं ? अपनै स्वरूपसैं अपनी उत्पत्ति होवै नहीं ।

१ यातैं उपादानकारणका कार्यतैं भेदसहित अभेद है । यातैं अभेद है । अत्यंत भेदपक्षका दोष नहीं । औ—

२ भेद है, यातैं अभेदपक्षका दोष नहीं ।

इसरीतिसैं उपादानकारणका कार्यतैं भेदा-भेद युक्तिसिद्ध है ॥ औ—

१ प्रतीतिसैं वी उपादानतैं कार्यका भेदा-भेदही सिद्ध है ॥ "यह मृत्पिंड है, यह घट है" इसरीतिकी भिन्नप्रतीतिसैं भेद सिद्ध होवैहै । औ—

२ विचारतैं देखैं तौ घटके बाहरिभीतर मृत्तिकासैं भिन्न कुछवस्तु प्रतीत होवै नहीं । किंतु मृत्तिकाही प्रतीत होवैहै । यातैं अभेद सिद्ध होवैहै ॥

इसरीतिसैं उपादानकारणका कार्यतैं भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध है ॥

तैसैं गुण औ गुणीका वी भेदाभेद है ॥

१ जो घटके रूपका घटसैं अत्यंतभेद होवै तौ जैसैं घटतैं पटका अत्यंतभेद है, सो पट घटके आश्रित नहीं किंतु स्वतंत्र है । तैसैं घटका रूप वी घटके आश्रित नहीं होवैगा । औ—

२ गुणगुणीका अत्यंत अभेद होवै तौ वी घटका रूप घटके आश्रित बनै नहीं । काहेतैं ? अपना आश्रय आप होवै नहीं ।

यातैं गुणगुणीका भेदाभेदरूप तादात्म्य-संबंध है ॥

यह युक्ति, जाति औ व्यक्ति तथा क्रिया औ क्रियावालेके भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंधमैं जाननी । औ खंडन करना जो मत ताके-विषै बहुतयुक्ति कहनैका प्रयोजन नहीं । यातैं औरयुक्ति नहीं लिखी ॥

॥ ४२२ ॥ अथ भट्टमतखंडन[४५२] ॥

॥ ४२२–४२७ ॥

॥ दोहा ॥

एक वस्तुको एकमैं, भेदअभेद विरुद्ध ॥
जुक्तिजुक्त यातै कहत, यह मत सकल असुद्ध ॥२२॥

टीकाः—अक्षरअर्थ स्पष्ट ॥

अभिप्राय यह हैः—यद्यपि एकघटमैं अपना अभेद है औ परका भेद है । तथापि—

१ जाका अभेद है ताका भेद नहीं औ

॥ ४५२ ॥ जाका शंकरदिग्विजयमैं कुमारिल-भट्ट किंवा भट्टपाद ऐसा नाम लिख्याहै औ मंडन-मिश्र अरु प्रभाकरआदिक जाके शिष्य भयेहैं औ जो जैमिनिकृत पूर्वमीमांसाका वार्तिककार भया है सो इहां भट्ट कहियेहै ॥

जाका भेद है ताका अभेद नहीं। इस अभिप्रायतैं एकवस्तुका भेदअभेद विरुद्ध कह्याहै ॥

२ तथा एकवस्तुका कहिये घटकाही अपनैमैं अभेद औ परमैं भेद है, परंतु जामैं अभेद है तामैं भेद नहीं औ जामैं भेद है तामैं अभेद नहीं। इस अभिप्रायतैं एकवस्तुका भेद अभेद एकमैं विरुद्ध कह्याहै।

भेदअभेद आपसमैं विरोधी हैं। एकवस्तुमैं जाका भेद होवै ताका अभेद औ जाका अभेद होवै ताका भेद विरुद्ध है। यातैं वाच्यवाचक, गुणगुणी, जातिव्यक्ति, क्रियाक्रियावान्, उपादानकारण कार्यका जो भेदाभेदरूप तादात्म्य अंगीकार किया, सो अशुद्ध है ॥

॥ ४२३ ॥ पूर्व वाच्यवाचकके भेदाभेदमैं प्रमाण जो कह्याः—

१ "वाणीमैं वाचक औ बाहरि वाच्य। यातैं भेद। औ—

२ श्रुतिमैं ॐअक्षर ब्रह्म कह्याहै। यातैं अभेद"

ताका समाधानः—

॥ दोहा ॥

प्रनववर्न अरु ब्रह्मको,
कह्यो जु वेद अभेद ॥
तामैं अन्यरहस्य कछु,
लख्यो न भट्ट सु भेद ॥२३॥

टीकाः— प्रणववर्ण कहिये ॐअक्षर अरु ब्रह्मका जो वेदमैं अभेद कह्याहै, ता वेदवचनका वाच्यवाचकके अभेदमैं तात्पर्य नहीं, किंतु तामैं अन्यही रहस्य कहिये गोप्यअभिप्राय है ॥ सो भेद कहिये अभिप्राय भट्टनै लख्या नहीं ॥

जहां ॐअक्षर ब्रह्म कह्याहै तिस वाक्यका ॐअक्षर औ ब्रह्मके अभेदमैं तात्पर्य नहीं है। किंतु "ॐअक्षरकूं ब्रह्मरूपकरिके उपासना करै" इस अर्थमैं तात्पर्य है। उपासना जाकी विधान करीहै, ता उपास्यके स्वरूपका यह नियम नहीं हैः—जैसी उपासना विधान करीहै तैसाही उपास्यका स्वरूप होवैहै। किंतु जैसा वस्तुका स्वरूप है, ताकूं त्यागिके अन्यस्वरूपकी बी ताकेविषै उपासना करियेहै ॥

१ जैसैं शालिग्राम औ नर्मदेश्वरकी विष्णुरूप औ शिवरूपकरिके उपासना कहीहै तहां शंखचक्रआदिकसहित चतुर्भुजमूर्ति शालिग्रामकी नहीं है औ गंगाभूषित जटाजूटडमरूचर्मकपालिकासहित भद्रामुद्रासैं शरणागतनकूं त्रिगुणरहित आत्माका उपदेश देनैवाली मूर्त्ति नर्मदेश्वरकी नहीं है। किंतु दोनुं शिलारूप हैं। औ शास्त्रकी आज्ञातैं तिन शिलारूपकी दृष्टि त्यागीके दोनुंविषै क्रमतैं विष्णुरूप औ शिवरूपकी उपासना करियेहैं। यातैं उपास्यके स्वरूपके आधीन उपासना नहीं होवैहै। किंतु विधिके आधीन है। जैसैं शास्त्रका वचन विधान करै तैसी उपासना करै ॥

२ जैसैं छांदोग्यउपनिषद्‌मैं पंचाग्निविद्याप्रकरणमैं स्वर्गलोक, मेघ, भूमि, पुरुष औ स्त्री, इन पांचपदार्थनकी अग्निरूपकरिके उपासना कहीहै औ श्रद्धा, सोम, वर्षा, अन्न औ वीर्य, इन पांच पदार्थनकी पंचअग्निकी आहुतिरूप उपासना कहीहै। तहां स्वर्गआदिक अग्नि नहीं है औ श्रद्धासोमआदिक आहुति नहीं है। तथापि वेदकी आज्ञातैं स्वर्गलोकादिकनकी अग्निरूपतैं औ श्रद्धाआदिकनकी आहुतिरूपतैं उपासना[४५३] करियेहै ॥

॥ ४५३ ॥ यह पंचाग्निविद्याका सारा प्रसंग हमनै पंचदशीके ध्यानदीपके भाषाटीकाके टिप्पणविषै तथा छांदोग्यविषै लिख्याहै, तहां देखलेना ॥

इसरीतिसैं ॐअक्षरकी ब्रह्मरूपकरिके उपासना कहीहै, तहां ॐअक्षर ब्रह्मरूप नहीं है तौ बी ब्रह्मरूपकरिके उपासना बनैहै । उपासनावाक्यमें वस्तुके अभेदकी अपेक्षा नहीं। किंतु भिन्नवस्तुकी बी अभिन्नरूपतैं उपासना होवैहै ॥ औ—

विचारतैं देखिये तौ ब्रह्मका वाचक जो ॐअक्षर है, ताका तौ अपने वाच्य ब्रह्मतैं अभेद बनै बी है। घटआदिक अन्यपदनका अपनेअपने जडरूप अर्थसैं अभेद बनै नहीं। काहेतैं? सर्व नामरूप ब्रह्ममैं कल्पित हैं। ब्रह्म अधिष्ठान है। ॐअक्षर बी ब्रह्मका नाम है। यातैं ब्रह्ममैं कल्पित है । कल्पितवस्तु अधिष्ठानसैं भिन्न होवै नहीं। किंतु अधिष्ठानरूपही होवैहै । यातैं ॐअक्षर ब्रह्मरूप है ॥ औ—

घटआदिकपदनका जो जडरूप अपना अर्थ सो अधिष्ठान नहीं। किंतु वाच्यसहित घटआदिकपद ब्रह्ममैं कल्पित हैं औ ब्रह्म तिनका अधिष्ठान है। यातैं ब्रह्मसैं तौ सर्वका अभेद बनै बी है। परंतु घटआदिक पदनका अपने जडरूप वाच्यअर्थसैं अभेद किसी रीतिसैं बनै नहीं। यातैं भट्टमतमैं वाच्यवाचकका अभेद असंगत है ॥ औ—

॥ ४२४ ॥ केवलभेद जो वाच्यवाचकका अंगीकार करैहैं, तिन्हके मतमैं यह दोष भट्टनै कियाहैः—जो घटपदका वाच्य घटपदसैं अत्यंत भिन्न होवै तौ जैसैं घटपदसैं अत्यंतभिन्न वस्त्ररूप अर्थकी प्रतीति होवै नहीं, तैसैं घटपदसैं अत्यंतभिन्न कलशरूप अर्थकी प्रतीति बी नहीं होवैगी औ घटपदसैं वाच्यकूं भिन्न मानिके ताकी घटपदसैं प्रतीति मानोगे तौ जैसैं घटपदतैं अत्यंतभिन्न कलशरूप अर्थकी प्रतीति होवैहै, तैसैं अत्यंत भिन्नवस्त्रकी बी घटपदसैं प्रतीति हुईचाहिये। यह दोष बी जो सामर्थ्य अथवा इच्छारूप शक्ति नहीं मानैं तिन्हके मतमैं है ॥

जो शक्ति अंगीकार करैं तिन्हके मतमैं दोष नहीं। काहेतैं? जो घटपदका वाच्य कलश औ ताका अवाच्य वस्त्रादिक, सो दोनों घटपदसैं भिन्न हैं। परंतु घटपदमैं कलशरूप अर्थके ज्ञान करनेकी शक्ति है औ अन्यअर्थके ज्ञान करनेकी शक्ति नहीं। यातैं घटपदतैं कलशरूप अर्थतैं भिन्नअर्थकी प्रतीति होवै नहीं।

इसरीतिसैं जा पदमैं जिस अर्थकी शक्ति है, ताहि अर्थकी तिस पदसैं प्रतीति होवैहै। अन्यअर्थकी नहीं। यातैं वाच्यवाचकके अत्यंतभेदमैं दोष नहीं ॥ तिनका भेदसहित अभेदरूप तादात्म्यसंबंध बनै नहीं ॥

॥ ४२५ ॥ भेद औ अभेद आपसमैं विरोधी हैं । तैसैं उपादानकारणका कार्यतैं भेदसहित अभेद नहीं, केवलभेद है ॥ औ केवल भेदमैं जो दोष कह्याहै, सो नैयायिक औ शक्तिवादिके मतमैं नहीं। काहेतैं? कारणकार्यके अत्यंतभेदमैं यह दोष हैः—जो मृत्पिंडसैं अत्यंतभिन्न घटकी उत्पत्ति होवै तौ 'अत्यंतभिन्न तैलकी बी मृत्पिंडसैं उत्पत्ति हुईचाहिये औ

॥ ४५४ ॥ शक्तिवादी जो सिद्धांती ताके मतमैं उपादानकारणका कार्यतैं केवलभेद नहीं। किंतु अनिर्वचनीयतादात्म्य है। तथापि इहां कार्यकारणका जो केवलभेद कह्याहै, सो प्रौढिवाद है। प्रौढि कहिये अपनी उत्कर्षताके लिये वाद कहिये कथन, सो प्रौढिवादका स्वरूप है औ ताका लक्षण यह हैः— प्रतिवादीकी उक्ति मानिके बी स्वमतमैं दोषका परिहार करै, ताकूं प्रौढिवाद कहैहैं ॥

इहां कार्यकारणके भेदपक्षमैं भट्टमैं दोष कह्याथा तिस भट्टउक्त दोषसहित पक्षकूं मानिके बी स्वमतमैं दोषका परिहार कियाहै। यातैं यह प्रौढिवाद है ॥

अत्यंतभिन्न तैलकी उत्पत्ति नहीं होवैगी, तौ अत्यंतभिन्न घटकी वी मृत्पिंडसैं उत्पत्ति नहीं हुईचाहिये ॥

॥ ४२६ ॥ यह दोष नैयायिकमतमैं नहीं । काहेतैं ? सर्ववस्तुकी उत्पत्तिमैं नैयायिक प्रागभाव-कूं कारण मानैहैं ॥ जैसैं घटकी उत्पत्तिमैं दंडचक्रकुलाल कारण हैं, तैसैं घटका प्रागभाव वी घटका कारण है ॥ तैसैंही सर्वका प्रागभाव सर्वकी उत्पत्तिमैं कारण है ।

१ सो घटका प्रागभाव घटके उपादान-कारण मृत्पिंडमैं रहैहै । अन्यमैं नहीं ॥
२ तैलका प्रागभाव तिलनमैं रहैहै । अन्यमैं नहीं ॥

ऐसैं सर्वकार्यनका प्रागभाव अपनैअपनै उपादानकारणमैं रहैहै ॥ जिस पदार्थमैं जाका प्रागभाव होवै तिस पदार्थसैं ताकी उत्पत्ति होवैहै । अन्यकी नहीं ।

१ जैसैं मृत्पिंडमैं घटका प्रागभाव है, यातैं मृत्पिंडसैं घटकीही उत्पत्ति होवैहै । तैलकी नहीं ॥ औ—
२ तैलका प्रागभाव तिलनमैं रहैहै । यातैं तिलनतैं तैलकीही उत्पत्ति होवैहै । घटकी नहीं ॥

ऐसैं सर्वकार्यमैं प्रागभाव कारण है । यातैं कारणकार्यका अत्यंतभेद माननैतैं नैयायिकमत-मैं दोष नहीं ॥ औ—

॥ ४२७ ॥ सामर्थ्यरूप शक्तिवादीके मतमैं दोष नहीं । काहेतैं ? मृत्पिंडमैं घटकी सामर्थ्यरूप शक्ति है । तैलकी नहीं औ तिलनमैं तैलकी सामर्थ्य है । घटकी नहीं । यातैं मृत्पिंडतैं घटकीही उत्पत्ति होवैहै औ तैलकी नहीं । तैसैं तिलनतैं तैलकीही उत्पत्ति होवैहै । घटकी नहीं॥

दूसरीरीतिसैं उपादानकारणका औ कार्यका अत्यंतभेद माननैमैं दोष नहीं ॥ भेदाभेद असंगत है ॥ औ—

भेदमैं तथा अभेदमैं जो दोष भट्टनै कहेहैं सो दोनूंपक्षके दोष भट्टके मतमैं अवश्य रहैहैं । काहेतैं? भट्टनै भेदसहित अभेद अंगीकार कियाहै। यातैं यह अर्थ सिद्ध हुवाः—कारणकार्यका भेद वी है औ अभेद वी है ॥

१ भेद है, यातैं भेदपक्षउक्तदोष होवैंगे । औ—
२ अभेद है, यातैं अभेदपक्षउक्तदोष होवैंगे ॥

जैसैं चोरीका दोष औ द्यूतका दोष जो एक एक करनैवालेकूं कहेहैं, सो दोउ व्यसन जाके होवैं ताके चोरीद्यूत दोनूंके दोष होवैहैं । तैसैं गुणगुणीआदिकनके भेदाभेद माननैतैं वी भेदपक्ष औ अभेदपक्षके दोनूं दोष होवैंगे ॥ औ—

शक्तिवादीके मतमैं केवलभेद अंगीकार कियेतैं दोष नहीं । काहेतैं ? गुणीमैं गुणके धारनै-की शक्ति है । अन्यकी नहीं । यातैं भेदपक्षमैं जो दोष कह्या थाः—घटके रूपादिक जैसैं घटसैं भिन्न हैं तैसैं पटआदिक वी घटसैं भिन्न हैं ॥ रूपादिकनकी न्यांई पटआदिक वी घटमैं रहेचाहिये । अथवा पटआदिकनकी न्यांई रूपादिक वी नहीं रहेचाहिये ॥ सो दोष शक्ति नहीं अंगीकार करै ताके मतमैं केवलभेद माननैतैं वी दोष नहीं । उलटा—

१ भट्टमतमैं भेदअभेद दोनों माननैतैं दोनूं-पक्षके दोष उक्तदृष्टांतसैं हैं ॥ औ
२ भेदअभेद विरोधीधर्मका असंभव-दोष है ॥

तैसैं जातिव्यक्तिका औ क्रियाक्रियावान्का वी केवलभेद है। तथापि व्यक्तिमैं जातिके

धारनैकी शक्ति है औ क्रियावान्‌मैं क्रिया धारनैकी शक्ति है। अन्य धारनैकी शक्ति नहीं।

इसरीतिसैं उपादान औ कार्यका तथा गुणगुणीआदिकनका भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध असंगत है।

सर्वका आपसमैं भेद माननैमैं भट्टउक्तदोषनकूं शक्ति ग्रसैहै ॥

यद्यपि वेदांतसिद्धांतमैं बी कार्य गुण जाति क्रियाका उपादान गुणी व्यक्ति क्रियावान्‌तैं अत्यंतभेद नहीं। किंतु तादात्म्यसंबंधही अंगीकार कियाहै, तथापि वेदांतमतमैं भेदाभेदरूप तादात्म्य नहीं। किंतु भेद औ अभेदसैं विलक्षण अनिर्वचनीयरूप तादात्म्यसंबंध है ॥

१ भेदसैं विलक्षण है, यातैं अभेदपक्षके दोष नहीं। औ—

२ अभेदसैं विलक्षण है, यातैं भेदपक्षके दोष नहीं ॥

इसरीतिसैं भेदाभेदसैं विलक्षण अनिर्वचनीयतादात्म्यसंबंध है ॥

परंतु भेदाभेदरूप तादात्म्य असंगत है। यातैं "वाचकवाच्यका भेदाभेदरूप तादात्म्य संबंधही शक्ति है" यह भट्टअनुसारीका पक्ष समीचीन नहीं। किंतु पदके सुनतैंही अर्थके ज्ञान करनैकी जो पदमैं सामर्थ्य सोई पदमैं शक्ति है।

इति शक्तिनिरूपण ॥

॥ ४२८ ॥ शक्यका लक्षण ॥

लक्षणाके ज्ञानमैं शक्यका ज्ञान उपयोगी है। काहेतें? शक्यसंबंध लक्षणाका स्वरूप है। शक्य जानैविना शक्यसंबंधरूप लक्षणाका ज्ञान होवै नहीं। यातैं शक्यका लक्षण कहैहैं:—

॥ दोहा ॥

है पदमैं जा अर्थकी, सक्ति सक्य सो जानि।
वाच्यअर्थ पुनि कहत तिहि, वाचक पदहि पिछानि ॥३४॥

टीका:—जा पदमैं जा अर्थकी शक्ति होई, ता पदका सो अर्थ शक्य जानि औ शक्यअर्थकूंही वाच्यअर्थ बी कहैहैं ॥

जैसैं अग्निपदमैं अंगाररूप अर्थकी शक्ति है। यातैं अग्निपदका अंगार शक्यअर्थ औ वाच्यअर्थ कहियेहै ॥ औ—

वाच्यअर्थका बोधकपद वाचक कहियेहै ॥

॥ ४५५ ॥ यद्यपि जहां केवलभेद होवै तहां तादात्म्य बनै नहीं। काहेतें? अभेदप्रतीतिके विषयका नामही तादात्म्य है। यातैं केवलभेदके होते अभेदप्रतीति संभवै नहीं। तातैं तादात्म्यसंबंधमैं अभेदकी अपेक्षा है औ जहां केवलअभेद होवै तहां संबंध होवै नहीं। काहेतें? दोनूं पदार्थनका संबंध संभवैहै। अपनै स्वरूपसैं अपना संबंध संभवै नहीं। यातैं सारे संबंधमैं भेदकी बी अपेक्षा है ॥ जातैं तादात्म्य बी संबंध है, यातैं तामैं भेदकी बी अपेक्षा है ॥ इसरीतिसैं भेद अभेद दोनूंविना तादात्म्यसंबंध बनै नहीं। औ भेदअभेदका एकठिकानै रहनैका विरोध है। तथापि इहां कल्पितभेदसहित वास्तवअभेदका नाम तादात्म्यसंबंध है औ इहां भेदअभेदसैं विलक्षण तादात्म्य कह्याहै। ताका यह अभिप्राय है:—

१ भेदसैं विलक्षण कहनैकरि वास्तवभेदसैं रहित कह्या, यातैं कल्पितभेदसहित जनाया। औ—

२ अभेदसैं विलक्षण कहनैकरि कल्पितअभेदसैं रहित कह्या, यातैं वास्तवअभेद जनाया।

इसरीतिसैं सिद्धांतमैं कल्पितभेदसहित वास्तवअभेद तादात्म्यसंबंध कहियेहै। याहीकूं अनिर्वचनीयतादात्म्यसंबंध कहैहैं ॥

॥ ४५६ ॥ याहीकूं अभिधेयअर्थ औ मुख्यअर्थ बी कहतेहैं ॥

॥ ४२९ ॥ लक्ष्यअर्थ औ लक्षणाका सामान्यरूप ॥

॥ अथ लक्षणा औ जहतिआदिक भेदलक्षण ॥

॥ कवित्व ॥

सक्यको संबंध जो
स्वरूप जानि लच्छनको ।
लच्छना सो भान जाको
लच्छ सु पिछानिये ॥
वाच्यअर्थ सारो त्यागि
वाच्यको संबंध जहां ।
होई परतीति तहां
जहती बखानिये ॥
वाच्यजुत वाच्यके
संबंधीका जु ज्ञान होय ।
ताहि ठौर लच्छना
अजहतीहि मानिये ॥
एक वाच्य भागत्याग
होत तहां भागत्याग ।
दूजो नाम जहती
अजहती प्रमानिये ॥ ३५ ॥

टीकाः—शक्य कहिये वाच्यअर्थका जो संबंध कहिये मिलाप सो लक्षणाका स्वरूप कहिये लक्षण जानि ॥ औ—

जा अर्थका पदकी शक्तिसैं ज्ञान न होवै किंतु लक्षणासैं भान कहिये ज्ञान होवै, सो पदका लक्ष्यअर्थ कहियेहै ॥

एकपादसैं लक्षणाका स्वरूप कह्या, अब—

॥ ४३० ॥

१ जहति, २ अजहति, औ ३ भागत्यागलक्षणाका लक्षण ॥ ४३०—४३२ ॥

लक्षणाके जहतिआदिक तिनी भेदनके लक्षण एकएक पादसैं कहैहैंः—"वाच्य" इत्यादिसैंः—

१ जहां वाच्यअर्थ संपूर्ण त्यागिके वाच्य अर्थके संबंधीकी प्रतीति होवै तहां जहतिलक्षणा कहियेहै ॥

जैसैं किसीने कह्याः—" गंगामैं ग्राम है " या स्थानमैं गंगापदकी तीरमैं जहतिलक्षणा है। काहेतैं? गंगापदका वाच्यअर्थ देवनदीका प्रवाह है, ताकेविषै ग्रामकी स्थितिका असंभव है। यातैं सारे वाच्यअर्थकूं त्यागिके तीरविषै गंगापदकी जहतिलक्षणा है।

वाच्यके संबंधका नाम लक्षणा है।

या स्थानमैं गंगापदका वाच्य जो प्रवाह ताका तीरसैं संयोगसंबंध है। यातैं—

(१) गंगापदके वाच्यका जो तीरसैं संबंध सो लक्षणा ॥ औ—

(२) वाच्य सारेका त्याग यातैं जहतिलक्षणा ॥

॥ ४५७ ॥ जहतिलक्षणाका सुगमउदाहरण यह हैः—जिस वरका पिता परदेश गयाहोवै, सो वर श्वसुरके गृहमैं विवाहकेअर्थ पितृभ्राताआदिकसंबंधिनकूं साथ लेजावै। तहां वस्त्र पहिरावनैके समयमैं काहुनै कह्या कि "वरके पिताकूं वस्त्र पहिरावो" इस वाक्यमैं पिताशब्दका शक्यअर्थ जो वरका जनक सो तहां विद्यमान है नहीं। यातैं जनकरूप शक्यअर्थमैं वक्ताका तात्पर्य संभवै नहीं। किंतु पिताशब्दका शक्यअर्थ जो जनक, तिस सारेकूं त्यागिके ताके संबंधी पिताके भ्राताका ग्रहण है। यातैं जहतिलक्षणा है ॥

इहां जनकरूप शक्यअर्थका जो पितृभ्रातासैं

॥ ४३१ ॥ २ "वाच्यजूत" इत्यादितृतीय-पादसैं अजहतिलक्षणा दिखावैहैं:—

वाच्यजूत कहिये वाच्यअर्थसहित । वाच्यके संबंधीका जा पदसैं ज्ञान होय, ता पदमैं अजहतिलक्षणा मानिये ॥

जैसैं किसीनै कह्या:—"शोण धावन करैहै" तहां शोणपदकी लालरंगवाले अश्वविषै अजहतिलक्षणा है। काहेतें? शोण नाम लालरंगका है। यातें शोणपदका वाच्य लालरंग है ॥ ता केवलमैं धावनका असंभव है । इसकारणतें शोणपदका वाच्य जो लालरंग, तासहित अश्वमैं शोणपदकी अजहतिलक्षणा है ॥

भाषामैं शोणकूं सोन पढैहैं ॥

गुणका औ गुणीका तादात्म्यसंबंध कहैहैं ॥ औ

लाल वी रूपका भेद होनैतें गुण है। यातैं

(१) शोणपदका वाच्य जो लालगुण, ताका गुणी अश्वके साथि जो तादात्म्यसंबंध, सो लक्षणा । औ—

(२) वाच्यका त्याग नहीं, अधिकका ग्रहण, यातैं अजहतिलक्षणा ॥

॥ ४३२ ॥ ३ "एक वाच्य" इत्यादिचतुर्थ-पादसैं भागत्यागलक्षणा बतावैहैं:—

सहोदरतारूप संबंध है सो लक्षणा है । तिस लक्षणाकरि जानियेहै जो पितृभ्रातारूप अर्थ सो पिताशब्दका लक्ष्य है ॥

किंवा काहूनै कहा कि:—"कुआ चलताहै" तहां कुआशब्दका शक्यअर्थ जो जलपूरित खड्डा, तामैं चलनरूप क्रियाके अभावतैं वक्ताका तात्पर्य संभवै नहीं । किंतु कुआसंबंधी दोबैलसहित चर्स (चर्मपात्र)मैं वक्ताका तात्पर्य है । यातैं कुआरूप सारे शक्य (वाच्य)का त्यागकरिके ताके संबंधी दोबैलसहित चर्सका ग्रहण है । यातैं जहतिलक्षणा है ॥ ऐसैं "मार्ग चलताहै" औ "चूला जलताहै" इत्यादि वाक्यविषै बी जहतिलक्षणा जानिलेनी ॥

इस जहतिलक्षणाका कोई ग्रंथकारनै ऐसैं सिद्धांतमैं उपयोग दिखायाहै:—"सर्वं खल्विदं ब्रह्म (सर्व यह जगत् निश्चयकरि ब्रह्म है)" इत्यादि श्रुतिवाक्यनविषै सर्वजगत्‌की ब्रह्मरूपता कहीहै । तहां अनित्यता दृश्यता विकारिता जडता दुःखरूपता-आदिक विपरीतधर्मसहित नामरूपमय जगत्‌कूं नित्यद्रष्टा अविकारी चेतन आनंदादिस्वरूप ब्रह्म कहना विरुद्ध है । तामैं श्रुतिवाक्यनका तात्पर्य संभवै नहीं । किंतु बाधसामानाधिकरण्यकी रीतिसैं नाम-रूपका बाधकरिके अवशेष रहा जो ताका संबंधी अधिष्ठानचेतन सो ब्रह्म है । इस अर्थमैं श्रुतिवाक्यनका तात्पर्य है । यातैं इहां सर्वशब्दका वाच्य जो नामरूप जगत्, तिस सारेका त्यागकरिकै तिसके संबंधी अस्ति-भाति-प्रियरूप अधिष्ठानका ब्रह्मरूप-करिके ग्रहण है । यातैं जहतिलक्षणा है ॥

इहां आरोपित नामरूपका अपनै अधिष्ठानचेतनसैं जो तादात्म्यसंबंध है सो लक्षणा है औ तिसतैं जानियेहै जो अधिष्ठानचेतन सो लक्ष्यअर्थ है । औ—

मुख्यसिद्धांतमैं तौ अधिष्ठानकूं छोडिके आरोपित-की प्रतीति होवै नहीं । किंतु अधिष्ठानसैं अभिन्न होयके आरोपितकी प्रतीति होवैहै । यातैं अस्तिभाति-प्रियसहित नामरूप सर्वशब्दका किंवा जगत्-शब्दका वाच्यअर्थ है । तिसमैंसैं नामरूपभागका त्यागकरिके अवशेष रहा जो अस्तिभातिप्रियरूप अधिष्ठानभाग सो ब्रह्म है । ऐसैं उक्तश्रुतिवाक्यगत सर्वपदमैं भागत्यागलक्षणा मानीहै ।

इसरीतिसैं जहतिलक्षणाके उदाहरण कहे ॥

॥ ४५८ ॥ अजहतिलक्षणाके ये उदाहरण हैं:—

१ "काकेभ्यो दधि रक्षताम् (चीटिनके निवारण अर्थ धूपमैं दधिकूं राखिके तहां किसी किंकरकूं बिठायके स्वामीनैं कह्या कि:—काकोंतैं दधिकूं रक्षा करना)" इस वाक्यविषै काकपदका वाच्य जो वायस पक्षी, केवल तिनतैं दधिकी रक्षामैं वक्ताका तात्पर्य नहीं, किंतु दधिके भक्षक होनैकरि काकके

जहां पदनके वाच्यअर्थमध्य एकभागका त्याग होवै औ एकभागका ग्रहण होवै, तहां **भागत्यागलक्षणा** कहियेहै ॥ ता भागत्याग-कूंही **जहत्तिअजहत्तिलक्षणा** बी कहैहैं ॥

जैसैं प्रथम देखे पदार्थकूं अन्यदेशमैं देखिके किसीनैं कह्याः—"सो यह है" तहां भागत्याग-लक्षणा है। काहेतैं ?

(१) अतीतकालमैं औ अन्यदेशमैं स्थित वस्तुकूं "सो" कहैहैं। यातैं अतीत कालसहित औ अन्यदेशसहितवस्तु "सो" पदका वाच्यअर्थ है ॥ औ

(२) वर्त्तमानकाल समीपदेशमैं स्थितवस्तुकूं "यह" कहैहैं। यातैं वर्तमानकाल-सहित औ समीपदेशसहित वस्तु, "यह" पदका वाच्यअर्थ है ॥ औ—

अतीतकालसहित अन्यदेशसहित जो वस्तु, सोई वर्तमानकाल औ समीपदेशसहित है, यह समुदायका वाच्यअर्थ है। सो संभवै नहीं। काहेतैं ?

(१) अतीतकाल औ वर्त्तमानकालका विरोध है।

(२) तथा अन्यदेशका औ समीपदेशका विरोध है।

यातैं दोनूंपदनमैं देशकाल जो वाच्यभाग ताकूं त्यागिके वस्तुमात्रमैं दोनूंपदनकी भाग-त्यागलक्षणा है ॥

सजातीय जे बिडालादिक तिनतैं बी दधिकूं रक्षा करना, ऐसा वक्ताका तात्पर्य है। यातैं काकपदके **वाच्य** जे वायसपक्षी, तिनका बिडालादिकनके साथि जो सजातीयसंबंध, सो लक्षणा है औ वाच्यका त्याग नहीं, अधिकका ग्रहण है, यातैं **अजहत्तिलक्षणा** ॥

२**तैसैं** क्षेत्रनकी रक्षाके निमित्त मंचेपर बैठे-हुये पुरुष पक्षीनके उडावने निमित्त पुकारतैहोवै। तहां काहुके प्रति किसीनै कह्या किः—"मंचे पुकारते हैं" तहां मंचपदकी मंचेपर बैठे पुरुषनविषै अजहत्तिलक्षणा है। काहेतैं ? मंचपदके वाच्य मंचमैं पुकारनैका असंभव है। यातैं मंचपदके वाच्य जो मंचे, तिनसहित पुरुषनविषै मंचपदकी अजहत्ति-**लक्षणा** है ॥ इहां मंचपदके वाच्य जे मंचे तिनका अपनै आधेय (आश्रित) पुरुषनके साथि आधेयता-संबंध है, सो लक्षणा औ वाच्यका त्याग नहीं। अधिकका ग्रहण है। यातैं **अजहत्तिलक्षणा है** ॥

३-४ **तैसैं** छत्रीवाले जातैहैं औ लकडिनकूं प्रवेश करावो, इत्यादिवाक्यनविषै बी छत्रीवालेपदमैं औ लकडीपदमैं अपनै वाच्य छत्रीयुक्तपुरुष औ काष्ठसमूह तिनसहित तिनके संबंधी छत्रीरहित पुरुषनका औ लकडीके उठानैवाले पुरुषका क्रमतैं ग्रहण है। यातैं वाच्यका त्याग नहीं। अधिकका ग्रहण होनैतैं अजहत्तिलक्षणा है।

इसरीतिसैं जहां श्रुतिवाक्यमैं आत्माको सत्आदिक-विशेषणनके मध्य एक किंवा दोविशेषणनका उच्चारण कियाहोवै, तहां तिनसहित अन्यअनुक्त सर्वविशेषणनका ग्रहण होवै। यातैं तहां (तैसैं ठिकानै) सिद्धांतमैं बी अजहत्तिलक्षणाका उपयोग है ॥

४५९ "सो यह है" इस वाक्यमैं स्थित जे "सो" औ "यह" ये दोपद, तिनका परस्पर समान (एक) विभक्तिके बलसैं एकअर्थवान्‌तारूप **सामानाधि-करण्यसंबंध** है। तिसके बलसैं तिनके वाच्यअर्थ जे परोक्षवस्तु औ अपरोक्षवस्तु, तिनकी एकता प्रतीत होवैहै औ तिन दोनूं वाच्यकूं विरोधिधर्मवान् होनैतैं तिनकी एकता संभवै नहीं। यातैं इहां लक्षणा करनी योग्य है ॥ यामैं जहति किंवा अजहति लक्षणा तौ बनै नहीं। किंतु भागत्यागलक्षणा बनैहै। यातैं "सो" पदका वाच्य जो परोक्षतासहितवस्तु औ "यह" पदका वाच्य जो अपरोक्षतासहित वस्तु, तिन मैंसैं परोक्षता औ अपरोक्षताभागका त्यागकरिके अवि-रोधिवस्तुमात्रका ग्रहण है ॥

१ इहां परोक्षताअपरोक्षताभागका वस्तुके साथि आश्रयतासंबंध है। औ—

(महावाक्यनमैं लक्षणा ॥ ४३३–४४९ ॥)

"तत्त्वमसि" महावाक्यमैं लक्षणा दिखावनैकूं "तत्" पद औ "त्वं"पदका वाच्यअर्थ दिखावैहैं ॥

॥ ४३३ ॥ "तत्"पदका वाच्यअर्थ

॥ दोहा ॥

सर्वसक्ति सर्वज्ञ विभु,
ईस स्वतंत्र परोछ ॥
मायी तत्पद वाच्य सो,
जामैं बंध न मोछ ॥ ३७ ॥

टीकाः—

१ सर्वशक्ति कहिये जामैं सर्वसामर्थ्य ।
२ सर्वज्ञ कहिये सर्ववस्तुके जाननैवाला ।
३ विभु कहिये व्यापक ।
४ ईश कहिये सर्वका प्रेरक औ—
५ स्वतंत्र कहिये कर्मके आधीन नहीं ॥ औ—
६ परोक्ष कहिये जीवके प्रत्यक्षका विषय नहीं ॥
७ मायी कहिये माया जाके अधीन ॥ औ—
८ बंधमोक्षरहित, जामैं बंध होवै ताका मोक्ष होवैहै । ईश्वर बंधरहित है । यातैं ईश्वरमैं मोक्ष बी नहीं ॥

इतनै धर्मवाला ईश्वरचेतन "तत्"पदका वाच्यअर्थ है ॥

॥४३४॥ अथ "त्वं"पदवाच्यनिरूपण ॥

॥ दोहा ॥

कहे धर्म जो ईसके,
सब तिनतैं विपरीत ॥
व्है जिहि चेतन जीव तिहि,
त्वंपदवाच्य प्रतीत ॥ ३७ ॥

टीकाः—जो ईशके धर्म कहे, तिनतैं

---

२ वस्तुभागका अपनै स्वरूपसैं तादात्म्यसंबंध है ।

यह सारे वाच्यभागका जो वस्तुके साथि आश्रयता तादात्म्यसंबंध, सो लक्षणा है । औ—

१ परस्परविरोधि परोक्षता औ अपरोक्षतारूप वाच्यभागका त्याग औ—
२ अविरोधि केवलवस्तुरूप वाच्यभागका ग्रहण है ।

यातैं यह भागत्यागलक्षणा है ।

तैसैं "तत्त्वमसि" आदिक महावाक्यनमैं स्थित जे जीवईशके वाचक दोपद, तिनका बी परस्पर समानविभक्तिके बलसैं एकअर्थवान्तारूप सामानाधिकरण्यसंबंध है । तिसके बलसैं तिनके वाच्य जे जीवईश्वर तिनकी एकता प्रतीत होवैहै । औ तिन दोनूंकूं विरोधिधर्मवान् होनैतैं तिनकी एकता संभवै नहीं । यातैं तहां लक्षणा अंगीकार करनै योग्य है ॥ तामैं आगे कहनैके प्रकारसैं जहति किंवा अजहतिलक्षणा तौ संभवै नहीं किंतु भागत्यागही संभवैहै । यातैं सर्वमहावाक्यनमैं दोदो पदनके वाच्य जे जीव औ ईश्वर तिनमैंसैं—

१ धर्मसहित उपाधिरूप विरोधिवाच्यभागका त्याग । औ—
२ अविरोधि चेतनभागका ग्रहण है ॥

१ इहां धर्मसहित मायाअविद्याका अधिष्ठानतासंबंध है । औ—
२ चेतनभागका अपनैसैं तादात्म्यसंबंध है ।

यह सारे वाच्यका चेतनभागसैं जो अधिष्ठानतातादात्म्यसंबंध, सो लक्षणा है । औ—

१ विरोधिवाच्यभागका त्याग औ—
२ अविरोधिचेतनभागका ग्रहण है ।

यातैं यह भागत्यागलक्षणा कहियेहै ॥

विपरीतधर्म जामैं होवै, सो जीवचेतन त्वंपदका वाच्य प्रतीत कहिये जान ॥ याका भाव यह हैः—

१ अल्पशक्ति ।
२ अल्पज्ञ ।
३ परिच्छिन्न ।
४ अनीश ।
५ कर्मके अधीन ।
६ अविद्यामोहित । औ—
७ बंधमोक्षवाला । औ—
८ प्रत्यक्ष । काहेतैं? अपना स्वरूप किसीकूं परोक्ष नहीं । प्रत्यक्षही होवैहै ॥ यद्यपि ईश्वरकूं बी अपना स्वरूप प्रत्यक्ष है, तथापि ईश्वरका स्वरूप जीवनकूं प्रत्यक्ष नहीं । यातैं परोक्ष कहियेहै । औ जीवके स्वरूपकूं जीवईश्वर दोनों जानैंहैं । यातैं प्रत्यक्ष[४६०] कहियेहै ।

इतनै धर्मवाला जीवचेतन "त्वं" पदका वाच्य कहियेहै ॥

॥ ४३५ ॥ वाच्यअर्थमैं एकताका विरोध औ लक्षणकी कर्त्तव्यता ॥

॥ दोहा ॥

महावाक्यमैं एकता,
व्है दोनोंकी भान ॥
सो न बनै यातैं सुमति,
लछ्य लछनहि जान ॥ ३८ ॥

टीकाः—सामवेदके छांदोग्यउपनिषद्मैं उद्दालकमुनिनै अपनै पुत्र श्वेतकेतुकूं जगत्की उत्पत्ति करनैवाला ईश्वर बतायके कह्याः— "तत्त्वमसि"[४६१] । ताका यह वाच्यअर्थ हैः—

१ "तत्" कहिये सो, जगत्की उत्पत्ति करनैवाला सर्वशक्तिसर्वज्ञताआदिकधर्मसहित ईश्वर ।
२ "त्वं" कहिये तूं, अल्पशक्तिअल्पज्ञताआदिक धर्मवाला जीव ।
३ "असि" कहिये "है"

इहां "सो तूं है" इस कहनैतैं ईश्वरजीवकी एकता[४६२] वाच्यअर्थसैं भान होवैहै सो बनै नहीं । काहेतैं?—

१ सर्वशक्ति औ अल्पशक्ति ।
२ सर्वज्ञ औ अल्पज्ञ ।
३ विभु औ परिच्छिन्न ।
४ स्वतंत्र औ कर्मअधीन ।
५ परोक्ष औ प्रत्यक्ष ।
६ माया जाके अधीन औ अविद्यामोहित एक है ।

यह कहना "अग्नि शीतल है" इस कहनैके समान है । यातैं हे सुमती! लक्षणाही कहिये लक्षणातैं लक्ष्यअर्थ जान । वाच्यअर्थमैं विरोध है ॥

॥ ४६० ॥ यद्यपि जीव अपनै निजरूप अहंपदके लक्ष्य कूटस्थमात्रकूं नहीं जानताहै, तथापि अहंपदका वाच्य जो अंतःकरणविशिष्टचेतन, किंवा स्थूलसूक्ष्मसंघातविशिष्टचेतन मैं हूं ऐसैं जानताहै । यातैं जीवकूं विवेकज्ञानतैं पूर्व बी विशिष्टात्मरूपसैं अपनै स्वरूपका ज्ञान प्रत्यक्ष है ॥

॥ ४६१ ॥ "तत्त्वमसि" इस सामवेदके छांदोग्यउपनिषद्के षष्ठअध्यायगत महावाक्यका श्वेतकेतुपुत्रकेप्रति उद्दालकपितानै जिस रीतिसैं नववार उपदेश कियाहै, सो सारी रीति हमनै पंचदशीके महावाक्यविवेकनाम पंचमप्रकरणके टिप्पणविषै औ छांदोग्यउपनिषद्की भाषाटीकाविषै बी दिखाईहै ॥

॥ ४६२ ॥ इहां वाच्यअर्थसैं एकताका भान कह्या । सो "तत् त्वं" इन दोपदनके सामानाधिकरण्यरूप संबंधके बलतैं कह्याहै ॥ सामानाधिकरण्यका उदाहरणसहित लक्षण चतुर्थतरंगके ११३ वें दोहाके टिप्पणविषै हमनै लिख्याहै ।

॥ दोहा ॥

आदि दोय नहिं संभवै,
महावाक्यमैं तात ॥
भागत्याग यातैं लखहु,
व्है जातैं कुसलात ॥ ३९ ॥

टीकाः—हे तात ! महावाक्यमैं आदि दोय कहिये जहति अजहति नहीं संभवै । यातैं भागत्यागलक्षणा महावाक्यमैं लखहु कहिये जानो । जातैं कुसलात कहिये विरोधका परिहार होवै ॥

॥४३६॥१महावाक्यमैं जहतिका असंभव ॥

॥ अथ जहतिअसंभवप्रतिपादन ॥

॥ दोहा ॥

ज्ञेय जु साछी ब्रह्मचित् ,
वाच्यमांहि सो लीन ॥
मानै जहतीलच्छना,
व्है कछु ज्ञेय नवीन ॥ ४० ॥

टीकाः—संपूर्णवेदांतका ज्ञेय, साक्षीचेतन औ ब्रह्मचित् कहिये ब्रह्मचेतन है । सो साक्षी चेतन औ ब्रह्मचेतन त्वंपद औ तत्पदके वाच्यमैं लीन कहिये प्रविष्ट है ॥ औ—

जहतिलक्षणा जहां होवै, तहां वाच्यसंपूर्णका त्यागकरिके वाच्यका संबंधी अन्यज्ञेय होवैहै । यातैं महावाक्यमैं जहतिलक्षणा मानैं तौ वाच्यमैं आया जो चेतन, तासैं नवीन कहिये अन्यकछु ज्ञेय होवैगा ॥ चेतनसैं भिन्न असत् जडदुःखरूप है । ताके जाननैतैं पुरुषार्थ सिद्ध होवै नहीं । यातैं महावाक्यमैं जहति लक्षणा नहीं ॥

॥ ४३७ ॥ २ महावाक्यमैं अजहतिका असंभव ॥

॥ अथ अजहतिलक्षणाअसंभव-प्रतिपादन ॥

॥ दोहा ॥

वाच्यहु सारो रहतहै,
जहां अजहती मीत ॥
वाच्यअर्थ सविरोध यूं,
तजहु अजहती रीत ॥ ४१ ॥

टीकाः—हे मीत प्रिय ! जहां अजहतिलक्षणा होवै । तहां वाच्यअर्थ सारे रहैहै औ वाच्यसैं अधिकका ग्रहण होवैहै ॥ महावाक्यनमैं अजहति-लक्षणा अंगीकार करैं तौ वाच्यअर्थ सारा रहैगा औ वाच्यअर्थ महावाक्यनमैं सविरोध कहिये विरोधसहित है ॥ विरोध दूरि करनैकूं लक्षणा अंगीकार करीहै ॥ अजहति मानैंतैं महावाक्यनमैं विरोध दूरि होवै नहीं । यातैं अजहतिकी रीति महावाक्यनमैं तजहू ॥

॥ ४३८ ॥ ३ महावाक्यमैं भागत्यागका अंगीकार ॥

॥ अथ भागत्यागलक्षणाप्रकार ॥

॥ दोहा ॥

त्यागि विरोधीधर्म सब,
चेतन सुद्ध असंग ॥
लखहु लच्छनातैं सुमति,
भागत्याग यह अंग ॥ ४२ ॥

टीकाः—हे अंग ! हे प्रिय ! तत्पदका वाच्य ईश्वर औ त्वंपदका वाच्य जीव तिन्हके आपसमैं

विरोधीधर्म त्यागिके शुद्धअसंगचेतन लक्षणातैं लखहू । यह भागत्यागलक्षणा है ॥ या स्थानमैं यह सिद्धांत हैः–ईश्वरजीवका स्वरूप अनेकप्रकारका अद्वैतग्रंथनमैं कह्याहै ॥

१ विवरणग्रंथमैं
  (१) अज्ञानमैं प्रतिबिंब जीव औ—
  (२) बिंब ईश्वर कह्याहै ॥ औ—

२ विद्यारण्यके मतमैं
  (१) शुद्धसत्वगुणसहित मायामैं आभास ईश्वर । औ—
  (२) मलिनसत्वगुणसहित जो अंतःकरणका उपादानकारण अविद्याका अंश, तामैं आभास जीव कह्याहै ॥

॥ ४३९ ॥ जीवईश्वरके स्वरूपमैं पंचदशीकार तथा विवरणकारादिकका मत (आभास प्रतिबिंब औ अवच्छेदवाद) ॥ ४३९–४४२ ॥

यद्यपि पंचदशीग्रंथमैं विद्यारण्यस्वामीनै अंतःकरणमैं आभास जीव कह्याहै । तथापि अंतःकरणके आभासकूं जीव मानैं तौ सुषुप्तिमैं अंतःकरण रहै नहीं । यातैं जीवका बी अभाव हुवाचाहिये । औ प्राज्ञरूप जीव सुषुप्तिमैं रहैहै । यातैं विद्यारण्यस्वामीका यह अभिप्राय हैः–

अंतःकरणरूप परिणामकूं प्राप्त जो होवै अविद्याका अंश, तामैं आभास जीव है ॥ सो अविद्याका अंश सुषुप्तिमैं बी रहैहै । यातैं प्राज्ञका अभाव नहीं ॥ औ—

केवलआभासही[४६३] जीव ईश्वर नहीं है । किंतु

१ मायाका अधिष्ठानचेतन औ मायासहित आभास ईश्वर है ॥ औ—

२ अविद्या अंशका अधिष्ठानचेतन औ अविद्याके अंशसहितआभास जीव है ॥

१ ईश्वरकी उपाधिमैं शुद्धसत्वगुण है । यातैं ईश्वरमैं सर्वशक्तिसर्वज्ञतादिक धर्म हैं । औ—

२ जीवकी उपाधिमैं मलिनसत्वगुण है । यातैं ईश्वरमैं अल्पशक्तिअल्पज्ञतादिकधर्म हैं ॥

याकूं आभासवाद कहैहैं ॥ औ—

॥ ४४० ॥ विवरणके मतमैं यद्यपि जीवईश्वर दोनूंकी उपाधि एकही अज्ञान है । यातैं दोनूं अल्पज्ञ हुयेचाहिये । तथापि जा उपाधिमैं प्रतिबिंब होवै, ताका यह स्वभाव होवैहैः–प्रतिबिंबमैं अपनै दोष करैहै । बिंबमैं नहीं ॥

जैसैं दर्पणरूप उपाधिमैं मुखका प्रतिबिंब होवैहै । ग्रीवामैं स्थित मुख बिंब है ॥ तहां दर्पणरूप उपाधिके श्याम पीत लघुतादिक अनेकदोष प्रतिबिंबमैं भान होवैहैं औ ग्रीवामैं स्थित जो बिंब है, तामैं भान होवै नहीं ॥ तैसैं दर्पणस्थानी जो अज्ञान, तिसविषै

॥ ४६३ ॥ केवलचिदाभासही जीवईश्वर नहीं है । काहेतैं ? अपनै तादात्म्यसंबंधकरि अधिष्ठानसैं अभिन्न होयके जो प्रतीत होवै सो आरोपित कहियेहै ॥ आरोपितकी अधिष्ठानसैं भिन्नताकरिके प्रतीति होवै नहीं । जैसैं रज्जुविषै सर्प आरोपित है यातैं ताकी रज्जुसैं भिन्नताकरिके प्रतीति होवै नहीं । किंतु रज्जुसैं अभिन्न होयके औ रज्जुके स्वरूपकूं ढांपिके सर्पकी प्रतीति होवैहै तैसैं मायाअविद्यामैं जे आभास हैं । वे बी जातैं आरोपित हैं यातैं तिन की अपनै अधिष्ठानकूटस्थ औ ब्रह्मसैं भिन्नताकरिके प्रतीति संभवै नहीं । किंतु तिन दोनूंकी अपनै अधिष्ठानकूटस्थ औ ब्रह्मसैं तादात्म्यसंबंधरूप एकताकूं पायके तिनके स्वरूपकूं ढांपिकेही प्रतीति होवैहै । यातैं अधिष्ठानचेतन औ उपाधिसहितचिदाभास जीव किंवा ईश्वर है ॥

प्रतिबिंबरूप जीवमैं अज्ञानकृत अल्पज्ञतादिक दोष हैं औ बिंबरूप ईश्वरमैं नहीं । यातैं—

१ ईश्वरमैं सर्वज्ञतादिक हैं । औ—

२ जीवमैं अल्पज्ञतादिक हैं ॥

॥ ४४१ ॥ आभास औ प्रतिबिंबका इतना भेद है:-आभासपक्षमैं तौ आभास मिथ्या है औ प्रतिबिंबवादमैं प्रतिबिंब मिथ्या नहीं । किंतु सत्य है । काहेतैं ?

प्रतिबिंबवादीका यह सिद्धांत है:-दर्पणमैं जो मुखका प्रतिबिंब है, सो मुखकी छाया नहीं । काहेतैं ?

१ छायाका यह स्वभाव है:-जिस दिशामैं छायावान्‌के मुख औ पृष्ठ होवै, उस दिशामैं छायाके मुख औ पृष्ठ होवैहैं ॥ औ—

२ दर्पणके प्रतिबिंबके मुख पीठि बिंबसैं विपरीत होवैहैं । यातैं दर्पणमैं छायारूप प्रतिबिंब नहीं । किंतु दर्पणकूं विषय करनैवास्तै नेत्रद्वारा निकसी जो अंतःकरणकी वृत्ति, सो दर्पणकूं विषयकरिकै तत्कालही दर्पणसैं निवृत्त होयके ग्रीवामैं स्थित मुखकूं विषय करैहै ॥

जैसैं भ्रमणके वेगसैं अलातका चक्र भान होवैहै औ चक्र नहीं, तैसैं दर्पण औ मुखके विषय करनैमैं वृत्तिके वेगतैं मुख दर्पणमैं स्थित भान होवैहै औ मुख ग्रीवाविषैही स्थित है । दर्पणमैं नहीं औ छाया बी नहीं । वृत्तिके वेगसैं जो दर्पणमैं मुखकी प्रतीति सोई प्रतिबिंब है ॥

इसरीतिसैं दर्पणरूप उपाधिके संबंधसैं ग्रीवामैं स्थित मुखही बिंबरूप औ प्रतिबिंबरूप भान होवैहै औ विचारसैं बिंबप्रतिबिंबभाव है नहीं । तैसैं अज्ञानरूप उपाधिके संबंधसैं असंगचेतनमैं बिंबस्थानीईश्वरभाव औ प्रतिबिंबस्थानीजीवभाव प्रतीत होवैहै औ विचारदृष्टिसैं ईश्वरताजीवता है नहीं ।

अज्ञानतैं जो चेतनमैं जीवभावकी प्रतीति, सोई अज्ञानमैं प्रतिबिंब कहियेहै । यातैं बिंबपना औ प्रतिबिंबपना तौ मिथ्या है औ स्वरूपसैं बिंबप्रतिबिंब सत्य है । काहेतैं ? बिंबप्रतिबिंबका स्वरूप दृष्टांतविषै तौ मुख है औ दार्ष्टांतविषै चेतन है । सो मुख औ चेतन सत्य है ॥

१ इसरीतिसैं प्रतिबिंबकूं स्वरूपतैं सत्य होनैतैं सत्य कहैहैं । औ—

२ आभासका स्वरूप छाया मानैहैं, यातैं मिथ्या है ॥

यह आभासवाद औ प्रतिबिंबवादका भेद[६५] है ॥ औ—

॥ ४६४ ॥ यद्यपि प्रतिबिंबवादमैं शुद्धब्रह्मही ईश्वर है । तामैं सर्वज्ञताआदिधर्म बी संभवै नहीं; तथापि जीवके अल्पज्ञताआदिकधर्मकी अपेक्षाकरिके शुद्धब्रह्ममैं बिंबपना, ईश्वरपना, सर्वज्ञपना । इत्यादिधर्मनका आरोप होवैहै । वास्तवतैं जीवईश्वर दोनूं शुद्धब्रह्मरूप हैं । तिसमैं किसी धर्मका संभव नहीं ॥

॥ ४६५ ॥ इहां कछुक विशेष है:-जलपूरित अनेक घटनविषै सूर्यके अनेकप्रतिबिंब (आभास) होवैहैं । तिनमैं—

१ एकएक प्रतिबिंब व्यष्टि कहियेहै । औ—

२ सर्व मिलिके एक समष्टिप्रतिबिंब कहियेहै । तिनके मध्य जिस प्रतिबिंबका जलके अभावकरिके अभाव होवै तिसका सूर्यसैं अभेद कहियेहै । अन्योंका नहीं । ऐसैं जब सर्वप्रतिबिंबनका अभाव होवै तब सो समष्टिप्रतिबिंबका सूर्यसैं अभेद कहियेहै ।

तैसैं या उक्तआभासवादीके पक्षमैं—

१ अनेकबुद्धि या अविद्याअंशरूप जलविषै अनेक ब्रह्मके प्रतिबिंब (आभास) हैं । तिनमैं एकएकप्रतिबिंब व्यष्टि कहियेहै । औ—

॥ ४४२ ॥ कितनै ग्रंथनमैं—

१ शुद्धसत्वगुणसहित मायाविशिष्टचेतन **ईश्वर** कहियेहै ॥ औ—

२ मलिनसत्वगुणसहित अंतःकरणका उपादान अविद्याके अंशविशिष्टचेतन **जीव** कहियेहै ॥

२ सर्व मिलिके एक **समष्टिप्रतिबिंब** कहियेहै तिनमैं

१ अनेक व्यष्टिप्रतिबिंब **जीव** हैं । औ—

२ एक समष्टिप्रतिबिंब **ईश्वर** है ॥

तिनके मध्य जिस जीवका उपाधिके अभावतैं अभाव होवै, तिसका ब्रह्मके साथि उपचारमात्र अभेद कहियेहै ।

ऐसैं जब सर्वजीवनका अभाव होवैगा, तब सो समष्टिप्रतिबिंबरूप ईश्वरका विदेहमोक्ष होवैगा ।

१ या पक्षमैं जगत् औ ब्रह्मके किंवा जीवब्रह्मके अभेदके बोधक श्रुतिवाक्यनमैं भागत्यागलक्षणाका स्वीकार नहीं । किंतु "गंगामैं ग्राम है" इस वाक्यकी न्यांई सारे वाच्यका त्याग औ ताके संबंधि ब्रह्मके ग्रहणतैं जहतिलक्षणाका स्वीकार है । यह अधिष्ठानकूटस्थकूं छोडिके केवलबुद्धिसहित वा अविद्यासहित आभासकूं जीव माननैहारे कोई वेदांतके एकदेशी आभासवादीका मत है ॥

२ या-पक्षमैं पुरुषार्थ (मोक्ष)के निमित्त प्रयत्न करनैवाले जीवका मोक्षदशाविषै अभाव होवैहै । यातैं "धनवृद्धिकी वांछासैं व्यापार करनैवालेका मूलधन बी नष्ट भया" इसकी न्यांई मोक्षकी प्राप्तिके निमित्त प्रयत्न करनैवाले जीवका स्वरूप नष्ट होवैगा । यह अनर्थ जानिके या सिद्धांतमैं किसी मुमुक्षुकी प्रवृत्ति नहीं होवैगी ।

यातैं यह पक्ष समीचीन नहीं ॥ औ—

पंचदशी तथा विचारसागरआदिक ग्रंथनमैं—

१ अधिष्ठानकूटस्थसहित साभासबुद्धि वा अविद्याकूं **जीव** मान्याहै । औ—

२ अधिष्ठानब्रह्मसहित साभासमायाकूं **ईश्वर** मान्याहै ।

यामैं वाच्यभागके एकदेशके त्यागतैं औ एकदेशके ग्रहणतैं महावाक्यआदिकस्थलमैं सिद्धांतसंमत भागत्यागलक्षणाकाही स्वीकार है ॥

या पक्षमैं मुख्य आकाशके दृष्टांतकाही अंगीकार है । तो आकाशके दृष्टांतका सविस्तरवर्णन पंचदशीके चित्रदीपमैं औ विचारसागरके चतुर्थतरंगमैं कियाहै ॥

यापक्षकी रीतिसैं—

१ आकाशके किंवा मुखआदिकके प्रतिबिंबका अधिष्ठानरूप **उपादान** घटाकाश औ दर्पणआदिक हैं । औ—

२ **परिणामीउपादान** जल औ अविद्याआदिक हैं । औ—

३ **निमित्तकारण** महाकाश अरु मुखआदिक बिंब औ उपाधिकी संनिधि है ॥

तिस प्रतिबिंबका बाधकरिके अपनै बिंब मुखआदिकनसैं अभेद होवैहै । **तथापि** जहांलगि जलदर्पणआदिक औ बिंबकी सन्निधिरूप निमित्त होवैं तहांलगि बाधित प्रतिबिंबकी बी अनुवृत्ति (प्रतीति) होवैहै । याहीकूं **बाधितानुवृत्ति** कहैहैं ॥

तैसैं—

१ चिदाभासरूप जीवका अधिष्ठानरूप **उपादान**-कूटस्थ है औ—

२ **परिणामीउपादान** नानाबुद्धि किंवा अज्ञानअंश हैं औ—

३ प्रारब्ध **निमित्तकारण** है ।

तिनमैंसैं जो चिदाभास बुद्धि वा अज्ञानअंशरूप उपाधिसहित अपनै स्वरूपका बाधकरिके अहंआदिक जीववाचकपदका लक्ष्यअर्थ जो कूटस्थ-अधिष्ठानरूप अपना निजरूप ताका अभिमानकरिके तिस अहंपदके लक्ष्य कूटस्थकी बिंबरूप ब्रह्मके साथि पूर्वसिद्धएकता है, ताकूं जानताहै सो मुक्त होवैहै । दूसरे बद्ध हैं ॥

यद्यपि उक्त "अहं ब्रह्मास्मि" इस ज्ञानके समयमैंही अविद्यारूप उपादानके नाशकरि ताके कार्य-

याकूं अवच्छेदवाद कहैहैं ॥

सर्वही वेदांतकी प्रक्रिया अद्वैतआत्माके जनावनैकूं है । यातैं जौनसी प्रक्रियातैं जिज्ञासुकूं बोध होवै, सोई ताकूं समीचीन है । तथापि वाक्यवृत्ति औ उपदेशसहस्रीमैं भाष्यकारनै आभासवादही लिख्याहै । यातैं आभासवादही मुख्य है ॥ ताकी रीतिसैं–

॥ ४४३ ॥ चारिमहावाक्यनमैं भागत्यागका प्रदर्शन ॥

१ (१) माया । औ–
(२) मायामैं आभास । औ–
(३) मायाका अधिष्ठान जो चेतन ।

सो सर्वशक्तिसर्वज्ञतादिकधर्मसहित ईश्वर है, सोई तत्पदका वाच्य है ॥ औ–

२ (१) व्यष्टिअविद्या ।
(२) तामैं आभास । औ–
(३) ताका अधिष्ठानचेतन ।

अल्पशक्तिअल्पज्ञतादिकधर्मसहित जीव है । सो त्वंपदका वाच्य है ॥

तिन्ह दोनूंकी "तत्त्वमसि" वाक्यनै एकता बोधन करी । औ बनै नहीं । यातैं–

१ आभाससहित माया औ मायाकृत सर्वशक्तिसर्वज्ञतादिकधर्म, इतनै वाच्यभागकूं त्यागिके चेतनभागविषै तत्पदकी भागत्यागलक्षणा ॥

२ तैसैं आभाससहितअविद्याअंश औ

जगत्सहित चिदाभासका बाध होवैहै, तथापि जहांलगि प्रारब्धरूप निमित्त है, तहांलगि बाध भये (मिथ्या जानें) देहादिजगत्सहित चिदाभासकी अनुवृत्ति (प्रतीति) होवैहै ॥ जब प्रारब्धका अंत होवै, तब तिस प्रतीतिका अभाव होवैहै । सोई ताका विदेहमोक्ष है । पूर्वउक्तपक्षतैं यह पक्ष उत्तम है ॥ औ—

बिंबप्रतिबिंबवादविषै–

१ प्रतिबिंबका अधिष्ठानरूप उपादान बिंब है औ–
२ परिणामीउपादान मुखआदिकबिंबका अज्ञान है ।
३ ताका निमित्तकारण दर्पण औ बिंबकी सन्निधिआदिक है ।

बिंबप्रतिबिंबके अभेदज्ञानतैं प्रतिबिंबभावकी निवृत्ति होवैहै । परंतु जहांलगि बिंब औ दर्पणकी सन्निधिरूप उपाधि (निमित्त) होवै तहांलगि मिथ्या जानैं प्रतिबिंबभावरहित प्रतिबिंबके स्वरूपकी प्रतीति होवैहै । जब दर्पणआदिकका अपसरण होवै तब प्रतिबिंबकी प्रतीतिका अभाव होवैहै ।

१ तैसैं एकही अज्ञानसैं शुद्धब्रह्मरूप बिंबमैं जीवरूप प्रतिबिंबभाव प्रतीत होवैहै, ताका उपादान अज्ञान है औ अधिष्ठान शुद्धब्रह्म है ।

२ निमित्तकारण अदृष्ट है । जब तिस प्रतिबिंबकूं अपनै बिंबब्रह्मसैं आपकी एकता प्रतीत होवै । तब ताका प्रतिबिंबभाव (जीवभाव) निवृत्त होवैहै । परंतु जहांलगि प्रारब्धरूप उपाधि (निमित्त) है, तहांलगि बाधित भये जगत्सहित इस जीवके जीवभावरहित स्वरूपकी प्रतीति होवैहै । जब प्रारब्धका अंत होवैगा तब तिस प्रतीतिका अभाव होयके केवलशुद्धब्रह्म अवशेष रहैगा, सोई ताका विदेहमोक्ष है ।

यापक्षमैं स्वप्नकी न्यांई मुख्य एकजीवका अंगीकार है औ नानाजीव जो प्रतीत होवैहैं, वे जीवाभास हैं । यामैं तीन सत्ताका अंगीकार है । यातैं यह बी व्यावहारिकपक्ष कहियेहै । परंतु अन्यसर्वव्यावहारिक पक्षनविषै यह पक्ष उत्तम है ॥

इसरीतिसैं आभासवाद औ प्रतिबिंबवादका भेद है ॥

॥ ४६६ ॥ इहां सर्वशब्दकरि कार्यकारणउपाधिवाद, अवच्छिन्नअनवच्छिन्नवाद औ दृष्टिसृष्टिवाद-आदिकपक्षनका ग्रहण है । वेदांतके अनेकपक्षनका अनुवाद अपय्यादीक्षितकृत सिद्धांतलेशमैं तथा वृत्तिप्रभाकरके अष्टमप्रकाशमैं कियाहै ॥

अविद्याकृत अल्पशक्तिअल्पज्ञतादिकधर्म जो त्वंपदका वाच्यभाग, ताकूं त्यागिके चेतनभागमैं त्वंपदकी भागत्याग-लक्षणा है ॥

इसरीतिसैं भागत्यागलक्षणातैं–

१ ईश्वर औ जीवके स्वरूपमैं लक्ष्य जो चेतनभाग, तिनकी एकता "तत्त्वमसि"[४६६] महावाक्य बोधन करैहै ॥

२ तैसैं "अयं आत्मा ब्रह्म"[४६७] इस महावाक्यमैं–

(१) आत्मापदका जीव वाच्य है । औ–
(२) ब्रह्मपदका ईश्वर वाच्य है ॥ ब्रह्म-पदका शुद्ध वाच्य नहीं । ईश्वरही वाच्य है । यह चतुर्थतरंगमैं प्रतिपादन करीआयेहैं ॥

पूर्वकी न्यांई दोनूं पदनकी लक्षणा है ।

(३) लक्ष्यअर्थ परोक्ष नहीं । इस अर्थकूं जनावनैकूं अयंपद है ॥

"अयं" कहिये सबके अपरोक्ष[४६९] आत्मा ब्रह्म है । यह वाक्यका अर्थ है ॥

३ "अहं ब्रह्मास्मि"[४७०] इस महावाक्यमैं

(१) अहंपदका जीव वाच्य है । औ–
(२) ब्रह्मपदका ईश वाच्य है ।

दोनों पदनकी चेतनभागमैं लक्षणा है ॥

"मैं ब्रह्म हूं" यह वाक्यका अर्थ है ॥

४ "प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म"[४७१] इस महावाक्यमैं–

(१) प्रज्ञानपदका जीव वाच्य है ।
(२) ब्रह्मपदका ईश है ।

पूर्वकी न्यांई लक्षणा ।

(३) लक्ष्य जो ब्रह्मात्मा, सो आनंदगुण-वाला नहीं किंतु आनंदरूप है । इस अर्थके जनावनैकूं आनंदपद है ।

आत्मासैं अभिन्नब्रह्म आनंदरूप है, यह वाक्यका अर्थ है ॥

जैसैं महावाक्यनमैं भागत्यागलक्षणा है । तैसैं अन्यवाक्यनमैं सत्य, ज्ञान, आनंदपद वी शुद्धब्रह्मकूं भागत्यागलक्षणासैंही बोधन करैहै । शक्तिसैं नहीं । काहेतैं ? शुद्धब्रह्म किसी-पदका वाच्य नहीं । यह सिद्धांत है । यातैं सारे पद विशिष्टके वाचक हैं औ शुद्धके लक्षक हैं ॥

१ मायाकी आपेक्षिक सत्यता औ चेतनकी निरपेक्षिक सत्यता मिलीहुई सत्यपदका वाच्य है । निरपेक्षिक सत्य लक्ष्य है ॥

२ बुद्धिवृत्तिरूप ज्ञान औ स्वयंप्रकाशज्ञान, दोनूं मिलै तौ ज्ञानपदका वाच्य औ स्वयं-प्रकाशभाग लक्ष्य ॥

॥ ४६७ ॥ यह उपदेशवाक्य कहियेहै । इसतैं भिन्न तीन अनुभववाक्य कहियेहैं ॥

॥ ४६८ ॥ यह अथर्वणवेदकी मांडूक्यउपनिषद्-गत महावाक्य है । याका विशेषप्रसंग हमनै श्रीपंचदशीके महावाक्यविवेकके टिप्पणविषै किंवा मांडूक्यकी भाषाटीकाविषै लिख्याहै ॥

॥ ४६९ ॥ अपरोक्ष दोप्रकारका है ।

१ एक तौ स्वयंप्रकाश होनैकरि बुद्धिरूप ज्ञानका विषय जो आत्माका स्वरूप, सो अपरोक्ष है ।

२ दूसरा "मैं स्वप्रकाश आत्मा हूं" इसरीतिसैं बुद्धिसैं अवलोकन करना, सो बी अपरोक्ष कहियेहै ॥

तिनमैं प्रथमअपरोक्ष नित्य (सदाविद्यमान) है औ दूसरा (बुद्धिवृत्तिरूप) अपरोक्ष अनित्य (कदाचित् होनैवाला) है ॥

॥ ४७० ॥ यह यजुर्वेदकी बृहदारण्यक उपनिषद्-गत महावाक्य है । याका विशेषप्रसंग हमनै श्री-पंचदशीके महावाक्यविवेकके टिप्पणविषै तथा श्री-बृहदारण्यककी भाषाटीकाविषै लिख्याहै ॥

॥ ४७१ ॥ यह ऋग्वेदकी ऐतरेयउपनिषद्का महावाक्य है । याका विशेषप्रसंग हमनै श्रीपंचदशी-के महावाक्यविवेकके टिप्पणमैं लिख्याहै ॥

३ विषयसंबंधजन्य सुखाकार सात्विक अंतःकरणकी वृत्ति औ परमप्रेमका आस्पद स्वरूपसुख, इन दोनूं मिले आनंदपदका वाच्य औ वृत्तिभागकूं त्यागिके स्वरूपभाग लक्ष्य ।

इसरीतिसैं सर्वपदनकी शुद्धमैं लक्षणा संक्षेपशारीरकमैं प्रतिपादन करीहै ॥

॥ ४४४ ॥ ॥ अथ उक्तअर्थ संग्रह ॥

॥ कवित्व ॥

"गंगामैं ग्राम" जहति-
- लच्छना या ठौर लखि ।
"सोन धावै" लच्छना
अजहति जनाईये ॥
"सोई यह वस्तु" इहां
लच्छना है भागत्याग ।
दूजो नाम जहति
अजहति सुनाईये ॥
"तत्त्वमसि" आदि महा-
वाक्यनमैं भागत्याग ।
लच्छना न जहति
अजहति वताईये ॥
ब्रह्म काहु पदको न
वाच्य यूं बखानै वेद ।
यातैं सर्वपदनमैं
रीति यूं लखाइये ॥ ४३ ॥
मायामांही सत्यता जु
औरभांति भाखियत ।
ब्रह्ममांहि सत्यता सु
औरभांति भाखिये ॥
दोउ मिली सत्यपद
वाच्य मुनि भाखतहैं ।
ब्रह्ममांहि सत्यता सु
लच्छ्यभाग राखिये ॥
बुद्धिवृत्ति संवित द्वै
मिले ज्ञानपद वाच्य ।
संवितस्वरूप लच्छ्य
बुद्धिवृत्ति नाखिये ॥
आत्म औ विषैको सुख
वाच्यपद आनंदको ।
विषैसुख त्यागि आत्म-
-सुख लच्छ आखिये ॥ ४४ ॥

॥४४५॥प्रश्नः-दोनूं पदनमैं लक्षणा मानना निष्फल है ॥

महावाक्यनमैं विरोध दूरि करनैकूं दोनूं-पदनमैं लक्षणा अंगीकार करी ॥ तहां कोई कहेहैः—एकपदमैं लक्षणा अंगीकार कियेसैंही विरोध दूरि होवैहै । दोयपदमैं लक्षणा माननैका प्रयोजन नहीं ॥

॥ दोहा ॥

एकहि पदमैं लच्छना,
मानै नहीं विरोध ॥
दोयपदनमैं लच्छना,
निष्फल कहत सुबोध ॥ ४५ ॥

टीकाः—सुबोध कहिये सुज्ञ । दोयपदनमैं लक्षणा निष्फल कहतेहैं। काहेतैं ? एकही पदमैं लक्षणा माननैतैं विरोध दूरि होय जावैहै ॥ याका भाव यह हैः—यद्यपि सर्वज्ञतादि-विशिष्टकी अल्पज्ञतादिविशिष्टके साथि एकता

नहीं बनैहै । तथापि एकपदका लक्ष्य जो शुद्ध, ताकी विशिष्टके साथि एकता बनैहै ॥

दृष्टांतः–जैसैं—

१ "शूद्रमनुष्य ब्राह्मण है" इसरीतिसैं शूद्रत्वधर्मविशिष्टमनुष्यकी ब्राह्मणत्व-धर्मविशिष्टके साथि एकता कहना विरुद्ध है । औ—

२ "मनुष्य ब्राह्मण है" इसरीतिसैं शूद्रत्वधर्मरहित शुद्धमनुष्यकूं ब्राह्मणत्व-विशिष्टता कहनैमैं विरोध नहीं ॥

तैसैं—

१ अल्पज्ञतादिधर्मविशिष्टचेतनकी औ सर्व-ज्ञतादिधर्मविशिष्टकी एकता विरुद्ध बी है ।

२ परंतु जीववाचकपद औ ईशवाचकपद-की चेतनमैं लक्षणाकरिके चेतनमात्रकी सर्वज्ञतादि-धर्म-विशिष्टके साथि वा अल्पज्ञतादिविशिष्टके साथि एकता कहनै-मैं विरोध नहीं ॥

यातैं दोपदमैं लक्षणा माननैमैं कोई युक्ति नहीं ॥

(गतप्रश्नका उत्तर ॥ ४४६–४५० ॥)

॥ ४४६ ॥ दोनूं पदनमैं लक्षणा सफल है॥

॥ समाधान ॥ कवित्व ॥

लच्छना जो कहै एक-
-पदमांहि ताकूं यह ।
पूछि दोयपदनमैं
कौनसैमैं लच्छना ? ॥
प्रथम वा द्वितीयमैं
कहै ताहि भाखि यह ।
वाक्यनको होयगो
विरोध मूढलच्छना ॥
तीनि वाक्यमध्य जीव-
-वाचक प्रथमपद ।
"तत्त्वमसि" यामैं आदि-
-पद ईसलच्छना ॥
प्रथम वा द्वितीयको
नेम नहिं बनै यातैं ।
भाखत द्वैपदनमैं
लच्छना सुलच्छना ॥ ४६ ॥

टीकाः–जो एकपदमैं लक्षणा अंगीकार करै ताकूं यह पूछिः–दोनूं पदनमैंसैं कौनसै पदमैं लक्षणा है ?

जो ऐसै कहैः—

१ सर्वमहावाक्यनके प्रथमपदमैं लक्षणा है । द्वितीयमैं नहीं ॥

२ यद्वा द्वितीयपदमैं लक्षणा सर्ववाक्यनमैं है । प्रथमपदमैं नहीं ॥

ताकूं हे शिष्य ! यह भाखिः—हे मूढ-लक्षण ! प्रथम वा द्वितीयपदमैं जो नेमतैं लक्षणा सर्ववाक्यनमैं मानैं तौ वाक्यनका परस्पर-विरोध होवैगा । काहेतैं ?–

१ तीनवाक्य मध्य कहिये
(१) "अहं ब्रह्मास्मि" ।
(२) "प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म" ।
(३) "अयमात्मा ब्रह्म" ।

इन तीन वाक्यनमैं जीववाचकपद प्रथम कहिये पूर्व है ॥ औ–

(४) "तत्त्वमसि" या वाक्यमैं आदिपद कहिये प्रथमपद, ईशलक्षण कहिये ईश्वरका बोधक है ॥

(१) जो पूर्वपदमैं लक्षणा सारै मानैं तौ तीनिवाक्यनका तौ यह अर्थ होवैगाः—चेतन सर्वज्ञतादि विशिष्टअंश सारे ईश्वररूप हैं ॥ औ—

(२) "तत्त्वमसि" वाक्यका यह अर्थ होवैगाः—चेतन अल्पज्ञतादिविशिष्ट-संसारी जीवरूप है । काहेतैं? तीनि वाक्यनमैं पूर्व जीववाचक पद हैं । ताकी चेतनभागमैं लक्षणा । औ द्वितीय जो ईश्वरवाचकपद, ताके वाच्यका ग्रहण । औ "तत्त्वमसि"मैं आदि ईशवाचकपद, ताकी चेतनभागमैं लक्षणा औ द्वितीय जीववाचकपद, ताके वाच्यका ग्रहण ॥

इसरीतिसैं लक्षणाका नेम करै तौ वाक्यन-का परस्परविरोध होवैगा ।

तैसैं सर्ववाक्यनके द्वितीयपद कहिये आगिले पदमैं लक्षणा मानैं । तौ—

(१) तीनि वाक्यनमैं पूर्व जो जीवपद, ताके वाच्यका ग्रहण औ उत्तर ईशपदकी चेतनभागमैं लक्षणा । यातैं अल्पज्ञतादि-धर्मविशिष्ट चेतन है । यह तीनि-वाक्यनका अर्थ होवैगा ॥ औ—

(२) "तत्त्वमसि"मैं आदि ईशपद । ताके वाच्यका ग्रहण औ द्वितीय जीवपदकी चेतनभागमैं लक्षणा । यातैं सर्वज्ञतादि-धर्मविशिष्ट चेतन है । यह "तत्त्वमसि" का अर्थ होनैंतैं परस्परविरोधही होवैगा ॥

इसरीतिसैं प्रथम वा द्वितीयपदमैं लक्षणाका नेम बनै नहीं । यातैं सुलक्षणा कहिये सुंदरि है लक्षण जिनके, ते आचार्य द्वैपदनमैं लक्षणा भाखतहैं । और—

॥ ४४७ ॥ ईशवाचकपदमैं लक्षणा है । याका उत्तर ॥

जो ऐसैं कहैः-प्रथमपद वा द्वितीयपदमैं लक्षणा है । यह नियम नहीं करैहै । किंतु सर्ववाक्यनमैं जो ईश्वरवाचकपद, तामैं लक्षणा है । यह नियम करैहै ॥ सो ईश्वरवाचक पूर्व होवै वा उत्तर होवै । यातैं वाक्यनका परस्पर-विरोध नहीं ॥ ताका—

॥ समाधान ॥ दोहा ॥

ईसपदहि लच्छक कहै,
सब अनर्थकी खानि ॥
ज्ञेय होय श्रुतिवाक्यमैं,
व्है पुरुषारथ हानि ॥ ४७ ॥

टीकाः-जो ईश्वरवाचकपदकूंही लक्षक कहै, तौ सर्वअनर्थ अल्पज्ञता पराधीनता जन्ममरणसैं आदिलेके जो दुःखके साधन, तिनकी खानि जो संसारी जीव, सो श्रुति वाक्यनमैं ज्ञेय होवै । यातैं पुरुषार्थ कहिये मोक्षकी हानि होवैगी ।

याका भाव यह हैः-जो ईश्वरवाचक पदमैंही लक्षणा मानैं तौ महावाक्यनका यह अर्थ होवैगाः-"तत्पदका लक्ष्य जो अद्वयअसंग-मायामलरहित चेतन, सो कामकर्मअविद्याके आधीन अल्पज्ञ, अल्पशक्ति, परिच्छिन्न, पुण्यपाप, सुखदुःख, जन्ममरण, गमन-आगमन आदिकअनंतअनर्थका पात्र है" । जो महावाक्यका ऐसा अर्थ होवै तौ जिज्ञासुकूं इसी अर्थविषै बुद्धिकी स्थिति करनी होवैगी औ जामैं बुद्धिकी स्थिति होवैहै । प्राणवियोगसैं अनंतर ताहीकूं प्राप्त होवैहै । यातैं वेदवाक्यनके विचारसैं मुमुक्षुकूं अनर्थकीही प्राप्ति होवैगी । आनंदकी प्राप्ति नहीं होवैगी । यातैं ईश्वर-

वाचकपदमैं लक्षणा है । जीववाचकमैं नहीं । यह नियम असंगत है । और—

॥ ४४८ ॥ जीववाचकपदमैं लक्षणा है । याका उत्तर ॥

जो ऐसैं कहैं:- सर्वमहावाक्यनमैं जो जीववाचकपद हैं, तिन्हमैं लक्षणा है । ईश-वाचकमैं नहीं । यातैं पुरुषार्थकी हानि नहीं । काहेतें ? जीववाचकपदमैं लक्षणा मानैं तौ महावाक्यनका यह अर्थ होवैगा:-"जो त्वंपद-का लक्ष्य चेतनभाग सो सर्वशक्ति, सर्वज्ञ, स्वतंत्र, औ जन्मादिकबंधरहित ईश्वररूप है ॥" इस अर्थमैं बुद्धिकी स्थितिसैं जिज्ञासुकूं अति-उत्तमईश्वरभावकीही प्राप्ति होवैगी । यातैं जीववाचकपदमैं लक्षणाका नियम करैहैं ॥ ताका—

समाधान ॥ दोहा ॥

साछी त्वंपद लछ्य कहु,
कैसैं ईसस्वरूप ? ॥
यातैं दोपद लच्छना,
भाखत जतिवर-भूप ॥ ४८ ॥

टीका:-त्वंपदका लक्ष्य जो साक्षी, सो ईशस्वरूप कैसैं ? यह कहू । अर्थ यह:-त्वंपदके लक्ष्यकूं ईश्वररूप कहना बनै नहीं, यातैं यति जो संन्यासी तिनमैं वर जो श्रेष्ठ, तिनके भूप स्वामी, दोनूं पदमैं लक्षणा भाखतहैं ॥

याका भाव यह है:-जो जीववाचक पदमैं लक्षणा मानैं औ ईशवाचकमैं नहीं । ताकूं यह पूछैहैं:-१ त्वंपदकी लक्षणा व्यापकचेतनमैं है । २ अथवा जितनै देशमैं जीवकी उपाधि है उतनै देशमैं स्थित जो साक्षीचेतन, तामैं त्वंपदकी लक्षणा है ?

(१) जो व्यापकचेतनमैं त्वंपदकी लक्षणा कहै तौ बनै नहीं । काहेतें ? वाच्यअर्थमैं जाका प्रवेश होवै, तामैं भागत्यागलक्षणा होवैहै औ वाच्यमैं प्रवेश व्यापकचेतनका नहीं । किंतु जीवपनैकी उपाधिदेशमैं स्थित जो साक्षीचेतन ताका वाच्यमैं प्रवेश है । यातैं साक्षीचेतनमैंही त्वंपदकी लक्षणा है । व्यापकचेतनमैं नहीं ॥ ता साक्षीचेतनमैं सर्वके हृदयका प्रेरण औ सर्वप्रपंचमैं व्यापकतादिक ईश्वरके धर्मनका असंभव है ॥ औ साक्षी सदाअपरोक्ष है । ताकेविषै परोक्षता ईश्वरधर्मका अत्यंतअसंभव है ॥ औ—

२ मायारहितकूं मायाविशिष्ट कहना असंभव है ॥ जैसैं दंडरहितकूं दंडी कहना औ संस्काररहित द्विजबालककूं संस्कारविशिष्ट कहना असंभव है । यातैं साक्षीचेतनका ईश्वरसैं अभेद कहै तौ महावाक्य असंभवअर्थके प्रतिपादक होवैंगे ॥ औ—

॥ ४४९ ॥ दोनूं पदनमैं लक्षणा औ ओतप्रोतभाव ॥

दोनूं पदनमैं लक्षणा मानैं तौ दोष नहीं । काहेतें ? जो एकताके विरोधी धर्म हैं, तिन्ह सबकूं त्यागिके दोनूं पदनमैं प्रकाशरूप चेतन जो वाच्यभाग, ता सर्वधर्मरहित चेतनमैं दोनूं पदनकी लक्षणा है ॥

उपाधि औ उपाधिकृत धर्मनतैं चेतनका भेद है । स्वरूपसैं नहीं । उपाधि औ उपाधि-कृत धर्मनका त्याग कियेतैं दोनूं पदनके लक्ष्य चेतनकी एकता संभवैहै ॥ जैसैं घटाकाशमैं घटदृष्टि त्यागिके मठविशिष्टआकाशतैं एकता बनै नहीं औ मठदृष्टि त्याग कियेतैं एकता बनैहै ॥

॥ दोहा ॥

तत् त्वं त्वं तत् रीति यह,
सब वाक्यनमैं जानि ॥
जातैं होय परोछता,
परिच्छिन्नता हानि ॥ ४९ ॥

टीकाः—सर्ववाक्यनमैं "तत् त्वं" "त्वं तत्" इसरीतिसैं ओतप्रोतभावकी रीति जानि। जा ओतप्रोतभाव कियेतैं वाक्यके अर्थमैं परोक्ष औ परिच्छिन्नताभ्रांतिकी हानि होवैहै ॥

१ "तत् त्वं" या कहनैतैं तत्पदके अर्थका त्वंपदके अर्थसैं अभेद कह्या। सो त्वंपदका अर्थ साक्षी नित्य अपरोक्ष है। यातैं परोक्षता-भ्रांतिकी हानि। औ—

२ "त्वं तत्" या कहनैतैं त्वंपदके अर्थका तत्पदके अर्थसैं अभेद कह्या। सो तत्पदका अर्थ व्यापक है। यातैं परिच्छिन्नताभ्रांतिकी हानि ॥

१ तैसैं—
(१) "अहं ब्रह्म"।
(२) "प्रज्ञानं ब्रह्म"।
(३) "आत्मा ब्रह्म"
यातैं परिच्छिन्नताहानि ॥
२ औ—

॥ ४७२ ॥ गमन औ आगमनरूप परिचयविना मार्गके सम्यक्ज्ञानके अभावकी न्यांई ओतप्रोत-भावविना सम्यक्अभेदज्ञान होवै नहीं। यातैं महा-वाक्यके उपदेशके अनंतर जिज्ञासुकूं ओतप्रोतभाव कर्त्तव्य है। याहीकूं अन्वय औ व्यतिहार बी कहेहैं ॥

॥ ४७३ ॥ इहां यह प्रश्न हैः—महावाक्य-उपदेशके अनंतर जिज्ञासुकूं ब्रह्म औ आत्मविषै परोक्षता औ परिच्छिन्नताभ्रांति प्रतीत होवैहै, सो कारणविना संभवै नहीं। तहां अन्य तो कोई भ्रांतिका कारण संभवै नहीं। किंतु ब्रह्मविषै स्थित माया औ आत्माविषै स्थित अविद्या, भ्रांतिका कारण संभवै। सो मायाअविद्या, ब्रह्म औ आत्माके आश्रित होयके पूर्व रहीथी। सो जब जिज्ञासुनै "तत्त्वं" पदार्थका शोधन किया तब दोनूं नष्ट होगई ॥

जैसैं घटस्वरूपके विचार कियेहुये घटनिष्ठ अविद्या रहै नहीं, तैसैं ब्रह्म औ आत्माके विचार कियेहुये तिनविषै स्थित मायाअविद्या रहैं नहीं। किंतु तिस अधिकारीकी दृष्टिसैं बाधित होवैहैं औ तृतीयचेतनका अभाव है औ चेतनसैं विना अन्य-जडवस्तुके आश्रित मायाअविद्या रहैं नहीं औ माया-अविद्याकी स्थितिविना उक्त दोप्रकारकी भ्रांति संभवै नहीं औ जिज्ञासुके चित्तमैं प्रतीयमान जे भ्रांति, तिनकी मायाअविद्याविना अन्य गति (कारण) संभवै नहीं। इस अर्थापत्तिप्रमाणसैं मायाअविद्याकी स्थिति-की कल्पना होवैहै। यातैं महावाक्यके उपदेश-अनंतर वे मायाअविद्या कहां स्थित होयके परोक्षता-परिच्छिन्नताभ्रांतिकूं उपजावैहैं? यह प्रश्न है। याका—

यह उत्तर हैः—यद्यपि पदार्थशोधनके अनंतर ज्ञात (विचारित) जे ब्रह्म औ आत्मा, तिनविषै तौ मायाअविद्या संभवैं नहीं, तथापि महावाक्यकी अर्थरूप जो ब्रह्मआत्माकी एकता, सो सम्यक्ज्ञात भई नहीं। किंतु अज्ञात है। तिस एकताविषै माया-अविद्या स्थित होयके परोक्षतारूप औ परिच्छिन्नता-रूप भ्रांतिकूं उपजावैहै। तिस भ्रांतिके निवारणअर्थ ओतप्रोतभाव कर्त्तव्य है। ओतप्रोतभावके किये एकताका सम्यक्ज्ञान होयके मायाअविद्याकी निवृत्ति-द्वारा परोक्षतापरिच्छिन्नतारूप भ्रांतिकी निवृत्ति होवैहै।

(१) " ब्रह्म अहं "।
(२) " ब्रह्म प्रज्ञानं "।
(३) " ब्रह्म आत्मा "।
यातैं परोक्षताहानि ॥

॥ दोहा ॥

जीवब्रह्मकी एकता,
कहत वेद-स्मृति-बैन ॥
सिष्य तहां पहिचानिये,
भागत्यागकी सैन ॥ ५० ॥

टीकाः—हे शिष्य ! जो वेदवैन औ स्मृति-बैन, जीवब्रह्मकी एकता कहै । तहां सारै भागत्यागकी सैन पहिचानिये ।

॥ ४५० ॥ ग्रंथ (३३३ उक्त)की समाप्ति ॥

॥ दोहा ॥

अस सिष गुरु उपदेस सुनि,
भौ ततकाल निहाल ॥
भलै विचारै याहि जो,
ताके नसत जंजाल ॥ ५१ ॥

॥ सोरठा ॥

मिथ्यागुरु सुरबानि,
कियो ग्रंथ उपदेस यह ॥
सुनत करत तमहानि,
यह ताकी भाषा करी ॥ ५२ ॥

॥ दोहा ॥

अग्रधदेवकूं स्वप्नमैं,
यह किय गुरु उपदेस ॥
नस्यो न तहु दुखमूल वह,
मिथ्या बनको वेस ॥ ५३ ॥

वेष कहिये स्वरूप । अन्य अर्थ स्पष्ट ।

॥ ४५१ ॥ प्रश्नः—अर्थसहित ग्रंथ पढा तौ बी मन दुःखका मूल भासताहै ॥

॥ अग्रध उवाच ॥

॥ चौपाई ॥

भगवन यह तुम ग्रंथ पढायो ।
अर्थसहित सो मो हिय आयो ।
बनदुख मूल तऊ मुहिं भासै ।
कहु उपाय जातैं यह नासै ॥ ५४ ॥

(गतप्रश्नका उत्तर ॥ ४५२–४५३ ॥)

॥ ४५२ ॥ वनका नाशक हेतु यही (उक्त) है ॥ अग्रधदेवके स्वप्नकी समाप्ति (नाश) ॥

बोले गुरु सुनि सिषकी बानि ।
सुनि सिष व्है जातैं बन हानी ॥
अस उपाय को और नहीं है ।
बनका नासक हेतु यही है ॥ ५५ ॥
महावाक्यको अर्थ विचारहु ।
"मैं अग्रध" यूं टेरि पुकारहु ॥
सुनि पुनि वाक्य विचारे चेला ।
"अहं अग्रध" यह दीनो हेला ॥ ५६ ॥
निद्रा गई नैन परकासे ।
बन गुरु ग्रंथ सबै वह नासे ॥

भयो सुखी वनदुख विसरायो ।
हुतो अग्रध निजरूप सु पायो ॥५७॥

॥ ४५३ ॥ मिथ्यागुरुवेदतैं अज्ञानजन्य मिथ्याजगत्का परिहार होवैहै ॥

॥ दोहा ॥

अग्रधदेवमैं नींदत,
भौ वनदुख जिहि रीति ॥
आतममैं अज्ञानतैं,
त्यूं जगदुःख प्रतीति ॥ ५८ ॥
ज्यूं मिथ्या गुरु ग्रंथतैं,
मिथ्या वन संहार ॥
त्यूं मिथ्या गुरु वेदतैं,
मिथ्या जग परिहार ॥ ५९ ॥
लच्छ्यअर्थ लखि वाक्यको,
व्है जिज्ञासु निहाल ॥
निरावरन सो आप है,
दादू दीनदयाल ॥ ६० ॥

॥ इति श्रीविचारसागरे गुरुवेदादि-साधनमिथ्यावर्णनं नाम षष्ठस्तरंगः समाप्तः ॥ ६ ॥

॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ सप्तमस्तरंगः ॥ ७ ॥

अथ जीवन्मुक्ति[४७४]-विदेहमुक्ति[४७५]-वर्णनम् ।

॥४५४॥ ज्ञानीके व्यवहारमैं नियम नहीं॥

॥ दोहा ॥

उत्तम मध्य कनिष्ठ तिहु,
सुनि अस गुरुउपदेस ॥
ब्रह्म आत्म उत्तम लख्यो,
रह्यो न संसै लेस ॥ १ ॥

टीकाः—यद्यपि गुरुनै उपदेश तीनूंकूं साथिही किया, तथापि गुरुउपदेशतैं साक्षात्कार उत्तमतत्त्वदृष्टिकूं हुवा ।

॥ दोहा ॥

भ्रमन करत ज्यूं पवनतैं,
सूको पीपरपात ॥
सेषकर्म प्रारब्धतैं,
क्रिया करत दरसात ॥ २ ॥
कबहुक चढि रथ बाजि[४७६] गज,
बाग बगीचे देखि ॥
नग्नपाद पुनि एकले,
फिर आवत तिहिं लेखि ॥ ३ ॥
विविधवेष सज्या सयन,
उत्तमभोजन भोग ॥
कबहुक अनसन गिरिगुहा,
रजनि सिला संयोग ॥ ४ ॥
करि प्रनाम पूजन करत,
कहुँ जन लाख हजार ॥
उभैलोकतैं भ्रष्ट लखि,
कहत कर्मि धिक्कार ॥ ५ ॥
जो ताकी पूजा करत,
संचित सुकृत सु लेत ॥
दोषदृष्टि तिंहि जो लखै,
ताहि पापफल देत ॥ ६ ॥
ऐसै ताके देहको,
बिना नियम व्यवहार ॥
कबहु न भ्रम संदेह व्है,
लह्यो तत्त्वनिर्धार ॥ ७ ॥

॥ ४७४ ॥ जीवन्मुक्तिका लक्षण आगे ४७६ वें अंकविषै कहियेगा ॥

॥ ४७५ ॥ विदेहमुक्तिका लक्षण आगे ४७५ वें अंकविषै कहियेगा ॥

॥ ४७६ ॥ घोडा ॥

नहिं ताकूं कर्त्तव्य कछु,
भयो भेदभ्रम नास ॥
उपज्यो वेदप्रमानतैं,
अद्वय ब्रह्मप्रकास ॥ ८ ॥

(ज्ञानीके व्यवहारमैं नेमका आक्षेप ॥ ४५५-४७३ ॥)

॥ ४५५ ॥ ज्ञानीकूं समाधि औ शरीरनिर्वाहतैं अधिक अप्रवृत्तिके नियमका आक्षेप ॥ ४५५-४५८ ॥

॥ दोहा ॥

ज्ञानीके व्यवहारमैं,
कोऊ कहत है नेम ॥
त्रिपुटि तजे दुख हेतु लखि,
लहै समाधि सप्रेम ॥ ९ ॥
व्है किंचित व्यवहार जो,
भिच्छासन जलपान ॥
भूलै नाहिं समाधिसुख,
व्है त्रिपुटीतैं ग्लान ॥ १० ॥
लहै प्रयत्न समाधिको,
पुनि ज्ञानी इह हेत ॥
जो समाधिसुख तजि भ्रमत,
नर कूकर खर प्रेत ॥ ११ ॥
गौडपादमुनि कारिका,
लिख्यो समाधिप्रकार ॥
ज्ञानी तजी विच्छेप यूं,
लहै सकलसुखसार ॥ १२ ॥
अष्टअंगविन होत नहिं,
सो समाधिसुख मूल ॥
अष्टअंग ते अव सुनो,
जे समाधि अनुकूल ॥ १३ ॥
पांचपांच यमनियम लखि,
आसन वहुतप्रकार ॥
प्रानायाम अनेकविध,
प्रत्याहार विचार ॥ १४ ॥
छठो धारना ध्यान पुनि,
अरु सविकल्पसमाधि ॥
अष्टअंग ये साधिके,
निर्विकल्प आराधि ॥ १५ ॥
सुनि समाधि कर्त्तव्यता,
तत्त्वदृष्टि हसि देत ॥
उत्तर कछु भाखत नहीं,
लखि तिहि बकत सप्रेत ॥ १६ ॥

टीकाः—जैसैं सप्रेत कहिये प्रेतसहित भूतके आवेशवाला बकै तैसैं अन्यथा कहता सुनिके तत्त्वदृष्टि हसैहै ॥

अन्यदोहाका अक्षरअर्थ स्पष्ट है ॥

भाव यह हैः—ज्ञानवान्‌के शरीरव्यवहारका नियम नहीं। काहेतैं? ज्ञानीके व्यवहारमैं अज्ञान औ ताका कार्य भेदभ्रांति तथा भेदभ्रमके कार्य रागद्वेष तौ हैं नहीं। किंतु ज्ञानवान्‌के वी प्रारब्धकर्म शेप रहैहैं, सोई ताके व्यवहारमैं निमित्त हैं॥ सो प्रारब्धकर्म पुरुषभेदसैं नानाप्रकारका होवैहै। यातैं ज्ञानीके प्रारब्धकर्मजन्य व्यवहारका नियम नहीं। यह सिद्धांतपक्ष है॥

कोई ऐसैं कहैहैं:-ज्ञानीके व्यवहारमैं और किसी कर्मका तौ नियम नहीं है, परंतु ज्ञानवान्के निवृत्तिका नियम है । प्रवृत्ति होवै तौ देहस्थितिके हेतु भिक्षा अशन कौपीन आच्छादनमात्र ग्रहणमैं प्रवृत्ति होवैहै । अन्य प्रवृत्ति होवै नहीं । काहेतैं ? ज्ञानकी उत्पत्तिसैं प्रथम जिज्ञासाकालमैं विषयनमैं दोषदृष्टिसैं वैराग्य होवैहै । सो वैराग्य ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर वी दोषदृष्टितैं तथा विषयनमैं मिथ्याबुद्धिसैं होवैहै ॥

१ अपरोक्षरूपतैं मिथ्या जानै पदार्थनमैं सत्यबुद्धि होवै नहीं ॥

२ दोषदृष्टितैं राग होवै नहीं औ प्रवृत्ति रागतैं होवैहै । ज्ञानीके राग संभव नहीं, यातैं प्रवृत्ति होवै नहीं ॥

शरीरनिर्वाहक भोजनादिकनमैं प्रवृत्ति तौ रागतैं विना प्रारब्धकर्मतैं संभवैहै । कर्म तीनि प्रकारके हैं:-१ संचित,२आगामी,औ ३ प्रारब्ध। तिनमैं—

१ भूतशरीरनमैं किये कर्म फलारंभरहित संचित कहियेहैं ॥

२ भविष्यत्कर्म आगामी कहियेहैं ।

३ भूतशरीरनमैं किया वर्त्तमानशरीरका हेतु कर्म प्रारब्ध कहियेहै ।

तिनमैं—

१ संचितकर्मका ज्ञानतैं नाश होवैहै ॥

२ ज्ञानवान्कूं आत्मामैं कर्तृत्वभ्रांति नहीं । यातैं ताकूं आगामीकर्मका संभव नहीं ॥ औ—

३ जिस प्रारब्धकर्मनैं ज्ञानीके शरीरका आरंभ कियाहै, सोई प्रारब्धकर्म शरीरस्थितिके हेतु भिक्षादिकनमैं प्रवृत्ति करवावैहै । प्रारब्धकर्मका भोगविना नाश होवै नहीं और— .

कहूं ऐसा लिख्याहै:-संचितआगामीकर्मकी न्यांई ज्ञानीके प्रारब्धकर्म वी रहै नहीं, यातैं भोजनादिकप्रवृत्ति वी ज्ञानीकूं संभवै नहीं । ताका यह अभिप्राय है:-ज्ञानीकी दृष्टितैं आत्मामैं कर्म औ ताके फलका संबंध नहीं, यातैं आत्मामैं सर्वकर्मका निषेधअभिप्रायतैं प्रारब्धका निषेध कियाहै औ ज्ञानतैं पूर्व किये प्रारब्धका ज्ञानीके शरीरकूं भोग होवै नहीं । इस अभिप्रायतैं प्रारब्धका निषेध नहीं । काहेतैं ?

सूत्रकारनै यह लिख्याहै:-

१ ज्ञानीके संचितकर्मका ज्ञानतैं नाश होवैहै ।

२ आगामीका संबंध होवै नहीं ।

३ प्रारब्धका भोगतैं नाश होवैहै ।

यातैं प्रारब्धके बलतैं शरीरनिर्वाहक क्रिया ज्ञानीकी होवैहै । अधिक नहीं । परंतु—

॥ ४५६ ॥ कर्म नानाप्रकारके हैं । जहां एककर्म नानाशरीरका आरंभक होवै । ऐसैं कर्मतैं रचित प्रथमशरीरमैं जाकूं ज्ञान होवै, तहां ज्ञानवान्कूं अन्यशरीरकी प्राप्ति हुई-चाहिये । काहेतैं ? फलका जानै आरंभ कियाहै, सो प्रारब्ध कहियेहै । ताका भोगविना नाश होवै नहीं ॥ अनेकशरीरका हेतु कर्म एक है, ताने प्रथमशरीर जो उपजाया तामैं ज्ञान हुवा, ता कर्मके फल ज्ञानतैं अनंतर औरशरीर शेष

॥ ४७७ ॥ केवल संन्यासीकूंही ज्ञानका मुख्य अधिकारी माननैहारे शंकरानंदस्वामीआदिक ॥

॥ ४७८ ॥ वर्त्तमानशरीरविषै किया कर्म आगामीकर्म कहियेहैं ॥

॥ ४७९ ॥ अपरोक्षानुभूति औ विवेकचूडामणिआदिक ग्रंथनविषै ॥

रहैहै। यातैं ज्ञानवान्कूं बी अन्यशरीरकी प्राप्ति हुईचाहिये। और—

॥ ४५७ ॥ जो ऐसैं कहै:—प्रारब्धकर्मका फल जितनै शरीर होवैं, उतनै शरीर ज्ञानीकूं बी होवैहैं। प्रारब्धके भोगतैं अधिक होवैं नहीं। यातैं ज्ञान बी सफल होवैहै। सो बनै नहीं। काहेतैं? यह वेदका ढंढोरा है:—"ज्ञानवान्के प्राण अन्यलोकमैं वा इसलोकके अन्यशरीरमैं गमन नहीं करते। किंतु तिसी स्थानमैं अंतःकरण इंद्रियसहित लीन होवैहैं॥" औ प्राणगमनविना अन्यशरीरकी प्राप्ति संभवै नहीं। यातैं ज्ञानवान्कूं प्रारब्धशेषतैं औरशरीर होवैहै। यह कहना तो संभवै नहीं॥ किंतु—

यह समाधान है:—जहां अनेकशरीरनका आरंभक एककर्म होवै, तहां अंतशरीरमैंही ज्ञान होवैहै। पूर्वशरीरमैं ज्ञान होवै नहीं। काहेतैं? अनेकशरीरनका आरंभकप्रारब्धही ज्ञानका प्रतिबंधिक है। जैसैं—

१ विषयनमैं आसक्ति।
२ बुद्धिमंदता।
३ भेदवादिवचनमैं विश्वास।

ये तीनूं ज्ञानके प्रतिबंधक हैं। तैसैं विलक्षणप्रारब्ध बी ज्ञानका प्रतिबंधक है॥ औ—

ज्ञानके प्रतिबंधक होते जहां ज्ञानसाधनश्रवणादिक होवैं, तहां ज्ञान होवै नहीं किंतु प्रतिबंधक दूरि हुयेतैं प्रथमजन्मविषै किये जो श्रवणादिक हैं, तिनतैंही अन्यशरीरमैं ज्ञान होवैहै। जैसैं वामदेवने पूर्वजन्मविषै श्रवणादिक किये, तब प्रारब्धका फल एकशरीर शेष होते ज्ञान नहीं हुवा। किंतु श्रवणादिक करते वर्त्तमानशरीरका पात होयके अन्यशरीरकी प्राप्ति हुयेतैं पूर्वजन्ममैं किये श्रवणादिकनतैं गर्भविषै ज्ञान हुवाहै। यातैं ज्ञानसैं अनंतर अन्यशरीरका संबंध होवै नहीं॥ औ वर्त्तमानशरीरकी चेष्टा प्रारब्धसैं होवैहै॥ तहां जितनी चेष्टा शरीरकी निर्वाहक है सोई होवै। रागजन्य अधिकचेष्टा होवै नहीं। यातैं सर्वप्रवृत्तिरहित ज्ञानी होवैहै॥

॥ ४५८ ॥ इसरीतिसैं निवृत्तिप्रधान ज्ञानीका व्यवहार होवैहै। याकेविषै—

ऐसी शंका है:—मनका स्वभाव अतिचंचल है। निरालंब मनकी स्थिति होवै नहीं। किसी आलंबतैं मनकी स्थिति होवैहै। यातैं मनके किसी आलंबकी प्राप्तिनिमित्त बी ज्ञानवान्की प्रवृत्ति होवैहै॥ ताका—

यह समाधान है:—यद्यपि समाधिहीन पुरुषका मन चंचल होवैहै तथापि समाधितैं मनका विजय होवैहै औ ज्ञानवान् समाधिविषै स्थित होवैहै। यातैं ज्ञानवान्की प्रवृत्ति होवै नहीं॥

॥ ४८० ॥ "न तस्य प्राणा ह्युत्क्रामंते। अत्रैव समवलीयंते (तिस ज्ञानीके प्राण गमन करते नहीं। किंतु इहां मरणके स्थानविषैही लीन होवैहैं)" इत्यादि वेदवाक्यनका नगारा है॥

॥ ४८१ ॥ ज्ञानके त्रिविधप्रतिबंधका निवृत्तिके उपायसहित वर्णन श्रीपंचदशीगत ध्यानदीपविषै लिख्याहै औ तिसका नाममात्रकथन पूर्व पंचमतरंगगत टिप्पणविषै हम करिआयेहैं॥

॥ ४८२ ॥ जन्मांतरका हेतु प्रारब्धशेष॥

॥ ४८३ ॥ इहां "वामदेव" शब्दकरि ऋषभदेवके पुत्र भरतराजाका बी ग्रहण है। भरतका बी तीनजन्मका हेतु प्रारब्धशेष था। तिसकरि साधनसामग्रीके होते बी ज्ञान भया नहीं। पीछे तृतीयजन्मविषै उपदेशतैं विनाही पूर्वकृतविचारसैं ज्ञान भया॥

॥ ४८४ ॥ आश्रयरहित॥

॥ ४८५ ॥ आश्रयतैं॥

॥ ४५९ ॥ समाधिके अष्टअंग ॥ ४५९–४६५ ॥

सो समाधि इन अष्टअंगनतैं होवैहै:– १ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारणा, ७ ध्यान औ ८ सविकल्पसमाधि, इन अष्टअंगनतैं समाधि होवैहै ॥

॥ ४६० ॥ १ अहिंसा, २ सत्य, ३ अस्तेय, ४ ब्रह्मचर्य, औ ५ अपरिग्रह, ये पांच यम कहैहैं ॥

॥ ४६१ ॥ १ शौच, २ संतोष, ३ तप, ४ स्वाध्याय औ ५ ईश्वरप्रणिधान, ये पांच नियम कहियेहैं ॥ औ–

ज्ञानसमुद्रग्रंथमैं दशप्रकारके यम औ दशप्रकारके नियम कहेहैं । सो पुराणकी रीतिसैं कहेहैं । वेदांतसंप्रदायमैं यमनियमके पांचपांचही भेद हैं ॥ और–

॥ ४६२ ॥ आसनके भेद अनंत हैं । तिनमैं:–१ स्वस्तिक, २ गोमुख, ३ वीर, ४ कूर्म; ५ पद्म, ६ कुक्कुट, ७ उत्तान, ८ कूर्मक, ९ धनुष, १० मत्स्य, ११ पश्चिमतान, १२ मयूर, १३ सब, १४ सिंह, १५ भद्र, औ १६ सिद्ध । इत्यादिक चौऱ्यासीआसन योगग्रंथनमैं लिखेहैं । तिनके लक्षण वी तहां लिखेहैं । ग्रंथके विस्तारभयतैं तथा वेदांतमैं अत्यंतउपयोगी नहीं, यातैं लक्षण लिखे नहीं ॥ तिनमैं वी १ सिंह, २ भद्र, ३ पद्म,औ ४ सिद्ध, ये चारिआसन प्रधान हैं ॥ तिन चारिमैं बी–

सिद्धआसन अत्यंतप्रधान है । ताका यह लक्षण है:–वामपादकी एडी गुदा मेंढ्रके मध्य सीवनमैं दाबिके धरै । दक्षिणपादकी एडी मेढ्रके ऊपरि दाबिके धरै । भृकुटीके अंतर दृष्टि राखै । स्थाणुकी न्यांई सरलनिश्चलशरीरतैं स्थितिकूं सिद्धासन कहैहैं ॥ और–

कोई ऐसै कहैहैं:–वामपादकी एडी सीवनमैं नहीं लगावै । किंतु मेंढ्रके ऊपरि लगावै। ताके ऊपरि दक्षिणएडी धरै ॥ औ पूर्वकी न्यांई यह सिद्धासनही अतिप्रधान है । काहेतैं ? कितनै आसन तौ रोगनाशके हेतुहैं । और कोई आसन ऐसैं हैं, प्राणायामादिक समाधिके अंग जिनतैं होवैहैं, औ सिद्धासन समाधिकालमैं होवैहै । यातैं अतिप्रधान है ॥ याहीकूं **वज्रासन, मुक्तासन, और गुप्तासन** कहैहैं ॥

॥ ४६३ ॥ आसनसिद्धिसैं अनंतर प्राणायाम बी करै । सो प्राणायाम बहुतप्रकारका है । तथापि संक्षेपतैं यह लक्षण है:–

१ नासाके वामछिद्रद्वारा इडा नाम नाडीतैं वायुकूं पूरण करै, ताकूं पूरक कहैहैं ।
२ दक्षिणतैं त्यागै, ताकूं रेचक कहैहैं ।
३ सुषुम्णातैं रोकै, ताकूं कुंभक कहैहैं ।

इसरीतिसैं पूरक रेचक कुंभककूं प्राणायाम कहैहैं । सो दोप्रकारका है:– १ एक अगर्भ है तैसैं २ दूसरा सगर्भ है ॥

१ प्रणवके उच्चारणरहित प्राणायाम अगर्भ कहियेहै ॥
२ प्रणवके उच्चारणसहित प्राणायाम सगर्भ कहियेहै ॥

॥ ४६४ ॥ १ विषयनतैं सकलइंद्रियनके निरोधकूं प्रत्याहार कहैहैं ।

२ अंतरायसहित अंतःकरणकी स्थिति धारणा कहियेहैं ॥

॥ ४८६ ॥ खंभेकी न्यांई ॥

॥ ४८७ ॥ सारे हठयोगका प्राणायाममैं अंतरभाव है । यातैं तिस प्राणायामकी रीति "हठप्रदीपिकाआदिक" ग्रंथनमैं स्पष्ट लिखीहै ॥

३ अंतरायरहित अद्वितीयवस्तुविषै अंतः-करणका प्रवाह, ध्यान कहियेहै ॥

॥ ४६५ ॥ व्युत्थानसंस्कारनका तिरस्कार औ निरोधसंस्कारनकी प्रगटता हुया अंतःकरण-का एकाग्रतारूप परिणाम, समाधि कहिये-है। सो समाधि दोप्रकारकी हैः– १ एक सविकल्पसमाधि है। औ २ दूसरी निर्विकल्प-समाधि है ॥

१ ज्ञाता–ज्ञान–ज्ञेयरूप त्रिपुटीभानसहित अद्वितीयब्रह्मविषै अंतःकरणकी वृत्तिकी स्थिति सविकल्पसमाधि कहियेहै। सो सविकल्प-समाधि दोप्रकारकी हैः–(१) एक तौ शब्दानु-विद्ध है औ (२) दूसरी शब्दाननुविद्ध है ॥

(१) "अहं ब्रह्मास्मि" इस शब्दकरिके अनुविद्ध कहिये सहित होवै, सो शब्दानुविद्ध कहियेहै ॥

(२) शब्दरहितकूं शब्दाननुविद्ध कहैहैं ॥

२ त्रिपुटीभानरहित अखंडब्रह्माकार अंतः-करणवृत्तिकी स्थिति, निर्विकल्पसमाधि कहियेहैं ॥

इसरीतिसैं सविकल्प औ निर्विकल्पसमाधिके दो भेद हैं। तिनमैं—

(१) सविकल्पसमाधि साधन है। औ—

(२) निर्विकल्पसमाधि फल है।

१ साधनरूप जो सविकल्पसमाधि है, ताकेविषै यद्यपि त्रिपुटीरूप द्वैत प्रतीत होवैहै, तथापि सो द्वैत इसरीतिसैं ब्रह्मरूप करिके प्रतीत होवैहैः– जैसैं मृत्तिकाविकारनकूं मृत्तिकारूप जानैतैं विवेकीकूं मृत्तिकाके विकार घटादिक प्रतीत बी होवैहैं, परंतु मृत्तिकारूपही प्रतीत होवैहैं, तैसैं सविकल्पसमाधिमैं त्रिपुटी-द्वैत ब्रह्मरूपही प्रतीत होवैहै।

२ निर्विकल्पसमाधिविषै बी सविकल्प-समाधिकी न्यांई त्रिपुटीरूप द्वैत विद्यमान बी होवैहै, तौ बी त्रिपुटीद्वैतकी प्रतीति होवै नहीं। जैसैं जलमैं लवणकूं गेरैं, तहां लवण विद्यमान होवैहै, परंतु नेत्रसैं लवणकी सर्वथा प्रतीति होवै नहीं ॥

इसरीतिसैं सविकल्पनिर्विकल्पसमाधिका यह भेद सिद्ध हुवाः—

१ सविकल्पसमाधिमैं ब्रह्मरूपकरिके द्वैतकी प्रतीति होवैहै। औ—

२ निर्विकल्पसमाधिमैं त्रिपुटीरूप द्वैतकी अप्रतीति होवैहै ॥

॥४६६॥ सुषुप्तिसैं निर्विकल्पसमाधि-का भेद ॥

तैसैं सुषुप्तिसैं निर्विकल्पका यह भेद हैः–

१ सुषुप्तिमैं अंतःकरणकी ब्रह्माकारवृत्तिका अभाव होवैहै। औ—

२ निर्विकल्पसमाधिमैं ब्रह्माकारवृत्ति तौ अंतःकरणकी होवैहै, ताका भान होवै नहीं ॥

इसरीतिसैं—

१ सुषुप्तिमैं तौ वृत्तिसहित अंतःकरणका अभाव होवैहै। औ—

२ निर्विकल्पसमाधिमैं वृत्तिसहित अंतःकरण तौ होवैहै, ताकी प्रतीति होवै नहीं ॥

निर्विकल्पसमाधिविषै अंतःकरणकी जो ब्रह्माकारवृत्ति होवैहै, ताका हेतु सविकल्प-समाधिका अभ्यास है। यातैं साधनरूप अष्ट-अंगनमैं सविकल्पसमाधि गिनीहै। निर्विकल्प-समाधि फल है ॥

॥ ४८८ ॥ समाधिविषै जो अंतःकरणका अभाव होवै तौ योगीका देह निद्रालुकी न्यांई गिर्या चाहिये औ गिरता नहीं। यातैं समाधिविषै अंतःकरण होवैहै, यह जानियेहै ॥

॥४६७॥ निर्विकल्पसमाधि दोप्रकारकी ॥

सो निर्विकल्पसमाधि बी दोप्रकारकी होवैहै:—१ एक अद्वैतभावनारूप औ २ दूसरी अद्वैतावस्थानरूप होवैहै ।

१ अद्वैतब्रह्माकार अंतःकरणकी अज्ञातवृत्तिसहित होवै, सो अद्वैतभावनारूप निर्विकल्पसमाधि कहियेहै ॥

२ या समाधिमैं अभ्यास अधिक हुयेतैं ब्रह्माकारवृत्ति बी शांत होय जावैहै । यातैं वृत्तिरहितकूं अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्पसमाधि कहैहैं ॥

जैसैं तप्तलोहके ऊपरि जलकी बूंद गेरी तप्तलोहमैं प्रवेश करैहै, तैसैं अद्वैतभावनारूप समाधिके दृढअभ्यासतैं अत्यंतप्रकाशमान ब्रह्मविषै वृत्तिका लय होवैहै । सो[४८९] अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्पसमाधि फल है औ अद्वैतभावनारूप निर्विकल्पसमाधि ताका साधन है ॥

॥ ४६८ ॥ अद्वैतावस्थानरूप समाधिसैं सुषुप्तिका भेद ॥

अद्वैतावस्थानरूप समाधि औ सुषुप्तिका इतना भेद है:—

१ सुषुप्तिमैं वृत्तिका लय अज्ञानमैं होवैहै ।

२ अद्वैतावस्थानसमाधिमैं वृत्तिका लय[४९१] ब्रह्मप्रकाशमैं होवैहै ॥ औ—

१ सुषुप्तिका आनंद अज्ञानआवृत है । औ—

२ समाधिमैं निरावरणब्रह्मानंदका भान होवैहै ॥ परंतु—

॥ ४६९ ॥ निर्विकल्पसमाधिके लय, विक्षेप, कषाय; औ रसास्वाद, ये चारिविघ्न ॥ ४६९–४७२ ॥

निर्विकल्पसमाधिमैं चारिविघ्न होवैहैं, सो निषेध करनैकूं कहियेहैं:—१ लय, २ विक्षेप, ३ कषाय, औ ४ रसास्वाद ।

१ आलस्यकरिके अथवा निद्राकरिके वृत्तिके अभावकूं लय कहैहैं । ता लयतैं सुषुप्तिसमान अवस्था होवैहै । ब्रह्मानंदका भान होवै नहीं । यातैं निद्राआलस्यादिक निमित्ततैं जब वृत्तिका अपनै उपादान अंतःकरणमैं लय होतादिखै तब योगी सावधान होयके निद्रादिकनकूं रोकिके वृत्तिकूं जगावै । इसरीतिसैं लयरूप विघ्नका विरोधी जो निद्राआलस्यविरोधसहित वृत्तिका प्रवाहरूप जागरण, ताकूं गौडपादाचार्य चित्तसंबोधन[४९२] कहैहैं ॥

॥ ४८९ ॥ यातैं सो अद्वैतभावनारूप समाधि ॥

॥ ४९० ॥ यह अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्पसमाधिही ज्ञानकी सप्तमभूमिकारूप **योगका परम-अवधि** है ॥

॥ ४९१ ॥ इहां यह रहस्य है:—**यद्यपि** उक्तसमाधिविषै निःशेषरजतमके तिरोधानतैं आविर्भावकूं प्राप्त भये शुद्धसत्वगुणरूप उपादानविषैही वृत्तिका लय संभवैहै । निर्विकारब्रह्मप्रकाशविषै नहीं । तप्तलोहविषै जलबिंदुके लयका दृष्टांत कह्या । तहां बी विचारदृष्टिसैं पार्थिवलोहविषै जलबिंदुका लय नहीं । किंतु जलका उपादान जो अग्निमात्र ताकेविषै जलबिंदुका लय होवैहै । ताका तप्तलोहविषै उपचार (कथन) होवैहै । **तथापि** ब्रह्मप्रकाशके भानरूप निमित्तकरि वृत्तिका लय हुवाहै । यातैं उपचारतैं ब्रह्मप्रकाशविषै लय कहियेहै ।

किंवा तिस समाधिमान् ब्रह्मविद्वरिष्ठकी दृष्टिसैं गुणादिक प्रतीत होवैं नहीं । किंतु शुद्धब्रह्म प्रतीत होवैहै । तहां तिस (ब्रह्मविवर्त) वृत्ति (दृष्टि)का अभाव भया । यातैं बी ब्रह्मप्रकाशविषै वृत्तिका लय कहियेहै ॥

॥ ४९२ ॥ यह अर्थ गौडपादाचार्यकृत मांडूक्यउपनिषद्की कारिकाविषै लिख्याहै । तिसकी वेदांतदीपिकानाम भाषाटीकाविषै हमनै बी लिख्याहै ॥

॥ ४७० ॥ २ विक्षेपका यह अर्थ हैः—जैसैं बाज वा बिल्लीतैं डरिके चटिका गृहमैं प्रवेश करै, तब भयव्याकुलकूं गृहके अंतर तत्काल स्थान दिखै नहीं, यातैं फेरि बाहरि आयके भय अथवा मरणरूप खेदकूं प्राप्त होवैहै, तैसैं अनात्मपदार्थनकूं दुःखहेतु जानिके अद्वैतानंदकूं विषय करनैवास्ते अंतर्मुख हुई जो वृत्ति, तहां वृत्तिका विषय चेतन अतिसूक्ष्म है। यातैं किंचित् काल वृत्तिकी स्थितिविना तत्कालही चेतनस्वरूप आनंदका लाभ नहीं होवैहै। तातैं वृत्ति बहिर्मुख होवैहै। इसरीतिसैं बहिर्मुखवृत्ति विक्षेप कहियेहै ॥ सो वृत्तिकी स्थिरताविना स्वरूपआनंदका अलाभ होवैहै। यातैं अंतर्मुखवृत्ति हुयेतैं बी जितनैकाल वृत्ति ब्रह्माकार होवै नहीं उतनैकाल बाह्यपदार्थनमैं दोषभावनातैं वृत्तिकूं बहिर्मुखता योगी होनै देवै नहीं। किंतु वृत्तिकी अंतर्मुखताही स्थापन करै ॥

विक्षेपरूप विघ्नका विरोधी जो योगीका प्रयत्न, ताकूं गौडपादाचार्यनै सम कह्याहै ॥

॥ ४७१ ॥ ३ रागादिक दोषनकूं कषाय कहैहैं। यद्यपि रागादिक दोप्रकारके हैंः—(१) एक बाह्य हैं औ (२) दूसरे आंतर हैं ॥

(१) पुत्रस्त्रीधनआदिक जिनके विषय वर्त्तमान होवैं सो बाह्य कहियेहैं ॥

(२) भूतका वा भावीका चिंतनरूप जो मनोराज्य सो आंतर कहियेहैं ॥

सो दोनूंप्रकारके रागादिक समाधिमैं प्रवृत्त योगीविषै संभवै नहीं। काहेतैं? चित्तकी पांच भूमिका हैंः—तिनमैं (१) एक क्षेप नाम भूमिका है। (२) दूजी मूढता। (३) तीजी विक्षेप। (४) चोथी एकाग्रता। औ (५) पांचमी निरोधभूमिका है ॥

(१) लोक[४९३]वासना, देह[४९४]वासना शास्त्र[४९५]वासना इसतैं आदिलेके रजोगुणका परिणाम जो दृढअनात्मवासना, ताकूं क्षेप कहैहैं।

(२) निद्राआलस्यादिक तमोगुणपरिणामकूं मूढता कहैहैं।

(३) ध्यानमैं प्रवृत्तचित्तकी कदाचित् बाह्यप्रवृत्तिकूं विक्षेप कहैहैं।

(४) अंतःकरणका अतीतपरिणाम औ वर्त्तमान परिणाम समानाकार होवै, ताकूं एकाग्रता कहैहैं ॥

यह एकाग्रताका लक्षण योगसूत्रमैं पतंजलिनै कह्याहै। ताका भाव यह हैः—समाधिकालमैं योगीके अंतःकरणमैं एकाग्रता होवैहै। सो एकाग्रता वृत्तिका अभावरूप नहीं। किंतु जितनै अंतःकरणके परिणाम समाधिकालमैं होवैहैं, सो सारै ब्रह्मकूंही विषय करैहैं। यातैं अंतःकरणके अतीतपरिणाम औ वर्तमानपरिणाम केवल ब्रह्माकार होनैतैं समानाकार होवैहैं।

(५) ता एकाग्रताकी वृद्धिकूं निरोध कहैहैं॥
ये पांचभूमिका अंतःकरणकी हैं।
भूमिका नाम अवस्थाका है ॥
ये पांचभूमिकासहित अंतःकरणके ये क्रमतैं

॥ ४९३ ॥ "कोई लोक मेरी निंदा मति करो, किंतु सर्व स्तुतिहीकूं करो" इस आग्रहका दृढसंस्कार लोकवासना है ॥

॥ ४९४ ॥ "स्थूल किंवा सूक्ष्मदेहके रोगादिरूप किंवा पापरूप मलका औषधआदिककरि किंवा तीर्थादनकरि निःशेष निवारण करूंगा औ तिसविषै शोभापुष्टिआदिरूप किंवा पुन्यरूप गुणका संपादन करूंगा" इस आग्रहका दृढसंस्कार देहवासना है ॥

॥ ४९५ ॥ "सर्वशास्त्रनके पाठकूं किंवा अर्थकूं किंवा तिस तिस शास्त्रउक्त आचरणकूं मैं धारण करूंगा" इस आग्रहका दृढसंस्कार शास्त्रवासना है।

नाम हैं:–(१) क्षिप्त, (२) मूढ, (३) विक्षिप्त, (४) एकाग्र औ (५) निरुद्ध । तिनमैं—

(१-२) क्षिप्त औ मूढअंतःकरणका तौ समाधिविषै अधिकार नहीं ।

(३) विक्षिप्तअंतःकरणकूं अधिकार है ॥

(४-५) एकाग्र औ निरुद्धअंतःकरण समाधिकालमैं होवैहै ।

यह योगग्रंथनमैं कह्याहै ।

रागादिकदोषसहित अंतःकरण क्षिप्तही है । ता क्षिप्तअंतःकरणका योगमैं अधिकार नहीं । यातैं रागादिक दोषरूप कषाय समाधिके विघ्न हैं । यह कहना संभवै नहीं ।

तथापि यह समाधान है:– बाह्य अथवा अंतर जो रागादिक हैं, सो तौ क्षिप्तअंतःकरणमैंही होवैहैं । ताका अधिकार वी नहीं । तौ वी अनेकजन्मविषै पूर्व अनुभव किये जो बाह्यअंतररागद्वेष, तिनके सूक्ष्मसंस्कार विक्षिप्तादिकअंतःकरणमैं वी संभवैहैं, यातैं रागद्वेषका नाम कषाय नहीं । किंतु रागद्वेषादिकनके संस्कार कषाय कहियेहैं । सो संस्कार अंतःकरण रहै जितनैं दूरि होवै नहीं । यातैं समाधिकालमैं वी अंतःकरणमैं रहैहैं, परंतु रागद्वेषादिकनके उद्भूतसंस्कार समाधिके विरोधी हैं । अनुद्भूत विरोधी नहीं ॥

प्रगटकूं उद्भूत कहैहैं ।

अप्रगटकूं अनुद्भूत कहैहैं ॥

समाधिमैं प्रवृत्त योगीकूं जो रागद्वेषके संस्कारनकी प्रगटता होवै तौ विषयनमैं दोषदर्शनतैं दाविदेवै ।

विक्षेपकषायका यह भेद है:–

(१) बाह्यविषयाकारवृत्तिकूं विक्षेप कहैहैं ॥ औ—

(२) योगीके प्रयत्नतैं जहां वृत्ति अंतर्मुख तौ होवै, परंतु रागादिकनके उद्भूतसंस्कारनतैं अंतर्मुख हुई वृत्ति वी रुकिजावै, ब्रह्मकूं विषयमैं करै नहीं, ताकूं कषाय कहैहैं । विषयमैं दोषदर्शनसहित योगीके प्रयत्नतैं कषायविघ्नकी निवृत्ति होवैहै ॥

॥ ४९६ ॥ जा पुरुषकूं राजाके पास जानैका अधिकार होवै, ताकूं तौ ड्योढीदारनै विघ्न किया ऐसा कथन संभवै औ जाकूं तहां जानैका अधिकार ही नहीं, ताकूं ड्योढीदारनै विघ्न किया ऐसा कहना संभवै नहीं । तैसैं क्षिप्तअंतःकरणका जो समाधिमैं अधिकार होवै तौ तिसकूं रागादिदोषरूप कषाय समाधिके विघ्न होवैं । जातैं ता क्षिप्तअंतःकरणका समाधिमैं अधिकार नहीं, यातैं ताकूं रागादिदोषरूप कषाय समाधिके विघ्न हैं, यह कहना संभवै नहीं ॥

॥ ४९७ ॥ इहां यह प्रक्रिया है:—१ उद्युक्त, २ आशारूप, औ ३ वासनारूप भेदतैं रागादिक तीनभांतिके हैं ॥

१ बाह्यप्रवृत्तिके हेतु जे रागादिक वे **उद्युक्तराग** कहियेहैं । ताहीकूं **बाह्यराग** वी कहैहै । औ—

२ मनोराज्यरूप जे रागादिक वे **आशारूप राग** कहियेहैं । तिनहीकूं **आंतरराग** बी कहैहैं । औ—

३ जन्मांतरविषै पूर्वअनुभव किये जे रागादिक, तिनके जे संस्कार, वे **वासनारूप** रागादिक कहियेहैं । तिनमैं वासनारूप रागादिक उद्भूत औ अनुद्भूतभेदतैं दोभांतिके हैं ।

यह अर्थ **जीवन्मुक्तिविवेक**नाम ग्रंथविषै विद्यारण्यस्वामीनै लिख्याहै ॥

॥ ४९८ ॥ यामैं यह दृष्टांत है:—**जैसैं** राजाके मिलनैअर्थ गृहतैं निकस्या जो कोई धनिक, ताकूं राजद्वारमैं जाग्रत् होयके स्थित जो द्वारपाल सो रोक देवै, **तैसैं** सर्वविषयोंतैं उपराम होयके निर्विकल्पसमाधिके आनंदअर्थ अंतर्मुख भया जो योगीका मन, ताकूं बीचमैं (समाधिआनंदलाभतैं पूर्व) उद्भूतरागादिकका संस्काररूप कषाय रोक देवैहै । यातैं सो समाधिका विघ्न है ॥

॥ ४७२ ॥ ४ रसास्वादका यह अर्थ हैः— योगीकूं ब्रह्मानंदका अनुभव होवैहै औ विक्षेपरूप दुःखकी निवृत्तिका अनुभव होवैहै। कहूं दुःखकी निवृत्तिसैं बी आनंद होवैहै ॥

जैसैं भारवाहीपुरुषका भार उतरसैं ताकूं आनंद होवै, तहां आनंदमैं और तौ कोई विषय हेतु है नहीं। किंतु भारजन्यदुःखकी निवृत्तिसैं यह कहैहैः—"मेरेकूं आनंद हुवाहै" यातैं दुःखकी निवृत्ति बी आनंदका हेतु है ॥ तैसैं योगीकूं समाधिमैं विक्षेपजन्य दुःखकी निवृत्तिसैं जो आनंद होवै ताका अनुभव रसास्वाद कहियेहै ॥

जो दुःखनिवृत्तिजन्य आनंदके अनुभवसैंही योगी अलंबुद्धि करि लेवै तौ सकलउपाधिरहित ब्रह्मानंदाकार वृत्तिके अभावतैं ताका अनुभव समाधिमैं होवै नहीं। यातैं दुःखनिवृत्तिजन्य आनंदका अनुभवरूप रसास्वाद बी समाधिमैं विघ्न है ॥

वांछितकी प्राप्तिविना बी विरोधीकी निवृत्तिसैं आनंदकी उत्पत्तिमैं अन्यदृष्टांतः— जैसैं पृथिवीमैं निधि होवै सो निधि अत्यंतविषधरसर्पतैं रक्षित होवै। तहां निधिप्राप्तिसैं प्रथम बी निधिप्राप्तिका विरोधी जो सर्प है, ताकी निवृत्तिसैं आनंद होवैहै। तहां सर्पनिवृत्तिके आनंदमैं जो अलंबुद्धि करै तौ उद्यम त्यागनैतैं निधिप्राप्तिका परमानंद प्राप्त होवै नहीं। तैसैं अद्वैतब्रह्मरूप निधि है। देहादिक अनात्मपदार्थनकी प्रतीतिरूप जो विक्षेप सो सर्प है। विक्षेपरूप सर्पकी निवृत्तिजन्य जो अवांतरआनंदरूपी रसका अनुभवरूप आस्वादन है, सो निधिरूपी अद्वैतब्रह्मकी प्राप्तिजन्य जो महाआनंद है, ताकी प्राप्तिका प्रतिबंधक होनैतैं विघ्न कहियेहै।

अथवा रसास्वादका यह और अर्थ हैः— सविकल्पसमाधिसैं उत्तर निर्विकल्पसमाधि होवैहै औ सविकल्पसमाधिमैं त्रिपुटी प्रतीत होवैहै, यातैं सविकल्पसमाधिका आनंद त्रिपुटीरूप उपाधिसहित होनैतैं सोपाधिक कहियेहै औ निर्विकल्पसमाधिमैं त्रिपुटी प्रतीत होवै नहीं। यातैं निरुपाधिक आनंद निर्विकल्पसमाधिमैं होवैहै ॥ इसरीतिसैं सविकल्पसमाधिसैं उत्तर निर्विकल्पसमाधिके आरंभमैं बी सविकल्पसमाधिके सोपाधिकआनंदकूं त्यागि सकै नहीं। किंतु ताहीकूं अनुभव करै, सो रसास्वाद कहियेहै। यातैं विक्षेपनिवृत्तिजन्य आनंदका अनुभव अथवा सविकल्पसमाधिके आनंदका अनुभव रसास्वाद कहियेहै ॥ सो दोनूं प्रकारका रसास्वाद निर्विकल्पसमाधिके परमानंदके अनुभवका विरोधी होनैतैं विघ्न है। यातैं ताकूं बी त्यागै ॥

ऐसैं निर्विकल्पसमाधिमैं चारिविघ्न होवैहैं, सो चारिविघ्न समाधिके आरंभमैं होवैहैं। यातैं—

॥ ४७३ ॥ ज्ञानवान्की बाह्यप्रवृत्तिके असंभवके आक्षेपकी समाप्ति ॥

सावधानतासैं चारिविघ्नकूं रोकिके समाधिमैं परमानंदकूं विद्वान् अनुभव करैहै। ताहीकूं जीवन्मुक्त कहैहैं ॥

इसरीतिसैं ज्ञानीका चित्त निरालंब नहीं होवैहै ॥

जब प्रारब्धबलतैं समाधिसैं उत्थान होवै, तब बी समाधिमैं जो परमानंदका अनुभव कियाहै, ताकी स्मृति होवैहै। यातैं उत्थानकालमैं बी ज्ञानीका चित्त निरालंब नहीं। औ—

ज्ञानवान्की जो भोजनादिकनमैं प्रवृत्ति होवैहै, सो केवल प्रारब्धसैं होवैहै। परंतु भोजनादिक व्यवहारमैं ज्ञानी खेद मानिके

प्रवृत्त होवैहै। काहेतैं? भोजनादिकनमैं प्रवृत्ति बी समाधिसुखकी विरोधी है। जाकूं भोजनादिक शरीरनिर्वाहकी प्रवृत्तिही खेदरूप प्रतीत होवै, ताकी अधिकप्रवृत्ति संभवै नहीं।

इसरीतिसैं बहुतआचार्योंनै यही पक्ष लिख्याहै। औ जीवन्मुक्तिका आनंद बी बाह्यप्रवृत्तिमैं होवै नहीं। किंतु निवृत्तिमैं होवैहै। यातैं जीवन्मुक्तिके सुखार्थी ज्ञानवान्‌की बाह्यप्रवृत्ति संभवै नहीं॥

(॥ अंक ४५५–४७३ गत आक्षेपका समाधान ॥ ४७४–४७८ ॥)

॥ ४७४ ॥ ज्ञानी निरंकुश है। प्रारब्धसैं व्यवहारसिद्धि ॥

तथापि ज्ञानवान्‌के निवृत्तिका बी नियम कहना संभवै नहीं। काहेतैं? निवृत्तिमैं अथवा प्रवृत्तिमैं वेदकी आज्ञारूप विधि तौ ज्ञानीकूं है नहीं, जातैं ज्ञानीके व्यवहारमैं नियम होवै। यातैं ज्ञानी निरंकुश है। ताका व्यवहार प्रारब्धसैं होवैहै॥

१ जिस ज्ञानीका प्रारब्ध भिक्षाभोजनमात्रफलका हेतु है, ताकी भिक्षाभोजनमात्रमैं प्रवृत्ति होवैहै।

२ जाका प्रारब्ध अधिकभोगका हेतु होवै ताकी अधिकमैं बी प्रवृत्ति होवैहै। और—

जो ऐसैं कहैः—जाका प्रारब्ध भिक्षाभोजनमात्रका हेतु होवै, ताहीकूं ज्ञान होवैहै। अधिकव्यवहारका हेतु जाका प्रारब्ध होवै, ताकूं ज्ञान होवै नहीं। यातैं भिक्षाभोजनादिक व्यवहारतैं अधिकव्यवहार ज्ञानीका होवै नहीं। जाकी अधिकप्रवृत्ति होवै, सो ज्ञानी नहीं॥

सो शंका बनै नहीं। काहेतैं? याज्ञवल्क्यजनकादिक ज्ञानी कहेहैं। सभाविजयतैं धनसंग्रहव्यवहार याज्ञवल्क्यका तथा राज्यपालनव्यवहार जनकका कह्याहै औ वासिष्ठग्रंथमैं अनेक ज्ञानी पुरुषनके व्यवहार नानाप्रकारके कहेहैं। यातैं ज्ञानीके प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिका नियम नहीं।

यद्यपि याज्ञवल्क्यनै सभाविजयतैं उत्तर विद्वत्संन्यासरूप निवृत्तिही धारीहै औ प्रवृत्तिमैं ग्लानिके हेतु नानादोष कहेहैं, तथापि 'याज्ञवल्क्यकूं विद्वत्संन्यासतैं पूर्व ज्ञान नहीं था' यह कहना तौ संभवै नहीं किंतु ज्ञान तौ प्रथम बी था। परंतु विद्वत्संन्यासतैं पूर्व जीवन्मुक्तिका आनंद प्राप्त हुवा नहीं। यातैं जीवन्मुक्तिके आनंदवासतैं सर्वसंग्रहका त्याग कियाहै॥ याज्ञवल्क्यका प्रारब्ध कुछकाल अधिकभोगका हेतु था औ उत्तरकाल न्यूनभोगका हेतु था। यातैं प्रथम तौ याज्ञवल्क्यकूं ग्लानिविना अधिकभोग औ आगे ग्लानितैं सर्वभोगनका त्याग हुवाहै॥ औ—

१ जनकका प्रारब्ध मरणपर्यंत राज्यपालनादिकसमृद्धिभोगका हेतु हुवाहै। यातैं सदा त्यागका अभावही हुवाहै। भोगनमैं ग्लानि बी हुई नहीं॥ औ—

२ वामदेवादिकनका प्रारब्ध न्यूनभोगका हेतु हुवाहै। तिनकूं सदा भोगनमैं ग्लानितैं प्रवृत्तिका अभावही कह्याहै। औ

३ वासिष्ठमैं ऐसा बी प्रसंग हैः—शिखरध्वजकी ज्ञानतैं अनंतर अधिकप्रवृत्ति हुईहै॥

इसरीतिसैं नानाप्रकारके विलक्षणव्यवहार

॥ ४९९ ॥ अब इहांसैं ग्रंथकार पूर्वउक्त ज्ञानवान्‌के निवृत्तिके नियमविषै शंकाका समाधान कहैहैं॥

ज्ञानी पुरुषनके कहेहैं, तिन सर्वकूं ज्ञान समान है औ ताका फल मोक्ष बी समान है औ प्रारब्धभेदसैं व्यवहारका भेद है । व्यवहारकी न्यूनतासैं जीवन्मुक्तिके सुखकी अधिकता औ व्यवहारकी अधिकतासैं जीवन्मुक्तिके सुखकी न्यूनता होवैहै । याके विषे:—

॥ ४७५॥ ज्ञानीकूं विदेहमोक्षत्याग वा परलोककी इच्छा होवै नहीं ॥

कोई यह शंका करैहै:—जो जीवन्मुक्तिके सुखकूं त्यागिके तुच्छभोगनमैं प्रवृत्त होवै, सो विदेहमोक्षकूं बी त्यागिके वैकुंठादिक लोककी इच्छा धारिके जावैगा ।

सो शंका बनै नहीं। काहेतैं ?

१ जीवन्मुक्तिके सुखका त्याग औ भोगनमैं प्रवृत्ति तौ ज्ञानीकी प्रारब्धबलतैं संभवैहै । औ—

२ विदेहमोक्षका त्याग औ परलोककूं गमन संभवै नहीं। काहेतैं ?

(१) ज्ञानीके प्राण बाहरि गमन करैं नहीं । यातैं परलोककूं गमन संभवै नहीं । औ—

(२) विदेहमोक्षका त्याग बी संभवै नहीं । काहेतैं ? ज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति होयके प्रारब्धभोगतैं अनंतर स्थूलसूक्ष्मशरीराकार अज्ञानका चेतनमैं लय विदेहमोक्ष कहियेहै । सो अवश्य होवैहै । जो मूलअज्ञान बाकी रहै अथवा नष्टअज्ञानकी फेरि उत्पत्ति होवै तौ विदेहमोक्षका अभाव होवै । सो मूलअज्ञानका विरोधी ज्ञान हुयेतैं अज्ञान बाकी रहै नहीं औ प्रमाणतैं नाश हुये अज्ञानकी फेरि उत्पत्ति होवै नहीं । यातैं विदेहमोक्षका अभाव होवै नहीं । औ—

३ विदेहमोक्षके त्यागमैं तथा परलोकके गमनमैं ज्ञानीकी इच्छा बी संभवै नहीं । काहेतैं ?

(१) ज्ञानीकूं इच्छा केवल प्रारब्धसैं होवैहै । जितनी सामग्रीविना प्रारब्धका भोग संभवै नहीं, उतनी सामग्रीकूं प्रारब्ध रचैहै । इच्छा-

॥ ५०० ॥ इहां यह सांप्रदायिक श्लोक है:—

कृष्णो भोगी शुकस्त्यागी राजानौ जनकराघवौ ।
वसिष्ठः कर्मकर्त्ता च त एते ज्ञानिनः समाः ॥ १ ॥

अस्यार्थः—

१ कृष्ण भोगी है ।
२ शुकदेव त्यागी भयाहै ।
३ जनक अरु रामचंद्र राजा भयेहैं । औ—
४ वसिष्ठमुनि कर्मका कर्त्ता भयाहै ॥

इसरितिसैं इनका प्रारब्धभेदतैं विलक्षणव्यवहार भयाहै । तथापि वे औ ये (आधुनिक) ज्ञानी समान हैं ॥ १ ॥

उक्तअर्थके प्रतिपादक ये चित्रदीपके बी श्लोक हैं:-

आरब्धकर्मनानात्वाद्बुधानामन्यथान्यथा ।
वर्त्तनं तेन शास्त्रार्थे भ्रमितव्यं न पंडितैः ॥ २॥
स्वस्वकर्मानुसारेण वर्त्ततां ते यथातथा ।
अविशिष्टः सर्वबोधः समा मुक्तिरिति स्थितिः॥३॥

प्रारब्धकर्मके नाना होनैकरि ज्ञानिनका और-औरप्रकारसैं (परस्परविलक्षण) वर्त्तनाहै । तिसकरि पंडितजनोंनै दृढबोधसैं मोक्षके प्रतिपादक शास्त्रके अर्थविषे भ्रांत होना योग्य नहीं ॥ २ ॥

सो ज्ञानी अपनै अपनै कर्मके अनुसार करि जैसैं तैसैं (विलक्षण) वर्त्तन करो । सर्वका बोध समान है औ मुक्ति समान है । यह स्थिति (शास्त्र औ विद्वानोंका निर्धार) है ॥ ३ ॥

॥ ५०१ ॥ यह शंका द्वैतविवेकविषै विद्यारण्य स्वामीनै लिखीहै ॥

विना भोग संभवै नहीं । यातैं ज्ञानीकी इच्छा वी प्रारब्धका फल है ॥ औ—

(२) अन्यलोकमैं अथवा इसलोकमैं अन्य शरीरका संबंध ज्ञानीकूं प्रारब्धसैं वी होवै नहीं । यह पूर्व इसीतरंगमैं प्रतिपादन करि आयेहैं ।

यातैं ज्ञानीकूं प्रारब्धसैं विदेहमोक्षके त्यागकी वा परलोकके गमनकी इँच्छा होवै नहीं ॥

॥ ४७६ ॥ ज्ञानीकी मंदप्रारब्धसैं जीवन्मुक्तिसुखकी विरोधि प्रवृत्ति ॥

जीवन्मुक्तिके सुखके विरोधी वर्त्तमानशरीरमैं अधिकभोगनकी इच्छा तौ भिक्षाभोजनादिकनकी न्यांई जनकादिकनकूं संभवैहै ॥

या स्थानमैं यह रहस्य हैः—ज्ञानीकी बाह्य प्रवृत्ति जीवन्मुक्तिकी विरोधी नहीं । किंतु जीवन्मुक्तिके विलक्षणसुखकी विरोधी है, काहेतैं ? आत्मा नित्यमुक्त है । अविद्यासैं बंध प्रतीत होवैहै ॥ जिसकालमैं ज्ञान होवैहै, तिसीकालमैं अविद्याकृत बंधभ्रम नष्ट होवैहै । ज्ञान हुयेतैं फेरि बंधभ्रांति होवै नहीं ॥ शरीरसहितकूं बंधभ्रमका अभावही जीवन्मुक्ति कहियेहै ॥ देहादिकनकी प्रवृत्तिमैं तथा निवृत्तिमैं ज्ञानीकूं बंधभ्रांति आत्मामैं होवै नहीं, यातैं बाह्य प्रवृत्तिसैं वी जीवन्मुक्ति दूरि होवै नहीं ॥ तौ वी बाह्यप्रवृत्तिमैं जीवन्मुक्तकूं विलक्षणसुख होवै नहीं । एकाग्रतारूप अंतःकरणपरिणामतैं

॥ ५०२ ॥ द्वैतविवेकविषै पूर्वउक्तशंकारूप तर्कके कर्त्ता श्रीविद्यारण्यस्वामीका "मंदप्रारब्धसैं भोगादिकमैं प्रवृत्त ज्ञानीकूं विदेहमोक्षके त्यागकी वा परलोकके गमनकी इच्छा होवैगी" इस अर्थविषै अभिप्राय नहीं । किंतु प्रयत्नरहित जे ज्ञानी हैं तिनकूं यथेष्टाचरणकी हेतु भोगादिककी आसक्ति छुडायके जीवन्मुक्तिके सुखविषै आसक्त करनैमैं अभिप्राय है ।

जैसैं रोगिष्टपदार्थके खानैवाले पुत्रकूं परमहितेच्छु जो तिसकी माता सो "हे पुत्र ! जब तूं आरोग्यकी इच्छा त्यागिके देखनैमात्र सुंदर इन रोगिष्टपदार्थनकूं विवेक छोडिके खाताहै, तब वंचकोंके कियेहुये विषयुक्त लड्डुके भक्षणके लोभकरि तूं जीवनकी इच्छा वी त्याग देगा" ऐसैं कहनैवाली माताका "पुत्रकूं जीवनके त्यागकी औ विषयुक्त लड्डुके खानैकी इच्छा होवैगी" इस अर्थमैं अभिप्राय नहीं । किंतु तर्ककरि रोगके हेतु रोगिष्टपदार्थनके भक्षणकी आसक्ति छुडायके आरोग्य (नीरोगता) मैं आसक्त करनैविषै अभिप्राय है ॥

तैसैं विद्यारण्यस्वामीका वी "विवेककूं छोडिके (उपेक्षाकरिके) मंदप्रारब्धके फलमैं सहायकवासनाकरि किंवा केवलवासनाकरि विक्षेपके हेतु कामादिककी परवशतारूप प्रमादकूं प्राप्त भये ज्ञानीकूं जीवन्मुक्तिरूप जीवनके त्यागकी औ परलोकके भोगकी इच्छा होवैगी" इस अर्थमैं अभिप्राय नहीं । किंतु अनिष्टापादनरूप तर्कसैं ताकूं यथेष्टाचरणरूप रोगकी हेतु भोगमैं प्रवृत्ति छुडायके जीवन्मुक्तिके विलक्षणसुखरूप आरोग्यमैं आसक्त करनैविषै अभिप्राय है ॥ औ—

दृढबोधवान् मोक्षकी इच्छासैं रहित हुया वी मुक्त होवैहै । या अर्थमैं भाष्यकारका वचन प्रमाण है ॥ श्लोकः—

देहात्मज्ञानवज्ज्ञानं देहात्मज्ञानबाधकम् ॥
आत्मन्येव भवेद्यस्य स नेच्छन्नपि मुच्यते ॥ १ ॥

अर्थः—अज्ञानीकूं देहविषै आत्मबुद्धिकी न्यांई जाकूं देहविषै आत्मज्ञानका बाधक ज्ञान ब्रह्मसैं अभिन्न आत्माविषै होवै, सो वृक्षसैं छूटे हस्तवाले नरकी न्यांई न इच्छताहुया वी मुक्त होवैहै ॥१॥ औ—

स्वप्नतैं जागे पुरुषकूं जैसैं स्वप्नभ्रांतिकी निवृत्तिके त्यागविषै अरु स्वप्नगत परलोकके गमनविषै इच्छा संभवै नहीं; तैसैं ज्ञानीकूं बंधभ्रांतिकी निवृत्तिरूप विदेहमोक्षके त्यागविषै अरु स्वर्गादिपरलोकके गमनविषै इच्छा संभवै नहीं ।

सुख होवैहै। सो एकाग्रतापरिणाम बाह्यवृत्तिमैं होवै नहीं।

इसरीतिसैं प्रारब्धभेदतैं ज्ञानी पुरुषनके व्यवहार नानाप्रकारके हैं। परंतु जाका प्रारब्ध अधिकप्रवृत्तिका हेतु होवैहै, ताका मंद५०३प्रारब्ध कहियेहै। काहेतैं? अधिकप्रवृत्ति एकाग्रताकी विरोधी है औ एकाग्रताविना निरुपाधिक आनंद प्रतीत होवै नहीं। यह समाधिनिरूपणमैं कहीहै ॥ और-

॥ ४७७ ॥ ज्ञानीके व्यवहारका अनियम

॥ ४७७—४७८ ॥

जो ५०४पूर्व कह्याः—"ज्ञानवान्कूं सर्वअनात्मपदार्थनमैं मिथ्याबुद्धि होवैहै, राग होवै नहीं, यातैं प्रवृत्ति संभवै नहीं" सो शंका बी बनै नहीं। काहेतैं?

जैसैं देहविषै मिथ्याबुद्धि बी ज्ञानीकूं होवैहै तौ बी देहके अनुकूल जो भिक्षादिक हैं, तिनमैं केवल प्रारब्धसैं प्रवृत्ति होवैहै, तैसैं जिसका अधिकभोगका प्रारब्ध होवै, तिस ज्ञानीकी अधिकप्रवृत्ति बी होवैहै ॥

जैसैं बाजीगरके तमासेकूं मिथ्या जानिके सर्वलोकनकी प्रवृत्ति होवैहै, तैसैं सर्वपदार्थनमैं ज्ञानीकूं मिथ्याबुद्धि हुयेसैं बी प्रवृत्ति संभवैहै ॥ और—

॥ ४७८ ॥ जो ऐसैं कहै:—जाकूं जिस पदार्थमैं दोषदृष्टि होवै ताकेविषै तिस पुरुषकी प्रवृत्ति होवै नहीं। ज्ञानीकूं अनात्मपदार्थनमैं दोषदृष्टि होवैहै, राग होवै नहीं, यातैं प्रवृत्ति संभवै नहीं ॥

सो बी बनै नहीं। काहेतैं? जिस अपथ्यसेवनमैं रोगीनै अन्वयव्यतिरेकतैं दोषनिश्चय कियाहै, ता अपथ्यसेवनमैं प्रारब्धतैं जैसैं रोगीकी प्रवृत्ति होवैहै, तैसैं ५०५प्रारब्धसैं ज्ञानीकी

॥ ५०३ ॥ जैसैं सारी पृथिवीके राज्यकूं प्राप्त भये पुरुषकूं रोगका हेतु प्रारब्ध भोगका विरोधि होनैतैं मंद कहियेहै, तैसैं अविद्यातत्कार्यरूप शत्रुनका संहारकरिके ब्रह्मभावकूं प्राप्त भये ज्ञानीका अधिकप्रवृत्तिका हेतु प्रारब्ध एकाग्रताका विरोधि होनैतैं मंद कहियेहै।

इहां मंदपदका निकृष्ट अर्थ है। शिथिल अर्थ नहीं। काहेतैं? जैसैं उक्तराजा शिथिलप्रारब्धजन्य-सुसाध्य वा कष्टसाध्य रोगकी तो औषधआदिक प्रयत्नसैं निवृत्ति करैहै। परंतु तीव्रतरप्रारब्धजन्य असाध्यरोगकी निवृत्ति करनी तिसतैं अशक्य है। तैसैं शिथिल-प्रारब्धके फलरूप प्रवृत्तिकूं तौ ज्ञानी जीवन्मुक्तिके सुखअर्थ वासना (रागद्वेष)के निवारणरूप प्रयत्नसैं दूरी करैहै। परंतु तीव्रतरप्रारब्धकी फलरूप प्रवृत्ति तिसकरि निवारण करनैकूं अशक्य है। इसरीतिसैं व्यवस्थाके किये प्रारब्ध औ पुरुषार्थ दोनूं सफल होवैहैं। यातैं अधिकप्रवृत्तिका हेतु प्रारब्ध शिथिल नहीं है। किंतु निकृष्ट है। यातैं मंद कहियेहै।

॥ ५०४ ॥ पूर्व षष्ठतरंगगत ४०६ वें अंकविषै कह्या ॥

॥ ५०५ ॥ इहां यह विवेक है:—१ मंद, २ तीव्र औ ३ तीव्रतर इन भेदतैं प्रारब्धकर्म तीनि भांतिका है ॥

१ जाका उपादेयफल भिक्षाके अन्नकी न्यांई अधिकप्रयत्नसैं प्राप्त होवै अरु जाका अकस्मात् प्राप्त भया हेयफल सुसाध्य रोगकी न्यांई अल्पप्रयत्नसैं निवृत्त होवै, ऐसा जो प्रारब्ध सो मंदप्रारब्ध है ॥ औ—

२ जाका उपादेयफल निमंत्रणके अन्नकी न्यांई अल्पप्रयत्नसैं प्राप्त होवै अरु जाका अकस्मात् प्राप्त भया हेयफल कष्टसाध्यरोगकी न्यांई अधिकप्रयत्नसैं निवृत्त होवै, ऐसा जो प्रारब्ध सो तीव्रप्रारब्ध है ॥ औ—

३ जाका उपादेयफल आसनपर प्राप्त भये अन्नकी न्यांई विनाप्रयत्नसैं आपही प्राप्त होवै अरु जाका बलात्कारसैं प्राप्त भया हेयफल

सर्वव्यवहारमैं प्रवृत्ति दोषदृष्टि हुये बी संभवैहै । इसरीतिसैं ज्ञानीके व्यवहारका नियम नहीं ॥

यह पक्ष विद्यारण्यस्वामीनैं विस्तारसैं तृप्तिदीपमैं प्रतिपादन कियाहै, यातैं तत्त्वदृष्टिका व्यवहार नियमरहित है । समाधिरूप नियमकी विधि सुनिके तत्त्वदृष्टि हसैहै ॥

बलीवर्दके डामकी न्यांई मरणांतप्रयत्नसैं बी निवृत्त होवै नहीं, ऐसा जो प्रारब्ध सो **तीव्रतरप्रारब्ध** है ॥

इसरीतिसैं मंद औ तीव्रप्रारब्धका फल प्रयत्नके आधीन है । तिस प्रयत्नकी हेतु शुभाशुभवासना है । तिस वासनाकी निवृत्ति बी पुरुषार्थसैं (पुरुषके प्रयत्नसैं) होवैहै ॥ तिनमैं—

१ **शुभवासनाकी निवृत्ति** कुसत्संगादिक पुरुषार्थसैं होवैहै । औ—

२ **अशुभवासनाकी निवृत्ति** सत्संग अरु विवेकज्ञानादिकसैं होवैहै ।

जातैं ज्ञानी सत्संग अरु विवेकज्ञानादिगुणकरि संपन्न है, यातैं ताके चित्तमैं कोई अशुभप्रवृत्तिकी हेतु अशुभवासना होवै नहीं । किंतु शुभप्रवृत्तिकी हेतु शुभवासनाही होवैहै । यातैं तिस ज्ञानीकी मंद औ तीव्रप्रारब्धके निषिद्धफलविषै विधिनिषेधसैं जन्य गुणदोषबुद्धिके अभाव हुये बी शुभवासनारूप स्वभावसैंही पागलवैष्णवकी न्यांई बी ब्राह्मणादिकके बालककी न्यांई प्रवृत्ति संभवै नहीं । किंतु निवृत्तिही संभवैहै ॥ औ—

रोगीकी अन्वयव्यतिरेकतैं दोषनिश्चयके होते बी जो अपथ्यसेवनमैं प्रवृत्ति होवैहै, सो प्रयत्नशील रोगीकी नहीं होवैहै । किंतु जिह्वालोलुप प्रयत्नरहित रोगीकी अपथ्यसेवनमैं प्रवृत्ति होवैहै औ किसी प्रयत्नशील रोगीकी बी अपथ्यसेवनमैं प्रवृत्ति होवैहै, सो **तीव्रतरप्रारब्धका फल** है ॥

इसरीतिसैं दोषनिश्चयरूप औ मिथ्यात्वनिश्चयरूप दृढविवेकयुक्त ज्ञानीकी मंद वा तीव्र प्रारब्धके फलभूत यथेष्टाचरणरूप निषिद्धप्रवृत्ति संभवै नहीं ॥

॥ ४७९ ॥ तत्त्वदृष्टिका देशादिअपेक्षारहित देहपात ॥ ४७९–४८० ॥

॥ दोहा ॥

भ्रमन करत कछु काल यूं, तत्त्वदृष्टि सुज्ञान ॥

जो **प्रारब्धका भक्त कहै** किः— प्रारब्धका फल सर्वथा अनिवार्य है, यातैं पुरुषप्रयत्न व्यर्थ है ।

सो कथन बनै नहीं:—काहेतैं ? जो ऐसैं होवै तौ सर्वज्ञरचित वैद्यशास्त्र, मंत्रशास्त्र, औ योगशास्त्रआदिक उपायके बोधक शास्त्र व्यर्थ होवैंगे औ दृष्टफलके हेतु उपायनके बोधक तिन शास्त्रनकूं व्यर्थ कहना बनै नहीं । इस व्यवस्थाकरि प्रारब्ध औ पुरुषार्थ दोनूं सफल होवैहैं । यह वासिष्ठआदिक उत्तमग्रंथनका मत है ॥

इहां कछु अधिक विचार है, सो हम प्रमादमुद्गरमैं लिखैंगे । इहां प्रसंगसैं दिशामात्र जनाईहै ॥

॥ ५०६ ॥ इहां यह अभिप्राय हैः—स्वाधीनकार्यविषै नियम होवैहै । पराधीनकार्यविषै नियम संभवै नहीं ॥ जातैं ज्ञानीके शरीरनका व्यवहार नानाप्रारब्धके आधीन है । यातैं हाथसैं छूटे बाण वेगके आधीन गौके वेधकी न्यांई प्रारब्धके आधीन ज्ञानीके देहके व्यवहारका नियम संभवै नहीं ॥

यद्यपि रागादिवासनाकूं रोकिके स्वाधीनचित्तवाले केइक ज्ञानी, मंद किंवा तीव्रप्रारब्धके फलरूप शरीरके व्यवहारकूं नियममैंही रखतेहैं; **तथापि** तीव्रतरप्रारब्धके फलरूप शरीरके व्यवहारका नियम ज्ञानीसैं बी बनै नहीं ॥

॥ ५०७ ॥ ज्ञानीकूं प्रीतिस बिना प्रारब्धभोग होवैहै औ सो प्रारब्ध इच्छा अनिच्छा औ परेच्छाभेदतैं तीनिभांतिका है । यह अर्थ श्रीविद्यारण्यस्वामीनै तृप्तिदीपविषै १४३ सैं १६२ वें श्लोकपर्यंत लिख्याहै । जाकूं जाननैकी इच्छा होवै, सो तहां देखलेवै । विस्तारके भयतैं इहां लिख्या नहीं ॥

भोगै निजप्रारब्ध तब,
लीन भये तिहिं प्रान ॥ १७ ॥

टीकाः—

१ प्रारब्धभोगतैं अनंतर ज्ञानीके प्राण गमन करैं नहीं। यातैं 'तत्त्वदृष्टिके प्राण लीन हुये' यह कह्या ॥ औ—

२ ज्ञानीके शरीरत्यागमैं कालविशेषकी अपेक्षा नहीं। उत्तरायणमैं अथवा दक्षिणायनमैं देहपात होवै। सर्वथा मुक्त है।

३ तैसैं देशविशेषकी अपेक्षा नहीं। काशी-आदिक पुनीतदेशमैं अथवा अत्यंतमलीन देशमैं ज्ञानीका देहपात होवै। सर्वथा मुक्त है॥

४ तैसैं आसनविशेषकी अपेक्षा नहीं। पृथिवीमैं सबआसनतैं अथवा सिद्ध-आसनतैं देहपात होवै॥

५ तैसैं सावधान ब्रह्मचिंतन करतेका अथवा रोगव्याकुल हाहाशब्द पुकारतेका देहपात होवै। सर्वथा मुक्त है। काहेतैं? जिसकालमैं ज्ञानतैं अज्ञान निवृत्त हुया तिसी कालमैं ज्ञानी मुक्त है॥

यातैं ज्ञानीकूं विदेहमोक्षमैं देशकालआसना-दिकनकी अपेक्षा नहीं।

जैसैं ज्ञानीकूं देहपातमैं देशकालादिकनकी अपेक्षा नहीं, तैसैं ज्ञानके निमित्त श्रवणमैं बी देशकालआसनादिकनकी अपेक्षा नहीं। औ—

॥ ४८० ॥ उपासककूं देशकालादिकनकी अपेक्षा है।

यद्यपि भीष्मादिक ज्ञानी कहेहैं औ भीष्मनै उत्तरायणविना प्राण त्याग किये नहीं तथापि भीष्मादिक अधिकारी पुरुष हैं, यातैं उपासक-नके उपदेशवासते तिन्होंनै कालविशेषकी प्रतीक्षा करीहै। औ—

वसिष्ठभीष्मादिक अधिकारी हैं, यातैंही उनकूं अनेकजन्म हुयेहैं। काहेतैं? अधिकारी-पुरुषनका एककल्पपर्यंत प्रारब्ध होवैहै। कल्पके अंतविना विदेहमोक्ष होवै नहीं औ कल्पके भीतरि तिनकूं इच्छावलतैं नानाशरीर होवैहैं। तथापि आत्मस्वरूपविषै तिनकूं जन्ममरणभ्रांति होवै नहीं। यातैं जीवन्मुक्त हैं॥ तिन अधिकारी पुरुषनका व्यवहार संपूर्ण अन्यके उपदेशनिमित्त है॥ औ—

अन्यज्ञानीके व्यवहारमैं कोई नियम नहीं। इस अभिप्रायमैं तत्त्वदृष्टिके देहपातका देशकाल-आसनादिक कुछ कह्या नहीं॥

॥ ४८१ ॥ अदृष्टिका देशादिकअपेक्षा-सहित देहपात ॥

॥ दोहा ॥

दूजो सिष्य अदृष्टि तिहि,
गंगातट सुभथान ॥
देस इकंत पवित्र अति,
कियो ब्रह्मको ध्यान ॥ १८ ॥

॥ ५०८ ॥ इहां यह सांप्रदायिक वचन है:—

॥ श्लोकः ॥

देहः पततु वा काश्यां श्वपचस्य गृहेऽथवा ॥
ज्ञानसंप्राप्तिसमये सर्वथा मुक्त एव सः ॥ १ ॥

अस्यार्थः—ज्ञानीका देह काशीविषै पडो अथवा चांडालके गृहविषै पडो। परंतु ज्ञानप्राप्तिके समयमैं बंधभ्रांतिकी निवृत्तितैं सो ज्ञानी सर्वथा (सर्वप्रकारसैं) मुक्तही है॥ १॥

॥ ५०९ ॥ यह अर्थ विद्यारण्यस्वामीनै बी भूतविवेकके अंतमैं लिख्याहै॥

सास्त्ररीति तजि देहकूं,
पूरव कह्यो जु राह ॥
जाय मिल्यो सो ब्रह्मतैं,
पायो अधिक उछाह ॥ १९ ॥

टीकाः–जैसैं ज्ञानीकूं देशकालकी अपेक्षा नहीं, तासैं विपरीत उपासककूं जाननी ।

उत्तमदेशमैं उत्तमउत्तरायणादिक कालमैं उपासक शरीर तजै, तब उपासनाका फल होवै औ—

ज्ञानीकूं मरणसमै सावधानतासैं ज्ञेयकी स्मृतिकी अपेक्षा नहीं । उपासककूं मरणसमै ध्येयके स्वरूपकी स्मृतिकी अपेक्षा है ।

१ जिस ध्येयका पूर्व ध्यान कियाहै, ता ध्येयकी स्मृति मरणसमै होवै, तब उपासनाका फल होवैहै ॥
२ जैसैं ध्येयकी स्मृति चाहिये तैसैं ध्येयब्रह्मकी प्राप्तिका जो मार्ग पंचमतरंगमैं कह्याहै, ताकी बी स्मृति चाहिये। काहेतैं ? मार्गचिंतन बी उपासनाका अंग है । औ—

ज्ञाननिमित्त श्रवणमैं देशकालआसनकी अपेक्षा नहीं । ध्यानमैं उत्तमदेश, निरंतरकाल औ सिद्धादिक. आसनकी अपेक्षा है । यातैं अदृष्टिकूं उत्तमदेश, गंगातीरमैं स्थिति, औ मरणसमै बी योगशास्त्ररीतिसैं देहपात कह्या ।

(॥ तर्कदृष्टिका निश्चय । विद्याके अष्टादशप्रस्थान ४८२–४९१ ॥)

॥ ४८२ ॥ सर्वशास्त्रनकूं ब्रह्मज्ञानकी हेतुता ।

॥ दोहा ॥

तर्कदृष्टि पुनि तीसरो,
लहि गुरुमुखउपदेस ॥
अष्टादसप्रस्थान जिन,
अवगाहन करि वेस ॥ २० ॥
जेति बानी वैखरी,
ताको अलं पिछान ॥
हेतु मुक्तिको ज्ञान लखि,
अद्वयनिश्चय ज्ञान ॥ २१ ॥

टीकाः–तर्कदृष्टि नाम तीसरा गुरुद्वारा उपदेशकूं श्रवण करिके सुनैअर्थमैं अन्यशास्त्रनका विरोध दूरि करनैकूं सर्वशास्त्रनका अभिप्राय विचारिके यह निश्चय कियाः–

१ सकलशास्त्रनका परमप्रयोजन मोक्ष है ।
२ मोक्षका साधन ज्ञान है ।
३ सो ज्ञान अद्वयनिश्चयरूप है ।
४ भेदनिश्चय यथार्थज्ञान नहीं ।
५ सारे शास्त्र साक्षात् अथवा परंपरातैं ब्रह्मज्ञानके हेतु हैं ॥

यद्यपि संस्कृतवैखरीवाणीके अष्टादशप्रस्थान हैं । तिनमैं—

१ कोई कर्मकूं प्रतिपादन करैहैं ।
२ कोई विषयसुखके उपायनकूं प्रतिपादन करैहैं ।
३ कोई ब्रह्मभिन्न देवनकी उपासनाकूं बोधन करैहैं ॥
४ तैसैं ज्ञाननिमित्त जो न्यायसांख्यआदिक शास्त्र हैं, सो बी भेदज्ञानकूंही यथार्थज्ञान कहैहैं ।

यातैं सर्वकूं अद्वैतब्रह्मकी बोधकता बनै नहीं ॥

तथापि सकलशास्त्रनके कर्त्ता सर्वज्ञ हुयेहैं औ कृपालु हुयेहैं, यातैं तिनके किये मूलसूत्रनका तौ वेदके अनुसारही अर्थ है । परंतु तिनके व्याख्यानकर्त्ता भ्रांत हुयेहैं । मूलसूत्र-

कारनके अभिप्रायतैं विलक्षणअर्थ कियाहै । सो वेदसैं विरुद्ध तिन सूत्रनका अर्थ नहीं । किंतु सर्वशास्त्रनका वेदानुसारी अर्थ है । यह तर्कदृष्टिनै उत्तमसंस्कारतैं निश्चय किया ॥

॥ ४८३ ॥ विद्याके अष्टादशप्रस्थान ॥

विद्याके अष्टादशप्रस्थान ये हैंः- चारिवेद, चारिउपवेद, षट् वेदके अंग, पुराण, न्याय, मीमांसा औ धर्मशास्त्र । इसरीतिसैं वैखरीवाणीरूप विद्याके अठारह भेद हैं । तिन्हकूं प्रस्थान कहैहैं ॥

॥४८४॥ चारिवेदका ब्रह्मज्ञानमैं तात्पर्य ॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद औ अथर्ववेद, ये चारिवेद हैं । तिनमैं—

१ कितनै वचन ज्ञेयब्रह्मकूं बोधन करैहैं ।
२ कितनै ध्येयकूं बोधन करैहैं । औ—
३ बाकी कर्मकूं बोधन करैहैं ।

जो कर्मके बोधक वेदवचन हैं, तिनका बी अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानही प्रयोजन है ॥ औ—

प्रवृत्तिमैं किसी वेदवचनका अभिप्राय नहीं । किंतु निषिद्धस्वाभाविक प्रवृत्तिसैं रोकनैमैं अभिप्राय है । यातैं अभिचारादिकर्मका प्रतिपादक जो अथर्ववेद है, ताका बी निवृत्तिमैं तात्पर्य है ॥ जो द्वेषतैं शत्रुमारणमैं प्रवृत्त होवै तौ गरदानसैं अथवा अग्निदाहसैं शत्रुकूं नहीं मारै । इसवास्तैं अभिचारकर्म श्येनयागादिक कहियेहैं॥ शत्रुमारणके निमित्त जो कर्म सो अभिचार कहियेहैं ॥ ऐसा श्येन नाम यज्ञ है ॥

श्येनयागका बोधक जो वेदवचन है ताका यह अर्थ नहींः—शत्रुमारणकामनावाला श्येनयागमैं प्रवृत्त होवै । किंतु शत्रुमारणकी जाकूं कामना होवै, सो श्येनयागतैं भिन्न जो गरदानादिक शत्रुमारणके उपाय हैं, तिनमैं प्रवृत्त होवै नहीं । इसरीतिसैं द्वेषतैं प्राप्त जो गरदानादिक तिनतैं निवृत्तिमैं श्येनयागबोधक वचनका अभिप्राय है । प्रवृत्तिमैं नहीं । काहेतैं ? प्रवृत्ति द्वेषतैं प्राप्त है । जो अन्यतैं प्राप्त होवै तामैं वाक्यका अभिप्राय होवै नहीं ॥

इसरीतिसैं सारे अथर्ववेदका निवृत्तिमैं तात्पर्य है ॥ और तीनिवेदनमैं कर्मबोधकवाक्यनका अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानमैं उपयोग स्पष्ट है ॥ तैसैं—

॥ ५१० ॥ विद्याके अंगकूं **प्रस्थान** कहैहैं ॥ विद्याके अष्टादशप्रस्थान अग्निपुराणके आरंभमैं तथा मधुसूदनस्वामीकृत प्रस्थानभेदमैं लिखेहैं ।

॥ ५११ ॥ गर नाम जहर, तिसका दान कहिये देना, सो **गरदान** कहियेहै । तिसतैं आदिलेके ॥

॥ ५१२ ॥ जैसैं—

१ " पर्णीत भार्याका संग करना " औ—
२ " ऋतुमती भार्याका संग करना " औ—
३ " हुतशेष (होमकरिके अवशेष रहे मांस)का भक्षण करना " औ—
४ " सूत्रामणियागविषै सुरापान करना "

इत्यादि वेदके विधिवचनोंका जैसैं अन्य (राग) तैं प्राप्त सर्वस्त्रीका संग किंवा सर्वदा पर्णीत स्त्रीका संग किंवा मांसमद्यकी सेवा, तिनविषै प्रवृत्ति करावनैमैं अभिप्राय नहीं । किंतु तिनविषै स्वाभाविक जो प्रवृत्त है तिसके संकोचद्वारा निवृत्तिमैं अभिप्राय है, यातैं वे वेदवाक्य **परिसंख्याविधिरूप** हैं । नियमविधिरूप किंवा अपूर्वविधिरूप नहीं ॥

तैसैं श्येनयागबोधक अथर्ववेदके वचनका बी अन्यतैं (द्वेषतैं) प्राप्त शत्रुमारणविषै प्रवृत्तिमैं अभिप्राय नहीं । किंतु तिस स्वाभाविक प्रवृत्तिके रोकनैद्वारा तिन गरदानआदिकनतैं निवृत्तिमैं अभिप्राय है । यातैं यह श्येनयागबोधक वचन बी **परिसंख्याविधिरूप** है ॥

अन्यतैं प्राप्तअर्थका तिसके संकोचके निमित्त बोधक जो वेदवचन सो **परिसंख्यारूप** कहियेहै ।

इन विधिवचनोंका सविस्तरवर्णन वेदांतपदार्थमंजूषाविषै कियाहै ॥

॥ ४८५ ॥ चारिउपवेदका ब्रह्मज्ञानमैं तात्पर्य ॥

चारि उपवेद हैं:–आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद औ अर्थवेद । तिनमैं—

१ आयुर्वेदके कर्त्ता ब्रह्मा, प्रजापति, अश्विनीकुमार, धन्वंतरि आदिक हैं । चरक वाग्भट्टादिकृत चिकित्साशास्त्र आयुर्वेद है औ वात्स्यायनकृत कामशास्त्र बी आयुर्वेदके अंतर्भूत है । काहेतैं ? कामशास्त्रका विषय वाजीकरण-स्तंभनादिक बी चरकादिकनै कथन कियेहैं । तिस आयुर्वेदका वैराग्यमैंही अभिप्राय है । काहेतैं ? आयुर्वेदकी रीतिसैं रोगादिकनकी निवृत्ति हुयेतैं बी फेरी रोगादिक उत्पन्न होवैहैं, यातैं लौकिकउपाय तुच्छ हैं, इसअर्थमैं आयुर्वेदका अभिप्राय है । औ औषध-दानादिकनतैं पुण्य होयके अंतःकरणकी शुद्धि-द्वारा बी ज्ञानमैं उपयोग है ॥ तैसैं—

२ विश्वामित्रकृत धनुर्वेदमैं आयुध निरूपण कियेहैं । आयुध चारिप्रकारके हैं:– (१) मुक्त, (२) अमुक्त, (३) मुक्तामुक्त, औ (४) यंत्रमुक्त ।

(१) चक्रादिक हाथसैं फैंकिये, सो मुक्त कहियेहै ॥

(२) खड्गादिक अमुक्त कहियेहै ।

(३) बरछीआदिक मुक्तामुक्त कहियेहै ।

(४) सरगोलीआदिक यंत्रमुक्त कहियेहै ।

इसरीतिसैं चारिप्रकारके आयुध हैं । तिनमैं—

(१) मुक्तआयुधकूं अस्त्र कहैहैं ॥

(२) अमुक्तकूं शस्त्र कहैहैं ॥

इन चारिप्रकारके आयुधनकूं ब्रह्मा, विष्णु, पशुपति, प्रजापति, अग्नि, वरुण आदिकदेवता मंत्र कहैहैं । क्षत्रिय कुमार अधिकारी कहैहैं औ तिनके अनुसारी ब्राह्मणादिक बी अधिकारी कहैहैं । तिनके चारीभेद कहैहैं:–१ पदाति, २ रथारूढ, ३ अश्वारूढ, औ ४ गजारूढ । और युद्धमैं शकुन मंगल कहैहैं ॥

(१) इतना अर्थ धनुर्वेदके प्रथमपादमैं कह्याहै । औ—

(२) आचार्यका लक्षण तथा आचार्यतैं शस्त्रोंके ग्रहणकी रीति, धनुर्वेदके द्वितीयपादमैं कहीहै । औ—

(३) गुरुसंप्रदायतैं प्राप्त हुये शस्त्रोंका अभ्यास तथा मंत्रसिद्धि–देवतासिद्धिका प्रकार तृतीयपादमैं कह्याहै ।

(४) सिद्ध हुये मंत्रनका प्रयोग चतुर्थ-पादमैं कह्याहै ।

इतना अर्थ धनुर्वेदमैं है । सो ब्रह्माप्रजापति-आदिकनतैं विश्वामित्रकूं प्राप्त हुवाहै । तानैं प्रकट कियाहै औ विश्वामित्रतैं धनुर्वेद उत्पन्न नहीं हुवा ॥

दुष्टचौरादिकनतैं प्रजापालन क्षत्रियका धर्मबोधक धनुर्वेद है । यातैं ताका बी अंतः-करणशुद्धि करिके ज्ञानद्वारा मोक्षमैंही अभिप्राय है ॥ तैसैं—

३ गांधर्ववेद भरतनै प्रगट कियाहै । तामैं स्वर, ताल, मूर्छनासहित गीत, नृत्य, औ वाद्यका निरूपण विस्तारसैं कियाहै । देवता-का आराधन, निर्विकल्पसमाधिकी सिद्धि गांधर्ववेदका प्रयोजन कह्याहै । यातैं ताका बी अंतःकरणकी एकाग्रताकरिके ज्ञानद्वारा मोक्षही प्रयोजन है ॥ तैसैं—

४ अर्थवेद बी नानाप्रकारका है:–नीति-शास्त्र, अश्वशास्त्र, शिल्पशास्त्र, सूपकार-शास्त्रसैं आदिलेके धनप्राप्तिके उपायबोधकशास्त्र

अर्थवेदं[513] कहियेहैं। धनप्राप्तिके सकलउपायनमैं निपुणपुरुषकूं बी भाग्यविना बी धनकी प्राप्ति होवै नहीं । यातैं अर्थवेदका बी वैराग्यमैंही तात्पर्य है। तैसैं—

॥ ४८६ ॥ चारिवेदनके पट्‌अंगनका अर्थसहित प्रयोजन ॥

चारिवेदनके षट्‌अंग ये हैंः—१ शिक्षा, २ कल्प, ३ व्याकरण, ४ निरुक्त, ५ ज्योतिष, औ ६ पिंगल। ये छे वेदके उपयोगी होनैतें वेदके अंग कहियेहैं। तिनमैं—

१ शिक्षाका कर्त्ता पाणिनि है । वेदके शब्दनमैं अक्षरोंके स्थानका ज्ञान औ उदात्त,[514] अनुदात्त,[515] और स्वरितका[516] ज्ञान शिक्षातैं होवैहै॥ वेदनके व्याख्यानरूप जो अनेकप्रतिशाखा नाम ग्रंथ हैं सो बी शिक्षाके अंतर्भूत हैं। तैसैं— ॥

२ वेदबोधित कर्मके अनुष्ठानकी रीति कल्पसूत्रनतैं जानीजावैहै । यज्ञ करावनैवाले ब्राह्मण ऋत्विक् कहिये हैं। तिनके भिन्न-भिन्न करनैयोग्य जो कर्म, तिनके प्रकारके बोधक कल्पसूत्र हैं। तिन कल्पसूत्रके कर्त्ता कात्यायनआश्वलायनादिमुनि हैं । यातैं कल्पसूत्र बी वेदके उपयोगी होनैतैं वेदके अंग हैं। तैसैं—

३ व्याकरणतैं वेदके शब्दनका शुद्धताका ज्ञान होवैहैं। सो व्याकरणसूत्ररूप अष्टअध्याय पाणिनिनाम मुनिनैं कियाहै । कात्यायन औ पतंजलिनै तिन सूत्रनके व्याख्यानरूप वार्त्तिक औ भाष्य कियेहैं और जो व्याकरण हैं। तिनमैं वेदके शब्दनका विचार नहीं । यातैं पुराणादिकनमैं उपयोगी तौ हैं, परंतु वेदके उपयोगी नहीं । औ पाणिनिकृतव्याकरण वेदके शब्दनकी बी सिद्धि करैहै। यातैं वेदका अंग है ॥ तैसैं—

४ यास्कनाम मुनिनैं त्रयोदशअध्यायरूप निरुक्त कियाहै। तहां वेदके मंत्रनमैं अप्रसिद्ध पदनके अर्थबोधके निमित्त नाम निरूपण कियेहैं। यातैं वैदिक अप्रसिद्धपदनके अर्थज्ञानमैं उपयोगी होनैतैं निरुक्त बी वेदका अंग है। संज्ञाका बोधक जो पंचाध्यायरूप निघंटु नाम ग्रंथ यास्कनै कियाहै सो बी निरुक्तके अंतर्भूत है॥ और अमरसिंह हेमादिकननैं किये जो संज्ञाके बोधक कोष हैं सो सारे निरुक्तके अंतर्भूत हैं ॥ तैसैं—

५ आदित्यगर्गादिकृत ज्योतिष बी वेदका अंग है। काहेतैं ? वैदिककर्मके आरंभमैं कालका ज्ञान चाहिये। सो कालज्ञान ज्योतिषतैं होवै है। यातैं वेदका अंग है॥—

६ पिंगलमुनिनैं सूत्र अष्टअध्यायतैं छंद निरूपण कियेहैं,तिनतैं वैदिकगायत्रीआदिकछंद-नका ज्ञान होवैहै, यातैं पिंगलकृतसूत्र बी वेदके अंग हैं ॥ तैसैं—

यह षट् जो वेदके अंग हैं तिनमैं वेदके उपयोगी जो अर्थ नहीं, ताका प्रसंगतैं निरूपण कियाहै। प्रधानतासैं नहीं । यातैं वेदका जो प्रयोजन है सोई षट्‌अंगनका प्रयोजन है। पृथक् नहीं ॥

॥ ४८७ ॥ अष्टादशपुराण तथा उप-पुराणका अर्थ ॥

पुराण अष्टादश हैं । व्यासनाम मुनिनैं कियेहैं। तिनके ये नाम हैंः—१ ब्रह्म। २ पद्म।

॥ ५१३ ॥ याहीकूं स्थापत्यवेद बी कहैहैं ॥
॥ ५१४ ॥ उच्चस्वर उदात्त कहियेहै ॥
॥ ५१५ ॥ नीचस्वर अनुदात्त कहियेहै।
॥ ५१६ ॥ समानस्वरका ज्ञान स्वरितका ज्ञान कहियेहै।

३ वैष्णव । ४ शैव । ५ भागवत । ६ नारदीय । ७ मार्कंडेय । ८ आग्नेय । ९ भविष्य । १० ब्रह्मवैवर्त । ११ लैंग । १२ वाराह । १३ स्कंद । १४ वामन । १५ कौर्म । १६ मात्स्य । १७ गारुड औ १८ ब्रह्मांड । ये अष्टादशपुराण व्यासनै कियेहैं ॥ तैसैं—

कालीपुराणादिक और बहुत हैं । सो उपपुराण हैं । कोई उपपुराण वी अष्टादश कहैहैं । सो नियम नहीं । उपपुराण बहुत हैं ।

भागवत दो हैं:—एक तौ वैष्णवभागवत है औ दूसरा भगवतीभागवत है । दोनूंकी समानसंख्या अष्टादशसहस्र है औ दोनूंके द्वादशस्कंध हैं । परंतु तिनमैं एक पुराण है औ दूसरा उपपुराण है ॥ दोनूं व्यासकृत हैं । यातैं दोनूं प्रमाण हैं ॥

जैसैं व्यासनै पुराण कियेहैं तैसैं उपपुराण वी कोई व्यासनै कियेहैं । कोई उपपुराण पराशरआदिक अन्यसर्वज्ञ मुनियोंनै कियेहैं । यातैं उपपुराण वी प्रमाण हैं ॥

जो उपनिषदनका अर्थ है सोई उपपुराणसहित पुराणका अर्थ है । यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे । तैसैं—

॥ ४८८ ॥ न्याय औ वैशेषिकसूत्रनका फल ॥

पंचअध्यायरूप न्यायसूत्र गौतमनै कियेहैं । तिनमैं युक्ति प्रधान है ॥ युक्तिचिंतनतैं पुरुषकी तीव्रबुद्धि होवैहै, तब मनन करनैविषै समर्थ होवैहै । यातैं युक्तिप्रधान न्यायसूत्रनका वी मननद्वारा वेदांतजन्य ज्ञानही फल है ॥ औ—

कणादनाम मुनिनै दशअध्यायरूप वैशेषिकसूत्र कियेहैं । तिनका वी न्यायमैं अंतर्भाव है । तैसैं—

॥४८९॥ धर्ममीमांसा औ ब्रह्ममीमांसा भेदतैं दो मीमांसा औ संकर्षणकांडका फल ॥

मीमांसाके दो भेद हैं:—१एक धर्ममीमांसा । औ २ दूसरी ब्रह्ममीमांसा ॥

१ धर्ममीमांसाकूं पूर्वमीमांसा कहैहैं ॥

२ ब्रह्ममीमांसाकूं उत्तरमीमांसा कहैहैं ॥

१ धर्ममीमांसाके द्वादशअध्याय हैं । जैमिनीनाम ताका कर्त्ता है । कर्मअनुष्ठानकी रीति तामैं प्रतिपादन करीहै । यातैं विधिसैं कर्ममैं प्रवृत्ति धर्ममीमांसाका फल है । कर्ममैं प्रवृत्तिसैं अंतःकरणशुद्धि, तासैं ज्ञान औ ज्ञानतैं मोक्ष, इसरीतिसैं धर्ममीमांसाका मोक्षफल है । औ धर्ममीमांसाके द्वादशअध्यायनमैं आपसमैं अर्थका भेद है, सो कठिन है । यातैं लिख्या नहीं ॥ औ संकर्षणकांड पंचअध्यायरूप जैमिनिनै कियाहै । ताकेविषै उपासना कहीहै । ताका वी धर्ममीमांसाके विषै अंतर्भाव है ॥ तैसैं—

२ ब्रह्ममीमांसाके चारीअध्याय हैं । ताका कर्त्ता व्यास है । एकएक अध्यायके चारिचारि पाद हैं ॥ तहां—

॥ ५१७ ॥ यह वार्त्ता आगे ५१० सैं ५१७ वें अंकपर्यंत प्रतिपादन करैंगे । धर्मशास्त्रमैं कर्मकांडका अर्थ है औ पुराणनमैं उपनिषद्रूप ज्ञानकांडका अर्थ है । यह सूतसंहिताके व्याख्यानमैं श्रीविद्यारण्यस्वामीने लिख्या है ॥

॥ ५१८ ॥ न्यायसूत्रनका मननद्वारा वेदांतजन्यज्ञानही फल है । यह अर्थ न्यायपारंगतशिरोमणि भट्टाचार्यनै वी अपनै ग्रंथमैं लिख्याहै । यातैं इनका उक्तफल संभवैहै ॥

॥ ५१९ ॥ जिसविषै धर्मकी मीमांसा (विचार) है, सो धर्ममीमांसा कहियेहै ॥

॥ ५२० ॥ जिसविषै ब्रह्मकी मीमांसा (विचार) है, सो ब्रह्ममीमांसा कहियेहै ॥

१ प्रथमअध्यायमैं यह अर्थ हैः—सारे-उपनिषद्वाक्य ब्रह्मकूं प्रतिपादन करैहैं। अन्यकूं नहीं।

२ उपनिषद्वाक्यनका मंदबुद्धि पुरुषकूं आपसमैं विरोध प्रतीत होवैहै, ताका परिहार द्वितीयअध्यायमैं कह्याहै।

३ ज्ञान तथा उपासनाके साधनका विचार तृतीयअध्यायमैं कह्याहै। औ—

४ ज्ञानउपासनाका फल चतुर्थअध्यायमैं कह्याहै ॥

यह ब्रह्ममीमांसारूप शारीरकशास्त्रही सर्व-शास्त्रनमैं प्रधान है। मुमुक्षुकूं यही उपादेय है। ताके [521]व्याख्यानरूप ग्रंथ यद्यपि नाना हैं तथापि श्रीशंकरकृत[522]भाष्यरूप व्याख्यानही मुमुक्षुकूं श्रोतव्य है। ताका ज्ञानद्वारा मोक्षफल स्पष्टही है ॥ तैसैं—

॥ ४९० ॥ स्मृतिआदिक ग्रंथनके कर्त्ता औ प्रयोजन ॥

मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु, यम, अंगिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त्त, शातातप, पराशर, गौतम, [523]शंख, लिखित, हारीत, आपस्तंब, शुक्र, बृहस्पति, व्यास, कात्यायन, देवल, नारद इत्यादिक सर्वज्ञ हुयेहैं ॥ तिनोनैं वेदके अनुसार स्मृतिनामग्रंथ कियेहैं ॥ सो धर्मशास्त्र कहियेहैं। तिनमैं वर्णआश्रमके कायिक वाचिक मानसिक धर्म कहेहैं ॥ तिनका बी अंतःकरण-शुद्धिद्वारा ज्ञान होयके मोक्षही प्रयोजन है ॥ तैसैं—

व्यासनैं महाभारत औ वाल्मिकिनैं रामायण कियाहै, तिनका बी धर्मशास्त्रमैं अंतर्भाव है, औ—

देवताआराधनके निमित्त जो मंत्रशास्त्र हैं, ताका बी धर्मशास्त्रमैं अंतर्भाव है। देवता-आराधनका अंतःकरणशुद्धि प्रयोजन है ॥ तैसैं—

सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, वैष्णवतंत्र, शैव-तंत्रादिक बी धर्मशास्त्रके अंतर्भूत हैं। काहेतैं? इनमैं बी मानसधर्मका निरूपण है ॥ तहां—

॥ ४९१ ॥ सांख्यशास्त्रका फल ॥

सांख्यशास्त्र षट्अध्यायरूप कपिलनैं कियाहै। ताके—

१ प्रथमअध्यायमैं विषय निरूपण कियेहैं।
२ द्वितीयअध्यायमैं महत्तत्त्वअहंकारादिक प्रधानके कार्य कहेहैं।
३ तृतीयअध्यायमैं विषयनतैं वैराग्य कह्याहै।
४ चौथे अध्यायमैं विरक्तोंकी आख्यायिका कहीहै।
५ पंचमै अध्यायमैं परपक्षका खंडन कह्याहै।
६ छठे अध्यायमैं सारे अर्थका संक्षेपतैं संग्रह कियाहै ॥

प्रकृतिपुरुषके विवेकतैं पुरुषका असंगज्ञान सांख्यशास्त्रका प्रयोजन है ॥ ताका बी त्वंपदके लक्ष्यअर्थशोधनद्वारा महावाक्यजन्य-ज्ञानमैं उपयोग होनैतैं मोक्षही फल है ॥ तैसैं—

॥ ५२१ ॥ शंकराचार्यकृतभाष्य, रामानुज-भाष्य, मध्वभाष्य, भास्कराचार्यकृतभाष्य, विष्णु-स्वामीकृतभाष्य, विज्ञानेंद्रभिक्षुकृतभाष्य, नीलकंठ-भाष्य, इत्यादिभाष्यरूप व्याख्यान ॥

॥ ५२२ ॥ इहां भाष्यशब्दकरि श्रीशंकराचार्यके शिष्यप्रशिष्यनके किये तिस भाष्यके व्याख्यानोंका बी ग्रहण है ॥ वे भाष्यके व्याख्यान अनेक हैं। तिनके नाममात्रका कीर्तन हमनैं पंचदशीगत तृप्तिदीपके १०२ वें श्लोकके टिप्पणविषै कियाहै। तहां देखलेना ॥

॥ ५२३ ॥ उपासनारूप धर्म ॥

॥ ४९२ ॥ योगशास्त्रका फल औ शारीरक उक्तिसैं अविरोध ॥

योगशास्त्र चारिपादरूप है। पतंजलि ताका कर्त्ता है, सो पतंजलि शेषका अवतार है। एकऋषि संध्याउपासन करेथा, ताकी अंजलिमैं प्रकट होयके पृथिवीमैं पड्याहै। यातैं पतंजलि नाम कहियेहै ॥ तानैं—

१ शरीरका रोगरूपी मल दूरि करनै वास्ते चिकित्साग्रंथ कियाहै ॥ औ—

२ अशुद्धशब्दका उच्चारणरूपी जो वाणीका मल है, ताके नाशकूं पाणिनीव्याकरणका भाष्य कियाहै ॥ तैसैं—

३ विक्षेपरूप अंतःकरणका मल है, ताके नाशकूं योगसूत्र कियेहैं ॥ तहां—

१ प्रथमपादमैं चित्तवृत्तिका निरोधरूप समाधि औ ताके साधन अभ्यासवैराग्यादिक कहेहैं ॥ तैसैं—

२ विक्षिप्तचित्तकूं समाधिके साधन, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, औ समाधि, ये आठ समाधिके अंग द्वितीयपादमैं कहेहैं।

३ तृतीयपादमैं योगकी विभूति कहीहै।

४ चतुर्थपादमैं योगका फल मोक्ष कह्याहै।

इसरीतिसैं योगशास्त्र बी ज्ञानसाधन निदिध्यासनकूं संपादनद्वारा मोक्षका हेतु है॥ औ—

शारीरक सूत्रमैं जो सांख्ययोगका खंडन कियाहै, सो तिनके व्याख्यान जो उपनिषदनसैं विरुद्ध कियेहैं, तिनका खंडन कियाहै। सूत्रनका नहीं ॥ तैसैं—

॥ ४९३ ॥ पांचरात्र औ पाशुपततंत्र-आदिकका फल ॥

न्यायवैशेषिकका खंडन बी विरुद्धव्याख्यानका है।

तैसैं नारदनै पंचरात्रनाम तंत्र कियाहै। तामैं वासुदेवमैं अंतःकरण स्थापन कह्याहै, ताका बी अंतःकरणकी स्थिरतासैं ज्ञानद्वारा मोक्षही फल है। सारे वैष्णवग्रंथ पंचरात्रके अंतर्भूत हैं। सो पंचरात्र धर्मशास्त्रके अंतर्भूत है।

तैसैं पाशुपततंत्रमैं पशुपतिका आराधन कह्याहै। ताका कर्त्ता पशुपति है। ताका बी अंतःकरणकी निश्चलताद्वारा मोक्षसाधन ज्ञान फल है ॥ और—

॥ ४९४ ॥ शैवग्रंथादिकनका फल औ वाममार्ग।

जो शैवग्रंथ हैं, सो सारे पाशुपततंत्रके अंतर्भूत हैं ॥

तैसैं गणेश, सूर्य, देवीकी उपासनाबोधक ग्रंथनका चित्तकी निश्चलताद्वारा ज्ञान फल है औ सर्वका धर्मशास्त्रमैं अंतर्भाव है। परंतु—

देवीकी उपासनाके बोधक ग्रंथनमैं दो-संप्रदाय हैं:—एक दक्षिणसंप्रदाय औ दूसरी उत्तर-संप्रदाय है। उत्तरसंप्रदायकूं वाममार्ग कहैहैं॥ तिनमैं—

१ दक्षिणसंप्रदायकी रीतिसैं जिन ग्रंथनमैं देवीकी उपासना है, सो तौ धर्मशास्त्रके अंतर्भूत है ॥ औ—

२ वाममार्ग जिन ग्रंथनमैं है, सो धर्मशास्त्रसैं विरुद्ध है, यातैं अप्रमाण है ॥

यद्यपि वामतंत्र शिवनै कियाहै तथापि सकलशास्त्र औ वेदसैं विरुद्ध है, यातैं प्रमाण नहीं ॥

जैसैं विष्णुके बुद्धअवतारनै नास्तिकग्रंथ कियेहैं सो वेदविरुद्ध हैं ॥ यातैं प्रमाण नहीं। तैसैं शिवकृत वामतंत्र बी अत्यंतविरुद्ध है। मदिरादिक अत्यंतअशुद्ध पदार्थनका तामैं ग्रहण लिख्याहै। औ उत्तमपदार्थनके जो नाम हैं,

सोई मलिन पदार्थनके नाम लोकवंचनके निमित्त कहेहैं । मदिराका नाम तीर्थ । मांसका नाम शुद्ध । मदिरापात्रका नाम पद्मा । प्याजका नाम व्यास । लसुनका नाम शुकदेव । मदिराकारी कलालका नाम दीक्षित कहेहैं ॥ तैसें वेश्यासेवी चर्मकारी आदिक चांडालीसेवीकूं प्रागसेवी काशीसेवी कहेहैं ॥ औ भैरवीचक्रमें स्थित जो चांडालादिक हैं, तिनकूं ब्राह्मण कहेहैं । औ अत्यंत व्यभिचारिणीकूं योगिनी औ व्यभिचारीकूं योगी कहेहैं । ऐसें अनेकप्रकारसें निषिद्ध तिनका व्यवहार है । पूजनके समै अनेकदोषवती स्त्रीकूं उत्तमशक्ति कहेहैं । जातिकी चांडाली अतिव्यभिचारिणी रजस्वलास्त्रीकूं देवीबुद्धिसें पूजन करैहैं । ताकी उच्छिष्टमदिरा पान करैहैं औ अधिकमदिरापानसें जो वमन करिदेवैं, ताकूं पृथिवीमें नहीं गिरनै देवैंहैं । किंतु आचार्यसहित दूसरे सावधान भक्षण करैहैं । वमनकूं भैरवी कहेहैं ॥ औ........... में जिन्हा लगायके मंत्रनका जप करैहैं ॥ १ मदिरा, २ मांस, ३ मत्स्य, ४ मुद्रा, औ ५ मंत्र, इन पंच मकारकूं भोगमोक्षनिमित्त सेवन करैहैं ॥ प्रथमद्वितीयादिक तिन मकारनके अप्रसिद्ध नामनतें व्यवहार करैहैं । इसतें आदिलेके वामतंत्रका सकलव्यवहार इसलोकतें औ परलोकतें भ्रष्ट करैहै। इसी कारणतें कर्णच्छेदी योगी औ अवधूतगुसांई तैसें अनेकसंन्यासी औ ब्राह्मणादिक वाममार्गकूं सेवन करैहैं तौ बी लोकवेदनिंदित जानिके गुप्त राखैहैं ॥

अधिक क्या कहूं? वामतंत्रकी रीति सुनिके म्लेच्छके बी रोमांच होय जावैं । ऐसा निंदित वामतंत्र है ॥ सर्वंगी जो अभक्षण करैहैं, सो सारे निंदितमार्ग वामतंत्रमें कहेहैं । अतिनीच व्यवहार लिखनै योग्य नहीं । यातें विशेषप्रकार लिख्या नहीं । सर्वथा वामतंत्र त्यागनै योग्य है ॥ तैसें—

॥ ४९५ ॥ ॥ नास्तिकमत ॥

नास्तिकमत बी त्यागनै योग्य है । नास्तिकनके षट्भेद हैंः—१माध्यमिक, २ योगाचार, ३ सौत्रांतिक, ४ वैभाषिक, ५ चार्वाक औ ६ दिगंबर । ये छह वेदकूं प्रमाण नहीं मानैहैं । तिनका आपसमें विलक्षणसिद्धांत है ॥

१ माध्यमिक शून्यवादी हैं ।

२ योगाचारके मतमें सारे पदार्थ विज्ञानसें भिन्न नहीं । विज्ञानही तत्त्व है । सो विज्ञान क्षणिक है ।

३ सौत्रांतिकमतमें विज्ञानका आकार बाह्यपदार्थ विषयविना होवै नहीं । यातें विज्ञानतें बाह्यपदार्थनका अनुमान होवैहै । इसरीतिसें सौत्रांतिकमतमें अनुमानप्रमाणके विषय बाह्यपदार्थ हैं । प्रत्यक्ष नहीं । और स्थिर नहीं । किंतु सारे पदार्थ क्षणिक हैं ॥ औ—

४ वैभाषिकमतमें बाह्यपदार्थ क्षणिक तौ हैं, परंतु प्रत्यक्षप्रमाणके विषय हैं । इतना भेद है ॥

ये चारी मत सुगतके हैं ॥

५ चार्वाकमतमें पदार्थ क्षणिक नहीं । परंतु तिसके मतमें देह आत्मा है ॥ औ—

६ दिगंबरमतमें देह आत्मा नहीं । देहसें आत्मा भिन्न है । परंतु जितना देहका परिमाण होवै, उतना आत्माका परिमाण है ॥

इसरीतिसें इनका आपसमें मतका भेद है । और बी इनकी आपसमें मतकी विलक्षणता बहुत है । परंतु सारे वेदके विरोधी हैं । यातें

॥ ५२४ ॥ पलांडुका कहिये कांदेका ॥

॥ ५२५ ॥ वेश्याका सेवन करनैवाला ॥

॥ ५२६ ॥ चांडालीका सेवन करनैवाला ॥

नास्तिक हैं। इसीकारणतैं तिनके मतका उपपादन औ खंडन विशेषकरिके लिख्या नहीं ॥ इसरीतिसैं—

॥ ४९६ ॥ साहित्यआदिकके तात्पर्यपूर्वक तर्कदृष्टिका सारग्राही निश्चय ॥

वाममार्ग औ नास्तिक मतनके ग्रंथ यद्यपि संस्कृतवाणीरूप हैं, तथापि वेदबाह्य हैं। यातैं वेदके अनुसारी विद्याके प्रस्थान अष्टादशही हैं ॥

और मम्मटआदिकनै जो साहित्यग्रंथ कियेहैं तिनका बी कामशास्त्रमैं अंतर्भाव है। तैसैं सकलकाव्यनका बी किसीकौं कामशास्त्रमैं औ किसीकौं धर्मशास्त्रमैं अंतर्भाव है ॥

इसरीतिसैं अष्टादशविद्याके प्रस्थान सारे ब्रह्मज्ञानद्वारा मोक्षके हेतु हैं। कोई साक्षात्‌ज्ञानका हेतु है। कोई परंपरातैं ज्ञानका हेतु है। यह तर्कदृष्टिनै सकलशास्त्रनका अभिप्राय निश्चय किया ॥

यद्यपि उत्तरमीमांसाविना सारे शास्त्र जिज्ञासुकूं हेय हैं। यह शारीरकमैं सूत्रकारभाष्यकारनै प्रतिपादन कियाहै। यातैं अन्यशास्त्र बी मोक्षके उपयोगी हैं। यह कहना संभवै नहीं। तथापि सारग्राहीदृष्टिसैं तर्कदृष्टिनैं यह सार निश्चय किया ॥

॥ ५२७ ॥ अलंकारके ग्रंथ ॥

॥ ५२८ ॥ नायकाभेद औ रसभेदआदिक अर्थके प्रतिपादक काव्यग्रंथका ॥

॥ ५२९ ॥ भगवत्‌चरित्रके प्रतिपादक काव्यग्रंथका ॥

॥ ५३० ॥ इहां किसी सारग्राही दृष्टिवाले पंडितका वचन है:—

॥ ४९७ ॥ तर्कदृष्टिका एकविद्वान्‌सैं मिलाप ॥

॥ दोहा ॥

सुनि प्रसिद्ध विद्वान पुनि,
मिल्यो आप तिहि जाय ॥
निश्चय अपनो ताहि तिहि,
दीनो सकल सुनाय ॥ २२ ॥

टीका:—गुरुद्वारा सुनें अर्थमैं बुद्धिकी स्थिरताके निमित्त सकलशास्त्रनका अभिप्राय विचार्‌या, तौ बी फेरि संदेह हुवा:—जो शास्त्रनका अभिप्राय मैं निश्चय किया सोई है अथवा अन्य अभिप्राय है ? । काहेतैं ? तर्कदृष्टि कनिष्टअधिकारी कह्याहै । यातैं वारंवार कुतर्कतैं संदेह होवैहै। ताकी निवृत्तिवास्तै अन्यविद्वान्‌के निश्चयतैं अपनै निश्चयकी एकता करनैकूं गया ॥

॥ दोहा ॥

तर्कदृष्टिके वैन सुनि,
सो बोल्यो बुधसंत ॥
जो मोसूं तैं यह कह्यो,
सोइ मुख्यसिद्धांत ॥ २३ ॥

॥ श्लोकः ॥

भक्तिज्ञाने यत्र विष्णोर्यत्र वेदाः परा प्रमा ॥
मतानि तानि सर्वाणि जीवोद्धारस्य हेतवः ॥ १ ॥

अस्यार्थः—जिन मतोंविषै विष्णुके (व्यापकपरमात्माके) भक्ति किंवा ज्ञान हैं, फिर जिन मतोंविषै चारीवेद परमप्रमाण हैं, वे सर्वमत साक्षात्‌ किंवा परंपरातैं जीवनके उद्धारके हेतु हैं ॥ १ ॥

संशय सकल नसाय यूं,
लख्यो ब्रह्म अपरोछ ।
जग जान्यो जिन सब असत,
तैसें बंध रु मोछ ॥ २४ ॥

॥ ४९८ ॥ ज्ञानीकूं इच्छाका संभव औ इच्छाके अभावका अभिप्राय ॥

सेष रह्यो प्रारब्ध यूं,
इच्छा उपजी येह ॥
चलि तत्कालहि देखिये ,
जननिजनक जुत गेह ॥ २५ ॥

टीकाः—"ज्ञानीका सकलव्यवहार अज्ञानीकी न्यांई प्रारब्धसें होवैहै" यह पूर्व कहीहै। यातें इच्छा संभवैहै। औ कहूं शास्त्रमें ऐसा लिख्याहैः—ज्ञानीकूं इच्छा होवै नहीं । ताका यह अभिप्राय नहींः—ज्ञानीका अंतःकरण पदार्थकी इच्छारूप परिणामकूं प्राप्त होवै नहीं । काहेतें? अंतःकरणके इच्छादिक सहजधर्म हैं औ—

अंतःकरण यद्यपि भूतनके सत्वगुणका कार्य कह्याहै तथापि रजोगुणतमोगुणसहित सत्वगुणका कार्य है। केवलसत्वगुणका नहीं । केवलसत्वगुणका कार्य होवै तौ चलस्वभाव अंतःकरणका नहीं हुवाचाहिये । तैसें राजसीवृत्ति कामक्रोधादिक औ मूढतादिक तामसीवृत्ति किसी अंतःकरणकी नहीं हुईचाहिये। यातैं केवलसत्वगुणका अंतःकरण कार्य नहीं । किंतु अप्रधानरजोगुणतमोगुणसहित प्रधानसत्वगुणवाले भूतनतैं अंतःकरण उपजैहैं, यातैं अंतःकरणमैं तीनूं गुण रहैहैं। सो तीनूं गुण बी पुरुषनके जितने अंतःकरण हैं तिनमैं सम नहीं । किंतु न्यूनअधिक हैं। यातैं गुणोंकी न्यूनता-अधिकतासैं सर्वके विलक्षणस्वभाव हैं । इसरीतिसैं तीनूंगुणोंका कार्य अंतःकरण है ॥

जितनै अंतःकरण रहै उतनै रजोगुणका परिणामरूप इच्छाका अभाव बनै नहीं । यातैं ज्ञानीकूं इच्छा होवै नहीं। ताका यह अभिप्राय हैः—अज्ञानी औ ज्ञानी दोनूंकूं इच्छा तौ समान होवैहै । परंतु—

१ अज्ञानी तौ इच्छादिक आत्माके धर्म जानैहैं । औ—

२ ज्ञानीकूं जिस कालमैं इच्छादिक होवैहैं, तिसकालमैं बी आत्माके धर्म इच्छादिकनकूं जानै नहीं । किंतु काम, संकल्प, संदेह, राग, द्वेष, श्रद्धा, भय, लज्जा, इच्छादिक अंतःकरणके परिणाम हैं। यातैं अंतःकरणके धर्म जानैहैं ॥

इसरीतिसैं इच्छादिक होवै बी हैं । आत्माके धर्म इच्छादिक ज्ञानीकूं प्रतीत होवैं नहीं। यातैं ज्ञानीमैं इच्छाका अभाव कह्याहै ॥ तैसें—

मनवाणीतनसैं जो व्यवहार ज्ञानी करै सो सारा ज्ञानीकूं आत्मामैं प्रतीत होवै नहीं। किंतु सारी क्रिया मनवाणीतनमैं है ॥ औ—

"आत्मा असंग है" यह ज्ञानीकौं[५३१] निश्चय है। यातैं सर्वव्यवहारकर्त्ता बी ज्ञानी अकर्ता है। इसी कारणतैं श्रुतिमैं यह कह्या हैः— "ज्ञानतैं उत्तर किये जो वर्तमानशरीरमैं शुभअशुभकर्म, तिनके फल पुण्यपापका संबंध होवै नहीं ॥"

प्रारब्धबलतैं अज्ञानीकी न्यांई सर्वव्यवहार औ ताकी इच्छा संभवैहै ॥

॥ ४९९ ॥ शुभसंततिराजाका प्रसंग
॥ ४९९–५०८ ॥

शुभसंततिनाम राजाकूं त्यागिके तीनूं पुत्र

निकसे। तहां पुत्रकी कथा कही। अब पिताका प्रसंग कहैहैं:—

॥ दोहा ॥

पुत्र गये लखि गेहतैं,
पितु चित उपज्यो खेद ॥
सूनो राज न तिनि तज्यो,
नहिं यथार्थ निर्वेद ॥ २६ ॥

टीकाः-पुत्र ग्रहतैं निकसे, तब राजाकूं तीव्रवैराग्यके अभावतैं तिनके वियोगका दुःख हुवा। तैसैं मंदवैराग्य हुवाहै । यातैं विषय-भोगका सुख होवै नहीं औ बाहरि निकसनैकी इच्छा करी। सो पुत्रनके निकसनैतैं सूनाराज छोडि सकै नहीं। यातैं बी दुःख हुवा। जो तीव्रवैराग्य होता तौ सूनाराजबी त्यागि देता, सो वैराग्य तीव्र हुआ नहीं। किंतु मंद हुआ है, यातैं त्यागि सकै नहीं। औ भोगनमैं आसक्ति नहीं। यातैं उभयथा खेदही है । यथार्थ-निर्वेद कहिये तीव्रवैराग्य नहीं ॥ मंदवैराग्यका फल उपास्यकी जिज्ञासा कहैहैं:-

॥ ५०० ॥ शुभसंततिका पंडितोंसैं प्रश्नः- "ऐसा कौन देव है, जो सोवै नहीं. किंतु जागताहै ?" ॥

॥ चौपाई ॥

सुभसंतति पितु सो बडभागा।
भयो प्रथम तिहिं मंदविरागा ॥
जिज्ञासा उपजी यह ताकूं।
देव ध्येय को ध्याऊं जाकूं ? ॥ २७ ॥
पंडित निरनो करन बुलाये।
यथायोग्य आसन बैठाये ॥
प्रश्न कियो यह सबके आगै।
अस को देव न सोवै जागै ? ॥२८॥
पुरुषारथ हित जन जिहि जाचै ॥
भक्तिमानके मनमैं राचै ॥
सुनि यह पृथिवीपतिकी बानी।
इक तिनमैं बोल्यो सुज्ञानी ॥ २९ ॥

॥ ५०१ ॥ विष्णुउपासकका उत्तर ॥

सुन राजा तुहि कहूं सु देवा।
सिव विरंचिलागे जिहि सेवा ॥
संख चक्र धारी हितकारी।
पद्म गदा धर परउपकारी ॥ ३० ॥
मंगलमूर्ती विस्नु कृपालू।
निज सेवक लखि करत निहालू ॥
सक्ति गनेस सूर सिव जे हैं।
सब आज्ञा ताकीमैं ते हैं ॥ ३१ ॥
भारत सकलग्रंथ यह भाखै।
पद्मपुरान तापनी आखै ॥
विस्नुरूपतैं उपजत सबही।
परैं भीर जाचैं तिहि तबही ॥ ३२ ॥

[तापनी कहीये नृसिंहतापनी । रामतापनी गोपालतापनी उपनिषद्]

विविधवेषको धरि अवतारा।
सबदेवनकूं देत सहारा ॥
यातैं ताकी कीजै पूजा।
विस्नुसमान सेव्य नहिं दूजा ॥ ३३ ॥
विस्नु भक्त सिव उत्तम कहिये।
तथापि सेव्य स्वरूप न लहिये ॥

रूप अमंगल सिवको सवसम ।
ध्यान करैं नहिं ताकौ यूं हम ॥३४॥
[सव कहिये मुरदा, ताके सम अमंगल]

राख डमरु गजचर्म कपाला ।
धरै आप किहिं करै निहाला ॥
ताको पूत गनेस हु तैसो ।
रूप विलच्छन नरपसु जैसो ॥ ३५ ॥

सठ हठतैं ध्यावत जो देवी ।
तासमरूप धरत तिहिं सेवी ॥
तिय निंदित असुची न पवित्रा ।
औगुन गिनैं न जात विचित्रा ॥३६॥

कपट कूटको आकर कहिये ।
पराधीन निज तंत्र न लहिये ॥
ऐसो रूप जु चहिये जाकूं ।
सो सेवहु नर खरसम ताकूं ॥ ३७ ॥

भ्रमत फिरै निसदिन यह भानू ।
रहत न निश्चल छन इक थानू ॥
भ्रमतौ फिरै उपासक ताको ।
तिहि समान सेवक जौ जाको ॥३८॥

आन देव यातैं सव त्यागे ।
सेवनीय इक हरि नित जागे ॥
पूजन ध्यान करन विधि जो है ।
नारदपंचरात्रमैं सो है ॥ ३९ ॥

टीकाः—विष्णुकूं त्यागिके प्रसिद्ध जो चारिउपासना हैं, तिन एकएकका निषेध कियेतैं बी स्मार्त्तउपासनाका बी निषेध किया। काहेतैं ? पांचूंदेवनकूं समबुद्धिकरिके उपासै, ताकूं स्मार्तउपासना कहैहैं । शिवआदिक चारिदेवनकूं विष्णुकी समता निषेधनैतैं स्मार्त्तउपासनाका निषेध बी अर्थसैं कियाहै॥

॥ ५०२ ॥ शिवसेवकका उत्तर ॥

सिवसेवक मुनि सुनि तिहि बैना ।
क्रोधसहित बोल्यो चल नैना ॥
सुन राजन वानी इक मोरी ।
जामैं वचन प्रमान करोरी ॥ ४० ॥

सिवसमान आन को कहिये ।
मांगै देत जाहि जो चहिये ॥
सब विभूति हरिकूं दै मागी ॥
धरत विभूति आप नितत्यागी ॥४१॥

चर्म कपाल हेतु इहि धारै ।
सम नहिं उत्तम अधम विचारै ॥
नग्न रहत उपदेसत येहि ।
नहिं विरागसम सुख व्है केही ॥४२॥

टीकाः—वैष्णवनै चर्मकपालादिक निंदित वस्तुका धारण आक्षेप किया। ताका यह समाधान हैः—महादेवकूं सर्वपदार्थनमैं समबुद्धि[५३२] है॥

॥ ५३२ ॥ महादेवकूं आत्माराम होनैतैं सर्वपदार्थनमैं सम कहिये तुल्यता (मिथ्यापनै)की बुद्धि है । किंवा सम कहिये एक (ब्रह्म) की बुद्धि है । यातैं सो सर्वविभूतनविषै विरक्त होयके चर्मकपालादिक निंदितवस्तुकूंही धारताहै । सो महिम्नस्तोत्रविषै पुष्पदंताचार्यनै बी कहाहैः—"हे वरद ! इंद्रआदिक देव तुम्हारी भ्रकुटीसैं रचित तिस तिस समृद्धिकूं धारतेहैं औ तुम्हारे पास कुटुंबका उपकरण (साधन) नंदिकेश्वर, खटांग (चारपाइएकी पट्टिरूप काष्ठमय शस्त्र), कुठार, गजचर्म, भस्म औ सर्प हैं । इस हेतुतैं जानियेहैं कि स्वात्माराम पुरुषकूं विषयरूप मृगतृष्णा (जलबुद्धिसैं ग्रहण करीहुई सूर्यकी किरण) भ्रमावती नहीं" ॥

द्वितीयपादका अन्वय यह है:—समविचारै। उत्तम अधम नहीं विचारै॥

सदावर्त ऐसो दे भारी।
कासीपुरी मरे नरनारी॥
सो सायुज्यमुक्तिकूं[५३३] जावै।
गर्भवाससंकट नहिं पावै ॥ ४३ ॥

सिवसमान नरनारी ते सब।
लहत सु दिव्यभोग सगरे तब॥
करत आप अद्वयउपदेसा।
तजत लिंग यूं ब्रह्मप्रवेसा ॥ ४४ ॥

ऊचनीच रंचहु नहिं देखै।
मुक्ति सबनकूं दे इक लेखै॥
सिवसमान राजन को दाता।
भक्त अभक्त सबनको त्राता ॥ ४५ ॥

विस्नुसुभाव सुन्यो हम ऐसो।
जगमैं जन प्राकृत व्है तैसो॥
त्राता भक्त अभक्त न त्राता।
यह प्रसिद्ध सबजगमैं नाता ॥ ४६ ॥

हरिसेवक हर सेव्य बखान्यो।
रामचंद्र रामेश्वर मान्यो॥
स्कंदपुरान व्यास बहु भाख्यो।
हरिसेवक हर सेव्यहि राख्यो ॥ ४७ ॥

कह्यो जु भारत पद्मपुराना।
सबदेवनतैं हरि अधिकाना॥
भारततातपर्य नहिं देख्यो।
जो अप्पयदीछित[५३४] बुध लेख्यो ॥ ४८ ॥

टीका:—वैष्णवनै यह कह्या:—"भारतादिक ग्रंथनमैं विष्णु सर्वदेवनका पूज्य कह्याहै। सो बनै नहीं। काहेतैं? भारतग्रंथका तात्पर्य देखेतैं शिवकूंही ईश्वरता प्रतीत होवैहै। यह अप्पय-दीक्षित नाम विद्वान्नै सकलपुराणइतिहासका तात्पर्य लिख्याहै॥

तहां भारतमैं यह प्रसंग है:—अश्वत्थामानै नारायणअस्त्र औ आग्नेयअस्त्रका प्रयोग किया, तब बहुतसेनाका तौ संहार बी हुवा। परंतु पंचपांडवोंमैं कोई मन्या नहीं। तब रथकूं त्यागिके धनुर्वेद औ आचार्यकूं धिकार करता बनकूं चल्या। तहां व्यास-भगवान् ताकूं मिले औ यह कह्या:—"हे ब्राह्मण! तूं आचार्य औ वेदकूं धिकार मति कहू। ये अर्जुन कृष्ण दोनूं नरनारायणरूप हैं। इनूंनै शिवका पूजन बहुत कियाहै। यातैं इनकी भक्तिके आधीन हुवा त्रिशूली महादेव इनके रथके आगै रहैहै। यातैं इन दोनूंके उपरि प्रयोग किये अनेकशस्त्रअस्त्रनकी सामर्थ्यकूं महादेव नाश करीदेवैहैं"॥

इस भारतप्रसंगतैं नारायणरूप कृष्णकी विभूति महादेवकी कृपातैं उपजीहै। यह सिद्ध होवैहै। यातैं विष्णुचरित्रके प्रतिपादक जो ग्रंथ हैं, सो शिवकी अधिकताकूं प्रतिपादन करैहैं। काहेतैं? तिन ग्रंथनमैं विष्णु सेव्य कह्याहै, सो विष्णु भारतप्रसंगतैं शिवका भक्त है यातैं जिस शिवकी भक्तितैं विष्णु सेव्य होवैहै, सो शिवही

॥ ५३३ ॥ शिवसमान ऐश्वर्ययुक्त शिवलोककूं ॥

॥ ५३४ ॥ ये पंडित दक्षिणदिशामैं शिव कांचीपुरी है, तिसविषै भयेहैं औ वे बडे शिवके उपासक थे। इनोनैं सिद्धांतलेशनाम वेदांतका ग्रंथ बी कियाहै॥

परमसेव्य है। इसरीतिसैं अप्पयदीक्षितनैं सकल वैष्णवग्रंथनका प्रतिपाद्य शिव कह्याहै ॥

॥ चौपाई ॥

सिव सबको प्रतिपाद्य बखान्यो ।
भक्तनमैं उत्तम हरि गान्यो ॥
ईस देव पद सबमैं कहिये ।
महतसहित इक सिवमैं लहिये ॥४९॥

टीकाः—महादेव, महेश, शिवकूं कहैहैं। औरनकूं देव ईश कहैहैं ॥

सिवतैं भिन्न असिव जो कहिये ।
तिहिं तजि सिव कल्यानहि लहिये ॥
जलसायी जिहिं नाम बखान्यो ।
सो जागै यह मिथ्या गान्यो ॥ ५० ॥

टीकाः—कल्याणकूं शिव कहैहैं, तातैं भिन्न अशिव है। ताका यह अर्थ सिद्ध हुवाः—शिवतैं भिन्न औरदेवता अशिव कहिये अकल्याणरूप हैं। तिन अकल्याणरूप देवतानकूं त्यागिके कल्याणरूप शिवकूं उपासै ॥

विख लख जब सबकूं उपज्यो डर ।
निर्भय किये सकल गर धरि गर ॥
जाको पूत गनेस कहावै ।
विघ्नजाल तत्काल नसावै ॥ ५१ ॥

कारजमैं कारन गुन होवै ।
यूं सिव विघ्न मूलतैं खोवै ॥
जन्ममरन दुःख विघ्न कहावै ।
तिहिं समूल सिवध्यान नसावै ॥५२॥

सेवनयोग्य सदाशिव एका ।
जागै सहित समाधि विवेका ॥
तंत्र पासुपत रीति जु गावै ।
त्यूं पूजनकरि ध्यान लगावै ॥ ५३ ॥

नारदपंचरात्रमत झूठो ।
यह परिमल परसंग अनूठो ॥
यातैं सिवसेवा चित लावै ।
पुरुषारथ जो चहै सु पावै ॥ ५४ ॥

टीकाः—नारदपंचरात्रका मत सूत्रभाष्यमैं खंडन कियाहै। ताके अनुसारी रामानुज आदिक नवीन वैष्णवनका मत कल्पतरुकी टीका परिमलमैं खंडन कियाहै ॥

॥ ५०३ ॥ गणेशपूजकका उत्तर ॥

सिवको पूत गनेस बतायो ।
कारनगुन कारजमैं गायो ॥
सुनि गनेसको पूजक बोल्यो ।
अस किय कोप सिंहासन डोल्यो॥५५॥

राजन सुन दोनूं ये झूठे ।
वचन सत्य सम कहत अनूठे ॥
सिवको पूत गनेस बतावै ।
पराधीनता तामैं गावै ॥ ५६ ॥

कहुं प्रसंग सुनहु इक ऐसो ।
लिख्यो व्यासभगवत मुनि जैसो ॥
चढे त्रिपुर मारनकूं सारे ।
हरिहरसहित देव अधिकारे ॥ ५७ ॥

॥ ५३५ ॥ श्रीशंकराचार्यकृत ब्रह्मसूत्रभाष्यके ऊपरि वाचस्पतिमिश्रकृत भामतीनिबंधनामक टीका है। तिसके व्याख्यानका नाम कल्पतरु है। ताका परिमलनामक व्याख्यान है। तामैं ॥

नहिं गनेसको पूजन कीनो ।
त्रिपुर न रंचहु तिनतैं छीनो ॥
पुनि पछिताय मनाय गनेसा ।
त्रिपुर विनास्यो रह्यो न लेसा ॥५८॥

भये समर्थ किये जिहि पूजा ।
सेवनयोग्य सु इक नहिं दूजा ॥
रामपूत दसरथको जैसै ।
विघ्नहरन सिवको सुत तैसै ॥ ५९ ॥

व्यास गनेसपुरान बनायो ।
सबको हेतु गनेस बतायो ।
हरि हर विधि रवि सक्ति समेता ।
तुंडीतैं[५३६] उपजत सब तेता ॥ ६० ॥

करत ध्यान जिहि छन जन मनमैं ।
नासत विघ्न प्रधान गननमैं ॥
विघ्नहरन यूं जागत निसदन ।
भक्तिसहित सेवहु तिहि अनछन॥६१॥

॥ ५०४ ॥ देवीभक्तका उत्तर ॥

हेतु गनेस सक्तिको सुनिके ।
भगतभागवत उचर्‍यो गुनिके ॥
सुन राजन बानी मम साची ।
तीनूं सकल कहत ये काची ॥ ६२ ॥

टीकाः—भगतभागवत कहिये भगवतीको भगत ॥

सूने देव सक्तिबिन सारे ।
मृतक देहसम लखि हत्यारे ॥

सक्तिहीन असमर्थ कहावै ।
सो कैसे कारज उपजावै ॥ ६३ ॥

जिन बहु सक्तिउपासन धारी ।
तातैं भये सकल अधिकारी ॥
हरि हर सूर गनेस प्रधाना ।
तिनमैं सक्ति देखियत नाना ॥६४॥

सक्ति लोकमैं भाखत जाकूं ।
रूप भगवतीको लखि ताकूं ॥

टीकाः—भगवतीके दो रूप हैं:—१ सामान्य औ २ विशेष ॥

१ सर्वपदार्थनमैं अपना कार्य करनैकी जो सामर्थ्यरूप शक्ति, सो भगवतीका सामान्यरूप है। औ—
२ अष्टभुजादिकसहित मूर्ति विशेषरूप है ॥

सामान्यरूप शक्तिके संख्यारहित अनंतअंश हैं। जामैं शक्तिके न्यूनअंश होवैं सो अल्पशक्ति होवैहै। असमर्थ कहियेहै ॥ जामैं शक्तिके अधिक अंश होवैं सो समर्थ कहियेहै ॥ विष्णुशिव आदिकनमैं शक्तिके अंश अधिक हैं। यातैं अधिकसमर्थ कहियेहैं ॥

इस रीतिसैं भगवतीका सामान्यरूप जो शक्ति ताके अंशनकी अधिकतासैं विष्णु, शिव, गणेश, सूर्यकी महिमा प्रसिद्ध है औ शक्तिसैं रहित होवै तौ जैसैं प्राणविना शरीर अमंगलरूप होवैहै, तैसैं सारे देव हत्यारे कहिये अमंगलरूप होय जावैं। यातैं जिस शक्तिकी अधिकतासैं देवनकी महिमा प्रसिद्ध है, सो महिमा शक्तिका है। तिन देवनका नहीं ॥ विष्णुशिव-आदिकननै भगवतीके सामान्यरूप शक्तिकी

[५३६] ॥ ५३६ ॥ शुंडादंडतैं ॥

अधिकउपासना करीहै । यातैं तिनमैं शक्तिके अंश अधिक हैं । यह पूर्वग्रंथनमैं भगवती-भक्तका अभिप्राय है ॥

जैसैं भगवतीके निराकाररूप शक्तिके अनंत-अंश हैं, तैसैं साकाररूपके बी अनंतअंश हैं । तिन साकारअंशनमैं कालीरूप प्रधान है औ माहेश्वरी, वैष्णवी, गौरी, गाणेशी-आदिक बी प्रधानअंश हैं । विष्णुकूं भगवतीकी उपासनतैं वैष्णवीनाम भगवतीके अंशका लाभ । तैसैं अन्यदेवनकूं भगवतीके उपासनतैं निजनिज माहेश्वरीआदिक अंशनका लाभ हुवाहै । तिनमैं बी भगवतीके विष्णु औ शिव दोनूं प्रधानभक्त हैं । काहेतें? ध्याताकूं ध्येयरूपकी प्राप्ति उपासनाकी परमअवधि है ॥ विष्णु-शिवकूं उपासनासैं ध्येयरूपकी प्राप्ति हुईहै, यातैं प्रधानउपासक हैं । यह अढाई चौपाईतैं प्रति-पादन करैहैं:—

॥ चौपाई ॥

लाख करोरि मात्रिका गन पुनि ।
तंत्रग्रंथ लखि अंस सकल गुनि ॥६५॥
काली ताको अंस प्रधाना ।
माहेश्वरी आदि लखि नाना ॥
हरि हर ब्रह्म सकल तिहिं ध्यावै ।
निजनिज अंसैं[५३८] कृपा तिहि पावै॥६६॥
ध्येयरूप ध्याता व्है जबही ।
सिद्ध उपासन लखिये तबही ॥
अस उपासना हरि अरु हरकी ।
नारीमूर्त्ति धरी तजि नरकी ॥ ६७ ॥

॥ दोहा ॥

अमृत मथनप्रसंगमैं,
हरि मोहिनीस्वरूप ॥
अर्धअंग शिवको लसै,
देवीरूप अनूप ॥ ६८ ॥

टीका:—मथनकरिके अमृत प्रगट किया, तब सुरअसुरनका विवाद मेटनैंमैं विष्णु असमर्थ हुवा । तब अपनै उपास्यरूप भगवतीका ऐसा एकाग्रचित्तसैं ध्यान किया, जातैं आप विष्णु उपास्यरूपकूं प्राप्त हुवा । ता रूपके माहात्म्यसैं असुर बी ताके अनुकूल हुये ॥ तैसैं शिवनै बी समाधिमैं ऐसा भगवतीका ध्यान किया, जातैं अर्धविग्रह शिवका उपास्यरूप हुवा । कदाचित् विक्षेपतैं समाधिका अभाव होवैहै । यातैं सारा-विग्रह शिवका उपास्यरूप नहीं ॥ इसरीतिसैं सारै देव भगवतीके उपासक हैं । सो उपासना दोरीतिसैं कहीहै:— दक्षिणआम्नायतैं और उत्तरआम्नायतैं । पूर्व दक्षिण आम्नाय कह्या । आगै उत्तरआम्नाय कहैहैं:—

॥ चौपाई ॥

भक्त भगवतीके हर हरि हैं ।
इन सम कौन उपासन करि हैं ॥
तदपि महामाया जो ध्यावै ।
तुरत सकल पुरुषारथ पावै ॥ ६९ ॥

॥ ५३७ ॥ ६३ सैं ६४ वीं चौपाईरूप पूर्व-उक्तग्रंथभागमैं भगवतीके भक्तका यह जो आगे कहियेगा सो अभिप्राय है ॥

॥ ५३८ ॥ हरिहरआदिक निज निज कहिये वैष्णवी माहेश्वरी आदिक भगवतीके अंशनकूं तिसकी कृपातैं पावैहैं । यह अर्थ देवीभागवतमैं स्पष्ट लिख्या है ॥

नहिं साधन जगमैं अस औरा ।
उपजै भोग मोछ इकठौरा ॥
भक्त भगवतीको जो जगमैं ।
भोगै भोग न आवत भगमैं ॥ ७० ॥

सिवकृत तंत्ररीति यह गाई ।
भक्तिभगवती अतिसुखदाई ॥
पंच मकार न तजिये कबहू ।
जिनहि सनातन सेवत सबहू ॥ ७१ ॥

कृस्नदेव बलदेव सुज्ञानी ।
प्रथमा पिवत सदा ज्यूं पानी ॥
औरप्रधान पुरातन जेते ।
सेवत सकल मकारहि तेते ॥ ७२ ॥

तिन सेवनकी जो विधि सारी ।
सिव निजमुख भाखी उपकारी ॥
सिवको वचन धरै जो मनमैं ।
लहै सुभोग मोछ इक तनमैं ॥ ७३ ॥

ग्रंथ भागवत व्यास बनायो ।
उपपुरान काली समुझायो ॥
भक्ति भगवतीकी इक गाई ।
पूजाविधि सगरी समुझाई ॥ ७४ ॥

ध्याता सकल भगवतीके हैं ।
हरि हर सूर गनेस जिते हैं ॥
सकल पिये प्रथमा मतिवारे ।
पूजत सक्ति मग्न मन सारे ७५ ॥

जगजननी जागै इक देवी ।
परमानंद लहै तिहि सेवी ॥

॥ ५०५ ॥ सूर्यभक्तका उत्तर ॥

सूर्यभक्त भगवतीको यह सुनि ।
क्रोध सहित बोल्यो इक मुनि पुनि ७६॥

सुन राजन बानी इक मोरी ।
भाखूं झूठ न सपथ करोरी ॥
अतिपापिष्ठ नीच मत याको ।
श्रवन सनेह सुन्यो तैं जाको ॥ ७७ ॥

औगुन जिते बखानत जगमैं ।
ते गिनियत गुनगन या भगमैं ॥
मद्य मलिनहि तीरथ राखत ।
सुद्ध नाम आमिषको आखत ॥७८॥

कहत और यूं सब विपरीता ।
संभुतंत्र[५३९] सेवी मति रीता ॥
दच्छिन संप्रदाय जो दूजी ।
यद्यपि श्रेष्ठ अनेक न पूजी ॥ ७९ ॥

तथापि बिन भानू सब अंधे ।
इन सबके मन जिनमैं बंधे ॥
करत भानु सगरो उजियारो ।
ता बिन होत तुरत अंधियारो ॥८०॥

और प्रकासक जगमैं जे हैं ।
अंस सबैं सूरजके ते हैं ॥

५३९ ॥ "शंभुतंत्र" कहिये पामरपुरुषनकी बी कहूं आस्ता रहै । इस अभिप्रायतैं वाममार्गके प्रतिपादक शिवतंत्र (वामतंत्र) है । ताके सेवन करने-वालेकी "मति रिता" कहिये बुद्धि युक्तिप्रमाणकरि शून्य होनैतैं खालीहै ॥

भानु समान कौन हितकारी ।
भ्रमत आप परहित मति धारी ॥८१॥
काल अधीन होत सब कारज ।
ताहि त्रिविध भाखत आचारज ॥
वर्तमान भावी अरु भूता ।
सूरज क्रिया करत यह सूता ॥ ८२ ॥
या विधि सकल भानुतें उपजे ।
भस्म होत सब जब वह कुपिजे ॥
भानुरूप द्वैभांति पिछानहु ।
निराकार साकारहि जानहु ॥ ८३ ॥
निराकार परकास जु कहिये ।
नामरूपमें व्यापक लहिये ॥
अधिष्ठान सबको सो एका ।
जगत विवर्त व्है जिहि अविवेका ८४
"अहं भानु" अस वृत्ति उदे जब ॥
तामें प्रगटि विनासत तम तब ॥८५॥

टीकाः—सूर्यके दो रूप हैंः—निराकार-प्रकाश औ साकारप्रकाश । तिन दोनूंमें निराकारप्रकाश सारे नामरूपमें व्यापक है । जाकूं वेदांती भातिशब्दकरिके व्यवहार करैहैं, सो निराकारप्रकाशरूप जो सूर्यका सामान्यरूप है, सो सारे जगत्का अधिष्ठान है ॥ ताके अज्ञानतें जगतरूपी विवर्त उपजैहै ॥ सोई निराकारप्रकाश अंतःकरणकी वृत्तिमें प्रतिबिंब-सहित ज्ञान कहियेहै ॥ "अहं भानु" ऐसी अंतःकरणकी वृत्ति प्रकाशके प्रतिबिंबसहित होवै, तब अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा जगत्की निवृत्ति होवैहै ॥

॥ ५४० ॥ प्रकाश ॥

॥ चौपाई ॥

सुनि साकाररूप यह ताको ।
होय चांदिनौं दिनमें जाको ॥
ताके अंस और बहुतेरे ।
चंद तारका दीप घनेरे ॥ ८६ ॥
यातें द्वैविधभानु बतायो ॥
ज्ञेय ध्येयको भेद जनायो ॥
वेद सकल याहीकूं भाखत ।
रूप प्रकास सत्य तिहिं आखत॥८७॥

टीकाः—निराकार साकारभेदतें भानुके दोरूप हैं। तिनमें निराकाररूप ज्ञेय है । साकाररूप ध्येय है । याहीकूं वेदांतनमें निर्गुणसगुणभेदतें दोप्रकारका ब्रह्म कहैहैं ॥

जामें लेस न तमको कबही ॥
लखि तिहि जग जन जागत सबही ८८
कबहु न सोवै सो यूं जागै ।
ध्यान करत ताको तम भागै ।
औरहि जागत भाखत सगरे ।
राजन जानि झूठ ते झगरे ॥ ८९ ॥

॥ ५०६ ॥ उक्तमतके अनुवादपूर्वक स्मार्त्तमत ॥

ऐसे पांचउपासक बोले ।
निजगुण अवगुण परके खोले ॥
पंडित और अनेक जु आये ।
भिन्नभिन्न निज मत समुझाये ॥ ९० ॥

टीकाः—जैसैं पांचउपासक परस्परविरुद्ध

॥ ५४१ ॥ वेदके अंतभागरूप उपनिषद्नमैं ॥

वचन बोले, तैसैं अनेकपंडित निजनिज-बुद्धिके अनुसार विरुद्धही बोलैं ॥

जैसैं इन पांचूंका परस्परविरुद्ध मत है, तैसैं स्मार्त्त जो पंडित पांचूंदेवनमैं भेदबुद्धि करै नहीं, ताका मत वी इन सबतैं विरुद्ध है। काहेतैं ?—

वैष्णवका यह मत है:—विष्णुसमान और देव नहीं। सारे विष्णुके भक्त हैं। और विष्णुके जो रामकृष्णनारायणआदिक नाम हैं, तिनके समान जो अन्यदेवनके नामकूं जानै, सो नामापराधी[५४२] है। ताकूं रामादिकनामउच्चारणका यथार्थफल होवै नहीं ॥

तैसैं शैवमतमैं शिवसमान अन्यदेव नहीं औ शिवके नामउच्चारणका फल विष्णुनामउच्चारणतैं होवै नहीं ॥

इसरीतिसैं सर्वके मतमैं अपनैअपनै उपास्य-देवके समान अन्यदेव नहीं औ स्मार्त्तमतमैं सारे देव सम हैं। यातैं ताका मत वी पांचूंवातैं विरुद्ध है ॥ तैसैं—

॥५०७॥ षट्शास्त्रनकी परस्परविरुद्धता ॥

१ सांख्य, २ पातंजल, ३ न्याय, ४ वैशेषिक, ५ पूर्वमीमांसा, औ ६ उत्तरमीमांसा, इन षट्शास्त्रनका मत वी परस्परविरुद्ध है। काहेतैं ?

१ सांख्यशास्त्रमैं ईश्वरका अंगीकार नहीं।

२ योग[५४३]मैं निरपेक्षप्रकृतिपुरुषके विवेकज्ञानतैं मोक्ष मानीहै। औ पातंजलशास्त्रमैं ईश्वरका अंगीकार औ समाधितैं मोक्ष मानीहै। यह विरोध है॥

३-४ न्यायमतमैं चारप्रमाण औ वैशेषिकमतमैं दोयप्रमाण।यह विरोध है॥ तैसैं न्याय-वैशेषिकका और वी आपसमैं बहुतविरोध है। जिज्ञासुकूं अपेक्षित नहीं। यातैं लिख्या नहीं॥

५ तैसैं पूर्वमीमांसामैं ईश्वरका अंगीकार नहीं। मोक्षरूप नित्यसुखका अंगीकार नहीं। किंतु कर्मजन्यविषयसुखही पुरुषार्थ है ॥ और—

६ उत्तरमीमांसामैं ईश्वरका मोक्षका अंगीकार। विषयसुख पुरुषार्थ नहीं॥ और उत्तर-

---

॥ ५४२ ॥ जाके दशनामापराधमैंसैं कोई बी नामापराध होवै सो **नामापराधी** कहियेहै। वे दश-नामापराध ये हैं:—॥ श्लोकः ॥

सन्निंदाऽसति नामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधी-रश्रद्धा श्रुतिशास्त्रदैशिकगिरां नाम्न्यर्थवादभ्रमः ॥ नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागो हि धर्मान्तरैः साम्यं नाम्नि जपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश १

अस्यार्थः—१ सत्पुरुषनकी निंदा, २ असाधु-पुरुषके पास नामके महिमाकी कथा, ३ विष्णुका शिवसैं भेद, ४ शिवका विष्णुसैं भेद, ५ श्रुति-वाक्यमैं अश्रद्धा, ६ शास्त्रवाक्यमैं अश्रद्धा, ७ गुरु-वाक्यमैं अश्रद्धा, ८ नामविषै अर्थवादका (महिमाकी स्तुतिका)भ्रम, ९ 'अनेकपापका नाशक नाम मेरे पास है' इस विश्वाससैं निषिद्धकर्मका आचरण। उक्तविश्वाससैंही विहितकर्मका त्याग औ १० अन्य-धर्मोंसैं (अन्यदेवनके नामोंसैं) तुल्यता भगवत्-नामविषै जाननी। ये दश शिव औ विष्णुके जपविषै नामापराध हैं ॥ १ ॥

याहीतैं कोई महात्मानै भाषादोहाविषै कहा है:—

॥ दोहा ॥

राम राम सब को कहै,
दशरित कहै न कोय ॥
एकवार दशरित कहै,
तु कोटिजज्ञफल होय ॥ १ ॥

इहां "दशरित कहै न कोय" इस द्वितीय-पादका यह अर्थ है:—दशअपराधनसैं विना (रहित होयके) रामनामकूं कोई नहीं कहता। अन्यअर्थ स्पष्ट ॥

॥ ५४३ ॥ **योगनिरपेक्ष** कहिये समाधिरूप योगकी अपेक्षासैं रहित केवल ॥

मीमांसाका मत या ग्रंथमैं स्पष्टही है । सर्वशास्त्रनका मत यातैं विरुद्ध है ॥ औरनमैं भेदवाद है । यामैं भेदका खंडन औ अभेदनका प्रतिपादन है ॥

इसरीतिसैं सकलशास्त्रनके सिद्धांत परस्पर-विरुद्ध हैं ॥

॥ ५०८ ॥ तर्कदृष्टिका पितासैं मिलाप ॥

॥ चौपाई ॥

वचन विरुद्ध सुने जब राजा ।
यह संसे उपज्यो तिहि ताँजा[544] ॥
इनमैं कौन सत्य बुध भाखत ।
युक्ति प्रमान सकल सम आखत ॥९१॥

संसै सोक दुखित यूं जियमैं ।
को उपास्य यह लख्यो न हियमैं ॥
चिंता हृदय हुई यह जाकूं ।
निजसंदेह सुनाऊं काकूं ॥ ९२ ॥

सास्त्रनिपुन पंडित जग जेते ।
सुने विरुद्ध बकत यह तेते ॥
यूं चिंतत बहुकाल भयो जब ।
तर्कदृष्टि तिहि आय मिल्यो तब ॥९३॥

॥ दोहा ॥

मिले परस्पर ते उभै,
पुत्र पिता[545] जिहि रीति ॥
करि प्रनाम आसिष दुहुं,
आसन लहे सप्रीति ॥ ९४ ॥

(तर्कदृष्टिका पिताप्रति उपदेश ॥ ५०९—५२२ ॥)

॥ ५०९ ॥ कारणरूपकी उपास्यता औ कार्यरूपकी निकृष्टता ॥

निजपितु चिंतासहित लखि,
सुत बोल्यो यह बात ॥
को चिंता चित रावरे[546],
मुख प्रसन्न नहिं तात ॥ ९५ ॥

॥ चौपाई ॥

सुभसंतति सुतकी सुनि बानी ।
तिहि भाखी निज सकल कहानी ॥
चित चिंताको हेतु सुनायो ।
को उपास्य यह तत्त्व न पायो ॥ ९६ ॥
तर्कदृष्टि सुनि पितुके बैना ।
बोल्यो सुभसंतति सुखैदना ॥

॥ ५४४ ॥ कोई डोकरीके अंगणमैं बिल्ला मर गयाथा । तिस बिल्लेकूं यह देहलीका दरवज्जा खुला छोडिके गामसैं बाहिर छोड गई । तहां तलकि पिछाडी कोई रोगिष्ट ऊंठ तिसके अंगणमैं प्रवेशकूं पायके मरगया । तिसतैं तिस डोकरीकूं जैसैं बडी चिंता भई । तैसैं सुभसंततिराजाने बी उपास्यदेवके अज्ञानकूं दूरी करनैअर्थ पंडितनके प्रति प्रश्न किया । तिसतैं ताजा कहिये नवीन संशय उत्पन्न भया । ताके निवारणकी तिसकूं बडी चिंता भई ॥

॥ ५४५ ॥ जिहि कहिये जैसी रीति है तैसैं । दुहुं कहिये पुत्र औ पिता दोनूं क्रमतैं प्रणाम औ आशीर्वादकरिके प्रीतिसहित आसनकूं प्राप्त भये । यह अर्थ है ॥

॥ ५४६ ॥ तुह्मारे चित्तमैं कौन चिंता है ?

कारनरूप उपास्य पिछानहु ।
ताके नाम अनंतहि जानहु ॥ ९७ ॥
कारजरूप तुच्छ लखि तजिये ।
यह सिद्धांत वेदको भजिये ॥
रचे व्यास इतिहास पुराना ।
तिनमैं यही मतो नहिं नाना ॥ ९८ ॥
मनमैं मर्म न लखत जु पंडित ।
करत परस्पर मत ते खंडित ॥
नीलकंठपंडित बुध नीको ।
कियो ग्रंथ भारतको टीको ॥ ९९ ॥
तिन यह प्रथमहि लिख्यो प्रसंगा ।
श्रुतिसिद्धांत कह्यो जो चंगा ॥१००॥

॥ ५१० पुराणउक्त स्तुति औ निंदाके करनैमैं व्यासका अभिप्राय ॥

टीका:—यद्यपि सकलपुराणनका कर्त्ता एक व्यास है, तानै स्कंदपुराणमैं शिवकूं स्वतंत्रतादिक ईश्वरधर्म कहे औ अन्यदेवनकूं शिवकूपातैं सारी विभूतिकी प्राप्ति कही । यातैं जीवधर्म कहे ॥ तैसैं विष्णुपुराण पद्मपुराणमैं विष्णुकूं ईश्वरता कही । तैसैं किसीकूं पुराणमैं, किसीकूं उपपुराणमैं, विष्णुशिवतैं भिन्न जो गणेशादिक हैं, तिनकूं ईश्वरता कही । इस रीतिसैं व्यासवाक्यनमैं विरोध प्रतीत होवैहै ॥ ताका—

यह समाधान करैहैं:-सौंरेही ईश्वर हैं ॥ जा प्रकरणमैं अन्यदेवकी निंदा है, ताकी निंदाकरिके तिसकी उपासनात्यागमैं व्यासका अभिप्राय नहीं । किंतु वैष्णवपुराणमैं शिवादिकनकी निंदा औ विष्णुकी स्तुतिकरिके विष्णुकी उपासनामैं प्रवृत्तिकी हेतु है ॥ तैसैं शिवपुराणमैं विष्णुआदिकनकी निंदा बी तिनकी उपासनाके त्याग अर्थ नहीं । किंतु तिनकी निंदा शिवकी उपासनामैं प्रवृत्तिके अर्थ है ॥ जो एकप्रकरणमैं अन्यकी निंदा त्यागवास्ते होवै तौ सर्वकी उपासनाका त्याग होवैगा । यातैं अन्यकी निंदा एककी स्तुतिके अर्थ है । त्याग-अर्थ नहीं ॥

दृष्टांत:—वेदमैं अग्निहोत्रके दोकाल कहेहैं ॥ एक तौ सूर्यउदयसैं प्रथम औ दूसरा सूर्य-उदयतैं अनंतर काल कह्याहै । तहां उदयकालके प्रसंगमैं अनुदयकालकी निंदा करीहै औ अनुदयकालके प्रसंगमैं उदयकालकी निंदा करीहै ॥ तहां निंदाका तात्पर्य त्यागमैं होवै तौ दोनूंकालमैं होमका त्याग होवैगा औ नित्यकर्मका त्याग संभवै नहीं । यातैं उदय-कालकी स्तुतिवास्तै अनुदयकालकी निंदा है औ अनुदयकालकी स्तुतिवास्तै उदयकालकी निंदा है । तैसैं एकदेवकी उपासनाके प्रसंगमैं अन्यकी निंदाका एककी स्तुतिमैं तात्पर्य है । अन्यकी निंदामैं तात्पर्य नहीं ॥

॥ ५११ ॥ पांचदेवनके उपासकनकूं सम (ब्रह्मलोक) फलकी प्राप्ति ॥

जैसैं शाखाभेदतैं कोई उदयकालमैं होम करैहै । कोई अनुदयकालमैं करैहै । फल दोनूं-कूं समान होवैहै । तैसैं इच्छाभेदतैं पांचूंदेवन-मैं जाकी उपासना करै तिन सबतैं ब्रह्म-लोककी प्राप्ति होवैहै । तहां भोग भोगिके विदेहमोक्ष होवैहै ॥

यद्यपि विष्णुआदिकनकी उपासनातैं वैकुंठलोकादिकनकी प्राप्ति पुराणमैं कहीहै ।

॥ ५४७ ॥ सारे कहिये विष्णु, शिव, गणेश, देवी औ सूर्य; ये पांच देव ।

ब्रह्मलोककी नहीं । तथापि उत्तमउपासक विदेहमुक्तिके अधिकारी देवयानमार्गतैं सारे ब्रह्मलोककूंही जावैहैं । परंतु एकही ब्रह्मलोक वैष्णवउपासककूं वैकुंठरूप प्रतीत होवैहै और-लोकवासी सारे तिसकूं चतुर्भुजपार्षदरूप प्रतीत होवैहैं औ आप बी चतुर्भुजमूर्ति होवैहै ॥ तैसैं शैवउपासककूं ब्रह्मलोकही शिवलोक प्रतीत होवैहै । तिसलोकवासी सारे त्रिनेत्रमूर्ति अपनैसहित प्रतीत होवैहैं ॥ इसरीतितैं सर्व-उपासकोंकूं ब्रह्मलोकही अपनै उपास्यका लोक प्रतीत होवैहै । काहेतैं ? यह नियम हैः-देवयानमार्गविना अन्यमार्गतैं जे जावैहैं, तिनका संसारमैं आगमन होवैहै औ देवयान-मार्ग एक ब्रह्मलोकका है । यातैं विदेहमोक्षके योग्य उपासक सारे ब्रह्मलोककूं जावैहैं । तिस ब्रह्मलोकमैं ऐसी अद्भुतमहिमा हैः-उपासककी इच्छाके अनुसार सारी सामग्रीसहित वह ब्रह्मलोकही तिनकूं प्रतीत होवैहै "

इसरीतिसैं पांचूं देवनके उपासकनकूं समफल होवैहै । याकेविषे-

॥ ५१२ ॥ एकपरमात्मामैं नानानामरूप संभवैहैं ॥

यह शंका होवैहैः-पांचूं देवनके नामरूप भिन्न भिन्न कहेहैं और ईश्वर एक है । एक-ईश्वरके नानारूप संभवैं नहीं । ताका

यह समाधान हैः- परमार्थसैं नामरूप कोई परमात्मामैं हैं नहीं । मंदबुद्धिकूं उपासना-वासतै नामरूपरहित परमात्माके मायाकृत कल्पितनामरूप कहेहैं । यातैं एकपरमात्मामैं मायाकृतकल्पितनामरूप नाना संभवैहैं ॥ इस-रीतिसैं सर्वपुराणवाक्यनका विरोध दूरि होवैहै ॥ औ

॥ ५१३ ॥ सारेपुराणनका कारण औ कार्यब्रह्मके उपासनकी क्रमतैं उपादेयता औ हेयतामैं तात्पर्य है ॥ ५१३-५१४ ॥

पुराणवाक्यनमैं विरोधशंकाका मुख्य-समाधान तौ यह हैः-विष्णु । शिव । गणेश । देवी । औ सूर्य । इसतैं आदिलेके जितनै एकएकके नाम हैं, सो सारे कारणब्रह्मके नाम हैं औ कार्यब्रह्मके बी सो सारे नाम हैं ॥ जैसैं माया-विशिष्टकारणकूं ब्रह्म कहेहैं औ हिरण्यगर्भ कार्य है ताकूं बी ब्रह्म कहेहैं । इसरीतिसैं कारणब्रह्मकूं विष्णु । शिव । गणेश । देवी । सूर्यपद बोधन करैहैं ॥ औ कार्यब्रह्मकूं बी पांचूं पद बोधन करैहैं ॥ ऐसैं पांचूं पदनके जो नारायण, नीलकंठ, विघ्नेश, शक्ति, भानु इत्यादिक अनंतपर्याय हैं, सो सारे कारणब्रह्म औ कार्यब्रह्म दोनूंवांकूं बोधन करैहैं ॥ कहुं कारणब्रह्मकूं, औ कहुं कार्यब्रह्मकूं प्रसंगतैं बोधन करैहैं ॥ जैसैं सैंधवपद अश्व लवण दोनूंवांकूं बोधन करैहै ॥ भोजनप्रसंगमैं सैंधव-पद लवणकूं बोधन करैहै औ गमनप्रसंगमैं सैंधवपद अश्वकूं बोधन करैहै ॥ वैष्णवपुराणमैं

॥ ५४८ ॥ १ देवयान । २ पितृयान । ३ जायस्व म्रियस्व, इस भेदतैं संसारके मार्ग तीन हैं ।

१ सूर्यमंडलकूं भेदनकरिके ब्रह्मलोकमैं जानैका जो मार्ग सो देवयानमार्ग है । याहीकूं अर्चिमार्ग बी कहेहैं ॥ औ-

२ चंद्रमंडलकूं भेदनकरिके इंद्रलोकरूप ब्रह्म-लोकमैं जानैका जो मार्ग, सो पितृयान-मार्ग है । याहीकूं धूममार्ग बी कहतेहैं । औ-

३ वारंवार जन्ममृत्युके कारण मृत्युलोकविषै आवनै-का जो मार्ग सो तीसरा जायस्वम्रियस्वमार्गहै ।

ये तीन संसारके मार्ग हैं औ चौथा ब्रह्मज्ञानरूप जो मार्ग, सो मोक्षका मार्ग है ॥

विष्णुनारायणादिक पद कारणब्रह्मके बोधक हैं । शिवगणेशसूर्यादिक पद कार्यब्रह्मके बोधक हैं । यातैं—

॥ ५१४ ॥ १ **वैष्णवग्रंथनमैं** विष्णुकी स्तुति औ शिवादिकनकी निंदातैं व्यासका यह अभिप्राय है:–कारणब्रह्म उपास्य है औ कार्यब्रह्म उपास्य नहीं ॥

२ तैसैं **स्कंदपुराणादिक** शैवग्रंथनमैं शिवमहेशादिकपद कारणब्रह्मके बोधक हैं औ विष्णुगणेशदेवीसूर्यादिक पद कार्यब्रह्मके बोधक हैं । यातैं तिनमैं बी कारणब्रह्मकी स्तुति औ कार्यब्रह्मकी निंदा है ॥

२ तैसैं **गणेशपुराणमैं** गणेशपद कारणब्रह्मका वाचक औ विष्णुशिवादिकपद कार्यब्रह्मके वाचक हैं । यातैं कारणकी स्तुति औ कार्यकी निंदा है ॥

४ तैसैं **कालीपुराणमैं** कालीदेवीआदिक पद कारणब्रह्मके बोधक औ विष्णुशिवगणेशसूर्यादिकपद कार्यब्रह्मके बोधक । यातैं कालीपदबोध्यकारणकी स्तुति औ विष्णुशिवादिकपदबोध्यकार्यब्रह्मकी निंदा है ॥

५ तैसैं **सौरपुराणमैं** सूर्यभानुपदबोध्य कारणब्रह्म है, ताकी स्तुति औ अन्यपदबोध्यकार्यकी निंदा है ॥

इसरीतिसैं सकलपुराणनमैं कार्यकारणकी संज्ञारूप संकेतका तौ भेद है । उपादेयहेय जो अर्थ ताका भेद नहीं ॥ सकलपुराणनमैं—

१ कारणब्रह्मकी उपासना उपादेय है॥ औ

२ कार्यकी उपासना हेय है ।

यातैं सारे पुराण एककारणब्रह्मकूं उपास्यता बोधन करैहैं । तिनका आपसमैं विरोध नहीं ॥

॥ ५१५ ॥ मूर्तिप्रतिपादनका अभिप्राय ॥

॥ ५१५–५१६ ॥

यद्यपि चतुर्भुज, त्रिनेत्र, सतुंड, अष्टभुजादिकमूर्ति मायाके परिणाम हैं औ चेतनके विवर्त्त हैं । यातैं कार्य हैं औ तिनकी बी उपासना कहीहै । **तथापि** तिन चतुर्भुजादिकमूर्तियोंका जो मायाविशिष्टकारण है, तासैं विचार कियेतैं भेद नहीं । यातैं तिन आकारनको बाधिके कारणरूपतैं तिनकी उपासनामैं तात्पर्य है । काहेतैं ? आकार कार्य है । यातैं तुच्छ है औ कारण सत्य है ॥ औ जाकी मंदप्रज्ञा आकारमैंही स्थित होवै, सो शास्त्रउक्तआकारकीही उपासना करै । तासैं बी प्रज्ञा निश्चल होयके कारणब्रह्मकी उपासनामैं स्थिति होवैहै ॥

॥ ५१६ ॥ कारणब्रह्मकी उपासना इसरीतिसैं कहीहै:– ब्रह्म जगत्का कारण है । सत्यकाम है । सत्यसंकल्प है । सर्वज्ञ है । स्वतंत्र है । सर्वका प्रेरक है । कृपालु है । ऐसैं ईश्वरके धर्मनकूं चिंतन करै ॥ मूर्तिचिंतनमैं शास्त्रका तात्पर्य नहीं ॥ और—

अनेकमूर्ति जो शास्त्रमैं लिखीहैं, सो उपासनाके निमित्त नहीं । किंतु सारीमूर्ति कारणब्रह्मकी उपलक्षण हैं ॥ जो वस्तु जाके एकदेशमैं होवै औ कदाचित् होवै औ व्यावर्त्तक होवै, सो **उपलक्षण** कहियेहै ॥

जैसैं " काकवाला देवदत्तका गृह है " या वाक्यमैं देवदत्तके गृहका काक उपलक्षण है । काहेतैं ? गृहके एकदेशमैं काक होवैहै औ कदाचित् होवैहै । सर्वदा नहीं । औ अन्यगृहतैं देवदत्तके गृहका व्यावर्त्तक है ॥ तैसैं जगत्का कारण ब्रह्म है ॥ ताके एकदेशमैं मूर्ति होवैहै औ कदाचित् होवैहै औ चतुर्भुजादिकमूर्ति कारणब्रह्मविषैही होवैहैं । अन्यमैं नहीं । यातैं व्यावर्त्तक होनैतैं उपलक्षण है ॥

उपलक्षणका यह प्रयोजन होवैहै:– विशेष्यवस्तुके स्वरूपका ज्ञान होवै । जैसैं काकतैं

देवदत्तके गृहका ज्ञान होवै । अन्य प्रयोजन काकतैं नहीं ॥ तैसैं चतुर्भुजादिकआकारनतैं निराकारकारणब्रह्मका ज्ञानही उपासनाके निमित्त मूर्तिप्रतिपादनका प्रयोजन है । अन्य नहीं ॥ औ

॥ ५१७ ॥ आकारनमैं आग्रहवाले शैवादिककूं खेदकी प्राप्ति ॥

मंदप्रज्ञावाले शास्त्रअभिप्रायकूं समझैविना तिन आकारमैं आग्रह करैहैं । और श्यालसारमेयन्यायतैं परस्पर कलह करैहैं ॥

स्त्रीके भाईकूं श्याल कहैहैं । कुक्कुरकूं सारमेय कहैहैं । दृष्टांतकूं न्याय कहैहैं ॥

किसीके सालेका नाम उत्फालक था और सालेके शत्रुका नाम धावक था ॥ तिस पुरुपके गृहके कुक्कुरका नाम धावक औ दूसरे गृहके कुक्कुरका नाम उत्फालक था ॥ तहां तिस पुरुपकी स्त्री गृहविषै प्रथम आई । तब दोनुं कुक्कुर आपसमैं हमेस लडैं । तहां स्त्रीके पतिश्वसुरआदिक उत्फालककूं गालि देवैं औ अपनै धावककी बडाई करैं तब ता स्त्रीकूं यह भ्रांति हुईः—मेरे भाईकूं गालि देवैहैं । ताके शत्रुकी बडाई करैहैं ॥ तासैं दूपित होयके भर्तासैं क्लेश करतीहुई ॥

जैसैं तिनके अभिप्राय जानैविना समानसंज्ञातैं भ्रमकरिके स्त्रीनै क्लेश किया तैसैं वैष्णवग्रंथनमैं शिवादिकनामतैं कार्यब्रह्मकी निंदा करीहै । इस अभिप्रायकूं नहीं जानिके शैवादिक दुःखित होवैहैं । और विष्णुनामतैं कार्यकी निंदाकूं नहीं जानिके वैष्णव दुःखित होवैहैं ॥ और—

सकलपुराणनका यह अभिप्राय हैः—

१ कारणब्रह्म उपास्य है ।

२ कार्यब्रह्म त्याज्य है ॥

१ मायाविशिष्टचेतन कारणब्रह्म कहियेहै ॥

२ मायाकृत कार्यविशिष्टचेतन कार्यब्रह्म कहियेहै ॥

यही अर्थ भारतकी टीकाके आरंभमैं लिख्याहै । और सारे वेदांतनका यही सिद्धांत है ॥

॥ ५१८ ॥ उत्तरमीमांसाकी प्रमाणता । औरनकी अप्रमाणता ॥ ५१८—५२० ॥

॥ चौपाई ॥

सुभसंतति सुनि सुतके बैना ।
उपज्यो जियमैं किंचित चैना ॥
पुनि तिन प्रश्न कियो निजपूतहि ।
सास्त्र परस्पर कहत असूतहि ॥१०१॥

टीकाः—पुराणमैं विरोधशंकाके नाशतैं चैन कहिये सुख हुया औ पट्शास्त्रनकी परस्परविरोधशंका मिटी नहीं । यातैं किंचित् चैन हुवा । सर्वथा नहीं ॥ असूत कहिये विरुद्ध कहैहै ॥

॥ चौपाई ॥

तिनमैं सत्य कौन सो कहिये ।
जाको अर्थ बुद्धिमैं लहिये ॥ १०२ ॥

॥ ५१९ ॥

तर्कदृष्टि सुनि निजपितु बानी ।
बोल्यो वचन सु परमप्रमानी ॥
उत्तरमीमांसा उपदेसा ।
वेदविरुद्ध न जामैं लेसा ॥ १०३ ॥
सास्त्र पंच ते वेदविरुद्धं ।
यातैं जानहु तिनहिं असुद्धं ॥

॥ ५४९ ॥ कुत्तेका ॥

किंचितअंस वेदअनुसारी ।
लखि बहुग्रहत मंद अधिकारी॥१०४॥

टीकाः–यद्यपि षट्शास्त्रनके कर्त्ता सर्वज्ञ कहेहैं ॥

१ सांख्यका कर्त्ता कपिल ।
२ पातंजलका कर्त्ता पतंजलि (सेषका अवतार) ।
३ न्यायका कर्त्ता गौतम ।
४ वैशेषिकशास्त्रका कर्त्ता कणाद ।
५ पूर्वमीमांसाका कर्त्ता जैमिनि ।
६ उत्तरमीमांसाका कर्त्ता व्यास ॥

इन सबनका माहात्म्य प्रसिद्ध है । यातैं इनके वचनरूप शास्त्र बी सारे समानप्रमाण चाहिये । तथापि सर्ववाक्यनमैं प्रबलप्रमाण वेदवाक्य है । काहेतैं?

१ वेदका कर्त्ता सर्वज्ञईश्वर है । ताकेविषै भ्रमसंदेहविप्रलिप्सादोष संभवै नहीं ॥
२ इन शास्त्रनके कर्त्ता जीव हैं । तिनविषै भ्रमआदिक दोषनका संभव है ॥

१ यद्यपि शास्त्रकार बी सर्वज्ञ कहेहैं तथापि तिनकूं सर्वज्ञता योगमाहात्म्यसैं हुईहै । यातैं युंजानयोगी हुयेहैं । औ
२ ईश्वरकूं सर्वज्ञता स्वभावसिद्ध है । यातैं युक्तयोगी है ।

१ जाकूं चिंतन किये पदार्थनका ज्ञान होय सो युंजानयोगी कहियेहै ।
२ जाकूं सर्वदा एकरस सारैपदार्थ अपरोक्ष प्रतीत होवैं सो युक्तयोगी कहियेहै । ऐसा ईश्वर है ॥

१ युक्तयोगीकृतवेदवचन प्रबल । औ—
२ युंजानयोगीकृत शास्त्रवचन दुर्बल हैं । यातैं—

॥ ५२० ॥ वेदअनुसारीशास्त्र प्रमाण औ वेदविरुद्ध अप्रमाण । पांचशास्त्र जैसैं वेदविरुद्ध हैं तैसैं शारीरकआदिकग्रंथनमैं स्पष्ट है औ उत्तरमीमांसा किसीअंशमैं वेदविरुद्ध नहीं । यातैं प्रमाण है और शास्त्र बी किसी अंशमैं वेदके अनुसारी देखिके मंदबुद्धि तिनमैं विश्वास करैहैं । परंतु बहुतअंशमैं वेदविरुद्ध है यातैं त्याज्य है ॥ किसीअंशमैं वेदअनुसारी होनैतैं उपादेय होवै तौ जैनशास्त्र बी अहिंसा-अंशमैं वेदअनुसारी है सो उपादेय हुवाचाहिये। और त्याज्य है । उपादेय नहीं ॥

यद्यपि सुगत ईश्वरका अवतार है । जाकूं बुद्ध कहैहैं । ताके वचन बी वेदसमान प्रमाण चाहिये । तथापि बुद्ध विप्रलिप्सानिमित्तसैं हुयाहै । यातैं ताके वचन सर्वथा अप्रमाण हैं ॥

वंचनकी इच्छाकूं विप्रलिप्सा कहैहैं । जाकूं बहकावनैकी इच्छा कहैहैं ॥

यातैं सर्वअंशमैं वेदअनुसारी उत्तरमीमांसा-ही सर्वथा मुमुक्षुकूं उपादेय है ॥

यद्यपि उत्तरमीमांसा व्यासकृत सूत्ररूप है ताका व्याख्यान बी अनेकपुरुषोंनैं नानारीतिसैं कियाहै तथापि पूज्यचरणशंकरकृत व्याख्यान-ही वेदानुसारी है । और नहीं । यह पंचम-तरंगमैं प्रतिपादन करीहै । यातैं औरपंचशास्त्र अप्रमाण हैं ॥ और

॥ ५२१ ॥ अन्यशास्त्रनकी त्याज्यतामैं दृष्टांत औ हेतु ॥ ५२१–५२२ ॥

जो इसतरंगमैं पूर्व सारेशास्त्र मोक्षउपयोगी कहे सो तर्कदृष्टिके सारग्राहीविवेकतैं कहे ॥

जैसैं किसीका शत्रु तरवारि मारै तासैं रुधिर निकसिके दैवगतिसैं रोग निवृत्त होय जावै । तब सारग्राही पुरुष तरवारी मारनैका उपकार मानि लेवै, तैसैं अन्यशास्त्रनसैं बी किसीरीतिसैं

अंतःकरणकी शुद्धि वा निश्चलता हुयेतैं पुरुष निवृत्त होयके वेदअनुसार निश्चय करै तौ मोक्ष होवैहै ॥ सर्वथा तिनहीमैं आग्रह करै तौ अंधगोलांगूलन्यायतैं अनर्थकूं प्राप्त होवैहै । यातैं सकलशास्त्र त्यागिके अद्वैतव्याख्यानरीतिसैं उत्तरमीमांसा उपादेय है ॥

॥ ५२२ ॥ अंधगोलांगूलन्याय यह हैः—किसी धनीके भूषणयुक्त पुत्रकूं चोर लेगये । वनमैं भूषण ले ताके नेत्र फोडिके छोडि गये । तब ता रुदन करते बालककूं कोई निर्दयवंचक बली उन्मत्त बलीवर्दकी लांगूल पकडाय देवै औ यह कहैः— तूं इसका लांगूल मति छोडियो । तेरे ग्राममैं यह पहुंचाय देवैगा । सो दुःखीबालक ताके वचनमैं विश्वासकरिके दुःख अनुभवकरिके नष्ट होवैहै ॥

तैसैं विषयरूप चोर विवेकरूप नेत्रकूं फोडिके संसारवनमैं गेरहैं । तहां भेदवादीनिर्दयवंचक अन्यशास्त्रनके सिद्धांतमैं आग्रह करवावैहैं औ यह कहैहैः— हमारा उपदेशही तेरेकूं परमसुखप्राप्तिका हेतु होवैगा । ताकूं छोडियो मति ॥ तिसके वाक्यनमैं विश्वासकरिके पुरुषार्थसुखरहित होवैहैं औ जन्ममरणरूप महादुःखकूं अनुभव करैहैं । यातैं अन्यशास्त्र त्याज्य हैं ॥

॥ ५२३ ॥ राजाका मृत्यु औ ब्रह्मलोककी प्राप्ति ॥ ५२३–५२४ ॥

॥ दोहा ॥

तर्कदृष्टिके वचन सुनि ।
सुभसंतति तिहि तात ॥

॥ ५५० ॥ भेदवादी आचार्य, तिनके शास्त्रविषै उक्त परमेश्वर औ मोक्षके अपरोक्षज्ञानसैं रहित हैं औ यथोक्तउपासनादिरूप मोक्षके साधनोंसैं रहित हुये बी द्रव्यहरणके निमित्त लोकनकूं अपने संप्रदायके चिन्हसहित सांकेतिक मंत्रका उपदेश देतेहैं औ हमारे उपदेशसैं अन्यसन्मार्गतैं रुके हुये इनका साराजन्म व्यर्थ होवैगा । ऐसी करुणा ल्यावते नहीं । यातैं निर्दयवंचक हैं ॥

संसै सोक नस्यो सकल ।
लह्यो हिये कुसलात ॥ १०५ ॥

कारनब्रह्म उपासना ।
करी बहुत चित लाय ॥
तर्कदृष्टि निज लखि गुरु ।
राजसमाज चढाय ॥ १०६ ॥

टीकाः—यद्यपि तर्कदृष्टि पुत्र था तथापि उपदेश उत्तम कन्या । यातैं गुरुपदवीकूं प्राप्त हुवा । यह ब्रह्मविद्याका माहात्म्य है ॥

॥ ५२४ ॥ ॥ दोहा ॥

कछू बदीत्यो काल तब ।
तजि राजा निजप्रान ।
ब्रह्मलोकमैं सो गयो ।
मुनि जहँ जात सध्यान ॥१०७॥

टीकाः— राजाके मरणका देशकाल कह्या नहीं । ताका यह अभिप्राय हैः— उपासकके मरणमैं देशकालकी अपेक्षा नहीं । दिनमैं मरे अथवा रात्रिमैं । दक्षिणायनमैं अथवा उत्तरायणमैं । पवित्रभूमिमैं अथवा अपवित्रमैं । सर्वथा उपासनाके बलतैं देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवैहै ॥ और अदृष्टिके प्रसंगमैं जो पूर्व देशकालकी अपेक्षा कही सो योगसहितउपासककूं कहीहै । केवलईश्वरशरणउपासककूं देशकालकी अपेक्षा नहीं । यह अर्थ सूत्रकारभाष्यकारनै प्रतिपादन कियाहै ॥

॥ ५२५ ॥ तर्कदृष्टिका देहपात औ परमात्मासैं अभेद ॥

॥ दोहा ॥

राजकाज सब तब कियो ।
तर्कदृष्टि हुसियार ॥
लग्यो न रंचक रंग तिहि ।
लख्यो ब्रह्म निर्धार ॥ १०८ ॥
अंत भयो प्रारब्धको ।
पायो निश्चल गेह ॥
आतम परमातम मिल्यो ।
देह खेहतैं छेह ॥ १०९ ॥

टीकाः–देहका खेह कहिये राखमैं । छेह कहिये अंत । आत्मा कहिये कूटस्थसाक्षी । ताका परमात्मासैं अभेद ॥

यद्यपि कूटस्थका परमात्मासैं सदाअभेद है तथापि उपाधिकृत भेद है ॥ उपाधिके लयतैं उपाधिकृतभेदका अभाव होवैहै ॥

परमात्मासैं अभेद कह्या ताका यह अभिप्राय है:–विदेहमुक्तिमैं ईश्वरतैं अभेद होवैहै । शुद्धचेतनब्रह्मसैं नहीं । यह वार्त्ता शारीरकभाष्यके चतुर्थअध्यायमैं प्रतिपादन करीहै ॥ तहां यह प्रसंग है:—

१ विदेहमुक्तिमैं सत्यसंकल्पादिकरूपकी प्राप्ति जैमिनिके मतसैं कहीहै ॥

२ औडुलोमिके मतसैं सत्यसंकल्पादिकनका अभाव कह्याहै ॥ औ—

३ सिद्धांतमतमैं सत्यसंकल्पादिकनका भाव अभाव दोनूं कहेहैं । ताका यह अभिप्राय है:– ईश्वरतैं अभेद होवैहै, ईश्वरके सत्यसंकल्पादिक मुक्तमैं । अन्य जीवोंकरि व्यवहार करियेहै ॥ सो ईश्वर परमार्थदृष्टिसैं शुद्ध है । ताकेविषै कोई गुण है नहीं । किंतु निर्गुण है । यातैं सत्यसंकल्पादिकनका अभाव है ॥

यद्यपि संसारदशाविषै बी जीव परमार्थसैं निर्गुण है, शुद्ध है, तथापि जीवकूं संसारदशामैं अविद्यासैं कर्त्तापनाभोक्तापना प्रतीत होवैहै ॥

ईश्वरकूं कदै बी आत्मामैं अथवा अन्यमैं संसार प्रतीत होवै नहीं । यातैं सदा असंग निर्गुण शुद्ध है । यातैं ईश्वरतैं जो अभेद है सोई शुद्धसैं अभेद है ॥ औ—

ईश्वरतैं अभेदकूं शुद्धब्रह्मसैं अभेद नहीं मानै तौ ईश्वरकूं शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति कदै बी होवै नहीं । काहेतैं? जीवकी न्यांई ईश्वरकूं उपदेशजन्य ज्ञान औ विदेहमोक्ष तौ कदै होवै नहीं । सदा प्राप्त जो ताका रूप सो शुद्ध नहीं । यातैं जीवतैं बी न्यून ईश्वर सदाबद्ध है । यह सिद्ध होवैगा । यातैं यह मानना योग्य है:–

१ ईश्वरकूं आवरण नहीं । यातैं उपदेशजन्य ज्ञानकी अपेक्षा नहीं ॥
२ आवरणके अभावतैं भ्रांति नहीं । यातैं नित्यसर्वज्ञ है । नित्यमुक्त है ॥
३ माया औ ताका कार्य आत्मामैं प्रतीत होवै नहीं । यातैं सदाअसंग है । याहीतैं शुद्ध है ॥

इसरीतिसैं ईश्वरतैं अभेदही शुद्धचेतनसैं अभेद है ॥ औ

दृष्टांतसैं बी ईश्वरतैंही अभेद सिद्ध होवैहै ॥ जैसैं मठमैं घटका अभाव होवै तौ मठाकाशमैं घटाकाशका लय होवैहै । महाकाशमैं नहीं ॥ तैसैं विद्वान्‌का शरीर ईश्वरकृत ब्रह्मांडमैं नष्ट होवैहै औ ब्रह्मांड सारा ईश्वरशरीरमायाके अंतर्भूत है ॥ विद्वान्‌का आत्मा विदेहमोक्षमैं ब्रह्मांडके बाहरि गमन करै नहीं । यातैं ईश्वरतैं

अभेद होवैहै। परंतु जैसें मठाकाशसें घटाकाशका अभेद हुवा। सो मठाकाश महाकाशरूपही है। तैसें ईश्वरतें अभेद होवैहै, सो ईश्वर शुद्धब्रह्मही है। यातें शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति होवैहै॥

॥ ५२६ ॥ इस भाषाग्रंथके रचनेका प्रयोजन ॥

॥ दोहा ॥

यह विचारसागर कियो। जामें रत्न अनेक॥
गोप्य वेदसिद्धांततें। प्रगट लहत सविवेक॥ ११०॥
सांख्य न्यायमें श्रम कियो। पढि व्याकरण असेष॥
पढे ग्रंथ अद्वैतके। रह्यो न एकहु सेष॥ १११॥
कठिन जु औरनिबंध हैं। जिनमें मतके भेद॥
श्रमतें अवगाहन किये। निश्चलदास सवेद॥ ११२॥
तिन यह भाषाग्रंथ किय। रंच न उपजी लाज॥
तामें यह इक हेतु है। दयाधर्म सिरताज॥ ११३॥
बिन व्याकरन न पढि सकै। ग्रंथसंस्कृत मंद[552]॥

॥ ५५१ ॥ इहां यह रहस्य है:–ज्ञानवान्की दृष्टिसें विदेहमोक्षतें पूर्व ब्रह्मांडादिजगत् कछु हैही नहीं। किंतु शुद्धब्रह्मही है। यातें ताकी दृष्टिसें तौ शुद्धब्रह्मसैंही अभेद होवैहै। सोई ताकूं शुद्धकी प्राप्ति है। औ—

अज्ञजनोंकी दृष्टिसें ब्रह्मांडआदिक ज्यूंके त्यूं प्रतीत होवैहैं। यातें तिनकी दृष्टिसें ज्ञानीका ईश्वरसैं (ईश्वरके देहरूप ब्रह्मांडसें) अभेद होवैहै। सो ईश्वर वास्तवशुद्धब्रह्मही है। यातें बी ज्ञानीकूं शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति होवैहै॥

उक्तविदेहमोक्षमैं ज्ञानीजीवका ब्रह्मसैं जो अभेद, तामैं आभासवादआदिक भिन्नभिन्न वेदांतके पक्षनका जो विचार है सो वृत्तिप्रभाकरके अष्टमप्रकाशविषै विस्तारसैं लिख्या है। सोई विचारसागरके षष्ठतरंगगत ४४१ वें अंकके टिप्पणमैं हमनै संक्षेपतैं जनायाहै॥

॥ ५५२ ॥ जाके पास दोरी लोटा होवै सो कूपके जलका पान करिशकैहै औ जाके पास यह सामग्री नहीं सो कूपके जलका पान करशकता नहीं। तौ बी सो पुरुष वापिका (बावडी) के किंवा मिष्टसमुद्रके जलका पान अनायाससैं करशकताहै। तैसैं जाके काव्यकोशव्याकरणरूप सामग्री है सो तो संस्कृतग्रंथनके अर्थकूं तात्पर्यसहित जानिशकताहै औ जाके पास यह सामग्री नहीं, सो पुरुष मंदबुद्धिवाला है। यातें सो संस्कृतग्रंथनके अर्थकूं जानिशकता नहीं। तौ बी सो मंदपुरुष इस भाषाग्रंथके अर्थकूं अनायाससैं पढै (याके अर्थकूं जानै) औ तिसकरि सो परमानंदकूं पावै। इस शिरोमणि दयाधर्मरूप हेतुतैं यह भाषाग्रंथरूप वापिका किंवा मिष्टसमुद्र कियाहै, तिसकी वृद्धि औ अधिकमधुरताअर्थ ताकी ये टिप्पणरूप जरियां प्रगट करीहैं। वे बी भाषा जाननैवाले जनोंके विशेष सुखकर होनैतैं हितकारक हैं॥

पढै याहि अनयासही ।
लहै सु परमानंद ॥११४॥

॥ ५२७ ॥ मंगलाचरणपूर्वक ग्रंथकी समाप्ति ॥

दिल्लीतैं पश्चिमदिशा ।
कोस अठारह गाम ॥
तामैं यह पूरो भयो ।
किहंडौली[५५३] तिहि नाम ॥ ११५ ॥
ज्ञानी मुक्ति विदेहमैं ।
जासौं होय अभेद ॥

॥ ५५३ ॥ किहडौलीग्राममैं श्रीनिश्चलदासजीका गुरुद्वार है। तहां अद्यापि तिनकी शिष्यशाखा बी है। तिनोंनै जो ग्रंथ संग्रह कियेथे वे बी तहां विद्यमान हैं ॥

दादू आदूरूप सो ।
जाहि बखानत वेद ॥ ११६ ॥
नामरूप व्यभिचारिमैं ।
अनुगत एक अनूप ॥
दादूपदको लच्छय है ।
अस्तिभातिप्रियरूप ॥ ११७ ॥

इति श्रीविचारसागरे जीवन्मुक्तिविदेहमुक्तिवर्णनं नाम सप्तमस्तरंगः समाप्तः ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीपंडितपीतांबरविरचित विचारसागरटिप्पणिकायां सप्तमतरंगटिप्पणं संपूर्णम् ॥

॥ समाप्तोऽयं विचारसागरो ग्रंथः ॥

॥ श्रीवृत्तिरत्नावलि ॥

अर्थात्

॥ श्रीवृत्तिप्रभाकरसार ॥

॥ अथ प्रथमरत्नप्रारंभः ॥ १ ॥

॥ सकारणसभेद वृत्तिस्वरूप-निरूपण ॥ १-२४ ॥

॥ ग्रंथकर्त्ताकृतमंगलाचरण ॥

॥ दोहा ॥

जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिको,
साक्षी मैं पर जानि ॥
दुखद देह अभिमानकी,
होय मूलयुत हानि ॥ १ ॥

॥ १ ॥ वृत्तिके सामान्यलक्षणका निर्णय ॥ १-९ ॥

॥ १ ॥ "अहं ब्रह्मास्मि" या वृत्तिसैं कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्ति होवैहै। यह वेदांतका सिद्धांत है ॥

॥ २ ॥ तहां यह जिज्ञासा होवैहै:- वृत्ति किसकूं कहैहैं औ वृत्तिका कारण कौन है औ वृत्तिका प्रयोजन कौन है? यातैं वृत्तिप्रभाकरका सारांशभूत वृत्तिरत्नावलिनाम ग्रंथ लिखैहैं ॥

॥ ३ ॥ अंतःकरणका औ अज्ञानका जो परिणाम, सो वृत्ति कहियेहै ॥ यद्यपि क्रोधसुखादिक बी अंतःकरणके परिणाम हैं औ आकाशादिक अज्ञानके परिणाम हैं, तिनकूं वृत्ति नहीं कहैहैं, तथापि विषयका प्रकाशक जो अंतःकरण औ अज्ञानका परिणाम, सो वृत्ति कहियेहै ॥

॥ ४ ॥ क्रोधसुखादिकरूप जे अंतःकरणके परिणाम, तिनतैं किसी पदार्थका प्रकाश होवै नहीं। तैसैं आकाशादिकनतैं बी प्रकाश होवै नहीं, यातैं सो वृत्ति नहीं, किंतु ज्ञानरूप परिणामतैं प्रकाश होवैहै, ताहीकूं वृत्ति कहैहैं ॥

॥ ५ ॥ यद्यपि सुख, दुःख, काम, तृप्ति, क्रोध, क्षमा, धृति, अधृति, लज्जा औ भयादिक जितने अंतःकरणके परिणाम हैं, तिन सर्वका अनेकस्थानोंमैं वृत्तिशब्दसैं व्यवहार लिख्याहै, तथापि तत्त्वानुसंधान अद्वैत-कौस्तुभादिक ग्रंथनमैं प्रकाशकपरिणामही वृत्ति कह्याहै ॥ औ—

॥ ६ ॥ कितनेक ग्रंथनमैं अज्ञाननाशक परिणामकूं वृत्ति कहैहैं। औ परोक्षज्ञानसैं बी असत्त्वापादक अज्ञानांशका नाश होवैहै।

अथवा विषयचेतनस्थ अज्ञानका नाश तौ अपरोक्षज्ञानविना होवै नहीं। प्रमातृचेतनस्थ अज्ञानका नाश परोक्षज्ञानसैं बी होवैहै। यातैं परोक्षज्ञानमैं उक्तलक्षणकी अव्याप्ति नहीं ॥

॥ ७ ॥ तथापि सुखदुःखके ज्ञानरूप वृत्तिमैं औ मायावृत्तिरूप ईश्वरके ज्ञानमैं, तथा शुक्तिरजतादिगोचर भ्रमरूप अविद्यावृत्तिमैं औ स्वप्नगोचर औ सुषुप्तिगत सुख औ अज्ञानगोचर विद्यावृत्तिमैं औ प्रत्यभिज्ञा ज्ञानरूप वृत्तिमैं उक्तलक्षणकी अव्याप्ति है। काहेतैं ?–

१ प्रथम अज्ञातसुखादिक उपजैं, पीछे तिनका ज्ञान होवै, तौ सुखादिज्ञानतैं चेतनके अज्ञानका नाश संभवै। सो अज्ञातसुखादिक हैं नहीं। किंतु सुखादिक औ तिनका ज्ञान एककालमैं उपजैहैं। यातैं अज्ञातसुखादिकनके अभावतैं सुखादिगोचरवृत्तिसैं अज्ञानका नाश संभवै नहीं ॥

२ तैसैं ईश्वरकूं असाधारणरूपतैं सकलपदार्थ सदा प्रत्यक्ष प्रतीत होवैहैं, यातैं अज्ञानके अभावतैं मायाकी वृत्तिरूप ज्ञानतैं बी अज्ञानका नाश संभवै नहीं ॥

३ शुक्तिरजतादिक औ स्वप्नगत मिथ्या पदार्थनकी औ तिनके ज्ञानकी बी एककालमैं उत्पत्ति होवैहै। यातैं भ्रमवृत्तिसैं बी अज्ञानका नाश होवै नहीं ॥

४ तैसैं सुषुप्तिमैं वृत्ति है तौ बी अपनै विषयभूत स्वउपादान अरु स्वरूपसुखके आवरण अज्ञानका नाश तिसतैं होता नहीं औ ज्ञानगोचर प्रत्यभिज्ञा ज्ञान होवैहै। तहां बी आवरणके अभावतैं तिसतैं ताका नाश होवै नहीं ॥ जैसैं "अहं ब्रह्मास्मि" इस एकवार उदयभये ज्ञानसैं स्वरूपके आवरणका नाश होवैहै। पीछे अनेकवार विचारसैं विद्वान्‌कूं "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी वृत्ति उदित होवैहै। तासैं प्रथमही निरावृत ज्ञानीके स्वरूपका आवरण भंग होता नहीं। तैसैं धारावाहिक वृत्ति होवै तहां बी उक्तफलकी द्वितीयादिवृत्तिमैं अव्याप्ति है। काहेतैं ? ज्ञानधारा होवै तहां प्रथमज्ञानसैं अज्ञानका नाश हुये द्वितीयादिक ज्ञानकूं अज्ञानकी नाशकता संभवै नहीं ॥

॥ ८ ॥ यातैं प्रकाशकपरिणामकूं वृत्ति कहैहैं ॥ याका यह भाव है:–"अस्ति"व्यवहारका हेतु जो अविद्या औ अंतःकरणका परिणाम, सो वृत्ति कहियेहै ॥

॥ ९ ॥ प्रकाशकपरिणामकूं वृत्ति कहै बी अज्ञातपदार्थगोचरवृत्तिमैंही अज्ञाननाशकतारूप प्रकाशकता है औ अनावृतपदार्थगोचर वृत्तिमैं प्रकाशकता है नहीं। काहेतैं ? अनावृत चेतनके संबंधसैंही विषयप्रकाशके संभवतैं वृत्तिमैं प्रकाशकताकी कल्पना अयोग्य है। यातैं वृत्तिमैं अज्ञाननाशकतासैं विना अन्यविधप्रकाशकताके असंभवतैं द्वितीयलक्षणकी बी प्रथमलक्षणकी न्यांई सुखादिगोचरवृत्तिमैं अव्याप्ति होवैगी। यातैं "अस्तिव्यवहारका हेतु अविद्या औ अंतःकरणका परिणाम" वृत्ति कहियेहै ॥

॥ २ ॥ वृत्तिके भेदका निरूपण

॥ १०–१७ ॥

॥ १० ॥ सो वृत्तिज्ञान दोप्रकारका है ॥ १ एक प्रमारूप है औ २ दूसरा अप्रमारूप है ॥

॥ ११ ॥

१ (१) प्रमाणजन्य यथार्थज्ञानकूं **प्रमा** कहैहैं ॥

(२) वा अबाधितअर्थकूं विषय करनैवाले ज्ञानकूं **प्रमा** कहैहैं ॥

(३) वा अबाधितअर्थकूं विषय करनैहारे स्मृतिसैं भिन्न ज्ञानकूं **प्रमा** कहैहैं ॥

(४) या यथार्थअनुभवकूं प्रमा कहैहैं।
२ तासैं भिन्न ज्ञानकूं अप्रमा कहैहैं।

॥१२॥ प्रथमलक्षणके अनुसार तौ प्रत्यक्षादि-भेदतैं प्रमाज्ञान पट्प्रकारका है। औ तासैं भिन्न ईश्वरज्ञान औ सुखादिगोचरज्ञान औ स्मृतिज्ञान औ भ्रमज्ञान अप्रमारूप हैं। तिनमैं ईश्वरज्ञानादिक यथार्थअप्रमा हैं औ भ्रमज्ञान अयथार्थअप्रमा है। औ–

॥ १३ ॥ काहू ग्रंथकारके मतमैं तौ यथार्थ-ज्ञान प्रमा है औ अयथार्थज्ञान अप्रमा है। ताकी रीतिसैं द्वितीयलक्षण है ताके अनुसार तौ ईश्वरज्ञान औ सुखदुःखादिगोचरज्ञान औ स्मृतिज्ञान बी प्रमा हैं। औ भ्रमज्ञान अप्रमा है। परंतु–

॥ १४ ॥ प्राचीनआचार्योंनै स्मृतिसैं भिन्न यथार्थज्ञानमैं प्रमाव्यवहार कियाहै। यातैं स्मृतिसैं व्यावृत्त प्रमाका लक्षण कह्याचाहिये। ताकी रीतिसैं तृतीय औ चतुर्थलक्षण है। ताके अनुसार तौ प्रत्यक्षादिपड्विध ज्ञान औ ईश्वरज्ञान औ सुखादिगोचरज्ञानही प्रमा हैं औ तासैं भिन्न स्मृतिज्ञान औ भ्रमज्ञान अप्रमा हैं॥

॥ १५ ॥ शुक्तिरजतादिज्ञान स्मृतिसैं भिन्न हैं। अबाधितअर्थकूं विषय करैं नहीं। किंतु बाधितअर्थकूं विषय करैहैं। यातैं प्रमा नहीं॥ अबाधित अर्थकूं विषय करनैवाला स्मृतिज्ञान बी है औ स्मृतिज्ञानमैं प्रमाव्यवहार है नहीं। यातैं बहुतग्रंथनमैं "स्मृतिसैं भिन्न अबाधितअर्थ-गोचरज्ञान" सो प्रमा कहियेहै॥

॥ १६ ॥ चतुर्थलक्षणकी पदकृति यह हैः–यथार्थ तौ स्मृति बी है। सो अनुभवरूप नहीं॥ अनुभव तौ भ्रमज्ञान बी है। सो यथार्थ नहीं। यातैं "यथार्थअनुभव" प्रमा है। औ तासैं भिन्न अप्रमा है। यह प्रमाका लक्षण बी स्मृतिसैं व्यावृत्त है॥

॥ १७ ॥ ईश्वरज्ञान औ सुखादिगोचरज्ञान बी यथार्थ अनुभवरूप हैं। यातैं सो बी प्रत्यक्षादि पट्अनुभवकी न्याईं प्रमा है। तासैं भिन्न स्मृतिज्ञान औ भ्रमज्ञान अप्रमा हैं॥ अप्रमाका निरूपण आगे अष्टमरत्नसैं लेके त्रयोदशरत्न-पर्यंत कहैंगे॥

॥ ३ ॥ प्रमा औ अप्रमाकी संख्या अरु कारण ॥ १८–२४ ॥

॥ १८ ॥ प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति, शाब्दी, अर्थापत्ति औ अभाव, ये पट्प्रमाणजन्य यथार्थज्ञान औ ईश्वरज्ञान औ सुखादिगोचर-ज्ञान। इस भेदतैं प्रमाज्ञान अष्टविध है॥

॥ १९ ॥

१ प्रत्यक्षादिपट्ज्ञान औ प्रत्यक्षका भेद सुखादिज्ञान जीवआश्रितप्रमा कहियेहै॥ औ—
२ भूत-भावि-वर्त्तमान सकलपदार्थगोचर मायाकी वृत्तिरूप ज्ञान ईश्वरआश्रित प्रमा कहियेहै॥

॥ २० ॥ फेर तिनमैं—

१ प्रत्यक्षप्रमा औ मायाकी वृत्तिरूप ईश्वरका ज्ञान औ प्रत्यक्षप्रमाके अंतर्गत सुखादिगोचरज्ञान प्रत्यक्षरूप हैं॥ औ–
२ शाब्दीप्रमा प्रत्यक्षपरोक्षभेदतैं दो-भांतिकी है॥
३ तैसैं अभावप्रमा बी प्रत्यक्षपरोक्षभेदतैं दोभांतिकी है। अथवा अभावकूं विवादका विषय होनैतैं अभावप्रमा परोक्षही है। औ—
४–६ अनुमिति उपमिति औ अर्थापत्तिप्रमा परोक्षही हैं॥

॥ २१ ॥ प्राणिके कर्मनके अनुसार सृष्टिके आदिकालमैं सर्वपदार्थनकूं विषय करनैवाला ईश्वरका ज्ञान उपजैहै, सो भूत-भविष्यत्-वर्त्तमान सकलपदार्थनके सामान्यविशेषभावकूं विषय करैहै औ प्रलयपर्यंत स्थायी है । यातैं एक औ नित्य कहैहैं । ताका उपादानकारण माया है औ निमित्तकारण सर्वप्राणिनके अदृष्टादिक हैं ॥

॥ २२ ॥ धर्मादिक निमित्तसैं अनुकूलप्रतिकूलपदार्थके संबंध होनैतैं अंतःकरणके सत्वगुणका औ रजोगुणका परिणामरूप सुखदुःख होवैहै ॥ जो सुखदुःखका निमित्त है, ताही निमित्तसैं सुखदुःखकूं विषय करनैवाली अंतःकरणकी वृत्ति होवैहै । ता वृत्तिमैं आरूढ साक्षी सुखदुःखकूं प्रकाशैहै । ताका अंतःकरण उपादान है औ धर्मादिक निमित्त हैं । औ—

॥ २३ ॥ प्रमाणजन्य यथार्थज्ञान षड्विध है। तिसका उपादानकारण अंतःकरण है औ निमित्तकारण प्रत्यक्षादिप्रमाण तथा इंद्रियसंयोगादिक हैं ॥

॥ २४ ॥ अविद्याके परिणाम भ्रमज्ञानका उपादानकारण अविद्या है औ निमित्तकारण सजातीयवस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार । प्रमातृदोष प्रमाणदोष । प्रमेयदोष । अधिष्ठानके सामान्यअंशका ज्ञान औ तिमिरआदिक हैं ॥

॥ इति श्रीवृत्तिरत्नावल्यां सकारणसभेदवृत्तिस्वरूपनिरूपणं नाम प्रथमं रत्नं समाप्तम् ॥१॥

॥ अथ द्वितीयरत्नप्रारंभः ॥ २ ॥

॥ १ ॥ प्रत्यक्षप्रमाणनिरूपण ॥ २५–८८ ॥

॥ ४ ॥ षट्प्रमाणोंके नाम लक्षण औ मतभेदसैं स्वीकार ॥ २५--२७ ॥

॥ २५ ॥ प्रमाणके षट्भेद हैं:—प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति औ अनुपलब्धि ।

॥ २६ ॥

१ प्रत्यक्षप्रमाका जो करण सो प्रत्यक्षप्रमाण कहियेहैं ।

२ अनुमितिप्रमाके करणकूं अनुमानप्रमाण कहैहैं ॥

३ शाब्दीप्रमाके करणकूं शब्दप्रमाण कहैहैं ॥

४ उपमितिप्रमाके करणकूं उपमानप्रमाण कहैहैं ।

५ अर्थापत्तिप्रमाके करणकूं अर्थापत्ति प्रमाण कहैहैं ॥

६ अभावप्रमाके करणकूं अनुपलब्धिप्रमाण कहैहैं ॥

प्रत्यक्ष औ अर्थापत्तिप्रमाणके औ प्रमाके एकही नाम हैं ॥

॥ २७ ॥

१ चार्वाकके मतमैं एक प्रत्यक्षप्रमाण मान्याहै ॥

२ कणाद औ सुगतके मतमैं प्रत्यक्ष औ अनुमान, ये दोप्रमाण मानेहैं ॥

३ सांख्यशास्त्रका कर्ता जो कपिल है, ताके मतमैं प्रत्यक्ष, अनुमान औ शब्द ये तीन प्रमाण मानेहैं ।

४ न्यायशास्त्रका कर्ता जो गौतम है ताके मतमैं प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द औ उपमान, ये चारीप्रमाण मानेहैं ॥

५ पूर्वमीमांसाका एकदेशी भट्टका शिष्य जो प्रभाकर है । ताके मतमैं प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, औ अर्थापत्ति, ये पांच प्रमाण मानेहैं ॥

६ भट्टके मतमैं षट्प्रमाण मानेहैं औ—

७ वेदांतके ग्रंथनमैं बी षट्प्रमाणही लिखेहैं ॥

यद्यपि सूत्रकारभाष्यकारनै प्रमाणसंख्या लिखी नहीं तथापि सिद्धांतका अविरोधी जो भट्टका मत है ताकूं अद्वैतवादमैं मानैहैं। यातैं वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमैं षट्प्रमाणही लिखेहैं ॥

॥५॥ प्रत्यक्षप्रमाण औ प्रमाके स्वरूपका निर्णय ॥ २८-३५ ॥

॥ २८ ॥ अज्ञानका ज्ञापक प्रमाण कहियेहै ? वा प्रमाका करण प्रमाण कहियेहै ?

प्रत्यक्षप्रमाके करण नेत्रादिकइंद्रिय हैं, यातैं नेत्रादिकइंद्रियनकूं प्रत्यक्षप्रमाण कहैहैं ॥

॥ २९ ॥ व्यापारवाला जो असाधारण कारण होवै, सो करण कहियेहै।

अथवा व्यापारसैं भिन्न जो असाधारण कारण होवै, सो करण कहियेहै ॥

॥ ३० ॥ कार्यसैं नियत अव्यवहितपूर्ववृत्ति होवै, सो कारण कहियेहै । सो कारण १ साधारण औ २ असाधारण भेदतैं दो भांतिका है ॥

१ सर्वकार्यके कारणकूं साधारणकारण कहैहैं ।

२ किसी एककार्यके कारणकूं असाधारणकारण कहैहैं ॥

१ ईश्वर औ ताके ज्ञान, इच्छा, कृति, दिशा, काल, अदृष्ट, प्रागभाव औ प्रतिबंधकाभाव, ये नव साधारणकारण हैं ॥

२ इनसैं भिन्न जे घटादिकके कपालादिक कारण, सर्व असाधारणकारण हैं ॥ तिनमैं बी (१) कोई उपादानकारण होवैहै (२) कोई निमित्तकारण होवैहै ॥

(१) जाके स्वरूपमैं कार्यकी स्थिति होवै, सो उपादानकारण कहियेहै ।

(२) तासैं भिन्न निमित्तकारण कहियेहै। जैसैं घटका उपादान दोकपाल हैं औ निमित्त दंडादिक हैं ।

असाधारणकारण बी दोप्रकारका होवैहै:-१ एक तौ व्यापारवाला होवैहै । औ २ दूसरा व्यापाररहित होवैहै ॥

कारणतैं उपजिके कार्यकूं उपजावै, सो व्यापार कहियेहै ॥ जैसैं कपाल घटका कारण है औ कपाल दोका संयोग बी घटका कारण है ॥ तहां कपालकी कारणतामैं संयोग व्यापार है । काहेतैं ? कपालसंयोग कपालतैं उपजैहै औ-

१ कपालके कार्य घटकूं उपजावैहै । यातैं संयोगरूप व्यापारवाला कारण कपाल है । औ—

२ जो कार्यकूं किसीद्वारा उपजावै नहीं। किंतु आपही उपजावै, सो व्यापारहीन कारण कहियेहै ॥ औ—

कपालका संयोग असाधारणकारण तौ है, व्यापारवाला नहीं । यातैं करण नहीं कहियेहै। केवल घटका कारण कहियेहै ॥

॥ ३१ ॥ तैसैं प्रत्यक्षप्रमाके नेत्रादिक इंद्रिय करण हैं । काहेतैं ? नेत्रादिक इंद्रियनका अपनै अपनै विषयतैं संबंध नहीं होवै तौ प्रत्यक्षप्रमा होवै नहीं । इंद्रियविषयका संबंध होवै तब होवैहै । यातैं इंद्रियविषयका संबंध इंद्रियतैं उपजिके प्रत्यक्षप्रमाकूं उपजावैहै, सो व्यापार है ॥ संबंधरूप व्यापारवाले प्रत्यक्षप्रमाके असाधारणकारण इंद्रिय हैं । यातैं इंद्रियनकूं प्रत्यक्षप्रमाण कहैहैं। इंद्रियजन्य यथार्थज्ञानकूं प्रत्यक्षप्रमा कहैहैं ।

॥ ३२ ॥ यद्यपि जिनके मतमैं मनइंद्रिय नहीं, तिनके मतमैं इंद्रियजन्यता प्रत्यक्षका लक्षण नहीं, तथापि तहां विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेदही प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण है। ताहीकूं प्रत्यक्षप्रमा बी कहैहैं ॥

॥ ३३ ॥ सो प्रत्यक्षप्रमा दोप्रकारकी हैः–१ एक अभिज्ञाप्रत्यक्ष है औ २ दूसरी प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष है।

१ केवल इंद्रियादिसंबंधजन्य ज्ञान अभिज्ञाप्रत्यक्ष है। औ—

२ प्रत्यक्षसामग्रीसहकृतसंस्कारजन्य ज्ञान प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष है ॥

सो प्रत्येक बी आंतरप्रत्यक्षप्रमा औ बाह्यप्रत्यक्षप्रमाके भेदतैं दो प्रकारकी है।

आंतरप्रत्यक्षप्रमा बी दोप्रकारकी हैः—एक आत्मगोचर है औ दूसरी अनात्मगोचर है ॥

आत्मगोचर बी दोप्रकारकी हैः-एक शुद्धात्मगोचर है औ दूसरी विशिष्टात्मगोचर है।

शुद्धात्मगोचर बी दोप्रकारकी हैः–एक तौ ब्रह्मागोचर है औ दूसरी ब्रह्मगोचर है ॥

॥ ३४ ॥ "त्वं" पदार्थबोधक वेदांतवाक्यसैं "शुद्धः प्रकाशोऽहं" ऐसी वृत्ति होवैहै, ता वृत्तिदेशमैं अंतःकरणउपहित शुद्धचेतन है। यातैं वृत्त्यवच्छिन्नचेतन औ विषयावच्छिन्न चेतनका अभेद होनैतैं वह वृत्ति अपरोक्ष है। औ ता वृत्तिके विषय चेतनमैं ब्रह्मता बी है। परंतु ब्रह्माकारवृत्ति हुई नहीं। काहेतैं? अवांतरवाक्यसैं वृत्ति हुईहै। महावाक्यसैं होती तौ ब्रह्माकार बी होती। काहेतैं?—

॥ ३५ ॥ शब्दजन्यज्ञानका यह स्वभाव हैः–सन्निहितपदार्थकूं जिसरूपतैं शब्द बोधन करै, तिसरूपकूं ज्ञान विषय करैहै औ जिसरूपतैं शब्द करै नहीं, तिसरूपतैं शब्दजन्यज्ञान विषय करै नहीं ॥

जैसैंः–दशमपुरुषकूं "दशमोऽस्ति" इसरीतिसैं कहैं, तब "दशमोऽहं" इसरीतिसैं श्रोताकूं ज्ञान होवै नहीं ॥ जैसैं दशममैं आत्मता है, तथापि आत्मताबोधक शब्दाभावतैं आत्मताका ज्ञान होवै नहीं, तैसैं आत्मामैं ब्रह्मता सदा है तौ बी ब्रह्मताबोधक शब्दाभावतैं ज्ञान होवै नहीं। यातैं उक्तवृत्ति ब्रह्मागोचरशुद्धात्मगोचरआंतरप्रत्यक्षप्रमा है ॥

॥ ६ ॥ शंकासमाधानपूर्वक प्रत्यक्षप्रमाका निर्णय ॥ ३६–५२ ॥

॥ ३६ ॥ प्रत्यक्षके प्रसंगतैं यह शंका होवैहैः– सिद्धांतमैं 'इंद्रियजन्यज्ञान प्रत्यक्ष होवैहै। इसका तौ अंगीकार नहीं। काहेतैं? बाह्यघटादिकनका प्रत्यक्षज्ञान तौ सिद्धांतमैं बी इंद्रियजन्य है तौ बी मनकूं इंद्रियताका अभावतैं आंतरसुखदुःखका ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं। किंतु सुखदुःख साक्षीभास्य हैं ॥ विशिष्टात्मामैं अंतःकरणभाग साक्षीभास्य है। चेतनभाग स्वयंप्रकाश है। यातैं जीवका ज्ञान बी मानस नहीं ॥ ब्रह्मविद्यारूप अपरोक्षज्ञानका करण शब्द है। यातैं वह बी शब्दप्रमाणजन्य है। मानस नहीं। औ वाचस्पतिके मतमैं उक्तज्ञान सर्व मनइंद्रियजन्य है तौ बी मायाकी वृत्तिरूप ईश्वरआश्रितप्रत्यक्षप्रमा इंद्रियअनुमानादिप्रमाणजन्य नहीं। यातैं तहां ताके मतमैं बी अव्याप्ति होनैतैं इंद्रियजन्यता प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण नहीं। किंतु—

॥ ३७ ॥ वृत्त्यवच्छिन्नचेतनसैं विषयावच्छिन्नचेतनका अभेदही ज्ञानकी प्रत्यक्षताका हेतु है ॥

१ जहां इंद्रियसंबद्ध घटादिक होवैं, तहां इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति बाह्य जायके विषयके आकारके समानाकार होयके विषयतैं

संबंधवती होवैहै । यातैं वृत्तिचेतनकी औ विषयचेतनकी उपाधि एकदेशमैं होनेतैं उपहित-चेतनका बी अभेद होवैहै ॥

२ तैसैं सुखादिकज्ञान यद्यपि इंद्रियजन्य नहीं औ शुद्धात्मज्ञान बी शब्दजन्य है, इंद्रियजन्य नहीं, तथापि विषयचेतन औ वृत्तिचेतनका भेद नहीं। काहेतैं? सुखाकारवृत्ति अंतःकरणदेशमैं है औ सुख बी अंतःकरणमैं है। यातैं वृत्तिउपहितचेतन अरु विषयउपहित चेतनका अभेद है ॥

तैसैं आत्माकारवृत्तिका उपादानकारण अंतःकरण है औ अंतःकरणउपहित चेतनके अभिमुख हुईहै । यातैं आत्माकारवृत्ति बी अंतःकरणदेशमैं होवैहै, सो अंतःकरणही शुद्धआत्माकी उपाधि है ॥

इसरीतिसैं दोनूं उपाधि एकदेशमैं होनैतैं वृत्तिचेतन अरु विषयचेतनका अभेद होवैहै । यातैं सुखादिकज्ञान औ शुद्धात्मज्ञान प्रत्यक्षरूप हैं ॥

॥ ३८ ॥ इहां यह निष्कर्ष हैः—जहां विषयका प्रमातासैं वृत्तिद्वारा अथवा साक्षात् संबंध होवै, तिस विषयका ज्ञान प्रत्यक्ष है । सो विषय बी प्रत्यक्ष कहियेहै ॥ जैसैं घटका प्रत्यक्षज्ञान होवै तब घट प्रत्यक्ष है, ऐसा व्यवहार होवैहै ॥

॥ ३९ ॥ बाह्यपदार्थनका वृत्तिद्वारा प्रमातासैं संबंध होवैहै, सुखादिकनका प्रमातासैं साक्षात्संबंध है ॥

अतीतसुखादिकनका प्रमातासैं वर्त्तमान-संबंध नहीं । यातैं अतीतसुखादिकनका ज्ञान स्मृतिरूप है । प्रत्यक्षरूप नहीं ।

॥ ४० ॥ अतीतसुखादिकनका बी प्रमातासैं संबंध तौ हुयाहै, तथापि प्रत्यक्षलक्षणमैं वर्त्तमानका निवेश है ॥

१ "प्रमातासैं वर्त्तमानसंबंधी योग्यविषय" प्रत्यक्ष कहियेहै ॥

२ "प्रमातासैं वर्त्तमानसंबंधी योग्यविषयका ज्ञान" प्रत्यक्षज्ञान कहियेहै ॥

योग्य नहीं कहैं तौ धर्मादिक सदा प्रमाताके संबंधी हैं, यातैं सदाही प्रत्यक्ष कहे चाहिये औ तिनका शब्दादिकनसैं ज्ञान होवै, सो प्रत्यक्षज्ञान कह्या चाहिये ॥ धर्मादिक प्रत्यक्षयोग्य नहीं । यातैं लक्षणमैं योग्यपदके निवेशतैं दोष नहीं ॥ १ योग्यता औ २ अयोग्यता अनुभवके अनुसार अनुमेय हैं ॥

१ जा वस्तुमैं प्रत्यक्षताका अनुभव होवै, तामैं योग्यता । औ—

२ जामैं प्रत्यक्षताका अनुभव नहीं होवै, तामैं अयोग्यता ।

यह अनुमान अथवा अर्थापत्तिसैं ज्ञान होवैहै ॥

इसरीतिसैं प्रत्यक्षयोग्यवस्तुका प्रमातासैं वर्त्तमानसंबंध होवै, तहां प्रत्यक्षज्ञान होवैहै । या अर्थमैं—

॥ ४१ ॥ यह शंका हैः—ब्रह्मगोचरज्ञान परोक्ष नहीं हुयाचाहिये । काहेतैं? ब्रह्मका प्रमातासैं असंबंध होवै तौ बाह्यादिज्ञानकी न्यांई ब्रह्मज्ञान बी परोक्ष होवै ॥ जब अवांतर-वाक्यसैं "सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, अनंत-स्वरूप ब्रह्म है" ऐसी वृत्ति होवै, तिसकालमैं बी ब्रह्मका प्रमातासैं संबंध है । यातैं अवांतर-वाक्यजन्य ब्रह्मज्ञान बी प्रत्यक्षही हुया चाहिये औ सिद्धांतमैं अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मज्ञान प्रत्यक्ष नहीं, किंतु परोक्ष है । सो उक्तरीतिसैं संभवै नहीं ॥ या शंकाका—

॥ ४२ ॥ यह समाधान हैः— प्रत्यक्ष-लक्षणमैं विषयका योग्यता विशेषण कह्याहै। तैसैं योग्यप्रमाणजन्यता ज्ञानका विशेषण है । यातैं

उक्तदोष नहीं। काहेतैं ? प्रमातासैं वर्तमानसंबंध-वाला जो योग्यविषय, ताका योग्यप्रमाण-जन्य ज्ञान प्रत्यक्षज्ञान कहियेहै॥ या लक्षणमैं उक्तदोष नहीं। काहेतैं ?—

|| ४३ || वाक्यका यह स्वभाव है:-

१ श्रोताके स्वरूपबोधकपदघटित वाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवैहै।

२ श्रोताके स्वरूपबोधकपदरहित वाक्यतैं परोक्षज्ञान होवैहै॥

विषयसन्निहित होवै औ प्रत्यक्षयोग्य होवै तौ बी स्वरूपबोधकपदरहित वाक्यतैं अपरोक्ष-ज्ञान होवै नहीं ॥ जैसैं दशमके बोधक द्विविधवाक्य हैं॥

१ एक तौ "दशमोस्ति" ऐसा वाक्य है। औ—

२ दूसरा "दशमस्त्वमसि" ऐसा वाक्य है॥ तिनमैं—

१ प्रथमवाक्य तौ श्रोताके स्वरूपबोधक-पदरहित है। औ—

२ दूसरा वाक्य श्रोताके स्वरूपका बोधक जो "त्वं" पद है तासैं घटित कहिये युक्त है॥

तिनमैं प्रथमवाक्यसैं श्रोताकूं दशमका परोक्ष-ज्ञानही होवैहै। वाक्यजन्य ज्ञानका विषय दशमपुरुष है। सो दोनूं स्थानमैं अतिसन्निहित है॥

जो स्वरूपसैं भिन्न होवै औ संबंधी होवै, सो सन्निहित होवैहै औ प्रत्यक्षयोग्य है॥ दशमपुरुष श्रोताके स्वरूपसैं भिन्न नहीं। किंतु श्रोताका स्वरूप है। यातैं अतिसन्निहित है औ प्रत्यक्षयोग्य है। जो प्रत्यक्षयोग्य नहीं होवै तौ द्वितीयवाक्यसैं बी दशमका प्रत्यक्षज्ञान नहीं हुवाचाहिये औ द्वितीयवाक्यसैं प्रत्यक्षज्ञान होवैहै। यातैं प्रत्यक्षयोग्य है॥

इसरीतिसैं अतिसन्निहित औ वाक्यजन्य-प्रत्यक्षयोग्यदशमका जो वाक्यसैं प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं तौ वह वाक्य अयोग्य है॥

द्वितीयवाक्यसैं तिसी दशमका अपरोक्षज्ञान होवैहै, यातैं द्वितीयवाक्य योग्य है॥

वाक्यनकी योग्यता औ अयोग्यतामैं और तौ कोई हेतु है नहीं। स्वरूपबोधकपदघटितत्व औ स्वरूपबोधकपदरहितत्वंही योग्यता औ अयोग्यताके संपादक हैं॥ इसरीतिसैं—

१ "दशमस्त्वमसि" यह वाक्य तौ योग्य-प्रमाण है। तिसतैं जन्य "दशमोऽहं" यह प्रत्यक्षज्ञान है॥

२ तैसैं "दशमोऽस्ति" यह वाक्य अयोग्यप्रमाण है। तिसतैं जन्य कहिये उत्पन्न जो "दशमः कुत्रचिदस्ति" ऐसा दशमका ज्ञान सो परोक्ष है॥

|| ४४ || तैसैं ब्रह्मबोधक वाक्य बी दो-प्रकारके हैं:—

१ "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" इसरीतिके अवांतरवाक्य हैं॥

२ "तत्त्वमसि" इसरीतिके महावाक्य हैं॥

१ अवांतरवाक्यनमैं श्रोताका स्वरूप-बोधक पद नहीं है। यातैं प्रत्यक्षज्ञानके जननमैं योग्य अवांतरवाक्य नहीं॥ औ-

२ महावाक्यनमैं श्रोताके स्वरूपके बोधक त्वमादिपद हैं। यातैं प्रत्यक्षज्ञानजननमैं योग्य महावाक्य हैं॥

१ इसरीतिसैं योग्यप्रमाण महावाक्य हैं। तिनसैं उत्पन्न हुया ज्ञान प्रत्यक्ष है॥ औ

२ अयोग्यप्रमाण "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" इत्यादिक वाक्य हैं। तिनसैं उपज्या ब्रह्मका ज्ञान परोक्ष होवैहै॥

॥ ४५ ॥ अवांतरवाक्य बी दोप्रकारके हैंः–१ तत्पदार्थके बोधक हैं औ २ त्वम्पदार्थके बोधक हैं। तिनमैं—

१ तत्पदार्थबोधक वाक्य तौ अयोग्य हैं औ-

२"य एष हृद्यंतर्ज्योतिः पुरुषः"इत्यादिक त्वंपदार्थबोधक अवांतरवाक्य बी महावाक्यनकी न्यांई योग्य हैं। अयोग्य नहीं। काहेतैं ? श्रोताके स्वरूपके बोधक तिनमैं पद हैं। यातैं त्वम्पदार्थबोधक अवांतरवाक्यतैं बी अपरोक्षज्ञान होवैहै। परंतु वह अपरोक्षज्ञान ब्रह्माभेदगोचर नहीं। यातैं परमपुरुषार्थका साधक नहीं। किंतु परमपुरुषार्थका साधन जो अभेदज्ञान, तामैं पदार्थशोधनद्वारा उपयोगी है ॥

इसरीतिसैं प्रमातासैं संबंधी बी ब्रह्म है औ योग्य है। तथापि अयोग्य जो अवांतरवाक्य तिनसैं ब्रह्मका परोक्षज्ञान संभवैहै ॥ या कहनैमैं–

॥ ४६ ॥ अन्यशंका होवैहैः–प्रमातासैं वर्त्तमानसंबंधवाला जो योग्यविषय, ताका योग्यप्रमाणजन्य ज्ञान प्रत्यक्षज्ञान कहियेहै। या कहनेमैं सुखादिकनके प्रत्यक्षमैं उक्तलक्षणका अभाव है। काहेतैं? सुखादिप्रत्यक्षरैं प्रमाणजन्यता के अभावतैं योग्यप्रमाणजन्यता सर्वथा संभवै नहीं। यातैं उक्तलक्षणमैं अव्याप्तिदोष है। या शंकाका—

॥ ४७ ॥ यह समाधान हैः– योग्य प्रमाणजन्यताका लक्षणमैं प्रवेश नहीं। किंतु अयोग्यप्रमाणअजन्यताका प्रवेश है। यातैं अव्याप्ति नहीं। काहेतैं ? "प्रमातासैं वर्त्तमानसंबंधवाला जो योग्यविषय, ताका अयोग्यप्रमाणसैं अजन्यज्ञान" सो प्रत्यक्षज्ञान कहियेहै ॥ इसरीतिसैं कहे अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानकी व्यावृत्ति होवैहै ॥

उक्तरीतिसैं ब्रह्ममात्रके बोधक अवांतर वाक्य अयोग्यप्रमाण हैं ॥

१ "ब्रह्मास्ति" यह परोक्षज्ञान तिनतैं जन्य है। अजन्य नहीं। यातैं परोक्षज्ञानमैं लक्षण जावै नहीं ॥ औ—

२ सुखादिगोचरज्ञानका संग्रह होवैहै। काहेतैं ? सुखादिगोचरज्ञान किसी प्रमाणतैं जन्य नहीं। यातैं अयोग्यप्रमाणतैं अजन्य है ॥ औ—

३ इंद्रियजन्यघटादिज्ञान, तैसैं महावाक्यजन्य ब्रह्मज्ञान योग्यप्रमाणजन्य होनैतैं अयोग्यप्रमाणसैं अजन्य हैं।

यातैं प्रत्यक्षज्ञानका उक्तलक्षण दोषरहित है॥

इसप्रकार इहां प्रमातासैं विषयका अभेद जो तादात्म्यसंबंध, सो विषयगत अपरोक्षतामैं हेतु है औ विषयकी अपरोक्षता सो ज्ञानगत अपरोक्षतामैं हेतु है ॥ तहां—

॥ ४८ ॥ यह शंका होवैहैः– प्रमातासैं अभिन्नअर्थकूं अपरोक्ष मानिके अपरोक्षअर्थगोचरज्ञानकूं अपरोक्षत्व कहैं, तौ स्वप्रकाशआत्मसुखरूप ज्ञानमैं अपरोक्षज्ञानके लक्षणकी अव्याप्ति होवैगी। काहेतैं ? अपरोक्षअर्थ है गोचर कहिये विषय जिसका तिस ज्ञानकूं अपरोक्ष कहैं तौ ज्ञानका औ विषयका परस्परभेद सापेक्ष विषयविषयीभावसंबंध है। तिसी स्थानमैं ज्ञानगत अपरोक्षलक्षण होनैतैं विषयविषयीभावके असंभवतैं तामैं उक्तलक्षण संभवै नहीं ॥

यद्यपि पूर्वमीमांसाके वार्तिककारभट्टके शिष्य प्रभाकरके मतमैं " स्व कहिये अपना स्वरूप है, प्रकाश कहिये विषयी जिसका, सो स्वप्रकाश" कहियेहै ॥ इसरीतिसैं स्वप्रकाशपदके अर्थसैं बी अभेदमैं विषयविषयीभाव संभवैहै। तथापि प्रकाश्यप्रकाशकका भेद अनुभवसिद्ध होनैतैं भेदविना प्रभाकरका विषयविषयीभाव असंगत है। यातैं स्वप्रकाश-

पदका उक्तअर्थ नहीं। किंतु "स्व कहिये अपनी सत्तासैं, प्रकाश कहिये संशयादि-राहित्य" ही स्वप्रकाशपदका अर्थ अद्वैत-ग्रंथनमैं कह्याहै ॥

इसरीतिसैं स्वप्रकाशज्ञानतैं अभिन्न स्वरूप-सुखमैं विषयविषयीभावके अभावतैं अपरोक्षका उक्तलक्षण तामैं संभवै नहीं ॥ यातैं—

॥ ४९ ॥ अपरोक्षका यह लक्षण है:—"स्व-व्यवहारके अनुकूल चैतन्यसैं अनावृत विषयका अभेद" अपरोक्षविषयका लक्षण है ॥ औ—

अनावृतविषयतैं स्वव्यवहारानुकूल चेतनका अभेद अपरोक्षज्ञानका लक्षण है। यातैं शब्दजन्यब्रह्मज्ञानविषै बी अपरोक्षता संभवैहै। अव्याप्तिदोष नहीं ॥

१ स्व कहिये विषय तौ घटादिअगोचर-वृत्तिकालमैं घटादिक है तथापि सो चेतन नहीं ॥

२ चेतन तौ ताका अधिष्ठान बी है। सो चेतनमैं सर्वव्यवहारहेतुवृत्तिके अभावतैं प्रकाशकतारूप व्यवहारके अनुकूल नहीं॥

३ स्वव्यवहारके अनुकूल तौ वृत्तिअवछिन्न-साक्षीचेतन बी है। सो तिस घटादिविषया-कारवृत्तिके अभावतैं ता घटादिविषयसैं अभिन्न नहीं ॥

४ साक्षीचेतनसैं अभेद तौ धर्माधर्मका बी है। सो साक्षी तिनमैं प्रत्यक्षयोग्यताके अभावतैं स्वव्यवहारके अनुकूलचेतन नहीं ॥

यद्यपि संसारदशामैं बी वृत्तिविशिष्टचेतन जीवका ब्रह्मसैं अभेद होनैतैं सर्वपुरुषनकूं ब्रह्म अपरोक्ष है, ऐसा व्यवहार हुयाचाहिये औ अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मका ज्ञान बी अपरोक्ष हुयाचाहिये, तथापि संसारदशामैं आवृतब्रह्मका स्वव्यवहारानुकूलचेतनसैं अभेद है। अनावृतब्रह्मरूप विषयका अभेद नहीं होनैतैं ब्रह्ममैं अपरोक्षत्व नहीं ॥

तैसैं अवांतरवाक्यजन्य ज्ञानका बी आवृत-विषयतैं अभेद होनैतैं तिस ज्ञानकूं अपरोक्षत्व नहीं। यातैं उक्तचेतनसैं अनावृत विषयका अभेद विषयगतप्रत्यक्षत्वका प्रयोजक है। औ अनावृतविषयसैं उक्तचेतनका अभेद ज्ञानगतअपरोक्षत्वका प्रयोजक है ॥ यामैं—

॥ ५० ॥ १ यह शंका है:— चेतनमैं घटादिक अध्यस्त हैं औ विषयाकारवृत्तिकालमैं वृत्तिचेतनसैं विषयचेतनकी एकता होनैतैं स्वाधिष्ठानविषयचेतनसैं अभिन्नघटादिकनका वृत्तिचेतनसैं अभेद हुए बी ताकी उपाधिरूप वृत्तिसैं अभेद संभवै नहीं॥ जैसैं रज्जुमैं कल्पित सर्पदंडमालाका रज्जुसैं अभेद हुये बी सर्पदंडमालाका परस्परभेदही होवैहै। अभेद नहीं औ ब्रह्ममैं कल्पित सकलद्वैतका ब्रह्मसैं अभेद हुये बी परस्परअभेद होवै नहीं ॥ तैसैं वृत्तिचेतनसैं तौ वृत्तिका औ घटादिकन-का अभेद संभवैहै। तिनकी उपाधिभूत वृत्ति औ घटादिक विषयका परस्परअभेद होवै नहीं। यातैं वृत्तिरूप प्रत्यक्षज्ञानमैं उक्तलक्षणकी अव्याप्ति है ॥

॥ ५१ ॥ २ अन्यशंका:—समानगोचर कहिये एकविषयवाले ज्ञानमात्रसैं अज्ञान-की निवृत्ति मानै परोक्षज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति हुईचाहिये। इस दोषके परिहारअर्थ अपरोक्षज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति कहीहै। तामैं अन्योन्याश्रयदोष होवैहै। काहेतैं? ज्ञानकी अपरोक्षत्वकी सिद्धिके आधीन अज्ञानकी निवृत्ति कही औ अनावृतविषयका स्व-व्यवहारानुकूलचेतनसैं अभेद हुया। ज्ञानका अपरोक्षत्व कहनैतैं अज्ञानकी निवृत्तिके आधीन

ज्ञानके अपरोक्षत्वकी सिद्धि कही । यातैं परस्परअपेक्षा होनैतैं अन्योन्याश्रयदोष होवैहै ॥

ये दो शंका हैं ॥ तामैं—

॥ ५२ ॥ १ प्रथमशंकाका उत्तरः–

अद्वैतविद्याचार्यकी रीतिसैं अपरोक्षत्वधर्म चेतनका है वृत्तिका नहीं । जैसैं अनुमितित्व इच्छात्वआदिक अंतःकरणवृत्तिके धर्म हैं, तैसैं अपरोक्षत्वधर्म वृत्तिमैं नहीं है । किंतु विषयाकारवृत्तिउपहितचेतनका होनेतैं चेतनके अपरोक्षत्वका उपाधि वृत्ति है । यातैं वृत्तिमैं ताका आरोपकरिके वृत्तिज्ञान अपरोक्ष है । यह व्यवहार होवैहै ॥ औ वृत्तिका धर्म मानैं तौ सुखादिगोचरवृत्तिके अनंगीकारपक्षमैं साक्षीरूप अपरोक्षज्ञानमैं अपरोक्षत्व व्यवहार नहीं हुया चाहिये । यातैं वृत्तिका धर्म नहीं ॥ इसरीतिसैं वृत्तिज्ञान लक्ष्य नहीं । किंतु चेतनज्ञान लक्ष्य है । यातैं अव्याप्ति नहीं ॥

॥ ५३ ॥ २ अन्यशंकाका उत्तरः–

ज्ञानमात्रसैं अज्ञानकी निवृत्ति औ अपरोक्षज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति नहीं कहैहैं । किंतु प्रमाणकी महिमातैं जहां विषयतैं ज्ञानका तादात्म्यसंबंध होवै, तिस ज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै ॥ प्रमाणमहिमातैं बाह्यइंद्रियजन्यज्ञान औ महावाक्यरूप प्रमाणमहिमातैं शब्दजन्यब्रह्मज्ञान विषयतैं तादात्म्यसंबंधवाला होवैहै । यातैं उक्तउभयज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै ॥

यद्यपि सर्वका उपादान ब्रह्म होनैतैं ब्रह्मगोचर सकलज्ञानोंका तादात्म्यसंबंध है । यातैं अनुमितिरूप ब्रह्मज्ञानतैं औ अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मके परोक्षज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति हुई चाहिये । तथापि महावाक्यतैं जीवब्रह्मका अभेदगोचरज्ञान होवै । ताका विषयसैं तादात्म्यसंबंध तौ प्रमाणकी महिमातैं कहैहैं ॥ अन्यज्ञानका ब्रह्मसैं तादात्म्यसंबंध है, सो ब्रह्मकूं व्यापकता होनैतैं औ सकलकी उपादानता होनैतैं विषयकी महिमातैं कहैहैं ॥ इसरीतिसैं उक्त अपरोक्षज्ञानके लक्षणमैं अन्योन्याश्रयदोष बी नहीं । यातैं उक्तलक्षण निर्दोष है ॥

यद्यपि अपरोक्षज्ञानके लक्षणमैं और बी शंकासमाधानरूप विवाद बहुत है । सो कठिन जानिके औ विस्तारके भयसैं लिख्या नहीं । संक्षेपतैं रीतिमात्र जनाईहै ॥ ऐसैं प्रसंगसैं प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण कह्या ॥

॥ ७ ॥ आंतरप्रत्यक्षप्रमाके भेदका निर्द्धार ॥ ५४–६१ ॥

॥ ५४ ॥ पूर्वप्रसंग यह हैः–शुद्धात्मगोचर प्रत्यक्षप्रमा दोप्रकारकी हैः–एक ब्रह्मगोचर है, दूसरी ब्रह्मागोचर है । ब्रह्मागोचर कहि आये ॥

महावाक्यजन्य "अहं ब्रह्मास्मि" इसरीतिसैं ब्रह्मसैं अभिन्नआत्माकूं जो विषय करै सो **ब्रह्मगोचरशुद्धात्मगोचर प्रत्यक्षप्रमा** है ॥ "अहं ब्रह्मास्मि" या ज्ञानकूं वाचस्पति मनोजन्य कहैहैं । औरनके मतमैं यह ज्ञान वाक्यजन्य है ॥

॥ ५५ ॥ तामैं बी इतना भेद है । संक्षेपशारीरकका यह सिद्धांत हैः– महावाक्यतैं ब्रह्मका प्रत्यक्षज्ञानही होवैहै । कदै बी परोक्षज्ञान महावाक्यतैं होवै नहीं ॥

॥ ५६ ॥ अन्यग्रंथकारोंका यह मत हैः–विचारसहित महावाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवैहै । विचाररहित केवलवाक्यतैं परोक्षज्ञान होवैहै ॥

॥ ५७ ॥ सर्वके मतमैं " अहं ब्रह्मास्मि " यह ज्ञान शुद्धात्मगोचर है औ ब्रह्मगोचर है ।

तैसैं प्रत्यक्ष है। या अर्थमैं किसीका विवाद नहीं ॥

॥ ५८ ॥ जीवईश्वरका स्वरूपनिरूपण वी ग्रंथकारोंनै आभासवाद अवच्छेदवाद बिंबप्रतिबिंबवादादिरीतिसैं बहुतविस्तारसैं लिख्याहै। तहां—

१ जीवके स्वरूपमैं तौ एकत्वअनेकत्वका विवाद है। औ—

२ सर्वमतमैं ईश्वर एक है। सर्वज्ञ है। नित्य मुक्त है॥

ईश्वरमैं आवरणका निरूपण किसी अद्वैतवादके ग्रंथमैं नहीं॥ जो ईश्वरमैं आवरण कहै सो वेदांतसंप्रदायसैं बहिर्भूत है। परंतु नाना-अज्ञानवादमैं जीवाश्रित ब्रह्मविषयक अज्ञान है। यह वाचस्पतिका मत है। तहां जीवके अज्ञानतैं कल्पित ईश्वर औ प्रपंच नाना मानैहैं। तथापि जीवके अज्ञानसैं कल्पित ईश्वर वी सर्वज्ञही मानैहैं। ईश्वरमैं आवरणका अंगीकार नहीं॥

॥ ५९ ॥ इसरीतिसैं वेदांतकी अनेकप्रक्रिया हैं। तामैं आग्रह नहीं। काहेतैं ? प्रक्रियाही मोक्षकी हेतु नहीं। किंतु तिस प्रक्रियातैं जन्य जो बोध है, सो केवल मोक्षका हेतु है यातैं—

१ चेतनमैं संसारधर्मका संभव नहीं। औ

२ जीवईशका परस्परभेद नहीं।

इसअर्थके बोधअर्थ अनेकरीति कहीहैं। जिस पक्षसैं असंगब्रह्मात्माका बोध होवै, सोई पक्ष आदरणीय है। यह सर्वग्रंथकारोंका तात्पर्य है। यामैं किसीका विवाद नहीं॥

॥ ६० ॥ ऐसैं शुद्धात्मगोचरप्रमाके दो भेद कहे औ विशिष्टात्मगोचरप्रत्यक्षप्रमाके अनंतभेद हैं ॥ "अहं अज्ञः। अहं कर्ता। अहं सुखी। अहं दुःखी। अहं मनुष्यः"। इसतैं आदिलेके अनंतभेद हैं॥

यद्यपि अबाधितअर्थकूं विषय करै सो ज्ञान प्रमा कहियेहै॥ "अहं कर्ता" इत्यादिकज्ञानका "अहं न कर्ता" इत्यादिक ज्ञानसैं बाध होवैहै, ताकूं प्रमा कहना संभवै नहीं, तथापि संसारदशामैं अबाधितअर्थकूं विषय करै सो प्रमा कहियेहै॥ संसारदशामैं उक्तज्ञानोंका बाध होवै नहीं यातैं प्रमा है॥

इसरीतिसैं आत्मगोचरआंतरप्रत्यक्षप्रमाके भेद कहे॥ औ—

॥ ६१ ॥ "मयि सुखं। मयि दुःखं"। इत्यादिक सुखादिगोचरज्ञान वी आत्मगोचरप्रत्यक्षप्रमा है॥ परंतु—

१ "अहं सुखी, अहं दुःखी" इत्यादिकप्रमामैं तो अहंपदका अर्थ आत्मा विशेष्य है औ सुखदुःखादिक विशेषण हैं॥

२ "मयि सुखं। मयि दुःखं" इत्यादिक प्रमामैं सुखदुःखादिक विशेष्य हैं। आत्मा विशेषण है॥

यातैं "मयि सुखं। मयि दुःखं" इत्यादिक ज्ञानकूं आत्मगोचरप्रत्यक्षप्रमा नहीं कहैहैं। किंतु सुखादिक विशेष्य होनैतैं **अनात्मगोचरआंतरप्रत्यक्षप्रमा** कहैहैं॥ इसप्रकार आंतरप्रत्यक्षप्रमाके भेद कहे॥

॥ ८ ॥ बाह्यप्रत्यक्षप्रमाके भेदके कथनपूर्वक श्रोत्रजप्रमाका निर्द्धार ॥ ६२–७१ ॥

॥ ६२ ॥ बाह्यप्रत्यक्षप्रमा पांचप्रकारकी है। ताके कारण श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा घ्राण ये हैं। यातैं सो प्रत्यक्षप्रमाण हैं॥ इस इंद्रियतैं जन्य यथार्थज्ञान क्रमतैं श्रोत्रप्रमा

त्वाचप्रमा चाक्षुषप्रमा रासनप्रमा औ घ्राणजप्रमा कहियेहैं ॥

॥ ६३ ॥ यद्यपि शब्दजन्यज्ञान औ किसी ग्रंथकारके मतमैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञान, ये दोनूं अपरोक्ष होवैहैं । यातैं प्रत्यक्षप्रमाके सप्तभेद कहे चाहिये ॥

॥ ६४ ॥ तथापि अभावके ज्ञानमैं प्रत्यक्षता औ परोक्षताका विवाद है औ घटकी न्याई प्रत्यक्षवस्तुविषै विवाद संभवै नहीं । यातैं अभावका ज्ञान परोक्षही बनैहै औ ॥ शब्दजन्यज्ञान, प्रत्यक्ष औ परोक्ष दोप्रकारका होवैहै । तिनमैं शब्दजन्यप्रत्यक्षज्ञान प्रत्यक्षप्रमा है । यातैं प्रत्यक्षप्रमाके षट्भेद हैं । सप्त नहीं ॥ परंतु शब्दजन्य प्रत्यक्षप्रमाका कारण इंद्रिय नहीं । किंतु शब्द है । यातैं प्रत्यक्षप्रमाणके षट्भेद नहीं ॥

॥ ६५ ॥ इसरीतिसैं कहे जो पंचइंद्रिय, तिनमैं श्रोत्रइंद्रियतैं शब्दगुणका औ शब्दमैं जो शब्दत्वजाति है ताका औ शब्दत्वके व्याप्यकत्वादिकनका औ तारत्वमंदत्वका ज्ञान होवैहै ॥

॥ ६६ ॥ श्रोत्रइंद्रियसैं ग्राह्य गुणकूं शब्द कहैहैं । सो १ ध्वनिरूप औ २ वर्णरूप भेदतैं दोप्रकारका है ॥

१ भेरीआदिकदेशमैं होवै सो ध्वनिरूप है । औ—
२ कंठादिकअष्टस्थानमैं वायुके संयोगतैं होवै सो वर्णरूप है ॥

१ ध्वनिरूप शब्दमैं तारत्वमंदत्वरूप धर्म हैं। औ
२ वर्णरूप शब्दमैं कत्वादिरूप धर्म हैं ॥

॥ ६७ ॥ जाका इंद्रियतैं ज्ञान होवै ता विषयसैं इंद्रियनका कौन संबंध है सो कह्याचाहिये । यातैं सर्वइंद्रियका विषयतैं संबंध कहियेहै ॥

जहां श्रोत्रसैं शब्दका प्रत्यक्ष होवै तहां श्रोत्रका शब्दसैं संयुक्त तादात्म्यसंबंध है । काहेतैं ? श्रोत्र आकाशके सत्वगुणभागतैं उपजैहै । यातैं कार्यरूप द्रव्य है औ दो द्रव्योंका संयोग होवैहै । यातैं श्रोत्रका आकाशसैं संयोग है औ संयोगवालेकूं संयुक्त कहैहैं । यातैं श्रोत्रसंयुक्त आकाश है । तासैं शब्दगुणका तादात्म्यसंबंध है । काहेतैं ? सिद्धांतमैं १ जातिव्यक्तिका, २ गुणगुणीका, ३ क्रियाक्रियावान्का औ ४ कार्यउपादानकारणका तादात्म्यसंबंध है ॥

॥ ६८ ॥

१ (१) अनेकधर्मीमैं जो एकधर्म रहै, ताकूं जाति कहैहैं ॥
(२) जातिके आश्रयकूं व्यक्ति कहैहैं ॥
२ (१) कर्मसैं भिन्न जो जातिमात्रका आश्रय वा द्रव्यकर्मसैं भिन्न जो जातिका आश्रय, सो गुण कहियेहै ॥
(२) गुणके आश्रयकूं गुणी औ द्रव्य कहैहैं ॥
३ (१) चेष्टाकूं क्रिया कहैहैं ।
(२) ताके आश्रयकूं क्रियावान् कहैहैं ।
४ (१) उत्पन्न होवै सो कार्य कहियेहै ।
(२) कारणका लक्षण कहिआए ।

यातैं श्रोत्रका शब्दसैं श्रोत्रसंयुक्ततादात्म्यसंबंध सिद्ध हुवा ॥ औ—

॥ ६९ ॥ दोप्रकारके शब्दमैं जो शब्दत्वजाति, ताके व्याप्य जो कत्वादि औ तारत्वादि तासैं श्रोत्रका श्रोत्रसंयक्त तादात्म्यवत् तादात्म्यसंबंध है । काहेतैं ? तादात्म्यवालेकूं तादात्म्यवत् कहैहैं औ अभिन्न बी कहैहैं । यातैं उक्तसंबंधवाला होनैतैं श्रोत्रसंयुक्ततादात्म्यवत् जो शब्द है, तासैं शब्दत्वादिकनका तादात्म्य है ॥

॥ ७० ॥ यद्यपि आकाशतैं बी श्रोत्रका संयोगसंबंध है औ वक्ष्यमाण रसनाघ्राणका बी द्रव्यसैं संयोग है । यातैं इन तीन इंद्रियतैं बी द्रव्यका प्रत्यक्ष हुया चाहिये, तथापि श्रोत्रमैं

औ रसनाघ्राणमैं द्रव्यके प्रत्यक्षकी योग्यता नहीं। यातैं वह संबंध साफल्य नहीं। किंतु निष्फल है ॥

॥ ७१ ॥ श्रोत्रजन्य प्रमाका श्रोत्रइंद्रिय करण है। औ श्रोत्रसंयुक्ततादात्म्य औ श्रोत्रसंयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्य, यह दोसंबंध अपने कारण श्रोत्रसैं उपजिके, ताके कार्य श्रोत्रप्रमाकूं उपजावैहैं, यातैं व्यापार है औ श्रोत्रप्रमा फल है ॥

॥९॥ बाह्यप्रत्यक्षप्रमाके भेद। त्वाचप्रमाका निर्द्धार ॥ ७२-७८ ॥

॥ ७२ ॥ तैसैं त्वक्‌इंद्रियतैं स्पर्शके औ स्पर्शके आश्रयका औ स्पर्शके आश्रित स्पर्शत्व-जाति औ ताके व्याप्य कठिनत्वादिकका ज्ञान होवैहै ॥

॥ ७३ ॥ त्वक्‌इंद्रियमात्रसैं ग्राह्यगुणकूं स्पर्श कहैहैं ॥ सो शीत, उष्ण, अनुष्णाशीत औ काठिन्य भेदतैं चारप्रकारका है।

जहां त्वक्‌सैं द्रव्यका प्रत्यक्ष होवै, तहां त्वक्‌का द्रव्यसैं त्वक्‌संयोग है। काहेतैं? त्वक्‌इंद्रिय वायुके सत्वगुणभागतैं उपजैहै, यातैं द्रव्य होनैतैं ताका अन्यद्रव्यतैं संयोगही है ॥

॥ ७४ ॥ उद्भूतरूप औ उद्भूतस्पर्शवाले पृथिवी, जल, औ तेज, इन तीन द्रव्यनका त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै औ अनुद्भूतरूप अनुद्भूतस्पर्श-वाले पृथिवीआदिकका बी त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं औ वायुके गुण स्पर्शका तौ त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै। परंतु वायुका होवै नहीं। काहेतैं?

॥ ७५ ॥ यह नियम है:-जिस द्रव्यमैं उद्भूतरूप होवै, तिस द्रव्यका औ ताकी योग्यजातिका औ ताके आश्रित रूपसंख्यादि-योग्यगुणनका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै। अन्यका नहीं।

प्रत्यक्षयोग्यकूं उद्भूत कहैहैं। औ प्रत्यक्षके अयोग्यकूं अनुद्भूत कहैहैं ॥ औ—

॥७६॥ जिस द्रव्यमैं उद्भूतरूप औ उद्भूतस्पर्श होवै, तिस द्रव्यका औ ताकी जातिका औ ताके आश्रित प्रत्यक्षयोग्यगुणनका त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै। अन्यका नहीं। जैसैं घ्राण रसन नेत्रमैं रूप औ स्पर्श दोनूं हैं। परंतु उद्भूत नहीं। यातैं पृथिवीजलतेजरूप बी तिन इंद्रियनका त्वाचप्रत्यक्ष औ चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं। औ झरोखेमैं जो परमसूक्ष्मरज प्रतीत होवै, सो त्र्यणुकरूप पृथिवी है। तामैं उद्भूतरूप है। यातैं त्र्यणुकका चाक्षुषप्रत्यक्ष तौ होवैहै। उद्भूतस्पर्शके अभावतैं त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ त्र्यणुकमैं स्पर्श बी है। परंतु सो स्पर्श उद्भूत नहीं ॥ वायुमैं उद्भूतस्पर्श तौ है। रूप नहीं। यातैं वायुका त्वाचप्रत्यक्ष तथा चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं। यातैं यह सिद्ध हुवा:-द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं उद्भूतरूप हेतु है औ स्पर्श दोनूं हेतु हैं ॥

॥ ७७ ॥ इसरीतिसैं जहां त्वाचप्रमा होवै, तहां त्वक्‌इंद्रियका द्रव्यसैं संयोगही संबंध है औ द्रव्यआश्रित जो द्रव्यत्वजाति औ त्वाच प्रत्यक्षके योग्य जो स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, औ द्रवत्व, ये नवगुण, तासैं त्वक्‌का त्वक्‌संयुक्तता-दात्म्यसंबंध है। काहेतैं?

१ स्पर्शमैं त्वक्‌की योग्यता है। औरकी नहीं। औ—

२ रूपमैं नेत्रकी योग्यता है। औरकी नहीं॥ औ—

संख्यादिक अष्टगुणनमैं त्वक् औ नेत्र दोनूं-की योग्यता है। औ—

३ श्रोत्रकी शब्दमात्रमैं योग्यता है। औ

४ रसनाकी रसमात्रमैं योग्यता है औ—

५ घ्राणकी गंधमात्रसैं योग्यता है ॥

इहां मात्रपदसैं द्रव्यमैं योग्यताका निषेध है। यातैं त्वक्सैं संयोगवाला होनैतैं त्वक्संयुक्त जो द्रव्य, तामैं जाति औ गुणनका तादात्म्य है औ स्पर्शादिगुणमैं जो स्पर्शत्वादिक जाति है, तासैं त्वक्का त्वक्संयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्यसंबंध है ॥ यातैं—

॥ ७८ ॥ त्वक्जन्यज्ञानका त्वक्इंद्रिय करण है। औ त्वक्संयोग औ त्वक्संयुक्ततादात्म्य औ त्वक्संयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्य, ये तीनसंबंध व्यापार हैं औ त्वाचप्रमा फल है ॥

॥ १० ॥ बाह्यप्रत्यक्षप्रमाके भेद। चाक्षुषप्रमाका निर्द्धार ॥ ७९–८१ ॥

॥ ७९ ॥ तैसैं नेत्रसैं उद्भूतरूपवाले पृथिवीजलतेजद्रव्यका औ ताके आश्रित योग्यजाति औ रूपसंख्यादिनवयोग्यगुणनका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ नेत्रइंद्रियमात्रसैं ग्राह्यगुणकूं रूप कहैहैं। सो शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश औ चित्र इन भेदनसैं सप्तप्रकारका है ॥

॥ ८० ॥ तहां द्रव्यसैं नेत्रका संयोगही है औ द्रव्यत्वजाति औ रूपादिगुणनसैं नेत्रसंयुक्ततादात्म्य है औ रूपादिगुणनके आश्रित रूपत्वादिकजातिसैं नेत्रसंयुक्तदातात्म्यवत्तादात्म्य है। यातैं—

॥ ८१ ॥ नेत्रजन्यज्ञानका नेत्र करण है औ नेत्रसंयोग औ नेत्रसंयुक्ततादात्म्य औ नेत्रसंयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्य, यह तीनसंबंध व्यापार हैं औ चाक्षुषप्रमा फल है।

॥ ११ ॥ बाह्यप्रत्यक्षप्रमाके भेद रासनप्रमाका निर्द्धार ॥ ८२–८४ ॥

॥ ८२ ॥ तैसैं रसनासैं रसका औ ताके आश्रित रसत्वकाही ज्ञान होवैहै। रसनासैं ग्राह्य गुणकूं रस कहैहैं। सो मधुर, आम्र, लवण, कटुक, कषाय, औ तिक्त भेदसैं षट्प्रकारका है ॥

॥ ८३ ॥ तहां रससैं रसनाका रसनसंयुक्ततादात्म्य औ रसत्वसैं औ ताके व्याप्य मधुरत्वादिकसैं रसनसंयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्य है। यातैं—

॥ ८४ ॥ रसनजन्यज्ञानका रसनइंद्रिय करण है औ रसनसंयुक्ततादात्म्य औ रसनसंयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्यसंबंध व्यापार है औ रासनप्रमा फल है ॥

॥ १२ ॥ बाह्यप्रत्यक्षप्रमाके भेद। घ्राणजप्रमाका निर्द्धार औ सामग्रीके अनुवादसहित प्रत्यक्षप्रमाका उपसंहार ॥ ८५–८८ ॥

॥ ८५ ॥ तैसैं घ्राणसैं गंधगुणका औ ताके आश्रित गंधत्वजाति औ ताके व्याप्य सुगंधत्वदुर्गन्धत्वका ज्ञान होवैहै। घ्राणसैं ग्राह्य गुणकूं गंध कहैहैं। सो सुगंधदुर्गन्धभेदसैं दोप्रकारका है। तहां—

॥ ८६ ॥ गंधसैं घ्राणका घ्राणसंयुक्ततादात्म्य है औ गंधत्वसैं घ्राणसंयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्य है। यातैं—

॥ ८७ ॥ घ्राणजन्य यथार्थज्ञानका घ्राणइंद्रिय करण है औ उक्तदोसंबंध व्यापार हैं औ घ्राणजप्रमा फल है ॥

॥ ८८ ॥ इसरीतिसैं पांचप्रकारकी जे बाह्यप्रत्यक्षप्रमा वे फल हैं। ताके श्रोत्रादिक पंचइंद्रिय करण हैं। ताके संयोग, संयुक्ततादात्म्य औ संयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्य ये तीनसंबंध व्यापार हैं ॥ इसरीतिसैं संक्षेपतैं प्रत्यक्षप्रमा कही ॥

॥ इति श्रीवृत्तिरत्नावल्यां प्रत्यक्षप्रमाणनिरूपणं नाम द्वितीयं रत्नं समाप्तम् ॥ २ ॥

॥ अथ तृतीयरत्नप्रारंभः ॥ ३ ॥

॥ २ ॥ अनुमानप्रमाणनिरूपण ॥ ८९–१०४॥

॥१३॥ सामग्रीसहित अनुमितिप्रमाका निर्द्धार ॥ ८९–९६ ॥

॥ ८९ ॥ अनुमितिप्रमाका जो करण होवै सो अनुमानप्रमाण कहियेहै ॥

लिंगज्ञानजन्य जो ज्ञान सो अनुमिति कहियेहै ॥ जैसैं पर्वतमैं धूमका प्रत्यक्षज्ञान होयके वह्निका ज्ञान होवैहै। तहां धूमका प्रत्यक्षज्ञान लिंगज्ञान कहियेहै। तासैं वह्निका ज्ञान उपजैहै। यातैं पर्वतमैं वह्निका ज्ञान अनुमिति है ॥

जाके ज्ञानसैं साध्यका ज्ञान होवै, सो लिंग कहियेहै ॥

अनुमितिज्ञानका विषय साध्य कहियेहै। अनुमितिज्ञानका विषय वह्नि है। यातैं सो साध्य है ॥

धूमज्ञानतैं वह्निरूप साध्यका ज्ञान होवैहै। यातैं धूम लिंग है। व्याप्यके ज्ञानतैं व्यापकका ज्ञान होवैहै। इसतैं व्याप्यकूं लिंग कहैहैं।

व्यापककूं साध्य कहैहैं।

व्याप्तिवालेकूं व्याप्य कहैहैं।

व्याप्तिके निरूपककूं व्यापक कहैहैं।

अविनाभावरूपसंबंधकूं व्याप्ति कहैहैं। जैसैं धूमविषै वह्निका अविनाभावरूप संबंध है। सोइ धूमविषै वह्निकी व्याप्ति है। यातैं धूम वह्निका व्याप्य है॥ ता व्याप्तिरूपसंबंधका निरूपक वह्नि है। यातैं धूमका व्यापक वह्नि है ॥

जाविना जो होवै नहीं, ताका अविनाभावरूपसंबंध तामैं कहियेहै॥ वह्निविना धूम होवै नहीं। यातैं वह्निका अविनाभावरूपसंबंध धूममैं है। वह्निमैं धूमका अविनाभाव नहीं। काहेतैं? तप्तलोहमैं धूमविना वह्नि है। यातैं धूमका व्याप्य वह्नि नहीं। वह्निका व्याप्य धूम है ॥

॥ ९० ॥ यातैं जहां अनुमिति होवै, तहां प्रथम महानसादिकमैं वारंवार धूमवह्निका सहचार देखिके मूलउच्छेदरहित ऊंची धूमरेखामैं वह्निकी व्याप्तिका प्रत्यक्षरूप निश्चय होवैहै॥ पर्वतादिकमैं हेतुका प्रत्यक्ष होवैहै। तिसतैं अनंतर संस्कारका उद्भव होयके व्याप्तिकी स्मृति होवैहै। तिसतैं अनंतर "वह्निमान् पर्वतः" ऐसा अनुमितिज्ञान होवैहै॥ तहां—

॥ ९१ ॥ व्याप्तिका अनुभव करण है। व्याप्तिकी स्मृति व्यापार है। पक्षमैं साध्यका ज्ञानरूप अनुमिति फल है ॥

इसरीतिसैं वाक्यप्रयोगविना व्याप्तिज्ञानादिकतैं जो अनुमिति होवै, सो स्वार्थानुमिति कहियेहै। ताके करण व्याप्तिज्ञानादिक स्वार्थानुमान कहियेहैं।

॥ ९२ ॥ जहां दोका विवाद होवै, तहां वह्निनिश्चयवाला पुरुष अपनै प्रतिवादीकी निवृत्तिवासतैं वाक्यप्रयोग करैहै। ताकूं परार्थानुमान कहैहैं।

॥ ९३ ॥ सो वाक्य वेदांतमतमैं तीनिअवयवका होवैहै॥ प्रतिज्ञा, हेतु, औ उदाहरण, ये वाक्यके अवयवके नाम हैं ॥ "पर्वतो वह्निमान्, धूमात्। यो यो धूमवान् सोऽग्निवान्। यथा महानसः।" इतना महावाक्य है। तामैं तीनिअवांतरवाक्य हैं। तिन्हके प्रतिज्ञादिक क्रमतैं नाम हैं।

॥ ९४ ॥ साध्यविशिष्टपक्षका बोधक वाक्य प्रतिज्ञावाक्य कहियेहै। ऐसा "पर्वतो

वह्निमान्" यह वाक्य है । 'वह्निविशिष्ट पर्वत है' ऐसा बोध या वाक्यतैं होवैहै । तहां—

१ वह्नि साध्य है ।

२ पर्वत पक्ष है ।

३ प्रतिज्ञावाक्यतैं उत्तर जो लिंगका बोधक वचन सो हेतुवाक्य कहियेहैं । ऐसा वाक्य "धूमात्" यह है ॥

४ हेतुसाध्यका सहचारबोधक जो दृष्टांत-प्रतिपादक वचन, सो उदाहरणवाक्य कहियेहैं ।

वादीप्रतिवादीका जहां विवाद न होवै, किंतु दोनूंका निर्णीत अर्थ जहां होवै सो दृष्टांत कहियेहै ॥

॥९५॥ इसरीतिसैं प्रतिज्ञादिक तीन अवांतर वाक्य हैं । तिनके समुदायरूप महावाक्यतैं विवाद्‌की निवृत्ति होवैहै । महावाक्य सुनिके जो प्रतिवादी आग्रह करै अथवा व्यभिचारकी शंका होवै तौ तर्कसैं ताकी निवृत्ति होवैहै । यातैं प्रमाणका सहकारी तर्क है ।

अनिष्टके आपादनकूं तर्क कहैहैं ।

॥ ९६ ॥ इसरीतिसैं—

१ तीनि अवयवनका समुदायरूप जो महावाक्य, ताकूं **परार्थानुमान** कहैहैं ॥

२ तिसतैं उत्तर जो अनुमिति होवै, सो पदार्थानुमिति कहियेहैं ।

॥ १४ ॥ वेदांतविषै उपयोगी अनुमानका निर्द्धार ॥ ९७—१०१ ॥

॥ ९७ ॥ वेदांतवाक्यनसैं जीवमैं ब्रह्मका अभेद निर्णीत है । सो अनुमानतैं बी इसरीतिसैं सिद्ध होवैहैः— "जीवो ब्रह्माभिन्नः । चेतनत्वात् । यत्र यत्र चेतनत्वं तत्र तत्र ब्रह्माभेदः । यथा ब्रह्मणि ॥" यह तीनिअवयवनका समुदायरूप महावाक्य है । यातैं **परार्थानुमान** कहियेहै ॥ इहां—

१ जीव पक्ष है ।

२ ब्रह्माभेद साध्य है ।

३ चेतनत्व हेतु है ।

४ ब्रह्म दृष्टांत है ॥

॥ ९८ ॥ इहां प्रतिवादी जो ऐसैं कहैः— 'जीवमैं चेतनत्व हेतु तौ है औ ब्रह्माभेदरूप साध्य नहीं है' इसरीतिसैं पक्षमैं चेतनत्व-हेतुका ब्रह्माभेदरूप साध्यसैं व्यभिचारकी शंका करै तौ तर्कसैं शंकाकी निवृत्ति करै ॥

॥ ९९ ॥ इहां तर्कका यह स्वरूप हैः— जीवमैं चेतनत्व हेतु मानिके ब्रह्माभेदरूप साध्य नहीं मानै तौ चेतनकी अद्वितीयताकी प्रतिपादक श्रुतिनका विरोध होवैगा ।

अनिष्टका आपादन तर्क कहियेहै ।

श्रुतिका विरोध सर्वआस्तिकनकूं अनिष्ट है ।

॥ १०० ॥ "व्यावहारिकप्रपंचो मिथ्या । ज्ञाननिवर्त्यत्वात् । यत्र यत्र ज्ञाननिवर्त्यत्वं तत्र मिथ्यात्वम् । यथा शुक्तिरजतादौ ॥" इहां—

१ " व्यावहारिकप्रपंच " पक्ष है ।

२ " मिथ्यात्व " साध्य है ।

३ " ज्ञाननिवर्त्यता " हेतु है ।

४ " व्यावहारिकप्रपंचो मिथ्या" यह प्रतिज्ञावाक्य है ।

" ज्ञाननिवर्त्यत्वात् " यह हेतुवाक्य है ।

५ " यत्र यत्र ज्ञाननिवर्त्यत्वं तत्र मिथ्यात्वं । यथा शुक्तिरजतादौ " यह उदाहरणवाक्य है ॥

॥ १०१ ॥ इहां बी प्रपंचकूं ज्ञाननिवर्त्यता मानिके मिथ्यात्व नहीं मानै तौ सत्‌की ज्ञानतैं निवृत्ति बनै नहीं । यातैं ज्ञानसैं सकलप्रपंचकी निवृत्तिप्रतिपादक श्रुतिस्मृतिका विरोध होवैगा । या तर्कतैं व्यभिचारशंकाकी निवृत्ति होवैहै ॥

॥ १५ ॥ न्याय औ वेदांतके मतमैं अनुमानके स्वीकारका निर्णय ॥ १०२--१०४ ॥

॥ १०२ ॥ इसरीतिसैं वेदांतअर्थके अनुसारी अनेकअनुमान हैं । परंतु वेदांतवाक्यतैं अद्वितीयब्रह्मका जो निश्चय हुवाहै । तिसकी संभावनामात्रका हेतु अनुमानप्रमाण है । स्वतंत्रअनुमान ब्रह्मनिश्चयका हेतु नहीं। काहेतैं? वेदांतवाक्यविना अन्यप्रमाणकी ब्रह्मविषै प्रवृत्ति नहीं । यह सिद्धांत है ॥

॥ १०३ ॥ न्यायमततैं १ केवलान्वयि, २ केवलव्यतिरेकि, औ ३ अन्वयिव्यतिरेकि इन भेदनतैं तीनप्रकारका अनुमान अंगीकार कियाहै ।

१ जहां हेतुसाध्यके सहचारज्ञानतैं हेतुमैं व्याप्तिका ज्ञान होवैहै, सो अन्वयि अनुमान कहियेहै ।

२ जहां साध्याभावमैं हेत्वभावके सहचारदर्शनतैं हेतुमैं साध्यकी व्याप्तिका ज्ञान होवै सो केवलव्यतिरेकि अनुमान कहियेहै ॥

केवलान्वयिअनुमानमैं अन्वयके सहचारका उदाहरण मिलैहै औ केवलव्यतिरेकिअनुमानमैं व्यतिरेकके सहचारका उदाहरण मिलैहै । यह भेद है ॥

३ जहां दोनूंके उदाहरण मिलैं सो अन्वयिव्यतिरेकि अनुमान कहियेहै । ऐसा अनुमान "पर्वतो वह्निमान्" है । ताकूं प्रसिद्धानुमान कहैहैं ॥

इहां अन्वयके सहचारका उदाहरण महानस है औ व्यतिरेकके सहचारका उदाहरण महाह्रद है ।

इसरीतिसैं तीनिप्रकारका अनुमान नैयायिक कहैहैं ॥

॥ १०४ ॥ वेदांतमतमैं केवलव्यतिरेकिका प्रयोजन अर्थापत्तिसैं होवैहै औ केवलान्वयि-अनुमान कोई है नहीं । काहेतैं ? सर्वपदार्थनका ब्रह्ममैं अभाव है, यातैं व्यतिरेकसहचारका उदाहरण ब्रह्म मिलैहै ॥

यद्यपि वृत्तिज्ञानकी विषयतारूप ज्ञेयता ब्रह्मविषै है, ताका अभाव ब्रह्मविषै बनै नहीं, तथापि ज्ञेयतादिक मिथ्या हैं । मिथ्यापदार्थ औ ताका अभाव एकअधिष्ठानमैं रहैहैं । यातैं जिसकूं नैयायिक अन्वयिव्यतिरेकि कहैहैं, सोई अन्वयिनाम एकप्रकारका अनुमान मान्या है । औ विचारदृष्टिसैं केवलव्यतिरेकि-अनुमान बी अर्थापत्तिसैं न्यारा माननैकूं योग्य है । यह वेदांतका मत है ॥

वेदांतवाक्यसैं अद्वैतब्रह्मका जो निश्चय हुवाहै, मननद्वारा ताकी संभावनामात्रका हेतु अनुमानप्रमाण है । स्वतंत्र ब्रह्मनिश्चयका हेतु नहीं । यह अनुमानका प्रयोजन है ॥

यह संक्षेपतैं अनुमानप्रमाण कह्याहै ॥

॥ इति श्रीवृत्तिरत्नावल्यां अनुमानप्रमाणनिरूपणं नाम तृतीयं रत्नं समाप्तम् ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थरत्नप्रारंभः ॥ ४ ॥

॥ ३ ॥ उपमानप्रमाणनिरूपण ॥ १०५-११४ ॥

॥ १६ ॥ व्यवहारविषै उपयोगी उपमिति औ उपमानका सादृश्यसहित स्वरूप ॥ १०५--१०७ ॥

॥ १०५ ॥ उपमितिप्रमाका करण उपमानप्रमाण कहियेहैं ॥

वेदांतमतमैं उपमितिउपमानका यह स्वरूप है:—ग्रामविषै गोव्यक्तिकूं देखनैवाला वनमैं जायके गवयकूं देखै, तब "यह पशु गौके

सदृश है" ऐसा प्रत्यक्ष होवैहै । तिसतैं अनंतर "मेरी गौ इस पशुके सदृश है" ऐसा ज्ञान होवैहै । तहां—

१ गवयमैं गोसादृश्यका ज्ञान उपमान प्रमाण कहियेहै । औ—

२. गोमैं गवयका सादृश्यज्ञान उपमिति कहियेहै ॥

३ यातैं सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञानरूप उपमिति, गोमैं गवयका सादृश्यज्ञान है ।

४ ताका करण गवयमैं गोका सादृश्यज्ञान है, सोई उपमान है ॥

॥ १०६ ॥ भेदसहित समानधर्मकूं सादृश्य कहैहैं । जैसैं गवयमैं गोके भेदसहित समान अवयव गवयमैं हैं, सोई गोका सादृश्य है ॥ गोके समानधर्म गौमैं हैं । भेद नहीं । गोका भेद अश्वमैं है । समानधर्म नहीं । यातैं सादृश्य नहीं ॥ चंद्रके भेदसहित आल्हादजनकतारूप समानधर्म मुखमैं हैं, सोई मुखमैं चंद्रका सादृश्य है ॥

॥ १०७ ॥ यद्यपि उक्तज्ञानकूंही उपमिति मानैं तौ आत्मामैं किसीका सादृश्य नहीं । यातैं जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरण मिलै नहीं ॥

॥ १७ ॥ जिज्ञासुके अनुकूल उपमिति औ उपमानका स्वरूप

॥ १०८—१४१ ॥

॥ १०८ ॥ यद्यपि असंगतादिक धर्मनतैं आकाशके सदृश आत्मा है, यातैं आकाशमैं आत्माका सादृश्यज्ञान उपमान है, आत्मामैं आकाशका सादृश्यज्ञान उपमिति है, तथापि जिस अधिकरणमैं जिस पदार्थके अभावका ज्ञान होवै, तहां अभावज्ञानमैं भ्रमबुद्धि हुयेविना तिस अधिकरणमैं ता पदार्थका ज्ञान होवै नहीं । जैसैं आत्मामैं कर्तृत्वादिकनंका अभावज्ञान हुया । न्यायादिकशास्त्र सुनै बी प्रथमज्ञानमैं भ्रमबुद्धि हुयेविना "कर्त्ता भोक्ता आत्मा है" ऐसा ज्ञान होवै नहीं ॥

जाकूं वेदांतअर्थ निश्चयकरिके नैयायिकादिनके कुसंगतैं "कर्त्ता भोक्ता आत्मा है" ऐसा ज्ञान होवैहै । तहां प्रथमज्ञानमैं भ्रमबुद्धि होयके होवैहै । प्रथम ज्ञानमैं भ्रमबुद्धि हुयेविना विरोधिज्ञान होवै नहीं । सो भ्रमबुद्धि भ्रमरूप होवै, अथवा यथार्थ होवै । इसमैं आग्रह नहीं । परंतु भ्रमबुद्धिमैं भ्रमत्व निश्चय नहीं चाहिये । यह आग्रह है ॥

इसरीतिसैं जिस कालमैं गुरुवाक्यनतैं जिज्ञासुकूं ऐसा दृढनिश्चय हुयाहैः— आकाशादिक सकलप्रपंच गंधर्वनगरकी न्यांई दृष्टनष्टस्वभाव है, तातैं विलक्षणस्वभाव आत्मा है । आकाशादिकनमैं आत्माका किंचित् बी सादृश्य नहीं । तिस कालमैं आकाश औ आत्माका सादृश्यज्ञान संभवै नहीं । यातैं उत्तमजिज्ञासुके अनुकूल सिद्धांतकी उपमितिका उदाहरण मिलै नहीं ॥

॥ १०९ ॥ तथापि सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञान अथवा वैधर्म्यज्ञानजन्य ज्ञान, इन दोनूंमैं कोइएक होवै सो उपमिति कहियेहै ॥

खड्गमृगमैं उष्ट्रके वैधर्म्यज्ञानतैं उष्ट्रमैं खड्गमृगका वैधर्म्यज्ञान होवैहै ॥ पृथिवीमैं जलके वैधर्म्यज्ञानतैं जलमैं पृथिवीका वैधर्म्यज्ञान होवैहै । यातैं उष्ट्रमैं खड्गमृगका वैधर्म्यज्ञान औ जलमैं पृथिवीका वैधर्म्यज्ञान उपमिति है । ताका करण उपमान कहियेहै । इहां खड्गमृगमैं उष्ट्रका वैधर्म्यज्ञान औ पृथिवीमैं जलका वैधर्म्यज्ञान करण होनैतैं उपमान है । और—

॥ ११० ॥ विपरीत बी उपमानउपमितिभाव संभवैहै ॥ इंद्रियसंबंधमैं सादृश्यज्ञान उपमान है औ इंद्रियसैं व्यवहितमैं साध्य-

ज्ञान उपमिति है। तैसैं प्रपंचमैं आत्माके वैधर्म्यका ज्ञान उपमान है औ प्रपंचमैं आत्माके वैधर्म्यज्ञान तैं आत्मामैं प्रपंचका वैधर्म्यज्ञान उपमिति है।

|| १११ || न्यायमतमैं तौ संज्ञाका संज्ञीमैं वाच्यताका ज्ञान उपमिति है। सो व्यवहारमैं उपयोगी है। जैसैं सदृशज्ञानतैं उपमिति होवैहै, तैसैं विधर्मज्ञानसैं बी होवैहै ॥ जहां खड्गमृगके वाच्यकूं नहीं जानता आरण्यक पुरुषतैं "उष्ट्र-विधर्मा शृंगसहित नासिकावाला खड्गमृगपदका वाच्य है" इस वाक्यकूं सुनिके वाक्यार्थानुभवसैं उत्तर। वनमैं जायके उष्ट्रविधर्मखड्ग-मृगके प्रत्यक्षसैं उक्तगेंडेमैं खड्गमृगपदकी वाच्यता जानैहै ॥

विरुद्धधर्मवालेकूं विधर्म कहैहैं।

विरुद्धधर्मकूं वैधर्म्य कहैहैं।

खड्गमृगमैं उष्ट्रतैं विरुद्धधर्म ह्रस्वग्रीवादिक हैं। पृथिवीमैं जलादिकनतैं विरुद्धधर्म गंध है।

सारग्राहीदृष्टिसैं उक्तरीति मानै तौ सिद्धांतमैं हानि नहीं। उलटी अनुकूलता है। ताका सिद्धांतके अनुकूल यह उदाहरण है ॥

|| ११२ || आत्मपदका अर्थ कैसा है? या प्रश्नका "देहादिवैधर्म्यवान् आत्मा" ऐसा गुरुके उत्तरसैं अनित्य अशुचि दुःखस्वरूप देहादिकनसैं विधर्मा नित्यशुद्ध आनंदरूप आत्म-पदका वाच्य है। ऐसा एकांतदेशमैं विवेचन-कालमैं मनका आत्मासैं संयोग होयके उपमितिज्ञान होवैहै। औ सर्वथा नैयायिक-रीतिमैं विद्वेष होवै तौ पूर्वउक्तसिद्धांतकी रीतिही अंगीकरणीय है ॥ परंतु—

—||११३ || पूर्व कह्याथा जो "व्यापारवाला असाधारण कारण" करण कहियेहै। यह लक्षण सिद्धांतकी रीतिसैं इहां बनै नहीं। काहेतैं?

१ प्रत्यक्ष, अनुमान, औ शब्द, ये तीन प्रत्यक्षप्रमा, अनुमितिप्रमा औ शाब्दी-प्रमाके व्यापारवाले कारण हैं। औ—

२ उपमान, अर्थापत्ति औ अनुपलब्धि। ये तीन उपमितिआदिक प्रमाके निर्व्यापार कारण हैं ॥

यातैं "व्यापारसैं भिन्न असाधारणकारण"कूं करण कह्या चाहिये। काहेतैं? जैसैं व्यापार-मैं व्यापारता नहीं है, तैसैं व्यापारसैं भिन्नता बी व्यापारमैं नहीं है। यातैं सिद्धांत-की रीतिसैं व्यापारवत् पदके स्थानमैं व्यापार-भिन्न कह्याचाहिये ॥

|| ११४ || इसरीतिसैं प्रपंचमैं ब्रह्मकी विधर्मताका ज्ञान उपमान है औ प्रपंचतैं विधर्म ब्रह्म है। यह उपमानप्रमाण ताका फल उपमितिज्ञान है।

|| इति श्रीवृत्तिरत्नावल्यां उपमानप्रमाण-निरूपणं नाम चतुर्थं रत्नं समाप्तम् || ४ ||

|| अथ पंचमरत्नप्रारंभः || ५ ||

|| ४ || शब्दप्रमाणनिरूपण || ११५–१५१ ||

|| १८ || शाब्दीप्रमाके भेद

|| ११५–११८ ||

|| ११५ || शाब्दीप्रमाके करणकूं शब्द-प्रमाण कहैहैं। शाब्दीप्रमा दोप्रकारकी है। एक व्यावहारिक है औ दूसरी पारमार्थिक है।

|| ११६ || व्यावहारिकशाब्दीप्रमा बी दो-प्रकारकी है। १ एक लौकिकवाक्यजन्य है औ २ दूसरी वैदिकवाक्यजन्य है।

१ "नीलो घटः" इत्यादिक लौकिक-वाक्य हैं ॥

२ "वज्रहस्तः पुरंदरः" इत्यादिक वैदिकवाक्य हैं।

१ जैसैं नीलके अभेदवाला घट है, यह प्रथमवाक्यका अर्थ है ॥

२ तैसैं वज्रहस्तके अभेदवाला पुरंदर है, यह द्वितीयवाक्यका अर्थ है ॥

१ प्रथमवाक्यमैं विशेषणबोधक "नील" पद है औ "घट" पद विशेष्यबोधक है।

२ द्वितीयवाक्यमैं "वज्रहस्त" पद विशेषण-बोधक है औ "पुरंदर" पद विशेष्य-बोधक है ॥

इसरीतिसैं लौकिकवैदिकवाक्यनकी समान-रीति है परंतु—

॥ ११७ ॥ वैदिकवाक्य दोप्रकारके हैं । १ एक व्यावहारिकअर्थके बोधक हैं औ २ दूसरे परमार्थतत्त्वके बोधक हैं ॥

१ ब्रह्मसैं भिन्न सारा व्यावकहारिक अर्थ कहियेहै ।

२ परमार्थतत्त्व ब्रह्म कहियेहै ॥

॥ ११८ ॥ ब्रह्मबोधकवाक्य बी दोप्रकरके हैं ॥

१ "तत्"पदार्थके वा "त्वं"पदार्थके स्वरूपके बोधक अवांतरवाक्य हैं

(१) जैसैं "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" यह वाक्य "तत्"पदार्थका बोधक है ॥

(२) "य एष हृद्यंतर्ज्योतिः पुरुषः" यह वाक्य त्वंपदार्थके स्वरूपका बोधक है॥

२ "तत्"पदार्थ त्वंपदार्थके अभेदके बोधक "तत्त्वमसि" आदिक महावाक्य हैं ॥

॥१९॥ शब्दकी वृत्तिके भेद । शक्ति-वृत्तिका निरूपण ॥ ११९–१२४ ॥

॥ ११९ ॥ जा अर्थमैं जा पदकी वृत्ति होवै, ता अर्थकी ता पदसैं प्रतीति होवैहै ॥ पदका अर्थसैं संबंध, वृत्ति कहियेहै ॥ शक्ति औ लक्षणाभेदतैं सो वृत्ति दोप्रकारकी है ॥

॥ १२० ॥ पदार्थबोधहेतुसामर्थ्यकूं शक्ति कहैहैं ॥

जिस अर्थमैं पदकी शक्ति होवै, सो अर्थ पदका शक्य कहियेहैं ॥

जैसैं घट औ पट पदमैं कलश औ वस्त्ररूप अर्थके बोधकी सामर्थ्य है, सो शक्ति है ॥

यातैं घट औ पटपदका कलश औ वस्त्र शक्यअर्थ है । ताहीकूं वाच्यअर्थ बी कहैहैं ॥

॥ १२१ ॥ सो शक्ति १ योग, २ रूढ, औ ३ योगरूढउभयरूप भेदतैं तीनप्रकारकी है।

१ अवयवशक्तिकूं योग कहैहैं । जैसैं पाचकपद है, तहां पाच्अवयवका पाक अर्थ है । अक्अवयवका कर्त्ता अर्थ है ॥

इसरीतिसैं पाचकपदके अवयवनमैं जो अर्थका बोधहेतुसामर्थ्य सो पाचकपदमैं अवयवशक्ति है ॥

अवयवशक्तिसैं जो शब्द अपनै अर्थकूं जनावै, सो यौगिकशब्द कहियेहै । जैसैं पाचकादिकशब्द हैं ॥ औ—

॥ १२२ ॥ २ परिभाषाशक्तिकूं रूढि कहैहैं ।

शास्त्रका असाधारणसंकेत परिभाषा कहियेहै । जैसैं छंदोग्रंथनमैं बाण, रस, मुनि शब्दका पंच, षट्, सप्त अर्थ है । यह वस्त्रका असाधारणसंकेत होनैतैं परिभाषा है ।
यातैं परिभाषातैं जो शब्दमैं बोधहेतुसामर्थ्य सो रूढिशक्ति कहियेहै । औ—

रूढिशक्तिसैं जो शब्द अपनै अर्थकूं जनावै सो रौढिकशब्द कहियेहै । जैसैं घट डित्थ कपित्थ शब्द हैं ॥ औ—

॥ १२३ ॥ ३ अवयव परिभाषा दोनुंकी अर्थबोधहेतुसमर्थ्यकूं योगरूढउभयरूप शक्ति कहैहैं । जैसैं पंकजशब्दके पंकअवयवका कर्दम अर्थ है औ ज अवयवका जात अर्थ है ।

(१) इसरीतिसैं कादवतैं उपज्या कमल, पंकजशब्दका अर्थ है। काहेतैं?पंकज-शब्दमैं अवयवशक्ति है । औ—

(२) जलजंतु बी पंकतैं उपजैहैं, ताकूं पंकज नहीं कहैहैं । किंतु कमलपुष्पकूंही पंकज कहैहैं । यातैं पंकज-शब्दमैं परिभाषाशक्ति बी है ।

यातैं पंकजशब्दमैं दोनूं सामर्थ्य होनैतैं योगरूढउभयरूप शक्ति है ॥

॥ १२४ ॥ सर्वके मतमैं शक्ति औ लक्षणा यह दो वृत्ति हैं औ ब्रह्मप्रमाके करण महावाक्यके अर्थनिरूपणमैं बी दोकाही उपयोग है ॥

॥ २० शब्दकी वृत्तिके भेद । लक्षणा-वृत्तिका निरूपण ॥ १२५–१३९ ॥

॥ १२५ ॥ यद्यपि "यन्मनसा न मनुते"

१ यत् कहिये जिस ब्रह्मकूं मनकरिके लोक नहीं जानैहैं । इत्यादिक श्रुतिमैं जैसैं मानस-ज्ञानकी विषयताका निषेध कर्‌याहै ।

२ तैसैं "यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" कहिये जिस ब्रह्मतैं मनसहित वाणी बी न प्राप्त होयके निवर्त्त होतीहै । इत्यादिश्रुतिमैं शब्दकी विषयताका बी निषेध कियाहै ॥

यातैं महावाक्यनकूं ब्रह्मप्रमाकी करणता कहना विरुद्ध है ॥

॥ १२६ ॥ तथापि शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता नहीं, इस अर्थमैं श्रुतिका तात्पर्य होवै तौ "तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" 'कहिये तिस उपनिषद्गम्य पुरुषको मैं पूछताहौं ।' इस श्रुतितैं ब्रह्मकूं उपनिषद्वेद्यत्वरूप "औप-निषदत्व" कथन असंगत होवैगा । यातैं शक्तिवृत्तिसैं ब्रह्मका ज्ञान शब्दसैं होवै नहीं । लक्षणावृत्तिसैं ब्रह्मगोचरज्ञान होवैहै । यातैं शक्तिवृत्तिसैं शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणताका निषेध है औ लक्षणावृत्तिसैं शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता है । यातैं लक्षणावृत्तिजन्यज्ञानका विषय होनैतैं ब्रह्मकूं औपनिषदत्व संभवै-है ॥ औ—

लक्षणावृत्तिजन्य ज्ञानमैं बी चिदाभासरूप फलका विषय ब्रह्म नहीं है । किंतु आवरण-भंगरूप वृत्तिमात्रकी विषयता ब्रह्मविषै है ॥ जैसैं शब्दजन्यज्ञानकी विषयताका सर्वथा निषेध नहीं, तैसैं मानसज्ञानकी विषयताका बी सर्वथा निषेध नहीं । किंतु शमदमादिसंस्कार-रहित विक्षिप्तमनकी ब्रह्मज्ञानमैं हेतुता नहीं औ मानसज्ञानमैं जो चिदाभासअंश है ताकी विषयता नहीं । यातैं भाष्यकाररीतिसैं ब्रह्म-प्रमाका उक्तमन सहकारी है औ शब्द करण है ॥ इसरीतिसैं महावाक्यनकूं ब्रह्मप्रमाकी करणता कहनैमैं कछु बी विरोध नहीं ॥

॥ १२७ ॥ इसप्रकार दोवृत्ति हैं । तामैं शक्ति कहिआए औ—

शक्यसंबंधकूं लक्षणा कहैहैं ।

॥ १२८ ॥ यद्यपि उक्तरीतिसैं शक्तिवृत्ति-जन्य ज्ञानकी अविषयता होनैतैं शक्तिवृत्तिका कथन निरर्थक है ॥

॥ १२९ ॥ तथापि—

१ शक्तिज्ञानविना शक्य जो वाच्यअर्थ ताका ज्ञान होवै नहीं ॥ औ—

२ शक्यके ज्ञानविना शक्यसंबंधरूप लक्षणा-का ज्ञान बनै नहीं औ—

३ लक्षणाके ज्ञानविना लक्ष्य जो पदार्थ ताका ज्ञान सो बनै नहीं ।

४ पदार्थज्ञानविना वाक्यार्थज्ञान बनै नहीं । यातैं—

१ शक्तिज्ञानका शक्यज्ञानमैं ।

२ शक्यज्ञानका लक्षणाज्ञानमैं ।

३ लक्षणाज्ञानका लक्ष्यरूप पदार्थज्ञानमैं । औ

४ पदार्थज्ञानका पदार्थसमुदायके संबंधके ज्ञानरूप वा संबंधसहित पदार्थसमुदायके ज्ञानरूप वाक्यार्थज्ञानमैं—

उपयोग होनैतैं शक्तिवृत्तिका कथन निष्फल नहीं । किंतु परंपरासैं वाक्यार्थज्ञानमैं उपयोगी होनैतैं सफल है ॥

॥ १३० ॥ इसरीतिसैं कही जो लक्षणा सो १ केवललक्षणा औ २ लक्षितलक्षणा भेदतैं दोप्रकारकी है ।

१ शक्यके साक्षात्संबंधकूं केवललक्षणा कहैहैं । औ—

२ शक्यके परंपरासंबंधकूं लक्षितलक्षणा कहैहैं ॥

शक्यसंबंधपना दोनूंमैं है । तामैं कहुं लक्षितलक्षणाही गौणी बी कहियेहै ।

॥ १३१ ॥ लक्षितलक्षणाके उदाहरण "द्विरेफो रौति" इत्यादि हैं । याका दोरेफ ध्वनि करैहै । यह अर्थ पदनकी शक्तिसैं प्रतीत होवैहै ॥ इहां द्विरेफपदका शक्य दोरेफ हैं । तिनका—

१ अवयवविना संबंध भ्रमरपदमैं है ।

२ ता पदका शक्तिरूपसंबंध अपनें वाच्य मधुपमैं है ।

यातैं शक्यका संबंधी जो भ्रमरपद ताका संबंध होनैतैं शक्यका परंपरासंबंध है । यातैं लक्षितलक्षणा है ॥

॥ १३२ ॥ सो केवललक्षणा औ लक्षितलक्षणा ये दोनूं बी जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा, औ भागत्यागलक्षणा भेदतैं तीनप्रकारकी है। सो प्रत्येक लक्षणा बी १ प्रयोजनवती लक्षणा औ २ निरूढलक्षणा भेदतैं दोभांतिकी है ॥

१ जहां शक्तिवाले पदकूं त्यागिके लाक्षणिक शब्दप्रयोगमैं प्रयोजन कहिये फल होवै, सो प्रयोजनवती लक्षणा कहियेहै ॥

जैसैं "तीरे ग्रामः" ऐसा कहैं तौ तीरमैं शीतपावनतादिकनकी प्रतीति होवै नहीं ॥ गंगापदसैं तीरका बोधन करै । गंगाके धर्म शीतपावनादिक तीरमैं प्रतीत होवैहैं यातैं गंगापदकी तीरमैं प्रयोजनवती लक्षणा है । औ—

२ पदकी जिस अर्थमैं शक्तिवृत्ति होवै नहीं औ शक्यकी न्यांई जिस अर्थकी प्रतीति जिस पदसैं सर्वकूं प्रसिद्ध होवै, तिस अर्थमैं ता पदकी प्रयोजनशून्यलक्षणा ऐसी निरूढलक्षणा कहियेहै ॥

जैसैं "नीलो घटः" इत्यादिवाक्यकूं सुनतैंही सर्वपुरुषनकूं गुणीकी प्रतीति अतिप्रसिद्ध है । यातैं नीलादिक पदनका गुणीमैं प्रयोजनशून्यलक्षणा होनैतैं निरूढलक्षणा है ।

निरूढलक्षणा शक्तिके सदृश होवैहै । कोई विलक्षण अनादि तात्पर्य होवै, तहां निरूढलक्षणा होवैहै ॥

इसरीतिसैं लक्षणाके भेद कहे ॥ तामैं—

॥ १३३ ॥ जहल्लक्षणा औ अजहल्लक्षणा महावाक्यनमैं नहीं । किंतु भागत्यागलक्षणा है। ताकी रीति पूर्व कहीआए ।

सो भागत्यागलक्षणा महावाक्यनमैं लक्षितलक्षणा नहीं, किंतु केवललक्षणा है । काहेतैं ? लक्ष्यचेतनतैं वाच्यका साक्षात्संबंध है । परंपरा नहीं ॥

जहां भागत्यागलक्षणा होवै, तहां वाच्यका एकदेश लक्ष्य होवैहै । ता वाच्यके एकदेशतैं वाच्यका साक्षात्संबंध है । यातैं केवललक्षणा होवैहै औ—

महावाक्यनतैं जिज्ञासुकूं अखंडब्रह्मका बोध होवै, ऐसा ईश्वरका अनादि तात्पर्य है । यातैं निरूढलक्षणा है । प्रयोजनवती नहीं ॥ इहां

॥ १३४ ॥ ऐसी शंका होवैहै:–

१ वाच्यअर्थका लक्ष्यचेतनसैं संबंध मानै तौ लक्ष्यअर्थमैं असंगताकी हानि होवैगी।

२ संबंध नहीं मानै तौ लक्षणा बनै नहीं। काहेतैं? शक्यसंबंधकूं अथवा बोध्यसंबंधकूं लक्षणा कहैहैं। सो असंगमैं संभवै नहीं। ताका—

॥ १३५ ॥ यह समाधान है:–वाच्यअर्थमैं १ चेतन औ २ जड दोभाग हैं। तामैं—

१ चेतनभागका लक्ष्यअर्थमैं तादात्म्य-संबंध है॥

सकल पदार्थनका स्वरूपमैं तादात्म्यसंबंध होवैहै॥

वाच्यभागचेतनका स्वरूपही लक्ष्यचेतन है। यातैं वाच्यमैं चेतनभागका लक्ष्यचेतनमैं तादात्म्यसंबंध है। औ—

२ वाच्यमैं जडभागका लक्ष्यचेतनसैं अधिष्ठानतासंबंध है।

कल्पितके संबंधतैं अधिष्ठानका स्वभाव विगरे नहीं॥ जैसैं कल्पितमृगतृष्णाके जलतैं अधिष्ठानभूमि गीलि होवै नहीं। ऐसैं इहां बी जानि लेना॥

॥ १३६ ॥ अन्यशंका:–

१ "तत्" पदकी अखंडचेतनमैं लक्षणा मानै औ "त्वं"पदकी बी अखंडचेतनमैं लक्षणा मानै तौ पुनरुक्तिदोष होनैतैं "घटो घटः"। इस वाक्यकी न्यांई अप्रमाणवाक्य होवैगा॥

२ दोनूंपदनका लक्ष्यअर्थ जूदा मानै तौ अभेदबोधकता नहीं होवैगी॥ ताका—

॥ १३७ ॥ यह समाधान है:–

१ मायाविशिष्ट औ अंतःकरणविशिष्ट तौ "तत्" पदका औ "त्वं"पदका शक्य है। उपहित लक्ष्य है। जो ब्रह्मचेतन दोनूं पदनका लक्ष्य होवै तौ पुनरुक्तिदोष होवै। सो ब्रह्मचेतन लक्ष्य नहीं। किंतु मायाउपहित औ अंतःकरण-उपहित लक्ष्य हैं॥ सो उपाधिके भेदसैं भिन्न हैं। पुनरुक्ति नहीं॥ औ—

२ उपहित दोनूं परमार्थसैं अभिन्न हैं। यातैं अभेदबोधकता वाक्यकूं संभवैहै॥ इसरीतिसैं तत्पदार्थ औ त्वंपदार्थका उद्देश विधेयभाव मानिके अभेदबोधकता निर्दोष है॥

१ "तत्"पदार्थमैं परोक्षताभ्रमनिवृत्तिके अर्थ "तत्"पदार्थकूं उद्देशकरिके "त्वं" पदार्थता विधेय है॥

२ "त्वं"पदार्थमैं परिच्छिन्नताभ्रमनिवृत्तिके अर्थ "त्वं"पदार्थकूं उद्देशकरिके "तत्" पदार्थता विधेय है॥ औ—

॥ १३८ ॥ पुनरुक्तिके परिहारवास्ते किसी-ग्रंथकारका यह तात्पर्य है:–जो पदनकूं भिन्न-भिन्नलक्षकता मानैं तौ पुनरुक्तिकी शंका होवै। सो भिन्नभिन्न लक्षकता नहीं। किंतु मीमांसक-रीतिसैं दोनूंपद मिलिके अखंडब्रह्मके लक्षक हैं॥

इसरीतिसैं लक्षणाके प्रसंगमैं बहुतविचार प्राचीनआचार्योंनैं लिख्याहै। ताकी संक्षेपतैं रीतिमात्र जनाईहै॥

॥ १३९ ॥ इसरीतिसैं प्रथम तौ पदकी शक्ति वा लक्षणाके ज्ञानसहित वाक्यका श्रवण-साक्षात्कार होयके पूर्व अनुभूतपदार्थनकी स्मृति होवैहै। तिसतैं अनंतर पदार्थनके संबंधका ज्ञान वा संबंधसहित पदार्थनका ज्ञानरूप वाक्यर्थबोध होवैहै। ताहीकूं शाब्दबोध बी कहैहैं। यातैं शब्दकी शक्ति अथवा लक्षणावृत्तिका ज्ञान शाब्दबोधका हेतु है॥

॥ २१ ॥ शाब्दबोधके आकांक्षाआदिक चारिसहकारीका निरूपण ॥ १४०–१५१ ॥

॥ १४० ॥ १ आकांक्षाज्ञान, २ योग्यता-

ज्ञान ३ तात्पर्यज्ञान, औ ४ आसत्ति ये चार सहकारी हैं ॥

१ आकांक्षा नाम इच्छाका है, सो यद्यपि चेतनमैं होवैहै, तथापि पदके अर्थका जितने काल पदार्थान्तरसैं अन्वयज्ञान होवै नहीं, इतनेकाल अपने अर्थके अन्वयवास्तै पदांतरकी इच्छा सदृश प्रतीति होवैहै । अन्वयबोध हुया पाछे प्रतीति होवै नहीं । सो आकांक्षा कहियेहैं ॥ जैसैं "अयमेति पुत्रो राज्ञः पुरुषोऽपसार्यतां" कहिये "यह राजाका पुत्र आवैहै ।" ऐसैं राजपदार्थका पुत्रपदार्थसैं अन्वयबोध हुया पाछे पुरुषपदार्थमैं अन्वयबोधहेतु आकांक्षा राजपदार्थमैं है नहीं। यातैं "राजाके पुरुषको निकासो" ऐसा बोध होवै नहीं । किंतु "पुरुषकूं निकासो" ऐसा बोध होवैहै ॥ जो आकांक्षाज्ञान शाब्दबोधका हेतु नहीं होवै तौ "राजाका पुत्र आवैहै, राजाके पुरुषको निकासो" ऐसा बोध हुयाचाहिये । यातैं आकांक्षाज्ञान शाब्दबोधका हेतु है ॥

॥ १४१ ॥ २ एकपदार्थका पदार्थान्तरसैं संबंधकूं योग्यता कहैहैं । जहां योग्यता नहीं होवै, तहां शाब्दबोध होवै नहीं । जैसैं "वह्निना सिंचति" या वाक्यमैं वह्निवृत्ति-करणतारूप तृतीयापदार्थका सेचनपदार्थमैं निरूपकतासंबंधरूप योग्यता है नहीं । यातैं शाब्दबोध होवै नहीं । जो शाब्दबोधमैं योग्यता हेतु नहीं होवै तौ "वह्निना सिंचति" या वाक्यतैं शाब्दबोध हुया चाहिये । यातैं योग्यताज्ञान शाब्दबोधकी हेतु है ॥

॥ १४२ ॥ ३ वक्ताकी इच्छाकूं तात्पर्य कहैहैं । जा अर्थमैं तात्पर्यज्ञान होवै नहीं, ताका शाब्दबोध होवै नहीं ॥

(१) जैसैं "सैंधवमानय" या वाक्यतैं भोजनसमयमैं अश्वविषै वक्ताकी इच्छारूप तात्पर्य संभवै नहीं, यातैं अश्वका शाब्दबोध होवै नहीं ।

(२) तैसैं गमनसमयमैं लवणका शाब्दबोध होवै नहीं ।

जो तात्पर्यज्ञान शाब्दबोधका हेतु नहीं होवै तौ "सैंधवमानय" या वाक्यतैं भोजनसमयमैं अश्वका बोध औ गमनसमयमैं लवणका बोध हुया चाहिये । यातैं शाब्दबोधमैं तात्पर्यज्ञान हेतु है ॥ तैसैं—

॥ १४३ ॥ वेदांत जो वेदका अंतभाग उपनिषद् ताका तात्पर्य, अहेय अनुपादेय जो अद्वितीयब्रह्म ताके बोधमैं है । उपासनाविधिमैं तात्पर्य नहीं । काहेतैं ?

(१) लौकिकवाक्यका तात्पर्य तौ प्रकरणादिकनतैं जानिये है । सो प्रकरणादिक काव्यप्रकाश काव्यप्रदीपमैं लिखेहैं ॥ औ—

(२) वैदिकवाक्यके तात्पर्यज्ञानके हेतु उपक्रमोपसंहारादिक षट् हैं ॥ [१] उपक्रम-उपसंहारकी एकरूपता । [२] अभ्यास । [३] अपूर्वता । [४] फल । [५] अर्थवाद औ [६] उपपत्ति । ये षट् वैदिकवाक्यके तात्पर्यके लिंग हैं । इनतैं वैदिकवाक्यनका तात्पर्य जानियेहै । यातैं तात्पर्यके लिंग कहियेहैं ॥ जैसैं धूमतैं वह्नि जानियेहै । यातैं वह्निका लिंग धूम कहियेहै । औ—

(३) उपनिषदनतैं भिन्न कर्मकांडबोधक वेदका तात्पर्य कर्मविधिमैं है । जैसैं उपक्रमोपसंहारादिक पूर्व वेदके कर्मविधिमैं हैं, तैसैं जैमिनिकृत द्वादशाध्यायीमैं स्पष्ट हैं ॥ औ—

(४) उपनिषद्रूप वेदके उपक्रमोपसंहारादिक अद्वितीयब्रह्ममैं हैं । यातैं अद्वितीयब्रह्ममैं तिनका तात्पर्य है ॥

॥ १४४ ॥ [१] जैसैं छांदोग्यके षष्ठा-

ध्यायका उपक्रम कहिये आरंभमैं अद्वितीय ब्रह्म है औ उपसंहारक कहिये समाप्तिमैं अद्वितीय-ब्रह्म है । जो अर्थ आरंभमैं होवै सोई समाप्तिमैं होवै तहां उपक्रमोपसंहारकी एकरूपता कहियेहै ।

॥ १४५ ॥ [२] पुनः पुनः कथनका नाम अभ्यास है । छांदोग्यके षष्ठाध्यायमैं नववार "तत्त्वमसि" वाक्य है । यातैं अद्वितीय-ब्रह्ममैं अभ्यास है ।

॥ १४६ ॥ [३] प्रमाणांतरतैं अज्ञाततताकूं अपूर्वता कहैहैं । उपनिषद्रूप शब्दप्रमाणतैं औरप्रमाणका अद्वितीयब्रह्म विषय नहीं । यातैं अद्वितीयब्रह्ममैं अज्ञाततारूप अपूर्वता है ।

॥ १४७ ॥ [४] अद्वितीयब्रह्मके ज्ञानतैं मूलसहित शोकमोहकी निवृत्ति फल कह्याहै ।

[५] स्तुति अथवा निंदाका बोधकवचन अर्थवाद कहियेहै । अद्वितीयब्रह्मबोधकी स्तुति उपनिषदनमैं स्पष्ट है ॥

॥ १४८ ॥ [६] कथन करे अर्थके अनुकूल युक्तिकूं उपपत्ति कहैहैं । छांदोग्यमैं सकल-पदार्थनका ब्रह्मसैं अभेदकथनके अर्थ कार्यका कारणतैं अभेदप्रतिपादन अनेकदृष्टांतनसैं कह्याहै ।

॥ १४९ ॥ इसरीतिसैं षड्लिंगनतैं सकल-उपनिषद्नका तात्पर्य अद्वितीयब्रह्ममैं है । सो उपनिषद्नके व्याख्यानमैं भगवान्‌भाष्यकारनै षड्लिंग स्पष्ट लिखेहैं । तिनतैं वेदांतवाक्यनका अद्वैतब्रह्ममैं तात्पर्य निश्चय होवैहै ॥

जा अर्थमैं वक्ताके तात्पर्यका ज्ञान होवै ता अर्थका श्रोताकूं शब्दसैं बोध होवैहै । यातैं तात्पर्यज्ञान वी शाब्दबोधका हेतु है ॥ औ—

॥ १५० ॥ ४ योग्यपदनके शक्ति वा लक्षणावृत्तिरूप संबंधतैं व्यवधानरहित पदार्थन-की स्मृति आसत्ति कहियेहैं । इसरीतिकी आसत्ति स्वरूपसैं शाब्दबोधकी हेतु है । ताका ज्ञान हेतु नहीं ॥

याप्रकारतैं आकांक्षाज्ञान, योग्यताज्ञान, तात्पर्यज्ञान, औ आसत्ति ये शाब्दबोधके हेतु हैं । इन चारिकूं शाब्दसामग्री कहैहैं ॥

॥ १५१ ॥ इसरीतिसैं—

१ इहां शक्ति वा लक्षणासहित शब्दका ज्ञान प्रमाका करण होनैतैं प्रमाण है । औ—

२ पदार्थनकी स्मृति तिसतैं उपजिके शाब्दीप्रमाकूं जनैहै । यातैं व्यापार है । औ—

३ शाब्दीप्रमा फल है ॥

इति श्रीवृत्तिरत्नावल्यां शब्दप्रमाणनिरूपणं नाम पंचमं रत्नं समाप्तम् ॥ ५ ॥

॥ अथ षष्ठरत्नप्रारंभः ॥ ६ ॥

॥ ५ ॥ अर्थापत्तिप्रमाणनिरूपण ॥ १५२–१६२ ॥

॥ २२ ॥ अर्थापत्तिप्रमा औ प्रमाणके स्वरूपका निर्द्धार ॥ १५२–१५३ ॥

॥ १५२ ॥ अर्थापत्तिप्रमाके करणकूं अर्थापत्तिप्रमाण कहैहैं । जैसैं प्रमाण प्रमाका बोधक प्रत्यक्ष शब्द है । तैसैं अर्थापत्तिशब्द वी प्रमाण औ प्रमा दोनूंका बोधक है ॥

॥ १५३ ॥ उपपादक कल्पनका हेतु उपपाद्य ज्ञानकूं अर्थापत्तिप्रमाण कहैहैं ।

उपपादकज्ञानकूं अर्थापत्तिप्रमा कहैहैं ।

उपपादक संपादक पर्यायशब्द हैं ॥

उपपाद्य संपाद्य पर्यायशब्द हैं ।

१ जिसविना जो संभवै नहीं, तिसका सो उपपाद्य कहियेहै । जैसैं रात्रिभोजनविना

दिवाअभोजीपुरुषमें स्थूलता संभवै नहीं। यातें रात्रिभोजनका स्थूलता उपपाद्य है ॥

२ जिसके अभावसें जाका अभाव होवै, सो ताका उपपादक कहियेहै। जैसें रात्रि भोजनके अभावसें स्थूलताका दिवाअभोजीकूं अभाव होवैहै। यातें रात्रिभोजन स्थूलताका उपपादक है।

१ इसरीतिसें उपपाद्यकी अनुपपत्तिके ज्ञानतें उपपादककी कल्पना अर्थापत्तिप्रमा कहियेहै।

२ उपपादक कल्पनाका हेतु उपपाद्यकी अनुपपत्तिका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमा कहियेहै।

'अर्थ कहिये उपपादकवस्तु, ताकी आपत्ति कहिये कल्पना' या अर्थसें अर्थापत्तिशब्द प्रमाका बोधक है औ अर्थकी कल्पना जिसतें होवै सो उपपाद्यकी अनुपपत्तिका ज्ञानरूप प्रमाण अर्थापत्तिशब्दका अर्थ है ॥

॥ २३ ॥ अर्थापत्तिप्रमाके भेद

॥ १५४–१५७ ॥

॥ १५४ ॥ सो अर्थापत्ति १ दृष्टार्थापत्ति औ २ श्रुतार्थापत्ति भेदतें दोप्रकारकी है।

१ जहां दृष्टउपपाद्यकी अनुपपत्तिके ज्ञानतें उपपादककी कल्पना होवै, तहां दृष्टार्थापत्ति कहियेहै। जैसें दिवाअभोजीस्थूलमें रात्रिभोजनका ज्ञान दृष्टार्थापत्ति है। काहेतें? उपपाद्यस्थूलता सा दृष्ट है ॥

॥ १५५ ॥ २ जहां श्रुतउपपाद्यकी अनुपपत्तिके ज्ञानतें उपपादककी कल्पना होवै, तहां श्रुतार्थापत्ति कहियेहै। जैसें "गृहे असद्देवदत्तो जीवति" या वाक्यकूं सुनिके गृहसें बाह्यदेशमें देवदत्तकी सत्ताविना गृहमें असद्देवदत्तका जीवन बनै नहीं। यातें गृहमें असद्देवदत्तके जीवनकी अनुपपत्तिसें देवदत्तकी गृहतें बाह्यसत्ता कल्पना करियेहै। तहां गृहसें असतद्देवदत्तका जीवन दृष्ट नहीं, किंतु श्रुत है ॥

१ श्रुतअर्थकी अनुपपत्तिसें उपपादककी कल्पना श्रुतार्थापत्तिप्रमा कहियेहै।

२ ताका हेतु श्रुतअर्थकी अनुपपत्तिका ज्ञान श्रुतार्थापत्तिप्रमाण कहियेहै।

इहां गृहमें असद्देवदत्तका जीवन उपपाद्य है। गृहतें बाह्यसत्ता उपपादक है।

॥ १५६ ॥ १ अभिधानानुपपत्ति औ २ अभिहितानुपपत्ति भेदतें श्रुतार्थापत्ति दोप्रकारकी है ॥

१ "द्वारं" अथवा "पिधेहि" इत्यादिस्थलमें जहां वाक्यका एकदेश उच्चारित होवै, एकदेश उच्चारित नहीं होवै, तहां श्रुतपदके अर्थके अन्वययोग्यअर्थका वा अन्वययोग्यअर्थका बोधक जो पद ताका अध्याहार होवैहै। सो अर्थके वा पदके अध्याहारका ज्ञान अन्यप्रमाणतें संभवै नहीं, अर्थापत्तिप्रमाणतें होवैहै। इहां अभिधानानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति है। काहेतें? एकपदार्थका इष्टपदार्थांतरसें अन्वयबोधमें वक्ताके तात्पर्यकूं अभिधान कहैहैं। "द्वारं" अथवा "पिधेहि" इतना कहै, तहां "द्वारकूं ढांको" यह बोध श्रोताकूं होवै ऐसा वक्ताका तात्पर्यरूप अभिधान है। यातें अभिधानानुपपत्ति कहिये है ॥ इहां—

(१) अर्थ अथवा शब्दका अध्याहार उपपादक है। औ—

(२) पूर्वउक्त तात्पर्य उपपाद्य है।

॥ १५७ ॥ २ जहां सारे वाक्यका अर्थ अन्यअर्थकल्पनाविना अनुपपन्न होवै, तहां

अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति है ॥ जैसैं "स्वर्गकामो यजेत" या वाक्यका अर्थ अपूर्वकल्पनविना अनुपपन्न है । यातैं अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थानुपपत्ति है ॥ इहां—

(१) यागकूं स्वर्गसाधनता उपपाद्य है। ताकी अनुपपत्तिसैं उपपादकअपूर्वकी कल्पना है ।

(२) अंतकी आहुतिकूं याग कहैहैं ॥

(३) सुखविशेषकूं स्वर्ग कहैहैं।

(४) कर्मजन्यसंस्काररूप अदृष्टकूं अपूर्व कहैहैं ॥ औ—

स्वर्गसाधनता दृष्ट नहीं, किंतु श्रुत है। यातैं श्रुतार्थापत्ति है ॥

॥ २४ ॥ अर्थापत्तिप्रमाका जिज्ञासुकूं उपयोग ॥ १५८–१६२ ॥

॥ १५८ ॥ श्रुतार्थापत्तिका जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरणः-"तरति शोकमात्मवित्" यह है। इहां ज्ञानतैं शोककी निवृत्तिकी श्रुत है। ताकी शोकमिथ्यात्वविना अनुपपत्ति है। यातैं ज्ञानतैं शोककी निवृत्ति अनुपपत्तिसैं बंधमिथ्यात्वकी कल्पना होवैहै ॥ बंधमिथ्यात्व उपपादक है। ज्ञानतैं शोकनिवृत्ति उपपाद्य है। सो दृष्ट नहीं । किंतु श्रुत है । यातैं श्रुतार्थापत्ति है ॥ तैसैं—

॥ १५९ ॥ महावाक्यनमैं जीवब्रह्मका अभेद श्रवण होवैहै, सो औपाधिकभेद होवै तौ संभवै । स्वरूपसैं भेद होवै तौ संभवै नहीं । यातैं जीवब्रह्मके अभेदकी अनुपपत्तिसैं भेदका औपाधिकत्वज्ञान अर्थापत्तिप्रमाणजन्य है ।

१ इहां जीवब्रह्मका अभेद उपपाद्य है ।

२ भेदमैं औपाधिकता उपपादक है ।

१ सारे उपपाद्यज्ञान प्रमाण हैं ।

२ उपपादकज्ञान प्रमा है ॥

इहां जीवब्रह्मका अभेद विद्वान्कूं दृष्ट हैं। अन्यकूं श्रुत है। यातैं दृष्टार्थापत्ति औ श्रुतार्थापत्ति दोनूंका उदाहरण है।

॥ १६० ॥ तैसैं रजतके अधिकरण शुक्तिमैं रजतका निषेध दृष्ट है। सो रजतके मिथ्यात्वविना संभवै नहीं। यातैं निषेधकी अनुपपत्तिसैं रजतमिथ्यात्वकी कल्पना होवैहै । यह दृष्टार्थापत्तिका उदाहरण है ॥ इहां—

१ रजतनिषेध उपपाद्य है औ—

२ मिथ्यात्व उपपादक है ॥

॥ १६१ ॥ मनके विलयसैं अनंतर निर्विकल्पसमाधिकालमैं अद्वितीयब्रह्ममात्र शेष रहैहै। सकलअनात्मवस्तुका अभाव होवैहै। सो अनात्मवस्तु मानस होवै तौ मनके विलयतैं ताका अभाव संभवै । जो मानस नहीं होवै तौ मनके विलयतैं अभाव होवै नहीं । काहेतैं? अन्यके विलयतैं अन्यका अभाव होवै नहीं। यातैं मनके विलयतैं सकलद्वैताभावकी अनुपपत्तिसैं सकलद्वैत मनोमात्र है । यह कल्पना होवैहै ॥ इहां—

१ मनके विलयतैं सकलद्वैतका विलय उपपाद्य है।

२ ताका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमाण है।—

३ सकलद्वैतकूं मानसता उपपादक है।

४ ताका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमा है ॥

॥ १६२ ॥ या स्थानमैं उपपादकप्रमा असाधारणकारण अर्थापत्तिप्रमाण है ॥ सो निर्व्यापार है तौ बी तामैं उपपादकप्रमाकी कारणता संभवैहै । यह उपमाननिरूपणमैं कह्याहै ॥

इति वृत्तिरत्नावल्यां षष्ठं रत्नम् ।

॥ अथ सप्तमरत्नप्रारंभः ॥ ७ ॥

॥६॥ अनुपलब्धिप्रमाणनिरूपणम् ॥१६३–१८१

॥ न्यायशास्त्रको रीतिसैं अभावके स्वरूपका निर्द्धार ॥ १६३–६१९ ॥

॥१६३ ॥ अभावकी प्रमाके असाधारण-कारणकूं **अनुपलब्धिप्रमाण** कहैहैं ।

१ प्राचीननैयायिक, निषेधमुखप्रतीतिके विषयकूं अभाव कहैहैं । औ—

२ नवीननैयायिक संबंध सादृश्यतें भिन्न होवै औ प्रतियोगिसापेक्षप्रतीतिका विषय होवै, ताकूं अभाव कहैहैं ॥

प्रतियोगिसापेक्षप्रतीतिके विषय तौ संबंध औ सादृश्य वी हैं, सो तातैं भिन्न नहीं । तातैं भिन्न तौ और वी हैं । सो प्रतियोगिसापेक्ष-प्रतीतिके विषय नहीं । किंतु प्रतियोगिनिरपेक्ष-प्रतीतिके विषय हैं यातैं अभावके लक्षणकी कहुं वी अतिव्याप्ति नहीं ॥

॥ १६४ ॥ सो अभाव दोप्रकारका है:— १ एक अन्योन्याभाव औ २ दूसरा संसर्गाभाव है । तिनमें अन्योन्याभाव तौ एकविधही है ॥ संसर्गाभावके चारिभेद हैं (१) एक प्राग-भाव है (२) प्रध्वंसाभाव है (३) सामयिका-भाव है औ (४) अत्यंताभाव है ॥

॥ १६५ ॥ १ अभेदके निषेधक अभावकूं **अन्योन्याभाव** कहैहैं ॥

वा अत्यंताभावसैं भिन्न उत्पत्ति औ नाशतें शून्य अभावकूं **अन्योन्याभाव** कहैहैं । ताहीकूं भेद औ भिन्नता औ अतिरिक्तता औ जुदापना वी कहैहैं ॥

(१) उत्पत्तिशून्य तौ प्रागभाव वी है, सो नाशशून्य नहीं ।

(२) नाशशून्य तौ प्रध्वंसाभाव वी है । सो उत्पत्तिशून्य नहीं ।

(३) उत्पत्तिनाशशून्य तौ आत्मा वी है । सो अभावरूप नहीं । किंतु भावरूप है ।

(४) उत्पत्तिनाशशून्य अभावरूप तौ अत्यंताभाव वी है, सो अन्योन्या-भावरूप नहीं । किंतु तातैं भिन्न है ॥

" घटः पटो न " ऐसा कहनैसैं घटमें पटके अभेदका निषेध होवैहै । यातैं घटमें पटके अभेदका निषेधक घटमें पटका **अन्योन्या-भाव** है ॥

॥ १६६ ॥ २ तासैं भिन्न अभाव । ताकूं **संसर्गाभाव** कहैहैं ॥

(१) अनादि सांत जो अभाव, सो **प्रागभाव** कहियेहै । अपने प्रतियोगीके उपादानकारणमें प्रागभाव रहैहै । जैसैं घटके प्रागभावका प्रतियोगी घट है । ताके उपादान-कारण कपालमें घटका प्रागभाव रहैहै । सो अनादि कहिये उत्पत्तिरहित है औ सांत कहिये अंतवाला है ।

[१] अनादिअभाव तौ अत्यंताभाव वी है, सो सांत नहीं ।

[२] सांत अभाव तौ सामयिकाभाव वी है, सो अनादि नहीं । औ—

[३] वेदांतसिद्धांतमैं अनादि औ सांत माया है, सो अभाव नहीं । किंतु जगत्का उपादानकारण होनैतैं सत्असत्तैं विलक्षण अनिर्वचनीय भावरूप माया है ॥

॥ १६७ ॥ (२) सादिअनंत जो अभाव, सो **प्रध्वंसाभाव** कहियेहै । जैसैं मुद्गरादिकनतैं घटादिकनका ध्वंस होवैहै ॥

[१] अनंतअभाव तौ अत्यंताभाव वी है सो सादि नहीं ।

[२] सादिअभाव तौ सामयिकाभाव वी है, सो अनंत नहीं ।

[३] सादिअनंत तौ मोक्ष वी है। काहेतैं ?

(क) ज्ञानतैं मोक्ष होवैहै। यातैं सादि है औ

(ख) मुक्तकूं फेरि संसार होवै नहीं। यातैं अनंत है।

परंतु मोक्ष अभावरूप नहीं । किंतु भावरूप है ॥

यद्यपि अज्ञान औ तिसके कार्यकी निवृत्तिकूं **मोक्ष** कहैहैं । निवृत्ति नाम **ध्वंसका** है । यातैं मोक्ष वी अभावरूप है। तथापि कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवैहै ॥ अज्ञान औ ताका कार्य कल्पित है। यातैं तिन्हकी निवृत्ति अधिष्ठानब्रह्मरूप है। यातैं अभावरूप मोक्ष नहीं। किंतु ब्रह्मरूप होनैतैं भावरूप है ॥

॥ १६८ ॥ (३) उत्पत्ति औ नाशवाला जो अभाव, सो **सामयिकाभाव** कहियेहै ॥

जहां किसीकालमैं पदार्थ होवै औ किसीकालमैं न होवै, तहां पदार्थशून्यकालमैं तिसपदार्थका **सामयिकाभाव** होवैहै ॥ जैसैं भूतलादिकनमैं घटादिक किसीकालमैं होवैहैं औ किसीकालमैं नहीं होवैं । तहां घटशून्यकालसंबंधी-भूतलादिकनमैं घटादिकनका **सामयिकाभाव** है ॥

समयविशेषमैं उपजै औ समयविशेषमैं नष्ट होवै, सो **सामयिकाभाव** कहियेहै ॥ भूतलसैं घटकूं अन्यदेशमैं लेजावैं तब घटका अभाव भूतलमैं उपजेहै औ तिसी भूतलमैं घटकूं लेआवैं तब घटका अभाव भूतलमैं नष्ट होवैहै ॥ इसरीतिसैं सामयिकाभाव उत्पत्तिनाशवाला है ॥

[१] उत्पत्तिवाला तौ प्रध्वंसाभाव वी है। सो नाशवाला नहीं ।

[२] नाशवाला तौ प्रागभाव वी है, सो उत्पत्तिवाला नहीं ।

[३] उत्पत्तिनाशवाले तौ घटादिकभूत-भौतिक अनेकपदार्थ हैं, सो अभावरूप नहीं। किंतु विधिमुखप्रतीति कहिये अस्तिप्रतीतिके विषय होनैतैं भावरूप हैं ॥

॥ १६९ ॥ (४) अन्योन्याभावसैं भिन्न जो उत्पत्तिशून्य औ नाशशून्य अभाव, सो **अत्यंताभाव** कहियेहै ॥

जहां किसीकालमैं जो पदार्थ न होवै तहां तिस पदार्थका **अत्यंताभाव** कहियेहै ॥ जैसैं वायुमैं रूप औ गंध किसीकालमैं नहीं होवैहैं। तहां रूप औ गंधका अत्यंताभाव है। आत्मामैं रूप, रस, गंध, स्पर्श, औ शब्द कदी वी रहैं नहीं । यातैं रूपादिकनके अत्यंताभाव आत्मामैं रहैहैं ॥

[१] उत्पत्तिशून्य तौ प्रागभाव वी है, सो शून्य नहीं ।

[२] नाशशून्य तौ प्रध्वंसाभाव वी है। सो उत्पत्तिशून्य नहीं ।

[३] उत्पत्तिनाशशून्य ब्रह्म वी है, सो अभावरूप नहीं। किंतु भावरूप है।

[४] उत्पत्तिनाशशून्य अभावरूप तौ अन्योन्याभाव वी है । सो अन्योन्याभावसैं भिन्न नहीं ॥

॥ २३ ॥ उक्तअभावके स्वरूपमैं वेदांतसैं विरुद्धअंशका प्रदर्शन ॥ १७०—१७८ ॥

॥ १७० ॥ इसरीतिसैं अभावका कथन

न्यायशास्त्रकी रीतिसैं किया । यामैं जितना अंश वेदांतसैं विरुद्ध है, सो संक्षेपतैं दिखावैहैं:–

१ कपालमैं घटके प्रागभावकूं अनादि कहैहैं, सो प्रमाणविरुद्ध है । यातैं वेदांतके अनुसारी नहीं । काहेतैं? घटप्रागभावका अधिकरण सादि है औ प्रतियोगी घट बी सादि है । प्रागभावकूं अनादिता किसरीतिसैं होवै ? औ—

मायामैं सकलकार्यके प्रागभावकूं अनादिता कहैं तौ संभवैहै । काहेतैं ? माया अनादि है । परंतु मायामैं कार्यका प्रागभाव मानना व्यर्थ है औ सिद्धांतमैं इष्ट बी नहीं । यातैं प्रागभाव सादिसांत है ।

॥१७१॥ २ तैसैं नैय्यायिकमतमैं प्रध्वंसाभाव बी अपनै प्रतियोगीके उपादानमैंही रहैहै । यातैं घटका ध्वंस कपालमात्रवृत्ति है सो अनंत है । यह कथन असंगत है ॥ घटध्वंसका अधिकरण जो कपाल, ताके नाशतैं घटध्वंसका नाश होनैतैं प्रध्वंसाभाव बी सादिसांत है ।

॥ १७२ ॥ ३ तैसैं अन्योन्याभाव बी सादिसांतअधिकरणमैं सादिसांत है । जैसैं घटमैं पटका अन्योन्याभाव है । ताका अधिकरण घट है । सो सादि है औ सांत है । यातैं घटवृत्ति पटान्योन्याभाव बी सादिसांत है ॥ अनादिअधिकरणमैं अन्योन्याभाव अनादि है । परंतु अनादि बी सांत है । अनंत नहीं ॥

॥ १७३ ॥ जैसैं ब्रह्ममैं जीवका भेद है, सो जीवका अन्योन्याभाव है । ताका अधिकरण ब्रह्म है । सो अनादि है । यातैं—

(१) ब्रह्ममैं जीवका भेदरूप अन्योन्याभाव अनादि है औ—

(२) ब्रह्मज्ञानसैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा भेदका अंत होवैहै । यातैं सांत है ॥

॥ १७४ ॥ अनादिपदार्थकी बी ज्ञानसैं निवृत्ति अद्वैतवादमैं इष्ट है । इसीवास्तै शुद्धचेतन, जीव, ईश्वर, अविद्या, अविद्याचेतनका संबंध औ अनादिका परस्पर भेद, ये पट्पदार्थ अद्वैतमतमैं स्वरूपसैं अनादि कहैहैं औ शुद्धचेतनविना पांचकी ज्ञानसैं निवृत्ति मानैहैं । यामैं-

॥ १७५ ॥ यह शंका होवैहै:– जीवईश्वरकूं अद्वैतवादमैं मायिक कहैहैं । मायाका कार्य मायिक कहियेहै । जीवईश मायाके कार्य हैं औ अनादि हैं । यह कहना विरुद्ध है । ता शंकाका—

॥ १७६ ॥ यह समाधान है:– जीवईश मायाके कार्य हैं । यह मायिकपदका अर्थ नहीं है । किंतु मायाकी स्थितिके अधीन जीवईशकी स्थिति है । मायाकी स्थितिविना जीवईशकी स्थिति होवै नहीं । यातैं मायिक हैं औ मायाकी न्यांई अनादि हैं । इसरीतिसैं अनादिअन्योन्याभाव बी सांत है । अन्योन्याभाव अनंत नहीं ॥

॥ १७७ ॥ ४ तैसैं अत्यंताभाव बी आकाशादिकनकी न्यांई अविद्याका कार्य है औ विनाशी है ।

इसरीतिसैं अद्वैतवादमैं सारे अभाव विनाशी हैं । कोई अभाव नित्य नहीं ॥ औ अद्वैतवादमैं अनात्मपदार्थ सारे मायाके कार्य हैं । यातैं आत्मभिन्नकूं नित्यता संभवै नहीं ॥ जैसैं घटादिक भावपदार्थ मायाके कार्य हैं, तैसैं अभाव बी मायाके कार्य हैं । यातैं मिथ्या हैं ॥ औ—

॥ १७८ ॥ कोई ग्रंथकार अद्वैतवादी एक अत्यंताभावकूं मानैहै । औरअभावकूं अलीक कहैहै ॥ अलीक नाम जूठका है ॥

१ जैसैं घटका प्रागभाव कपालमैं कहैहैं, सो अलीक है । काहेतैं ? घटकी उत्पत्तिसैं पूर्वकालसंबंधी कपालही "घटो भविष्यति" या प्रतीतिका विषय है ॥ घटका प्रागभाव अप्रसिद्ध है ॥

२ तैसैं मुद्गरादिकनतैं चूर्णीकृतकपाल अथवा विभक्तकपालतैं पृथक् घटध्वंस बी अप्रसिद्ध है ॥

३ तैसैं घटासंबंधी भूतलही घटका सामयिकाभाव है ॥ घट होवै तब घटका संबंधी भूतल है । यातैं घटासंबंधी भूतल नहीं । इसरीतिसैं **सामयिकाभाव** अधिकरणसैं पृथक् नहीं ॥

४ तैसैं घटमैं पटके भेदकूं घटवृत्ति पटान्योन्याभाव कहैहैं । सो दोनूंके अभेदका अत्यंतभावरूप है । दोपदार्थनके अभेदात्यंताभावसैं पृथक् अन्योन्याभाव अप्रसिद्ध है ॥

इसरीतिसैं एक अत्यंताभाव है और कोई अभाव नहीं । इसरीतिसैं अभावके निरूपणमैं बहुतविचार है, ग्रंथवृद्धिभयतैं रीतिमात्र जनाई है ॥

॥ २७ ॥ सामग्रीसहित अभावप्रमा औ ताके जिज्ञासुकूं उपयोगके कथनपूर्वक प्रमावृत्तिका उपसंहार ॥१७९-१८१॥

॥ १७९ ॥ इसरीतिसैं उक्त जो अभाव, ताका प्रमाज्ञान होवै । तहां अभावप्रमाका असाधारणकारणरूप जो प्रतियोगीका अनुपलंभ, सो करण होनैतैं **प्रमाण** है ॥

उपलंभ नाम ज्ञानका है । ताहीकूं प्रतीति औ उपलब्धि बी कहैहैं । ताके अभावकूं अनुपलंभ औ अनुपलब्धि कहैहैं ॥

उपमान औ अर्थापत्तिकी न्यांई याका बी व्यापार नहीं है । यातैं इहां बी करणलक्षणमैं व्यापारवत्पदका प्रवेश नहीं । किंतु व्यापारभिन्नपदका प्रवेश है ॥

इसप्रकार अनुपलब्धिप्रमाण है । औ अनुपलब्धिप्रमा फल है । ताहीकूं **अभावप्रमा** बी कहैहैं ॥

॥ १८० ॥ अनुपलब्धिनिरूपणका जिज्ञासुकूं यह उपयोग है:—

"नेह नानाऽस्ति" इत्यादिक श्रुति प्रपंचका त्रैकालिकअभाव कहैहैं । अनुभवसिद्ध प्रपंचका त्रैकालिक अभाव बनै नहीं । यातैं प्रपंचका स्वरूपसैं निषेध नहीं करैहै ॥ किंतु प्रपंच पारमार्थिक नहीं । यातैं पारमार्थिकत्वविशिष्टप्रपंचका त्रैकालिक अभाव श्रुति कहैहै ॥ इस रीतिसैं पारमार्थिकत्वविशिष्टप्रपंचका अभाव श्रुतिसिद्ध है औ—

२ अनुपलब्धिप्रमाणतैं बी सिद्ध है । जो पारमार्थिकत्वविशिष्टप्रपंच होता तौ जैसैं प्रपंचकी स्वरूपसैं उपलब्धि होवैहै, तैसैं पारमार्थिकप्रपंचकी बी उपलब्धि होती औ स्वरूपसैं तौ प्रपंचकी उपलब्धि होवैहै । पारमार्थिकरूपतैं प्रपंचकी उपलब्धि होवै नहीं । यातैं पारमार्थिकत्वविशिष्टप्रपंचका अभाव है ॥ इसरीतिसैं प्रपंचाभावका ज्ञान अनुपलब्धिसैं होवैहै । और बी अनेकअभावका ज्ञान जिज्ञासुकूं इष्ट है । ताका हेतु अनुपलब्धिप्रमाण है ॥

॥ १८१ ॥ इसरीतिसैं संक्षेपतैं ईश्वरआश्रित औ षट्प्रमाणप्रत्यक्षादि षट्प्रकारकी जीवाश्रित भेदतैं दोभांतिकी प्रमा कही । सो स्मृतिसैं भिन्न यथार्थवृत्तिज्ञानरूप है ॥

इति श्रीवृत्तिरत्नावल्यां अनुपलब्धिप्रमाणनिरूपणं नाम सप्तमं रत्नं समाप्तम् ॥ ७ ॥

॥ अथ अष्टमरत्नप्रारंभः ॥ ८ ॥

॥ १ ॥ अप्रमावृत्तिके भेद अनिर्वचनीयख्याति-निरूपण ॥

॥ २८ ॥ यथार्थअप्रमाके भेदका कथन ॥ १८२—१८६ ॥

॥ १८२ ॥ अप्रमावृत्ति बी यथार्थ अयथार्थ भेदतें दोप्रकारकी है । स्मृतिरूप अंतःकरणकी वृत्तिकूं यथार्थअप्रमा कहैहैं। सो स्मृति बी १ यथार्थ औ २ अयथार्थ भेदतें दोप्रकारकी है ॥ तिनमैं—

॥ १८३ ॥ १ यथार्थस्मृति दोप्रकारकी है। (१) एक आत्मस्मृति है औ (२) दूसरी अनात्मस्मृति है ॥

(१) तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्यअनुभवतें आत्मतत्त्वकी स्मृति यथार्थआत्मस्मृति है ॥

(२) व्यावहारिकप्रपंचका मिथ्यात्वअनुभव हुया ताके संस्कारतें मिथ्यात्वरूपतें प्रपंचकी स्मृति, यथार्थअनात्मस्मृति है ॥

॥ १८४ ॥ २ तैसें अयथार्थस्मृति बी दोप्रकारकी है । (१) एक आत्मगोचर है औ (२) अनात्मगोचर है ॥

(१) अहंकारादिकनमैं आत्मत्वभ्रमरूप अनुभवके संस्कारतैं अहंकारादिकनमैं आत्मत्वकी स्मृति औ आत्मामैं कर्तृत्व अनुभवके संस्कारतैं "आत्मा कर्त्ता है" यह स्मृति । दोनूं आत्मगोचरअयथार्थस्मृति हैं ॥ औ—

(२) प्रपंचमैं सत्यत्वभ्रमके संस्कारतैं "प्रपंच सत्य है" यह स्मृति अनात्मगोचरअयथार्थस्मृति है ॥

॥ १८५ ॥ यद्यपि संसारदशामैं जा ज्ञानके विषयका बाध न होवै, वा प्रमाताके होते जा ज्ञानके विषयका बाध न होवै, सो यथार्थज्ञान कहियेहैं ॥ यातैं उक्तस्मृति अप्रमा है तौ बी यथार्थही कही। फेर ताहीकूं अयथार्थ कहना असंभव है ॥

॥ १८६ ॥ तथापि इहां उक्तस्मृतिकूं परमार्थदृष्टिसैं तौ अयथार्थता है औ उक्तलक्षणके अनुसार संसारदृष्टिसैं यथार्थता होनैतैं आपेक्षिकयथार्थता बी है। यातैं उक्तस्मृतिकूं यथार्थअप्रमा कहनैमैं असंभवदोष नहीं ॥

इसरीतिसैं यथार्थअप्रमा कही ॥

॥ २९ ॥ अयथार्थअप्रमाके भेद । संशय औ भ्रमका निर्द्धार ॥ १८७—१९७ ॥

॥ १८७ ॥ अयथार्थअप्रमा बी दोप्रकारकी है। १ एक स्मृतिरूप अविद्याकी वृत्ति है औ २ दूसरी अनुभवरूप है ॥

॥ १८८ ॥ १ उद्भूतसंस्कारमात्रजन्यज्ञानकूं स्मृति कहैहैं ॥

(१) ज्ञान तौ अन्य बी है। सो संस्कारजन्य नहीं।

(२) संस्कारजन्य तौ प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष बी है। सो संस्कारमात्रजन्य नहीं ॥

(३) अनुभवके बाध हुये उपज्या जो स्मृतिका हेतु भावना नाम संस्कार, सो तौ निरंतर रहैहै। यातैं सदा स्मृति हुईचाहिये। परंतु सो संस्कार उद्भूत नहीं। किंतु अनुद्भूत है।

यातैं कहुं अतिव्याप्ति नहीं ॥

सो स्मृति (१) यथार्थ औ (२) अयथार्थभेदतैं दोप्रकारकी है।

(१) यथार्थअनुभवजन्य स्मृति यथार्थ है। सो पूर्वही कही। औ—

(२) अयथार्थ अनुभवजन्य स्मृति अयथार्थ है। सो अयथार्थअप्रमाके अंतर्भूत हैं॥

अनुभवमैं यथार्थता अबाधितअर्थकृत है॥ अबाधितअर्थविषयक अनुभव यथार्थ कहियेहै। प्रमा कहियेहै। यातैं अबाधितअर्थके आधीन अनुभवमैं यथार्थता है औ स्मृतिमैं यथार्थता औ अयथार्थता अनुभवके आधीन है।

॥ १८९ ॥ २ स्मृतिसैं भिन्न जो ज्ञान, ताकूं अनुभव कहैहैं॥ सो बी (१) यथार्थ (२) अयथार्थभेदतैं दोप्रकारका है॥

(१) यथार्थानुभव तौ पूर्व कह्या।

(२) अयथार्थअनुभव बी संशय अरु निश्चय औ तर्कभेदतैं तीनप्रकारका है॥

अयथार्थकूंही भ्रम औ भ्रांति औ अध्यास कहैहैं॥

॥ १९० ॥ संशय निश्चयरूप भ्रम अनर्थका हेतु है। यातैं निवर्तनीय है॥ जिज्ञासुकूं निवर्तनीय जो भ्रम, ताके भेद कहैहैं:—

एकधर्मीमैं विरुद्ध नानाधर्मका ज्ञान, संशय कहियेहै। सो संशय दोप्रकारका है॥ १ एक प्रमाणसंशय है औ २ दूसरा प्रमेयसंशय है॥

१ प्रमाणगोचरसंदेह प्रमाणसंशय कहियेहै। ताहीकूं प्रमाणगतअसंभावना कहैहैं॥ "वेदांतवाक्य अद्वितीयब्रह्मविषै प्रमाण हैं वा नहीं हैं" यह प्रमाणसंशय है॥ ताकी निवृत्ति शारीरकके प्रथमाध्यायके पठनसैं वा श्रवणतैं होवैहै॥

२ प्रमेयसंशय बी आत्मसंशय औ अनात्मसंशय भेदतैं दोप्रकारका है॥

अनात्मसंशय अनंतविध है। ताके कहनैसैं उपयोग नहीं॥

॥ १९१ ॥ आत्मसंशय बी अनेकप्रकारका है॥

१ आत्मा ब्रह्मसैं अभिन्न है अथवा भिन्न है?

२ अभिन्न होवै तौ बी सर्वदा अभिन्न है अथवा मोक्षकालमैंही अभिन्न होवैहै। सर्वदा अभिन्न नहीं?

३ सर्वदा अभिन्न होवै तौ बी आनंदादिक ऐश्वर्यवान् है अथवा आनंदादिकरहित है?

४ आनंदादिकऐश्वर्यवान् होवै तौ बी आनंदादिक गुण हैं अथवा ब्रह्मात्माका स्वरूप है?

इसतैं आदिलेके "तत्" पदार्थाभिन्न "त्वं" पदार्थविषै अनेकप्रकारका संशय है॥

॥ १९२ ॥ १ तैसैं केवल "त्वं" पदार्थगोचरसंशय बी आत्मगोचरसंशय है॥

(१) आत्मा देहादिकनतैं भिन्न है वा नहीं?।

(२) भिन्न कहै तौ बी अणुरूप है वा मध्यपरिमाण है वा विभुपरिणाम है?

(३) जो विभु कहैं तौ बी कर्त्ता है अथवा अकर्त्ता है?

(२) अकर्त्ता कहै तौ बी परस्परभिन्न अनेक हैं अथवा एक है?

इसरीतिके अनेकसंशय केवल "त्वं" पदार्थगोचर हैं॥

॥ १९३ ॥ २ तैसैं केवल "तत्" पदार्थगोचर बी अनेकप्रकारके संशय हैं॥

(१) वैकुंठादिलोकविशेषवासी ईश्वर परिच्छिन्नहस्तपादादिकअवयवसहित शरीरी है अथवा शरीररहित विभु है?

(२) जो शरीररहित विभु कहैं तौ वी परमाणुआदिक सापेक्ष जगत्‌का कर्त्ता है अथवा निरपेक्ष कर्त्ता है ?

(३) परमाणुआदिकका निरपेक्ष कर्त्ता कहैं तौ वी केवलकर्त्ता है अथवा अभिन्ननिमित्तोपादानरूप कर्त्ता है ?

(४) जो अभिन्ननिमित्तउपादान कहैं तौ वी प्राणिकर्मनिरपेक्ष कर्त्ता होनैतैं विषमकारितादिक दोषवाला है अथवा प्राणिकर्मसापेक्षकर्त्ता होनैतैं विषमकारितादिकदोषरहित है ?

इसतैं आदि अनेकप्रकारके " तत् " पदार्थगोचरसंशय हैं सो सकलसंशय **प्रमेयसंशय** कहियेहैं ॥

॥ १९४ ॥ तिनकी निवृत्ति मननसैं होवैहै॥ शारीरके द्वितीयाध्यायके अध्ययनसैं वा श्रवणतैं मनन सिद्ध होवैहै, तासैं प्रमेयसंशयकी निवृत्ति होवैहै ॥

॥ १९५ ॥ ज्ञानसाधनका संशय औ मोक्षसाधनका संशय वी **प्रमेयसंशय** है । काहेतैं? प्रमाके विषयकूं **प्रमेय** कहैहैं । ज्ञानसाधन मोक्षसाधन वी प्रमाके विषय होनैतैं **प्रमेय** हैं । यातैं ज्ञानसाधनका संशय औ मोक्षसाधनका संशय वी **प्रमेयसंशय** हैं ॥ ताकी निवृत्ति शारीरकके तृतीयअध्यायसैं होवैहै ॥ तैसैं—

॥ १९६ ॥ मोक्षके स्वरूपका संशय वी **प्रमेयसंशय** है । ताकी निवृत्ति शारीरकके चतुर्थअध्यायसैं होवैहै ॥

॥ १९७ ॥ यद्यपि शारीरकके चतुर्थअध्यायमैं प्रथम साधनविचारही है । उत्तर फलविचार है। मोक्षकूं फल कहैहैं । तथापि—

१ चतुर्थाध्यायमैं साधनविचार जितनैमैं है, उतनै चतुर्थाध्यायसहित तृतीयाध्यायसैं साधनसंशयकी निवृत्ति होवैहै ॥

२ शिष्टचतुर्थाध्यायसैं फलसंशयकी निवृत्ति होवैहै ॥

इसरीतिसैं संशयरूप भ्रमका निरूपण किया ॥

॥ ३० ॥ अयथार्थअप्रमाके भेद निश्चयरूप भ्रमज्ञानका निर्द्धार ॥१९८—२०७॥

॥ १९८ ॥ निश्चयरूप भ्रम कहैहैं:—
संशयसैं भिन्न ज्ञानकूं **निश्चय** कहैहैं ।

शुक्तिका शुक्तित्वरूपसैं यथार्थज्ञान औ शुक्तिका रजतत्वरूपतैं भ्रमज्ञान, दोनूं संशयतैं भिन्नज्ञान होनैतैं निश्चयरूप हैं ॥

स्वाभावाधिकरणावभासकूं **भ्रम** कहैहैं ॥ जैसैं शुक्तिमैं रजतभ्रम होवै, तहां—

१ स्व कहिये रजत औ ताका ज्ञान ।

२ ताका पारमार्थिक औ व्यावहारिक जो अभाव ।

३ ताका अधिकरण कहिये अधिष्ठान जो रज्जु वा रज्जुविशिष्टचेतन वा रज्जुउपहित चेतन वा इदमाकारवृत्तिउपहितचेतन ।

४ तामैं **अवभास** जो रजत औ ताका ज्ञान सो **भ्रम** कहियेहै ॥

॥ १९९ ॥ अथवा अधिष्ठानसैं विषमसत्तावाले अवभासकूं **भ्रम** औ **अध्यास** कहैहैं । व्याकरणरीतिसैं अध्यासपदके औ अवभासपदके विषय औ ज्ञान, दोनूं वाच्य हैं ॥ यातैं—

॥ २०० ॥ अर्थाध्यास औ ज्ञानाध्यास भेदतैं अध्यास दोप्रकारका है ॥

अर्थाध्यास अनेकप्रकारका है ॥

१ कहुं केवलसंबंधमात्रका अध्यास है ।

२ कहुं संबंधविशिष्टसंबंधीका अध्यास है ।

३ कहुं केवलधर्मका अध्यास है ।

४ कहुं धर्मविशिष्टधर्मीका अध्यास है ।

५ कहुं अन्योन्याध्यास है ।

६ कहुं अन्यतराध्यास है ॥

अन्यतराध्यासवी दोप्रकारका है

(१) एक आत्मामैं अनात्मअध्यास है ।

(२) दूसरा अनात्मामैं आत्माध्यास है ॥

इसरीतिसैं अर्थाध्यास अनेकप्रकारका है । उक्तलक्षणका सर्वत्र समन्वय है ॥

॥ २०१ ॥ तथाहि मुख्यसिद्धांतमैं तौ सकलअध्यासका अधिष्ठान चेतन है । रज्जुमैं सर्प प्रतीत होवै तहां बी इदमाकारवृत्त्यवच्छिन्न-चेतनसैं अभिन्न रज्जुअवच्छिन्नचेतनही सर्पका अधिष्ठान है । रज्जु अधिष्ठान नहीं । यह अर्थ विचारसागरमैं स्पष्ट है ॥ तहां–

१ चेतनकी परमार्थसत्ता है ।

२ अथवा ताकी उपाधि रज्जु व्यावहारिक होनैतैं रज्जुअवच्छिन्नचेतनकी व्याव-हारिकसत्ता है ॥

दोनूंप्रकारसैं सर्प औ ताके ज्ञानकी प्राति-भासिकसत्ता होनैतैं अधिष्ठानकी सत्तासैं विषम-सत्तावाला अवभास सर्प औ ताका ज्ञान है । यातैं दोनूंकूं **अध्यास** औ **अवभास** कहैहैं ॥

॥ २०२ ॥ सत्ताके तीन भेद हैं ॥ १ एक प्रातिभासिक है । २ दूसरी व्यावहारिक है । औ ३ तीसरी पारमार्थिक है ॥

१ जाका ब्रह्मज्ञानविना रज्जुआदिअवच्छि-न्नचेतनके ज्ञानतैं बाध होवै, ताकी **प्रतिभासिकसत्ता** है । ऐसै रज्जु-सर्पादिक हैं ॥ औ–

२ ब्रह्मज्ञानविना जाका बाध न होवै औ ब्रह्मज्ञान हुये जाकी अधिष्ठानसैं भिन्न-सत्तास्फूर्ति रहै नहीं, ताकी **व्याव-हारिकसत्ता** है । ऐसै अविद्या औ आकाशादिक हैं ॥ औ–

३ तीनकाल जाका बाध न होवै, ताकी **पारमार्थिकसत्ता** है । ऐसा चेतन है ॥

इसरीतिसैं सर्वअध्यासोंमैं आरोपितसैं अधिष्ठानकी विषमसत्ता है ॥

॥ २०३ ॥ जा पदार्थमैं आधारता प्रतीत होवै सो **अधिष्ठान** कहियेहै । वह आधारता परमार्थसैं होवै वा आरोपित होवै । ताकी परमार्थतामैं आग्रह या प्रसंगमैं नहीं । काहेतैं ? जैसैं आत्मामैं अनात्माका अध्यास है, तैसैं अनात्मामैं आत्माका अध्यास है । औ अनात्मामैं परमार्थसैं आत्माकी आधारता है नहीं किंतु आरोपितआधारता है । यातैं आधारमात्रकूं या प्रसंगमैं **अधिष्ठान** कहैहैं ॥

॥ २०४ ॥ यद्यपि आत्माका अधिष्ठान अनात्मा है, या कहनैसैं आत्मा बी आरोपित होनैतैं कल्पित होवैगा ।

॥ २०५ ॥ तथापि भाष्यकारनै शारीरकके आरंभमैं आत्माअनात्माका अन्योन्याध्यास कह्याहै । यातैं अनात्मामैं आत्माके अध्यासका निषेध तौ बनै नहीं ॥

परस्परअध्यासकूं **अन्योन्याध्यास** कहैहैं । यातैं अनात्मामैं आत्माध्यास मानिके उक्तशंका का समाधान कह्याचाहिये । **सो समाधान इसरीतिसैं है**:–अध्यास दो प्रकारका होवैहै । १ एक तौ स्वरूपाध्यास होवैहै । औ २ दूसरा संसर्गाध्यास होवैहै ॥

१ जा पदार्थका स्वरूप अनिर्वचनीय उपजै, ताकूं **स्वरूपाध्यास** कहैहैं । जैसैं–

(१) शुक्तिमैं रजतका स्वरूपाध्यास है ।

(२) आत्मामैं अहंकारादिकअनात्माका स्वरूपाध्यास है ॥

२ तैसैं जा पदार्थका स्वरूप तौ व्यावहारिक वा पारमार्थिक प्रथम सिद्ध होवै । औ

अनिर्वचनीयसंबंध उपजै, सो संसर्गाध्यास कहियेहै ॥ जैसैं मुखमैं दर्पणका कोई संबंध है नहीं औ दोनूं पदार्थ व्यावहारिक हैं । तहां दर्पणमैं मुखका संबंध प्रतीत होवैहै । यातैं अनिर्वचनीयसंबंध उपजैहै ॥ इसरीतिसैं अनेकस्थानोंमैं संबंधी तौ व्यावहारिक हैं ॥ तिनके संबंध औ संबंधनके ज्ञान अनिर्वचनीय उपजैहैं । तिनकूं संसर्गाध्यास कहैहैं ॥

॥ २०६ ॥ तैसैं चेतनका अहंकारमैं अध्यास नहीं । किंतु चेतन तौ पारमार्थिक है । ताके संबंधका अहंकारमैं अध्यास है । आत्मता चेतनमैं है औ अहंकारमैं प्रतीत होवैहै । यातैं आत्माका तादात्म्य चेतनमैं है औ अहंकारमैं प्रतीत होवैहै । यातैं आत्मचेतनका तादात्म्यसंबंध अहंकारमैं अनिर्वचनीय है ॥

अथवा आत्मवृत्तितादात्म्यका अहंकारमैं अनिर्वचनीयसंबंध है । यातैं चेतन कल्पित नहीं । किंतु चेतनका अहंकारमैं तादात्म्यसंबंध अथवा आत्मचेतनके तादात्म्यका संबंध कल्पित है ॥

॥ २०७ ॥ इसरीतिसैं—

१ जहां पारमार्थिक पदार्थका अभाव हुया तिसकी जहां प्रतीति होवै, तहां पारमार्थिक पदार्थका व्यावहारिकपदार्थमैं अनिर्वचनीय संबंध उपजैहै औ ताका अनिर्वचनीयही ज्ञान उपजैहै ॥ औ—

२ व्यावहारिक पदार्थका अभाव हुया जहां प्रतीति होवै, तहां अनिर्वचनीयही संबंधी उपजैहै औ संबंधीका अनिर्वचनीयज्ञान उपजैहै । औ कहुं संबंधमात्र औ संबंधका अनिर्वचनीयज्ञान उपजैहै ॥

सारेही अधिष्ठानसैं अध्यस्तकी विषमसत्ताही अनिर्वचनीयसत्ता है ॥

आत्माका अनात्मामैं अध्यास होवै, तहां बी अधिष्ठानअनात्मा व्यावहारिक है ॥ औ अध्यस्त आत्मा नहीं । किंतु आत्माका संबंध अनात्मामैं अध्यस्त है । यातैं अनिर्वचनीय है ॥

सत्‌असत्‌सैं विलक्षणकूं अनिर्वचनीय कहैहैं ॥

या प्रसंगमैं—

॥ ३१ ॥ प्रसंगप्राप्तशंकासमाधानआदिकअर्थका कथन ॥ २०८—२१९ ॥

॥ अथ चारीशंका ॥

॥ २०८ ॥ १ **प्रथम शंका यह है:—**

"समग्रप्रपंचका अधिष्ठान साक्षी है" यह कह्या ।

सो संभवै नहीं । काहेतें ? जिस अधिष्ठानमैं जो आरोपित होवै तिस अधिष्ठानसैं सो संबद्ध प्रतीत होवैहै ॥ जैसैं शुक्तिमैं आरोपित रजत है सो "इदं रजतं" इसरीतिसैं शुक्तिकी इदंतासैं संबद्ध प्रतीत होवैहै ॥ आत्मामैं कर्तृत्वादिक आरोपित हैं, सो "अहंकर्त्ता" इसरीतिसैं संबद्ध प्रतीत होवैहै ॥ तैसैं स्वप्नके गजादिक साक्षीमैं आरोपित होवैं तौ "अहं गजः" "मयि गजः" इसरीतिसैं साक्षीसैं संबद्ध गजादिक प्रतीत हुये चाहिये ॥ औ—

॥ २०९ ॥ २ **दूसरी शंका यह है:—**

"शुक्तिमैं रजताभाव व्यावहारिक है औ पारमार्थिक है" यह पूर्व कह्या ।

सो संभवै नहीं । काहेतें ? अद्वैतवादमैं एकचेतनही पारमार्थिक है । तासैं भिन्नकूं पारमार्थिक मानैं तौ अद्वैतवादकी हानि होवैगी ॥ पारमार्थिकरजत है नहीं । यातैं पारमार्थिकरजतका अभाव है । यह कहना तौ संभवैहै औ पारमार्थिकअभाव है यह कहना संभवै नहीं ॥

॥ २१० ॥ ३ **तृतीय शंका यह है:—**

"शुक्तिमैं अनिर्वचनीयरजतके उत्पत्तिनाश होवैहैं" यह पूर्व कह्या ।

सो संभवै नहीं। काहेतैं? जो रजतके उत्पत्तिनाश होवैं तौ घटके उत्पत्तिनाशकी न्यांई रजतके उत्पत्तिनाश प्रतीत हुयेचाहिये ॥

(१) जैसैं घटकी उत्पत्ति होवै तब "घट उपजैहै" इसरीतिसैं घटकी उत्पत्ति प्रतीत होवैहै। औ—

(२) घटका नाश होवैहै, तब "घटका नाश हुया" इसरीतिसैं घटका नाश प्रतीत होवैहै ॥

(१) तैसैं शुक्तिमैं रजतकी उत्पत्ति होवै तब "रजतकी उत्पत्ति हुई" इसरीतिसैं उत्पत्ति प्रतीत हुईचाहिये ॥ औ—

(२) रजतका ज्ञानसैं नाश होवै तब "रजतका शुक्तिदेशमैं नाश हुवा" इसरीतिसैं नाश प्रतीत हुयाचाहिये ॥ औ

शुक्तिमैं केवलरजत प्रतीत होवैहै। ताके उत्पत्तिनाश प्रतीत होवैं नहीं। यातैं शास्त्रांतरकी रीतिसैं अन्यथाख्यातिआदिकही समीचीन हैं। अनिर्वचनीयख्याति संभवै नहीं ॥

॥ २११ ॥ ४ चतुर्थ शंका यह है:—

"सत्असत्सैं विलक्षण अनिर्वचनीयरजतादिक उपजैहैं" यह पूर्व कह्या।

सो सर्वथा असंगत है ॥

(१) सत्सैं विलक्षण असत् होवैहै। औ

(२) असत्सैं विलक्षण सत् होवैहै ॥

(१) "सत्सैं विलक्षण तौ है औ असत् नहीं" यह कथन विरुद्ध है।

(२) तैसैं "असत्सैं विलक्षण है औ सत् नहीं" यह कथन बी विरुद्ध है।

च्यारिशंकाके क्रमतैं ये समाधान हैं:—

॥ २१२ ॥ १ प्रथमशंकाका समाधानः—

"साक्षीमैं स्वप्नअध्यास होवै तौ 'अहं गजः' 'मयि गजः' ऐसी प्रतीत हुईचाहिये" या शंकाका—

यह समाधान है:—पूर्व अनुभवजनितसंस्कारसैं अध्यास होवैहै ॥ जैसा पूर्वअनुभव होवैहै तैसाही संस्कार होवैहै औ संस्कारके समान अध्यास होवैहै ॥

सर्वअध्यासोंका उपादानकारण अविद्या तौ समान है। परंतु निमित्तकारण पूर्वानुभवजन्य संस्कार है, सो विलक्षण है ॥ जैसा अनुभवजन्यसंस्कार होवै तैसाही अविद्याका परिणाम होवै है ॥

(१) जिसपदार्थकी अहमाकार ज्ञानजन्यसंस्कारसहित अविद्या होवै, तिस पदार्थका अहमाकारअविद्याका परिणामरूप अध्यास होवैहै ॥

(२) जिसकी ममताकार अनुभवजन्यसंस्कारसहित अविद्या होवै, तिस पदार्थका ममताकारअविद्याका परिणामरूप अध्यास होवैहै ॥

(३) जिस पदार्थका इदमाकार अनुभवजन्यसंस्कारसहित अविद्या होवै, तिसपदार्थका इदमाकारअविद्याका परिणामरूप अध्यास होवैहै ॥

स्वप्नके गजादिकनका पूर्वअनुभव इदमाकारही हुयाहै। अहमाकारादिकअनुभव हुया नहीं। यातैं अनुभवजन्यसंस्कार बी गजादिगोचर इदमाकारही होवैहै ॥ यातैं "अयं गजः" ऐसी प्रतीति होवैहै। "मयि गजः" "अहं गजः" ऐसी प्रतीति होवैं नहीं ॥

संस्कार अनुमेय है। कार्यके अनुकूल संस्कारकी अनुमिति होवैहै। संस्कारजनकपूर्वअनुभव बी अध्यासरूप है। ताका जनक संस्कार बी इदमाकारही होवैहै ॥ औ अध्यासप्रवाह अनादि है। यातैं प्रथमअनुभवकी

इदमाकारतामैं कोई हेतु नहीं। यह शंका संभवै नहीं। काहेतैं? अनादिपक्षमैं कोई अनुभव प्रथम नहीं। पूर्वपूर्वसैं उत्तर सारे अनुभव हैं ॥

॥२१३॥ २ द्वितीयशंकाका समाधानः-

"अभावकूं पारमार्थिक मानैं तौ अद्वैतकी हानि होवैगी" या द्वितीयशंकाका—

यह समाधान है:—सकलपदार्थ सिद्धांतमैं कल्पित हैं, तिनका अभाव पारमार्थिक है, सो ब्रह्मरूप है। यह भाष्यकारकूं संमत है। यामैं विशेषउक्ति आगे चतुर्दशरत्नविषे कहैंगे ॥ इसकारणतैं अद्वैतकी हानि नहीं ॥

॥ २१४॥ ३ तृतीयशंकाका समाधानः-

"शुक्तिमैं रजतकी उत्पत्ति मानैं तौ उत्पत्तिकी प्रतीति हुईचाहिये" याका—

यह समाधान है:—शुक्तिमैं तादात्म्यसंबंधसैं रजत अध्यस्त है औ शुक्तिकी इदंताका संबंध रजतमैं अध्यस्त है। यातैं "इदं रजतं" इसरीतिसैं रजत प्रतीत होवैहै ॥ जैसैं शुक्तिके इदंताका संबंध रजतमैं अध्यस्त है, तैसैं शुक्तिमैं प्राक्सिद्धत्वधर्म है ॥ रजतप्रतीतिकालतैं प्रथमसिद्धकूं प्राक्सिद्ध कहैहैं ॥ रजतप्रतीतिकालतैं प्रथमसिद्ध शुक्ति है ॥ इसरीतिसैं शुक्तिमैं प्राक्सिद्धत्वधर्म है। ताके संबंधका अध्यास बी रजतमैं होवैहै ॥ इसीवास्तै "इदानीं रजतं" यह प्रतीति नहीं होवैहै ॥ "प्राग्जातं रजतं पश्यामि" यह प्रतीति होवैहै ॥ या प्रतीतिका विषय प्राग्जातत्व है। सो रजतमैं है नहीं। किंतु रजतमैं "इदानींजातत्व" है। औ "प्राग्जातत्व" रजतमैं प्रतीत होवैहै ॥

तहां रजतमैं अनिर्वचनीयप्राग्जातत्वकी उत्पत्ति मानैं तौ गौरव होवैहै ॥ शुक्तिके प्राग्जातत्वकी रजतमैं प्रतीति मानैं तौ अन्यथाख्याति माननी होवैहै औ ऐसे स्थानमैं अन्यथाख्यातिकूं मानै बी हैं। तथापि शुक्तिके प्राक्सिद्धत्वधर्मका अनिर्वचनीयसंबंध रजतमैं उपजैहै। यह पक्ष समीचीन है ॥

इसरीतिसैं शुक्तिके प्राक्सिद्धत्वके संबंधकी प्रतीतिसैं उत्पत्तिप्रतीतिका प्रतिबंध होवैहै। काहेतैं? प्राक्सिद्धता औ वर्त्तमानउत्पत्ति, दोनूं परस्परविरोधि हैं ॥ जहां प्राक्सिद्धता होवै तहां अतीतउत्पत्ति होवैहै। वर्त्तमानउत्पत्ति होवै तहां प्राक्सिद्धता होवै नहीं ॥

इसरीतिसैं शुक्तिवृत्तिप्राक्सिद्धत्वके संबंधकी प्रतीतिसैं उत्पत्तिप्रतीतिका प्रतिबंध होनैतैं रजतकी उत्पत्ति हुये बी उत्पत्तिकी प्रतीति होवै नहीं ॥ औ—

जो कह्या "रजतका नाश होवै तौ ताकी प्रतीति हुईचाहिये" ताका—

यह समाधान है:— अधिष्ठानका ज्ञान होवै तब रजतका नाश होवैहै औ अधिष्ठानज्ञानतैं रजतका बाधनिश्चय होवैहै ॥ शुक्तिमैं कालत्रयमैं रजत नहीं। इस निश्चयकूं बाध कहैहैं ॥ ऐसा निश्चय नाशप्रतीतिका विरोधि है। काहेतैं? नाशमैं प्रतियोगी कारण होवैहै औ बाधसैं प्रतियोगीका सर्वदा अभाव भासैहै॥ जाका "सर्वदा अभाव है" ऐसा ज्ञान होवै, ताकी नाशबुद्धि संभवै नहीं ॥

किंवा जैसा घटादिकनका मुद्गरादिकनसैं चूर्णीभावरूप नाश होवैहै, तैसा कल्पितका नाश होवै नहीं। किंतु अधिष्ठानके ज्ञानतैं अज्ञानरूप उपादानसहित कल्पितकी निवृत्ति होवैहै॥ अधिष्ठानमात्रका अवशेषही अज्ञानसहित कल्पितकी निवृत्ति होवैहै ॥ सो अधिष्ठान शुक्ति है। ताका अवशेषरूप रजतका नाश अनुभवसिद्ध है। यातैं रजतके नाशकी प्रतीति होवै नहीं। यह कथन साहसतैं है ॥

॥२१५॥ ४ चतुर्थशंकाका समाधानः—

"सत् असत्सैं विलक्षण कथन विरुद्ध है" या चतुर्थशंकाका—

यह समाधान है:– जो स्वरूपरहितकूं सद्विलक्षण कहैं औ विद्यमानस्वरूपकूं असद्विलक्षण कहैं तौ विरोध होवै। काहेतैं? एकही पदार्थमैं स्वरूपराहित्य औ स्वरूपसाहित्य नहीं। यातैं सदसद्विलक्षणका उक्त अर्थ नहीं। किंतु—

१ कालत्रयमैं जाका बाध नहीं होवै ताकूं सत् कहैहैं ॥
२ जाका बाध होवै सो सद्विलक्षण कहियेहै ॥
३ शशशृंगवंध्यापुत्रकी न्यांई स्वरूपहीनकूं असत् कहैहैं।
४ तासैं विलक्षण स्वरूपवान् होवैहै ॥ इसरीतिसैं—

१ बाधके योग्य स्वरूपवाला सदसद्विलक्षणशब्दका अर्थ है ॥
२ सद्विलक्षणशब्दका बाधयोग्य अर्थ है।
३ स्वरूपवाला इतना असद्विलक्षणशब्दका अर्थ है ॥

इसरीतिसैं जहां भ्रमज्ञान है तहां सारे अनिर्वचनीयपदार्थकी उत्पत्ति होवैहै ॥

॥ २१६ ॥ कहुं संबंधीकी उत्पत्ति होवैहै॥ जैसैं शुक्तिमैं रजतकी उत्पत्ति है औ रजतमैं शुक्तिवृत्तितादात्म्यके संबंधकी उत्पत्ति होवैहै। शुक्तिवृत्तितादात्म्यकी रजतमैं अन्यथाख्याति नहीं। तैसैं शुक्तिमैं प्राक्सिद्धत्वधर्म है। ताके अनिर्वचनीयसंबंधकी रजतमैं उत्पत्ति होवैहै। ताकी बी अन्यथाख्याति नहीं ॥ इसरीतिसैं

१ अन्योन्याध्यासका बी यह उदाहरण है। औ—
२ संबंधाध्यासका यह उदाहरण है। संबंधी अध्यासका बी यह उदाहरण है। औ—
१ अनिर्वचनीयवस्तुकी प्रतीतिकूं ज्ञानाध्यास कहैहैं ॥ औ—
२ ज्ञानके अनिर्वचनीयविषयकूं अर्थाध्यास कहैहैं ॥

यातैं—

१ ज्ञानाध्यास अर्थाध्यासका बी यह उदाहरण है। औ—
२ रजतत्वधर्मविशिष्टरजतका शुक्तिमैं अध्यास है। यातैं धर्मीअध्यासका बी यह उहाहरण है ॥

॥ २१७ ॥ जहां अन्योन्याध्यास होवै, तहां दोनूंका परस्पर स्वरूपमैं अध्यास नहीं होवैहै। किंतु आरोपितका स्वरूपसैं अध्यास होवैहै। औ सत्यवस्तुका धर्म अथवा संबंध अध्यस्त होवैहै ॥

संबंधाध्यास बी दोप्रकारका होवैहै:—

१ कहुं धर्मके संबंधका अध्यास होवैहै औ
२ कहुं केवल संबंधका अध्यास होवैहै ॥

(१) जैसैं उक्तउदाहरणमैं शुक्तिवृत्तिइदंतारूप धर्मके संबंधका रजतमैं अध्यास है ॥ औ—

(२) "रक्तः पटः" या स्थानमैं कुसुंभवृत्तिरक्तरूप धर्मके संबंधका पटमैं अध्यास है। औ—

(३) दर्पणमैं मुखके संबंधका अध्यास होवैहै ॥

२ (-१) अंतःकरणका आत्मामैं स्वरूपसैं अध्यास है ॥ औ—

(२) अंतःकरणमैं आत्माका स्वरूपसैं अध्यास नहीं। किंतु आत्मसंबंधका अध्यास होनैतैं आत्माका संसर्गाध्यास है। ज्ञानस्वरूप आत्मा है। अंतःकरण नहीं ॥ औ ज्ञानका संबंध अंतःकरणमैं प्रतीत होवैहै। यातैं आत्माके संबंधका अंतःकरणमैं अध्यास है ॥ तैसैं "घटः स्फुरति" "पटः स्फुरति" इसरीतिसैं स्फुरण-

संबंध सर्वपदार्थनमें प्रतीत होवैहै ॥ या आत्म-संबंधका निखिलपदार्थनमें अध्यास है ॥

॥ २१८ ॥ आत्मामें काणत्वादिक इंद्रियधर्म प्रतीत होवैहैं । यातें काणत्वादिक धर्मनका आत्मामें अध्यास होवैहै । औ इंद्रियनका आत्मामें तादात्म्यअध्यास नहीं है । काहेतें ? "अहं काणः" ऐसी प्रतीति होवैहै औ "अहं-नेत्रं" ऐसी प्रतीति होवै नहीं । यातें नेत्रधर्म काणत्वका आत्मामें अध्यास है । नेत्रका अध्यास नहीं ॥

यद्यपि नेत्रादिनिखिलप्रपंचका अध्यास आत्मामें है, तथापि ब्रह्मचेतनमें समग्रप्रपंचका अध्यास है । "त्वं" पदार्थमें निखिलप्रपंचका अध्यास नहीं । अविद्याका ऐसा अद्भुतमहिमा है । एकही पदार्थका एकधर्मविशिष्टका अध्यास होवैहै । अपरधर्मविशिष्टका अध्यास होवै नहीं ॥ जैसें ब्राह्मणत्वादिधर्मविशिष्ट-शरीरका आत्मामें तादात्म्याध्यास होवैहै । शरीरत्वविशिष्टशरीरका अध्यास होवै नहीं । इसीवास्ते विवेकी बी "ब्राह्मणोऽहं" "मनु-ष्योऽहं" ऐसा व्यवहार करैहै ॥ औ "शरीर-महं" ऐसा व्यवहार विवेकीका होवै नहीं ॥ यातें अविद्याका अद्भुतमहिमा होनैतें इंद्रियके अध्यासविना आत्मामें काणत्वादिक धर्मनका अध्यास संभवैहै । यह धर्माध्यासका उदाहरण है ॥

॥ २१९ ॥ उक्तरीतिसैं सकलभ्रममैं पूर्वउक्त दोनूं लक्षण संभवैहैं । परंतु १ परोक्ष औ २ अपरोक्ष भेदसैं भ्रम दोप्रकारका है ॥

१ अपरोक्षभ्रमके उदाहरण तौ कहे ॥ औ—

२ जहां वह्निशून्यदेशमैं महानसत्वरूप हेतुतैं वह्निका अनुमितिज्ञान होवैहै । वा विप्रलंभकके वाक्यसैं वह्निका शब्दभ्रम होवैहै । वे दोनूं परोक्षभ्रम हैं ॥ जहां परोक्षभ्रम होवै, तहां नैयायिकादिक जिस रीतिसैं अन्यथाख्याति आदिकनसैं निर्वाह करैहैं ॥ तासैं विलक्षण कह-नैमैं अद्वैतवादीका आग्रह नहीं है ॥

अपरोक्षअध्यासविषैही पारिभाषिकअध्यास विलक्षण मानैहैं । काहेतें ? कर्तृत्वादिक अनर्थभ्रम अपरोक्ष है । ताके स्वरूपमैं ज्ञाननिवर्त्यताके अर्थ अध्यासका निरूपण है । यातें अपरोक्ष-भ्रमकूंही दृष्टांतताके अर्थ अध्यासता प्रति-पादनमैं आग्रह है । परोक्षभ्रमविषै शास्त्रांतरसैं विलक्षणता कहनैमैं प्रयोजन नहीं ॥ औ अपरोक्षभ्रमविषै उक्तरीतिसैं लक्षणका समन्वय होवैहै ॥

॥ २२ ॥ सिद्धांतमैं स्वीकृत अनिर्वच-नीयख्यातिका निर्धार ॥ २२०—२२२ ॥

॥ २२० ॥ सिद्धांतमैं अनिर्वचनीयख्याति है । ताकी यह रीति है:—जहां रज्जुआदिकनमैं सर्पादिकभ्रम होवै । तहां—

१ प्रथमक्षणमैं तौ सर्पादिकसंस्कारसहित पुरुषके तिमिरादिदोषसहित नेत्रका रज्जु-आदिकसैं संबंध होवै, तब रज्जुका विशेषधर्म रज्जुत्व भासै नहीं । औ रज्जुमैं जो मुंजरूप अवयव हैं सो भासैं नहीं । तब—

२ द्वितीयक्षणविषै रज्जुमैं सामान्यधर्म इदंता भासैहै ॥

(१) वर्तमानकाल औ पुरोदेशका संबंध इदंता कहियेहै । ताहीकूं सामान्य-अंश औ आधार बी कहैहैं ॥ औ—

(२) मुंजरूप त्रिवलयाकार रज्जुत्वधर्म-विशिष्टरज्जु । यह विशेषअंश कहिये है । ताहीकूं अधिष्ठान बी कहैहैं ॥

सो अधिष्ठानका सामान्यज्ञान बी अध्यास-का हेतु है । सो सामान्यज्ञान दोषसहित नेत्ररूप प्रमाणसैं उपजैहै । यातें प्रमा है । यातें

नेत्रद्वारा अंतःकरण रज्जुकूं प्राप्त होयके इदमाकारपरिणामकूं प्राप्त होवैहै ॥ तदनंतर—

३ तृतीयक्षणमैं तिस दोषजन्य इदमाकारवृत्तिउपहितचेतनस्थअविद्यामैं क्षोभ होवैहै ॥ उपादानकी कार्याभिमुखताकूं **क्षोभ** कहैहैं ॥ औ—

४ चतुर्थक्षणमैं तिस अविद्याका तमोगुणका अंश औ सत्वगुणका अंश दोनूं सर्पादिविषयाकार औ ज्ञानाकारपरिणामकूं प्राप्त होवैहैं । सो सर्पादि औ ताका ज्ञान अविद्याके परिणाम औ चेतनके विवर्त्त हैं ॥ यातैं एक सर्पादिक औ ज्ञानरूप धर्मीमैं दोधर्म रहैहैं॥ जैसैं एकही पुरुषरूप धर्मीमैं स्वपिताकी अपेक्षातैं पुत्रत्व औ पितामहकी अपेक्षातैं पौत्रत्व ये दोधर्म रहैहैं, तैसैं इहां सर्पसैं आदिलेके आकाशादिसकलप्रपंचमैं विकारी अविद्याकी अपेक्षातैं परिणामत्व औ रज्जुआदिउपहित वा मायाउपहितचेतनरूप अधिष्ठानकी अपेक्षातैं विवर्त्तत्व ये दोधर्म रहैहैं॥

(१) उपादानके समानसत्तावाला औ अन्यथास्वरूप **परिणाम** कहियेहै । जैसैं अपनै उपादान दुग्धके समानसत्तावाला कहिये व्यावहारिकसत्तावाला औ मिष्टत्व दुग्धतासैं आम्ल होनैतैं अन्यथा कहिये और स्वरूप दधि है । यातैं दुग्धका परिणाम है ॥ तैसैं उक्तप्रपंच बी अविद्याके समान प्रातिभासिक वा व्यावहारिकसत्तावाला औ अरूपअविद्यासैं रूपवाला होनैतैं अन्यथा कहिये और स्वरूप है। यातैं अविद्याका परिणाम है ॥ औ—

(२) अधिष्ठानसैं विषमसत्तावाला अन्यथास्वरूप **विवर्त्त** कहियेहै । जैसैं व्यावहारिक औ पारमार्थिकसत्तावाला रज्जुउपहित औ मायाउपहितचेतन है । तातैं विषम कहिये विलक्षण जो प्रातिभासिक औ व्यावहारिकसत्तावाला औ संसारदशामैं अबाधित उभयचेतनसैं बाधित होनैकरि अन्यथा कहिये और स्वरूप होनैतैं सर्पादिप्रपंच चेतनका विवर्त्त है ॥

॥ २२१ ॥ इसरीतिसैं सर्प दंड माला जलधारा औ पृथ्वीकी दरार इत्यादि दश पदार्थनमैंसैं जिसजिस संस्कारसहित पुरुषके दोषसहितनेत्रका रज्जुसैं संबंध होयके जाके इदमाकारवृत्ति होवै, ताकी वृत्तिउपहितचेतनमैं स्थित अविद्याका सो सो पदार्थ औ तिसतिसका ज्ञानरूप परिणाम साथिही होवैहै ॥ औ—

१ जहां एकरज्जुमैं सर्पादिकमैंसैं एकही पदार्थके संस्कारसहित दशपुरुषनके सदोषनेत्रका रज्जुसैं संबंध होयके जाके इदमाकारवृत्ति होवै, ताकी वृत्तिउपहितचेतनमैं स्थित अविद्याका सो सो पदार्थ औ तिसतिसका ज्ञानरूप परिणाम साथिही होवैहै ॥

२ औ जहां एकरज्जुमैं दशपुरुषनके सदोषनेत्रका रज्जुसैं संबंध होयके सर्प दंड मालाआदिक एकएकका तिन्हकूं भ्रम होवै। तहां जाकी वृत्तिउपहितचेतनमैं जो विषय उपज्याहै सो ताहीकूं प्रतीत होवैहै । अन्यकूं नहीं ॥

॥ २२२ ॥ इसरीतिसैं उक्त जो भ्रमज्ञान सो इंद्रियजन्य नहीं। किंतु अविद्याकी वृत्तिरूप है । परंतु जा वृत्तिउपहितचेतनमैं स्थित अविद्या का परिणाम भ्रम है, सो इदमाकारवृत्ति नेत्रसैं रज्जुआदिकविषयके संबंधतैं होवैहै । यातैं भ्रमज्ञानमैं इंद्रियजन्यताकी प्रतीति होनैतैं नैयायिकनकूं इंद्रियजन्यताकी भ्रांति होवैहै॥ औ कोई वेदांती बी ऐसैं अंगीकार करैहैं परंतु ताकी उक्ति, युक्ति औ अनुभवसैं विरुद्ध है । यातैं समीचीन नहीं ॥

इसरीतिसैं सिद्धांतमैं अंगीकरणीय अनिर्वचनीयख्यातिकी रीति संक्षेपतैं कही ॥

इति श्रीवृत्तिरत्नावल्यां अनिर्वचनीयख्यातिनिरूपणं नाम अष्टमं रत्नं समाप्तम् ॥ ८ ॥

॥ अथ नवमरत्नप्रारंभः ॥ ९ ॥

॥ २ ॥ अप्रमावृत्तिभेद सत्ख्यातिप्रदर्शनपूर्वक खंडन ॥ २२३–२३० ॥

॥३३॥ सिद्धांतसैं भिन्न सकलख्यातिनके नामसहित सत्ख्यातिवादके कथन-पूर्वक ताके निराकरणकी योग्यता

॥ २२३-२२५ ॥

॥ २२३ ॥ शुक्तिआदिकमैं रजतादिभ्रम होवै, तहां सिद्धांतपक्षसैं विना पांच मत हैं:–सत्ख्याति, असत्ख्याति, आत्मख्याति, अन्यथाख्याति, औ अख्याति, भ्रमके ये नाम कहेहैं । सर्वके मतमैं अन्यतम भ्रमका नाम प्रसिद्ध है । तिसतैं भिन्न भिन्न ताकूं अन्यतम कहेहैं ॥

॥ २२४ ॥ तिनमैं सत्ख्यातिवादीका यह सिद्धांत है:–शुक्तिके अवयवनके साथि रजतके अवयव सदा रहेहैं ॥ जैसैं शुक्तिके अवयव सत्य हैं तैसैंही रजतके अवयव हैं । मिथ्या नहीं ॥ जैसैं दोषसहित नेत्रसंबंधतैं सिद्धांतमैं अविद्याका परिणाम अनिर्वचनीयरजत उपजै है तैसैं दोषसहित नेत्रसंबंधतैं रजतावयवनसैं सत्यरजत उपजैहै ॥ अधिष्ठानज्ञानतैं जैसैं अनिर्वचनीयरजतकी निवृत्ति सिद्धांतमैं होवैहै । तैसैं शुक्तिज्ञानतैं सत्यरजतका अपनै अवयवमैं ध्वंस होवैहै ॥ यह सत्ख्यातिवादीका मत है ॥

॥ २२५ ॥ सो सत्ख्यातिवादीका मत निराकरणीय है । काहेतैं ? शुक्तिरजतदृष्टांतसैं प्रपंचके मिथ्यात्वकी अनुमिति होवैहै ॥ सत्ख्यातिवादमैं शुक्तिमैं रजत सत्य है । तिसकूं दृष्टांत धरिके प्रपंचमैं मिथ्यात्वसिद्धि होवै नहीं । यातैं यह पक्ष निराकरणीय है ॥

॥ ३४ ॥ सत्ख्यातिवादका खंडन ॥ २२६–२३० ॥

॥ २२६ ॥ या पक्षमैं यह दोष है:–शुक्तिज्ञानसैं अनंतर तीनकालमैं रजत नहीं है । इसरीतिसैं शुक्तिमैं त्रैकालिकरजताभाव प्रतीत होवैहै ॥ सिद्धांतमैं तौ अनिर्वचनीयरजत मध्यकालमैं होवैहै, औ व्यावहारिकरजतभाव त्रैकालिक है । सत्ख्यातिवादीके मतमैं व्यावहारिकरजत होवै, तिसकालमैं व्यावहारिकरजतभाव संभवै नहीं । यातैं त्रैकालिकरजताभावकी प्रतीतिसैं व्यावहारिकरजतकथन विरुद्ध है ॥ औ—

अनिर्वचनीयरजतकी उत्पत्तिमैं तौ प्रसिद्धरजतकी सामग्री चाहिये नहीं । दोषसहित अविद्यासैं ताकी उत्पत्ति संभवैहै । औ व्यावहारिकरजत तौ रजतकी प्रसिद्धसामग्रीविना संभवै नहीं । औ शुक्तिदेशमैं रजतकी प्रसिद्धसामग्री है नहीं । यातैं सत्यरजतकी उत्पत्ति शुक्तिदेशमैं संभवै नहीं ॥ औ—

॥ २२७ ॥ जो ऐसैं कहै:–शुक्तिदेशमैं रजतके अवयव हैं, सोई सत्यरजतकी सामग्री है ।

ताकूं यह पूछैहैं:– १ रजतावयवनका बी उद्भूतरूप है वा २ अनुद्भूतरूप है ?

१ उद्भूतरूप कहै तौ रजतावयवनका बी रजतकी उत्पत्तिसैं प्रथम प्रत्यक्ष हुया-चाहिये । औ—
२ अनुद्भूतरूप कहै तौ अनुद्भूतरूपवाले अवयवनतैं रजत बी अनुद्भूतरूपवाला होवैगा । यातैं रजतका प्रत्यक्ष नहीं होवैगा ॥ औ—

॥ २२८ ॥ जहां एक रज्जुमैं दशपुरुषनकूं भिन्नभिन्नपदार्थनका भ्रम होवै । किसीकूं दंडका,

किसीकूं मालाका, किसीकूं सर्पका, तथा जलधाराका इत्यादिकपदार्थनके अवयव स्वल्प-रज्जुदेशमैं संभवैंनहीं। काहेतैं ? मूर्तद्रव्य स्थानका निरोध करैहैं ॥ औ सिद्धांतमैं तौ अनिर्वचनीय-दंडादिक हैं। सो व्यावहारिकदेशका निरोध करैं नहीं । औ तिन दंडादिकनमैं स्थान-निरोधादिकफल नहीं मानैं तौ दंडादिकनकूं सत् कहना विरुद्ध है औ निष्फल है ॥

॥ २२९ ॥ दंडादिकनकी प्रतीतिमात्र होवैहै । अन्यकार्य तिनतैं होवै नहीं । ऐसा कहैं तौ अनिर्वचनीयवाद सिद्ध होवैहै ॥ औ—

॥ २३० ॥ भ्रमस्थलमैं सत्पदार्थकी उत्पत्ति मानैं तौ अंगारसहित ऊषरभूमिमैं जलभ्रम होवै । तहां जलसैं अंगार शांत हुयेचाहिये ॥ औ तूलके ऊपरि धरे गुंजापुंजमैं अग्निभ्रम होवै । तहां तूलका दाह हुयाचाहिये । यातैं अवयव तौ स्थाननिरोधादिकके हेतु नहीं। औ अवयवीसैं कोई कार्य होवै नहीं। ऐसैं पदार्थकूं सत् कहना सुनिके बुद्धिमानोंकूं हास्य होवैहै । यातैं सर्वथा निर्युक्तिक होनैतैं यह पक्ष असंभवित है ॥

इति श्रीवृत्तिरत्नावल्यां सत्ख्यातिप्रदर्शन-पूर्वकखंडनं नाम नवमं रत्नं समाप्तम् ॥ ९ ॥

॥ अथ दशमरत्नप्रारंभ ॥ १० ॥

॥ ३ ॥ अप्रमावृत्तिभेद असत्ख्यातिप्रदर्शनपूर्वक खंडन ॥ २३१–२३४ ॥

॥ ३५ ॥ द्विविधअसतख्यातिवादके कथनपूर्वक असतख्यातिवादीके प्रति प्रश्न ॥ २३१--२३२ ॥

॥ २३१ ॥ असतख्याति दोप्रकारकी मानैंहैं ॥

१ एक तौ शुक्तिअधिष्ठानमैं असतरजतकी प्रतीतिरूप है । औ—

२ दूसरी असतरजतत्वसमवायकी प्रतीति-रूप है ।

सो दोनूं असंगत हैं । काहेतैं ?

॥ २३२ ॥ जो असतख्याति मानैं ताकूं यह पूछैहैं:—'असतख्याति' या वाक्यमैं—

१ निःस्वरूप असत्शब्दका अर्थ है ?

२ अथवा असत्शब्दका अर्थ अबाध्य-विलक्षण है ?

॥ ३६ ॥ असतख्यातिवादका खंडन ॥ २३३-२३४ ॥

॥ २३३ ॥ १ जो ऐसैं कहै:—असत्-शब्दका अर्थ निःस्वरूप है ॥

तौ " मुखे मे जिह्वा नास्ति " इसवाक्यकी न्यांई असतख्यातिवादका अंगीकार निर्लज्ज-का है । काहेतैं ? सत्तास्फूर्तिरहितकूं निःस्वरूप कहैहैं। यातैं "सत्तास्फूर्तिशून्य थी प्रतीत होवैहै।" यह असतख्यातिवाद कहै । तैसैं सिद्ध होवैहै ॥ सत्तास्फूर्तिशून्यकी प्रतीति कहना विरुद्ध है ॥ यातैं—

॥ २३४ ॥ २ अबाध्यविलक्षण असत्शब्दका अर्थ कहैं तौ अबाध्यविलक्षण बाध्य होवैहै ॥ बाधके योग्यकूं बाध्य कहैहैं ॥ इसरीतिसैं बाधके योग्यकी प्रतीति असतख्याति कहियेहै । यह सिद्ध हुया । सोई सिद्धांतीका मत है । काहेतैं ? अनिर्वचनीयख्याति सिद्धांतमैं है औ बाधयोग्यही अनिर्वचनीय होवैहै ॥ इसरीतिसैं सिद्धांतसैं विलक्षण असतख्यातिवाद है । यह कहना संभवै नहीं ॥

इति श्रीवृत्तिरत्नावल्यां असत्ख्यातिप्रदर्शन-पूर्वकखंडनं नाम दशमं रत्नं समाप्तम् ॥ १० ॥

॥ अथ एकादशरत्नप्रारंभः॥११॥

॥ ४ ॥ अप्रमावृत्तिभेद आत्मख्यातिप्रदर्शन-पूर्वक खंडन ॥ २३५—२४० ॥

॥ ३७ ॥ आत्मख्यातिवादका अनुवाद-पूर्वक खंडन ॥ २३५—२३८ ॥

॥ २३५ ॥ तैसें आत्मख्यातिवाद वी असंगत है। काहेतें? विज्ञानवादीके मतमैं आत्मख्याति है। क्षणिकविज्ञानरूप बुद्धिकूं विज्ञानवादी आत्मा कहैहैं ॥ तिसके मतमैं बाह्यरजत नहीं है। किंतु विज्ञानरूप आत्माका धर्म रजत आंतर सत्य है। ताकी दोषके बलतें बाह्यदेशमैं प्रतीति भ्रम है। यातें रजतज्ञानमैं रजतगोचरत्वअंश भ्रम नहीं। किंतु रजतका बाह्यदेशस्थत्वप्रतीतिअंशमैं भ्रम है ॥ जो रजतकी बाह्यदेशमैं उत्पत्ति मानैं तौ बाह्यदेशमैं सत्यरजत तौ संभवै नहीं। अनिर्वचनीय मानना होवैगा। सो अनिर्वचनीयवस्तु लोकमैं अप्रसिद्ध है। यातें अप्रसिद्धकल्पनादोष होवैगा। यातें आंतररजत उपजैहै। ऐसें मानें तौ कोई दोष नहीं ॥ यह विज्ञानवादीका अभिप्राय है ॥

॥ २३६ ॥ यह मत समीचीन नहीं ॥ 'रजत आंतर है' ऐसा अनुभव किसीकूं नहीं ॥ भ्रमस्थलमैं वा यथार्थस्थलमैं रजतादिकनकी आंतरता किसीप्रमाणसें सिद्ध नहीं ॥ सुखादिक आंतर है औ रजतादिक बाह्य है। यह अनुभव सर्वकूं होवैहै ॥ रजतकूं आंतर मानैं तौ अनुभवसैं विरोध होवैहै। औ आंतरताका साधक प्रमाण युक्ति है नहीं। यातें रजतादिकपदार्थ स्वप्नविना जागरणमैं आंतर अप्रसिद्ध हैं ॥ बाह्यस्वभावकूं भ्रमस्थलमैं आंतरकल्पना अप्रसिद्धकल्पना है। औ आंतर होवै तौ "मयि रजतं । अहं रजतं" ऐसी प्रतीति हुईचाहिये ॥ "इदं रजतं" इसरीतिसैं रजतकी बाह्यप्रतीति नहीं हुईचाहिये। यातें आंतररजतका असंभव है। ताकी बाह्यदेशमैं प्रतीति बनै नहीं ॥ किंतु—

॥ २३७ ॥ बाह्यदेशमैंही अनिर्वचनीयरजत उपजैहै। यह सिद्धांतकी रीतिही समीचीन है ॥ औ अनिर्वचनीयवस्तुकी अप्रसिद्धकल्पनादोष कह्या, सो वी अज्ञानसैं कह्याहै। काहेतें?—

॥ २३८ ॥ अद्वैतवादका यह मुख्यसिद्धांत है:—

१ चेतन सत्य है।

२ तासैं भिन्न सकल मिथ्या है ॥

अनिर्वचनीयकूं मिथ्या कहैहैं, यातें चेतनसैं भिन्नपदार्थकूं सत्यकथनमैंही अप्रसिद्धकल्पना है। चेतनसैं भिन्नपदार्थनमैं अनिर्वचनीयता तौ अतिप्रसिद्ध है ॥ युक्तिसैं विचार करैं तब किसी अनात्मपदार्थका स्वरूप सिद्ध होवै नहीं औ प्रतीति होवैहै। यातें सकलअनात्मपदार्थ अनिर्वचनीय हैं ॥ सिद्धांतमैं अनिर्वचनीयपदार्थ कोई सत्य नहीं। गंधर्वनगरकी न्यांई साराप्रपंच दृष्टनष्टस्वभाव है ॥

॥ ३८ ॥ अनिर्वचनीयख्यातिकी रीतिपूर्वक अद्वैतवादीकूं अनिर्वचनीयपदार्थकी प्रसिद्धि ॥ २३९—२४० ॥

॥ २३९ ॥ स्वप्नसैं जाग्रत्पदार्थमैं किंचिद्विलक्षणता नहीं, औ शुक्तिरजत प्रातिभासिक है। कांताकरादिकनमैं रजत व्यावहारिक है ॥

इसरीतिसैं अनात्मपदार्थनमैं मिथ्यात्वसत्यत्व विलक्षणता परस्पर कहीहै, सो स्थूलबुद्धिवालेके अद्वैतबोधमैं प्रवेशवास्ते अरुंधतीन्यायसैं कहीहै ॥ स्थूलबुद्धिपुरुषकूं प्रथमही मुख्यसिद्धांतकी रीति कहैं, तौ अद्भुतअर्थकूं सुनिके अनात्मसत्यत्वभावनावालापुरुष शास्त्रसैं विमुख होयके पुरुषार्थसैं भ्रष्ट होयजावै। इसवास्ते—

१-२ अनात्मपदार्थनकी व्यावहारिकप्रातिभासिकभेदसैं द्विविधसत्ता कही । औ-
३ चेतनकी पारमार्थिकसत्ता कही ॥

॥२४०॥ चेतनसैं प्रपंचकी न्यूनसत्ता बुद्धिमैं आरूढ हुये सकलअनात्मपदार्थनकूं स्वप्नादिदृष्टांतसैं प्रातिभासिक जानिके निषेधवाक्यनतैं सर्वअनात्मकूं सत्तास्फूर्तिशून्य जानिलेवै । इसवास्ते सत्ताभेद कह्याहै । औ अनात्मपदार्थनका परस्परसत्ताभेदमैं अद्वैतशास्त्रका तात्पर्य नहीं । यातैं अद्वैतवादीकूं अनिर्वचनीयपदार्थ अप्रसिद्ध है । यह कथन विरुद्ध है ॥ इसरीतिसैं आत्मख्यातिवादीका मत असंगत है ॥

इति श्रीवृत्तिरत्नावल्यां आत्मख्यातिपूर्वक खंडनं नाम एकादशं रत्नं समाप्तम् ॥ ११ ॥

॥ अथ द्वादशरत्नप्रारंभः ॥ १२ ॥

॥ ५ ॥ अप्रमावृत्तिभेद अन्यथाख्यातिप्रदर्शनपूर्वक खंडन ॥ २४१-२४२ ॥

॥ ३१ ॥ अन्यथाख्यातिवादका कथनपूर्वक खंडन ॥ २४१-२४२ ॥

॥ २४१ ॥ तैसैं नैयायिक अन्यथाख्याति मानैहैं । ताकी यह रीति है:-दोषसहित नेत्रका संयोग रज्जुसैं जब होवै, तब रज्जुत्वधर्मसैं नेत्रका संयुक्तसमवायसंबंध तौ है, परंतु दोषके बलतैं रज्जुत्व भासै नहीं । किंतु रज्जुमैं, सर्पत्व भासैहै । सो सर्पत्वका ज्ञान नेत्रजन्य है । तामैं पूर्वदृष्टसर्पका उद्बुद्धसंस्कार बी सहकारी है ॥ या मतमैं धर्मी जो सर्प, ताका अध्यास नहीं । किंतु सर्पत्वरूप धर्ममात्रका अध्यास है । यह नवीननैयायिकनका मत है ॥

॥ २४२ ॥ सो नवीननैयायिकनका मत समीचीन नहीं । काहेतैं ? नेत्रसैं अंतरायसहित सर्पका रज्जुमैं ज्ञान संभवै नहीं । जो रज्जुके समीप सर्प होवै तौ दोनूंसैं नेत्रका संयोग होयके सर्पवृत्तिसर्पत्वकी रज्जुमैं नेत्रजन्यभ्रमप्रतीति संभवै । औ जहां रज्जुके समीप सर्प नहीं, तहां रज्जुमैं सर्पत्वभ्रम नेत्रजन्य संभवै नहीं ॥ इहां जातैं सर्पव्यक्तिसैं नेत्रसंयोगके अभावतैं सर्पत्वसैं नेत्रसंयुक्तसमवायका अभाव है । यातैं सर्पत्वविशिष्टरज्जुका ज्ञान संभवै नहीं । इसरीतिसैं अन्यथाख्याति असंगत है ॥

इति श्रीवृत्तिरत्नावल्यां अन्यथाख्यातिप्रदर्शनपूर्वकखंडनं नाम द्वादशं रत्नं समाप्तम् ॥१२॥

॥ अथ त्रयोदशरत्नप्रारंभः ॥१३॥

॥ ६ ॥ अप्रमावृत्तिभेद अख्यातिप्रदर्शनपूर्वक खंडन ॥ २४३-२४८ ॥

॥ ४० ॥ अख्यातिवादका अनुवादपूर्वक खंडन ॥ २४३-२४४ ॥

॥ २४३ ॥ सांख्यप्रभाकरमतमैं अख्याति मानीहै, ताकी रीति यह है:-जहां शुक्तिस तथा रज्जुसैं दोषसहित नेत्रका संबंध होवै, तहां शुक्तिका तथा रज्जुका विशेषरूप भासै नहीं । किंतु सामान्यरूप इदंता भासैहै ॥ औ शुक्तिसैं नेत्रके संबंधजन्य ज्ञान हुये रजतके संस्कार उद्बुद्ध होयके शुक्तिके सामान्यज्ञानके उत्तरक्षणमैं रजतकी स्मृति होवैहै । तैसैं रज्जुके सामान्यज्ञानके उत्तरक्षणमैं सर्पकी स्मृति होवैहै॥ यद्यपि सकलस्मृतिज्ञानमैं पदार्थकी सत्ता बी भासैहै । तथापि दोषसहित नेत्रके संबंधतैं संस्कार उद्बुद्ध होवै । तहां दोषके माहात्म्यतैं तत्ताअंशका प्रमोष होवैहै । यातैं प्रमुष्टतत्ताकस्मृति होवैहै ॥ प्रमुष्ट कहिये लुप्त हुईहै तत्ता जिसकी, सो प्रमुष्टतत्ताकशब्दका अर्थ है ॥

इसरीतिसैं "इदं रजतं" "अयं सर्पः" इत्यादिकस्थलमें दोज्ञान हैं ॥

१ तहां शुक्तिका औ रज्जुका सामान्य-इदंरूपका प्रत्यक्षज्ञान यथार्थ है। औ—

२ रजतका तथा सर्पका स्मृतिज्ञान बी यथार्थ है।

इसरीतिसैं भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध है ॥

यद्यपि जा पदार्थमैं इष्टसाधनताका ज्ञान होवै तामैं प्रवृत्ति होवैहै औ जामैं अनिष्टसाधनताका ज्ञान होवै तासैं निवृत्ति होवैहै। या मतमैं शुक्तिमैं इष्टसाधनताज्ञान औ रज्जुमैं अनिष्टसाधनताका ज्ञान कहैं तौ भ्रमका अंगीकार होवै। यातैं इष्टसाधनताज्ञानके औ अनिष्टसाधनताज्ञानके अभावतैं शुक्तिमैं रजतार्थीकी प्रवृत्ति औ रज्जुमैं निवृत्ति नहीं हुईचाहिये। औ होवैहै यातैं भ्रमज्ञान अवश्यक है ॥

तथापि—

१ जा पदार्थमैं पुरुषकी प्रवृत्ति होवै ता पदार्थका सामान्यरूपतैं प्रत्यक्षज्ञान। औ—

२ इष्टपदार्थकी स्मृति। औ—

३ स्मृतिके विषयतैं पुरोवर्तिपदार्थका भेदज्ञानाभाव।

४ तैसैं स्मृतिज्ञानका पुरोवर्तिके ज्ञानतैं भेदज्ञानाभाव।

इतनी सामग्री प्रवृत्तिकी है ॥

रज्जुमैं सर्पज्ञानतैं जो निवृत्ति होवैहै, सो बी विमुखप्रवृत्तिही है। यातैं भ्रमज्ञानबिना प्रवृत्ति संभवैहै॥ यह अख्यातिवादीका अभिप्राय है॥ ज्ञानद्वयका विवेकाभाव औ उभयविषयका विवेकाभाव अख्यातिपदका पारिभाषिक अर्थ है॥

॥ २४४ ॥ यह अख्यातिवादीका मत बी समीचीन नहीं। काहेतैं?—

१ शुक्तिमैं रजतभ्रमतैं प्रवृत्त हुये पुरुषकूं रजतका लाभ नहीं होवै, तब पुरुष यह कहैहै:—"रजतशून्यदेशमैं रजतज्ञानसैं मेरी निष्फल प्रवृत्ति हुई॥" इसरीतिसैं भ्रमज्ञान अनुभवसिद्ध है। ताका लोप संभवै नहीं॥ औ

२ मरुभूमिमैं जलका बाध होवै, तब यह कहैहै:—"मरुभूमिमैं मिथ्याजलकी प्रतीति मेरेकूं हुई" या बाधतैं बी मिथ्याजल औ ताकी प्रतीति होवैहै ॥

अख्यातिवादीकी रीतिसैं तौ "रजतकी स्मृति औ शुक्तिज्ञानके भेदके अग्रहणतैं मेरी शुक्तिमैं प्रवृत्ति हुई" ऐसा बाध हुयाचाहिये। और "मरुभूमिके प्रत्यक्षसैं औ जलकी स्मृतिसैं मेरी प्रवृत्ति हुई" ऐसा बाध हुयाचाहिये। औ—

विषय तथा भ्रमज्ञान दोनूं त्यागिके अनेकप्रकारकी विरुद्धकल्पना अख्यातिवादमैं हैं। तथाहि नेत्रसंयोग हुये दोषके माहात्म्यतैं शुक्तिका विशेषरूपतैं ज्ञान होवै नहीं। यह कल्पना। तैसैं तत्तांशके प्रमोषतैं स्मृतिकल्पना औ विषयनका भेद है। औ भासै नहीं॥ तैसैं ज्ञानोंका भेद है। कदी बी भासै नहीं। इत्यादिकसकलकल्पना विरुद्ध हैं॥ औ रजतकी प्रतीतिकालमैं अभिमुखदेशमैं रजत प्रतीत होवैहै। यातैं अख्यातिवाद बी अनुभवविरुद्ध है॥

इसरीतिसैं ख्यातिनका निरूपण कह्या ॥

॥ ४१ ॥ तर्कभ्रमके निर्णयपूर्वक ख्यातिनिरूपण औ खंडनके उपसंहारसहित चतुर्दशज्ञानोंका कथन ॥ २४५-२४८ ॥

॥ २४५ ॥ यद्यपि अनिर्वचनीयख्यातिका मंडन औ अन्यख्यातिनका प्रतिपादन औ खंडन। अन्यग्रंथनमैं विस्तारसैं लिख्याहै। तथापि वह युक्ति कठिन होनैतैं स्वल्पमतिमान्-आस्तिकअधिकारीकूं अनुपयोगी जानिके इहां संक्षेपतैं रीतिमात्र जनाईहै ॥

॥ २४६ ॥ इसप्रकार संशय औ निश्चयरूप भ्रम कह्या ॥ तैसैं तीसरा तर्क बी भ्रमही है। काहेतैं ? व्याप्यके आरोपतैं व्यापकका आरोप तर्क कहियेहै ॥ जैसैं "यदि वह्निर्न स्यात्तदा धूमोऽपि न स्यात्" ऐसा ज्ञान धूमवह्निसहित देशमैं होवै, सो तर्क है ॥ तहां वह्निका अभाव व्याप्य है। धूमका अभाव व्यापक है ॥ वह्निके अभावके आरोपतैं धूमाभावका आरोप होवैहै ॥ वह्निधूमके होते वह्निअभावका औ धूमाभावका ज्ञान है। यातैं भ्रम है ॥ बाध होते भ्रम होवै। ताकूं आरोप कहैहैं ॥ इसरीतिसैं तीसरा तर्क बी भ्रम है ॥

॥ २४७ ॥ यद्यपि तर्कज्ञान बी भ्रमनिश्चयके अंतर्भूत है। तथापि इहां धूमवह्निका सद्भाव है। यातैं तिनके अभावका बाध है। ताके होते बी पुरुषकी इच्छातैं वह्निके अभावका औ धूमाभावका भ्रमज्ञान होवैहै। यातैं आरोपरूप विलक्षणता होनैतैं पृथक् कह्या ॥

॥ २४८ ॥ इसप्रकार प्रमाअप्रमाभेदतैं वृत्तिज्ञान त्रयोदश हैं ॥ यद्यपि वृत्तिज्ञानके प्रसिद्धभेद त्रयोदशही हैं, औ अवांतरभेद अनंत हैं। तथापि स्वप्नके प्रातिभासिकरज्जुआदिअवच्छिन्नचेतनमैं अध्यस्तसर्पादिकनका ज्ञान मिलिके चतुर्दशज्ञान हैं ॥ इसरीतिसैं रत्नोपमित चतुर्दशवृत्तिज्ञानका स्वरूप औ कारण लक्षणपूर्वक संक्षेपतैं निरूपण किया ॥

इति श्रीवृत्तिरत्नावल्यां अख्यातिप्रदर्शनपूर्वकखंडनं नाम त्रयोदशं रत्नं समाप्तम् ॥ १३ ॥

॥ अथ चतुर्दशरत्नप्रारंभः ॥१४॥

॥ वृत्तिफलनिरूपण ॥ २४९–२५७ ॥

॥ ४२ ॥ अवस्थात्रयका निरूपण ॥

॥ २४९–२५५ ॥

॥ २४९ ॥ उक्तवृत्तिरूप ज्ञानका प्रयोजन यह है:—

१ जीवकूं अवस्थात्रयका संबंध वृत्तिसैं होवैहै। औ—

२ पुरुषार्थप्राप्ति बी वृत्तिसैं होवैहै। यातैं—

१ संसारप्राप्तिकी हेतु वृत्ति है। औ—

२ मोक्षप्राप्तिकी हेतु बी वृत्ति है। काहेतैं?—

॥ २५० ॥ अवस्थात्रयके संबंधसैं जीवकूं संसार है ॥ अवस्थाशब्द कालका वाचक है ॥

१ स्वप्नावस्था औ सुषुप्तिअवस्थासैं भिन्न जो इंद्रियजन्यज्ञानका आधारकाल औ इंद्रियजन्यज्ञानके संस्कारका आधारकाल, सो जाग्रत्अवस्था कहियेहै ॥

सुखादिज्ञानकालमैं औ उदासीनकालमैं यद्यपि इंद्रियजन्य ज्ञान नहीं है। तथापि ताके संस्कार हैं। औ इंद्रियजन्यज्ञानके संस्कार स्वप्नावस्था सुषुप्तिअवस्थामैं बी हैं, यातैं स्वप्नावस्था सुषुप्तिअवस्थासैं भिन्नकाल कह्या ॥

इसरीतिसैं "जाग्रत्अवस्था" यह व्यवहार इंद्रियजन्यज्ञानके आधीन है। सो इंद्रियजन्यज्ञान अंतःकरणकी वृत्तिरूप है ॥ अंतःकरणकी वृत्तिके मतभेदसैं कोई आवरणनिवृत्ति प्रयोजन मानैहैं। तामैं बी नाना मत हैं। औ कोई प्रकाशहेतु प्रमातासैं विषयका संबंध वृत्तिका प्रयोजन मानैहैं ॥ उक्तप्रयोजनवाली इंद्रियजन्य अंतःकरणकी वृत्ति जाग्रत्अवस्थामैं होवैहै ॥

॥ २५१ ॥ २ इंद्रियसैं अजन्य जो विषयगोचर अंतःकरणकी अपरोक्षवृत्ति ताकी अवस्थाकूं स्वप्नावस्था कहैहैं ॥ स्वप्नमैं ज्ञेय औ ज्ञान अंतःकरणका परिणाम है ॥ औ—

॥ २५२ ॥ ३ सुखगोचर अविद्यागोचर अज्ञानकी साक्षात्परिणामरूप वृत्तिकी अवस्थाकूं सुषुप्तिअवस्था कहैहैं ॥ सुषुप्तिमैं अविद्याकी वृत्ति सुखगोचर औ अज्ञानगोचर होवैहै ॥

॥ २५३ ॥ यद्यपि अविद्यागोचरवृत्ति जाग्रत्‌मैं बी "अहं न जानामि" इसरीतिसैं होवैहै, तथापि वह वृत्ति अंतःकरणकी है। अविद्याकी नहीं ॥ तैसैं प्रातिभासिक रजताकारवृत्ति जाग्रत्‌मैं अविद्याका परिणाम है। सो अविद्यागोचर नहीं। तैसैं सुखाकारवृत्ति जाग्रत्‌मैं है। सो अविद्याका परिणाम नहीं है ॥

॥ २५४ ॥ इसरीतिसैं उक्तसुषुप्तिमैं अविद्याकी वृत्तिमैं आरूढ साक्षी अविद्याकूं प्रकाशै है औ स्वरूपसुखकूं प्रकाशैहै ॥ सुषुप्तिअवस्थामैं सुखाकार अविद्याका परिणाम जिस अज्ञानांशका हुयाहै, तिस अज्ञानांशमैं तिस पुरुषका अंतःकरण लीन है ॥ जाग्रत्‌कालमैं तिस अज्ञानांशका परिणाम अंतःकरण होवैहै। यातैं अज्ञानकी वृत्तिसैं अनुभूतसुखकी जाग्रत्‌मैं स्मृति होवैहै ॥ उपादानकारणका औ कार्यका भेद नहीं होनैतैं अनुभव औ स्मरणकूं व्यधिकरणता नहीं। नाम भिन्न अधिकरणता नहीं ॥

॥ २५५ ॥ इसरीतिसैं तीनि अवस्था हैं ॥ मरणका औ मूर्च्छाका कोई सुषुप्तिमैं अंतर्भाव कहैहैं। कोई पृथक् कहैहैं ॥ यह अवस्थाभेद वृत्तिके आधीन है ॥ जाग्रत्स्वप्नमैं तौ अंतःकरणकी वृत्ति है ॥

१ जाग्रत्‌मैं इंद्रियजन्य अंतःकरणकी वृत्ति है।
२ स्वप्नमैं इंद्रियअजन्य अंतःकरणकी वृत्ति है।
३ सुषुप्तिमैं अज्ञानकी वृत्ति है ॥

॥ ४३ ॥ वृत्तिके प्रयोजनका कथन ॥ २५६—२५७ ॥

॥ २५६ ॥

१ अवस्थाका अभिमानही बंध है ॥ अभिमान बी भ्रमज्ञानकूं कहैहैं ॥ सो बी वृत्तिविशेष है। यातैं वृत्तिकृतबंधही संसार है ॥ औ—

२ वेदांतवाक्यसैं "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी अंतःकरणकी वृत्ति होवै। तासैं प्रपंचसहितअज्ञानकी निवृत्ति होवैहै। सोई मोक्ष है ॥ यातैं—

१ वृत्तिका संसारदशामैं तौ व्यवहारसिद्ध प्रयोजन है। औ—
२ वृत्तिका परमप्रयोजन मोक्ष है ॥

॥ २५७ ॥ कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवैहै। यातैं संसारनिवृत्ति मोक्ष है ॥ या कहनैतैं ब्रह्मरूप मोक्ष है। यह सिद्ध होवैहै ॥ सो निवृत्तिका अधिष्ठानरूप ब्रह्म ज्ञातत्वविशिष्ट नहीं किंवा ज्ञातत्वोपहित नहीं। किंतु ज्ञातत्वरूप उपलक्षणसैं लक्षित है। यातैं सो निवृत्ति बी ज्ञातत्वोपलक्षितअधिष्ठान है ॥

इसरीतिसैं संक्षेपतैं वृत्तिज्ञानका प्रयोजन निरूपण किया ॥

॥ दोहा ॥

वृत्तिसूरके दर्शमैं,
मंददृष्टि जे लोक ॥
पीतांबर ता हित रची
माला रत्न सुतोक ॥ १ ॥

इति श्रीमद्बापुसरस्वतीपूज्यपादशिष्यपीतांबरशर्मविदुषा परमसुहृत्साधुश्रीमत्त्रिलोकरामाज्ञया संकीर्णायां वृत्तिरत्नावल्यां वृत्तिफलनिरूपणं नाम चतुर्दशं रत्नं समाप्तम् ॥ १४ ॥

॥ समाप्तोऽयं वृत्तिरत्नावलिर्ग्रंथः ॥

॥ साधुश्रीसुंदरदासजीकृत स्वप्नबोध ॥

॥ दोहा छंद ॥

स्वप्नेमैं मेला भयो । स्वप्नेमांहि विछोह ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहीं मोह निर्मोह ॥१॥
स्वप्नेमैं संग्रह कीयो । स्वप्नेहीमैं त्याग ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । ना कछु राग विराग ॥२॥
स्वप्नेमांही पति भयो । स्वप्ने कामी होइ ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । कामी पती न कोइ ॥३॥
स्वप्नेमैं पंडित भयो । स्वप्ने मूरख जान ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहीं ज्ञान अज्ञान ॥४॥
स्वप्नेमैं राजा कहैं । स्वप्नेहीमैं रंक ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहिं साथरौ प्रयंक ॥५॥
स्वप्नेमैं हत्या लगी । स्वप्ने न्हायो गंग ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । पाप न पुन्य प्रसंग ॥६॥
स्वप्ने सूरातन कियो । स्वप्ने चाल्यो भागि ॥
दोन ज़ु मिथ्या व्है गये । सुंदर देख्यो जागि ॥७॥
स्वप्ने गयो प्रदेशमैं । स्वप्ने आयो भौन ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । आयो गयो सु कौन ॥८॥
स्वप्ने खोई वस्तुकौं । पाई स्वप्नेमांहि ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । पाई खोई नाहिं ॥ ९ ॥
स्वप्नेमैं भूल्यो फिर्‍यो । स्वप्ने पाई वाट ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । ओघट रह्यो न घाट ॥१०॥
स्वप्ने चौरासी भम्र्यो । स्वप्ने यमकी मार ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहिं डूब्यो नहिं पार ॥११॥
स्वप्नेमैं मरिवो करै । स्वप्ने जन्मै आइ ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । को आवै को जाइ ॥१२॥
स्वप्नेमांहि स्वर्ग गयो । स्वप्ने नरकहिं दीन ॥
सुंदर जातो स्वप्नतैं । धर्म अधर्म न कीन ॥१३॥
स्वप्नेमैं दुर्बल भयो । स्वप्नेमांहि सुपुष्ट ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहीं रूप नहीं कुष्ट ॥१४
स्वप्नेमैं सुख पाइयो । स्वप्ने पायो दुःख ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । ना कछु सुख नहिं दुःख ॥१५
स्वप्नेमैं योगी भयो । स्वप्नेमैं संन्यास ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । ना घर ना वनवास ॥१६
स्वप्नेमैं लोका भयो । स्वप्नेमांहि मथेन ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । ना कछु लेन न देन ॥१७
स्वप्नेमैं ब्राह्मण भयो । स्वप्नेमैं शूद्रत्व ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहिं तम रज कहिं सत्व १८
स्वप्नेमैं यम नियम व्रत । स्वप्ने तीरथ दान ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । एक सत्य भगवान ॥ १९
स्वप्ने दोड्यो द्वारिका । स्वप्ने जगन्नाथ ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । ना को संग न साथ ॥२०
स्वप्नेमैं मथुरा गयो । स्वप्नेमैं हरिद्वार ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहिं वदरी केदार ॥ २१
स्वप्नेमैं काशी मुवो । स्वप्नेमैं घरमाहिं ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । मुक्ति रासीभौ नाहिं २२
स्वप्ने दुष्कर तप कियो । स्वप्ने संशय ताप ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहिं आसीस न श्राप ॥२३
स्वप्नेमैं निंदा भई । स्वप्नेमांहि प्रसंस ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहीं कृष्ण नहिं कंस ॥२४
स्वप्नेमैं भारथ भयो । स्वप्ने यादवनाश ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । मिथ्या वचन विलास ॥२५
स्वप्न सकल संसार है । स्वप्ना तीनौ लोक ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । तब सब जान्यो फोक ॥२६

॥ इति साधुश्रीसुंदरदासजीकृत स्वप्नबोधः संपूर्णः ॥

ॐ

श्रीपंचदशीसटीकासभाषाद्वितीयावृत्तिगत

॥ श्रीनाटकदीप ॥ १० ॥

श्रीरामकृष्णपंडितकृत संस्कृतटीका। तथा

ब्रह्मनिष्ठ पंडित श्रीपीतांबरजीकृत

भाषाटीकासहित

प्रकटकर्त्ता

हरिप्रसाद भगीरथजी

पुस्तकालय–मुंबई.

(श्रीविचारसागर चतुर्थावृत्तिके साथि यह ग्रंथ रैजिस्टर किया है ॥)

॥ ॐ पंचदशीसटीकासभाषा

श्रीनाटकदीपकी प्रसंगदर्शक-अनुक्रमणिका ॥

॥ अथ षट्दर्शनसारदर्शकपत्रकम् ॥

विषय	पूर्वमीमांसा	उत्तरमीमांसा (वेदांत)	न्याय	वैशेषिक	सांख्य	योग
जगत्	स्वरूपसैं अनादि अनंत प्रवाहरूप संयोगवियोगवान्	नामरूप क्रियात्मक मायाका परिणाम चेतनका विवर्त्त	परमाणुआरंभित संयोगवियोगजन्य आकृतिविशेष	परमाणुआरंभित संयोगवियोगजन्य आकृतिविशेष	प्रकृतिपरिणाम त्रयोविंशतितत्त्वात्मक	प्रकृतिपरिणाम त्रयोविंशतितत्त्वात्मक
जगत्कारण	जीव अदृष्ट औ परमाणु	अभिन्ननिमित्तोपादानईश्वर	परमाणु ईश्वरादिनव	परमाणु ईश्वरादिनव	त्रिगुणात्मक प्रकृति	कर्मानुसार प्रकृति औ तन्नियामक ईश्वर
ईश्वर	०	मायाविशिष्टचेतन	नित्य इच्छाज्ञानादि गुणवान् विभु कर्त्ताविशेष	नित्य इच्छाज्ञानादिगुणवान् विभु कर्त्ता विशेष	०	क्लेशकर्मविपाकआशय असंबद्धपुरुष विशेष
जीव	जडचेतनात्मक विभु नाना कर्त्ता भोक्ता	अविद्याविशिष्टचेतन	ज्ञानादिचतुर्दशगुणवान् कर्त्ता भोक्ताजड विभु नाना	ज्ञानादिचतुर्दशगुणवान् कर्त्ता भोक्ता जड विभु नाना	असंग चेतन विभु नाना भोक्ता	असंग चेतन विभु नाना कर्त्ता भोक्ता
बंधहेतु	निषिद्धकर्म	अविद्या	अज्ञान	अज्ञान	अविवेक	अविवेक
बंध	नरकादि दुःखसंबंध	अविद्यातत्कार्य	एकविंशति दुःख	एकविंशतिदुःख	अध्यात्मादित्रिविधदुःख	प्रकृतिपुरुषसंयोगजन्य अविद्यादिपंचक्लेश
मोक्ष	स्वर्गप्राप्ति	अविद्यातत्कार्यनिवृत्तिपूर्वक परमानंदब्रह्मप्राप्ति	एकविंशतिदुःखध्वंस	एकविंशति दुःखध्वंस	त्रिविधदुःखध्वंस	प्रकृतिपुरुषसंयोगाभावपूर्वक अविद्यादिपंचक्लेशनिवृत्ति
मोक्ष-साधन	वेदविहितकर्म	ब्रह्मात्मैक्यज्ञान	इतरभिन्नात्मज्ञान	इतरभिन्नात्मज्ञान	प्रकृतिपुरुषविवेक	निर्विकल्पसमाधिपूर्वक विवेक

अधिकारी	कर्मफलासक्त	मलविक्षेपदोषरहित चतुष्टयसाधनसंपन्न	दुःखजिहासु कुतर्की	दुःखजिहासु कुतर्की	संदिग्ध विरक्त	विक्षिप्तचित्तवान्
प्रकटकर्त्ता आचार्य	जैमिनी	वेदव्यास	गौतम	कणाद	कपिल	पतंजलि
प्रधानकांड	कर्मकांड	ज्ञानकांड	ज्ञानकांड	ज्ञानकांड	ज्ञानकांड	उपासनाकांड
वाद	आरंभवाद	विवर्त्तवाद	आरंभवाद	आरंभवाद	परिणामवाद	परिणामवाद
आत्मपरिमाणसंख्या	विभु नाना	विभु एक	विभु नाना	विभु नाना	विभु नाना	विभु नाना
प्रमाण	षट् (६)	षट् (६)	प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द (४)	प्रत्यक्ष अनुमान (२)	प्रत्यक्ष अनुमान शब्द (३)	प्रत्यक्ष अनुमान शब्द (३)
ख्याति	अख्याति	अनिर्वचनीय	अन्यथा	अन्यथा	अख्याति	अख्याति
सत्ता	जीवजगत् परमार्थसत्ता	परमार्थरूपात्मसत्ता व्यावहारिक औ प्रातिभासिकजगत् सत्ता	जीवगत् परमार्थसत्ता	जीवजगत् परमार्थसत्ता	जीवजगत् परमार्थसत्ता	जीवजगत् परमार्थसत्ता
उपयोग	चित्तशुद्धि	तत्त्वज्ञानपूर्वक मोक्ष	मनन	मनन	"त्वं" पदार्थशोधन	चित्तैकाग्र्य

॥ इति पीतांबरशर्मविदुषा संकीर्णं षट्दर्शनसारदर्शकं पत्रकम् ॥

॥ ॐ श्रीपंचदशीसटीकासभाषाद्वितीयावृत्ति ॥ रु० १० ॥

यह द्वितीयावृत्तिकी मुद्रणशैलीकी नवीनताविषै विद्वज्जनोंका क्या अभिप्राय होता है, सो जाननै-निमित्त श्रीनाटकदीपनाम दशमप्रकरण तिनोंकूं भेजाथा। सो देखिके अनेकविद्वानोंनै अपनै अभिप्राय लिख भेजे हैं। तिनमैंसैं मात्र थोडेहीं संक्षिप्तमैं नीचे दिये हैं ॥

श्रीमन्नथुरामशर्मा (पोरबंदर)
(तिनोंके संस्कृतपत्ररूपरसैं)

छापनैकी सुंदरशैली देखिके मैं प्रसन्न हुवाहूं ॥ संपूर्णग्रंथ इसीहीं शैलीसैं छापा जावैंगा तौ यह ग्रंथ संस्कृतभाषाविषै अज्ञजनोंकूं तथा केवलभाषा जाननैवाले जिज्ञासुनकूं अत्यंत उपकारक होवैगा। इतनाही नहीं, परंतु इस ग्रंथकी मनोहर-मुद्रणरचना गीर्वाणभाषाके रहस्यकूं जाननैहारे निर्मत्सरसाधु-पंडितोंकूं बी आनंद उत्पन्न करैगी। ऐसी आशा रखताहूं। विषयकी अनुकूलताके रक्षणनिमित्त स्थूल औ सूक्ष्म अक्षर-नकूं रखेहैं ॥ प्रकरणोंके अवांतरविषयनकूं युक्तिपुरःसर दिखायेहैं ॥ श्लोकांक टीकांक औ टिप्पणांक उपरांत अक्षरके अनुक्रमसैं सूचीपत्र, ऐसी उत्तमरीति औ सुंदरअक्षरयुक्त आजपर्यंत कोई बी ग्रंथ छपा नहीं है। इसलिये स्तुतिपात्र है।

ए. वेनिस. एम्. ए. (बनारस)
संस्कृतकॉलेजके प्रिन्सिपॉलसाहेब।
(तिनोंके इंग्रेजीपत्ररूपरसैं)

दोविभागमैं छापीहुई पंडितपीतांबरजीकी टीकावाली पंचदशीका दीर्घकालसैं मेरेकूं अनुभव है। यह वर्तमान-नमूना, रचना औ मुद्रणशैलीविषै निर्विवाद सुधारणाकूं दर्शावताहै ॥

पंडितश्रीकृष्णचार्य (चिदंबर)
पच्चयप्पविद्याशालाके संस्कृतभाषाध्यापक ॥

चिरपरिचितविद्यासाध्यविज्ञानजालं
वितरति सकृदेवालोकनात्सर्वजन्तोः।
तदिति समवलोक्यानन्दसान्द्रांतरात्मा
सकलरसिकवर्गैर्मोदिते कृष्णयार्यः ॥ १ ॥

अर्थः—जो विज्ञान् चिरकाल विद्याके परिचयसैं साध्य है। सो विज्ञान सर्वमनुष्यजनोंकूं यह प्रकरणके मात्र एक-वार अवलोकन किये होवैहै। ऐसैं देखिके अतिशयप्रसन्न भये कृष्णयार्य सकलरसिकवर्गके साथि हर्षकूं पावतेहैं ॥

शतावधानी श्रीनिवासाचार्य (मधरास)
पच्चयप्पपाठशालाके संस्कृतपंडित ॥

रेखासीमन्तितार्धं पृथुभिरपृथुभिश्चाक्षरन्यासभेदै-
र्मूलव्याख्यावतारायुपरचितमिदं पंक्तिभेदैस्तथांकैः
स्पष्टग्राह्यैरिवास्तव्यतिकरसुभगैरक्षरैरक्षतांगै-
र्मन्दानामप्यखेदं विलसति विदुषामत्यसीमप्रसादम्

अर्थः—स्थूल औ सूक्ष्मअक्षरोंकी रचनासहित मध्यकी रेखासैं अर्धविभागमैं सीमा करीहै। पंक्तिभेद औ अंक-भेदसैं मूल व्याख्या औ अवतरणकूं दिखायेहैं ॥ सुंदर-स्पष्टाक्षरसैं छाप्याहै। ऐसी उत्तमरचनासैं विद्वानोंकूं अति-आनंद औ मंदबुद्धिकूं सुगमता होवैहै ॥

पंडितश्रीविद्यानाथ शास्त्रीयार (त्रावणकोर)
महाराजाकॉलिजके संस्कृतप्रोफेसरसाहेब ॥

भवदंगीकृता रीतिस्सर्वसन्तोषकारिणी।
अनेकभाषावैदुष्यदायिनी सुधियां सुखम् ॥१॥
तदुपक्रान्तिरीत्यैव समाप्तिम्प्रार्थयामहे।
भाषाद्वयं पृथक्कृत्य मुद्रितं चेत्सुशोभनम् ॥२॥

अर्थः—तुह्मनै अंगीकार करी रीति सर्वकूं संतोषकारक है औ अनेकभाषाका ज्ञान तथा विद्वानोंकूं सुख देवैहै ॥ आरंभित रीतिसैं ग्रंथकी समाप्तिकूं इच्छतेहैं ॥ उभय भाषाओंकू पृथक् रखके छापी सो बहुत इष्ट किया है ॥

पंडित श्रीनारायणशास्त्री (कांजीवरम्)
पच्चयप्पविद्याशालाके संस्कृतशिक्षक ॥

नाटकदीपेधीपे तट्टीकायां भवाब्धिनौकायाम्।
पक्षिपि यावत् हृद्यं निरवद्यं तावदाभाति ॥ १ ॥
स्थालीपुलाकनीतिं संस्मृत्यान्यत्समस्तमेवं स्यात्।
इति मन्यतेऽधिकांचिस्थायुक नारायणाभिधःशास्त्री

अर्थः-नाटकदीपरूप अधीप औ संसारसागर तरनैकी नौकारूप टीका, यह उभयकूं देखिके हृदयकूं आनंद कारी निर्मलज्ञान स्फुरताहै औ कांचीनिवासी नारायण-शास्त्री स्थालिपुलाकन्यायका स्मरणकरिके समस्तग्रंथ ऐसाही आनंदकारी होगा ऐसैं मानतेहैं ॥

श्रीमद्गोस्वामि देवकीनंदनाचार्यजी। मुंबई ॥
(तिनोंके संस्कृतपत्ररूपरसैं)

छापनैमैं जो यह प्रकार लियाहै सो अतिरमणीय औ सर्वकूं पठण करनै—करावनैमैं सुगम है। ऐसा मेरा अभि-प्राय है ॥

प्रोफेसर एफ्. मॅक्ष मुलर साहेब,
के. एम्. । ऑक्षफर्ड ॥
(तिनोंके इंग्रजीपत्ररूपरसैं)

तुह्मारी मुद्रणशैली बडे धन्यवादकूं योग्य है ॥

॥ अथ श्रीपंचदशी ॥

नाटकदीपः ।

दशमप्रकरणम् ॥ १० ॥

नाटकदीपः ॥१०॥ श्लोकांकः १११७	४६ परमात्माद्वयानंदपूर्णः पूर्वं स्वमायया । स्वयमेव जगद्भूत्वा प्राविशज्जीवरूपतः ॥ १ ॥	टीकांकः ३९४५ टिप्पणांकः ॐ

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

नाटकदीपव्याख्या ॥ १० ॥

भाषाकर्तृकृतमंगलाचरणम् ।

श्रीमत्सर्वगुरून् नत्वा पंचदश्या नृभाषया ।
कुर्वे नाटकदीपस्य टीकां तत्त्वप्रकाशिकाम् ॥ १ ॥

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ नाटकदीपकी तत्त्वप्रकाशिका व्याख्या ॥ १० ॥

॥ भाषाकर्ताकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीयुक्तसर्वगुरुनकूं नमनकरिके पंचदशीके नाटकदीपनामदशमप्रकरणकी तत्त्वप्रकाशिकानामक टीकाकूं नरभाषासैं मैं करूंहूं १

॥ संस्कृतटीकाकारकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीमत्भारतीतीर्थ औ विद्यारण्य इन दो मुनीश्वरनकूं नमनकरिके मेरेकरि नाटकदीपका अर्थ संक्षेपकरिके कहियेहै ॥ १ ॥

॥ टीकाकारकृतमंगलाचरणम् ॥

नत्वा श्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनीश्वरौ ।
अर्थो नाटकदीपस्य मया संक्षिप्य वक्ष्यते ॥१॥

४५ चिकीर्षितस्य ग्रंथस्य निष्प्रत्यूहपरिपूरणायाभिमतदेवतातत्त्वानुस्मरणलक्षणं मंगलमाचरन्मंदाधिकारिणामनायासेन निष्प्रपंच-

॥ १ ॥ अध्यारोप औ अपवादपूर्वक बंधनिवृत्तिके उपाय विचारका विषय (जीव परमात्मा) सहित कथन ॥ ३९४५–३९९९ ॥

॥ १ ॥ अध्यारोप औ साधन (विचारजन्य ज्ञान) सहित अपवाद ॥

॥ ३९४५–३९६२ ॥

॥ १ ॥ आत्मामैं अध्यारोप ॥

४५ प्रारंभ करनेकूं इच्छित नाटकदीपरूप

* चेतनविषै अध्यस्तअहंकारादिककूं औ तिनके प्रकाशक साक्षीकूं नाटकका रूपककरि प्रकाश करनेहारा प्रकरण की ॥

टीकांक: ३९४६ टिप्पणांक: ७४४

विष्णवाद्युत्तमदेहेषु प्रविष्टो देवताऽभवत् ।
मर्त्याद्यधमदेहेषु स्थितो भजति देवताम् ॥ २ ॥

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांक: ११९८

ब्रह्मात्मप्रतिपत्तिसिद्धये "अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपंचं प्रपंच्यते । शिष्याणां बोधसिद्ध्यर्थं तत्त्वज्ञैः कल्पितः क्रमः" इति न्यायमनुसृत्यात्मन्यध्यारोपं तावदाह (परमात्मेति)—

४६] पूर्वं अद्वयानंदपूर्णः परमात्मा स्वमायया स्वयं एव जगत् भूत्वा जीवरूपतः प्राविशत् ॥

४७) पूर्वं सृष्टेः प्राक् । अद्वयानंदपूर्णः "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्" "विज्ञानमानंदं ब्रह्म" । "पूर्णमदः पूर्णम्" इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धः स्वगतादिभेदशून्यः परमानंदरूपः परिपूर्णः । परमात्मा स्वमायया "मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्" इति श्रुत्युक्तया स्वनिष्ठया मायाशक्त्या स्वयमेव जगद्भूत्वा "तदात्मानं स्वयमकुरुत सच्च त्यच्चाभवत्" इति श्रुतेः स्वयमेव जगदाकारतां प्राप्य जीवरूपतः प्राविशत् । "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य" इत्यादिश्रुतेः जीवरूपेण प्रविष्टवानित्यर्थः ॥ १ ॥

४८ ननु परमात्मन एवैकस्य सर्वशरीरेषु

ग्रंथकी निर्विघ्नपरिपूर्णता अर्थ इष्टदेवताके स्वरूपके स्मरणरूप मंगलकूं आचरतेहुये आचार्य्य, मंद अधिकारिनकूं श्रमसैं विना निष्प्रपंचब्रह्मआत्माके निश्चयकी सिद्धिअर्थ "अध्यारोप औ अपवादकरि प्रपंचरहित परमात्माकूं निरूपण करियेहै ॥ शिष्यनके बोधकी सिद्धिअर्थ तत्त्वज्ञपुरुषोंनै क्रम कल्प्याहै" इसन्यायकूं अनुसरिके आत्माविषै अध्यारोपकूं प्रथम कहैहैं:—

४६] पूर्वं अद्वय आनंद औ पूर्णरूप जो परमात्मा था । सो अपनी मायाकरि आपही जगत्‌रूप होयके तिसविषै जीवरूपसैं प्रवेश करता भया ॥

४७) सृष्टितैं पूर्व अद्वय आनंद औ पूर्ण कहिये "हे सोम्य ! यह जगत् आगे एकही अद्वितीय सत्‌ही था" औ "विज्ञानआनंदरूप ब्रह्म है" औ "यह पूर्ण है । यह पूर्णहै" इत्यादिश्रुतिकरि प्रसिद्ध जो स्वगतआदिक भेदरहित परमानंदरूप परिपूर्णपरमात्मा था । सो अपनी मायाकरि कहिये "मायाकूं तौ प्रकृति नाम उपादान जानै औ मायावालेकूं तौ महेश्वर नाम मायाका अधिष्ठाननिमित्त जानै" इसश्रुतिमैं उक्त अपनैविषै स्थित माया शक्तिकरि आपही जगत्‌रूप होयके कहिये "सो ब्रह्म आपही आपकूं करताभया । स्थूलसूक्ष्मरूप होताभया" इस श्रुतितैं आपही जगत्‌आकारताकूं पायके जीवरूपकरि प्रवेश करताभया कहिये "तिस जगत्‌कूं रचिके तिसीहीके प्रति पीछे प्रवेश करताभया । इस जीवरूपकरि प्रवेशकरिके" इत्यादिक श्रुतितैं जीवरूपसैं प्रवेशकूं प्राप्त भया । यह अर्थ है ॥ १ ॥

४८ ननु । एकही परमात्माकूं सर्वशरीरन

---

४४ परमात्माकी स्वगतआदिक तीनभेदसैं रहितताकूं देखो पंचमहाभूतविवेकगत २०–२५ श्लोकविषै औ तिनकी ३१०–३१८ टिप्पणविषै ॥

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांकः ११११९ ११२०

ॐ अनेकजन्मभजनात्स्वविचारं चिकीर्षति ।
विचारेण विनष्टायां मायायां शिष्यते स्वयम् ॥३
ॐ अद्वयानंदरूपस्य सद्वयत्वं च दुःखिता ।
बंधः प्रोक्तः स्वरूपेण स्थितिर्मुक्तिरितीर्यते ॥ ४॥

टीकांकः ३९४९ टिप्पणांकः ॐ

प्रविष्टत्वे पूज्यपूजकादिभावेन प्रतीयमान उत्तमाधमभावो विरुध्येतेत्याशंक्याह—

४९] विष्णवाद्युत्तमदेहेषु प्रविष्टः देवता अभवत् । मर्त्याद्यधमदेहेषु स्थितः देवतां भजति ॥

५०) नायं स्वाभाविक उत्तमाधमभावः किंतु शरीरोपाधिनिबंधनोऽतो न विरोध इति भावः ॥ २ ॥

५१ इत्थमात्मन्यध्यारोपं संक्षेपेण प्रदर्श्य ससाधनं तदपवादं संक्षिप्य दर्शयति—

५२] अनेकजन्मभजनात् स्वविचारं चिकीर्षति, विचारेण मायायां विनष्टायां स्वयं शिष्यते ॥

५३) अनेकजन्मभजनात् अनेकेषु जन्मस्वनुष्ठितानां कर्मणां ब्रह्मणि समर्पणरूपात् भजनात् स्वविचारं स्वस्यात्मनो ब्रह्मरूपस्य ज्ञानसाधनं श्रवणादिकं, चिकीर्षति कर्तुमिच्छति । ततः स्वविचारेण विचारजनितज्ञानेन, मायायां स्वस्याद्वयानंदत्वादिरूपाच्छादिकायामज्ञानाविद्यादिशब्दवाच्यायां विनष्टायां निवृत्तायां, स्वयं अद्वयानंदपूर्णः परमात्मैवावशिष्यते ॥ ३ ॥

५४ ननु "तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबंधैः

विषै प्रवेशकूं पायेहुये पूज्य औ पूजकआदिकभावकरि प्रतीयमान जो उत्तमअधमभाव है, सो विरोधकूं पावैगा । यह आशंका करि कहैहैंः—

४९] विष्णुआदिकउत्तमदेहनविषै प्रवेशकूं पायाहुया परमात्मा देवता कहिये पूज्य होताभया औ मनुष्यआदिक अधमदेहनविषै स्थित हुया परमात्मा देवताकूं भजताहै ॥

५०) यह उत्तमअधमभाव स्वाभाविक नहीं है । किंतु शरीररूप उपाधिका कियाहै । यातैं विरोध नहीं है । यह भाव है ॥ २ ॥

॥ २ ॥ साधन (विचारजन्य ज्ञान) सहित अपवाद ॥

५१ ऐसैं आत्माविषै अध्यारोपकूं संक्षेपसैं दिखायके साधनसहित तिसके अपवादकूं संक्षेपकरिके दिखावैहैंः—

५२] अनेकजन्मविषै भजनतैं अपनै विचारकूं करनैकूं इच्छताहै । विचारकरि मायाके नष्ट भये आप अवशेष रहताहै ॥

५३) अनेकजन्मविषै अनुष्ठान किये कर्मनके ब्रह्मविषै समर्पणरूप भजनतैं अपनै ब्रह्मरूपके ज्ञानके साधन श्रवणादिरूप विचारकूं करनैकूं इच्छताहै । तातैं अपनै विचारकरि कहिये विचारजनितज्ञानकरि अपनै अद्वयआनंदपनैआदिकरूपकी आच्छादक अज्ञानअविद्याआदिक शब्दकी वाच्य मायाके निवृत्त भये आप अद्वयआनंदपूर्णरूप परमात्माही अवशेष रहताहै ॥ ३ ॥

॥ ३ ॥ तृतीयश्लोकउक्तअपवादकूं बंधनिवृत्ति (मुक्ति) रूप ज्ञानफलरूपताकी सिद्धि ॥

५४ ननु । "सो ब्रह्म मैं हूं । ऐसैं जानिके

प्रमुच्यते" इत्यादिश्रुतिभिः बंधनिवृत्तिलक्षणस्य मोक्षस्य ज्ञानफलत्वाभिधानात् परमात्मावशेषस्य तत्फलताभिधानमनुपपन्नमित्याशंक्याह—

५५] अद्वयानंदरूपस्य सद्वयत्वं च दुःखिता बंधः प्रोक्तः स्वरूपेण स्थितिः

सर्वबंधनोंतैं छूटताहै" इत्यादिक श्रुतिनकरि बंधकी निवृत्तिरूप मोक्षकूं ज्ञानकी फलरूपताके कथनतैं परमात्माके अवशेष रहनैकूं तिस ज्ञानकी फलरूपताका कथन बनै नहीं । यह आशंका करि कहैहैं:—

५५] अद्वय आनंदरूप आत्माकूं द्वैतसहितपना औ दुःखीपना बंध कहा है

मुक्तिः इति ईर्यते ॥

५६) अद्वितीये ब्रह्मणि वास्तवस्य बंधस्य मोक्षस्य वा दुर्निरूपत्वात् दुःखित्वादिभ्रम एव बंधः स्वरूपावस्थितिलक्षणा तन्निवृत्तिरेव मोक्षः अतो न श्रुतिविरोध इति भावः ४

औ स्वरूपकरि स्थिति मुक्ति कहियेहै ॥

५६) अद्वितीयब्रह्मविषै वास्तवबंध वा मोक्षकूं दुःखसैं बी निरूपण करनैकूं अशक्य होनैतैं दुःखीपनैआदिकका भ्रमही बंध है औ स्वरूपकरि स्थितिरूप तिस बंधकी निवृत्तिही मोक्ष है । यातैं श्रुतिनका विरोध नहीं है । यह भाव है ॥ ४ ॥

---

४५ इहां यह रहस्य है:—

(१) महावाक्यके श्रवणमैं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसी अंतःकरणकी वृत्तिरूप तत्त्वज्ञान होवैहै । तिससैं प्रपंचसहित अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै, सोई **मोक्ष** है ॥ कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवैहै यातैं ब्रह्मरूप मोक्ष है । यह सिद्ध होवैहै ॥ यह भाष्यकारका सिद्धांत है । औ—

(२) न्यायमकरंदकार (अद्वैतवादी) नैं कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप नहीं मानीहै । किंतु अधिष्ठानसैं भिन्न सत्‌रूप, असत्‌रूप, सत्‌असत्‌रूप औ सत्‌असत्‌तैं विलक्षण अनिर्वचनीय, इन चारीप्रकारसैं विलक्षणप्रकारवाली कल्पितकी निवृत्ति मानीहै ताहीकूं पंचमप्रकार कहैहैं । यह समीचीन नहीं । काहेतैं ? सत्‌रूपआदिकवस्तु लोकशास्त्रआदिकमैं प्रसिद्ध हैं । इनसैं विलक्षण कोई वस्तु प्रसिद्ध नहीं । अप्रसिद्धवस्तुविषै पुरुषकी अभिलाषा होवै नहीं । किंतु प्रसिद्धविषै होवैहै । यातैं पंचमप्रकाररूप निवृत्तिके मानै पुरुषकी अभिलाषाकी विषयतारूप पुरुषार्थताका अभाव होवैगा । यातैं अधिष्ठानरूपही निवृत्ति माननी चाहिये ।

(१) सो अधिष्ठानरूप निवृत्ति अज्ञातअधिष्ठानरूप मानैं तौ प्रयत्नविनाही सर्वकूं मोक्षकी प्राप्तिके होनैतैं श्रवणादिककी निष्फलता होवैगी । औ—

(२) ज्ञातअधिष्ठानरूप निवृत्ति मानैं तौ विदेहमोक्षदशामैं ब्रह्मविषै ज्ञातत्व कहिये ज्ञानके विषय होनैरूप धर्मका अभाव है । यातैं मोक्षकूं परमपुरुषार्थताका अभाव होवैगा औ—

(३) ज्ञातत्वरूप धर्मके अभावतैं ज्ञातत्वविशिष्ट वा ज्ञातत्वउपहित अधिष्ठानरूप बी निवृत्ति संभवै नहीं । काहेतैं ? विशेषणवाला **विशिष्ट** कहियेहै औ उपाधिवाला **उपहित** कहियेहै । **विशेषण** औ **उपाधि** जितनैकालविषै आप विद्यमान होवैं तितनै कालपर्यंत अपनै संबंधीवस्तुकूं अन्य वस्तुतैं भिन्नकरिके जनावैहैं । विदेहमोक्षदशामैं ज्ञातत्वके अभावतैं तिस ज्ञातत्वकूं विशेषणरूपकरि वा उपाधिरूपकरि अज्ञातअवस्थावाले ब्रह्मतैं भिन्नकरि जनावना संभवै नहीं ।

यातैं ज्ञातत्वउपलक्षित अधिष्ठानरूप कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति है । काहेतैं ? उपलक्षण जो है सो अपनै भाव (वर्त्तमान) अभाव (भविष्यत्) दोनूंकालमैं बी अपनै संबंधीकूं अन्यसैं भिन्नकरि जनावताहै । यातैं जैसैं देवदत्तके ग्रहके उपलक्षण काकके होते न होते बी "यह देवदत्तका गृह है" ऐसा व्यवहार होवैहै, तैसैं जीवन्मुक्तिदशामैं ज्ञातत्वके होते औ विदेहमुक्तिदशामैं ताके न होते बी कार्यसहितअज्ञानकी निवृत्तिरूप अधिष्ठान जो है सो ज्ञातत्वउपलक्षित है । यह व्यवहार होवैहै ॥ औ—

कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानसैं भिन्न है । इस पक्षमैं आग्रह होवै तौ बी अनिर्वचनीयकी निवृत्ति अनिर्वचनीयरूप है, पंचमप्रकाररूप नहीं ॥ **निवृत्ति** नाम ध्वंसका है । सो ध्वंस न्यायमतमैं तौ अनंतअभावरूप है । परंतु सिद्धांतमतमैं क्षणिकभाव विकाररूप है । काहेतैं यास्कमुनिनैं जन्मादिकषट्भाव (अनिर्वचनीय) विकार कहेहैं । तिनमैं ध्वंसशब्दका पर्याय नाश क्षणिकरूप गिन्याहै । यातैं सो ध्वंस क्षणिकभावरूप है । सो ज्ञानसैं उत्तरकाल एकक्षण रहैहै । पीछे तिस निवृत्तिका अत्यंत अभाव होवैहै । सो अत्यंतअभाव ब्रह्मरूप है । यातैं द्वैतकी शंका नहीं ॥ औ—

कल्पितकी निवृत्ति ज्ञानसैं जन्य होनैतैं सादि है औ ब्रह्मरूप होनैतैं अनंत है । यातैं सिद्धांतमैं मोक्ष सादि औ अनंत कहियेहै ॥ इसरीतिसैं स्वरूपकरि स्थितिरूप बंधकी निवृत्तिही **मोक्ष** है ।

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांकः ११२१ ११२२

अविचारकृतो बंधो विचारेण निवर्तते ।
तस्माज्जीवपरात्मानौ सर्वदैव विचारयेत् ॥ ५ ॥
अहमित्यभिमंता यः कर्ताऽसौ तस्य साधनम् ।
मनस्तस्य क्रिये अंतर्बहिर्वृत्ती क्रमोत्थिते ॥ ६ ॥

टीकांकः ३५७९ टिप्पणांकः ॐ

५७ ननु "कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः" इति स्मृतेर्मोक्षस्य कर्मसाधनतावगमात् किमनेन विचारजनितज्ञानेनेत्यत आह—

५८] अविचारकृतः बंधः विचारेण निवर्तते ॥

५९) विचारप्रागभावोपलक्षिताज्ञानकृतस्य बंधस्य न विचारजन्यज्ञानादन्यतो निवृत्तिरुपपद्यते । उदाहृतस्मृतौ च संसिद्धिशब्देन चित्तशुद्धिरेवाभिधीयते, न मोक्ष इति भावः ॥

६० विचारेण बंधननिवृत्तिरुक्ता किं विषयेण विचारेणेत्यत आह—

६१] तस्मात् जीवपरात्मानौ सर्वदा एव विचारयेत् ॥

६२) तत्त्वसाक्षात्कारपर्यंतं सर्वदा विचारं कुर्यादित्यर्थः ॥ ५ ॥

६३ तत्र जीवस्वरूपं तावन्निरूपयति (अहमिति)—

६४] यः "अहं" इति अभिमंता असौ कर्ता ॥

६५) यः चिदाभासविशिष्टः अहंकारो

॥ ४ ॥ बंधनिवृत्तिअर्थ विचारकी कर्तव्यता औ विचारके विषयका सूचन ॥

५७ ननु "जनकआदिक जे भयेहैं, वे कर्मकरिही संसिद्धिकूं प्राप्त भये" इस गीतास्मृतितैं मोक्षकूं कर्मरूप साधनवान्ताके जाननैतैं इस विचारसैं जनित ज्ञानकरि क्या प्रयोजन है ? तहां कहैहैं:—

५८] अविचारका किया जो बंध है, सो विचारकरि निवर्त्त होवैहै ॥

५९) विचारके प्राक्अभावकरि उपलक्षित अज्ञानका किया जो बंध है, ताकी विचारसैं जन्य ज्ञानतैं अन्यसाधनतैं निवृत्ति संभवै नहीं औ उदाहरण करी गीतास्मृतिविषै "संसिद्धि" शब्दकरि चित्तशुद्धिही कहियेहै । मोक्ष नहीं । यह भाव है ॥

६० विचारकरि बंधकी निवृत्ति कही, सो किसकूं विषय करनैहारे नाम किस वस्तुके विचारकरि बंधकी निवृत्ति होवैहै ? तहां कहैहैं:—

६१] तातैं जीव औ परमात्माकूं सर्वदाही विचार करना ॥

६२) तत्त्वके साक्षात्कारपर्यंत सर्वदा जीव परमात्माके विचारकूं करना । यह अर्थ है ॥५॥

॥ २ ॥ पंचमश्लोकउक्तविचारके विषय जीव औ परमात्माका स्वरूप ॥ ३९६३—३९८४ ॥

॥ १ ॥ क्रियायुक्त कारणसहित कर्त्तारूप जीवका स्वरूप ॥

६३ तिन जीवपरमात्मारूप विचारके विषयनविषै जीवके स्वरूपकूं प्रथम निरूपण करैहैं:—

६४] जो "अहं" ऐसैं मानताहै, यह कर्त्ता है ॥

६५) जो चिदाभासविशिष्ट अहंकार

टीकांक: २९६६ टीप्पणांक: ३०	७२अंतर्मुखाहमित्येषा वृत्तिः कर्तारमुल्लिखेत् । बहिर्मुखेदमित्येषा बाह्यं वस्त्विदमुल्लिखेत् ॥ ७ ॥ ७३इदमो ये विशेषाः स्युर्गंधरूपरसादयः । असांकर्येण तान्भिंद्याद्घ्राणादींद्रियपंचकम् ॥८॥	नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांक: ११२३ ११२४

व्यवहारदशायां देहादौ अहमिति अभिमन्यते असौ कर्त्ता कर्तृत्वादिधर्मविशिष्टो जीव इत्यर्थः ॥

६६ तस्य किं करणमित्यपेक्षायामाह—

६७] तस्य साधनं मनः ॥

६८) कामादिवृत्तिमानंतःकरणभागो मनः ।

६९ करणस्य क्रियाव्याप्तत्वात् तत्क्रियां दर्शयति—

७०] तस्य क्रमोत्थिते अंतर्बहिर्वृत्ती क्रिये ॥

७१ अनयोः स्वरूपं विषयं च विविच्य दर्शयति—

७२] अंतर्मुखा "अहं" इति वृत्तिः एषा कर्तारं उल्लिखेत् । बहिर्मुखा "इदं" इति एषा बाह्यं इदं वस्तु उल्लिखेत् ॥

७३) इदमित्येषा इति बहिर्वृत्तेः स्वरूपाभिनयः । अविशिष्टेन विषयप्रदर्शनं बाह्यं देहाद्बहिर्वर्तमानमिदंतया निर्दिश्यमानं वस्तूल्लिखेत् विषयीकुर्यादित्यर्थः ॥ ७ ॥

७४ ननु मनसैव सर्वव्यवहारसिद्धौ चक्षुरादिवैयर्थ्यं प्रसज्येतेत्याशंक्याह—

व्यवहारदशामैं देहादिकनिविषै "अहं" कहिये मैं ऐसैं मानताहै । यह कर्त्ता कहिये कर्त्तापनैआदिकधर्मविशिष्ट जीव है । यह अर्थ है ॥

६६ तिस कर्त्ताका कौन करण है? इस पूछनैकी इच्छाके भये कहैहैं:—

६७] तिस कर्त्ताका साधन कहिये करण मन है ॥

६८) कामादिकवृत्तिमान् अंतःकरणका भाग मन है ॥

६९ करणकूं क्रियाकरि व्याप्त होनैतैं तिस मनरूप करणकी क्रियाकूं दिखावैहैं:—

७०] तिस मनकी क्रमकरि उत्पन्न अंतर्वृत्ति औ बहिर्वृत्तिरूप क्रिया हैं ॥ ६ ॥

॥ २ ॥ जीवके करण मनकी क्रियाका स्वरूप औ विषय ॥

७१ इन अंतरबाहिरवृत्तिनके स्वरूपकूं औ विषयकूं विवेचनकरिके दिखावैहैं:—

७२] अंतर्मुख जो "मैं" इस आकारवाली वृत्ति है, सो कर्त्ताकूं विषय करैहै औ बहिर्मुख जो "इदं" कहिये यह इस आकारवाली वृत्ति है, सो बाह्य इदंवस्तुकूं कहिये इसवस्तुकूं विषय करैहै ॥

७३) "इदं" (यह) इस आकारवाली" इतनैं मूलके पदकरि बाहिरवृत्तिके स्वरूपका कथन किया औ अवशेष रहे उत्तरार्धगत मूलके भागकरि बाहिरवृत्तिके विषयकूं दिखावतेहैं:—यह बाहिरवृत्ति देहतैं बाहिर वर्तमान जो इदंपनैकरि निर्देश करियेहै वस्तु, तिसकूं विषय करैहै । यह अर्थ है ॥ ७ ॥

॥ ३ ॥ सर्वव्यवहारके हेतु मनके होते बी घ्राणादिइंद्रियनका उपयोग ॥

७४ ननु । मनकरिही सर्वव्यवहारकी सिद्धिके हुये चक्षु आदिकइंद्रियनकी व्यर्थताका प्रसंग होवैगा । यह आशंका करि कहैहैं:—

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
	कर्तारं च क्रियां तद्वद् व्यावृत्तविषयानपि ।	
	स्फोरयेदेकयत्नेन योऽसौ साक्ष्यत्र चिद्वपुः ॥ ९ ॥	३९७९
११२५	ईक्षे शृणोमि जिघ्रामि स्वादयामि स्पृशाम्यहम् ।	टिप्पणांक:
११२६	इति भासयते सर्वं नृत्यशालास्थदीपवत् ॥ १० ॥	ॐ

७५] इदमः विशेषाः ये गंधरूपरसादयः स्युः, तान् घ्राणादींद्रियपंचकं असांकर्येण भिंद्यात् ॥

७६) मनसेदमिति सामान्यमात्रं गृह्यते न तु तद्विशेषो गंधादिरतस्तद्ग्रहणे घ्राणादिकमुपयुज्यत इत्यर्थः ॥ ८ ॥

७७ एवं सोपकरणं जीवस्वरूपं निरूप्य परमात्मानं निरूपयति—

७८] कर्तारं च क्रियां तद्वत् व्यावृत्तविषयान् अपि एकयत्नेन यः चिद्वपुः स्फोरयेत् असौ अत्र साक्षी ॥

७९) कर्तारं पूर्वोक्तमहंकाररूपं । क्रियां अहमिदमात्मकमनोवृत्तिरूपां । व्यावृत्तविषयानपि व्यावृत्तान् अन्योन्यविलक्षणान् घ्राणादिग्राह्यान् गंधादीन् विषयान् च । एकयत्नेन युगपदेव । यः चिद्वपुः चिद्रूप एव सन् । स्फोरयेत् प्रकाशयेत् । असावत्र वेदांतशास्त्रे साक्षी इत्युच्यत इत्यर्थः ॥ ९ ॥

८० साक्षिण एकयत्नेन सर्वस्फोरकत्वमभिनीय दर्शयति (ईक्षे शृणोमीति)—

८१] "अहं ईक्षे, शृणोमि, जिघ्रामि, स्वादयामि, स्पृशामि" इति सर्वं भासयेत् ॥

७५] इदंपदार्थके भेद जे गंधरूपरसआदिक हैं. तिनकूं घ्राणआदिक इंद्रियनका पंचक परस्पर मिलापविना भेदकरि ग्रहण करैहै ॥

७६) मनकरि "यह" ऐसैं सामान्यवस्तुमात्र ग्रहण करियेहैं, परंतु तिसका विशेष गंधादिक नहीं । यातैं तिस वस्तुके विशेषके ग्रहणविषै घ्राणआदिकइंद्रियनका पंचक उपयोगकूं पावताहै । यह अर्थ है ॥ ८ ॥

॥ ४ ॥ परमात्मा (साक्षी)का निरूपण ॥

७७ ऐसैं सामग्रीसहित जीवके स्वरूपकूं निरूपण करीके अब परमात्माकूं निरूपण करैहैं:—

७८] कर्ताकूं औ क्रियाकूं तैसैं भिन्नभिन्नविषयनकूं बी एकयत्नकरि जो चिद्रूप हुया प्रकाशताहै, सो इहां साक्षी कहियेहै ॥

७९) पूर्व श्लोक ६ विषै उक्त अहंकाररूप कर्ताकूं औ "अहं" अरु "इदं" इस आकारवाली मनकी वृत्तिरूप क्रियाकूं औ परस्परविलक्षण अरु घ्राणआदिकइंद्रियनसैं ग्रहण करनै योग्य गंधादिक विषयनकूं एकयत्नकरि कहिये एककालविषैही जो चेतनरूपही हुया प्रकाशताहै, यह चेतन इहां वेदांतशास्त्रविषै साक्षी ऐसैं कहियेहै । यह अर्थ है ॥ ९ ॥

॥ ५ ॥ साक्षी (परमात्मा)के एकप्रयत्नसैं सर्वकी प्रकाशकताका दृष्टांतसहित आकार ॥

८० साक्षीके एकयत्नकरि सर्वके प्रकाश करनैकूं आकारकरि दिखावैहैं:—

८१] "मैं देखताहूं, मैं सुनताहूं, मैं सूंघताहूं, मैं स्वाद लेताहूं, मैं स्पर्श करताहूं ।" ऐसैं सर्वकूं प्रकाशताहै ॥

टीकांकः ३९८२ टिप्पणांकः ॐ	⁸⁶नृत्यशालास्थितो दीपः प्रभुं सभ्यांश्च नर्तकीम्। दीपयेदविशेषेण तदभावेऽपि दीप्यते ॥ ११ ॥ अहंकारं धियं साक्षी विषयानपि भासयेत्। अहंकाराद्यभावेऽपि स्वयं भात्येव पूर्ववत् ॥ १२॥	नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांकः ११२७ ११२८

८२) ईक्षे रूपमहं पश्यामीत्येवं द्रष्टृदर्शन-दृश्यलक्षणां त्रिपुटीमेकयत्नेन भासयेत् । एवं शृणोमि इत्यादावपि योज्यम् ॥

८३ युगपदविकारित्वेनानेकावभासकत्वे दृष्टांतमाह—

८४] नृत्यशालास्थदीपवत् ॥ १० ॥

८५ दृष्टांतं स्पष्टयति—

८६] नृत्यशालास्थितः दीपः प्रभुं च सभ्यान् नर्तकीं अविशेषेण दीपयेत् । तदभावे अपि दीप्यते ।

८७) अविशेषेण प्रभ्वादिविषयविशेषावभासनाय वृद्ध्यादिविकारमंतरेणेति यावत् ११

८८ दार्ष्टांतिके योजयति (अहंकारमिति)—

८९] साक्षी अहंकारं धियं विषयान् अपि भासयेत् । अहंकाराद्यभावे अपि स्वयं पूर्ववत् भाति एव ॥

---

८२) "रूपकूं मैं देखताहूं" ऐसैं रूपद्रष्टा जो अहंकार, दर्शन जो वृत्तिरूप क्रिया अरु घटादिरूप दृश्य, इस त्रिपुटीकूं एकयत्नकरि प्रकाशताहै । ऐसैं "मैं शब्दकूं सुनताहूं" इत्यादिकव्यवहारविषै बी श्रोता श्रवण औ श्रोतव्य, इत्यादिकत्रिपुटीनकूं एकयत्नकरि प्रकाशताहै । सो योजना करनैकूं योग्य है ॥

८३ एककालविषै अविकारी होनैकरि अनेकनके प्रकाशकपनैविषै दृष्टांत कहैहैंः—

८४] नृत्यशालाविषै स्थित दीपककी न्यांई ॥ १० ॥

॥ ३ ॥ श्लोक १० उक्त दृष्टांतके वर्णनकरि परमात्माकूं निर्विकारी होनैकरि सर्वकी प्रकाशकता ॥ ३९८५—३९९९ ॥

॥ १ ॥ श्लोक १० उक्त दृष्टांतकी स्पष्टता ॥

८५ दृष्टांतकूं स्पष्ट करैहैंः—

८६] नृत्यशालाविषै स्थित जो दीप, सो प्रभु जो सभापति ताकूं औ सभ्य जे सभाविषै स्थित लोक तिनकूं औ नर्तकी जो नृत्य करनैहारी स्त्री ताकूं संपूर्णताकरि प्रकाशताहै औ तिन प्रभुआदिकनके अभाव हुये बी प्रकाशताहै ॥

८७] अशेषकरि कहिये प्रभुआदिक विषयनके भेदके प्रकाशनैअर्थ वृद्धिआदिक विकारसैं विना दीपक प्रकाशताहै । यह अर्थ है ॥ ११ ॥

॥ २ ॥ दृष्टांतउक्तअर्थकी दार्ष्टान्तमैं योजना ॥

८८ दार्ष्टांतिकविषै जोडतेहैंः—

८९] ऐसैं साक्षी अहंकारकूं औ बुद्धिकूं औ शब्दादिकविषयनकूं बी प्रकाशताहै औ अहंकारआदिकके अभाव हुये बी आप पूर्वकी न्यांई भासताही है ॥

नाटकदीपः ॥१०॥ श्लोकांकः ११२९ ११३०

१२
निरंतरं भासमाने कूटस्थे ज्ञप्तिरूपतः ।
तद्भासा भासमानेयं बुद्धिर्नृत्यत्यनेकधा ॥१३॥
अहंकारः प्रभुः सभ्या विषया नर्तकी मतिः ।
तालादिधारीण्यक्षाणि दीपः साक्ष्यवभासकः १४

टीकांकः ३९९० टिप्पणांकः ॐ

९०) सुषुप्त्यादौ अहंकाराद्यभावेऽपि तत्साक्षितया भात्येव इत्यर्थः ॥ १२ ॥

९१ ननु प्रकाशरूपाया बुद्धेरेवाहंकारादिसर्ववस्त्ववभासकत्वसंभवात् किं तदतिरिक्तसाक्षिकल्पनयेत्याशंक्याह (निरंतरमिति)–

९२] कूटस्थे ज्ञप्तिरूपतः निरंतरं भासमाने इयं बुद्धिः तद्भासा भासमाना अनेकधा नृत्यति ॥

९३] कूटस्थे निर्विकारे साक्षिणि । ज्ञप्तिरूपतः स्वप्रकाशचैतन्यतया, निरंतरं भासमाने सदा स्फुरति सति, इयं बुद्धिस्तद्भासा तस्य साक्षिणः स्वरूपचैतन्येन, भासमाना प्रकाशमानैव अनेकधा घटोऽयं पटोऽयमित्यादि ज्ञानाकारेण नृत्यति विक्रियते ॥ अयं भावः— यतो बुद्धेर्विकारितया जडत्वात् स्वतः स्फूर्तिराहित्यमतस्तदतिरिक्तः सर्वावभासकः साक्ष्यभ्युपगंतव्य इति ॥१३ ॥

९४ उक्तमर्थं श्रोतृबुद्धिसौकर्याय नाटकत्वेन निरूपयति—

९५] अहंकारः प्रभुः । विषयाः सभ्याः । मतिः नर्तकी । अक्षाणि तालादिधारीणि । अवभासकः साक्षी दीपः ॥

---

९०) सुषुप्तिआदिकविषै अहंकारआदिकके अभाव हुये बी आत्मा तिस अभावका साक्षी होनैकरि भासताही है । यह अर्थ है ॥ १२ ॥

॥ ३ ॥ बुद्धितैं भिन्न सर्वप्रकाशकसाक्षीके अंगीकारकी योग्यता ॥

९१ ननु प्रकाशरूप बुद्धिकूंही अहंकारआदिक सर्ववस्तुनके अवभासकपनैके संभवतैं तिस बुद्धितैं भिन्न साक्षीकी कल्पनासैं क्या प्रयोजन है ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९२] कूटस्थकूं ज्ञप्तिरूपतैं निरंतर भासमान होते तिस कूटस्थके प्रकाशाकरि भास्यमान यह बुद्धि अनेकप्रकारसैं नृत्य करती है ॥

९३) निर्विकारसाक्षीकूं स्वप्रकाश चैतन्य होनैकरि सदास्फुरायमान होते । यह बुद्धि तिस साक्षीके स्वरूप चैतन्यकरि भासमानही हुई अनेकप्रकारसैं कहिये " यह घट है, यह पट है । " इत्यादिकज्ञानके आकारसैं नृत्य करतीहै कहिये विकारकूं पावतीहै ॥ इहां यह भाव है:– जातैं बुद्धिकूं विकारीपनैकरि जड होनैतैं आपकरि प्रकाशरहितपना है । यातैं तिस बुद्धितैं भिन्न सर्वका अवभासक साक्षी अंगीकार करनैकूं योग्य है ॥ १३ ॥

॥ ४ ॥ श्रोताकी बुद्धिमैं सुगम करनैवास्तै श्लोक १२–१३ उक्तअर्थका नाटकपनैकरि निरूपण ॥

९४ श्लोक १२–१३ उक्तअर्थकूं श्रोताकी बुद्धिविषै सुगम होनैअर्थ नाटकपनैकरि निरूपण करैहैः—

९५] अहंकार स्वामी है औ विषय सभावासी पुरुष हैं । बुद्धि नर्तकी है औ इंद्रियतालआदिकके धारण करनैहारे हैं औ अवभासक साक्षी दीप है ॥

९६) विषयभोगसाकल्यवैकल्याभिमान-प्रयुक्तहर्षविषादवत्त्वान्नृत्याभिमानिप्रभुतुल्यत्व-महंकारस्य । परिसरवर्तित्वेऽपि विषयाणां

९६) विषयभोगकी संपूर्णता औ असंपूर्णताके अभिमानके किये हर्ष औ विषाद-वाला होनेतैं [४६]अहंकारकूं नृत्यका अभिमानी प्रभु जो राजा ताकी तुल्यता है औ चारीओरतैं वर्तनैहारे हुये बी तिस उक्तहर्षविषाद-

४६ जैसैं नृत्यका अभिमानी राजा नृत्यकी संपूर्णता औ असंपूर्णताके अभिमानकरि हर्षविषादवाला होवैहै औ नर्तकी-आदिकका धनाढ्यता करि आश्रय है औ नृत्यशालाका निर्वाहक है औ अनेकदारायुक्त है औ बडे कार्यका कर्त्ता है औ बडेभोगका भोक्ता है। तैसैं अहंकार बी भोगकी संपूर्णता औ असंपूर्णताके अभिमानकरि हर्षविषादवाला होवैहै औ उपाधिरूपतासैं आत्मधनयुक्त होनैकरि बुद्धिआदिकनका आश्रय है औ समष्टिव्यष्टिदेहरूप शालाका अहंममभावकरि निर्वाहक है औ शुभाशुभवृत्तिरूप अनेकदाराकरि युक्त है औ सर्वकर्मका कर्त्ता है औ सर्वभोगका भोक्ता है । यातैं साभास-अहंकार नृत्यअभिमानी राजाके तुल्य है ॥

४७ जैसैं सभाविषै स्थित पुरुष (ऊपरके टिप्पणविषै उक्त) राजाके धर्मनसैं रहित हुये चारीओरतैं वर्तेहैं औ राजाके स्वाधीन हैं । तैसैं शब्दादिकविषय बी कर्तृत्वभोक्तृत्व-आदिक अहंकारके धर्मनसैं रहित हुये चारीओरतैं परि-दृश्यमान है औ अहंकारके स्वाधीन हैं । यातैं सभ्यपुरुषनके तुल्य हैं ॥

४८ जैसैं नर्तकी, नृत्यउपयोगी अनेकचेष्टारूप विकार (अन्यथाअवयव) वाली होवैहै औ सर्वलोकनकी ओर हस्त आदिककूं प्रसारतीहै औ (१) शृंगार, (२) वीर, (३) करुण, (४) अद्भुत, (५) हास्य, (६) भयानक, (७) बीभत्स, (८) रौद्र, अरु (९), शांत इन **नवरसरूप** मनोभावकरी राजाकूं रंजन करती है ।

तैसैं बुद्धि बी कामादिपरिणामरूप अनेकविकारवाली होवैहै औ सर्वविषयाकार होनैकरि अपनै अग्रभागरूप हस्तकूं सर्वओरतैं प्रसारतीहै । औ—

(१) शास्त्रसंस्कारसैं रहित होवै तब वस्त्रभूषणादिककी शोभाके अभिमानकरि **शृंगाररसकूं** दिखावतीहै । औ—

(२) शरीरकी प्रबलता देखिके युद्धादिकके प्रसंगमैं पुरुष-पनैके अभिमानकरि **वीररसकूं** दिखावतीहै । औ—

(३) पुत्रकलत्रादिसंबंधिनके दुःखकूं देखिके कोमल भये अंतःकरणमैं **करुणारसकूं** दिखावतीहै । औ—

तद्राहित्यात्सभ्यपुरुषसाम्यं । नानाविध-विकारित्वात् नर्तकीसाम्यं धियः । धीविक्रिया-

[४७]वान्‌ताकरि रहित होनैतैं विषयनकूं सभ्य-पुरुषनकी समता है औ नानाप्रकारके विकार वाली होनैतैं [४८]बुद्धिकूं नर्त्तकी जो नृत्य करनै-हारी स्त्री ताकी समता है औ बुद्धिके विकारनके

(४) इंद्रजालादिकअपूर्वपदार्थकूं देखिके आश्चर्यकूं पावती हुई **अद्भुतरसकूं** दिखावतीहै औ—

(५) वांच्छितविषयके लाभतैं आनंदकूं पावतीहुई **हास्यरसकूं** दिखावतीहै । औ—

(६) शत्रुआदिकसैं जन्य दुःखकी चिंताकरि भयकूं पावतीहुई **भयानकरसकूं** दिखावतीहै । औ—

(७) मलीनपदार्थके संसर्गकरि ग्लानीकूं पावतीहुई **बीभत्सरसकूं** दिखावतीहै औ—

(८) क्रोधादिकके प्रसंगसैं भय दिखावतीहुई **रौद्ररसकूं** दिखावतीहै औ—

(९) प्रियपदार्थके नाशकरि उदासीनहुई **शांतिरसकूं** दिखावतीहै ॥

(१) बुद्धि जब शास्त्रसंस्कारसहित होवै तब द्वितीयपृष्ठ गत ८ वें टिप्पणविषै उक्त अमानित्वसैं आदिलेके औ ८४ वें टिप्पणविषै उक्त दैवीसंपत्तिरूप भूषणयुक्त हुई **शृंगाररसकूं** दिखावतीहै । औ—

(२) कामादिकशत्रुनके जयविषै पुरुषार्थकरि **वीररसकूं** दिखावतीहै । औ—

(३) अध्यात्मादिदुःखकरि ग्रस्त पुरुषकूं देखिके द्रवी-भावकूं पाईहुई **करुणारसकूं** दिखावतीहै । औ—

(४) एकही अद्वितीय असंग निर्विकार निष्प्रपंच ब्रह्म-विषै सजातीयआदिभेदयुक्त औ संग अरु कर्तृत्वादिविकार-वान् प्रपंचकूं देखिके वा गुरुकृपासैं अलौकिकवस्तुकूं जानिके आश्चर्यवान् हुई **अद्भुतरसकूं** दिखावतीहै । औ—

(५) राज्यपदसैं पतत होयके रंकपदकूं प्राप्त भये राजेकी न्याईं ब्रह्मभावसैं पतन होयके जीवभावकूं प्राप्त भये परमात्माकूं देखिके वा अपरोक्षज्ञानकी प्राप्तिकरि हर्षकूं पायके वा निरावरणस्वरूपानंदकूं अनुभवकरिके हास्यरसकूं दिखावतीहै । औ—

(६) ज्ञानसैं विना निवारण करनैकूं अशक्य जन्ममरणादि-संसारदुःखकी चिंताकरि भयकूं पावतीहुई **भयानक रसकूं** दिखावतीहै । औ—

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांकः ११३१

स्वस्थानसंस्थितो दीपः सर्वतो भासयेद्यथा । स्थिरस्थायी तथा साक्षी बहिरंतः प्रकाशयेत् १५

टीकांकः ३९९७ टिप्पणांकः ७५०

णामनुकूलव्यापारवत्त्वात्तालादिधारिसमानत्वमिंद्रियाणाम् । एतत्सर्वावभासकत्वात् साक्षिणो दीपसादृश्यमस्तीति द्रष्टव्यम् ॥ १४ ॥

९७ ननु साक्षिणोऽप्यहंकाराद्यभासकत्वे तेन । तेन संबंधापगमागमरूपविकारवत्त्वं स्यादित्याशंक्याह (स्वस्थानेति)—

९८] दीपः यथा स्वस्थानसंस्थितः सर्वतः भासयेत् तथा स्थिरस्थायी साक्षी बहिः अंतः प्रकाशयेत् ।

९९) दीपो यथा गमनादिविकारशून्यः स्वदेशेऽवस्थित एव सन् स्वसंनिहिताखिलपदार्थानवभासयति । एवं साक्षी अपीति भावः ॥ १५ ॥

अनुकूलव्यापारवान् होनैतैं इंद्रियनकूं तालआदिकके धारण करनैहारे पुरुषनकी समानता है औ इन सर्वका अवभासक होनैतैं साक्षीकूं दीपककी सदृशता है । ऐसैं देखनैकूं योग्य है ॥ १४ ॥

॥ ५ ॥ साक्षीके निर्विकारीपनैका श्लोक १० उक्त दृष्टांतपूर्वक कथन ॥

९७ ननु । साक्षीकूं बी अहंकारआदिकके अवभासकपनैके हुये तिस अहंकारादिकके साथि संबंधके अपगम नाम नाश औ आगम नाम उत्पत्तिरूप विकारवान्पना होवैगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९८] जैसैं दीप अपनै स्थानकेविषै स्थित हुया सर्वओरतैं प्रकाशताहै तैसैं स्थिरस्थायी कहिये तीनिकाल अचल हुया साक्षी बाहिरभीतर प्रकाशता है ।

९९) जैसैं गमन आदिकविकाररहित दीपक अपनै देशविषै स्थित हुयाही अपनै समीपके सर्वपदार्थनकूं प्रकाशताहै । ऐसैं गमनादिकविकाररहित स्वस्वरूपविषै स्थित हुया साक्षी बी सर्वकूं प्रकाशताहै । यह भाव है ॥ १५ ॥

---

(७) शिष्टनिंदित यथेच्छाचरणरूप दुराचारसैं ग्लानीकूं पावतीहुई बीभत्सरसकूं दिखावतीहै । औ—

(८) अज्ञजननकूं सन्मार्गविषै प्रवृत्ति करावनैके वास्ते संसारदुःखके भयकूं जनावतीहुई वा तत्त्वज्ञानके बलकरि कालकूं बी डरावतीहुई रौद्ररसकूं दिखावतीहै । औ—

(९) दोषदृष्टिजन्य वा मिथ्यात्वदृष्टिजन्य वैराग्यके उदय करि वा जगत्‌की विस्मृतिरूप उपरामके उदयकरि प्रपंचकी अरुचिकूं पायके शांतिरसकूं दिखावती है । औ—

(१०) निरावरण परिपूर्ण सद्वृत्तिक जीवन्मुक्तिके विलक्षण आनंदकूं आस्वादन करतीहुई नवरसतैं विलक्षण दशमरसकूं दिखावती है ॥

इसरीतिसैं बुद्धि नवरसकूं दिखायके साभास अहंकारकूं रंजन करतीहै यातैं नर्तकीके समान है ॥

४९ जैसैं तालमृदंगसारंगीआदिकवाद्यनके धारनैहारे पुरुष नर्तकीकी चेष्टाके अनुकूल व्यापारवान् होवैहै। तैसैं इंद्रिय बी जिस जिस विषयके ग्रहण करनैकूं बुद्धि जातीहै, तिस तिस विषयके सन्मुख होनैकरि बुद्धिके विकार जे परिणाम तिनके अनुकूलव्यापारवान् होवैहैं । यातैं इंद्रिय तालआदिक धारिनके समान हैं ॥

५० जैसैं नृत्यशालाविषै स्थित दीपक जब सभास्थित होवै तब बाहिरभीतर सर्व ओरतैं राजा आदिकसर्वकूं प्रकाशताहै औ जब सभा न होवै तब बी प्रकाशता है औ आप गमनआगमनआदिकक्रियारूप विकारसैं रहितहुया ज्यूंका त्यूं अपनै स्थानविषै स्थित है, तैसैं साक्षी बी जाग्रत्स्वप्नकालमैं स्थित अहंकारादिकसर्वकूं प्रकाशताहै औ सुषुप्ति मूर्छा अरु समाधिकालविषै इन सर्वके अभाव हुये तिनके अभावकूं प्रकाशताहै औ आप गमनआगमनआदिकविकारनसैं रहित हुया ज्यूंका त्यूं स्वमहिमामैं स्थित है। यातैं साक्षी दीपकके समान है ॥

टीकांकः ४००० टिप्पणांकः ३ॐ	बहिरंतर्विभागोऽयं देहापेक्षो न साक्षिणि । विषया बाह्यदेशस्था देहस्यांतरहंकृतिः ॥ १६ ॥ अंतस्था धीः सहैवाक्षैर्बहिर्याति पुनः पुनः । भास्यबुद्धिस्थचांचल्यं साक्षिण्यारोप्यते वृथा १७	नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांकः ११३२ ११३३

४००० ननु साक्षिणो वहिरंतरवभासकत्वाभिधानमनुपपन्नं "अपूर्वमनपरमनंतरमवाह्यम्" इति श्रुत्या तस्य बाह्यांतरविभागाभावाभिधानादित्याशंक्याह (बहिरिति)—

१] अयं बहिरंतर्विभागः देहापेक्षः न साक्षिणि ॥

२ कस्य बाह्यत्वं कस्य चांतरत्वमित्यत आह—

३] विषयाः बाह्यदेशस्थाः । देहस्य अंतः अहंकृतिः ॥ १६ ॥

४ ननु "स्थिरस्थायी तथा साक्षी बहिरंतः प्रकाशयेत्" इति अविकारिणः सतो बहिरंतरवभासकोक्तिरयुक्ता "अहं घटं पश्यामि" इत्यत्राहमित्यंतरहंकारसाक्षितया प्रथमतो भासकस्यानंतरं "घटं पश्यामि" इति घटाकारवृत्तिस्फुरणरूपेण बहिर्निर्गमानुभावादित्याशंक्याह—

५] अंतस्था धीः अक्षैः सह एव पुनः

॥ २ ॥ परमात्माके यथार्थस्वरूपका विशेषकरि निर्द्धार ॥ ४०००—४०५० ॥

॥ १ ॥ साक्षीपरमात्मामैं बुद्धिके चंचलताका आरोप ॥ ४०००—४०११ ॥

॥ १ ॥ वास्तवसाक्षीकूं बाहिरभीतरपनैके अभावपूर्वक बाह्यभीतरके वस्तुका कथन ॥

४००० ननु, साक्षीकूं बाहिरभीतर अवभासकपनैका कथन अयुक्त है । काहेतैं? "न पूर्व कहिये कारण है । न अपर कहिये कार्य है । न अंतर है । न बाह्य है" इस श्रुतिकरि तिस साक्षीआत्माके बाहिरभीतरविभागके अभावके कथनतैं । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

१] यह जो "बाहिरभीतर" ऐसा विभाग है, सो देहके अपेक्षाकरि है; साक्षीविषै नहीं है ॥

२ तब किसकूं बाह्यपना है औ किसकूं आंतरपना है? तहां कहैहैं:—

३] शब्दादिकविषय बाह्यदेशविषै स्थित हैं औ देहके भीतर अहंकार है ॥ १६ ॥

॥ २ ॥ बाहिरभीतरप्रकाशमान साक्षीविषै बुद्धिकी चंचलताका आरोप ॥

४ ननु "तैसैं स्थिरस्थायी हुया साक्षी बाहिरभीतर प्रकाशताहै" इस १५ वें श्लोकउक्तप्रकारकरि अविकारी हुये साक्षीके बाहिरभीतरअवभासकपनैका कथन अयुक्त है। काहेतैं? "मैं घटकूं देखताहूं" इहां "मैं" ऐसैं भीतर अहंकारका साक्षी होनैकरि प्रथमतैं भासकसाक्षीके पीछे "घटकूं देखताहूं" ऐसैं घटाकारवृत्तिके स्फुरणरूपकरि बाहिरनिर्गमनके अनुभवतैं, यह आशंकाकरि कहैहैं:

५] देहके भीतरस्थित जो बुद्धि है । सो इंद्रियनके साथिही वारंवार

नाटकदीपः ॥१०॥ श्लोकांकः ११३४ ११३५	गृहांतरगतः स्वल्पो गवाक्षादातपोऽचलः । तत्र हस्ते नर्त्यमाने नृत्यतीवातपो यथा ॥१८॥ निजस्थानस्थितः साक्षी बहिरंतर्गमागमौ । अकुर्वन्बुद्धिचांचल्यात्करोतीव तथा तथा ॥१९॥	टीकांकः ४००६ टिप्पणांकः ॐ

पुनः बहिः याति । भास्यबुद्धिस्थचांचल्यं साक्षिणि वृथा आरोप्यते ॥

६) द्रष्टृग्राहकत्वेन देहांतरावस्थिता बुद्धिः रूपादिग्रहणाय चक्षुरादिद्वारा भूयो भूयो निर्गच्छति । तथा च तन्निष्ठं चांचल्यं तद्भासके साक्षिण्यारोप्यते अतो न वास्तवं साक्षिणः चांचल्यमिति भावः ॥ १७ ॥

७ भासके भास्यचांचल्यारोपः क दृष्ट इत्याशंक्याह (गृहांतरगत इति)—

८) गवाक्षात् गृहांतरगतः स्वल्पः आतपः अचलः तत्र हस्ते नर्त्यमाने यथा आतपः नृत्यति इव ॥

९) गवाक्षात् गृहांतरगतः स्वल्पातपोऽचल एव वर्तते तत्र तस्मिन्नातपे पुरुषेण हस्ते नर्त्यमाने इतस्ततः चाल्यमाने यथा आतपो नृत्यतीव चलतीव लक्ष्यते न तु चलतीत्यर्थः ॥ १८ ॥

१० दार्ष्टान्तिकमाह—

११] निजस्थानस्थितः साक्षी बहिः अंतः गमागमौ अकुर्वन् बुद्धिचांचल्यात् तथा तथा करोति इव ॥ १९ ॥

बाहिर जातीहै । ऐसैं हुये साक्षीकरि भासनै योग्य बुद्धिकी चंचलता साक्षीविषै वृथा आरोपित होवैहै ॥

६) "मैं" इस आकारकरि द्रष्टा जो साभासअहंकार, ताकी ग्राहक कहिये विषय करनैहारी होनैकरि देहके भीतर स्थित जो बुद्धि है "सो यह घट है" इत्यादिआकारकरि रूपादिकके ग्रहणअर्थ कहिये विषय करनैअर्थ चक्षुआदिकइंद्रियद्वारा फेरि फेरि बाहिरगमन करती है । तैसैं हुये तिस बुद्धिविषै स्थित जो चंचलपना है, सो तिस बुद्धिके भासक साक्षीविषै मूढनकरि आरोप करियेहै । यातैं साक्षीकूं वास्तव बाहिरभीतरगमन करनैरूप चंचलपना नहीं है । यह भाव है ॥ १७ ॥

॥ ३ ॥ प्रकाशकविषै प्रकाश्यकी चंचलताके आरोपमैं दृष्टांत ॥

७ भासक जो प्रकाशक ताविषै भास्य जो प्रकाश्यवस्तु ताकी चंचलताका आरोप कहां देख्याहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं—

८] गवाक्षतैं गृहके भीतर प्राप्त जो स्वल्पआतप कहिये सूर्यका प्रकाश है, सो स्वरूपतैं अचल होवैहै । तहां हस्तके नर्त्यमान कहिये नचायेहुये जैसे आतप नृत्य करतेहुयेकी न्यांई होवैहैं ॥

९) गवाक्ष जो झरोखा तातैं गृहके भीतर आया जो थोडा आतप कहिये धूप है, सो अचलही वर्तताहै । तिस आतपविषै पुरुषकरि हस्तके इधर उधर चलायमान कियेहुये जैसैं आतप चलतेकी न्यांई देखियेहै औ चलता नहीं । यह अर्थ है ॥ १८ ॥

॥ ४ ॥ दृष्टांतउक्तअर्थकी दार्ष्टांतमैं योजना ॥

१० दार्ष्टांतिककूं कहैहैं:—

११] तैसैं निजस्थानमैं कहिये स्वस्वरूपविषै स्थित हुया साक्षी बाहिरभीतरगमनआगमनकूं न करताहुया बुद्धिकी चंचलतातैं तैसैं तैसैं करतेहुयेकी न्यांई होवै है ॥ १९ ॥

टीकांक: ४०१२ टिप्पणांक: ॐ	न बाह्यो नांतरः साक्षी बुद्धेर्देशौ हि तावुभौ बुद्ध्याद्यशेषसंशांतौ यत्र भात्यस्ति तत्र सः॥२०॥ देशः कोऽपि न भासेत यदि तर्ह्यस्त्वदेशभाक्। सर्वदेशप्रक्लृत्यैव सर्वगत्वं न तु स्वतः ॥ २१ ॥	नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांक: ११३६ ११३७

१२ "निजस्थानस्थितः" इत्यनेन किं बाह्यादिदेशस्थत्वमेवोच्यते नेत्याह (न बाह्य इति)—

१३] साक्षी बाह्यः न आंतरः न ॥

१४ तत्र हेतुमाह (बुद्धेरिति)—

१५] हि तौ उभौ बुद्धेः देशौ ॥

१६ तर्हि किं विवक्षितमित्यत आह—

१७] बुद्ध्याद्यशेषसंशांतौ सः यत्र भाति तत्र अस्ति ॥

१८) आदिशब्देनेंद्रियादयो गृह्यंते । संशांतिशब्देन तत्प्रतीत्युपरतिर्विवक्षिता ॥२०॥

१९ ननु सर्वव्यवहारोपरतौ देश एव नोपलभ्यते कुतस्तन्निष्ठत्वमुच्यत इत्याशंक्य स्वाभिप्रायमाविष्करोति (देश इति)—

२०] यदि कः अपि देशः न भासेत तर्हि अदेशभाक् अस्तु ॥

२१) देशादिकल्पनाधिष्ठानस्य स्वातिरिक्तदेशापेक्षा नास्तीति भावः ॥

॥ २ ॥ साक्षीके देशकालादिरहित निजस्वरूपके कथनपूर्वक ताके अनुभव- ॥ का उपाय ४०१२—४०५० ॥

॥ १ ॥ बुद्धिके बाह्यअंतरदेशतैं रहित साक्षीका निजस्थान ॥

१२ "निजस्थानविषै स्थित हुया" इस १९ श्लोकगत कथनकरि क्या साक्षीका बाह्यआदिकदेशविषै स्थितपना कहियेहै? यह आशंकाकरि साक्षीविषै बाह्यअंतरदेशकी कल्पना नहीं है। ऐसैं कहैहैं:—

१३] साक्षी बाह्य नहीं है औ आंतर नहीं है ॥

१४ तिसविषै कारण कहैहैं:—

१५] जातैं सो बाहिरभीतर दोनूं बुद्धिके देश हैं, यातैं साक्षीके नहीं ॥

१६ तब साक्षीका स्थान क्या कहनैकूं इच्छित है? तहां कहैहैं:—

१७] बुद्धिआदिकसर्वकी संशांतिके हुये सो साक्षी जहां स्वस्वरूपविषै भासताहै तहांही है ॥

१८) इहां आदिशब्दकरि इंद्रियआदिक ग्रहण करियेहैं औ संशांतिशब्दकरि तिन बुद्धिआदिकनके प्रतीतिकी निवृत्ति कहनैकूं इच्छित है ॥ २० ॥

॥ २ ॥ देशादिरहित आत्माके सर्वगतपनै औ सर्वसाक्षीपनैकी अवास्तवता ॥

१९ ननु सर्वव्यवहार जो प्रतीति ताकी निवृत्तिके हुये देशही प्रतीत नहीं होवै है। तब साक्षीका तिसविषै स्थितपना काहेतैं कहियेहै? यह आशंकाकरि अपनै अभिप्रायकूं प्रगट करैहैं:—

२०] जब कोई बी देश नहीं भासताहै। तब देशकूं न भजनैहारा कहिये देशरहित साक्षी होहु ॥

२१) देशादिककी कल्पनाके अधिष्ठानकूं अपनैतैं भिन्न देशकी अपेक्षा नहीं है। यह भावहै॥

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांकः ११३८ ११३९	अंतर्बहिर्वा सर्वं वा यं देशं परिकल्पयेत् । बुद्धिस्तद्देशगः साक्षी तथा वस्तुषु योजयेत् ॥ २२ ॥ यैर्यद्रूपादि कल्प्येत बुद्ध्या तत्तत्प्रकाशयन् । तस्य तस्य भवेत्साक्षी स्वतो वाग्बुद्ध्यगोचरः ॥ २३ ॥	टीकांकः ४०२२ टिप्पणांकः ॐ

२२ ननु देशाद्यभावे शास्त्रे सर्वगतसर्वसाक्षित्वाद्युक्तिर्विरुध्येतेत्यत आह—

२३] सर्वदेशप्रक्लृप्त्या एव सर्वगत्वम्

२४ स्वाभाविकमेव किं न स्यादित्यत आह (न तु स्वत इति)—

२५] स्वतः तु न ॥

२६) अद्वितीयत्वादसंगत्वाच्चेति भावः ॥ २१ ॥

२७ सर्वगतत्ववत्सर्वसाक्षित्वमपि न वास्तवमित्याह—

२८] अंतः वा बहिः वा यं सर्वं देशं बुद्धिः परिकल्पयेत् । तद्देशगः साक्षी तथा वस्तुषु योजयेत् ॥ २२ ॥

२९ "तथा वस्तुषु योजयेत्" इत्येतत् प्रपंचयति—

३०] यत् यत् रूपादि बुद्ध्या कल्प्येत, तत् तत् प्रकाशयन् तस्य तस्य साक्षी भवेत् ॥

३१ तर्हि किं तस्य निजं रूपमित्यत आह—

३२] स्वतः वाग्बुद्ध्यगोचरः ॥ २३ ॥

---

२२ ननु देशआदिकके अभाव हुये शास्त्रविषै सर्वगत कहिये सर्वविषै व्यापक औ सर्वके साक्षीपनैका जो कथन है । सो विरोधकूं पावैगा । तहां कहैहैं:—

२३] सर्वदेशकी कल्पनाकरिही आत्माकूं सर्वगतपना है ॥

२४ स्वाभाविक कहिये स्वरूपसैंही सर्वगतपना क्यूं नहीं होवैगा ? तहां कहैहैं:—

२५] स्वतः कहिये स्वरूपतैं सर्वगतपना नहीं है ॥

२६) आत्माकूं अद्वितीय होनैतैं औ असंग होनैतैं स्वाभाविकसर्वगतपना नहीं है । यह भाव है ॥ २१ ॥

२७ सर्वगतपनैकी न्यांई सर्वसाक्षीपना बी वास्तव नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

२८] अंतर वा बाहिरदेशकूं वा जिस सर्ववस्तुकूं बुद्धि कल्पतीहै । तिस देशविषै स्थित साक्षी कहियेहै तैसैं सर्ववस्तुनविषै योजना करना ॥ २२ ॥

॥ ३ ॥ बुद्धिकल्पितवस्तुकी साक्षिताके कथनपूर्वक साक्षीका निजरूप ॥

२९ "तैसैं वस्तुनविषै योजना करना" इस २२ श्लोकउक्तकूं वर्णन करैहैं:—

३०] जो जो रूपादिकवस्तु बुद्धिकरि कल्पना करियेहै । तिस तिस वस्तुकूं प्रकाशताहुया तिस तिस वस्तुका साक्षी होवैहै ॥

३१ तब तिसका निजरूप क्या है ? तहां कहैहैं:—

३२] स्वरूपतैं वाणी औ बुद्धिका अविषय है ॥ २३ ॥

टीकांकः ४०३३ टिप्पणांकः ७५१

कथं तादृङ्मया ग्राह्य इति चेन्मैव गृह्यताम् ।
सर्वग्रहोपसंशांतौ स्वयमेवावशिष्यते ॥ २४ ॥
न तत्र मानापेक्षास्ति स्वप्रकाशस्वरूपतः ।
तादृग्व्युत्पत्त्यपेक्षा चेच्छ्रुतिं पठ गुरोर्मुखात् ॥ २५ ॥

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांकः ११४० ११४१

३३ अवाङ्मनसगोचरत्वे मुमुक्षुणा न गृह्येतेति शंकते (कथमिति)—

३४] तादृक् मया कथं ग्राह्य इति चेत् ।

३५ अग्राह्यत्वमिष्टमेवेत्याह—

३६] मा एव गृह्यताम् ॥

३७ नन्वात्मनो "विचारेण विनष्टायां मायायां शिष्यते स्वयम्" इत्युक्तं परमात्मावशेषणं न सिद्ध्येदित्यत आह—

३८] सर्वग्रहोपसंशांतौ स्वयं एव अवशिष्यते ॥

३९) स्वात्मातिरिक्तस्य द्वैतस्य मिथ्यात्वनिश्चयेन तत्प्रतीत्युपशांतौ स्वात्मा एव सत्यतया अवशिष्यते इति भावः ॥ २४ ॥

४० यद्यप्युक्तन्यायेन स्वात्मा परिशिष्यते तथापि तदापरोक्ष्याय किंचित्प्रमाणमपेक्षितमित्यत आह (न तत्रेति)—

४१] तत्र मानापेक्षा न अस्ति ॥

॥ ४ ॥ श्लोक २३ उक्त निजरूपकी अग्राह्यताकी इष्टापत्तिपूर्वक, श्लोक २३ उक्त परमात्माके अवशेषका कथन ॥

३३ वाणी अरु मनके अविषय हुये मुमुक्षुकरि ग्रहण नहीं होवैगा । इसरीतिसैं वादी शंका कहैहैं:—

३४] तैसा मनवाणीका अविषय साक्षी मेरेकरि कैसैं ग्रहण करनैकूं योग्य है ? ऐसैं जो कहै ।

३५ अग्राह्यपना इष्टही है । ऐसैं सिद्धांती कहैहैं—

३६] तौ मति ग्रहण करो ॥

३७ ननु "आत्माके विचारकरि मायाके नाश हुये आप परमात्माही शेष रहताहै" ऐसैं तृतीयश्लोकविषै कह्या जो परमात्माका अवशेष रहना, सो नहीं सिद्ध होवैगा । तहां कहैहैं:—

३८] सर्वग्रहकी कहिये सर्वप्रतीतिकी सम्यक्शांतिके हुये आपही अवशेष रहताहै ॥

३९) स्वात्मातैं भिन्न द्वैतके मिथ्यापनैके निश्चयकरि तिस द्वैतकी प्रतीतिकी उपरतिके हुये स्वात्माही सत्यपनैकरि अवशेष रहताहै । यह भाव है ॥ २४ ॥

॥ ५ ॥ प्रमाणअपेक्षारहित स्वप्रकाशवस्तुके श्रुतिकरि उत्तमअधिकारीकूं बोधनका उपाय ॥

४० यद्यपि श्लोक २४ उक्त न्यायकरि स्वात्मा परिशेषका विषय होवैहै, तथापि तिसके अपरोक्ष करनैअर्थ कछुक प्रमाण अपेक्षित है । तहां कहैहैं:—

४१] तिस स्वात्माविषै प्रमाणकी अपेक्षा नहीं है ॥

---

५१ स्वयंप्रकाशरूप आत्माकूं माननेहारे हमकूं तिसका नहीं ग्रहण (विषय) करना इष्ट है औ शब्दकी लक्षणावृत्तिकरि औ मनकी वृत्तिव्याप्तिकरि मनआदिकका साक्षी स्वयंप्रकाशरूप सो आत्मा जानना योग्य है ॥

-नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांकः ११४२

यदि सर्वगृहत्यागोऽशक्यस्तर्हि धियं व्रज ।
शरणं तदधीनोंतर्बहिर्वैषोऽनुभूयताम् ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीपंचदश्यां नाटकदीपः ॥ १० ॥

टीकांकः ४०४२ टिप्पणांकः ७५२

४२ तत्र हेतुमाह—

४३] स्वप्रकाशस्वरूपतः ॥

४४ नन्वात्मनः स्वप्रकाशतया स्वतः स्फुर्तौ मानं नापेक्ष्यत इति व्युत्पत्तिसिद्ध्यै मानमपेक्षितमित्याशंक्य श्रुतिरेवात्र प्रमाणमित्याह—

४५] तादृग्व्युत्पत्त्यपेक्षा चेत् गुरोः मुखात् श्रुतिं पठ ॥ २५ ॥

४२ तिसविषै हेतु कहैहैं:—

४३] स्वप्रकाशस्वरूप होनैतैं ॥

४४ ननु "आत्माकी स्वप्रकाशताकरि आपहीतैं स्फूर्तिविषै प्रमाण अपेक्षित नहींहै" ऐसैं बोधकी सिद्धि अर्थ प्रमाण अपेक्षित है। यह आशंकाकरि श्रुतिही इहां प्रमाण है । ऐसैं कहैहैं:—

४५] तैसैं बोधकी अपेक्षा जो होवै तौ ब्रह्मनिष्ठगुरुके मुखतैं श्रुतिकूं पठन कर ॥ २५ ॥

४६ एवमुत्तमाधिकारिण आत्मानुभवोपायमभिधाय मंदाधिकारिणस्तं दर्शयति (यदीति)—

४७] सर्वगृहत्यागः यदि अशक्यः तर्हि धियं शरणं व्रज ॥

४८ बुद्धिशरणत्वे किं फलमित्यत आह—

४९] तदधीनः अंतः वा बहिः एषः अनुभूयताम् ॥

॥ ६ ॥ मंदअधिकारीकूं आत्माके अनुभवका उपाय ॥

४६ ऐसैं उत्तमाधिकारीकूं आत्माके अनुभवके उपायकूं कहिके अब मंदअधिकारीकूं तिस आत्मानुभवके उपायकूं दिखावैहैं:—

४७] सर्वप्रतीतिका त्याग जब अशक्य है, तब बुद्धिके प्रति शरण जावहु कहिये लक्ष्य करहु ॥

४८ बुद्धिके शरण होनैविषै क्या फल होवैहै ? तहां कहैहैं:—

४९] तिस बुद्धिके अधीन अंतर वा बाहिर यह परमात्मा अनुभव करना ॥

५२ जैसैं "शाखाविषै चंद्र है" इस वचनकूं सुनिके स्थूलदृष्टिवाला पुरुष शाखाकूं लक्ष्यकरिके पीछे धर्मसहित शाखाकी दृष्टिकूं छोडिके शाखाके समीप स्थित होनैकरि शाखाके आधीन चंद्रकूं देखताहै । तैसैं मंदबुद्धिवाला अधिकारी गुरुके उपदेशतैं बुद्धिकूं लक्ष्यकरिके बाह्यअंतर धर्मसहित बुद्धिकी दृष्टिकूं छोडिके अधिष्ठान साक्षीरूपकरि बुद्धिके समीप स्थित होनैकरि बुद्धिके आधीन हुयेकी न्यांई जो परमात्मा है, ताकूं स्वस्वरूपकरि अनुभव करताहै ॥

५०) बुद्ध्या यद्यत्परिकल्प्यते बाह्यमांतरं वा तस्य तस्य साक्षित्वेन तदधीनः परमात्मा तथैव अनुभूयतां इत्यर्थः ॥ २६ ॥

५०) बुद्धिकरि जो जो बाह्य वा आंतर-वस्तु चारी औरतैं कल्पना करियेहै । तिस तिस वस्तुका साक्षी होनैकरि तिस बुद्धिके अधीन परमात्मा है । सो तैसैं साक्षीपनैंकरिही अनुभव करना । यह अर्थ हैं ॥ २६ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यविद्यारण्य-मुनिवर्यकिंकरेण रामकृष्णाख्यविदुपा विरचिते पंचदशीप्रकरणे नाटकदीप-व्याख्या समाप्ता ॥ १० ॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य बापु-सरस्वतीपूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्म-विदुषा विरचिता पंचदश्या नाटकदीपस्य तत्त्वप्रकाशि-काऽऽख्या व्याख्या समाप्ता ॥ १० ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना:—
हरिप्रसाद भगीरथजी,
प्राचीन पुस्तकालय,
काळबादेवी रोड रामवाडी,
मुंबई.

इस परमोत्तम ग्रन्थकी एक एक प्रति प्रत्येक पंडितजनको अपने पास रखनी उचित है–मूल्य भी सबके सुभीतेके लिए इतने बड़े ग्रन्थका केवल ३ रुपया मात्र रक्खा है। डाक खर्च ६ आना.

अष्टोपनिषद्भाषा फक्का।

(अर्थात् आठ उपनिषदोंका सुस्पष्ट शांकरभाष्यानुसार स्पष्ट अर्थ और मनउपदेशक शब्द, अन्तर्मुखी रामायण, आत्मस्तोत्राष्टक, जगद्विलास आदिका वर्णन.)

आजकल वेदांतके जितने ग्रंथ छपे और विना छपे नजर आते हैं उन सबका मुखिया आधारस्तंभ वेदका उपनिषद्भाग है. सो वे चारों वेदोंके उपनिषद् एकसौ आठ १०८ हैं. उनमेंसे ईश, केन, कठ, मुण्ड, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य और बृहदारण्य ये दश ही उपनिषद् मुख्य होनसे इनपर श्रीमान् स्वामी शंकराचार्यजीने संस्कृतमें अज्ञ बोधके लिए भाष्य किया है. परंतु वह भाष्य संस्कृतमें होनेके कारण संस्कृतसे अनजान लोगोंको समझमें अच्छी तरह नहीं आता. और सभी वेदान्तग्रन्थोंमें सब जगह उपनिषद् मंत्रोंका ही उपयोग किया गया है, यह विचारकर शंकराचार्यजीने जो उपनिषद् मंत्रोंका, पक्षपातको छोड़कर कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्डके विषे भाष्यरूप यथासंभव अर्थ किया है, उसीका आशय लेकर श्रीमत्परमहंस स्वामी हरिप्रकाशजीने ईश, कठ, केन, प्रश्न, मुण्ड, माण्डूक्य, तैत्तिरीय और छान्दोग्य इन आठों उपनिषदोंकी यथार्थ भाषा फक्का संक्षेपसे की है. वही "अष्टोपनिषद्भाषा-फक्का" हमने सर्व साधारणके उपयोगके अर्थ अच्छे सुचिकन ग्लेज कागजपर छापी है और छोटे बड़े सबके सुभीतेके लिए कीमत भी बहुत ही कम अर्थात् १॥) रुपया रक्खी है. डाक-महसूल ४ आना.

ब्रह्मसूत्र

(वेदान्तदर्शन)

शारीरकभाष्यानुसार सूत्रभावार्थप्रकाशिका-भाषाटीका, अधिकरणसूत्र, तथा उनका प्रसंग दर्शित करनेवाली सूची और अकारादिवर्णक्रमानुसार सूत्रावलोकन प्रकारसहित. इसमें सूत्र और शांकरभाष्यके गहन विषयोंका विवेचन सरल रीतिसे किया गया है; जिससे यह पुस्तक सर्व साधारणके संग्रहयोग्य हो गयी है. ऐसी सरल, और वेदान्तके गूढ़ सिद्धान्तोंको स्पष्टसे समझानेवाली यह टीका अपने ढंगकी एकही है; क्योंकि भामती, आनन्दगिरि आदि सब टीकाओंके सहारेसे लिखी गयीहै. की.१-१२डा.०-४

वेदस्तुति

सटीक (सान्वयभाषाटीकासहित) श्रीमद्भागवतान्तर्गत दशमस्कंधोत्तरार्धके ८७ वें अध्यायमें श्रीकृष्ण भगवान्‌ने श्रुतदेव ब्राह्मण और राजाबहुलाश्वको सन्मार्गनाम वेदमार्गका उपदेश किया है अर्थात् इस स्तुतिमें समस्त वेदोंने ब्रह्म प्रतिपादन किया है.की.०–८डा.०–१

पुस्तक मिलनेका पता—

हरिप्रसाद भगीरथजीका

प्राचीन पुस्तकालय,

कालकादेवी रोड–रामवाडी–बम्बई.